I

[redacted]

साहित्य

[redacted]

0152,1195

॥ श्री ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९७

भासनाटकचक्रम्

महाकविभासप्रणीतनाटकानां संग्रहः

(संस्कृतटीका-हिन्दी अनुवाद-भूमिका परिशिष्टादिसंवलितम्)

संपादकोऽनुवादकः टीकाकारश्च

गङ्गासागर रायः

सर्वभारतयकाशीराजन्यासस्थ

(प्रथमो) भागः

[redacted]

[redacted]

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक

पो० बा० नं० ११३९

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)

वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारु प्रिंटर्स, वाराणसी
संस्करण : प्रथम्, वि० सं० २०५५
मूल्य : रू० [redacted]० (१–२ भाग संपूर्ण)

[redacted]

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ
एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३३४४५, ३३५९३०

प्रधान शाखा :
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१
फोन : ३२०४१४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
297

BHĀSANĀTAKACAKRAM

(Collectiones of all the Dramas of Bhasa)

(With Introduction, Sanskrit Commentaries, Hindi Translation and Appendices)

Edited and Commented
By
Dr. Ganga Sagar Rai, M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKIRT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar near Maidagin)
VARANASI-221001 (INDIA)

©Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

First Edition : 1998
Phone : 333445, 335930

[redacted]

Main Branch—
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
Chowk (The Benaras State Bank Building)
VARANASI (INDIA)
Phone : 320414, 335929

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
२९२

महाकविभासविरचितम्

मध्यमव्यायोगः

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
डॉ. गङ्गासागर रायः
सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत भवन
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्रकाशक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)
टेलीफोन :+९१-५४२-२४२०४१४ फैक्स :+९१-५४२-२४००७५५

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
© चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि०सं० २०६८
मूल्य : रु० ४५.००

वितरक :
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)

मुद्रक : श्रीगोकुलेश प्रेस, वाराणसी, मित्तल आफसेट

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
292

MADHYAMA VYĀYOGA

OF

BHĀSA

[*With 'Gangā' Sanskrit and Hindi Commentaries*]

Edited and Commented By
Dr. Ganga Sagar Rai, M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
VARANASI-221001 (INDIA)

Publisher

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Sanskrit, Ayurveda & Indological Publishers & Distributors

Post Box No. 1160

Chowk, Opp. Chitra Cinema, (Bank of Baroda Building)

Varanasi-221001 (India)

Telephone :+91-542-2420414 Fax : +91-542-2400755

All Rights Reserved

© *Chaukhambha Sanskrit Bhawan*

Reprint Edition : 2011

Price : Rs. 45.00

Distributor

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Post Box No. 1160

Chowk, (Opp. Chitra Cinema)

Varanasi-221001 (India)

Printed at : Sri Gokulesh Press, Varanasi, Mittal Offset, Varanasi

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद की शृङ्खला में मध्यमव्यायोग नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम संतोष का अनुभव कर रहे हैं। आशा है कि भास के अन्य नाटकों की टीकायें भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेंगे और तदुपरान्त भास के विषय में एक साङ्गोपाङ्ग पूर्ण परिचयात्मक अध्ययन भी कर सकेंगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई. में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता है कि वे प्रकाशन के साथ ही सम्पूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं. हीरामणिमिश्र ने सहायंता की है और मुद्रण संशोधन में पं. कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अधमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश, जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्कृत भवन के स्वत्वाधिकारी स्व. ब्रजरत्नदास जी गुप्त तथा उनके चिरंजीवि ब्रजेन्द्र कुमार जी ने जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उनके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो. देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

गङ्गासागर राय

काशी
विजयादशमी २०५३ वि.
२१ अक्टूबर १९९६ ई.

भास की प्रशस्तियाँ

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।

(बाणभट्टः हर्षचरित, १/१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।

(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकै ।।

(दण्डीः अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्य रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ।।
(भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ।।)

(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

(जयदेवः प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकिपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।

(कालिदासः मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिला-तलमवलोक्य वत्सराजः ।

(नाट्यदर्पण ले. रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।

(नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका)

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीनं हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक प्रसृत की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिपाक होता है—**'नाटकान्तं कवित्वम्'**। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि के भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक–सी–मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ–

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्यमणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई. में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य में तञ्और पुस्तकालय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास

का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाटक साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्य, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुभानः"।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ —हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में **'स्वप्नवासवदत्ता'** के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥—काव्यमीमांसा

(४) वाक्यतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को **'जलणमित्ते'**—(ज्वलनमित्र=अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैलाकर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्राप्त किया हैं।

भासम्भि जलब मित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारि अन्दे अ अवन्दो ।। —गउडवहो

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविता कामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य–रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कलिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसितः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नेषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ।।

—प्रसन्नराघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्ति मुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृतिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

''यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराज.......।।'

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में स्वप्नवासवदत्ता के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गार प्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्ते पद्मावतीमत्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः' ।

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनव गुप्त के नाट्य-शास्त्र की अपनी टीका अभिनव भारती में किया है।

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्'।

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का 'विष्णु धर्म' नाटक अभी तक अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के गाल में समाविष्ट हुई तथा केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवनवृत्त–

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्म कथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान बताया है। महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पतिचरणानुगामिनी पत्नी के पति एवं सन्तान प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—**'धर्मो रक्षति रक्षितः'**।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दतं च तथैव तिष्ठति।।

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

'चकारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' ।

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमनाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ।।

डॉ. पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महोमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ।।

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—हमारे राजा ससागर उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत, दो कर्ण कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज-

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये ? जबकि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरंजक इन नाटकों का क्या ? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त ही हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है, वे निम्नलिखित है—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा

साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिह को हिमालय एबं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने विदेशी आक्रमणकारियों को देवनागरी लिपि में लिखित सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग दिया जिसके परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल के गाल में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो.वी. राधवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए है उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ-सुगम नहीं थी।

(२) ए. एस. पी अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं. गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासववक्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ से अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक की हस्त प्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान त्रिवेन्द्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो

प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रत्यनशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। यह भी सम्भव हो सकता है कि यह कर्णभार का अग्रिम अंश हो।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालयं के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायोगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्नलिखित हैं—

(१) प्रतिज्ञायोगन्धरायण
(२) अविमारक
(३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमानाटक
(५) मध्यमव्यायोग
(६) पञ्चरात्र
(७) अभिषेकनाटक
(८) दूतवाक्य
(९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार
(११) ऊरुभङ्ग
(१२) बाल चरित
(१३) चारुदत्त

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन कर के भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया। बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो. रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व-

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रतिपाद्य भास के तेरह नाटकों

की प्रमाणिकता पर विद्वानों में मर्तक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्य जनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः–उदयनवेन्दुसवर्णा ।
—स्वप्नवासवदत्त ।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः=पातु वासवदत्तायो प्रतिज्ञायौ । इत्यादि ।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कन्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत वाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसका शासन हिमालय के बिन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ।।

—स्वप्न. ६-१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा में नियमों का भास

के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता हैं।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाट्य में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकश: ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्यनिर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ है। जैसे—निष्क्रम्य पुन: प्रविश्य यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालंकार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त

करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१६) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर हैं।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्र नामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे—अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण को प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय। इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—बारद को कलहप्रिय तथा स्वरतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"—अविमारक ४/२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च भट्टयामि।"—बाल १/३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः कतुभिर्धरन्ते"—पञ्चरात्र १/२५

'हतेषु देहेषु गुणा घरन्ते'—कर्ण. १७

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास वर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समानताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्ष्य है। भास के नाटक के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए. डी. पुसालकर तथा प्रो. ए. वी. कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज, डॉ. बार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डॉ. सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों को रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(क) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल से प्राप्त होना।

(ख) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्बप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(घ) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्नवासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इस आधार पर चाक्यारों की रचना प्रमाणिक सिद्ध होती है।

चाक्यारों की रचना की अप्रामाणिकता–

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहाँ जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर भी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता है। इसके साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणीं के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई–

कुछ लोगों का मत है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राज सभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्र वर्मन् आदि दक्षिण के नाटक कारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग है जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।

अग्नि परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भास कृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेकर चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इसके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भास रचित तो अवश्य है परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है। विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय–

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय् निर्धारण में विद्वानों में मतभेद हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय में कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई. पू. चौथी सदी में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं सदी में मानने वाले विद्वान् भासनाटकचक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास के नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई. पू. तथा ईस्वी सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश–

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं। इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपनी प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण

नहीं किया है अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता–

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हों तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख है—अवन्तो, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुआङ्गल, उत्तरकुरु कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, जो रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया गया है।

भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र मलय, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, कौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म–

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे[१] । परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था । ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं ।

नाटक का संक्षिप्त कथानक–

महाकवि भास के द्वारा विरचित यह नाटक एक अङ्क का है । इसका कथानक महाभारत पर आधारित है । जो इस प्रकार है—

नान्दी के बाद सूत्रधार रङ्गमंच पर आता है और वह सभी के लिए मङ्गल कामना करता है । उसी समय नेपथ्य में शब्द सुनायी पड़ता है । शब्द को सुनकर वह कहता है कि मैं समझ गया कि भौम का पुत्र हिडिम्बा रूपी अरणि से निकला हुआ यह राक्षस साधु प्रकृति के ब्राह्मण को कष्ट दे रहा है । वह कहता है कि राक्षस द्वारा पीछा किये जाने के कारण ब्राह्मण अपने पुत्र तथा पत्नी सहित ऐसे भयभीत है जैसे सिंह के द्वारा पीछा किये जाने पर डरे हुए बछड़े और गाय से युक्त व्याकुल और व्यथित बैल होता है ।

तदनन्तर ब्राह्मण अपने तीन पुत्रों तथा स्त्री के साथ उपस्थित होता है । यह ब्राह्मण कुरुजाङ्गल प्रदेश के यूपग्राम का निवासी माठर गोत्रीय अध्वर्युं केशवदास है, यह उद्यामक ग्राम निवासी कौशिक गोत्रीय अपने मातुल यज्ञबन्धु से मिलने जा रहा है । यज्ञजन्धु के यहाँ पुत्र का उपनयनसंस्कार होने वाला है उसी में सम्मिलित होने के लिए अपने तीन पुत्रों और स्त्री के साथ जा रहा है । मार्ग में उसे वह जंगल पार करना है जिसमें वनवास के समय पाण्डव निवास करते थे । उस जंगल में उसका एक राक्षस पीछा करता है ।

राक्षस को देखकर ब्राह्मण कहता है कि यह कौन है जिसका केशकलाप मध्याह्न कालीन सूर्य की किरणों के समान फैला है । कुञ्चित भ्रू के कारण बड़ी-बड़ी आँखें लाल हो गयी है, कण्ठ का स्वर्णसूत्र बादल में विद्युल्लता की भाँति है । यह प्रलयकालीन शंकर की प्रतिमा के समान है, तथा हमारे धैर्य को नष्ट

---

[१] ए. एस. पो. अय्यरकृत 'भास' पृ. ६, यही मत डॉ. पुसालकर का भी है ।

कर रहा है। प्रथम पुत्र उसको देखकर कहता है कि जिसकी दोनों आँखें सूर्य और चन्द्र के समान प्रभापूर्ण, विशाल वक्षः स्थल हैं एवं सोने के समान चमकीले केश हैं, जो पीला रेशमीं वस्त्र धारण किए हुए है तथा जिसका वर्ण रात्रि के संपुञ्जित अंधकार के समान है और जिसके दाँत मुँह से बाहर निकलने पर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों नवीन मेघ समूह में चन्द्रकला निमज्जित हो रही हो कौन है ?

द्वितीय ब्राह्मण कुमार कहता है कि यह कौन है ? जिसके दाँत हाथी के बच्चे के समान छोटे और पतले हैं, नाक हल के समान, लम्बी भुजायें हाथी की सूंड़ के समान और यज्ञाग्नि के समान स्वयं प्रज्ज्वलित तथा त्रिपुरदाह के समय शंकर के भयङ्कर क्रोध के समान मालूम पड़ता है।

तृतीय ब्राह्मण कुमार कहता है कि यह कौन है जो पर्वत समूहों के लिए वज्रपात, सब पक्षियों के लिए बाज, मृग समूह के लिए सिंह और मानव शरीर धारण किये साक्षात् मृत्यु ही है।

राक्षस घटोत्कच ब्राह्मणों से कहता है कि रुको-रुको! मेरे भय के कारण तुम्हारा धैर्य नष्ट हो चुका है और अपने भयभीत पत्नी तथा पुत्रों की रक्षा करने की सामर्थ्य तुममें नहीं है। फिर भी गरुड़ के पंख के अग्रभाग से जिसकी क्रोधाग्नि पूर्ण प्रज्वलित हो गई है ऐसे सपत्नीक सर्प के समान तुम क्यों भागे जा रहे हो। हे ब्राह्मण ! न जाओ।

राक्षस घटोत्कच की बातों को सुनकर वृद्ध ब्राह्मण अपनी पत्नी तथा पुत्रों से कहता है कि तुम लोगों को नहीं डरना चाहिए क्यों इसकी वाणी विवेकयुक्त तथा सुविचारित मालूम पड़ती है। घटोत्कच भी अपने कर्म के प्रति पश्चात्ताप प्रकट करते हुए कहता है कि मुझे ज्ञात है कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा पूजनीय है। परन्तु माता को आज्ञा की कारण न करने योग्य कार्य—ब्राह्मण-बध—आज मुझे करना पड़ रहा है।

उसी समय ब्राह्मण अपनी पत्नी से कहता है कि तुम्हें याद नहीं कि जलक्लिन्न मुनि ने कहा था कि यह वन राक्षसों से विहीन नहीं है। अतः तुम लोगों को सतर्क होकर जाना चाहिए। ब्राह्मणी कहती है कि आप इस समय

कर्तव्यविमुढ़ क्यों हो रहे हैं ? किसी को बुलाइए। यह सुनकर ब्राह्मण कहता है कि किसे बुलाऊँ ? यह वन तो पशु-पक्षियों से युक्त निर्जन है, यहाँ चिल्लाना अरण्यरोदन के समान है। सहसा उसे कुछ स्मरण हो आता है और कहता है कि हमलोगों को भयभीत नहीं होना चाहिए, क्योंकि पाण्डवों का आश्रम यहीं होना चाहिए। पाण्डव तो बड़े ही युद्ध प्रिय, शरणागत की रक्षा करने वाले तथा दीनों पर दया करने वाले हैं। वे इस प्रकार की भयानक आकृति तथा भयानक कर्म करने वालों को दण्ड देने में समर्थ हैं।

परन्तु प्रथम ब्राह्मण कुमार अपने पिता को बतलाया है कि पाण्डव शतकुम्भ यज्ञ में सम्मिलित होने महर्षि धौम्य के आश्रम गये हैं। अतएव सब तरह से अपने को निराक्षित पाकर वृद्ध ब्राह्मण घटोत्कच से ही अपने मुक्ति का उपाय पूछता है। घटोत्कच कहता है कि मुक्ति का उपाय है परन्तु एक शर्त है। शर्त यह है कि मेरी आदरणीय माता का आदेश है कि उपवास के पारण के लिए इस वन प्रदेश से किसी मनुष्य को खोज लाओ, इसलिए मैंने आप लोगों को पकड़ा है। यदि तुम अपनी पत्नी तथा दो पुत्रों सहित बचना चाहते हों तो इन पुत्रों में से योग्य-अयोग्य का विचार कर किसी एक को दे दो। घटोत्कच के इस प्रस्ताव को सुनकर वृद्ध ब्राह्मण क्रोधित हो जाता है और कहता है कि क्रूर राक्षस ! दूर हट। मैं शास्त्रज्ञ ब्राह्मण अपने गुणशील सम्पन्न पुत्र को मानवभक्षी राक्षस को देकर कैसे शान्ति प्राप्त करूँगा। घटोत्कच कहता है कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! यदि आप अपने एक पुत्र को नहीं दीजिएगा तो शीघ्र ही आपका पूरा परिवार विनष्ट हो जायेगा।

घटोत्कच की बातें सुनकर ब्राह्मण कहता है कि मेरा शरीर वृद्ध एवं जर्जर हो गया है, कुल की रक्षा के लिए मैं ही तुम्हारे साथ चलूँगा, ब्राह्मण की बात सुनकर ब्राह्मणी कहती है कि पतिव्रता स्त्री के लिए पति ही धर्म है, अतः आपकी एवं पुत्रों की रक्षा के हेतु मैं ही अपने को राक्षस को देती हूँ। परन्तु घटोत्कच कहता है कि मेरी माता को स्त्री की आवश्यकता नहीं है। वृद्ध ब्राह्मण स्वयं राक्षस के साथ जाने को कहता परन्तु उसका प्रथम पुत्र कहता है कि पिता जी ! मैं अपने प्राण देकर आपकी तथा शेष कुल की रक्षा करूँगा।

यह सुनकर द्वितीय ब्राह्मण कुमार कहता है कि ज्येष्ठ पुत्र पिता का प्रिय तथा कुल एवं लोक में श्रेष्ठ होता है। इसलिए मैं राक्षस के साथ जाऊँगा। तृतीय ब्राह्मण कुमार कहता है ऐसा नहीं होगा ज्येष्ठ भाई पिता तुल्य होता है इसलिए अपने पूज्यों की प्राण रक्षा के लिए मैं राक्षस के साथ जाऊँगा। अपने दोनों छोटे भाइयों को प्रथम ब्राह्मण कुमार यह कहकर जाने से रोकता है कि आपत्ति में पड़े पिता की ज्येष्ठ पुत्र ही रक्षा करता है। ज्येष्ठ पुत्र की बात सुनकर ब्राह्मण कहता है कि ज्येष्ठ पुत्र मुझे बड़ा प्रिय है इसलिए उसे मैं नहीं छोड़ सकता। ब्राह्मणी कहती है कि आप ज्येष्ठ पुत्र को चाहते हैं तो मैं छोटे पुत्र को चाहती हूँ। यह सुनकर मध्यम पुत्र कहता है कि माता-पिता का अनिष्ट किसे प्रिय होगा। यदि ये लोग दोनों पुत्रों को नहीं जाने देना चाहते तो मैं ही जाऊँगा। द्वितीय पुत्र की बात सुनकर घटोत्कच प्रसन्न होता है तथा ब्राह्मण कुमार को अपने साथ चलने को कहता है। ब्राह्मण कुमार क्रमशः अपने पिता-माता तथा बड़े भाई को प्रणाम करता है। वृद्ध ब्राह्मण पुत्र को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम्हें वह ब्रह्मलोक प्राप्त हो जो अजितेन्द्रिय पायात्माओं के लिए सर्वथा दुर्लभ है। माता चिरकाल तक जीने का आशीर्बाद देती है तथा भाई कहता है कि तुम्हारे पुण्य यश से सम्पूर्ण पृथ्वी गौरवान्वित होगी।

चलते समय ब्राह्मण कुमार मध्यम पुत्र घटोत्कच से कहता है कि थोड़ी देर तुम रुक जाओ जिससे मैं समीपवर्ती जलाशय से जल ग्रहण कर अपनी प्यास बुझालूँ। घटोत्कच कहता है कि जाओ परन्तु शीघ्र चले आना क्योंकि मेरी माता के भोजन का समय बीत रहा है। मध्यमपुत्र जल पीने चला जाता है। उसके जाने पर वृद्ध ब्राह्मण बहुत सन्ताप प्रकट करता है।

मध्यम को जलाशय से लौटने में विलम्ब होता है। घटोत्कच मध्यम को जोर से पुकारता है। वहीं पास में भीम है जो इस आवाज को सुनकर मन में तर्क-वितर्क करते हैं कि इस गहन वन में इतने ऊँचे स्वर से कौन पुकारता है, यह स्वर अर्जुन के स्वर से मिलता है। घटोत्कच पुनः जोर से मध्यम को पुकारता है। भीम आवाज सुनकर सोचते हैं कि देखें कौन है, वे समीप आकर देखते हैं और घटोत्कच के हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाते

हैं। जब पुनः घटोत्कच पुकारते हुए कहता है कि हे मध्यम ! शीघ्र आ जाओ, तब भीम कहते है कि मैं आ गया। घटोत्कच भीम के व्यक्तित्व को देखकर ठिठक जाता है और पूछता है कि क्या आप ही मध्यम हैं ? तब भीम कहते है कि मैं ही मध्यम हूँ क्योंकि अमृत धर्मात्माओं में मैं मध्यम हूँ और स्वाभिमानियों में भी, मैं पृथ्वी पर (तीनों लोक में) मध्य में हूँ। उत्पत्ति क्रम से मैं अपने भाइयों में मझला (मध्यम) हूँ। भीम की बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण सोचता है कि निश्चय ही यह पाण्डवों में मध्यम ही होंगे, जो हमलोगों को विपत्ति से मुक्त कराने भाग्यवशात् यहाँ आये हैं। उसी समय ब्राह्मण पुत्र मध्यम वहाँ आता है और घटोत्कच उसे लेकर चल देता है। वृद्ध ब्राह्मण कातर दृष्टि से भीम के पास जाकर कहता है कि ब्राह्मण कुल की रक्षा कीजिए। वह भीम को अपना परिचय देते हुये यह भी बताता है कि कहाँ का रहने वाला है और कहाँ, किस उद्‌देश्य से जा रहा है। तथा यह राक्षस मेरे परिवार के सभी लोगों को खाना चाहता है। ब्राह्मण की सम्पूर्ण बात सुनने के पश्चात् भीम उसे अभयदान देते हैं और जोर से बोलते हुए घटोत्कच को ठहरने के लिए कहते हैं। भीम घटोत्कच से कहते हैं कि तुम ब्राह्मण परिवार रूपी चन्द्र को ग्रसने के लिए राहु बने हो। ब्राह्मण परिवार को छोड़ दो, क्योंकि ब्राह्मण अबध्य होता है। घटोत्कच भीम की बातों को सुनकर कहता है कि आप क्या यदि मेरे पिता भी मुझसे कहते तो भी मैं अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य कर इन्हें कभी नहीं छोड़ता। भीम घटोत्कच की मातृभक्ति देखकर मन में सोचते हैं कि मनुष्यों के लिए माता तो देवताओं की भी देवता है। हमलोग भी माता कुन्ती की आज्ञा मानकर द्यूत क्रीड़ा के कारण वनवास की दशा को प्राप्त हुए। भीम घटोत्कच से उसकी माता का नाम पूछते हैं। घटोत्कच अपनी माता का नाम हिडिम्बा बताता है। यह सुनकर और यह जानकर कि यह हिडिम्बा का पुत्र है भीम मन ही मन बहुत प्रसन्न होते हैं। भीम मध्यम पुत्र को रोकते हुए स्वयं घटोत्कच के साथ जाने को कहते हैं। परन्तु मध्यम पुत्र यह कहता है कि मैंने अपने कुल के निमित्त प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया है और आप सुन्दर तथा श्रेष्ठ गुणों वाले हैं अतः चिरकाल तक इस पृथ्वी पर रहें। भीम कहते हैं कि मैं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हूँ। अपना

शरीर देकर ब्राह्मण का शरीर बचाना चाहता हूँ।

घटोत्कच जब भीम से चलने को कहता है तब वे कहते हैं कि यदि 'तुममें शक्ति हो तो मुझे ले चलो'।

इसके अनन्तर घटोत्कच भीम को युद्ध के लिए ललकारता है और उनके ऊपर विशाल वृक्ष एवं पर्वत शिखर से प्रहार करता है परन्तु भीम को वह विचलित नहीं कर पाता है, तब वह मल्लयुद्ध के लिए ललकारता है, मल्लयुद्ध में भी भीम बहुत सहजता से उसके बाहुपाश से अपने को मुक्त कर लेते हैं। अन्त में अपने को असफल होता देख घटोत्कच अपनी माता के द्वारा प्रसाद के रूप में प्राप्त मायापाश का प्रयोग भीम के ऊपर करता है, अपने को मायापाश में बँधा देख भीम कहते हैं कि मुझे शंकर जी की कृपा से मायापाश से मुक्ति का मन्त्र भी प्राप्त है, और मन्त्र का जप कर बन्धन मुक्त हो जाते है। घटोत्कच जब अपने सारे उपायों के प्रयोग करने के बाद भीम को ले जाने में असफल होता है तव वह भीम को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाता है। अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर भीम घटोत्कच का अनुसरण कर जाने लगते हैं। घटोत्कच भीम को खड़ा कर अन्दर अपनी माता को सूचना देने जाता है। हिडिम्बा अपने इच्छित आहार की सूचना पाकर कौतुहलवश उसे देखने आती है। भीम को देखकर वह आर्यपुत्र ! कहकर उनका अभिवादन करती है और धटोत्कच से भी अपने पिता को प्रणाम करने के लिए कहती है। घटोत्कच अपने पिता से उनके प्रति किये गये अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमायाचना माँगते हुए प्रणाम करता है। भीम उसके अपराधों को क्षमा करते हुए उसे आलिंगनबद्ध कर लेते हैं और कहते हैं कि पिता का हृदय हमेशा पुत्र की अपेक्षा रखता है तथा आशीर्वाद देते हुए कहते हैं पुत्र ! अजेयं शक्ति वीरता प्राप्त करो। भीम अपने पुत्र घटोत्कच से वृद्ध ब्राह्मण केशवदास को भी प्रणाम करने को कहते हैं, घटोत्कच वैसा ही करता है, ब्राह्मण उसे आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि पिता के समान गुण और कीर्ति वाले बनो, अन्त में ब्राह्मण अपने परिवार के साथ अपने गन्तव्य को प्रस्थान करता है। भीम हिडिम्बा तथा घटोत्कच के

साथ आश्रम के प्रदेश तक ब्राह्मण देवता को छोड़ते हैं। मंगल वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण–

महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्धहस्त हैं। इनके पात्र नाटक में भारस्वरूप न होकर कथानक को जीवतता प्रदान करते है। प्रस्तुत मध्यमव्यायोग एकांकी में कुल आठ पात्र है। जिनमें वृद्ध ब्राह्मणी एवं हिडिम्बा दो स्त्री पात्र हैं तथा भीम, घटोत्कच, वृद्ध ब्राह्मण केशवदास तथा उसके तीनों पुत्र कुल छः पुरुष पात्र हैं। इनमें से प्रमुख पात्रों का चरित्र इस प्रकार है—

भीम–

प्रस्तुत नाटक का नायक भीम हैं इनका चरित्र अत्यन्त ही उदात्त तथा महनीय रूप में नाटककार ने प्रस्तुत किया है। भीम का व्यक्तित्व एवं शारीरिक बनावट अत्यन्त प्रभावशाली है, उन्हें देखकर घटोत्कच कहता है—

अही दर्शनीयोऽयं पुरुषः। य एष—

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहु–
र्मध्ये तनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः।
विष्णुर्भवेद्विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम्॥२७॥

अर्थात् सिंह के समान आकृति, सोने के ताड़ वृक्ष के समान लम्बी बाहें, क्षीण कटि, गरुड़ के पङ्ख से चिकने पार्श्वों, कमलदल के समान विशाल नेत्रों वाला बन्धु के समान आया हुआ यह विष्णु हो सकता है जो मेरे नेत्रों को आकृष्ट कर रहा है।

भीम निर्भीक, स्वाभिमानी तथा बलवान् क्षत्रिय हैं। वे परदुःखकातर स्वभाव के हैं। उन्हें क्षत्रिय के कर्तव्यों का पूर्ण ज्ञान है। वे ब्राह्मण को अभय दान देते हैं। वे घटोत्कच से कहते हैं कि तुम इस ब्राह्मण तथा ब्राह्मण परिवार को छोड़ दो क्योंकि ब्राह्मण को अनेक अपराध करने पर भी नहीं मारना चाहिए—

निवृतव्यवहारोऽयं सदारस्तनर्यः सह।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ।।३४।।

भीम मध्यम पाण्डव हैं और अपने को अनेक तर्कों द्वारा मध्यम सिद्ध करते हैं। वे कहते है कि अमृत धर्मात्माओं, स्वाभिमानियों, तीनों लोक, अपने भाइयों तथा पञ्चभूतों सबमें मैं मध्यम हूँ।

भीम के मन में माता के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम है वे स्वयं कहते है—

माता किल मनुष्याणां देवतानां च दैवतम्।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य वयमेतां दशां गताः ।।३७।।

अर्थात् मनुष्यों के लिए तो माता देवताओं की भी देवता है। माता की आज्ञा को मानकर हम लोग द्यूतक्रीड़ा के द्वारा इस दशा को प्राप्त हुए।

उनके हृदय में वात्सल्य प्रेम की भावना भरी हुई है। घटोत्कच को देखकर उन्हें सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु की याद आती है—

दृष्ट्वैतद्बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ।।३५।।

भीम पत्नी प्रेमी पति भी हैं। हिडिम्बा को देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे देवि! तुमने हमारे कष्ट दूर कर दिए—

जातकारुण्यया देवि! सन्तापो नाशितस्त्वया ।।४६।।

तथा उसके आचरण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि तुम जन्म से राक्षसी हो परन्तु आचरण से नहीं—

'जात्या राक्षसी न समुदाचारेण'

भीम एक वीर क्षत्रिय योद्धा भी हैं, जब घटोत्कच उन्हें उपने साथ चलने को कहता है तो वे कहते हैं कि तुममें यदि सामर्थ्य हो तो मुझे ले चलों और वे घटोत्कच को परास्त करते हैं। इसके साथ ही मायापाश से छुड़ाने के लिए दिव्यशक्ति का प्रयोग करते हैं और घटोत्कच को सभी प्रकार से परास्त कर देते हैं। परन्तु इतना बलपौरुष होते हुए भी वे अपनी बात पर अटल रहते हैं। जब घटोत्कच उन्हें उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाता है तो वे चुपचाप उसके साथ चलने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने भीम

को नायक के पद प्रतिष्ठित करते हुए उनके चरित्र को प्रोज्वल प्रदर्सित किया है।

घ़टोत्कच-

घटोत्कच नाटक का महत्त्वपूर्ण पात्र है। नाटक के नायक, भीम हैं परन्तु सम्पूर्ण घटना क्रम घटोत्कच पर ही अवलम्बित है। वह अत्यन्त वीर, साहसी, बलशाली, मातृभक्त एवं आज्ञाकारी पुत्र है। नाटक के प्रारम्भ में घटोत्कच वृद्ध ब्राह्मण को प्रलयकालीन रुद्र के समान प्रतीत होता है तो द्वितीय ब्राह्मण कुमार को त्रिपुरदाह के समय शंकर के भयङ्कर क्रोध के समान तथा तृतीय ब्राह्मण कुमार तो कहते हैं कि यह पर्वत समूहों के लिए वज्रपाश, सब पक्षियों के लिए बाज, मृगसमूह के लिए सिंह और मानव शरीर धारण किये साक्षात् मृत्यु ही है।

घटोत्कच राक्षस होते हुए भी अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझता है। वह कहता है कि मैं यह जानता हूँ कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर ब्राह्मण पूजनीय है परन्तु बिना किसी शंका के माता की आज्ञा से सर्वथा न करने योग्य कार्य मुझे करना है—

जानामि सर्वत्र सदा च नाम
द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्।
अकार्यमेतच्च मयाऽथ कार्य
मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम्।।९।।

घटोत्कच इतना बड़ा मातृभक्त है कि जब भीम उससे कहते है कि इस ब्राह्मण को छोड़ दो तब वह कहता है कि ऐसा पिता जी भी कहते तो मैं माता के आदेश के कारण कदापि नहीं छोड़ता—

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया।।३६।।

घटोत्कच के चरित्र में राक्षसी वृत्ति की कठोरता नहीं है बल्कि उसमें मानवीय गुणों से युक्त आत्मविश्वास तथा सहानुभूति की भावना भरी हुई

परिलक्षित होती है । जब मध्यम ब्राह्मण कुमार जल पीने के लिए बाहर जाने को कहता है तो वह उसे बिना किसी संकोच के जाने की अनुमति प्रदान कर देता है । घटोत्कच दृढ़निश्चयी तथा निर्भीक है । जब भीम उससे कहते हैं कि तुममें शक्ति हो तो मुझे ले चलो तो वह घबड़ाता नहीं है बल्कि अस्त्र-शस्त्र तथा मायापाश का प्रयोग कर उन्हें ले चलने का प्रयास करता है । वह बुद्धिमान् एवं चतुर इतना है कि जब अस्त्र-शस्त्र के द्वारा भीम को नहीं जीत सकता तो उन्हें उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाकर अपने साथ ले जाता है ।

उसे अपने कुल परिवार पर भी गर्व हैं वह अपना परिचय देते हुए भीम से कहता है कि मेरी माता हिडिम्बा हैं जो कौरव कूल के दीपक महात्मा पाण्डव से पूर्ण चन्द्र से आकाश की भाँति सनाथ की गई है—

कौरव्यकुलदीपेन पाण्डवेन महात्मना ।
सनाथा या महाभागा पूर्णेन द्यौरिबेन्दुना ।।३८।।

घटोत्कच विनयशील भी है । जब वह भीम को अपने साथ लेकर माता के पास पहुँचता है और उसे यह ज्ञात होता है कि यह व्यक्ति मेरे पिता है तो वह तत्क्षण उनसे क्षमा याचना करते हुए प्रणाम करता है—

अज्ञानात्तु मया पूर्व यद्भवान्नाभिवादितः ।
अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।५०।।

'अहं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निर्घटोत्कचोऽभिवादये । पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि ।'

हिडिम्बा

भीमसेन की स्त्री हिडिम्बा के नाम की चर्चा तो नाटक में बहुत पहले ही होती है परन्तु उसकी उपस्थिति बिल्कुल अन्त में होती है । हिडिम्बा के राक्षसी होते हुए भी उसके अन्दर मानवीय गुण विद्यमान है । वह पतिपरायण तथा बुद्धिमती स्त्री है । वह इतनी बुद्धिमती है कि पति से मिलने के लिए ही वह इस प्रकार का कार्य करती है, जब भीमसेन उससे पूछते हैं कि यह क्या ? तो वह उनके कान में (ईदृशमिव) कहती है । यह सुनकर भीम कहते हैं—

'जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण'

अर्थात् तुम जन्म से राक्षसी हो आचरण से नहीं।

वह अपने पति को देवतुल्य समझती है, जब वह भीम को देखती है तो अपने पुत्र घटोत्कच से कहती है कि यह तो तुम्हारे और मेरे दोनों के देवता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिडिम्बा पतिपरायणा तथा दया ममतावाली राक्षसी है।

ब्राह्मण केशवदास–

ब्राह्मण केशवदास का चरित्र त्याग, संयम तथा सरलता से भरा हुआ है। वह अपने को विनष्ट कर अपने कुटुम्ब की रक्षा करना चाहते हैं। वह कहते हैं कि अपने पुत्र तथा स्त्री की रक्षा हेतु इस वृद्ध जर्जर शरीर को राक्षस की क्षुधा अग्नि में आहुति कर दूँगा—

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम्।
राक्षसाग्नो सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम्।।१५।।

जब घटोत्कच कहता है कि आप अपने तीनों पुत्रों में से किसी एक को दे दीजिए, तो उसके इस प्रस्ताव को सुनकर ब्राह्मण क्रुद्ध हो जाते हैं और कहते हैं कि मैं एक वुद्ध शास्त्रज्ञ ब्राह्मण अपने गुणशील-सम्पन्न पुत्र को मानवभक्षी राक्षस के लिए देकर भला किस प्रकार शान्ति को प्राप्त करूँगा—

ब्राह्मणः श्रुतवान्बृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम्।
पुरुषादस्थ दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम्।।१३।।

जब द्वितीय ब्राह्मण कुमार घटोत्कच के साथ जाने के लिए तैयार होता है तो उसके आत्मबलिदान की सराहना करते हुए ब्रह्मलोक प्राप्ति का आशीर्वाद देते है—

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल।
अकृतात्मदुरावापं ब्रह्मलोकमवाप्नुहि।।२१।।

ब्राह्मण का हृदय इतना सरल है कि जब घटोत्कच उन्हें प्रणाम करता है तो उसके सारे पूर्व कार्यों को भुलाकर आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि पिता के समान गुण और कीर्ति वाले बनो।

यह सब होते हुए भी एक बात खटकती है कि माता छोटे पुत्र तथा पिता बड़े पुत्र से अधिक प्रेम करते हैं और मध्यमपुत्र को राक्षस को देने के लिए तैयार हो जाते है। यह घटना ऐतरेय आरण्यक के समान लगती है जिसमें शुनःशेप को उसके माता-पिता बरुणबलि बनाने के लिए उद्यत हो जाते है।[1] परन्तु यहाँ पर थोड़ा अन्तर यह दिखायी देता है कि ब्राह्मण अपने द्वितीयपुत्र मध्यम को मन से नहीं देता है और देने पर पश्चात्ताप करता है। उसे सम्पूर्ण परिवार खण्डित लगता है। वह कहता है कि मेरे पर्वत रूपी वंश के परमरमणीय जो तीन शिखर थे उसके मध्यम शृङ्ग के टूट जाने से मुझे बड़ा संताप हो रहा है—

यस्त्रिशृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः।
स मध्यशृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम्।।२३।।

नाटक के कथानक का आधार-

मध्यमव्यायोग नाटक का कथानक महाभारत पर आधारित है। महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत हिडिम्ब-वध पर्व में हिडिम्ब-वध तथा हिडिम्बा से भी ब्याह का वर्णन है। इसके अतिरिक्त हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच का अस्तित्व भी वहाँ पर है। परन्तु घटोत्कच के द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा करना, घटोत्कच के द्वारा अज्ञात में अपने पिता भीम से युद्ध, हिडिम्बा और भीम का पुनः मिलन आदि घटनाओं का उल्लेख महाभारत में नहीं हैं। यह कवि के द्वारा कल्पित हैं। महाभारत के द्रोणपर्व के (अ. १८१/२६-२७) में इतना अवश्य उल्लेख है कि घटोत्कच यज्ञ तथा ब्राह्मणों का विद्वेषी है।

नाटक का नामकरण-

महाकवि भास से नाटक का नामकरण अत्यन्त ही उपयुक्त एवं अर्थगर्भित है। नाटक के नाम की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

(१) 'मध्यम' शब्द अर्थात् पाण्डवों में मध्यम पाण्डव भीम तथा व्यायोग नाटक का एक प्रकार हैं।

---

[1] शुनःशेप के आख्यान के लिये द्रष्टव्य—डॉ. गङ्गासागरराय कृत वैदिक आख्यान (चौखम्बा प्रकाशन)।

(२) मध्यम शब्द उस ब्राह्मण कुमार का नाम है जो घटोत्कच के साथ वध के लिये जाता है तथा मध्यम भीम का बोधक है ।

(३) मध्यम पाण्डव भीम का हिडिम्बा के साथ संयोग होना ही मध्यमव्यायोग है ।

प्रश्न यह है कि पाण्डवों में मध्यम अर्जुन हैं परन्तु भीम कैसे हुए ? इसका समाधान यह है कि भास भीम को मध्यम मानते हैं क्योंकि कुन्ती के तीन पुत्रों में भीम ही मध्यम है । इस बात को भास ने नाटक में भीम के द्वारा स्वयं कहलवाया है कि—**'भ्रातृणामपि मध्यमः'** ।

समीक्षण–

प्रस्तुत नाटक एक व्यायोग है । व्यायोग के सम्बन्ध में दशरूपककार ने लिखा है—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः ।
हीतो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद्रसाः ।।
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा ।
एकहचरितैकाङ्को व्यातोगो बहुभिनैरः ।।

—दशरूपक ६, ६०-६३ ।

अर्थात् इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है नायक इतिहास प्रसिद्ध धीरोद्धत होता है, गर्भ एवं विमर्श सन्धियाँ नहीं होती, वीर, रौद्र आदि रस होता है, युद्ध स्त्री के लिए नहीं होता, एक दिन का वृत्तान्त होता है तथा एक अंक का होता है ।

इस मानदण्ड के आधार पर प्रस्तुत रूपक व्यायोग ही ठहरता है । प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने व्यायोग के सभी तत्त्वों का बड़ी सफलता पूर्वक समावेश किया है । नाटक का नायक भीम इतिहास-प्रसिद्ध है, नाटक का मुख्य इतिवृत्त भीम और घटोत्कच के बाहु-युद्ध के मध्य ही केन्द्रित है, नाटक एक अङ्कीय है तथा समय भी एक ही दिन का क्या कुछ क्षणों का है ।

नाटकीय दृष्टि से यह नाटक सफल है क्योंकि नाटककार ने पात्र संवाद,

शैली, कथोपकथन, भावोन्मेष, रस, छन्द, अलंकार आदि सभी के प्रयोग में सफलता प्राप्त करते हुए नाटक में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। पात्रों के चरित्राङ्कन में महाकवि भास सिद्धहस्त है, नाटक में इनके पात्र भार स्वरूप न होकर कथानक को जीर्वतता प्रदान करते है, वार्तालापों से दर्शक कहीं ऊबता नहीं बल्कि उसके कुतूहल में प्रतिक्षण वृद्धि होंती है। कथोपकथन में भाषा सहायक सिद्ध होती है।

नाटक में अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। घटोत्कच जब वृद्ध ब्राह्मण -परिवार का पीछा करता है उस समय की अवस्था का वर्णन बड़ा ही सजीव है। उपमा की छटा यहाँ दर्शनीय है—

भ्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारैःवृद्धो,
द्विजो निशाचरानुचरः स एषः।
व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः
सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपति ।।३।।

अर्थात् राक्षस के द्वारा पीछा किये जाने पर डरे हुए पुत्रों और पत्नी के साथ इस वृद्ध ब्राह्मण की स्थिति सिंह से पीछा किये जाने पर डरे हुए छोटे बछड़ों और गाय से युक्त व्याकुल तथा व्यथित बैल के समान है। तथा—

किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो
वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते।
लाक्ष्यार्ग्रपक्षपवनोद्धतरोषबह्नि–
स्तीव्रः कलत्रसहितो भुजगो यथार्त्तः ।।८।।

अर्थात् घटोत्कच के भय से भयभीत तथा अपने स्त्री-पुत्रों की रक्षा करने में असमर्थ ब्राह्मण उसी प्रकार जा रहा है जैसे गरुड़ के पंख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि उत्तेजित सपत्नीक सर्प जाता है।

उत्प्रेक्षा के आश्रय से घटोत्कच का ऐसा वर्णन किया गया है कि नाटक पढ़ने वाले के सामने एक वरिष्ठ व्यक्ति ही मानो उपस्थित हो जाता है—

ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षाः,
कनककपिश केशः पीतकौशेयवासाः।

तिमिरनिवहवर्णः पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रो
नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ।।५।।

भास ने घटोत्कच का बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित किया है—

ब्रजपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्त्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसंघानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ।।७।।

अर्थात् पर्वत समूहों के लिए वज्रपात के समान, सब पक्षियों के लिए बाज, मृगसमूह के लिए सिंह तथा मानव शरीर धारण कर साक्षात् मृत्यु ही है।

नाटक में अनुष्टुप्, वसंततिलका, मालिनी शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। रस परिपाक की दृष्टि से भी यह नाटक सफल है। नाटक का मुख्य रस वीर है परन्तु इसके साथ ही अन्य रसों का प्रयोग हुआ है जैसे— घंटोत्कच के द्वारा पीछा किये जाने पर ब्राह्मण का सिंह के द्वारा आक्रमण किये जाने पर भयभीत गोवत्स तथा वृषभ के समान वाला दृश्य करुण रस उत्पन्न कर देता है, ब्राह्मण और घटोत्कच का मिलना भयानक रस है, इसी प्रकार मायापाश का प्रयोग तथा उससे छूटना अद्भुत रस एवं घटोत्कच और भीम युद्ध रौद्र रस उत्पन्न करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाटक की कसौटी पर भास का यह नाटक खरा उतरता है।

●

पात्र परिचयः

पुरुषाः–

वृद्धः — ब्राह्मणः केशवदासनामा ।
प्रथमः — वृद्धस्य ज्येष्ठः पुत्रः ।
द्वितीयः — वृद्धस्य द्वितीयः पुत्रो मध्यमनामा ।
तृतीयः — वृद्धस्य कनिष्ठः पुत्रः ।
घटोत्कचः — राक्षसः, हिडिम्बाभीमसेनयोः सूनुः ।
भीमसेनः — मध्यमः कुन्तीपुत्रः ।

स्त्रियौ–

ब्राह्मणी — वृद्धस्य भार्या ।
हिडिम्बा — राक्षसी, भीमसेनस्य पत्नी

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लोकाङ्काः
अज्ञानात्तु	५०
अनुग्रहात्	५१
अस्माकं भ्रष्ट	४९
अस्यामाचम्य	३१
आक्रम्य राक्षस	४८
आपदं हि पिता	१९
इदं हि शून्यं	१०
कलभदशन	०६
काञ्चनस्तम्भ	४२
किं यासि मद्	०८
कृतकृत्यं शरीरं	१५
कौरब्यकुल	३८
खगशतविरुते	२५
ग्रहयुगल	०५
जानामि सर्वत्र	०९
ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले	१७
ज्येष्ठो भ्राता	१८
तरुण तरुणता	२४
तरुण रविकर	०४
त्यक्ताः प्रागेव	४०
धन्यौऽस्मि यद	२०
नन्वहं भीम	४५
निवृत्तव्यवहारो	३४
पत्न्या चारित्र	१२
परिष्वजस्व गाढं	२२
पायात् स वोऽसुर	०१

	श्लोकाङ्काः
पुत्रनक्षत्र	३३
ब्राह्मणः श्रुत	१३
भोःशब्दोच्चा	०२
भ्रातृणां मम	३५
मध्यमः पञ्च	२९
मध्यमस्त्विति	३०
मध्यमोऽहं	४८
मम प्राणैर्गुरु	१६
माता किल मनुष्याणां	३७
मायापाशेन	४७
मुच्यतामिति	३६
यथा नदीनां	५२
यद्यर्थितो द्विज	१४
यस्त्रिशृङ्गो	२३
युद्धप्रियाश्च	११
रूपं सत्त्वं	३९
वज्रपातो	०७
विनिमाय गुरु	२१
विश्वकर्ता शिवः	४३
व्रजसि कथमिह	४६
शपामि सत्येन	४१
शैलकूटं	४४
श्रान्तैः सुतै	०३
सजलजलद	३२
सिंहाकृतिः कनक	२७
सिंहास्यः सिंह	२६

।। श्रीः ।।

महाकविभासविरचितः

मध्यमव्यायोगः

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

।। प्रथमोऽङ्कः ।।

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः–

पायात् स वोऽसुरवधूहृदयावसादः
पादो हरेः कुवलयामलखड्गनीलः ।

नत्वा विघ्नेश्वरं वाणीं विष्णुं भानुमुमापतिम् ।
मध्यमव्यायोगव्याख्यां वितनामि यथामति ।।

अथ कविकुलचूडामणिः वैष्णवकुलाग्रणीः सुगृहीतनामधेयः तत्र भदान् महाकविर्भासः मध्यमव्यायोगनामकं नाटकं चिकीर्षुः ग्रन्थविघ्नविघाताय शिष्यप्रशिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ सूत्रधारमुखेन स्वेष्टदेवतात्मकविष्णुस्मरणपूर्वकमाशीर्वादात्मकं मङ्गलमाचरति–पायादिति ।

अन्वयः–असुरवधूहृदयावसादः कुवलयामलखड्गनीलः (सः) हरेः पादः वः पायात् । यः त्रिभुवनक्रमणे प्रोद्यतः अम्बरसागरस्य वैदूर्यसंक्रम इव रराज ।।१।।

पायादिति–असुरवधूहृदयावसादः असुरवधूनां = दैत्यवनितानां; हृदयेषु = चित्तेषु, अवसादः = दुःखजनकः । प्रकृते च वलिपत्नी चित्तोद्वेभजनक

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार–असुरवधुओं को दुःख देनेवाला, नील कमल के समान स्वच्छ एवं तलवार की भाँति नौलवर्ण वाला भगवान् वामन का वह पाद आप

य: प्रोद्यतस्त्रिभुवनक्रमणे[1] रराज
वैदूर्यसङ्क्रम[2] इबाम्बरसागरस्य ।।१।।

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये किन्नु खलु मयि विज्ञापन व्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग । पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधारः–भवतु, विज्ञातम् ।

इति व्याख्येयम् । कुवलयामलखड्गनील: कुवलयम् नीलकमलम् इव अमलम् किञ्च खड्गवत्=कृपाणवत् ; नील:=श्यामवर्ण: । हरे:=वामनरूपधारिण: । श्रीविष्णो: स:=प्रसिद्ध: पाद:=चरण: । ब:=युष्मान् सामाजिकान् । पायात्–अभिरक्षेत् । य:=पाद: । त्रिभुवनक्रमणे=त्रैलोक्यपरिमापणे । उद्यत:=संलग्न: । अम्बरसागरस्य अम्बरमेब सागरस्तस्य=गगनसमुद्रस्य । वैदूर्यसंक्रम:=वैदूर्यनिर्भितसेतु: । इव=यथा । रराज=शुशुभे । प्रकृतपद्ये कुवलयामलखड्गनील इत्यत्रोपमा । अम्बरसागरस्येत्यत्र रूपकम् । वैदूर्यसंक्रम इवेत्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कार: । वसन्ततिलकावृत्तम् ।।१।।

विज्ञापनव्यग्रे=सूचनादानार्थमाकुले । अङ्ग=हन्त ।

सभी सामाजिकों की रक्षा करे जो त्रिभुवन को नापते समय ऐसा जान पड़ रहा था मानो आकाशरूपी विस्तृत समुद्र में वैदूर्यमणि कौ राशि (अथवा उस पर वैदूर्य से बाँधा गया कोई सेतु) हो ।।१।।

मैं आप सभी महानुभावों को सूचित करता हूँ । अरे । सूचना देने के लिये व्यग्र हुये मुझे यह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है । अच्छा तो देखूँ ।

(नेपथ्य में)

हे तात ! यह वास्तव में कौन है ?

सूत्रधार–अच्छा समझ गया ।

---

[1] भूवनैकमणे—इति वा पाठा। [2] वैदूर्यं–इति वा पाठः ।

भोः शब्दोच्चारणादस्य ब्राह्मणोऽयं न संशयः ।
त्रास्यते निर्विशङ्केन केनचित् पापचेतसा ।।२।।

(पुनर्नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधारः—हन्त, दृढ़ं विज्ञातम् । एष खलु पाण्डवमध्यमस्यात्मजो हिडिम्बारणिसम्भूतो राक्षसाग्निरकृतवैरं ब्राह्मणजनं वित्रासयति । भोः । कष्टं कष्टं खलु पत्नीसुतपरिवृतस्य वृत्तान्तः[1] । अत्र हि,

---

अन्वयः—अस्य भोः शब्दोच्चारणात् अयं ब्राह्मणः इति संशयः न (यः) केनचित् निर्विशङ्केन पापचेतसा त्रास्यते ।

इदानीं घटनाक्रममुद्घाटयति—भोः इत्यादिना । अस्य=सन्निहि तस्य । भोः इति शब्दोच्चारणात्=शब्दव्याहरणात् । अयम् व्याहर्त्ता जनः । ब्राह्मणः=विप्रः । इति=इत्यत्र । संशयः=संदेहः । न=नास्ति । एतेन तदानीं ब्राह्मणा एव भोः शब्दमुच्चारयन्तीति ज्ञायते । (यः) केनचित्=अज्ञातेन । निर्विशङ्केन=निरातङ्केन । पापचेतसा=पापम्=पापमयम् चेतः=हृदयं यस्य तेन=पापिना । त्रास्यते=भौष्यते । अनुष्टुव्वृत्तम् ।।२।।

दृढम्=बलवत् । पाण्डवमध्यस्य=भीमसेनस्य । हिडिम्बारणिसंभूतः

भोः शब्द के उच्चारण से यह निश्चित हो रहा है कि कोई ब्राह्मण किसी पापी से निर्भयतापूर्वक सताया जा रहा है ।।२।।

(पुनः नेपथ्य में)

हे पिता ! यह कौन है ?

सूत्रधार—आह ! अब मैं ठीक-ठीक समझ गया । अवश्य ही यह मध्यम पाण्डव का पुत्र जो हिडिम्बारूपी अरणी से निकला हुआ घटोत्कच नामक राक्षस है जो किसी से वैर न रखनेवाले इस साधुप्रकृतिवाले ब्राह्मण को सता रहा है । हाय बड़ा ही कष्ट है ।

---

[1] कष्टं-वृत्तान्तः-क्वचित् पुस्तके नास्ति ।

[1]श्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो[2]
वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स[3] एषः ।
[4]व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेमुः
सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपैति ।।३।।

हिडिम्बा एव अरणिः ततः संभूतः=हिडिम्बासुतः । राक्षासाग्निः राक्षस एवाग्निः राक्षसाध्विः=राक्षसरूपो वह्निः । अकृतयैस्म्–सर्वमित्रभूतम् । विवासयति=भीषयति ।

इदानीं घटोत्कचसंवस्तब्राह्मणाअस्थां निरूपयति–

अन्वयः–तरुणैः श्रान्तैः सुतैः परिवृत्तः सदारः निशिचरानुचरः स एष वृद्धः द्विजः संत्रस्तवत्सकः सधेनुः व्याघ्रानुसारचकितः वृषभ इव आकुलताम् उपैति ।।३।।

श्रान्तै इति–तरुणैः=युवभिः । श्रान्तैः=किंकर्त्तव्यविमुढैः । सुतैः=पुत्रैः । परिवृत्तः=परितो वृत्तः । सदारः=सभार्यः । निशिचरानुचरः राक्षसेनानुस्त्रियमाणः । स एषः वृद्धः=स्थविरः । द्विजः=ब्राह्मणः । संत्रस्तवत्सकः=संत्रस्तः=भयाकुलः वत्सकः=बत्सः यस्य सः । सधेनुः=सद्यः प्रसूता गौर्धेनुः तया सहितः । व्याघ्रानुसारचकितः व्याघ्रस्य=सिंहस्य अनुसारेण=आक्रमणेन अनुसरणेन वा चकितः=संत्रस्तः । वृषभः=बलौवर्दै इव । आकुलताम्=व्यग्रताम् । उपैति=गच्छति । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।३।।

तरुण किन्तु भयभीत पुत्रों से चारों ओर घिरा हुआ पत्नी सहित यह वृद्ध ब्राह्मण इस राक्षस के द्वारा पीछा किया जाता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो डरे हुये बछड़े वाली गाय से युक्त कोई बैल सिंह द्वारा पीछा किये जाने पर व्याकुल तथा भयभीत हो रहा हो ।।३।।

---

१. श्रान्तैः—इति वा पाठः । २. सदारैः—इति वा पाठः ।
३. सरोषः—इति वा पाठः ।
४. अनुसारचकितो, नुचारचकितो इति वा पाठौ ।

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(ततः प्रविशति सुतत्रयकलत्रपरिवृतः वृद्धः ब्राह्मणः पृष्ठतो घटोत्कचश्च ।)

[1]वृद्धः—भोः । को नु खल्वेषा,

[2]तरुणरविकरप्रकीर्णकेशो भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
सतडिदिव घनः सकण्ठसूत्रो
युगनिधने प्रतिमाकृतिर्हरस्य ।।४।।

स्थापना=प्रस्तावना

किमप्यपूर्व तादृशं जन्तुं दृष्ट्वा संदिहानो ब्राह्मणः जिज्ञासते—

अन्वयः—तरुणरविवरप्रकीर्णकेशः भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्लायताक्षः सकण्ठसूत्रः सतडिद् घन इव युगनिधने हरस्य प्रतिमाकृतिः अयं क इति शेषः ।।४।।

तरुणेति—तरुणरविकरप्रकीर्णकेशः तरुणः=मध्याह्नकालिकः रविः=सूर्यस्तस्य कराः=किरणाः तद्वत् प्रकीर्णाः=विस्वस्ताः केशाः=कचाः यस्य सः ।

(सब चले जाते हैं)

(प्रस्तावना समाप्त)

(इसके बाद तीन पुत्रों और पत्नी के साथ वृद्ध ब्राह्मण और उसके पीछे-पीछे घटोत्कच का प्रवेश)

ब्राह्मण—अरे ! यह कौन है ?

जिसके कचकलाप मध्याह्न कालिक सूर्य के समान अस्त व्यस्त बिखरे हुये हैं, जिसके दोनों भ्रूभाग चमकीले हैं और नेत्र विशाल तथा पीतवर्ण के हैं, एवं कण्ठ में लटकता स्वर्ण सूत्र ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो बादल समूहों में विद्युल्लता चमक रही हो । इतना ही नहीं इसकी आकृति प्रलयकालीन रुद्र की प्रतिमा जैसी भयानक दिखाई पढ़ रहा है (जिससे हमारा धैर्य छूट रहा है) ।।४।।

---

[1] ब्राह्मणः—इति वा पाठः । [2] अरुण.-इति वा पाठः ।

प्रथमः—भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षा
कनककपिलकेशः[1] पीतकौशेयवासाः ।

भृकुटिपुटीज्ज्वलंपिङ्गलायताक्षः भृकुटिपुटयोः=भ्रूसंपुटयोः उत्=ऊर्ध्वम् ज्वलम्=दीप्तिर्यस्मिन् तत् तादृशम् पिङ्गलं=पीतवर्णम्, आय तम्=विस्तृतम् च अक्षि–नेत्रम् यस्य सः । सकण्ठसूत्रः कण्ठे परिहितं सूत्रम्=कण्ठसुत्रम् तेन सहितः–वर्त्तमानसकण्ठसूत्रः । स तडित् तडिता=विद्युता सह वर्त्तमानः सतडित् । मेघः=जलदः । इव=यथा । युगनि–धने=युगान्तकाले । हरस्य=विश्वसंहरणेच्छोः शिवस्य प्रतिमाकृतिः प्रतिमा=सदृशौ आकृतिः आकारो यस्य सः एवंविधः कः इति शेषः अत्रोपमालङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।।४।।

ब्राह्मणस्य संदेहानन्तरं तस्य ज्येष्ठः पुत्रोऽपि संदिहानस्तस्याकृतिमनुवर्णयति–

अन्वयः–ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षाः कनककपिलकेशः पीतकौशेयवासाः तिमिरनिवहवर्णः पाण्डुरोद्वृत्तदंष्ट्रः लीयमानेन्दुलेखः नवः जलगर्भ इव अयं कः इति शेषः ।।५।।

ग्रहेति—ग्रहयुगलनिभाक्षः ग्रहयोः=सूर्यचन्द्रमसोः युगलम्=द्वन्द्वम् तन्निभे=तत्सदृशे अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः=सूर्यचन्द्रवद्भास्वरनयन इत्यर्थः । पीनविस्तीर्णवक्षाः पीनम्=स्थूलम् । विस्तीर्णम्=विशालम् वक्षः=उरःस्थलं यस्य सः । कनककपिलकेशः कनकम्=सुवर्णम् इव कपिलः=कपिशः=पीतः केशः=कुन्तलो यस्य सः पीतकौशेयवासाः पीतं कौशेयम् ।

प्रथम—हे पिताजी ! वास्तव में यह कौन है ?

जिसकी आँखें ग्रहयुगल (सूर्य और चन्द्रमा) के समान प्रभापूर्ण है, वक्षःस्थल विशाल एवं पुष्ट है, केश सुवर्ण के समान चमकीले हैं, जिसने

---

[1] कमलकपिशकेशः इति वा पन्ठः अत्र कपिशशब्दः कृष्णपीतवाचो ।

तिमिरनिवहवर्णः पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रो
नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ।।५।।

द्वितीयः—क एष भोः ।

कलभदशनदंष्ट्रो लाङ्गलाकारनासः
करिवरकरबाहुर्नीलजीमूतवर्णः ।

क्षौमम् वासः=दुकूल यस्य सः धृतपीतवस्त्र इत्यर्थः । तिमिरनिवहवर्ण; तिमिरस्य=तमसः; निवहः=स्तोमस्तद्वत् वर्णम्=रूपं यस्य सः=तमस्तोमनीलवर्णः इत्यर्थः । पाण्डुरोद्वृत्तदंष्ट्रः पाण्डरा=अतिधवला उद्वृत्ता–ऊर्ध्वगता दंष्ट्रा=दशनं यस्य सः । लीयमानेन्दुलेखः लीयमाना=अन्तःतिरोहिता इन्दोः=चन्द्रस्य लेखा=कला यस्मिन् सः । नवः=नवीनः जलगर्भः जलं गर्भे यस्य सः=मेषः इव शोभमानोऽयं क इति शेषः । उप मालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।।५।।

अधुना द्वितीयः पुत्रः संदिहानस्तद्रूपं वर्णयति—

अन्वयः—कलभदशनदंष्ट्रः लाङ्गलाकारनासः करिवरकरबाहुः नीलजीमूतवर्णः हुतहुतवहदीप्तः यः त्रिपुरनिहन्तुः शङ्करस्य भीमः रोषः इव स्थितः भाति ।।६।।

कजमेति—कलभदशनदंष्ट्रः कलभस्य=हस्तिशावकस्य दशन इव किञ्चिदुद्भिन्ना दंष्ट्रा यस्य सः तादृशः । लाङ्गलाकारनासः लाङ्गलस्य=हलस्य आकार इव नासा=नासिका यस्य सः । करिवरकरबाहुः करिबरस्य=

रेशमी वस्त्र धारण किया है, तथा जिसका स्वरूप अन्धकार समूह जैसा घना और काला है इतना ही नहीं जिसके चमकीले सफेद दाँत जो मुँह से बाहर निकले हुये हैं ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों नवीन मेघसमूह में चन्द्रकला निमज्जित हो रही हो ।।५।।

दूसरा कुमार—अरे यह कौन हैं ?

जिस्के दाँत हस्तिशावक के समान छोटे-छोटे और पतले बाहर निकले हुये हैं, हल की भाँति जिसकी नासिका है, गजराज के शुण्ड के समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजायें हैं, जिसके शरीर का वर्ण नील जलद जैसा काला है और

हुतहुतवहदीप्तो यः स्थितो भाति भीम-
स्त्रिपुरपुरनिहन्तुः शङ्करस्येव रोषः ।।६।।

तृतीयः—भोस्तात ! को नु खल्वयमस्मान् पीडयति ।

वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्त्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ।।७।।

मत्तमतङ्गजस्य करः=शुण्डादण्ड एव बाहू=भुजौ यस्य सः । नीलजीमूतवर्णः नीलश्चासौ जीमूतस्तस्य वर्ण इव वर्णो यस्य सः=नीलमेघः । हुतहुतवहदीप्तः हुतः=आहुत्या वर्धमानः यः हुतवहः=अग्निः तद्वत् दीप्तः=प्रकाशितः । यः=पुरो वर्त्तमानः । त्रिपुरनिहन्तुः=त्रिपुरान्तकस्य । हरस्य=शंकरस्य । भीमः=भयङ्करः रोषः=क्रोधः । इव=यथा । स्थितः । भाति=शोभते । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।।६।।

तृतीयःसंदिहानः सन्नुपशङ्कते—

अन्वयः—अचलेन्द्राणां वज्रपातः सर्वपतत्त्रिणाम् श्येनः मृगसंघानां मृगेन्द्रः अयं मृत्युः पुरुषविग्रहः दृश्यते ।।७।।

वज्रपात इति—अचलेन्द्राणाम्=गिरिराजानाम् कृते इति शेषः । वज्रपातः-वज्रधातः सर्वपतत्त्रिणाम्=सर्वपक्षिणाम् कृते श्येनः=पक्षिविशेपः । मृगसंघानाम्=पशुसमूहानां कुते मृगेन्द्रः सिंह इव अयं=पुरोवर्त्ती प्राणी । मृत्युः=यमराजः । पुरुषविग्रहः-पुरुषाकृति । दृश्यते । अतोऽयम् क इति शेषः । मालारूपकालङ्कारः । अनुष्टुव्वृत्तञ्च ।।७।।

जो प्रज्वलित अग्नि के समान धधकता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानों त्रिपुरदाहक शङ्कर जी का मूर्तिमान् भयंकर क्रोध हो ।।६।।

तृतीय कुमार—हे तात ! यह कौन है जो हम लोगों को इस प्रकार कष्ट दे रहा है ।

यह पर्वतसमूहों के लिये वज्रपात जैसा, सभी पक्षियों के लिए वाज जैसा तथा पशुसमूहों के लिए सिंह जैसा, कि बहुना यह मृत्यु ही है जो साक्षात् पुरुष का शरीर धारण किये उपस्थित है ।।७।।

ब्राह्मणो–अय्य ! को एसो अम्हाअं सन्दावेइ ।

(आर्य ! क एषोऽस्मान् सन्तापयति)

घटोत्कचः–भो ब्राह्मण ! तिष्ठ तिष्ठ ।

किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो
वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! ।
तार्क्ष्याग्रवक्षपवनोद्धतरोषवह्नि–
तीव्रः कलत्रसहितो भुजगो यथार्तः ।।८।।

संतापयति=नितरा संपीडयति ।

घटोत्कचः सानुक्रोशं तेषां गमनं निरुन्धन्नाह—

अन्वयः–तार्क्ष्याग्र्यपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रः कलत्रसहितः आर्त्तः भुजगः यथा वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! मद्भयविनाशितधैर्यसारः (एवं भूतः) त्वं किं यासि ।।८।।

किमिति–तार्क्ष्याग्र्र्यपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रः तार्क्ष्यस्य-गरुडस्य अग्र्यपक्षाभ्याम्=पुरोवर्त्तिपक्षाभ्याम् जनितो यः पवनः अनिला स एव उद्धतः=प्रचण्डः रोषवह्निः=क्रोधाग्निस्तेन तीव्रः उत्तेजितः । कलत्रसहितः=सपत्नीकः । आर्त्तः=उद्विग्नः । भुजगः=सर्षः यथा=इव । वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते वित्रस्तानां=भीतानाम्, दाराणाम् सुतानां च रक्षणे–संत्राणे हीना=क्षीणा शक्तिः—सामर्थ्य यस्य तत्सबुद्धौ । मद्भयविनाशितधैर्यसारः मत्=अस्मात् सकाशात् जातो यः भयस्तेन नाशितः=क्षपितः धैर्यस्य=स्थिरतायाः सारः बलं यस्य सः एवं भूतस्त्वम् किं यासि–

ब्राह्मणी—आर्य ! यह कौन है जो हम लोगों को पीड़ित कर रहा है ।

घटोत्कच—अरे ब्राह्मण ! वहीं खड़े रहो । खड़े रहो ।

डर जाने के कारण अपनी पत्नी तथा लड़कों की रक्षा करने में असमर्थ से दिखाई पड़नेवाले हे ब्राह्मण ! मेरे भय से तुम्हारा सारा धैर्य नष्ट हो चुका है, फिर भी गरुड़ के पङ्खे के अग्रभाग से जिसकी क्रोधाग्नि पूर्ण प्रचण्डरूप से प्रज्वलित हो गई है ऐसे सपत्नीक सर्प की भाँति तुम आर्त्त होकर भागे जा रहे हो । हे ब्राह्मण ! न जाओ न जाओ ।।८।।

भी ब्राह्मण ! न गन्तव्यं, न गन्तव्यम् ।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, पुत्रकाः । न भेतव्यम् । सविमर्शा ह्यस्य वाणी ।

धटोत्कचः—भोः । कष्टम् । (स्वगतम्)

जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।
अकार्यमेतच्च मयाद्य कार्य मातुर्नियोगादपनीतशङ्कम्[1] **।।९।।**

कथं गच्छसि ? उपमालङ्कारा । वसन्ततिलकावृत्तम् ।।८।।

सविमर्शा=विवेकयुक्ता । सकरुणात्वेन नात्यन्तोद्वगकारिणीत्यर्थः ।

इदानीं धर्मपिक्षया मातुर्वचनस्य महत्त्वातिशायित्वं प्रतिपादयदिघटोत्कचः—

अन्वयः—द्विजोतमाः पृथिव्यां सदा सर्वत्र च पूज्यतमाः इति अहं जानामि नाम । किं तु मातुः नियोगात् शङ्काम् अपनीय अद्य मया एतद् अकार्य च कार्यम् ।।९।।

जानामीति—यद्यपि द्विजोतमाः=प्रशस्तब्राह्मणाः । पृथिव्यां—भुवि । सदा=शश्वत् । सर्वत्र=सर्वस्मिन्नपि काले । पूज्यतमाः=अतिशयेन पूज्याः तेषां वधे दोषः इत्यहं जानामि=वेद्मि । नाम इति निश्चये प्रसिद्धौ च । तथापि मातुः=जनन्याः हिडिम्बायाः नियोगात्=आदेशात् शङ्काम्=संदेहम् । अपनीय= अपास्य । अद्य=सांप्रतम् । मया—घटोत्क चेन । एतद् । अकार्यम्=गर्हितमपि

वृद्ध—हे ब्राह्मणि ! तुम मत डरो । पुत्रों ! तुम्हें भी नहीं डरना चाहिये । इसकी वाणी विवेकयुक्त प्रतीत हो रही है ।

घटोत्कच—ओह ! बड़ा कष्ट है ।

मैं यह जानता हूँ कि श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वत्र पृथ्वी में सर्वदा पूजनीय है फिर भी माता की आज्ञा से बिना किसी प्रकार के संदेह किये सर्वथा न करने योग्य यह ब्राह्मणवधरूप कार्य आज मुझे करना है ।।९।।

---

[1] 'अपनीय शङ्काम्' इति वा पाटः ।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! किं न स्मरसि तत्रभवतां जलक्लिन्वेन मुनिनोक्तम्-अनपेतराक्षसमिदं वनमप्रमादेन गन्तव्यमिति । तदेवोत्पन्नं भयम् ।

ब्राह्मणी—किं दाणि अय्यो मज्झत्थवण्णो विअ दिस्सदि ।
(किमिदानीमार्यो मध्यस्थवर्ण इव दृश्यते) ।

वृद्धः—किं करिष्यामि मन्दभाग्यः ।

ब्राह्मणी—णं विक्कोसामो । (ननु विक्रोशामः) ।

प्रथमः—भवति ! कस्य वयं विक्रोशामः ।

कार्यम्=करणीयमेवास्ति । अत्र घटोत्कचे ब्राह्मणवधेन संभावितो दोषः मातुर्भक्त्या चाकार्यकरणाध्यवसायश्चेत्युभये प्रतीयेते । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः संयोगादुपजातिनामकं वृत्तम् ॥९॥

जलक्लिन्नेन=जलनिमग्नेन । अप्रमादेन=सावधानतया । तदेव=मुन्युक्तेः अनुसारेण । मध्यमवर्णः मध्यमः=मध्यस्थः त्रिषु वर्णेषु मध्यगतः वर्णः क्षत्रियः स इव । शरीव्यवहारित्वात् । यद्वा मध्यस्थस्य=उदासीनस्य इव वर्णाः=छाया यस्य सः । उपस्थितविपत्प्रतीकारयत्नाकरणात् वा गणपतिशास्त्रिमहोदयैर्व्याख्यातः ।

वृद्ध ब्राह्मण—हे ब्राह्मणि ! क्या तुम्हें स्मरण नहीं है कि उन आदरणीय जलमग्न महर्षि ने कहा था कि यह वन राक्षसविहीन नहीं है अतः सतर्कता से जाना चाहिये । फिर भी यहाँ यह भय उपस्थित हो ही गया ।

ब्राह्मणी—इस समय आर्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ क्षत्रिय के समान तटस्थ (उदासीन) जैसे दिखाई पड़ रहे है । (रक्षा के लिये कोई यत्न कीजिये) ।

वृद्ध—इस समय मैं अभागा क्या कर सकता हूँ ।

ब्राह्मणी—तो हम सब मिलकर क्यों न जोर से चिल्लाकर किसी को रक्षा के लिये बुलायें ?

प्रथमकुमार—माँ ! हम लोग चिल्लाकर यहाँ किसे बुलावे ?

इदं हि शून्यं तिमिरोत्करप्रभै-
र्नगप्रकारैरवरुद्धदिक्पथम् ।
खगैर्मृगैश्चापि समाकुलान्तरं
वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम् ।।१०।।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, न भेतव्यम् । मनस्विजननिवासयोग्यमिति

इदानीं रक्षणार्थ कस्यचिदाह्वानमपि अरण्यरोदनवत् प्रतीयत इत्युपपादयति—

अन्वयः–हि इदम् वनम् शून्यं तिभिरोत्करप्रभैः नगप्रकारैः अवरुद्धदिक्पथम् खगैः मृगैः चापि समाकुलान्तरं मनस्विनाम् निवासाभिमतम् ।।१०।।

इदमिति—हि इदम्=पुरो वर्त्तमानम् । वनम्=अरण्यम् । शून्यम्=जनरहितम् । तेन कस्यचिदाह्वानमप्यरण्यरोदनमेवेत्यर्थ । तिमिरोत्करप्रभैः तिमिरस्य–अन्धकारस्य उत्करः=स्तोमः तद्वत् प्रभा=कान्तिर्येषां तैः । नितान्तश्यामलशरीरैः । नगप्रकारैः=पादपप्रकारैः । विभिन्नपर्वतैर्वा । अवरुद्धदिक्पथम् । अवरुद्धः=समावृतः दिशाम् पन्थाः यस्मिन् तादृशम् । खगैः=पक्षिभिः, मृगैः=अरण्यपशुभिः च । समाकुलान्तरम् समः=सम्यक्तया आकुलम्=परिपूर्णम् अन्तरम्=अन्तरालभागो यस्य तत् तादृशम् । निवासाय अभिमतम् भवतीति शेषः मनस्विनाँ निवासयोग्यमिदं वनं न सर्वेषाभिति भावः । अत्र पूर्वपूर्ववाक्यैरुत्तरवाक्यस्य समर्थनं तेन काव्यलिङ्गालङ्कारः । वंशस्थवृत्तं च ।।१०।।

नातिदूरेण=सन्निकटेन ।

यह वन सर्वथा निर्जन है । इसकी चारों दिशायें घोर अन्धकार उत्पन्न करने वाले विविध वृक्ष समूहों से धिरी हुई है । इसका अन्तःप्रदेश भी पशु-पक्षियों से व्याप्त है । यह तो तपस्वियों के निवास योग्य हैं । अतः यहाँ चिल्लाना अरण्यरोदनवत् होगा ।।१०।।

वृद्ध—है ब्राह्मणि ! हम लोगों को डरना नहीं चाहिये । मुनिजनों के

श्रुत्वा विगत इव ये सन्त्रासः। शङ्के नात्रातिदूरेण[1] पाण्डवाश्रमेण भवितन्यम्। पाण्डवास्तु,

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च
दौनेषु रुक्षपतिताः कृतसाहसाश्च।
एवं विधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां
दण्ड़ं यथार्हमिह धारगितुं समर्थाः ।।११।।

अस्मिण्अरण्ये सन्निकटे एव पाण्ड्याश्रमेण भवितव्यमिति विज्ञाय तेषां शरणागतरुक्षणप्रवणतामुपपादयति—

अन्वयः—(ते पाण्डवाः) युद्धप्रियाः च शरणागतवत्सलाः च दीनेषु पक्षपतिताः कृतसाहसाः च किं च इह एवंविधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां यथार्ह दण्डं धारयितुं समर्थाः च ।।११।।

युद्धेति—ते=पाण्डवाः युद्धप्रियाः युद्धम् विग्रहं प्रियम् येषां ते=रणरसिकाः। शरणागतवत्सलाः शरणे आगतेषु जनेषु वत्सलाः=स्निग्धमानसाः। अत्र सर्वत्र चकारत्रयस्योक्तिः समप्राधान्यप्रतिपादनार्थमु क्तम्। दीनेपु—असहायेषु। पक्षपतिताः=पक्षपातवन्तः। कृतसाहसाः कृतम्=विहितं साहसम्=उद्योगं यैस्ते तादृशाः किं च इह=लोके। एवंविदप्रतिभयाकृतिचेष्टितानाम् एवंविधम् प्रतिभयं=भयंकरम् आकृतिः=स्वरूपं चेष्टितं=व्ययसायं च येषां तेषाम्। यथार्हम्=यथोचितम्। दण्डम् धारयितुम्=ग्राहयितुम्। समर्थाः सशक्ताः च सन्ति। ते पाण्डवा एवैतादृश क्रूरकर्मणां समुचितदण्डप्रदाने समर्थाः सन्ति। अतः तेषां

निवास योग्य यह भूमि है यह सुनकर मेरा भय विनष्ट हो गया। मैं विचार करता हूँ कि यही कहीं सन्निकट में पाण्डवों का आश्रम होना चाहिये। वे पाण्डव तो युद्धप्रिय, शरणागतवत्सल, दीनों के पक्षपाती तथा बड़े साहसी हैं। वे इस प्रकार की भयानक आकृति वालों तथा भयानक कर्म करनेवालों को उचित दण्ड देने में सर्वथा समर्थ हैं ।।११।।

---

[1] 'न चातिबूरेण' इति वा पाठः।

प्रथमः—भोस्तात ! न तत्र पाण्डवा इति मन्ये ।

वृद्धः—पुत्र ! कथं त्वं जानीषे ।

प्रथमः—श्रुतं मया तस्मादाश्रमादागतेन केनचिद् ब्राह्मणेन कथितं–शतकुम्भं नाम यज्ञमनुभवितुं महर्षेर्धौम्यस्याश्रमं गता इति ।

वृद्धः—हन्त, हताः स्मः ।

प्रथमः—तात ! न तु सर्व एव । आश्रमपरिपालनार्थमिह स्थापितः किल मध्यमः ।

वृद्धः—यद्येवं, सन्निहिताः सर्वे पाण्डवाः ।

समाह्वानमेवास्मद्विधब्राह्मणानां संत्रासनिरासायोलम् भवेदित्यर्थः । साभिप्रायविशेषणेन परिकरालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तं च ॥११॥

अनुभवितुम्=अनुष्ठानं कृतवतः । वेलायाम्=काले । व्यायामपरिचर्यार्थम्=व्यायामविधानार्थम् । विप्रकृष्टदेशस्थः विप्रकृष्टे दूरस्थे देशेतिष्ठतीति तादृशः । व्यापाश्रयिष्ये=निवेदयिष्ये । निर्वेदप्रत्यर्थिनी निर्वेदः विरागः प्रत्यर्थम् अस्ति अस्या=शान्त्यभिलाषुका । प्रार्थना=याञ्चा । खलु=निश्चये । समयतः=प्रतिबन्धतः । समयः=प्रतिबन्धः उपवासनिसर्गार्थम्=उपवासपारणार्थम् ।

प्रथम कुमार—पिता जी ! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वहाँ पाण्डव नहीं हैं ।

वृद्ध—पुत्र ! तुम ऐसा कैसे जानते हो ?

प्रथम कुमार—उनके आश्रम से आते हुये किसी ब्राह्मण के द्वारा कहते हुये हमने सुना था कि वे शतकुम्भ यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये महर्षि धौम्य के आश्रम में गये हुये हैं ।

वृद्ध—हाय ! तब तो हम सभी मारे गये ।

प्रथम कुमार—पिता जी ! वे सभी नहीं गये हैं उन्होंने आश्रम की रक्षा के लिये संभवतः मध्यम पाण्डव को यहीं नियुक्त किया है ।

वृद्ध—यदि ऐसा है तो सभी पाण्डवों को यही पास में समझो ।

प्रथमः—स चाप्यस्यां वेलायां व्यायामपरिचार्यार्थं विप्रकृष्टदेशस्थ इति श्रूयते

वृद्धः—हन्त, निराशाः स्मः । भवतु, पुत्र ! व्यपश्रयिष्ये[१] तावदेनम् ।

प्रथमः—अलमलं परिश्रमेण ।

वृद्धः—पुत्र ! निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना । भवतु, पश्यामस्तावत् । भोः पुरुष ! अस्त्यस्माकं मोक्षः ?

घटोत्कचा—मोक्षोऽस्ति समयतः ।

वृद्धः—कः समयः ?

घटोत्कचः—अस्ति मे तत्रभवती जननी । तयाऽहमाज्ञप्तः—पुत्र ! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः [२]परिमृग्यानेतव्य इति । ततो मयाऽऽसादितो भवान् ।

प्रथमकुमार—वह भी इस समय व्यायाम का अभ्यास करने के लिये दूर स्थान में गये हुये हैं ऐसा हमने सुना है ।

वृद्ध—हाय ! तब तो आशा नहीं है । अच्छा पुत्र ! तब तक हमलोग इसी से प्रार्थना करें ।

प्रथमकुमार-बस-बस ! परिश्रम व्यर्थ है ।

वृद्ध—प्रार्थना का फल शान्ति (इसके द्वारा अपनी मुक्ति) है । अच्छा तब तक देखें । हे पुरुष ! क्या हम लोगों का मोक्ष तुम्हारे द्वारा संभव हैं ?

धटोत्कच—हाँ एक शर्त्त पर ।

वृद्ध—वह शर्त्त क्या हैं ?

घटोत्कच—मेरी आदरणीया माता हैं । उन्हीं ने मुझे आज्ञा दी है कि पुत्र ! मेरे उपवास के पारण के लिये इस वनप्रदेश से किसी मनुष्य को खोज कर लाओ । सो आप लोग इस समय मिल गये ।

---

[१]. 'व्यापाश्रयिष्ये' इति वा पाटः ।

[२]. 'प्रतिगृह्या.' इति वा पाठः ।

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि ।
बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ।।१२।।

वृद्धः—हं भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मणः ?

ब्राह्मणः[1] श्रुतवान् वृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम् ।

इदानीं धटोत्कचः एकपुत्रप्रदानेन द्विपुत्रो भार्यासहितो भवान् मोक्ष्यते इति समयं श्रावयति—

अन्वयः—यदि चारित्र्यशालिन्या पत्न्या सह द्विपुत्रस्त्वम् मत्तः स्वं मोक्षम् इच्छसि तदा बलाबलं परिज्ञाय एकं पुत्रं विसर्जय ।।१२।।

पत्न्येति—हे वृद्ध ब्राह्मण ! यदि चारित्र्यशालिन्या चारित्र्येण=सदाचारेण शाल्यते=शोभते या सा तथा=पतिव्रसया । पत्न्या=धर्म=भार्यया । सह=साकम् । द्विपुत्रः द्वौ पुत्रौ यस्य सः तादृशः त्वम् मत्तः=मोक्षम्=मुक्तिम् । इच्छसि—वाञ्छसि । तर्हि बलाबलम्=प्रियाप्रियम् पुत्रैकप्रदानेन जीवनरक्षणमन्यथा मरणं वरमिति पक्षद्वयमित्यर्थः । परिज्ञाय=विचार्य । एकं पुत्रम्=त्रयाणां मध्ये कश्चिदेकम् । विसर्जय=मह्यं देहीत्यर्थः । अत्र यदि बलवते मह्यमेकं पुत्रं प्रदास्यसि तदा भायसिहितः द्विपुत्रस्त्वं मत्तो रक्षणं प्राप्स्यसि अयमेव समयः । अतः त्रयाणाँ कश्चिदेकं परित्यजेति भावः । अनुष्टुव्वृत्तम् ।।१२।।

राक्षसापसद=नीचराक्षस ।

धटोत्कचकृतं समयं श्रुत्वा ब्राह्मणस्तं धर्षयति । यदेतादृशं क्रूरकर्माब्राह्मण एवं कर्त्तु शक्नोति नाहं तथेत्युपपादयति—

अन्वयः—अहं वृद्धः श्रुतवान् ब्राह्मणः । अतः शीलगुणान्वितं पुत्र

यदि तुम अपनी पतिव्रता पत्नी तथा दो पुत्रों सहित छुटकारा चाहते हो तो इन पुत्रों में किसी से एक को अच्छे-बुरे का विचार कर हमें प्रदान करो ।।१२।।

वृद्ध—अरे क्रूरकर्मा राक्षस ! दूर हट । क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ।

मैं एक शास्त्रज्ञ वृद्ध ब्राह्मण हूँ । भला अपने शीलगुण संपन्न पुत्र को

---

[1] 'किमहम्' इति वा पाठः ।

पुरुषादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ।।१३।।

घटोत्कचः—

यद्यर्थितो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रमेकं न मुञ्चसि ।
सकुटुम्बः क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ।।१४।।

पुरुषादस्य दत्त्वा कथं निर्वृतिम् आप्नुयाम् ।।१३।।

ब्राह्मण इति अहम् वृद्धः=स्थविरः । श्रुतवान्=शास्त्रज्ञः । ब्राह्मणः=तपसा श्रुतेन जात्या च जातः । शीलगुणान्वितम् शीलं च गुणश्च शीलगुणौ ताभ्यामन्वितः तम् । एतादृशं पित्रोः सेवकम् पुत्रं=तनयम् । पुरुषादस्य पुरुषमत्तीति पुरुषादस्तस्य=राक्षसस्य । दत्त्वा । कथं=केन-प्रकारेण निर्वृतिम्=सुखम् शान्तिम् । आप्नुयाम्=लभेय । यतो ब्राह्मणकुले जातोऽहमतो न ते पुत्रप्रदानविषयको समयः मह्यम् रोचते । शीलगुणोपेतस्य पुत्रस्य पुरुषादकृते दानासामर्थ्यादिति भावः । परिकरालङ्कारः । अनुष्टुव्वृत्तम् ।।१३।।

ब्राह्मणवचनं श्रुत्वा घटोत्कचस्तं संबोधयति—

अन्वयः—हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि अर्थितः सन् एकं पुत्रं न मुञ्चसि तर्हि क्षणेनैव सकुटुम्बः विनाशम् उपयास्यसि ।।१४।।

यदीति—हे द्विजश्रेष्ठ द्विजेषु श्रेष्ठस्तत्संबुद्धौ=विप्रवर । यदि=चेत् । अर्थितः=याचितः सन् । एकम्=त्रयाणां मध्ये केवलमेकसंख्याकम् । पुत्रं=सूनुम् । न मुञ्चसि=नार्पयसि । तर्हि क्षणेनैव=निमेषमात्रेणैव । सकुटुम्बः=परिवारसहितः । विनाशम्=कथाशेषम् । उपयास्यसि=लप्स्यसे । समयपालने एकपुत्रहानिः । अपालने सपरिवारविनाशः इति पक्षद्वये कतमो ज्यायानिति त्वमेव विचारयेत्यर्थः । अनुष्टुव्वृत्तम् ।।१४।।

एक मानवभक्षी राक्षस के लिये देकर किस प्रकार सुखी रहूंगा ? ।।१३।।

घटोत्कच—हे द्विजोत्तम ! यदि तुम मेरे द्वारा माँगे जाने पर अपने एक पुत्र को नहीं दोगे तो शीघ्र ही कुटुम्ब सहित विनाश को प्राप्त करोगे ।।१४।।

वृद्धः—एष एव मे निश्चयः—

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम्।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी हौष्यामि विधिसंस्कृतम् ।।१५।।

ब्राह्मणौ—अय्य ! मा मा एवं। पदिमत्तधम्मिणी पदिव्वदत्ति णाम। गहीदफलेण एदिणा सरीरेण अय्यं कुलं अ रक्खिदुमिच्छामि। (आर्य ! मा मैवम्। पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रवेति नाम। गृहीत-

---

ब्राह्मण इदानीं स्वनिश्चयं श्रावयति—

अन्वयः—सुतापेक्षी परिणामेन जर्जरम् विधिसंस्कृतम् कृतकृत्यं मे शरीरम् राक्षसाग्नौ होष्यामिः ।।१५।।

कृतकृत्यमिति—सुतापेक्षी सुतस्यापेक्षाऽस्ति अस्येति सुतापेक्षी=सुतार्थी। परिणामेन=परिणमयतीति परिणामस्तेन=परिपाकेन गतवयसेत्यर्थः जर्जरम्=शिथिलीभूतम् अनर्थकमित्यर्थः। विधिसंस्कृतम् विधिना=अनुष्ठानेन संस्कृतम्=पूतम्। कृतकृत्यम्=कृतार्थम् सफलमिति यावत्। मे=मम वृद्धस्य। शरीरम्=वपुः। राक्षसाग्नौ राक्षस एवाग्निः राक्षसाग्निः तस्मिन् राक्षसाम्नौ=राक्षसानलमुखे। होष्यामि=प्रक्षेप्स्यामि। पुत्ररक्षार्य अहमेव अनर्थकं जरठम् इदम् स्वशरीरम् तव मुखे होष्यामीत्येव मे निश्चयः। राक्षसाग्नौ इत्यत्र रूपकम्। अनुष्टुव् वृत्तम् ।।१५।।

पतिमात्रधर्मिणी पतिमात्रं धर्मः अस्मि अस्याम्। गृहीतफलेन गृहीतं फलम् पुत्रादिरूप येन तादृशेन। अभिमतः=अभीष्टः। तत्रभवत्या=मम मात्रा। अनुगमिष्यामि=अनुगच्छामि। अपसर=दूरं गच्छ।

वृद्ध—मैंने भी तो यही निश्चय किया है।

अपने पुत्रों की रक्षा के लिये मैं स्वयं अपने संस्कारयुक्त पवित्र शरीर को राक्षस की क्षुधा रूपी अग्नि में आहुति दे दूँगा क्योंकि इस शरीर से अपना सारा कर्त्तव्य पूरा कर लिया है और अब यह वृद्धावस्था के कारण जर्जर भी हो चुका हैं ।।१५।।

ब्राह्मणी—आर्य ! आप ऐसा न कहें। पतिव्रता के लिये तो पति ही धर्म है अतः पुत्ररूपफल से कृतकृत्य हो जाने के कारण मैं आर्य की तथा पुत्रों

फलेनैतेन शरीरेणार्य कुलं च रक्षितुमिच्छामि)।

घटोत्कचः—भवति ! न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्याः।

वृद्धः—अनुगमिष्यामि भवन्तम्।

घटोत्कचः—आः ! वृद्धस्त्वमपसर।

प्रथमः—भोस्तात ! ब्रवीमि खलु तावत् किञ्चित्।

वृद्धः—पुत्र ! कथय।

प्रथमः—

मम प्राणैर्गुरुप्राणानिच्छामि परिरक्षितुम्।
रक्षणार्थं कुलस्यास्य मोक्तुमर्हति मां भवान्।।१६।।

घटोत्कचाभिप्रायमवबुध्य ज्येष्ठः स्वपितरमनभिमुखीकर्त्तुमना आह—

अन्वयः—अहं मम प्राणैः गुरुप्राणान् परिरक्षितुम् इच्छामि। अतः भवान् अस्य कुलस्य रक्षणार्थम् माँ मोक्तुमर्हति ।।१६।।

ममेति—अहम्। मम-–मे प्रथमस्य। प्राणैः–असुभिः। गुरुप्राणान् गुरूणाम्=पित्रादीनाम् प्राणान्=असून्। परिरक्षितुम्=परित्रातुम्। इच्छामि=वाञ्छामि। अतः भवान्=मे जनकः। अस्य कुलस्य वंशस्थ। रक्षणार्थम्=संत्राणार्थम्। माम्=प्रथमं ज्येष्ठं पुत्रम्। मोक्तुम् त्यक्तुम्। अर्हति=सक्षमो भवति। मत्परित्यागेन सर्व स्वकुलं रक्षतु भवानिति भावः। अनुष्टुव् वृत्तम् ।।१६।।

की रक्षा के लिये अपनेआपको राक्षस के लिये देना चाहती हूँ।

घटोत्कच—देवि ! मेरी पूज्या माता को स्त्री की आवश्यकता नहीं हैं।

वृद्ध—तो मैं ही आप के साथ चलूँगा।

घटोत्कच—अरे तुम वृद्ध हो। तुम्हारी आवश्यकता नहीं हैं, दूर हटो।

प्रथमकुमार—पिताजी! मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

वृद्ध—कहो कहो। शीघ्र कहो।

प्रथम—अपना प्राण देकर मैं गुरुजनों के प्राणों की रक्षा करना चाहता हूँ अतः इस कुल की रक्षा के लिये आप मुझे छोड़ दीजिये ।।१६।।

द्वितीयः—आर्य ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितृणां च सुसंप्रियः ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन्[1] ।।१७।।

तृतीयः—आर्यौ । मा मैवम् ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।

मध्यमः वदति—

अन्वयः—कुले लोके पितृणाम् ज्येष्ठः श्रेष्ठः सुसंप्रियः च । ततः गुरुवृत्तिम् अनुस्मरन् अहमेव यास्यामि ।।१७।।

ज्येष्ठ इति—भो जनक ! कुले=संसारे । पितृणां जनकानां ज्येष्ठः=ज्यायान् सुतः । श्रेष्ठः=श्रेयान् भवति । ज्येष्ठ पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः (द्र.मनु. ९-१०९) किञ्च-ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः । सुसंप्रियः=अनुरागभाक् । भवति । ततः=तस्मात् कारणात् गुरुवृत्तिम् गुरूणाम् वृत्तिम्=व्यवहारम् । अनुस्मरन्=स्मरणं कुर्वन् अहमेव=मध्यम एव । यास्याभि, अस्य मातुः पारणार्थमिति शेषः । ज्येष्ठेन जातमात्रेण पितृणामानृण्यं धर्मार्थे तस्याधिकारित्वादिति गुरुवृत्तिमनुस्मरन्नहमेव यास्यामीति भावः । अत्राप्यनुष्टुव् वृत्तम् ।।१७।।

अथ तृतीयो वदति—

अन्वयः—ज्येष्ठः भ्राता पितृसमः इति ब्रह्मवादिभिः कथितः ततः गुरूणां प्राणरक्षणम् कर्त्तुम् अहम् अर्हः अस्मि ।।१८।।

द्वितीय—आर्य ! आप ऐसा न कहें ।

कुल में तथा लोक में भी जेठा श्रेष्ठ माना जाता है और वह पितरों को प्रिय भी होता है इसलिए गुरुजनों के प्रति अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए मैं ही जाऊंगा ।।१७।।

तृतीय—दोनों आर्यो ! ऐसा नहीं ऐसा नहीं ।

जेठा भाई पिता के समान होता है ऐसा ब्रह्मऋषियों ने कहा है अतः मैं

---

[1] 'अनुस्मर' इति वा पाठः ।

ततोऽहं कर्तुमस्म्यर्हो गुरूणां प्राणरक्षणम् ।।१८।।

प्रथमः—वत्स ! मा मैवम् ।

आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण [1]तार्यते ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरूणां प्राणरक्षणात् ।।१९।।

ज्येष्ठ इति—ज्येष्ठः=अग्रजः । भ्राता=सहोदरः । पितृसमः=पित्रा समः पितृसमः=जनकतुल्यः इति ब्रह्मवादिभिः=वेदज्ञैः महर्षिभिर्मन्वादिभिः कथितः=उक्तः । तदुक्तम्–पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातृन् यवीयसः । पुत्रवच्चापि वर्त्तेरञ् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः (द्र. मनुस्मृति ९-१०८) ततः=तस्मात् कारणात् । गुरूणाम् श्रेष्ठानाम् । पितृणां ज्येष्ठभ्रातृणाम् च प्राणरक्षणम्=जीवनसंत्राणम् कर्त्तृम्=विधातुम् । अहम्=तृतीयः पुत्रः । अर्हः=योग्यः अस्मि । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।१८।।

प्रथमः वदति—

अन्वयः–हि पिता आपदं प्राप्तः ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ततोहमेव गुरूणां प्राणरक्षणात् यास्यामि ।।१९।।

आपदमितिं—हि=यतः । पिता=जनकः । आपदम्=विपतिं प्राप्तः । ज्येष्ठपुत्रेण ज्येष्ठश्चासौ पुत्रस्तेन=ज्येष्ठात्मजेन । तार्यते=पारं नीयते । ततः=तस्मात् कारणात् । गुरुणाम्=श्रेष्ठमातृपितृणाम् । प्राणरक्षणात्=जीवनत्राणहेतोः अहमेव=प्रथम एव । यास्यामि=गमिष्यामि राक्षणमुखे इति शेषः । अत्रानुष्टुव् वृत्तम् ।।१९।।

पित्रोरनिष्टः कस्येदानीं प्रियः इति—पितुः कृते ज्येष्ठः प्रियः मातुश्च कनिष्ठः प्रियः इति कथनेन ज्ञायते यज्ज्येष्ठकनिष्ठौ परित्यज्यान्येन गन्तव्यम् । अन्यथा पित्रोरनिष्टापत्तेः । तस्मान्ममैव गमन सर्वेभ्यो रोचते इत्याशय कनिष्ठस्य ।

अपने गुरुजनों की प्राणरक्षा के योग्य हूँ ।।१८।।

प्रथम—वत्स ! (प्यारे) ऐसा नहीं । ऐसा नहीं ।

पिता जी आपत्ति में पड़े हुये हैं । ज्येष्ठ पुत्र को ही उससे रक्षा करना कर्त्तव्य है । अतः इन पूज्यों की रक्षा के लिये मुझे ही जाना चाहिये ।।१९।।

---

[1] 'धार्यते' इति वा पाठः ।

वृद्धः—ज्येष्ठमिष्टतमं न शक्नोमि परित्यक्तुम्।

ब्राह्मणी—जह अय्यो जेट्ठमिच्छदि, तह अहं पि कणिट्ठमिच्छामि। (यथार्यो ज्येष्ठमिच्छशि, तथाहमपि कनिष्ठमिच्छामि)

द्वितीयः—पित्रोरनिष्टः कस्येदानीं प्रियः।

घटोत्कचः—अहं प्रीतोऽस्मि, शीघ्रमागच्छ।

द्वितीयः—

धन्यौऽस्मि यत् गुरुप्राणाः स्वैः प्राणैः परिरक्षिताः।
वन्धुस्नेहाद्धि महतः [१]कायस्नेहस्तु दुर्लभः ।।२०।।

गच्छन् द्वितीयः (मध्यमः) वदति—

अन्वयः—धन्यः अस्मि। यत् स्वैः प्राणैः गुरुप्राणाः परिरक्षिताः हि महतः वन्धुस्नेहात् कायस्नेहः दुर्लभः ।।२०।।

अन्य इति—अहं द्वितीयः धन्यः=सौभाग्यशाली अस्मि=भवामि यत्=यतः। स्वैः=स्वकीयैः। प्राणैः=जीवनैः। गुरुप्राणाः गुरूणां प्राणाः=पित्रोः ज्येष्ठस्य कनिष्ठस्य च भ्रात्रोः जीवनानि। परिरक्षिताः=परित्राताः हि=रुयतः। महतः=विशिष्टात्। वन्धुस्नेहात्=ज्ञातिप्रेमतः। कायस्नेहः=शरीरानु-

वृद्ध—ज्येष्ठ मुझे सबसे प्रिय है, इसलिये मैं उसे छोड़ने में असमर्थ हूँ।

ब्राह्मणी—जैसे आप ज्येष्ठ पुत्र को चाहते हैं वैसे मैं भी छोटे पुत्र को चाहती हूँ।

द्वितीय—इस समय भला कौन अपने माता-पिता का अनिष्ट चाहेगा—

घटोत्कच—तो मैं प्रसन्न हूँ। शीघ्र आओ।

दूसरा कुमार—आज मैं धन्य हूँ कि अपना जीवन देकर गुरुजनों के प्राणों की रक्षा करूँगा। क्योंकि महान् बन्धुस्नेह की अपेक्षा कायस्नेह दुर्लभ है जिस कायस्नेह को त्याग कर मैं अपने गुरुजनों को रक्षा करूँगा ।।२०।।

---

[१] 'कालस्नेहस्तु'—इति वा पाठः।

धटोत्कचः—अहो स्वजनवात्सल्यमस्य ब्राह्मणवटोः ।

द्वितीयः—भोस्तात ! अभिवादये ।

वृद्धः—एह्येहि पुत्र ।

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुत्सल ।।
अकृतात्मदुरावापं ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ।।२१।।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । अम्ब ! अभिवादये ।

रागः । दुर्लभः=दुःखेन लब्धुं योग्यः अप्राप्य इति भावः । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।२०।।

वृद्धब्राह्मणः प्रणमन्तं मध्यमं स्वसुतमभिनन्दयति—

अन्वयः—गुरुवत्सल ! स्वैः प्राणैः गुरुप्राणान् विनिमाय अकृतात्मदुरावापं ब्रह्मलोकम् अवाप्नुहि ।।२१।।

विनिमायेति=गुरुवत्सल गुरुषु वत्सलस्तत्संबुद्धौ=पूज्यजनानुरागशालिन् । स्वैः=स्वकीयैः । प्राणैः=असुभिः । गुरुप्राणान्=श्रेष्ठजनजीवनानि । विनिमाय=परस्परं विनिमयं कृत्वा । अकृतात्मदुरावापम् । अकृतात्मभिः=अजितेन्द्रियैः दुरावापम् दुःखेन अवाप्तुं योग्यम् अप्राप्यमित्यर्थः । ब्रह्मलोकम् 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं ममेत्युक्तेः । सत्यलोकमित्यर्थः । अवाप्नुहि=लभस्व । यतस्त्वया स्वप्राणान् प्रदाय स्वगुरुजनानां प्राणाः परिरक्षिताः ततः विष्णुपदं प्रयाहीति भावः । अनुष्टुव् वृत्तम् । अनुप्रासालङ्कारः ।।२१।।

घटोत्कच—अहा ! इस ब्राह्मणकुमार का परिवार स्नेह श्लाघनीय है ।

द्वितीय—हे पिता जी ! मैं अभिवादन करता हूँ ।

वृद्ध—आओ पुत्र ! आओ ।

हे गुरुभक्त पुत्र ! तुमने अपने प्राणों के बदले जो अपने पूज्यों के प्राणों की रक्षा की है इसलिये तुम्हें वह ब्रह्मलोक प्राप्त हो जो अजितेन्द्रिय एवं पापात्माओं के लिये सर्वथा दुर्लभ है ।।२१।।

द्वितीय—पिता जी कृतार्थ हुआ । माँ अभिवादन करता हूँ ।

ब्राह्मणी—जाद ! चिरं जीव (जात ! चिरं जीव)।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! अभिवादये।

प्रथमः—एह्येहि वत्स !

परिष्वजस्व गाढं मां परिष्वक्तः शुभैर्गुणैः।
कीर्त्या तव परिष्वक्ता भविष्यति वसुन्धरा।।२२।।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि।

तृतीयः—आर्य ! अभिवादये।

द्वितीयः—स्वस्ति।

अग्रजः तथानुयान्तं मध्यमं भ्रातरमाशीर्भिरभिनन्दयति–

अन्वयः–हे वत्स शुभैः गुणैः परिष्वक्तः (त्वं) मां गाढं परिष्वजस्व। इयं वसुन्धरा तव कीर्त्या परिष्वक्ता भविष्यति ।।२२।।

परीति—हे वत्स ! शुभैः=शोभनैः। गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः परिष्वक्ताः=समालिङ्गितः त्वम् माम्=अग्रजम्। गाढम्=धनम् निर्भरप्रेमभरं। परिष्वजस्व=आलिङ्गय। इयं वसुन्धरा=धनधान्यवती सर्वसहा पृथ्वी। तव=भवतः। कीर्त्या=यशसा। परिष्वक्ता=आलिङ्गिता भविष्यति=यास्यति। अनेन तव यशसा पृथ्वी परिपूर्णा भविष्यतीति भावः। अनुष्टुव् वृत्तम् ।।२२।।

परिमुषिताः=परिवञ्चिताः।

ब्राह्मणी—पुत्र ! चिरजीवी रहो। चिरजीवी रहो।

द्वितीय—कृतार्थ हुआ। आर्य मैं अभिवादन करता हूँ।

प्रथम—आओ प्रिय सहोदर ! आओ।

तुम शुभ गुणों से विभूषित हो। मुझे गाढ़ आलिङ्गन करो। तुम्हारे पुण्य यश से यह सारी पृथ्वी विभूषित होगी ।।२२।।

द्वितीय—कृतार्थ हुआ।

तृतीय—आर्य प्रणाम करता हूँ।

द्वितीय—कल्याण हो।

तृतीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

द्वितीयः—भोः पुरुष ! किञ्चिद् ब्रवीमि ।

घटोत्कचः–ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।

द्वितीयः—एतस्मिन् वनान्तरे जलाशय इव दृश्यते । तत्र मे प्रकल्पितपरलोकस्य पिपासाप्रतीकारं करिष्यामि ।

घटोत्कचः—दृढव्यवसायिन् । गम्यताम् । अतिक्रामति मातुराहारकालः । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—भोस्तात ! एष गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः)

वृद्धः—हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।

यस्त्रिशृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः ।

वृद्धः मध्यमे पुत्रे गते सति स्वमानसिकं खेदं व्यञ्जयन्नाह—

अन्वयः–यः तु मम वृद्धस्य मनोज्ञः वंशपर्वतः त्रिशृङ्गः आसीत् स मध्यमशृङ्गभङ्गेन मे मनः भृशं तपति ॥२३॥

यः तु=यो हि । मम वृद्धस्य । मनोज्ञः=कान्तः । वंशपर्वतः वंश एव = अन्वय एव पर्वतः = अचलः । त्रिशृङ्गः त्रीणि शृङ्गाणि= शिखराणि यस्मिन् तथाभूतः आसीत्=अभूत् । सः=पर्वतः । मध्यशृङ्ग-

---

तृतीय—अनुगृहीत हुआ ।

द्वितीय—हे पुरुष (घटोत्कच) ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

घटोत्कच—कही । जल्दी कहो ।

द्वितीय—इस वन में तालाब जैसा दिखाई पड़ रहा है । वहाँ जाकर परलोक यात्रा का इच्छुक मैं अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ ।

घटोत्कच—ओ सत्यप्रतिज्ञ ! जाओ । किन्तु मेरी माता के आहार की बेला बीत रही है । जल्दी आना ।

द्वितीय—हे पिता जी ! यह मैं जा रहा हूँ (इतना कहकर चला जाता है ।

वृद्ध—हाय हाय ! हम ठग लिये गये, ठग लिये गये ।

मेरा पर्वतरूपी उच्चवंश जो मनोज्ञ तीन पुत्ररूपी तीन शिखरों से

स मध्यश्रृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशण् ।।२३।।

हा पुत्रक ! कथं गत एव ।

तरुण ! तरुणतानुरूपकान्ते !
नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे ! ।
कथमिह गजराजदन्तभग्न-
स्तरुरिव यास्यसि पुष्पितो बिनाशम् ।।२४।।

भङ्गेन मध्यमश्चासौ शृङ्गः मध्यशृङ्गः=मध्यशिखरः तस्य भङ्गेन=विनिपातेन । मे=मम वृद्धस्य । मनः=मानसम् । भृशम्=अत्यन्तम् । तपति=भृशं दुःखयति । साङ्गरूपकालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥२३॥

मध्यमे गते विलपन्नाह वृद्धः ।

अन्वयः—तरुण तरुणतानुरूपकान्ते नियमपर ! अध्ययनप्रसक्त बुद्धे ! गजराजदन्तभग्नः पुष्पितः तरुः इव कथं विनाशं यास्यसि ॥२४॥

तक्ष्ण !=युवन् । तरुणतानुरूपकान्ते तरुणस्य भावः तरुणता तदनुरूपा कान्तिर्यस्य तत्संबुद्धौ=यौवनानुरूपसौन्दर्यशोभित नियमपर=सत्याहिंसादिनियमपालक ! अध्ययनप्रसक्तबुद्धे अध्ययने प्रसक्ता बुद्धिर्यस्य तत्संबुद्धौ=अध्ययनसंलग्नमते ! । गजराजदन्तभग्नः गजराजस्य=मत्तमतङ्गजस्य दन्तेन=रदेन भग्नः=विनाशितः । पुष्पितः=कुसुमितः । तरुः—पादपः इव । कथं=केन प्रकारेण । विनाशम्=नाशभावम् । यास्यसि=गच्छसि । पुष्पिताग्रावृत्तम् । तरुणतरुणेत्यत्रावृत्या यमकः । तारुण्यसंपन्नब्राह्मणकुमारस्य=पुष्पितवृक्षेण सह सादृश्यनिरूपणात् उपमालङ्कार ॥२४॥

युक्त था उसके मध्यशृङ्ग के टूट जाने से (मध्यम पुत्र के चले जाने से) मेरा मन सन्ताप को प्राप्त कर रहा है ॥२३॥

हाय पुत्र ! क्या चले ही गये ।

हे तरुण ! तुम युवावस्था की अपूर्व स्वाभाविक शोभा से मण्डित संयमः—नियम पर एवं स्वाध्याय में दत्तचित्त थे । पर अब गजेन्द्र के दन्ताधात से सुपुष्पित वृक्ष के समान किस प्रकार विनाश को प्राप्त होंगे ? ॥२४॥

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। अतिक्रामति मातुराहारकालः। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु दृष्टम्। भो ब्राह्मण। आहूयतां तव पुत्रः।

बृद्धः—आः, अतिराक्षसं खलु ते वचनम्।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति। मर्षयतु भवान् भर्षयतु। अयं मे प्रकृतिदोषः। अथ किन्नामा तव पुत्रः ?

वृद्धा—एतदपि न शक्यं श्रोतुम्।

घटोत्कचः—युक्तम्, भोः। ब्राह्मणकुमार। किन्नामा ते भ्राता ?

प्रथमः—तपस्वी मध्यमः।

धटोत्कचः—मध्यम इति सदृशमस्य। अहमेवाह्वयामि। भो मध्यम ! मध्यम शीघ्रमागच्छ।

(ततः प्रविशति भीमसेनः)

चिरायते=विलम्ब्यते। अतिक्रामति=व्यतीतो भवसि। अतिराक्षसम् अति=अतिशयितम् राक्षसम्=रक्षोजनोचितम् तादृशं वचनम् प्रकृतिदौषः=स्वभावजन्यापराधः।

घटोत्कच—यह ब्राह्मणकुमार अवश्य ही विलम्ब कर रहा है। इधर माता के आहार का समय बीत रहा है। अतः क्या करना चाहिये ? अच्छा उपाय सूझा—हे ब्राह्मण ! अपने पुत्र को बुलाओ।

वृद्ध—आह ! तुम्हारे वचन तो राक्षस के वचन से भी कठोर हैं।.

घटोत्कच—क्यों क्रुद्ध हो रहे हैं ? अच्छा आप क्षमा करें। क्षमा करें। यह तो हमारा स्वभावगत दोष है। अच्छा आप के पुत्र का नाम क्या है ?

वृद्ध—इस वचन को भी सुनने की शक्ति मुझ में नहीं है।

घटोत्कच—ठीक है। हे ब्राह्मणपुत्र ! तुम्हारे भाई का क्या नाम है ?

प्रथम—बेचारा मध्यम।

घटोत्कच—यह उसका मध्यम नाम उचित जान पड़ता है। तो मैं ही पुकारता हूँ। हे मध्यम ! मध्यम ! शीघ्र आओ।

(तदनन्तर भीमसेन का प्रवेश)

भीमः—कस्यायं स्वरः ?

खगशतविरुते विरौति तारं
द्रुमगहने दृढसङ्कटे वनेऽस्मिन् ।
जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं
बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य[१] ।।२५।।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः; अतिक्रामति मातुराहारकालः । किन्नु खलु करिष्ये। भबतु, दृष्टम्। उच्चैः शब्दापयाभि। भो भोमध्यम्! शीघ्रमागच्छ।

मध्यमेति घटोत्कचवचनमाकर्ण्य धनञ्जयशब्दभ्रमेण वितर्कयति–

अन्वयः—खगशतविरुते दृढसंकटे द्रुमगहने अस्मिन् वने स्वरोऽयम् तारं विरौति । च मनोज्वरं जनयति हि धनञ्जयस्वरस्य बहुसदृशः ।।२५।।

खगेति—खगशतविरुते खगशतस्य=पक्षिसमूहस्य । शतशब्दोऽत्र समूहपरः । विरुते=शब्दिते । दृढसंकटे दृढम् अत्यन्तम् संकटम्=संवाधा यत्र तस्मिन्=संबाधातिशयत्वमापन्ने । द्रुमगहने द्रुमैः=वृक्षै । गहने=व्याप्ते । अस्मिन् वने=कानने । स्वरोऽयम्=अयं शब्दः। तारं विरौति उच्चैस्तया ध्वनति। च=तथा। मनोज्बरम्=मनसः उत्कण्ठाम् । जनयति=उत्पादयति । हि=यतः । धनंजयस्वरस्य धनंजयस्य=अर्जुनस्य । स्वरः=शब्दः तस्य । बहुसदृशः=अत्यन्तसमानतामापन्नः इयं वाणी अस्तीति शेषः । पुष्पिताग्रावृत्तम् । स्मरणालंकारश्च ।।२५।।

भीम—यह तो सैकड़ों पक्षियों की चहचहाहट से युक्त अनेक वृक्षों से संकुल अत्यन्त घोर वन में उच्च स्वर से पुकार रहा है। वह अर्जुन के स्वर से बहुत कुछ मिल रहा है। अतः मेरे मन में बड़ा संशय उत्पन्न हो रहा है ।।२५।।

घटोत्कच—यह ब्राह्मण कुमार बहुत विलम्ब कर रहा है । माता जी के भोजन की वेला बीतती जा रही है । तो क्या करूँ ? अच्छा और ऊँचे स्वर से पुकारूँ—ओ मध्यम ! शीघ्र आओ ।

---

[१] 'धनञ्जयस्य शब्दः' इति वा पाठः ।

भीमः—भोः! को नु खल्वेतस्मिन् वनान्तरे मम व्यायामविघ्नमुत्पाद्य मध्यम ! मध्यम ! इति मां शब्दापयति । भवतु, पश्यामस्तावत् । (परिक्रम्यावलोक्य सविस्मयम्) अहो दर्शनीयोऽयं पुरुधः । अयं हि,—

सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो
बभ्रुभ्रूः श्येननासो द्विरदपत्रिहनुर्दीप्त[1]विशिलष्टकेशः ।

शब्दापयामि–आह्वयामि ।

मध्यम इति शब्द श्रुत्वा व्यायामं परित्यज्य चकितचकितः सन् तथा व्याहरन्तं धटोत्कचं दृष्ट्वा तस्य शरीरसंधटनामुपवर्णयति भीमसेनः—

अन्वयः–सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रः मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठः बभ्रुभ्रूः श्येननासः द्विरदपतिहनुः दीप्तविशिलष्टकेशः व्यूढोरा वज्रमध्यः गजवृषभगतिः लम्बपौनांसबाहुः विपुलबलयुतः राक्षसीजः लोकवीरस्य (अयं) पुत्रः इति सुव्यक्तम् ।।२६।।

सिंहास्य इति । सिंह इव आस्यं=मुख यस्य सः । सिंहदंष्ट्रः सिंहस्य दंष्ट्रा=दन्त इव दंष्ट्रा यस्य सः । मधुनिभनयनः मधुनिभे नयने=नेत्रे यस्य सः=मधुरेक्षणः । स्निग्धगम्भीरकण्ठः स्निग्धः सचिक्कणः गम्भीरः= समुन्नतः कण्ठः=ग्रीवा यस्य सः । बभ्रुभ्रूः बभ्रू=पिङ्गलबर्णौ भ्रुवौ= भ्रुकूटी यस्य सः । श्येननासः श्येनस्य पक्षिविशेषस्य नासा=नासिका इव नासा यस्य सः । द्विरदपतिहनुः द्विरदपतेः=गजेन्द्रस्यः=गजेन्द्रस्य हनुरिव हनुः यस्य सः । दीप्तविशिलष्टकेशः दीप्ताः=विशालाः समुज्बला वा विशिलष्टाः=विरलाः

भीम—अरे! यह कौन है जो इस वन में मेरे व्यायाम में विघ्न उत्पन्न करता हुआ 'मध्यम' ऐसा कह कर मुझे पुकार रहा है । अच्छा तो देखता हूँ । (मुड़ कर देख कर आश्चर्यचकित हो) अहो! यह मनुष्य तो देखने के योग्य है । यह तो—

सिंह के समान मुख तथा सिंह के समान भयानक दाँतो वाला है । शराब जैसी इसकी आँखें है, चिकना तथा ऊँचा इसका गला है, भूरे वर्ण की भौंहे,

---

[1] 'धनञ्जयस्य शब्दः' इति वा पाठः ।

व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिर्लम्बपीनांसबाहुः
सुव्यक्तं राक्षसीजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुत्रः ।।२६।।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः । उच्चैः शब्दापयामि भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

भीमः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—न खल्वयं ब्राह्मणवटुः । अही दर्शनीयोऽयं पुरुषः । य एषः—

केशाः=कचाः यस्य सः । व्यूढोरा व्यूढं=विपुलं उरः=वक्षःस्थलं यस्य सः । वज्रमध्यः वज्रः=कुलिशम् इव मध्यः=मध्यभागः यस्य सः । गज–वृषभगतिः गजवृषभयोः=द्विपवलीवर्दयोः गतिरिव गतिर्यस्य सः । लम्बपीनांसबाहुः लम्बौ=विशालौ पीनौ स्थूलौ अंसौ=स्कन्धौ बाहू=भुजौ यस्प सः । विपुलबलयुतः विपुलं बलं विपुलबलम् तेन युतः=महाबलवान् । राक्षसोजः राक्षस्यां=हिडिम्बायां जातः=समुत्पन्नः । लोकवीरस्य लोके प्रसिद्धस्य वीरस्य=जगत् प्रसिद्धवलशालिनः । पुत्रः=सूनुः । इति सुव्यक्तम्=प्रत्यक्षम् । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् । परिकरकाव्यलिङ्गोपमानुमानालङ्काराः ॥२६॥

दर्शनीयः=सर्वथा दर्शनयोग्यः ।

बाज की तरह नाक, गजेन्द्र के समान ठोढ़ी, लम्बे एवं बिखरे केश, पुष्ट विशाल वक्षः स्थल, वज्र सा कठोर कटिभाग, गज तथा वृषेन्द्र के समान मस्ती से भरी चाल, लम्बे तथा स्थूल कन्धे एवं बाहु वाला अत्यन्त बलशाली । इस प्रकार यह स्पष्ट ही किसी राक्षसी एवं विश्वविख्यात वीर का पुत्र ज्ञात होता है ॥२६॥

घटोत्कच—निश्चय ही ब्राह्मणकुमार विलम्ब कर रहा है । अच्छा ऊँचे स्वर में पुकार कर उसे बुलाऊँ । हे हे मध्यम । शीघ्र आओ ।

भीम—अरे भाई । लो मैं आ पहुँचा ।

घटोत्कच-यह तो वास्तव में वह ब्राह्मण वटु नहीं है । फिर भी यह पुरुष तो देखने के योग्य है । जो यह—

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः
मध्ये तनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः[1] ।
विष्णुर्भवेद् विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ।।२७।।

मध्यमशब्देन समागत भीमसेन दृष्ट्वा घटोत्कचश्चकितचकितस्तद्रूपं वर्णयति—

अन्वयः—सिहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः मध्ये तनुः गरुणपक्षविलिप्तपक्षः विकसिताम्बुजपत्रनेत्रः बन्धुः इव आगतः अयं विष्णुः भवेद् यः मम नेत्रे आहरति ॥२७॥

सिंहाकृतिरिति । अयम्=समागन्ता । सिंहाकृतिः सिंहस्य आकृतिरिव आकृतिर्यस्य सः मृगेन्द्ररूपः । कनक्तालसमानबाहुः कनकतालेन=सुवर्णनिर्मिततालवृक्षेण समानौ=सदृशौ बाहु=भुजौ यस्य सः । मध्ये=मध्यभागे तनुः=कृशः । गरुडपक्षविलिप्तपक्ष, गरुडस्य=गरुत्मतः पक्षाभ्याम् पत्राभ्याम् । विलिप्तौ=संघृष्टौ पक्षौ=पार्श्वभागौ यस्य सः । विकसिताम्बुजपत्रनेत्रः विकसिते=प्रफुल्लिते=प्रफुल्लिते अम्बुजपत्रे=कमलदले इव नेत्रो यस्य सः । बन्धुः=परिवारः । इव=यथा । आगतः=संप्राप्तः । विष्णुः भवेद् । यः मम=घटोत्कचस्य । नेत्रे=नयने । आहरति=आकृषति संमोहयति वा । अत्र 'पक्षविलिप्तपक्षः' इत्यत्र यमकः । लन्तिमयोश्चरणयौः संदेहः बन्धुरिवेत्यत्रोत्प्रेक्षालंकाराः यथाथथं वोद्धव्यम् । वसन्ततिलकावूत्तम् ॥२७॥

न तावदपरः अपरः=अन्यः न किन्तु मध्यम एवेति भावः ।

सिंह के समान रूप वाला, सोने के ताड़ के समान विशाल बाहु वाला, पतली कमर से युक्त तथा गरुड़ के पंख के समान घिसे हुए अर्थात् चिकने पार्श्ववाला तथा विकसित कमल के समान विशाल नेत्रों वाला यह क्या विष्णु है जो बन्धु के समान आया हुआ मेरे नेत्रों को बलात् आकृष्ट कर रहा है ॥२७॥

---

[1] 'विलिप्तवक्षा' इति वा पाठः ।

भो मध्यम ! त्वां खल्वहं शब्दापयामि ।

भीमः—अतः खल्वहं प्राप्तः ।

घटोत्कचः—किं भवानपि मध्यमः ?

भीमः—न तावदपरः ।

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः ।
मध्यमोऽहं क्षितौ [१]भद्र ! भ्रातृणामपि मध्यमः ।।२८।।

घटोत्कचः—भवितव्यम् ।

भीमः—अपि च,

घटोत्कचकृते प्रश्ने मध्यमशब्देन स्वं परिचयं ददन् भीमसेन आह—

अन्वयः—हे भद्र अहम् अवध्यानां मध्यमः उत्सिक्तानां च मध्यमः क्षितौ मध्यमः भ्रातृणाम् अपि मध्यमः अस्मि ॥२८॥

मध्यम इति—हे भद्र=सौम्य ! अहम्=भीमः । अवध्यानाम्=अन्यैर्हन्तुमयोग्यानम् पाण्डवानामित्यर्थः मध्यमः । किञ्च अहम् । उत्सिक्तानाम्=शौर्योद्धतानां च मध्ये मध्यमः । अहम् भीमसेनः । क्षितौ=लोके मध्यमः । भ्रातृणां=सहोदराणां युधिष्ठिरादीनां मध्ये अहं मध्यमः । भीमसेन इत्यर्थः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥२८॥

अरे मध्यम ! तुम्हें मैं पुकार रहा हूँ ।

भीम—इसीलिये तो मैं यहाँ आ पहुँचा ।

घटोत्कच—क्या आप भी मध्यम हैं ?

भीम—यहाँ कोई दूसरा तो हैं नहीं । मैं ही मध्यम हूँ ।

वध से रहित (अमर) लोगों में मैं मध्यम हूँ । स्वाभिमानियों में मैं मध्यम हूँ । किं बहुना हे भद्र ! मैं इस पृथ्वी पर मध्यम हूँ और अपने भाइयों में उत्पत्तिक्रम के अनुसार मैं मध्यम हूँ ॥२८॥

घटोत्कच—होंगे ।

भीम—और भी ।

---

[१] 'क्षितेः' इति पाठः ।

मध्यमः पञ्चभूतानां पार्थिवानां च मध्यमः ।
भवे[1] च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यमः ।।२९।।

वृद्धः—

मध्यमास्त्विति सम्प्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यमः ।
अस्मान् मोक्तुमिहायातोदर्पान्मृत्योरिवोत्थितः ।।३०।।

भीमसेनः पुनः घटोत्कचं मध्यमशब्देनोत्तरयति—

अन्वयः—पञ्चभूतानां मध्यमः पार्थिवानां च मध्यमः भवे च मध्यम[2] सर्वलोकेषु मध्यमः अहम् ।।२९।।

मध्यम इति—पञ्चभूतानाम्=पृथिव्यादीनाम् । मध्ये अहं मध्यमः मध्यगतो वायुरूप इत्यर्थः । पार्थिवानां=राज्ञां मध्ये चाहं मध्यमः=मध्यगतो वायुरूप इत्यर्थः । पार्थिवानां=राज्ञां मध्ये चाहं मध्यमः=मध्यगतः । भवे=प्रादुर्भावे च मध्यमः=मम मध्योत्पत्तिरित्यर्थः । लोके=भुवने । सर्वकार्येषु=अशेषव्यापरेषु । मध्यमः=मध्यस्थ इत्यर्थः ।।२९।।

मध्यमशब्दव्युत्पत्तिं श्रुत्वा वृद्धो ब्राह्मणः विचारयति—

अन्वयः—मध्यम इति संप्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यमः उत्थितः यः मृत्योः दर्पात् अस्मान् मोक्तुम् इह आयातः ।।३०।।

मध्यम इति—मध्यम इति संप्रोक्ते=समुच्चारिते नूनम् निश्चयम् । पाण्डवमध्यमः पाण्डवेषु मध्यमः=भीमसेन इत्यर्थः । उत्थितः=उपस्थितः । यः मृत्योः दर्पात्=अन्तकस्य गर्वात् । अस्मान्=ब्राह्मणपरिवारान् । मोक्तुम्=

पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वांयु और आकाश) में मैं मध्यम (वायु का अवतार) हूँ राजाओं में भी मैं मध्यम हूँ । इस लोक मैं जन्मक्रम से पञ्च पाण्डवों के बीच मैं मध्यम हूँ । इतना ही नहीं सब कार्यों में भी मैं मध्यम हूँ ।।२९।।

वृद्ध—इसने अपने को 'मध्यम' ऐसा कहा है इसलिये ये अवश्य ही पाण्डवों में मध्यम (भीमसेन) होंगे । जो मृत्यु के दर्प से हमलोगों को छुड़ाने के लिये आये हैं ।।३०।।

---

[1] 'भये' इति वा पाठः ।

(प्रविष्य)

मध्यमः—

अस्यामाचम्य पद्मिन्यां परलोकेषु दुर्लभम् ।
आत्मनैवात्मनो दत्तं पद्मपत्रोज्ज्वलं जलम् ।।३१।।

(उपगम्य) भोः पुरुष ! प्राप्तोऽस्मि ।

परिमोचयितुम् । इह=अस्मिन्स्थाने आयातः=आगत इति प्रतिभाति उत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।३०।।

पुनः ब्राह्मणस्य मध्यमः पुत्रः आगत्य मरणानन्तरं स्वस्मै परलोके दुर्लभं तिलाञ्जलिं दत्त्वाह—

अन्वयः—अस्यां पद्मिन्यां परलोकेषु दुर्लभं पद्मपत्रोज्वलं जलं आचम्य आत्मना एव आत्मने दत्तम् ।।३१।।

अस्यामिति—अस्याम्=पुरोवर्त्तिन्याम् । पद्मिन्याम् । पद्मानि अस्यां सन्ति इति पद्मिनी तस्याम्=वाप्याम् । परलोकेषु=स्वर्गादिषु । दुर्लभम्=अप्राप्यम् । पद्मपत्रोज्ज्वलम् पद्मपत्रम्=कमलदलम् इव उज्ज्वलम्=स्वच्छं । जलं=सलिलम् । आचम्य पीत्वा । आत्मना एव=असहायेन सन्तानविहीनेन स्वेनैव । आत्मने=स्वस्मै । दत्तम्=प्रदत्तम् । अनुप्रासालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।।३१।।

अधिष्ठितपूर्वे=पूर्वकाले निवासरूपेण विहिते । कुरुजाङ्गले=तन्नामकप्रदेशे । अरिष्टः=विगतविघ्नः ।

(ब्राह्मण का मध्यम पुत्र प्रवेश कर)

मध्यम—इस कमलपूर्ण सरोवर में कमलदल के समान उज्ज्वल तथा स्वच्छ जल का आचमन कर मैंने पुत्रविहीन होने के कारण भविष्य में तर्पण की आशा न रहने से परलोक में दुष्प्राप्य स्वयं अपने लिये तिलाञ्जलि दे दी ।।३१।।

(समीप जाकर) हे पुरुष ! मैं आ गया ।

घटोत्कचः—[१]भवानिदानीं खल्वसि मध्यमः । मध्यम ! इत इतः ।

वृद्धः—(भीममुपगम्य) भो मध्यम ! परित्रायस्व ब्राह्मणकुलम् ।

भीमः—न भेतव्यं, न भेतव्यम् । मध्यमोऽहमभिवादये ।

वृद्धः—वायुरिव दीर्घायुर्भव ।

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मि । कुतौ भयमार्यस्य ।

वृद्धः—श्रूयताम् । अहं खलु कूरुराजेन युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्व कुरुजाङ्गले यूपग्रामवास्तव्यो माठरसगोत्रश्च कल्पशाखाध्वर्यूः केशवदासो नाम ब्राह्मणः । तस्य ममोत्तरस्यां दिश्युद्यामकग्रामवासी मातुलः कौशिकसगोत्रो यज्ञबन्धुर्नामास्ति । तस्य पुत्रोपनयनार्थं[२] सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः ।

भीमः—अरिष्टोऽस्तु पन्थाः । ततस्ततः ।

घटोत्कच—हाँ आप ही इस समय मध्यम हैं यह निश्चित है ।

मध्यम ! इधर-इधर आओ ।

वृद्ध—(भीमसेन के पास जाकर) हे मध्यम ! ब्राह्मण कुल की रक्षा करो ।

भीम—भयभीत न हों, भयभीत न हों । मैं मध्यम आपका अभिवादन करता हूँ ।

वृद्ध—वायु के समान दीर्घायु प्राप्त करो ।

भीम—अनुगृहीत हुआ । अच्छा बताइये आपको किससे भय है ?

वृद्ध—सुनिये । मैं वास्तव में कुरुराज महाराज युधिष्ठिर से पहले निवासभूत इस कुरुजाङ्गल (कुरुक्षेत्र) के यूप ग्राम का रहनेवाला माठर गोत्रीय कल्पशाखा का अध्वर्यु केशवदास नामक ब्राह्मण हूँ । उस मेरे गाँव के उत्तर दिशा में उद्यामक नामक ग्राम में मेरे मामा यज्ञबन्धु जो कौशिक सगोत्रीय हैं निवास करते हैं । उनके पुत्र के उपनयन संस्कार के लिये मैं सपत्नीक जा रहा हूँ ।

भीम—तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न हो । तब फिर क्या हुआ ?

---

[१] 'प्राप्तवान् इदानीं खल्बसि' इति वा पाठः ।

[२] 'पनयनानुभवनार्थम्' इति वा पाठः ।

वृद्धः—ततो मामेष हि—

सजलजलदगात्रः पद्मपत्रायताक्षो
मृगपतिगतिलीलो राक्षसः प्रोग्रदंष्ट्रः ।
जगति विगतशङ्कस्त्वद्विधानां समक्षं
ससुतपरिजनं भो ! हन्तुकामोऽभ्युपैति ।।३२।।

अथ वृद्धो ब्राह्मणः स्वकीययात्रायां हन्तुकामस्य घटोत्कचस्योपस्थित्या भीतभीतः सन् तं वारयितुकामः भीमसेनम् प्रार्थयति—

अन्वयः—भोः एषः सजलजलदगात्रः पद्मपत्रायताक्षः मृगपतिगतिलीलः प्रोग्रदंष्टः जगति विगतशङ्कः अयं राक्षसः त्वद्विधानां समक्षं ससुतपरिजनं मां हन्तुकामः अभ्युपैति ।।३२।।

सजलेति—भोः=भद्रभीमसेन ! सजलजलदगात्रः जलेन सहितः सजलः, जलं ददातीति जलदः सजलश्चासौ जलदः तस्य गात्रम् इव गात्रं यस्य सः=सजलजलद इव नीलगात्रः । पद्मपत्रायताक्षः पद्मपत्रे इव आयते अक्षिणी यस्य सः=कमलदलविशालनयनः । मृगपतिगतिलीलः मृगपतेः गतिः तस्याः लीला इव लीला यस्य सः=सिंहगमनविलासः । प्रोग्रदंष्ट्रः प्रोग्रा=अत्युन्नता दंष्ट्रा=दन्ताः यस्य सः=प्रोन्नतदन्तः । जगति=लोके विगतशङ्कः विगता शङ्का यस्य सः=अकुतोभयः निर्द्वन्द्वो वा । अयं राक्षसः=निशिचरः । त्वद्विधानां=त्वत्सदृशानाम् । समक्षम्=प्रत्यक्षम् । ससुतपरिजनम्=सुतैः परिजनैश्च सहितम् मां हन्तुकामः=हननेच्छया । अभ्युपैति=समायातिऊ। उपमास्वभावोक्त्यलङ्कारौ । मालिनीवृत्तम् ।।३२।।

अपराध्यसि=दुःखं ददासि ।

वृद्ध—तब फिर मुझे ये—

जिनका जलपूर्णमेध के समान श्यामल शरीर है, कमलदल के समान विशाल आँखें है जिनकी लीलापूर्वक विलास गति सिंह के समान है तथा जिनके दाढ़ बाहर की ओर ऊँचे-ऊँचे निकले हुये हैं तथा जिन्हें संसार में किसी से किसी प्रकार का भय नहीं है ऐसे ये तुम्हारे जैसे वीर के सामने स्त्रीं, पुत्र सहित मुझे मारने के लिये उद्यत हैं ।।३२।।

भीमः—एवम् अनेन ब्राह्मण जनस्य मार्गविघ्नः कृतः। भवतु, निग्रहिष्यामि तावदेनम्। भोः पुरुष ! तिष्ठ, तिष्ठ।

घटोत्कचः—एष स्थितोऽस्मि।

भीमः—किमर्थं ब्राह्मणजनमपराध्यसि[१]।

पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य पत्नीकान्तप्रभस्य च।
वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थितः[२] ।।३३।।

घटोत्कचः—अथ किम्। राहुरेव।

अथेदानीं भीमसेनः घटोत्कवेन विहितां विप्रमार्गावरोधरूपा अपराधस्थितिं प्रकाशयति—

अन्वयः—पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य पत्नीकान्तप्रभस्य च वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुः इव उत्थितः ।।३३।।

पुत्रेति—पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य पुत्रा एव नक्षत्राणि तैः कीर्णस्य=पुत्ररूपनक्षत्रसमावृतस्य। पत्नीकान्तप्रभस्य पत्नी एव कान्ता=मनोरमा प्रभा=चन्द्रिका यस्य सः तस्य। वृद्धस्य=जरठावस्थामुपेयुषः। विप्रचन्द्रस्य विप्र एव चन्द्रस्तस्य=ब्राह्मणेन्दोः। भवान्=घटोत्कचः। राहुः=सैहिकेय इव=यथा। उत्थितः=संप्राप्तः। यथा राहुः चन्द्रमसः मार्गमवरुध्य विघ्नमुत्पादयति तथा भवानपि ब्राह्मणचन्द्रस्य मार्गमवरुध्य भीषयसीत्यर्थः ।।३३।।

भीम—अच्छा ऐसी बात है। इन्होंने ही ब्राह्मण के मार्ग में विघ्न उपस्थित किया है। अच्छा तो मैं इन्हें दण्ड दूँगा। हे पुरुष ! ठहरो ठहरो।

घटोत्कच—यह मैं तो रुका हूँ।

भीम—तुम किसलिये इन ब्राह्मणजनों को सता रहे हो ?

तीन पुत्र रूपी नक्षत्रों से घिरे हुये मनोज्ञ पत्नीरूपी चन्द्रिका वाले इस परिपूर्ण (बूढ़े) ब्राह्मणरूपी चन्द्रमा को ग्रसने के लिये तुम राहु बनकर आये हो क्या ? ।।३३।।

घटोत्कच—और क्या राहु ही हूँ।

---

[१] 'परास्यसि' इति वा पाठः। [२] '–रिवागतः' इति वा पाठः।

भीमः—आः—

निवृत्तव्यवहारोऽयं सदारस्तनयैः सह ।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ।।३४।।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भीमः—(आत्मगतम्) भोः ! कस्य पुत्रेणानेन भवितव्यम् ।

भ्रातृणां मम सर्वेषां कोऽयं भो ! गुणतस्करः ।

घटौत्कचेन निर्भयं स्वापराधस्वीकृतौ भीमसेनः ब्राह्मणमोचनार्थं सहेतुकं वाक्यमभिधायादिशति—

अन्वयः–निवृत्तव्यवहारः सर्वापराधे अवव्यत्वात् सदारतनयैः सह अयं द्विजसत्तमः मुच्यताम् ।।३४।।

निवृत्तेति—निवृत्तव्यवहारः निवृत्ताः=व्यावृत्ताः व्यवहाराः वार्धक्येन ऐहिलौकिकव्यापाराः यस्य सः । सर्वापराधे सर्वश्चासौ अपराधस्तस्मिन्=सर्वदोषसंयुक्ते अवव्यत्वात्=वधानर्हत्वात् तदुक्त मनुना—न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् । राष्ट्रादेन बहिष्कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् । न ब्राह्मवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि । तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् । (३-८०) सदारतनयैः दारैः तनयैः सहेति सदारतनयैः भार्यापुत्रैः अयं=पुरोवर्ती द्विजसत्तमः=ब्राह्मणश्रेष्ठः । मुच्यताम्=मारणाद्विरम्यताम् । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।३४।।

घटोत्कचेन तथा करणेऽनङ्गीकृते भीमसेनो मनसि विचारयति—

अन्वयः–भोः मम सर्वेषां भ्रातृणां गुणतस्करः अयं कः ? एतद् वाल–

भीम—अरे !

यह ब्राह्मण तो सांसारिक व्यवहारों से मुक्त हो चुका है । अतः पुत्र कलत्र सहित इसको छोड़ दो । क्योंकि सब प्रकार का अपराध करने पर भी उत्तम ब्राह्मण अवध्य होता है ।।३४।।

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

भीम—(अपने मन में) यह किसका पुत्र हो सकता है ?

हमारे सभी भाइयों के गुणों को चुराने वाला यह कौन हो सकता है ।

दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ।।३५।।

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता ।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया ।।३६।।

शौण्डीर्य दृष्ट्वा अहम् सौभद्रस्य (बालशौण्डीर्य) स्मरामि ।।३५।।

भ्रातृणामिति—भोः मम=भीमसेनस्य । सर्वेषाम्=निखिलानां भ्रातृणां=बान्धवानां युधिष्ठिरादीनाम् । गुणतस्करः गुणानां तस्करः=गुणहरणशीलः । अयं कः=कोऽसौ भवतीति शेषः एतद्बालशौण्डीर्यम् एतस्य=पुरोवर्त्तिनः बालस्य=माणवकस्य शौण्डीर्यम्=औद्धत्यम् । दृष्ट्वा=अवलोक्य । सौभद्रस्य=अभिमन्योः । बालशौण्डीयम् । अहम् स्मरामि=स्मरणं करोमि । स्मरणालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।।३५।।

घटोत्कचः भीमसेननिदेशमुल्लङ्घयन् ब्राह्मणामोचने हेतु प्रदर्शयति—

अन्वयः—यदि मे पिता विस्रब्धं मुच्यताम् इति ब्रवीति तथापि हि एष न मुच्यते । यतः एषः मातुः आज्ञयां गृहीतः ।।३६।।

मुच्यतामिति—यदि=चेत् । मे=मम घटोत्कचस्य । पिता=जनकः । विश्रब्धम्=विश्वस्तम् । मुच्यताम्=त्यज्यताम् । इति=इत्यम् । ब्रवीति=कथयति तथापि हि तु=निश्चयेन एषः=ब्राह्मणवटुः न मुच्यते=न त्यज्यते । यतः एषः-ब्राह्मणवटुः । मातुः=जनन्याः हिडिम्बायाः । आज्ञया=आदेशेन गृहीतः=आत्मसात्कृतः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।।३६।।

इसकी बालसुलभधृष्टता को देखकर मुझे सुभद्रानन्दन अभिमन्यु याद आ जाते हैं ।।३५।।

(प्रगट) हे पुरुष ! इसे छोड़ दो ।

घटोत्कच—मैं नहीं छोड़ता ।

आप क्या ? यदि मेरे पिता भी विश्वासपूर्वक कहें कि इसे छोड़ दो तो भी मैं नहीं छोड़ता । क्योंकि मैंने अपनी माता की आज्ञानुसार इसे पकड़ा है ।।३६।।

भीमः—(आत्मगतम्) कथं मातुराज्ञेति । अहो गुरुशुश्रूषुः खल्वयं तपस्वी ।

माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम् ।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य वयमेतां दशां गताः ।।३७।।

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! प्रष्टव्य खलु तावदस्ति ।

घटोत्कचः—ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।

भीमः—का नाम भवतो माता ।

घटोत्कचः—श्रूयताम्, हिडिम्बा नाम राक्षसी ।

भीमसेनो घटोत्कचस्य मातृभक्तिं श्रुत्वात्मगतं विचारयति—

अन्वयः—मनुष्याणां माता किल देवतानां च दैवतम् । यतः मातुः आज्ञां पुरस्कृत्य वयम् एतां दशाम् गताः ।।३७।।

मातेति—मनुष्याणां=मनोर्जातानां मानबानामित्यर्थः । माता–जननी किल=नूमम देवतानाम् सुराणाम् च दैवतम्=ईश्वरः । मातुः जनन्याः कुन्त्याः । आज्ञाम्=आदेशम् । पुरस्कृत्य=स्वीकृत्य । वयम्=भीमसेनयुधिष्ठिरादयः । एताम्=वर्त्तमानाम् विपन्नाम् । दशाम्=अवस्थाम् । गताः=प्राप्ताः स्म । अत्र पूर्वपदस्थसामान्यवचनेनोत्तरपदस्थो विशेषः समर्थितस्तेनार्थान्तरन्यासः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।३७।।

भीम—(अपने मन में) क्या कहा कि माता की आज्ञा से । तब तो गुरुशुश्रूषु यह तपस्वी अवश्य ही श्लाघा के योग्य है ।

अवश्य ही माता मनुष्यों के लिये देवताओं की भी देवता है तभी तो हम लोग माता की आज्ञा शिरोधार्य कर इस वनवास का कष्ट भोग रहे हैं ।।३७।।

(प्रकट रूप में) हे पुरुष ! तुमसे कुछ पूछना है ।

घंटोत्कच—कहो शीघ्र कहो ।

भीम—आपकी माता का नाम क्या है ?

घटोत्कच—तो सुनिये । मेरी माता का नाम है हिडिम्बा राक्षसी ।

कौरब्यकुलदीपेन पाण्डवेन महात्मना।
सनाथा या महाभागा पूर्णेन द्यौरिवेन्दुना[1] ।।३८।।

भीमः—(सहर्षमात्मगतम्) एवम्, हिडिम्बायाः पुत्रोऽयम्। सदृशो ह्यस्य गर्वः।

रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभिः सदृशं बहु।
प्रजासु वीतकारुण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम् ।।३९।।

भीमसेनेन पृष्टे घटोत्कचः स्वमातुः परिचयं वदत् रहस्यमुद्धाटयति—

अन्वयः—या महाभागा कौरव्यकुलदीपेन महात्मना पाण्डवेन पूर्णेन इन्दुना द्यौः इव सनाथा ।।३८।।

कौरव्येति—या=मम माता हिडिम्बा। महाभागा=सौभाग्यशालिनी कौरव्यकुलदीपेन कुरोः अपत्यं कौरव्यम् तस्य कुलस्य दीपः तेन=कौरव-वंशावतसेन। महात्मना=महासत्त्वेन पाण्डवेन=पाण्डुपुत्रेण भीमसेनेन। पूर्णेन=षोडशकलायुक्तेन इन्दुना=चन्द्रमसा द्यौः=आकाश इव। सनाथा=सपतिका जातेति शेषः। कौरव्यकुलदीपेत्यत्र रूपकम्। चतुर्थचरणे उपमा च। अनुष्टुव्वृत्तम् ।।३८।।

भीमः आत्मगतं घटोत्कचस्य गुणान् प्रशंसति—

अन्वयः—अस्य रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभिः बहुसदृशम् प्रजासु वीतकारुण्यम् मनः कीदृशम् ।।३९।।

रूपमिति—अस्य=बालकस्य। रूपम्=सौन्दर्यम्। सत्त्वम्=पराक्रमः।

जो कौरवकुल प्रदीप महात्मा पाण्डव के द्वारा सनाथा एवं सौभाग्यवती है जिस प्रकार पूर्णचन्द्र से द्यौः सनाथ एवं सौभाग्यशाली है ।।३८।।

भीम—(प्रसन्नतापूर्वक मन ही मन) तो यह इस प्रकार हिडिम्बा का पुत्र है अतः इसका इस प्रकार आत्माभिमान उचित ही है।

इसका रूप, सत्त्व, बलादि सब कुछ तो पिता के समान है किन्तु प्रजा के विषय में ऐसा करुणाविहीन मन कैसे हो गया ।।३९।।

---

[1] '–रिवात्मना' इति वा पाठः, अर्थात् चन्द्रेण। 'आत्मार्कचन्द्रायातात्रिजीवेषु परमात्मनि' इति केशबस्वामी।

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भोमः—भो ब्राह्मण ! गृह्यतां तव पुत्रः । वयमेनमनुगमिष्यामः ।

द्वितीयः—मा मा भवानेवम् ।

त्यक्ताः प्रागेव मे प्राणा गुरुप्राणेष्वपेक्षया ।
युवा रूपगृणोपेतो भवांस्तिष्ठतु भूतले ।।४०।।

बलम्=सामर्थ्यम् । चैव । बहु=अनल्पम् । पितृभिः जनकैरस्माभिः । सदृशम्=तुल्यम् । किन्तु प्रजासु=जनेषु । वीतकारुण्यम्=वीतम्=रहितम् कारुण्यम्=दयाभावम् यस्मिन् तत्=कृपाभावरहितम् । मनः=चित्तम् । क्रीदृशम् निर्दयमित्यर्थः एतस्मिन् बलं सत्त्वं रूपं च पितृभिः समं वर्त्तते इति युक्तमेव तेषां पित्रंशत्वात् । किन्तु कारुण्यरहितं निष्ठुरं चित्तम् यदेतस्यान्ति तत्तु मातुः सकाशाज्जायमानकारणेन । हृदयभागस्य मात्रंशेन जायमानत्वात् । इति भावः ।।३९।।

ब्राह्मणपुत्रस्थाने भीमसेनकृतानुगमनं निश्चितं बुद्ध्वा तं ब्राह्मणकुमारो तथाकर्त्तुं वारयति—

अन्वयः—गुरुप्राणेषु अपेक्षया मे प्राणाः प्राक् एव त्यक्ताः । अतः युवा भवान् रूपगुणोपेतः भूतले तिष्ठतु ।।४०।।

त्यक्ता इति—गुरुप्राणेषु गुरूणाम्=पूज्यतमानां प्राणेषु असुषु । अपेक्षया=संरक्षणकारणेन । मे=मम । प्राणाः=असवः । प्रागेव=पित्रोः

(प्रगट रूप में) हे पुरुष ! इसे छोड़ दो ।

घटोत्कच—नहीं छोड़ूँगा ।

भीम—अच्छा ब्राह्मण ! अपने पुत्र को ग्रहण करो । हम ही इसके पीछे आ रहे हैं ।

द्वितीय—नहीं, नहीं ऐसा मत कीजिये ।

गुरुजनों के प्राणों को बचाने के लिये मैंने पहले ही अपने प्राण त्याग का निश्चय किया है । अतः युवा, रूप और गुण से सम्पन्न आप इस भूतल पर चिरकाल तक जीवित रहें ।।४०।।

भमी—आर्य ! मा मैवम् । क्षत्रियकुलोत्पन्नोहम् । पूज्यतमः खलु ब्राह्मणः । तस्मान्मच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिमातुमिच्छामि ।

घटोत्कचः—(आत्मगतम्) एवम्, क्षत्रियोऽयम् । तेन गर्वः । भवतु, हममेव हत्वा नेष्यामि । (प्रकाशम्) अथ केनायं वारितः ?

भीमः—मया ।

घटोत्कचः—किं त्वया ?

सकाशे एव । त्यक्ताः=मुक्ताः । अतः युवा=तारुण्ययुक्तः । भवान्=भीमसेनः । रूपगुणोपेतः रूपगुणाभ्याम् उपेतः=समन्वितः । भूतले=भूमौ । तिष्ठतु=जीवतु । भवता एतस्यानुगमनं न कार्यम् । यतो ह्यस्मै मया प्रागेव स्वप्राणः प्रत्यर्पिताः । भवान् रूपगुणोपेतः सन् चिरं जीवत्विति भावः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।४०।।

इमम्=ब्राह्मणकुमारम् । हत्वा=मारयित्वा । नेष्यामि मातुः सकाशमिति शेषः । वारितः=निषिद्धः । अतिबलवीर्यात्=बलापेक्षया वीर्यापेक्षया च अतिशायित्वेन=महत्तरत्वकारणेन । चाहम् त्वाम् नानुगच्छामि=तवपश्चान्नानुगमिष्यामि । प्रत्यभिजानीते=परिचिनीषि ।

भीमेन भङ्ग्या स्वपुत्रत्वनिर्वाहहेतुकथनेन घटोत्कचः सोपहासं कथयति 'भीतानामायुधं गृहीतम्' । इति एतच्च भीता एव ब्रुवन्ति न वीराः इति भावः ।

भीम—आर्य ! ऐसा न कहें, ऐसा न कहें । मैं क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुआ हूँ । ब्राह्मण तो निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिये इस शरीर से ब्राह्मण शरीर का विनिमय करना चाहता हूँ ।

घटोत्कच—ऐसा । यह क्षत्रिय है, इसीसे इतना गर्वीला है । अच्छा तो मैं इसी को मारकर ले चलता हूँ । तो किसने मेरे साथ चलने से इसे मना किया ।

भीम—मैंने ।

घटोत्कच—क्या तुमने ।

भीमः—अथ किम्।

घटोत्कचः—तेन हि भवानेवागच्छतु।

भीमः—एवम्, अतिवीर्यबलत्वान् नानुगच्छामि। यदि ते शक्तिरस्ति, बलात्कारेण मां नय।

घटोत्कचः—किं मां प्रत्यभिजानीते भवान्?

भीमः—मत्पुत्र इति जाने।

घटोत्कचः—कथं कथं तव पुत्रोऽहम्?

भीमः—कथं रुष्यति, मर्षयतु, मर्षयतु भवान्। सर्वाः प्रजा क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते। अत एव मयाभिहितम्।

घटोत्कचः—भीतानामायुधं गृहीतम्।

भीमः—

शपामि सत्येन भयं न जाने

एतच्छ्रुत्वा भीमसेनः तद्व्यवसायं ज्ञातुमिच्छन् पृच्छति—

अन्वयः–अहं सत्येन शपामि भयं न जाने। भवत्समीपे तद् ज्ञातुम्

भीम—और क्या?

घटोत्कच—तो आप ही चलिये।

भीम—ठीक है किन्तु बलवीर्य में अधिक होने के कारण मैं किसी के पीछे नहीं चलता। यदि तुम में शक्ति हो तो मुझे बलपूर्वक ले चलो।

घटोत्कच—क्या आप मुझे पहले से भी जानते हैं कि मैं कौन हूँ?

भीम—तुम मेरे पुत्र हो, ऐसा जानता हूँ।

घटोत्कच—कैसे, कैसे मैं तुम्हारा पुत्र हूँ।

भीम—क्यों रुष्ट होते हो। क्षमा कीजिये। क्षत्रियों की सारी प्रजा उनके द्वारा पुत्र शब्द से पुकारी जाती है। इसीलिये मैंने तुम्हें अपना पुत्र कहा।

घटोत्कच—तब तो भयभीतों का अस्त्र आपने ग्रहण कर लिया। अर्थात् बहाना बनाने लगे।

भीम—मैं सत्य शपथ देकर कहता हूँ कि भय का नाम तक नहीं

ज्ञातुं तदिच्छामि भवत्समीपे ।
किंरूपमेतद् वद भद्र ! तस्य
गुणागुणज्ञः सदृशं प्रपत्स्ये ।।४१।।

घटोत्कचः—एष ते भयमुपदिशामि, गृह्यतामायुधम् ।

भीमः—आयुधमिति । गृहीतमेतत् ।

घटोत्कचः—कथमिव ।

भीमः—

काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः ।

इच्छामि । हे भद्र ! तस्य किं रूपम् गुणागुणज्ञः त्वं वद । तदनन्तरं सदृशं प्रपत्स्ये ।।४१।।

अहम्=भीमसेनः । सत्येन=अवितथेन । शपामि=शपथं करोमि भयं=भीति न जाने=न जानामि । भवत्समीपे=त्वत्पार्श्वे । तद्=भयम् ज्ञातुम्=अबगन्तुम् । इच्छामि=समीहे । हे भद्र ! तस्य=भयस्य । किं रूपम् किमाकारः वेत्तात्वम् एतद् वद्=ब्रूहि त्वम् तस्य गुणागुणज्ञः=गुणावगुणं ज्ञात्वा तदनन्तरं सदृशम्=यदुचितं भाति तथा प्रपत्स्ये=आचरिष्यामि घटोत्कचेन भयोपदेशार्थ आयुधम् गृहाणेत्युक्ते भीमः स्वबाहुमेव स्वपरमायुधं मन्यमानस्तमेव प्रशंसति ।।४१।।

अन्वयः—रिपूणां निग्रहे रतः काञ्चनस्तम्भसदृशः अयं दक्षिणः बाहुः मम सहजं आयुधम् ।।४२।।

जानता । किन्तु अब उस भय को तुम्हारे द्वारा जानना चाहता हूँ । हे भद्र ! उस भय का स्वरूप क्या है तुम्हीं बताओ । क्योंकि तुम उसके गुणदोष को जानने वाले हो । फिर जैसा होगा मैं विचार करूँगा ।।४१।।

घटोत्कच—अच्छा तो मैं तुम्हें भय की शिक्षा देता हूँ । शस्त्र ग्रहण करो ।

भीम—क्या कहते हो शस्त्र ग्रहण करो । वह तो यह है ही ।

घटोत्कच—सो किस प्रकार ।

भीम—सोने के खम्भे के समान शत्रु विनाश में तत्पर यह मेरा

अयं तु दक्षिणो बाहुरायुधं सदृशं मम ।।४२।।

घटोत्कचः—इदमुपपन्नं पितुर्मे भीमसेनस्य ।

भीमः—अथ कोऽयं भीमो नाम ?

विश्वकर्ता शिवः कृष्णः शक्रः शक्तिधरो यमः ।
एतेषु कथ्यतां भद्र । केन ते ते सदृशः पिता ।।४३।।

काञ्चनेति—रिपूणाम्=वैरिणाम् । निग्रहे=दण्डदाने । रतः=उद्यतः । काञ्चनस्तम्भसदृशः काञ्चनस्य स्तम्भस्तेन सदृशः=सुवर्णस्तम्भोपमः । अयम्=शरीरवर्त्ती दक्षिणः बाहुः=भुजः मम=भीमसेनस्य सहजम्=सहजातम् स्वाभाविकम् वा आयुधम्=शस्त्रम् । अस्तीति शेषः । अतो नाहमन्यमायुधं कामये इति भावः काञ्चनस्तम्भसदृश इत्यत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।४२।।

उपपन्नम्=योग्यम् ।

प्रसङ्गात् भीमसेन इत्युक्ते भीमसेनः जिज्ञासते—

अन्वयः—विश्वकर्त्ता शिवः कृष्णः शक्रः शक्तिधरः यमः हे भद्र ! एतेषु देवेषु ते पिता केन सदृशः इति कथ्यताम् ।।४३।।

विश्वेति—विश्वकर्त्ता विश्वस्य=जगतः कर्त्ता=रचयिताः विश्वनिर्माता ब्रह्मा इति भावः । शिवः=पशुपतिः । कृष्णः=विष्णुः । शक्रः=इन्द्रः । शक्तिधरः=कुमारः कार्तिकेयः । यमः=अन्तकः ह भद्र । एतेषु=देवेषु । मध्ये इति शेषः । ते= तव पिता=जनकः केन=देवेन । सदृशः=तुल्यः वर्त्तते इति कथ्यताम्= ब्रूहि ।।४३।।

दाहिना हाथ ही मेरा सहज शस्त्र है ।।४२।।

घटोत्कच—यह तो मेरे पिता भीमसेन के लिये उचित है ।

भीम—अच्छा ! वह भीम नामक व्यक्ति कौन है ?

विश्वकर्त्ता (ब्रह्मदेव) शिव, कृष्ण (विष्णु), शक्र (इन्द्र) और शक्ति धारण करनेवाले कार्तिकेय तथा यम इन लोगों में से तुम्हारे पिता किसके सदृश हैं । हे भद्र ! तुम मुझे बताओ ।।४३।।

घटोत्कचः—सर्वैः ।

भीमः—धिगनृतमेतत् ।

घटोत्कचः—कथम् ? कथम् अनृतमित्याह । क्षिपसि मे गुरुम् । भवतु, इमं स्थूलं वृक्षमुत्पाट्य प्रहरामि । (उत्पाट्य प्रहरति) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् । किन्नु खलु करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतद् गिरिकूटमुत्पाट्य प्रहरामि ।

शैलकूटं मयाक्षिप्तं प्राणानादाय यास्यति ।

भीमः—

रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेत् वने ।।४४।।

क्षिपसि=निन्दसि । गुरुम्=जनकम् । गिरिकूटम्=पर्वतशिखरम् । अग्रिमः श्लोक उक्ति-प्रत्युक्तिरूपेण पठितः ।

तत्रादौ घटोत्कचः कथयति—

अन्वयः—मया आक्षिप्तम् शैलकूटं (तव) प्राणान् आदाय यास्यति ।।४४।।

मया=घटोत्कचेन । आक्षिप्तम्=उत्पाट्य प्रक्षिप्तम् । शैलकूटं=पर्वत 'शिखरम् । तव प्राणान्=असून् । आदाय=गृहीत्वा । यास्यति=गमिष्यतिः ।।४४।।

उत्तरार्धेन भीमसेन उत्तरयति—

अन्वयः—वन्यः रुष्टः अपि कुञ्जरः वने व्याघ्रं न धर्षयेद् ।।४४।।

घटोत्कच—सबके समान हैं ।

भीम—धिक्कार है । सरासर झूठ है ।

घटोत्कच—कैसे कैसे तुमने इसे झूठ कह दिया । मेरे पूज्य पिता की निन्दा करते हो । अच्छा तो इस विशालकाय वृक्ष को उखाड़ कर प्रहार करता हूँ । (वृक्ष उखाड़ कर प्रहार करता है) क्यों क्या इसके द्वारा भी इसे चोट नहीं लगी । तो अब क्या करूँ ? अच्छा उपाय दिखाई पड़ा । इस पर्वतशिखर को उखाड़ कर ही प्रहार करता हूँ ।

मेरे द्वारा फेंका गया यह पर्वतशिखर तुम्हारा प्राण लेकर जायगा ।।४४।।

घटोत्कचः—(प्रहृत्य) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्।

नन्वहं भीमसेनस्य पुत्रः पौत्रो नभस्वतः।
तिष्ठेदानीं सुसन्नद्धो नियुद्धे नास्ति मत्समः ।।४५।।

(इत्युभौ नियुद्धं कुरुतः)

घटोत्कचः—(भीमसेनं बद्ध्वा)

वन्यः वने भवः=आरण्यकः। रुष्टः=क्रुद्धः अपि। कुञ्जरः=हस्तीवने=अरण्ये। व्याघ्रम्=सिंहम्। न धर्षयेत्=न भर्त्सयेत्। अत्रोत्तरार्धे लोकवादानुकारेण लोकोक्त्यलङ्कारः। अनुष्टुव् वृत्तम् ।।४४।।

शैलकूटेनाक्षतं भीमसेनं दृष्ट्वा घटोत्कचः सगर्वं वंशपरिचयं ददत् आह्वयति—

अन्वयः—अहं भीमसेनस्य पुत्रः नभस्वतः पौत्रः ननु। इदानीं सुसन्नद्धः सन् तिष्ठ। यतः नियुद्धे मत्समः कश्चिदपि नास्ति ।।४५।।

न्विति—अहम्=घटोत्कचः। भीमसेनस्य=मध्यमपाण्डवस्य पुत्रः=सूनुः। नभस्वतः=पवनस्य ! पौत्रः इति ननु=निश्चितम्। इदानीं=सांप्रतम्। सुसन्नद्धः=युद्धोपकरणेन सुसज्जितः। तिष्ठ—रणे स्थिरो भव। नियुद्धे=बाहुयुद्धे। मत्समः मया सभः=मत्तुल्यः। कश्चिदपि नास्ति। न वर्त्तते। अतोऽहं त्वां विजेष्यामीत्यर्थः। समर्थनीयस्यार्थस्य समर्थनात् काव्यलिङ्गम्। अनुष्टुव् वृत्तम् ।।४५।।

भीम—वन में क्रुद्ध हुआ भी बनैला हाथी, बाघ को रञ्चमात्र भी विचलित नहीं कर सकता।

घटोत्कच—(प्रहार कर) क्या यह इससे भी नहीं मारा जा सकता तो अब क्या करूँ ? अच्छा एक उपाय दिखाई पड़ा।

मैं निश्चय ही भीमसेन का पुत्र और वायुदेव का पौत्र हूँ। तो हे वीर ठहरो वाहुयुद्ध में मेरे समान और कोई योद्धा नहीं है ।।४५।।

(दोनों ही वाहुयुद्ध करने लग जाते हैं)

घटोत्कच—(भीमसेन को बाँधकर)

व्रजसि कथमिह त्वं वीर्यमुल्लङ्ध्य बाह्वो
र्गजइव दृढपाशैः पीडितो मद्भुजाभ्याम् ।।

भीमः—(आत्मगतम्) कथं गृहीतोऽस्म्यनेन । भोः सुयोधन ! वर्धते खलु शत्रुपक्षः । कृतरक्षो भव । (प्रकाशम्) भोः पुरुष ! अवहितो भव ।

घटोत्कचः=अवहितोऽस्मि ।

भीमः—(नियुद्धबन्धमवधूय)

घटोत्कचः बाहुपाशेन भीमसेनं बद्ध्वा एवमाक्षिपति—

अन्वयः—त्वम् बाह्वोः वीर्यमुल्लङ्घ्य मद्भुजाभ्यां पीडितः दृढपाशैः वद्धः गज इव इह कथं यासि ? ।।४६।।

व्रजसीति—त्वम्=भीमसेनः बाह्वोः=मम भुजयोः । वीर्यम्=विक्रमम् । उल्लङ्घ्य=लङ्घयित्वा । मद्भुजाभ्याम्=मम बाहुभ्यां । पीडितः=संघृष्टः । दृढपाशैः दृढाश्च ते पाशास्तैः=बलवद्बन्धनैः (बद्धः) गजः इव=करीव । इह=अस्मिन् वने । कथं=केन प्रकारेण । व्रजसि=प्रपलायसे ।।४६।।

मेरे बाहुबल का अतिक्रमण कर अब तुम किस प्रकार भाग सकते हो । क्योंकि मेरे इन दोनों भुजाओं से तुम इस प्रकार कसकर बाँध लिये गये हो जिस प्रकार हाथी सुपुष्ट बन्धन से कसकर बाँध दिया जाता है ।।४६।।

भीम—(अपने मन में) क्या मैं इसके द्वारा पकड़ लिया गया । हे सुयोधन ! तुम्हारा शत्रुपक्ष बढ़ रहा है, अब तुम अपनी रक्षा का उपाय सोचो । (प्रकट) हे पुरुष ! सावधान हो जाओ ।

धटोत्कच—सावधान बैठा हूँ ।

भीम—(घटोत्कच के बाहुपाश से बँधे हुये अपने शरीर के बन्धन को छुड़ा कर) ।

व्यपनय बलदर्प दृष्टसारोऽसि वीर ।
न हि मम परिखेदो विद्यते बाहुयुद्धे ।।४६।।

घटोत्कचः—कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् । किन्नु खलु करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । अस्ति मातृप्रसादलब्धौ मायापाशः । तेन बद्ध्वैनं नेष्यामि । कुतः खल्वापः । भो गिरे । आपस्तावत् । हन्त स्रवति । (आचम्य मन्त्रं जपति) भौः पुरुष !

मायापाशेन बद्धस्त्वं विवशो न गमिष्यसि ।

भीमसेनः सामर्ष तद् बाहुबन्धनमपसार्य सगर्व तद्बललाधबं प्रकाशयति—

अन्वयः—हे वीर ! दृष्टसारः असि । अतः बलदर्प व्यपनय । हि त्वया समं बाहुयुद्धे मम परिखेदः न विद्यते ।।४६।।

व्यपनयेति—हे वीर ! युद्धे दृष्टसारः दृष्टः सारः यस्य सः परीक्षितबलः असि । मया ते बलं परिज्ञातमिति भावः । अतः स्वल्पबलवत्त्वेन त्वं बलदर्पम्=बलगर्व । व्यपनय=दूरी कुरु । हि यतः त्वया समम् बाहुयुद्धे मम परिखेदः=श्रमः न विद्यते । लीलयैव त्वामहं विजेष्यामीति भावः ।।४६।।

इदानीं मायापाशेन बद्धं भीमसेनं वर्णयति घटोत्कचः—

अन्वयः—त्वं मायापाशेन बद्धः विवशः अनुगमिष्यसि उत्सवे शक्रध्वजः

हे वीर ! अपने बल का अहङ्कार त्यागो । तुम्हारो शक्ति देख ली गई । इस बाहुयुद्ध में मुझे रञ्चमात्र भी थकावट नहीं ।।४६।।

घटोत्कच—अरे क्या इससे भी यह मारा नहीं जा सकता, तो अब क्या करूँ । अच्छा उपाय दिखाई पड़ गया । मुझ माता की कृपा से माया-पाश जो प्राप्त है । उसी से बाँध कर इसे ले चलूँगा । कहाँ जल मिलेगा । हे पर्वत ! मुझे तब तक जल दो अहा ! प्रसन्नता की बात है कि यह जल दे रहा है ।

(आचमन कर) मन्त्र का जप करता है । हे पुरुष !

अब तुम माया पाश से बाँध लिये जाने पर विवश होकर मेरे पीछे

राजसे रज्जुभिर्बद्धः शक्रध्वज इवोत्सवे ।।४७।।

(इति मायया बध्नाति)

भीमः—कथं मायापाशेन बद्धोऽस्मि। किमिदानीं करिष्ये। अस्ति महेश्वरप्रसादलब्धो मायापाशमोक्षो मन्त्रः । तं जपामि । कुतः खल्वापः ? भवतु, भो ब्राह्मणकुमार ! आनय कमण्डलुगता अपः ।

वृद्धः—इमा आपः ।

(भीम आचम्य मन्त्रं जप्त्वा मायां मोचयति)

इव रज्जुभिः बद्धः राजसे ।।४७।।

मायेति—त्वं=भीमसेनः । मायापाशेन मायायाः पाशः तेन=ऐन्द्रजालिकबन्धनेन । बद्धः=निगडितः सन् । विवशः विगतो वशः=स्वार्तत्र्यं यस्य सः=परतन्त्रः । अनुगमिष्यति=मम पश्चाद् गमिष्यसि । अतः सांप्रतम् उत्सवे=क्रियमाणसांवत्सरिकोत्सवे । शक्रध्वजः=इन्द्रकेतुः इव । रज्जुभिः=रशनाभिः । बद्धः=बन्धनं गतः । राजसे=शोभसे । उपमालंकारः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।।४७।।

पूर्वसमयम्=पूर्व कृतां प्रतिज्ञाम् । 'वयमेनमनुगमिष्यामः' इत्येवं रूपामित्यर्थः ।

अनुगमन करोगे। इस समय तुम वैसे ही शोभित हो रहे हो जिस प्रकार वर्षाकालीन उत्सव में रस्सियों से बँधा इन्द्रध्वज शोभित हो रहा हो ।।४७।।

(ऐसा कहकर माया से बाँध लेता है)

भीम—क्या मैं मायापाश से बाँध लिया गया तो अब क्या करूँ अच्छा उपाय मिला—मुझे सदाशिव की कृपा से मायापाश से मुक्त होने का मन्त्र तो प्राप्त है ही उसी का जप करता हूँ। तो यहाँ जल कहाँ से प्राप्त होगा। अच्छा ब्राह्मणकुमार कमण्डलु का जल ले आओ।

वृद्ध—यह है जल।

(भीम जल लेकर आचमन करने के पश्चात् मन्त्र के जप से माया का दूर करता है)

घटोत्कचः—अये पतितः पाशः । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भोः पुरुष ! पूर्वसमयं स्मर ।

भीमः—समय इति । एष स्मरामि । गच्छात्रतः ।

(उभौ परिक्रामतः)

वृद्धः—पुत्रकाः ! किं कुमैः । अयं गच्छति वृकोदरः ।

आक्रम्य राक्षसमिमं ज्वलदुग्ररूप-
मुग्रेण बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम् ।

तथा गच्छन्तं वृकोदरं दृष्ट्वा वृद्धब्राह्मणः पुत्रान्संबोधयति—

अन्वयः—ज्वलदुग्ररूपम् उग्रेण बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम् इमं राक्षसं, आक्रम्य एषः शनकः सलीलम् आसारवर्ष शीघ्रम् अवधूय गोवृषभ इव प्रयाति ॥४८॥

आक्रम्येति—ज्वलदुग्ररूपम् ज्वलत् उग्रं रूपं यस्य सः तम्=प्रदीप्तकठोरस्वरूपम् । उग्रेण=घोरेण । बाहुबलवीर्यगुणेन बाह्वोः यः बलवीर्यगुणस्तेन=भुजबलशौर्यगुणेन । युक्तम्=सहितम् । इमम्=पुरोवर्त्तिनम् । राक्षसम्=घटोत्कचम् । आक्रम्य=विजित्य । एषः=भीमः । शनकैः=शनैः शनैः मन्दं मन्दं वा सलीलम्=लीलासहितम् । आसारवर्षम्=धारासंपातवृष्टिं । शीघ्रम्=त्वरया । अवधूय=तिरस्कृत्य । गोवृषभः=वली-

---

घटोत्कच—अरे यह तो मायापाश छूट गया । तो अब क्या करूँ । अच्छा उपाय दिखाई पंड़ गया । हे पुरुष अपनी पूर्व में की गई प्रतिज्ञा का स्मरण करो ।

भीम—क्या कहते हो प्रतिज्ञा स्मरण करो । लो यह स्मरण करो । आगे चलो (दोनों चल पड़ते हैं)

वृद्ध—हे पुत्रो ! अब हम लोगों को क्या करना चाहिये । यह भीमसेन जा रहा है ।

अत्यन्त उग्र बाहुबल वीर्य एवं गुणसम्पन्न, अतएव अत्यन्त प्रचण्ड इस राक्षस को जीत कर यह भीम लीलापूर्वक मन्द मन्द इस प्रकार जा रहा है

एष प्रयाति शनकैरवधूय शीघ्र–
मासारवर्षमिव गोवृषभः सलीलः ।।४८।।

घटोत्कचः—इह तिष्ठ । त्वदागमनमम्बायै निवेदयामि ।

भीमः—बाढम् । गच्छ ।

घटोत्कचः—(उपसृत्य) अम्ब, अभिवादये घटोत्कचोऽहम् । चिराभिलषितो भवत्या आहारार्थमानीतो मानुषः ।

(प्रविश्य)

हिडिम्बा—जाद ! चिरं जीव । कीदिसो माणुसो आणीदो । (जात चिरं जीव । कीदृशो मानुष आनीतः) ।

वद्दँ इद प्रयाति=गच्छति । गोवृषभ इवेत्यत्रोपमालंकारः । वसन्ततिलका-वृत्तम् ।।४८।।

रूपमात्रेण मानुषः न वीर्येण अस्यायमभिप्रायः अयम् पुरुषः रूपमात्रेण=आकृतिमात्रेण मानव न वीर्येण मानुषाधिक्यपराक्रमो वर्त्ततेऽस्मिन्निति स्तुतिः । यद्वा रूपमात्रेण मानुषसत्वेऽप्यस्मिन् न किञ्चिदपि वीर्य विद्यते इति निन्दापि गम्यते । एवं यथायथं काकूत्त्या समाधेयम् ।

जिस प्रकार जैसे मूसलाधार बृष्टि की उपेक्षा कर श्रेष्ठ बैल धीरे-धीरे लीलापूर्वक जाता हो ।।४८।।

घटोत्कच—यहीं ठहरो । तुम्हारे आने की सूचना माँ को दे दूँ ।

भीम—ठीक है । जाओ ।

घटोत्कच—(आगे जाकर) मातः अभिवादन करता हूँ ।

बहुत दिनों से आप जिसकी अभिलाषा किये हुये थीं ऐसा मनुष्यरूप भोजन आपके लिये लाया हूँ ।

(हिडिम्बा प्रवेश कर)

हिडिम्बा—पुत्र ! चिरञ्जीवी रहो ।

घटोत्कच—माँ अनुगृहीत हुआ ।

हिडिम्बा—पुत्र ! कैसा मनुष्य लाये हो ।

घटोत्कचः—भवति ! वाङ्मात्रेण मानुषो, न वीर्येण ।

हिडिम्बा—किं ब्रह्मणो । (किं ब्राह्मणः) ।

घटोत्कचः—न ब्राह्मणः ।

हिडिम्बा—आदु थेरो । (अथवा स्थविरः) ।

घटोत्कचः—न वृद्धः ।

हिडिम्बा—किं बालो । (किं बालः) ।

घटोत्कचः—न बालः ।

हिडिम्बा—जइ एव्वं पेक्खामि दाव णं । (यद्येवं पश्यामि तावदेनम्) ।

(उभौ परिक्रामतः)

हिडिम्बा—किं एसो माणुसो आणीदो ।) किमेष मानुष आनीतः) ।

घटोत्कचः—भवति ! कोऽयम् ।

हिडिम्बा—अम्मत्तअ ! दव्वदं खु अअं । (उन्मत्तक ! दैवतं खल्वयम्) ।

घटोत्कच—आर्ये ! वह रूप से तो मनुष्य अवश्य है किन्तु बल से नहीं । अर्थात् बल में वह मनुष्यों से कहीं अधिक शक्तिशाली है ।

हिडिम्बा—क्या ब्राह्मण है ?

घटोत्कच—वह ब्राह्मण नहीं है ।

हिडिम्बा—अथवा बूढ़ा है ।

घटोत्कच—नहीं बुड्ढा भी नहीं है ।

हिडिम्बा—तो क्या बालक हैं ।

घटोत्कच—बालक भी नहीं है ।

हिडिम्बा—यदि ऐसा है तो मैं उसे देखूँगी । (दोनों चल पड़ते हैं)

हिडिम्बा—क्या यही मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच—माँ यह कौन है ?

हिडिम्बा—पागल ! ये हमलोगों के देवता हैं ।

घटोत्कचः—आः कस्य दैवतम् ?

हिडिम्बा—तव अ मम अ। (तव च मम च)।

घटोत्कचः—कः प्रत्ययः ?

हिडिम्बा—एसो पच्चओ। जेदु अय्यउत्त। (एष प्रत्ययः। जयत्वार्यपुत्रः)।

भीमः (विलोक्य) का पुनरियम्। अये, देवी हिडिम्बा

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने।
जातकारुण्यया देवि! सन्तापो नाशितस्त्वया।।४९।।

हिडिम्बे! किमिदम्।

हिडिम्बाँ दृष्ट्वा भीमसेनस्तां प्रति कृतज्ञतां प्रकाशयन् आह—

अन्वयः—हे देवि! गहने वने भ्रमतां भ्रष्टराज्यानां अस्माकं जातकारुण्यया त्वया (अस्माकम्) संतापः नाशितः ।।४९।।

अस्माकमिति—हे देवि हिडिम्बे! गहने=कान्तारे। वने=अरण्ये भ्रमताम्=परिभ्रमणं कुर्वताम्। भ्रष्टराज्यानाम् भ्रष्टं राज्यं येषां तेषाम्=विनष्टराज्यानाम्। अस्माकम्=पाण्डवानाम्। जातकारुण्यया जातम् कारुण्यं यस्मिन् तया=उत्पन्नदयालुतया त्वया=हिडिम्बया। अस्माकम् संतापः=क्लेशः। नाशितः=अपनीतः। अतोऽत्र भवतीं समनुप्राप्य नितरां प्रमोदामहे इति भावः ।।४९।।

घटोत्कच—आः किसके देवता तुम्हारे कि हमारे।

हिडिम्बा—तुम्हारे और हमारे दोनों के।

घटोत्कच—क्या प्रमाण।

हिडिम्बा—यही प्रमाण है। आर्यपुत्र की जय हो।

भीमसेन (देखकर) यह कौन है ? अरे देवी हिडिम्बा।

हे देवि! हमलोग राज्य से भ्रष्ट हो जाने पर जिस समय वन में ठोकर खा रहे थे उस समय हमलोगों पर करुणा कर तुमने कष्ट को दूर किया था ।।५०।।

हिडिम्बे! यह क्या ?

हिडिम्बा—(कर्णे) अय्यउत्त ईदिसं विअ। (आर्यपुत्र। ईदृशमिव)।

भीमः—जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! अभिवादेहि पिदरं (उन्मत्तक ! अभिवादय पितरम्)।

घटोत्कचः—भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्व यद् भवान्नाभिवादितः।
अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।५०।।

घटोत्कचः स्वमातुराज्ञया स्वकीयोद्धततां क्षमापयन् पितरमभिवादयति—

अन्वयः–हे तात ! मया अज्ञानात् यत्पूर्व भवान् नाभिवादितः अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्त्तुम् अर्हसि ।।५०।।

अज्ञानादिति—हे तात मया=घटोत्कचेन। अज्ञानात्=ज्ञानाभावात्। यत् पूर्णम्=प्रथमम्। भवान्=भीमः। न अभिवादितः न प्रणमितः अस्य पुत्रापराधस्य पुत्रेण कृतः अपराधस्तस्य=आत्मजकृतागसः। प्रसादम्=क्षमापनम्। कर्त्तुम्=विधातुम्। अर्हसि। ममापराधो भवता क्षन्तव्य इत्यर्थः ।।५०।।

धार्त्तराष्ट्रवनदावाग्निः धृतराष्ट्रस्यापत्यानि धार्त्तराष्ट्राः ते एव वनानि तेषां दावाग्निः=धृतराष्ट्रपुत्रदावाग्निः। व्यतिक्रमकृतम्=अपराधजातम्। पुत्रापेक्षीणि पुत्रस्प अपेक्षा अस्ति एषां तानि=पुत्रेच्छाशालीनि।

हिडिम्बा—(कान में) आर्य पुत्र ! बात इस तरह की है।

भीम—जाती से राक्षसी हो शिष्टाचार से नहीं।

हिडिम्बा—अरे पागल ! पिता को प्रणाम कर।

घटोत्कच—हे पिता !

पहले अज्ञान के कारण मैंने आपको अभिवादन नहीं किया अतः मुझ पुत्र के इस अपराध को क्षमा कीजिये ।।५०।।

अहं स धार्तराष्ट्रवनदबाग्निर्घटोत्कचोऽभिवादये। पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि।

भीमः—एह्येहि पुत्र ! व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव। (इति परिष्वज्य) अयं सः धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः। पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानिः पुत्र ! अतिबलपराक्रमो भव।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि।

वृद्धः—एवम्, भीमसेनपुत्रोऽयं घटोत्कचः।

भीमः—पुत्र ! अभिवादयात्रभवन्तं केशवदासम्।

घटोत्कचः—भगवन् ! अभिवादये।

वृद्धः—पितृसदृशगुणकीर्तिर्भव।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि।

वृद्धः—भो वृकोदर ! रक्षितमस्मत्कुलं स्वकुलमुद्धृतं च। गच्छामस्तावत्।

धृतराष्ट्र के पुत्र रूपी वन को जलाने के लिये दवाग्नि स्वरूप मैं घटोत्कच आपका अभिवादन करता हूँ आप अपने पुत्र की चपलता क्षमा करें।

भीम—आओ पुत्र आओ। तुम्हारा अपराध तो क्षमा ही है (ऐसा कहकर आलिङ्गन करते हैं) वहीं धृतराष्ट्र के पुत्र रूपी वन की दवाग्नि है। पिता का हृदय हमेशा पुत्र की अपेक्षा रखता है। पुत्र ! अत्यन्त बलवान् एवं शक्तिशाली बनो।

घटोत्कच—अनुगृहीत हुआ।

वृद्ध—अच्छा यही भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है।

भीम—पुत्र परम पूजनीय केशवदास को प्रणाम करो।

घटोत्कच—भगवन् ! आपका अभिवादन करता हूँ।

वृद्ध—पिता के समान गुणवान् एवं कीर्त्तिमान् बनो।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हुआ।

वृद्ध—हे भीम ! तुमने हमारे कुल की रक्षा की और अपने कुल का उद्धार किया। अच्छा अब हम सब चलते हैं।

भीमः—

अनुग्रहात् तु भवतः सर्वमासीदिदं शुभम् ।
आश्रमोऽदूरतोऽस्माकं तत्र विश्रम्य गम्यताम् ।।५१।।

वृद्धः—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन । तस्माद् गच्छामस्तावत् ।

भीमः—गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दर्शनाय ।

वृद्धः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(सपुत्रत्रयकलत्रो निष्क्रान्तः केशवदासः)

अनुज्ञामादाय गच्छन्तं वृद्धब्राह्मणं भीमः प्रार्थयति—

अन्वयः—तु भवतः अनुग्रहात् इदं सर्व शुभम् आसीत् । इतः अदूरतः अस्माकम् आश्रमः । तत्र विश्रम्य गम्यताम् ।।५१।।

अनुग्रहादिति—तु=निश्चयेन । भवतः=वृद्धब्राह्मणस्य । अनुग्रहात्=अनुकम्पातः । इदम्=स्वकुलोद्धरणं भवत्कुलरक्षणं च । शुभम्=कल्याणकरम् । आसीत्=अभवत् । इतः अदूरतः=अस्मात् सन्निकटे । अस्माकम्=पाण्डवानाम् । आश्रमः=निवासभूमिः । तत्र=आश्रमे । विश्रम्य=अध्वरवेदमपनीय । गम्यताम्=सुखेन यात्रा क्रियताम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ।।५१।।

आश्रमपदद्वारमात्रम् आश्रमपदस्य द्वारमात्रम्=आश्रमस्य द्वारपर्यन्तमित्यर्थः । संभावयिष्यामः=अनुपदं गच्छामः । उदकान्तं सीमान्तं वानुव्रजेदिति स्मृत्युक्तेरिति भावः ।

भीम—आपकी कृपा से यह सब कल्याणकारी कृत्य हुये । हमारा आश्रम यहाँ से अत्यन्त सन्निकट है । विश्राम कर उसके पश्चात् जाइये ।।५१।।

वृद्ध—आपने जो हमलोगों को यह जीवन दान दिया वही सबसे बड़ा अतिथि सत्कार है । इसलिये हमलोग चलते हैं ।

भीम—आप सकुटम्ब पुनः दर्शन देने के लिये जावें ।

वृद्ध—अच्छा ! यह तो प्रथम बार है (केशवदास अपने तीनों पुत्रों और पत्नी के साथ चला गया) ।

भीमः—हिडिम्बे ! इतस्तावत् । वत्स ! वत्स ! घटोत्कच ! इतस्तावत् । तत्रभवन्तं केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि सम्भावयिष्यामः ।

(भरतवाक्यम्)

यथा नदीनां प्रभवः समुद्रो
यथाहुतीनां प्रभवो हुताशः ।
यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि
तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः ।।५२।।

नाटकान्ते उपेन्द्रस्मरणं करोति भीमसेनमुखेन ग्रन्थकारः—

अन्वयः—यथा नदीनां समुद्रः प्रभवः । यथा आहुतीनां हुताशनः प्रभवः यथा इन्द्रियाणां मनः अपि प्रभवम् । तथा नः भगवान् उपेन्द्रः प्रभुः ।।५२।।

यथेति—यथा=येन प्रकारेण । नदीनाम्=सरिताम् । समुद्रः=उदधिः । प्रभवः प्रभवति=इष्टे गच्छतीति प्रभवः=आश्रयः यथा=येन प्रकारेण । आहुतीनाम्=हव्यपदार्थानां । हुताशनः हुतमश्नातीति हुताशनः=हव्यभक्षः कोऽग्निः । प्रभवः=आश्रयः यथाः=येन अकारेण इन्द्रियाणाम्=कर्मेन्द्रियाणां ज्ञानेन्द्रियाणां च । मनः=चित्तम् । प्रभवम्=आश्रयस्थानम् । तथा नः अस्माकम् सर्वेषाम् । भगवान्=षडैश्वर्ययुक्तः । उपेन्द्रः=इन्द्रावरजः भगवान् वामनः । प्रभुः=आश्रयदाता । ग्रन्थकर्त्रादावन्ते च वामनस्मरणेन ग्रन्थोपसंहारः कृतः इति ज्ञातव्यम् । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।।५२।।

इति गाजीपुरजनपदान्तर्गत शेरपुर ग्रामवास्तव्येन रामवरनशर्मण आत्मजेन रायोपाह्वेन गङ्गासागरशर्मणा कृता मध्यमव्यायोगनाटकस्य 'गङ्गा' नाम्नी संस्कृतव्याख्या समाप्ता ।

•

भीम—हिडिम्बे ! इधर आओ । पुत्र घटोत्कच इधर आओ । जिससे इन पूज्य केशवदास को आश्रम के द्वारप्रदेश तक हम सभी पहुँचा आवें ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। मध्यमव्यायोगं नाम नाटकं समाप्तम् ।।

●

जैसे समुद्र नदियों का स्वामी है अग्नि आहुतियों का मन इन्द्रियों का स्वामी है उसी प्रकार भगवान् वामन हमलोगों के स्वामी हैं ।।५२।।

(सब चले जाते हैं)

मध्यमव्यायोग नामक नाटक की भाषाटीका समाप्त ।

●

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी–

आशीर्ववचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

नान्दी में देवद्विनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

२. प्रस्तावना–आमुख–

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यव कुर्वते ।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ।।

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है। उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ।।

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ।।

नाट्योपकरण वस्तु—नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने–पिरोनेवाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

४. प्रयोगातिशय–

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ।।

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है ।

५. नेपथ्य–

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं ।

६. विष्कम्भक–

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।।

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है । यह कथांश को संक्षिप्त करने के लिये प्रयुक्त होता है । मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर संकीर्ण होता है ।

७. प्रवेशक–

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ।।

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है । यह दो अङ्कों के बीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती हैं ।

८. स्वगत–

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं।

९. प्रकाश–

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात्।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है।

१०. विदूषक–

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुवेषाद्यैः
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ।।

अपने, कर्म, वेष, भाषादि के हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है। उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते है।

११. नायक–

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्म्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ।।
बुदृध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।।

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मति-प्रज्ञा, कला-मान-युक्त शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका–

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ।।

नायिका स्वकीया परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है। यथासंभव वह नायक के गुणों से युक्त होती हैं।

१३ अङ्क–

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ।।

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ।।

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन का करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीच का संहरण होता है।

◆

मध्यमव्यायोगस्थछन्दः सूची

अनुष्टुप—अक्षर संख्याप्रति चराण ८

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

२; ७; १२-२३; २८-३१;३३-४०; ४२-४५; ४७; ४९-५१

उपेन्द्रवज्रा—अक्षर संख्या ११ उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। ५२

उपजाति—११ स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। इत्यनयोः सम्मेलनादुपजातिः ९; ४१

पुष्पिताग्रा—१२/१३—अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। ४; २४; २५

वंशस्थ—१२—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। १०

वसन्ततिलका—१४ ज्ञेया वसन्ततिलका तमजा जगौ गः। १:३; ८; ११; २७; ४८

मालिनी-१५ ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। ५; ६; ३२; ४६

स्रग्धरा—२१ भ्रम्नैर्यानात्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्। २६

मध्यमव्यायोगस्थ सुभाषितानि

पृष्ठाङ्क

१. आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते २६
२. जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् १३
३. ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः २५
४. ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितृणां च सुसंप्रियः। २४
५. निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना । १९
६. पदिमत्तधम्मिणी पदिव्वदत्तिणाम। (पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम) २३
७. बन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः। २७
८. माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम् । ४८
९. रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं घर्षयेद् बने। ५६
१०. वनं निवासाभिमत्तं मनस्विनाम् १६
११. सर्वाः प्रज्ञाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते। ५२

●

नाट्य एवं नाटक-ग्रन्थाः

अविमारकम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २४८)

अभिषेकनाटकम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २४९)

ऊरुभङ्गम् । महाकवि भास प्रणीतम्। गङ्गा संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय (का. २९१)

कर्णभार । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय (का. २९३)

चारुदत्तम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २८९)

दूतघटोत्कचम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २९४)

दूतवाक्यम् । महाकवि भास प्रणीतम्। गङ्गा संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २९५)

नाट्यशास्त्रम् । भरतमुनि कृत। सम्पादक-बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय संशोधित। सम्पूर्ण (का. ६०)

नाट्यशास्त्रदिशा रसतत्त्व-परम्परायाः समीक्षणम्। (नाटक) लेखिका- डॉ. के. कुसुमा रेड्डी। (चौ.सं.भ. ८१)

पञ्चरात्रम् । महाकवि भास प्रणीतम्। गङ्गा संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २९०)

प्रतिमानाटकम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय। (का. २७६)

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् । महाकवि भास प्रणीतम्-‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय।(का. २८८)

बालचरितम् । महाकवि भास प्रणीतम्। ‘गङ्गा’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पादक एवं अनुवादक-डॉ. गङ्गासागर राय (का. २६८)

चौखम्भा संस्कृत भवन, चौक, वाराणसी-२२१००१

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९५

महाकविभासविरचितम्

दूतवाक्यम्

'गंगा' - संस्कृत - हिन्दीव्याख्योपेतम् [redacted]

व्याख्याकारः संपादकश्च

डॉ. गंगासागररायः [redacted]

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः [redacted]

[redacted]

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक
पो० बा० नं. ११३९
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी - २२१ ००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारू प्रिन्टर्स, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०५६
मूल्य : रु. २५.००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ का परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ
एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशक के अधीन है।

फोन : ३३३४४५

शाखाएं :

चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)
✆ : ३२०४१४

चौखम्भा पब्लिकेशन्स
४२६२/३ अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२
✆ : ३२६८६३९, ३२५९०५०

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

295

DŪTAVĀKYAM

OF

BHĀSA

[With 'Gangā' Sanskrit and Hindi Commentaries]

Edited and Commented by

Dr. GANGA SAGAR RAI, M. A., PH. D.

All India Kashiraj Trust

Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature

Post Box No. 1139

K. 37 / 116, Gopal Mandir Lane (Golghar Near Maidagin)

VARANASI - 221001 (INDIA)

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

Phone : 333445

Second Edition : 2000

Branches :-

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
CHOWK (The Benaras State Bank Bldg.)
VARANASI - 221001
✆ : 320414

CHAUKHAMBHA PUBLICATIONS
4262/3, Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi-110002
✆ : 3268639, 3259050

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद की शृङ्खला में दूतवाक्य नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। आशा है कि भास के अन्य नाटकों की टीकायें भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेंगे और तदुपरान्त भास के विषय में एक साङ्गोपाङ्ग पूर्ण परिचयात्मक अध्ययन भी दे सकेंगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता कि वे प्रकाशन के साथ ही संपूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणिमिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अधमर्ण हूं। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश, जो अशुद्धियां रह गयी हैं उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूं। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरंजीवि राजेन्द्र जी नें जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी गङ्गासागर राय

शिवरात्रि २०५३ वि०
७ मार्च १९९७ ई०

भास की प्रशस्तियाँ

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्ट: हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
(कालिदास: मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाट्यदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाट्यशास्त्रपर अभिनवगुप्त की टीका)

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक विस्तीर्ण की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत-साहित्य के नाट्य-जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ—

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्य मणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य में तंजौर पुस्तकालय से केरल लिपि में १३ नाटक की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं उसको उन्होंने

प्रकाशन में लाया । गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था । इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाट्य साहित्य में अपना अन्यतम स्थान कालिदास से पूर्व से ही रखते थे ।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" ।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभापण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं ।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं । यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं । यह अन्तर भास को संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है ।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्निपरीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्पति राज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि स्वप्न नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैलाकर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्राप्त किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे लहावि रहुबारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारिअन्दे अ जाणन्दो।

—गउडवहो।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविताकामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय॥

—प्रसन्नराघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्यदर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है—

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराज……… ।"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनव भारती में किया है—

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराजविजय' की टीका में भास के विष्णुधर्म नाटक का उल्लेख किया गया है। परन्तु भास का 'विष्णुधर्म' नाटक अभी अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के अन्तराल में समाविष्ट हुई। केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवन-वृत्त—

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवन वृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उनके नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णव मतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान बताया है। महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुगामिनी पत्नी के पति एवं सन्तान प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था।

'धर्मो रक्षति रक्षितः'

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्ध मूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः

भास उद्योग के महत्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्म भीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—

हमारे राजा ससागरा उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये ? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जब वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुछ परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोका-

सुरंधक इन नाटकों का क्या ? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त हैं। विद्वानों ने नाटकों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्यस्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने देवनागरी लिपि में उपलब्ध सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग विदेशी आक्रमणकारियों को दिया। जिसके परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल के गाल में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रंथ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ नहीं थी।

(२) ए० एम० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा उरुभङ्ग के हस्तलेख मिले, इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ अभिषेक तथा प्रतिमानाटक को

हस्तप्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। यह भी सम्भव हो सकता है कि यह कर्णभारम् का अग्रिम अंश हो।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेंट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्नलिखित हैं—

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण
(२) अविमारक
(३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमा नाटक
(५) मध्यम व्यायोग
(६) पञ्चरात्र
(७) अभिषेक
(८) दूत वाक्य
(९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार
(११) ऊरुभङ्ग
(१२) बालचरित
(१३) चारुदत्त

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया। बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व—

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रतिपाद्य भास के तेरह नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार द्वारा मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—
उदयनवेन्दुसवर्णा——··· ।

—स्वप्न वासवदत्त ।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो······—प्रतिज्ञायौ० । इत्यादि ।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के लेखक के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरतवाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसका शासन हिमालय से विन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

—स्वप्न० ६-१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य ।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा के नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है । उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है ।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता है ।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभाषित वाक्यों (पाठों) का प्रयोग किया है ।

भास ने भरत के नाट्य में अविहित छः शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है । जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है ।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है ।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है ।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है ।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्य निर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं । जैसे—निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है ।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालंकार का प्रयोग एक समान किया गया हैं ।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है ।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है । जैसे—महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है । इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया ।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उत्सरह' (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर है।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्रनामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे—अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों क माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए निवेद्यतां—निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतंत्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"

—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि'।—बाल० १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"।—पञ्चरात्र १।२५

"हृतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—(कर्ण० १७)

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूत वाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

इन नाटकों का प्रणेता कौन था—

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० वी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जये ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हन राजा, देवधर तथा विणरमित्ज, डा० वार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डा० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भास कृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना—

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(क) नाटकों की हस्त प्रतियों का केवल केरल में प्राप्त होना।

(ख) यदि नाटक चक्र भास कृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(घ) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्नवासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इस आधार पर चाक्यारों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

चाक्यारों के रचना की अप्रामाणिकता—

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजना-शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजन शक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता है। इसके साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है

कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहीं पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन् या तेन माक्षन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि रखा था, अतः ,राजसिंहः प्रशस्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में दाक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राजसभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई। भास के नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर किया जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रामाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक चाक्यार, पल्लवनरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रामाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भासकृत नहीं है।

विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश—

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अत: इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता—

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हो तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमानाटक में अभिषेक संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुत: भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं—अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला, (विदेह), अंग, वंग, जनस्थान दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लंका, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है, भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों

हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र चित्रकूट, मेरु, मन्दिर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, ये राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त वैदिक-कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे

प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्ययन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अभिमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

—०—

---

[1] ए० एस० पी० अय्यर कृत 'भास' पृ० ७, यही मत डा० पुसालकर का भी है।

दूतवाक्यम् नाटक का संक्षिप्त कथानक—

नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है और कहता है कि संसार को आनन्द प्रदान करनेवाले विष्णु भगवान् के चरण आप लोगों की रक्षा करें जिसने अपने लाल एवं पैने नखों से नमुचि नामक दैत्य को आकाशमण्डल में वेध डाला था। वह कुछ बतलाना चाहता है कि उसी समय नेपथ्य में आवाज होती है। आवाज सुनकर वह कहता है कि मैं समझ गया। वह कहता है कि धृतराष्ट्र कुलोत्पन्न दुर्योधन एवं पाण्डुवंश में उत्पन्न होनेवाले युधिष्ठिरादि से विरोध उत्पन्न होने पर दुर्योधन के आदेशानुसार उनके सेवक सभागृह का निर्माण कर रहे हैं। उसके जाने के पश्चात् काञ्चुकी आता है और द्वाररक्षकों से कहता है कि महाराज दुर्योधन सभासदों के साथ मन्त्रणा करना चाहते हैं इसलिए सभी राजाओं को पुकारो। उसी समय वह पीछे मुड़कर देखता है तो कहता है कि महाराज दुर्योधन इधर ही आ रहे हैं। यह साँवले रंग का युवक दुर्योधन श्वेत वस्त्र का उत्तरीय धारण किया हुआ छत्र, चामरश्रेष्ठ तथा शरीर में अङ्गरागादि लगाकर शोभित हो रहा है तथा वह आभूषणों के मणियों की छटा से ऐसा शोभित हो रहा है जैसे नक्षत्रों के बीच में पूर्णचन्द्र की शोभा होती है। दुर्योधन पाण्डव सेना के दमन की कामना करते हुए कहता है कि पाण्डव सेना के मत्त गजराजों के दन्त को मूसल की भाँति उखाड़कर उनके मुखों को दन्तहीन करने की इच्छा उसे होती है। काञ्चुकीय आकर निवेदन करता है कि सब राजागण उपस्थित हो गये हैं। गुरुजनों एवं समागत राजाओं के साथ दुर्योधन मन्त्रणागृह में प्रवेश करता है। वह सबको यथोचित आसन ग्रहण करने को कहता है तथा स्वयं भी आसन ग्रहण करता है। वह सबसे पूछता है कि मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना का सेनापति कौन होगा, उसके मामा जी शकुनि कहते हैं कि सैन्य संचालक भीष्म होंगे, इसे वह स्वीकार कर लेता है। उसी समय काञ्चुकीय प्रवेश करता है और वह बताता है कि पाण्डवों के शिविर से दूत रूप में पुरुषोत्तम नारायण पधारे हैं। दूत के द्वारा ऐसा कहने पर दुर्योधन क्रोधित हो जाता है और कहता है कि ऐसा न कहो। क्या कंस का सेवक दामोदर

ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? जरासंघ के द्वारा जिसकी कीर्ति नष्ट कर दी गई, वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? महाराजाओं के दरबार में रहने वाले सेवक का क्या यही आचरण है ? तुम्हारी यह वाणी बहुत गर्वीली है। दूत दुर्योधन से क्षमायाचना करता है और पुनः वैसा ही कथन कहता है कि महाराज ! केशव नामक दूत आया है।

यह संदेश सुनकर दुर्योधन कहता है कि हे हे राजाओं ! दूत रूप में पधारे केशव के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए ? क्या आपलोग अर्घ्य देकर उनकी पूजा करेंगे ? यह मुझे प्रिय नहीं है, मैं उन्हे बन्दी बनाने में ही अपना हित देखता हूँ क्योंकि उन्हें बन्दी बना लेने पर पाण्डवों के सारे क्रिया-कलाप बन्द हो जायेंगे और वे कृष्ण के बिना पंगु हो जायेंगे। वह कहता है कि कृष्ण के यहाँ आगमन पर उनके स्वागतार्थ जो खड़ा होगा उसे बारह स्वर्ण से दण्डित किया जायेगा। अपने स्वय द्रौपदी के चीर-हरण का चित्र फलक मंगाकर देखने लगता है। चित्र-फलक देखते हुए वह कहता है कि दुःशासन के द्वारा केश खींचे जाने पर क्षोभ के कारण विकसित नेत्रों वाली द्रौपदी राहु के जबड़ों में स्थित चन्द्र की कला की भाँति शोभित हो रही है, इस प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सबके चित्र और भाव पर व्यंग्य करता है। वह युधिष्ठिर के सम्बन्ध में कहता है कि वह अपने भाइयों को क्रोध न करने के लिए कहते हैं और कहते हैं कि मैं नीच हूं मेरी बुद्धि पलट गई है पर तुम लोग तो न्याय-अन्याय जानने वाले हो अतः आज क्रोध को त्याग दो। जुआ में हारकर अपमान को न सहकर शत्रु पक्ष पर शक्ति प्रदर्शन करना केवल वाचिक वीरता होगी। इस प्रकार वह चित्र देख रहा है कि उसी समय कृष्ण वहाँ उपस्थित होते हैं। कृष्ण के आगमन पर सारे राजा खड़े हो जाते हैं और स्वयं दुर्योधन भी उनके व्यक्तित्व एवं तेज से प्रभावित होकर स्वयं आसन से गिर जाता है। कृष्ण सभी को बैठने के लिए कहते हैं और स्वयं बैठते हैं।

श्रीकृष्ण द्रौपदी के चित्र को देखकर कहते हैं कि दुर्योधन अपनी मूर्खता के कारण अपने बान्धवों का अपमान करके उसमें ही अपना पराक्रम समझता है, संसार में ऐसा कौन होगा जो निर्भय होकर सभा में अपना

दोष प्रकट करे । इस चित्रपट को दूर हटाओ, दुर्योधन भी उसे दूर हटावे के लिए कहता है । दुर्योधन कृष्ण को दूत सम्बोधन कर पूछता है कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर, वायु पुत्र भीम, इन्द्र पुत्र मेरा भाई अर्जुन अश्विनी-कुमार पुत्र नकुल और सहदेव आदि अपने परिजनों के साथ कुशल तो हैं । श्रीकृष्ण कहते हैं कि दुर्योधन ऐसा प्रश्न युक्त ही है । सब कुशल हैं । युधिष्ठिरादि पाण्डव आपके शरीर और राज्य के आन्तरिक और बाह्य कुशल को पूछते हुए निवेदन करते हैं कि हमलोगों ने तेरह वर्ष अधिक कष्ट सहन करते हुए वनवास व्यतीत किया, अब वह समय समाप्त हो गया, अतः धर्मानुसार जो पिता के धन का भाग (दाय) हो वह हमलोगों को मिलना चाहिये ।

दुर्योधन कहता है कि वह दाय कैसा ? वन में शिकार खेलते समय पाण्डु को मुनि ने शाप दिया था तभी से स्त्री-संयोग से वे विरक्त हो गये । अतएव दूसरे पुरुषों से उत्पन्न हुए पुत्र को पिता के धन का भागी कैसे माना जाय ? दुर्योधन के इस कथन को सुनकर कृष्ण कहते हैं कि तुम्हारे पितामह विचित्रवीर्य अत्यन्त विषयी होने के कारण क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त हुए पुनः अम्बिका में व्यास के द्वारा उत्पन्न हुआ तुम्हारा पिता धृतराष्ट्र राज्य का उत्तराधिकारी कैसे हुए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस प्रकार आपसी वैमनस्य और कलह बढ़ाने से कौरववंश शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा, अतः तुम क्रोध का परित्याग कर युधिष्ठिरादि पाण्डवों के द्वारा कहे गये कथन का पालन करो । दुर्योधन कृष्ण को दूत सम्बोधन कर कहता है कि आप राजाओं के साथ व्यवहार करना नहीं जानते । राजकुमारगण शत्रुओं को पराजित करके अपने राज्य को प्राप्त करते हैं। संसार में कहीं भी राज्य माँगा नहीं जाता और न दीनहीन याचकों को दिया जाता है । यदि पाण्डवों को राज्य की इच्छा हो तो शीघ्र ही वे युद्ध करें अथवा शान्ति प्राप्त करनी हो तो वन में किसी आश्रम में स्वच्छन्दता से जाकर रहें । कृष्ण दुर्योधन से कहते हैं कि अपने ही बान्धवों पर परुष वाणी का प्रयोग बन्द करो । संचित पुण्य फल से राज्यश्री प्राप्त कर जो अपने बन्धु-बान्धवों को ठगता है उसका सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ जाता है ।

दुर्योधन कृष्ण से कहता है कि कंस के प्रति आपने दया क्यों नहीं दिखाई, कृष्ण कहते हैं कि उसमें केवल मेरा ही दोष है, ऐसा मत जानो। बल्कि कंस ने स्वयं मेरी माँ देवकी को अनेक प्रकार का कष्ट दिया तथा अनेक बार पुत्र वियोग से आर्त किया। वृद्ध पिता वसुदेव को कारागार में डालकर स्वयं ही मृत्यु के द्वारा मार डाला गया। दुर्योधन कृष्ण से कहता है कि आप अपनी प्रशंसा बन्द करें। जब जरासंध ने आक्रमण किया उस समय आपकी शूरता कहाँ चली गयी थी। कृष्ण कहते हैं कि हे दुर्योधन! यह परिहास बन्द करो और सुनो। बन्धुओं से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करने पर इह लोक तथा परलोक दोनों के लिये लाभदायक होता है। दुर्योधन कहता है कि देवता के पुत्रों तथा मनुष्य के पुत्रों में किस प्रकार भाईचारे की सम्भावना हो सकती है।

दुर्योधन के इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर को सुनकर कृष्ण उसे समझाने के लिए अर्जुन के शौर्य-पराक्रम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि क्या तुम अर्जुन के पराक्रम को नहीं जानते, जिसने किरातवेषधारी शंकर के साथ युद्ध कर उन्हें सन्तुष्ट किया, खाण्डव वन में आग लगने पर बाणों की वर्षा कर उसे ढंक दिया तथा इन्द्र को कष्ट देने वाले निवात-कवच को क्रीड़ा करते हुए मार डाला तथा उसी ने अकेले विराट नगर में भीष्म पितामह आदि को पराजित भी किया। हे दुर्योधन! अधिक क्या कहूँ मेरे कहने से तुम अपना आधा राज्य दे दो नहीं तो सागरपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी को पाण्डव हर लेंगे। दुर्योधन कहता है कि यदि युद्ध में भीम रूप में वायु तथा अर्जुन के रूप में साक्षात् इन्द्र भी आ जाय तो भी हे कृष्ण! आपके कहने से राज्य का तृण भी नहीं दे सकता। कृष्ण कहते हैं कि तुम कुरुवंश को कलंकित करने वाले हो इसलिए तुम्हारे साथ तृण मध्य में रखकर भाषणीय हैं। दुर्योधन कहता है कि आप तृण को ही मध्य में रखकर बोलने योग्य हैं क्योंकि सर्वथा अवध्य अबला स्त्री को मारकर घोड़े और बैल का संहार करके तथा मल्ल-मुष्टिकादि को मारकर अब सज्जनों से वार्तालाप करना चाहते हो, दुर्योधन कृष्ण से बात करना बन्द कर देता है। कृष्ण कहते हैं कि शठ, भाइयों पर क्रूरता करने वाले, काक, केकर,

बन्दर ! तुम्हारे कारण सम्पूर्ण कुरुवंश का शीघ्र ही विनाश हो जायेगा ।

कृष्ण वहाँ से जाने के उद्यत होते हैं । दुर्योधन उन्हें बाँधने के लिए वहाँ पर उपस्थित लोगो से कहता है । जब कोई तैयार नहीं होता है तो दुर्योधन स्वयं उद्यत होता है । तब कृष्ण अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं, जिससे दुर्योधन चकाचौंध हो जाता है परन्तु बन्धन बनाने की बात पुनः दोहराता है जिससे कृष्ण क्रोधित हो जाते हैं और दुर्योधन के वध के निमित्त सुदर्शनचक्र को बुलाते हैं । सुदर्शनचक्र उपस्थित होता है और कहता है कि हे भगवन् ! आज्ञा दें—क्या मेरु और मन्दर पर्वत कुलों को उखाड़ फेकूँ या ग्राह-मकर आदि के घररूप समुद्र का ही मथन कर डालूँ या सम्पूर्ण आकाश के नक्षत्रमण्डल को पृथ्वी पर गिरा दूँ ! आपकी कृपा से मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । कृष्ण दुर्योधन को मारने के लिए सुदर्शन से कहते हैं । परन्तु सुदर्शनचक्र कृष्ण से प्रार्थना करते हुए निवेदन करता है कि हे देव ! सम्पूर्ण पृथ्वी का भार हलका करने के लिए आपने पृथ्वी पर अवतार लिया है । इस दुर्योधन की मृत्यु हो जाने पर आपका सम्पूर्ण श्रम विफल हो जायेगा । कृष्ण कहते हैं कि क्रोध के कारण मैं अपना कर्तव्य भूल गया था तुम वापस लौट जाओ । उसी समय भगवान कृष्ण के शार्ङ्ग-धनुष, कोमोदिकी गदा, पाञ्चजन्य शख, नन्दक तलवार आदि अस्त्र आ जाते हैं । सुदर्शन कहता है कि शत्रुओं के लिए अग्नि स्वरूप हे शार्ङ्गधनुष, कौमोदक गदा, पाञ्चजन्य शख, नन्दक तलवार, भगवान् कृष्ण का क्रोध शान्त हो गया है इसलिए आप अपने-अपने स्थान पर जाय, सभी वापस लौट जाते हैं । उसी समय गरुड़ भी वहाँ आ जाते हैं, उन्हे भी वापस भेजते हैं । सबको वापस भेजकर स्वय सुदर्शन भी मेरुपर्वत की गुहा में चला जाता है ।

इसके पश्चात् कृष्ण भी पाण्डव शिविर में जाने के लिए उद्यत होते हैं । उसी समय धृतराष्ट्र वहाँ उपस्थित होते हैं तथा श्रीकृष्ण से अपने पुत्र द्वारा किये गये व्यवहार के कारण क्षमा-याचना करते हैं और अर्घ्य-पाद्य ग्रहण करने के लिए निवेदन करते हैं । श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और अर्घ्य-पाद्य स्वीकार करते हैं, तथा धृतराष्ट्र को पुनः वापस भेज देते हैं । अन्त में भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है ।

नाटक का नामकरण—

नाटक के नाम 'दूतवाक्यम्' से ही सम्पूर्ण कथानक स्पष्ट है। पाण्डवों की तरफ से श्रीकृष्ण शान्ति का प्रस्ताव लेकर सन्देशवाहक (दूत) बनकर कौरवों के यहाँ जाते हैं। उस अवसर पर दुर्योधन एवं श्रीकृष्ण के साथ आपस में जो वार्तालाप होता है उसका भी उल्लेख है। अतएव यह नाटक दूत (श्रीकृष्ण) के वाक्य—संधि प्रस्ताव—पर आधारित है।

नाटकीय कथा का मूलस्रोत—

प्रस्तुत नाटक का आधार महाभारत की कथा है। महाभारत के पंचम पर्व के भगवद्यान पर्व में वर्णित है कि उत्तरा-अभिमन्यु के परिणय के अनन्तर कौरव-पाण्डव में सन्धि हेतु पूर्ण प्रयत्न किया गया, जिससे पाण्डवों को अपना हिस्सा प्राप्त हो जाय परन्तु यह कार्य सफल नहीं हो सका। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर ही यह दायित्व सौंपा कि आप सन्धि करा दें, और हमलोगों का हिस्सा दिला दें। युधिष्ठिर के आग्रह को स्वीकार कर भगवान् श्रीकृष्ण दौत्यकर्म के लिए हस्तिनापुर गये।

जब धृतराष्ट्र को मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण दूत के रूप में आ रहे हैं तो उनके स्वागत का राजसी प्रबन्ध किया। सर्वप्रथम श्रीकृष्ण कुन्ती के यहाँ गये वहाँ से वे दुर्योधन के यहाँ गये, दुर्योधन ने अनेक राजाओं के साथ उनका स्वागत किया, परन्तु दुर्योधन के द्वारा आयोजित भोज में वे भाग नहीं लिये और वहाँ से वे विदुर के घर गये। वहीं पर रात्रि में श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि कौरव युद्ध के निमित्त पूरी तैयारी कर चुके हैं। आपकी बात को स्वीकार नहीं करेंगे तथा आपका परिश्रम व्यर्थ जायेगा। इस बात की जानकारी होने पर भी श्रीकृष्ण अपने कार्य तथा उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। दूसरे दिन विदुर के साथ वे राजदरबार में उपस्थित होते हैं, तथा सबको यथोचित आसन ग्रहण करने के पश्चात् वे धृतराष्ट्र से बताते हैं कि पाण्डवों के तरफ से सन्धि प्रस्ताव लेकर मैं आया हूँ। धृतराष्ट्र के सलाह पर श्रीकृष्ण दुर्योधन से पाण्डवों का हिस्सा देने तथा युद्ध की भयंकरता एवं भीषण रक्तपात से बचने के लिए कहते हैं। भीष्म,

द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर आदि सभी दुर्योधन से श्रीकृष्ण की सलाह मान लेने तथा पाण्डवों का हिस्सा देने के लिए कहते हैं, परन्तु दुर्योधन अपनी बात पर दृढ़ता प्रकट करते हुए कहता है कि बिना युद्ध के सूई की नोक के बराबर भी भूमि में पाण्डवों को नहीं दूंगा। जब श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के ऊपर लगाये गये आक्षेपों तथा अपमानित करने की बात कहते हैं तो यह सुनकर दुर्योधन क्रोधित होकर राजभवन से अपने भाइयों एवं राजकुमारों के साथ चल दिया। विदुर के द्वारा प्रार्थना करने पर पुनः राजसभा में आता है। वहाँ पर उसकी माता गान्धारी भी उससे श्रीकृष्ण की बात को मानने के लिए कहती हैं परन्तु वह किसी की बात को नहीं स्वीकार करता है। वह श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने के लिए शकुनि, कर्ण, दुश्शासन से कहता है परन्तु उसके पिता धृतराष्ट्र इस निन्द्य कार्य से उसे रोकते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना विराट् रूप दर्शाया जिसे कृष्ण की कृपा से धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म, विदुर एवं संजय ने देखा।

धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के चरणों पर नतमस्तक होकर क्षमा-याचना करते हैं। श्रीकृष्ण सभा छोड़कर पुनः कुन्ती के यहाँ गये। अन्त में सन्धि वार्ता की असफलता एवं दुर्योधन का मिथ्या अहंकार दर्शाया गया है।

मूल कथा में परिवर्तन—

दूतवाक्यम् नाटक में दुर्योधन को राजा के रूप में चित्रित किया गया है परन्तु महाभारत में धृतराष्ट्र राजा है। मूल कथा में श्रीकृष्ण विदुर के यहाँ रुकते हैं और वहीं पर दुर्योधन एवं शकुनि उन्हें सभा में सम्मिलित होने के लिए निवेदन करते हैं। सभा में धृतराष्ट्र सिहासन पर विराजमान हैं तथा सभी राजागण एवं सभासद उपस्थित हैं। श्रीकृष्ण पाण्डवों के सन्देश को धृतराष्ट्र से कहते हैं तथा श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को सभी लोग दुर्योधन से स्वीकार कर लेने के लिए कहते हैं परन्तु वह युद्ध के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ रहता है। तब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर छोड़कर पाण्डवों के शिविर में चले जाते हैं।

कुरुक्षेत्र के मैदान के लिए सेना सजकर चलती है तथा दुर्योधन एवं उसके अनुयायी सैन्य संचालन के लिए भीष्म पितामह से निवेदन करते हैं।

जबकि प्रस्तुत नाटक में सभी सभासद किसी सेनापति के चयन हेतु एकत्रित होते हैं, शकुनि के सुझाव पर भीष्म सेनापति चुने जाते हैं।

समीक्षण—

महाकवि भास द्वारा विरचित दूतवाक्यम् नाटक एक अङ्कीय होते हुए भी सभी दृष्टियों से सफल है। इस नाटक के पात्र, कथानक, संवाद, शैली, भाषा आदि सभी दृष्टियों से चित्राङ्कन में नाटककार सफल है। यह नाटकीय दृष्टि से 'व्यायोग' की कोटि में आता है क्योंकि व्यायोग की घटना ऐतिहासिक होती है, नायक गर्वयुक्त तथा स्त्री पात्र का अभाव होता है, युद्ध का भी वर्णन होता है। दूतवाक्यम् में ये सभी लक्षण विद्यमान है।

नाटक का नामकरण भी बहुत ही उपयुक्त तथा सार्थक है। भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरादि पाण्डवों के कहने पर स्वयं दूत रूप में संधि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के पास गये हैं। सम्पूर्ण नाटक का घटनाचक्र दूत वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों पर ही अवलम्बित है, वे अपने वाणी के द्वारा दुर्योधन को कभी उद्वेलित करते हैं तो कभी शान्त करते हैं। इस नाटक के नाटकीय पात्रों का आपसी संवाद कथानक को जीवंतता प्रदान करते हुए गतिशील रहता है, पाठक या दर्शक ऊबता नहीं है जब कि महाभारत में वर्णित मूल कथा में श्रीकृष्ण और दुर्योधन में लम्बा कथनोपकथन है जिससे पाठक ऊबने लगता है। इस एकांकी में दुर्योधन अपनी तर्कशक्ति के द्वारा श्रीकृष्ण को परास्त करना चाहता है परन्तु अपनी तर्कशक्ति के द्वारा श्रीकृष्ण उसे परास्त करते हैं। इस एकांकी नाटक का मुख्य रस वीर है तथा सम्पूर्ण वीररस के भरे वचनों से ओत-प्रोत है। श्रीकृष्ण के विराट् रूप का प्रदर्शन तथा उनकी इच्छा से उनके आयुधों का रंगमंच पर अवतरण अद्भुत रस अच्छा परिपाक उपस्थित करता है। इसमें मुख्यतः आरभटी वृत्ति की योजना की गयी है। एकांकी में अलंकारों का सुन्दर निदर्शन सहजता एवं सरलतापूर्वक हुआ है। मुख्यरूप से उपमा, रूपक, स्वभावोक्ति, सहोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग कर कवि ने अपने कलाकौशल का परिचय दिया है। अनेक श्लोकों में उतम चित्रयोजना भी है।

इस एकांकी के सम्बन्ध में प्रो० विन्तरनित्स का विचार है कि यह नाटक किसी वृहत महाभारतीय नाटक का छोटा रूप है। परन्तु नाटक को देखने से उसकी पूर्णता तथा सफलता सर्वथा उसे एक अलग तथा स्वतन्त्र रचना की कोटि में लाती है। इसलिए उस तर्क को प्रमाण की अनुपलब्धि से, प्रमाण्य की कोटि में नहीं स्वीकार किया जा सकता। पात्रों के चरित्राङ्कन में नाटककार ने सिद्धहस्तता हासिल की है। नाटककार ने दुर्योधन के चरित्र में मानवीय गुणों को अधिक दर्शाया है जबकि महाभारत में दुर्योधन के अनैतिक आचरण को अधिक दर्शाया गया है।

राजनीतिक सिद्धान्तों का इस नाटक में सुन्दर वर्णन हुआ है। दायाद्य के विषय में दुर्योधन का कथन द्रष्टव्य है—

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान्।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्॥
१।२१

अर्थात् वन में शिकार खेलते समय मेरे चाचा पाण्डु को मुनि ने शाप दे दिया, तभी से वे स्त्री के साथ रतिक्रीड़ा से विरक्त हो गये। इसलिए दूसरे पुरुषों से उत्पन्न हुए पुत्र को दायाद्य कैसा?

दुर्योधन के इस प्रश्न का बहुत ही सुन्दर तथा सटीक उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम्।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते॥
१।२२

अर्थात् तुम्हारा पितामह विचित्रवीर्य अत्यन्त विषयासक्त होने के कारण क्षय रोग से ग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। पुनः अम्बिका में व्यास के द्वारा उत्पन्न हुआ तुम्हारा पिता धृतराष्ट्र राज्य का उत्तराधिकारी कैसे हुआ?

नाटक में सुन्दर राजनीतिक सिद्धान्तों का भी वर्णन हुआ है। दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहता है कि राज्य मांगने से नहीं मिलता बल्कि उसे पराक्रम से प्राप्त किया जाता है—

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ ।२४।

अर्थात् सहृदय राजपुत्र शत्रुओं को पराजित कर राज्य प्राप्त करते हैं, संसार में कहीं भी राज्य माँगा नहीं जाता और न ही दीन-हीन याचना करनेवाले को दिया ही जाता है। यदि पाण्डवों को राज्य की इच्छा हो तो वे शीघ्र युद्ध करें अथवा शान्ति चाहते हों तो वन में किसी आश्रम में जाकर रहें।

इस प्रकार कहा जा सकता ह कि महाकवि भास के द्वारा विरचित दूतवाक्यम् नाटक एक सफल नाटक है। इस नाटक में उक्ति-प्रत्युक्ति की भङ्गी अपनी विशिष्टता से बरबस आकृष्ट करती है।

नाटकीय पात्र-परिचय

काञ्चुकीयः — दुर्योधनस्य भृत्यो बादरायणः
दुर्योधनः — कौरवराजः
वासुदेवः — पाण्डवदूतः श्रीकृष्णः
सुदर्शनः — श्रीकृष्णस्यायुधम्
धृतराष्ट्रः — दुर्योधनस्य पिता

भासनाटकचक्रे

दूतवाक्यम्

'गङ्गा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः ।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे ॥ १ ॥

विश्वात्मानमजं विष्णुं कृष्णं नत्वा जगद्गुरुम् ।
दूतवाक्यस्य नाट्यस्य कुर्वे टीकां यथामति ॥

अथ महाकविर्भासः दूतवाक्याभिधानं नाम नाटकं चिकीर्षुः तस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिकामनया स्वेष्टदेवतारूपोपेन्द्रचरणस्य परिश्रवर्णनात्मकस्तुतिरूपं मङ्गलाचरणम् शिष्यप्रशिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ प्रतिबध्नाति पाद इति ।

अन्वयः—सर्वलोकोत्सवः उपेन्द्रस्य सः पादः वः पायात् , तनुताम्रनखेन येन खे नमुचिः व्याविद्धः ॥ १ ॥

पादेति—सर्वलोकोत्सवः सर्वेषां लोकानामुत्सवः=अशेषभुवनकल्याण-

(नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—सारे संसार का कल्याण करने वाला वामन रूपधारी भगवान् विष्णु का वह चरण आप सभी सामाजिकों की एवं दर्शकों की रक्षा करे जिसने अपने तीक्ष्ण तथा लाल नखों से नमुचि नामक दैत्य को आकाश में वेध कर मार डाला ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग! पश्यामि।

(नेपथ्ये)

भोः भोः प्रतिहाराधिकृताः! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

कारी, भगवता वामनरूपेण बलेः सकाशं त्रिभिः पदैः लोकत्रयं विजित्य इन्द्राय दत्तम् तेन लोककल्याणमभूत्। उपेन्द्रस्य=इन्द्रावरजस्य वामनरूपविष्णोरित्यर्थः अदित्यामिन्द्रापेक्षया कनिष्ठत्वेन जायमानत्वात्। सः=प्रसिद्धः। पादः=चरणः। वः=युष्मान् सामाजिकान् दर्शकांश्च पायात्=अभिरक्षेत्। तनुताम्रनखेन तनु=सूक्ष्मम् ताम्रनखम्=ईषद्रक्तवर्णनखरं यस्य तेन। येन=पादेन। खे=आकाशे। नमुचिः=एतन्नामको राक्षसः। व्याविद्धः=विदीर्य मारितः। इयं कथा श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे १७–२० अध्यायपर्यन्तं वर्तते। अनुष्टुप् छन्दः। उत्सवः स वः इत्यत्र छेकानुप्रासश्च ॥ १ ॥

आर्यमिश्रान् आर्याश्च ते मिश्रास्तान्=कुलशीलवयोरूपादिसंपन्नसामाजिकश्रेष्ठान्। एवम्=अनेन प्रकारेण। विज्ञापयामि=संसूचयामि।

(नेपथ्ये=रङ्गभूमौ)

प्रतिहाराधिकृताः=प्रतिहारस्थाने नियुक्ताः।

नेपथ्यशब्दाद्विज्ञाय सूत्रधारः तान् स्पष्टयति—उत्पन्नेति।

अब मैं आप सभी महानुभावों से इस प्रकार निवेदन करता हूं। अरे! अभी सूचना देने में व्यग्र होते ही मुझे यह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है? अच्छा पता लगाता हूँ।

(पर्दे में)

हे हे प्रतिहार पर नियुक्त रहने वाले लोगों! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं।

सूत्रधार—अच्छा समझ गया।

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह ।
मन्त्रशालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

स्थापना

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहाराधिकृताः ! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्य सर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि । तदाहू-

---

अन्वयः—धार्त्तराष्ट्राणां पाण्डवैः सह विरोधे उत्पन्ने दुर्योधनाज्ञया भृत्यः मन्त्रशालां रचयति ॥ २ ॥

उत्पन्ने इति—धार्त्तराष्ट्राणाम्=धृतराष्ट्रस्यापत्यानि धार्त्तराष्ट्रास्तेषाम्=दुर्योधनादीनाम् ; पाण्डवैः=पाण्डुपुत्रैर्युधिष्ठिरादिभिः सह=साकम् विरोधे=वैरे शत्रुताभावे । उत्पन्ने=प्रादुर्भूते । दुर्योधनाज्ञया दुर्योधनस्याज्ञा तया=दुर्योधनादेशेन । भृत्यः=कर्मकरः सेवको वा मन्त्रशालाम्=मन्त्रणागृहम् । रचयति=निर्मापयति सम्माजंयतीत्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

(स्थापना—प्रस्तावना)

प्रतिहाराधिकृताः=प्रतिहारस्थाने राज्ञा नियुक्ताः । अभिवर्त्तते=आगच्छति ।

धृतराष्ट्र से उत्पन्न होने वाले दुर्योधनादिकों का पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरादि से वैर उत्पन्न होने पर सेवक लोग दुर्योधन की आज्ञा से सभा भवन का निर्माण कर रहे हैं। २ ॥

(इतना कहकर चला जाता है)

स्थापना

(इसके अनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—हे हे प्रतिहार स्थल पर पहरा देने वाले लोगों ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं कि मैं आज अपने सभी राजाओं के साथ मन्त्रणा करना चाहता हूँ इसलिये सभी राजागण बुलाये जायं।

यन्तां सर्वे राजान इति । (परिक्रम्यावलोक्य) अये अयं महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते । य एषः,

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः
सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागः ।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः ॥ ३ ॥

दुर्योधनं वर्णयति दूतः—श्यामो युवा इति ।

अन्वयः—(य एषः) श्यामः युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः सच्छत्रचामरवरः रचिताङ्गरागः श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः नक्षत्रमध्ये पर्वगतः शशाङ्क इव (शोभते) ॥ ३ ॥

श्याम इति—एषः=दुर्योधनः । श्यामः=वर्णेन श्यामः । युवा=तरुणः । सितदुकूलकृतोत्तरीयः सितेन=शुभ्रवर्णेन दुकूलेन=क्षौमवस्त्रेण कृतम्=विहितम् उत्तरीयम्=प्रावारः येन सः तथोक्तः । सच्छत्रचामरवरः सत्=समीचीनम् छत्रम् चामरवरं च यस्मिन् सः=शोभनच्छत्रचामरशोभमानः । रचिताङ्गरागः रचितः=विहितः अङ्गेषु=शरीरावयवेषु रागः=अनुलेपनः येन सः । श्रीमान्=श्रीः अस्ति अस्येति श्रीमान् श्रिया युक्तः शोभासंपन्नो वा । विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः विभूषणार्थं धृता ये मणयः तेषां द्युतिभिः=प्रकाशैः रञ्जितानि=प्रकाशितानि अङ्गानि=शरीरावयवाः यस्य तादृशः । नक्षत्रमध्ये नक्षत्राणां=उडुगणानां तारकाणां मध्ये=मध्यभागे । पर्वगतः पर्वणि=पौर्णमास्याम् गतः=संप्राप्तः । शशाङ्कः=

(टहलते हुये सामने की ओर देखकर) अरे यह महाराज दुर्योधन इधर को ओर ही आ रहे हैं ।

श्यामल वर्ण का यह नवयुवक श्वेत रेशमी वस्त्र का उत्तरीय धारण किये श्वेत छत्र और श्वेत वर्ण का चामर धारण किये शरीर में अङ्गरागादि लगाये हुये है। और शरीर पर धारण किये गये मणिमय आभूषणों की छटा से श्रीयुक्त इसका शरीर इस प्रकार देदीप्यमान हो रहा है जिस प्रकार नक्षत्र मण्डलमध्यवर्ती पूर्णिमा का चन्द्रमा प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो दुर्योधनः ।)

दुर्योधनः—

उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षं
प्राप्त रणोत्सवमिमं सहसा विचिन्त्य ।
इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना-
मुत्कृत्तदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुम् ॥ ४ ॥

चन्द्रः । इव—यथा । शोभते=राजते । वसन्ततिलकावृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ३ ॥

(यथानिर्दिष्टः=पूर्वोक्तः)

अन्वयः—सहसा प्राप्तं इमं रणोत्सवं विचिन्त्य उद्धूतरोषम् इव मे हृदयम् सहर्षं (जातम्) । अतः पाण्डवबले वरवारणानाम् मुखानि उत्कृत्तदन्तमुसलानि कर्त्तुम् इच्छामि ॥ ४ ॥

उद्धूतेति—सहसा=झटिति । प्राप्तम्=उपस्थितम् । इमम् वर्त्तमानं । रणोत्सवम्=संग्राममहः । विचिन्त्य=ज्ञात्वा । उद्धूतरोषम् उद्धूतः=विनष्टः रोषः=क्रोधः यस्मिन् तथाभूतं मे=मम । हृदयम्=चित्तम् । सहर्षम्=समुदम् । जातम् इति शेषः । (अतः) पाण्डवबले=पाण्डवसेनायाम् । वरवारणानाम् वराश्च ते वारणास्तेषाम्=महागजानाम् । मुखानि=आननानि उत्कृत्तदन्तमुसलानि उत्कृत्ताः उत्पाटिताः दन्ताः=रदाः मुसला इव येषु तानि तथाभूतानि । कर्त्तुम्=विधातुम् । इच्छामि=अभिलषामि । सहसा प्राप्तेऽस्मिन् रणे पाण्डवसैनिकगजानां विनाशं करिष्यामीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ४ ॥

(तदनन्तर उपर्युक्त प्रकार से वर्णित दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन आज क्रोध नष्ट हो जाने से मेरा हृदय प्रसन्न है । इतना ही नहीं सहसा इस रणमहोत्सव के उपस्थित हो जाने से पाण्डवसेना के मद, मत्त गजराजों के मुसल जैसे विशाल दाँतों को उखाड़ कर उनके मुखों को दन्तहीन करने की इच्छा होती है ॥ ४ ॥

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम् ।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम् । प्रविश त्वमवरोधनम् ।

काञ्चकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

दुर्योधनः—आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः । अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हति । किं किमाहतुर्भवन्तौ—महान् खल्वयमर्थः । मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति । युक्तमेतत् । तदागम्यतां मन्त्रशालामेव प्रविशामः । आचार्य ! अभिवादये प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम् । पितामह ! अभिवादये । प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम् । मातुल ! अभिवादये । प्रविशतु भवान् मन्त्र-

---

कञ्चुकीयः—महाराजशासनात् महाराजस्य शासनम्=निदेशः तस्मात् । समानीतम्=उपस्थापितम् । राजमण्डलम्=राजसमूहः ।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम्=समीचीनं संपादितम् । अवरोधनम्=अन्तःपुरम् ।

कञ्चुकीयः—(निष्क्रान्तः=झटिति ततः प्रस्थितः) ।

दुर्योधनः—खलु=निश्चये । अर्थः=प्रश्नसारः । मन्त्रयित्वा—मन्त्रणां कृत्वा । मन्त्रशालाम्=सभागृहम् । स्वैरम्=शनैः शनैः । वयस्य=मित्र ।

कञ्चुकीय—महाराज की जय हो । महाराज की आज्ञा से सभी राजागण बुला लाये गये हैं ।

दुर्योधन—बहुत अच्छा किया । अब तुम अन्तःपुर में जाओ ।

कञ्चुकीय—जैसी महाराज की आज्ञा (इतना कहकर चला जाता है) ।

दुर्योधन—हे आर्य वैकण एवं वर्षदेव ! बताओ मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना का यह समूह उपस्थित है । तो इसका सेनापतित्व करने योग्य कौन है ? क्या कहा कि 'यह कहना निश्चय ही कठिन है । मन्त्रणा करने के बाद ही इस विषय में कुछ कहा जा सकता है ।' यह बात तो युक्तियुक्त है । तो आइए हम सभी सभा-भवन में चलें । आचार्य ! आपका अभिवादन करता हूँ । सभाभवन में पधारिये । पितामह ! आपका अभिवादन करता हूँ आप

शालाम् । आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! प्रविशतां भवन्तौ । भो भोः सर्वक्षत्रियाः ! स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तः । वयस्य ! कर्ण ! प्रविशामस्तावत् ।

(प्रविश्य)

आचार्य ! एतत् कूर्मासनम्, आस्यताम् । पितामह ! एतत् सिंहासनम्, आस्यताम् । मातुल ! एतच्चर्मासनम्, आस्यताम् । आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! आसातां भवन्तौ । भो भोः सर्वक्षत्रियाः ! स्वैरमासतां भवन्तः । किमिति किमिति महाराजो नास्त इति । अहो सेवाधर्मः । नन्वयमहमासे । वयस्य कर्ण ! त्वमप्यास्स्व । (उपविश्य ।) आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः । अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति । किमाहतुर्भवन्तौ—अत्रभवान्

गाङ्गेये=भीष्मपितामहे । अभिलषामः=इच्छामः । अत्र आकाशभाषितमपि विद्यते—तल्लक्षणं यथा दशरूपके (१।६७)—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥

सभाभवन में चलें । मामाजी ! अभिवादन करता हूँ आप सभाभवन में चलें । आर्य वैकर्ण एवं आर्य वर्षदेव ! आप दोनों भी सभाभवन में प्रवेश करें । अच्छा मित्र कर्ण ! अब हम सब भी सभाभवन में प्रवेश करें ।

(प्रवेश कर)

आचार्य ! यह कूर्मासन आपके लिये । है इस पर विराजिये । पितामह यह सिंहासन है इस पर आप बैठिये । मामाजी ! यह (मृग का) चर्मासन है आप भी बैठिये । आर्य वैकर्ण एव आर्य वर्षदेव ! आप दोनों भी बैठें । अच्छा अब सभी क्षत्रियगण धीरे-धीरे आप लोग भी बैठ जायें । अरे यह क्या (कहा) जो महाराज आसन पर आसीन नहीं हो रहे हैं ? अरे सेवा धर्म कठिन होता है । लीजिये यह मैं बैठ गया । अच्छा मित्र कर्ण ! तुम भी बैठो । (बैठकर) आर्य वैकर्ण एवं आर्य वर्षदेव ! मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना का समुदाय है तो इसका सेनापति होने योग्य कौन है ? आपलोग क्या कहते हैं कि गान्धारराज शकुनि इसे बतलायेंगे । अच्छा मामा ही

गान्धारराजो वक्ष्यतीति। भवतु, मातुलेनाभिधीयताम्। किमाह मातुलः—अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्यः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति। सम्यगाह मातुलः। भवतु भवतु, पितामह एव भवतु। वयमप्येतदभिलषामः।

सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादै-
श्चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः।
गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैरभिषेकतोयैः
सार्धं पतन्तु हृदयानि नराधिपानाम् ॥ ५ ॥

दुर्योधनः सर्वाभिमतं गाङ्गेयं सेनापतित्वेन प्रतिष्ठापयति—

अन्वयः—चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादैः गाङ्गेयमूर्ध्निपतितैः अभिषेकतोयैः सार्धम् नराधिपानां हृदयानि पतन्तु ॥ ५ ॥

सेनेत्यादि—चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः चण्डैः=प्रचण्डैः अनिलैः=वायुभिः आहतस्य=आघातं प्रापितस्य महोदधेः=समुद्रस्य नादेन कल्पैः=तुल्यैः महासागरतुल्यघोषैरित्यर्थः। सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादैः सेनायाः=बलानां निनादः=घोषः पटहानाम्=वाद्यविशेषाणां स्वनः=शब्दः शङ्खानाम्=कम्बूनां नादः=रवश्चेत्येतैः उपलक्षितैः। गाङ्गेयमूर्ध्नि=भीष्मशिरसि। पतितैः=उत्सृष्टैः अभिषेकतोयैः=अभिषेक-

---

सही वही बतलायें। अरे मामाजी ने क्या कहा कि यहाँ भीष्मपितामह के रहते दूसरा कौन इस सेना का संचालन कर सकता है? मामाजी ने यह बात तो ठीक ही कही, अच्छा अच्छा! पितामह ही सेनापति बनें। यह हम सभी की इच्छा है।

प्रचण्ड वायु के चलने से तरङ्गित समुद्र की गर्जना के समान सेना के कोलाहल, नगाड़े तथा शङ्ख के निनाद से युक्त भीष्म के मस्तक पर अभिषिक्त मन्त्रपूत जलों के साथ समस्त राजाओं का हृदय भी उधर ही आकृष्ट हो। अर्थात् अनेक प्रकार के भेरी शङ्खादि वाद्यों के शब्दों के साथ ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रपूत जलों से अभिषिक्त भीष्म को आप लोग देखें ॥ ५ ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु पाण्डवस्कन्धावाराद् दौत्येनागतः पुरुषोत्तमो नारायणः।

दुर्योधनः—मा तावद् भो बादरायण ! किं किं कंसभृत्यो दामोदरस्तव पुरुषोत्तमः। स गोपालकस्तव पुरुषोत्तमः। बार्हद्रथापहृतविषयकीर्त्तिभोगस्तव पुरुषोत्तमः। अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचारः। सगर्वं खल्वस्य वचनम्। आः अपध्वस ?

जलैः। सार्धम्=साकम्। नराधिपानाम्=समागतराज्ञाम्। हृदयानि=चेतांसि। पतन्तु=आकृष्टानि भवन्त्वित्यर्थः अथवा शत्रूणां विनश्यन्तु। वसन्ततिलकावृत्तम्। सहोक्तिरलङ्कारः॥ ५॥

कञ्चुकीयः—पाण्डवस्कन्धावारात् पाण्डवानाम्=युधिष्ठिरादीनाम् स्कन्धावारः शिविरप्रदेशस्तस्मात्। दौत्येन=दूतकार्यंचिकीर्षया। आगतः=संप्राप्तः। पुरुषोत्तमः=पुरुषश्रेष्ठः। नारायणः=श्रीकृष्णः।

दुर्योधनः—मा तावद्=एवं मा वद। बादरायणः दूतस्य नाम। दामोदरः दाम=रज्जुः उदरे यस्य तादृशः। मात्रा रज्वा उलूखले बद्ध इति यावत्। गोपालः=गोरक्षकः। बार्हद्रथापहृतविषयकीर्त्तिभोगः बार्हद्रथेन=जरासंधेन अपहृतः विषयः=देशः कीर्त्तिः=यशः भोगश्च=आनन्दः यस्य सः। आचारोल्लङ्घनात् भृत्यं भर्त्सितुमुपक्रमते अहो—अहो=इत्याश्चर्ये। समुदाचारः=आचारोल्लङ्घनम्। अपध्वस=रे महानीच नीचैः पत।

(प्रवेश कर)

कञ्चुकीय—महाराज की जय हो। पाण्डवों के शिविर से दूत के रूप में पुरुषोत्तम नारायण पधारे हैं।

दुर्योधन—हे बादरायण ! ऐसा मत कहो। क्या क्या ! कंस के सेवक एवं रस्सी से जकड़े जाने वाले दामोदर तुम्हारे पुरुषोत्तम हैं। क्या जो गोपालक जाति वाला है वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है। क्या जरासंध ने जिसके देश, कीर्त्ति एवं सुख का अपहरण कर लिया वही पुरुषोत्तम है। ओह ! राजा के समीप में रहनेवाले भृत्यजनों की ऐसी धृष्टता ! अरे इसकी बात तो बड़ी गर्वीली है। अरे नीच ! भाग जा।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महाराज । सम्भ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः (पादयोः पतति ।)

दुर्योधनः—संभ्रम इति । आः मनुष्याणामस्त्येव संभ्रमः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

काञ्चुकीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दुर्योधनः—इदानीं प्रसन्नोऽस्मि । क एष दूतः प्राप्तः ।

काञ्चुकीयः—दूतः प्राप्तः केशवः ।

दुर्योधनः—केशव इति । एवमेष्टव्यम् ! अयमेव समुदाचारः । भो भो राजानः ! दौत्येनागतस्य केशवस्य किं युक्तम् । किमाहुर्भवन्तः । अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्यः केशव इति । न मे रोचते । ग्रहणमस्यात्र हितं पश्यामि ।

कञ्चुकीयः—संभ्रमेण=त्वरया विस्मृत्या वा ।

दुर्योधनः—एवम्=अनेन प्रकारेण एष्टव्यम्=वक्तुमुचितम् । समुदाचारः=सौजन्यम् । मे मह्यम् न रोचते=न प्रतिभाति । ग्रहणम्=वशीकरणम् बन्धनमित्यर्थः । अत्र=विषये । हितम्=हितकारकम् । पश्यामि=जानामि ।

कञ्चुकीय—महाराज प्रसन्न हों । घबराहट के कारण शिष्टाचार का ध्यान नहीं रहा । (ऐसा कहकर पैरों पर गिरता है) ।

दुर्योधन—क्या कहा घबराहट ? आः मनुष्यों को कभी-कभी ऐसी घबराहट हो ही जाती है ।

कञ्चुकीय—अनुगृहीत हुआ ।

दुर्योधन—अच्छा इस समय प्रसन्न हूँ । बताओ कौन दूत बनकर आया है ।

कञ्चुकीय—वही जिसका नाम केशव है (के=जले शवः जल में बहने वाला मुर्दा) ।

दुर्योधन—केशव ! यही कहना चाहिये । यही शिष्टाचार है । हे हे राजाओ ! दूत के रूप में आये हुये उस केशव के लिये क्या उचित है । आपलोग क्या कहते हैं कि अर्घ्य दान देकर उन (केशव) की पूजा करनी

ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे
हृतनयना इव पाण्डवा भवेयुः।
गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना ॥ ६ ॥

अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण दण्ड्यः। तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः। को नु खलु ममाप्रत्युत्थानस्योपायः। हन्त दृष्ट उपायः। बादरायण! आनीयतां स चित्रपटो

इदानीं वासुदेवग्रहणफलं दुर्योधन उपपादयति—

अन्वयः—वासुभद्रे ग्रहणम् उपगते तु पाण्डवाः हृतनयना इव भवेयुः। गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु मम अखिला अपि क्षितिः असपत्ना भवेत् ॥६॥

वासुभद्रे—('विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदलोपो वा वक्तव्यः' सत्या भामा इतिवत् तेनात्र वासुपदं वासुदेवपक्षबोधकम्)=श्रीकृष्णे। ग्रहणम्=बन्धनम्। उपगते=प्राप्ते। तु पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः। हृतनयनाः हृतानि नयनानि येषां ते तथाभूताः=विनष्टचक्षुषः इव=यथा ; भवेयुः=स्युः। एवं च तेषु गतिमतिरहितेषु गतिश्च मतिश्च तयोः रहिताः तेषु=मार्गदर्शकाभावेन किंकर्त्तव्यविमूढेषु पाण्डवेषु सत्सु मम अखिलापि=अशेषापि। क्षितिः=भूमिः। असपत्ना=विपक्षरहिता निष्कण्टका इत्यर्थः। भवेत्=स्यात्। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ६ ॥

चाहिये। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी ! इसे पकड़कर बाँध रखने में ही भलाई समझता हूं।

भद्र वासुदेव को पकड़कर बंधन में ले लेने के पश्चात् पाण्डव अन्धे जैसे हो जायँगे। फिर पाण्डवों के गति (उपाय) और मति (बुद्धि) के अभाव हो जाने पर यह सारी पृथ्वी मेरे लिये निष्कण्टक हो जायगी और मैं इसका एकच्छत्र राज्य करूँगा ॥ ६ ॥

इतना ही नहीं इस सभा में जो भी केशव के लिये (आदर प्रदर्शनार्थ) प्रत्युत्थान करेगा—वह १२ सुवर्ण भार से मेरे द्वारा दण्डित किया जायगा इसलिये,आपलोग सावधान हो जावें। तो मैं अपने लिये उसके प्रति प्रत्युत्थान

ननु, यत्र द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमालिखितम् । (अपवार्य) तस्मिन् दृष्टिविन्यासं कुर्वन् नोत्थास्यामि केशवस्य ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । अयं स चित्रपटः ।

दुर्योधनः—ममाग्रतः प्रसारय ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (प्रसारयति) ।

दुर्योधनः—अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः । एष दुःशासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान् । एषा खलु द्रौपदी,

---

प्रत्युत्थास्यति=प्रत्युत्थानादिना स्वागतं करिष्यति । द्वादशसुवर्णभारेण द्वादशानां सुवर्णानां भारस्तेन पलसहस्रद्वितयं भारः तादृक्परिमाणेन द्वादशगुणितसंख्याकसुवर्णेनेत्यर्थः । दण्ड्यः=दण्डयितुं योग्यः । अप्रत्युत्थानस्य=स्वागतार्थं प्रत्युत्थानाकरणस्य । द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणम्=द्रौपद्याः केशानां अम्बराणां=वस्त्राणां च आकर्षणम्=आकृष्टिर्यथा स्यात्तथा आलिखितम्=चित्रितम् । (अपवार्य=पृथक्कृत्य) दृष्टिविन्यासम्=दृष्टिन्यासम् । नोत्थास्यामि=प्रत्युत्थानं न करिष्यामि ।

न करने का क्या उपाय खोजूँ । अच्छा उपाय तो मिल गया । हे वादरायण ! जिसमें द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचे जाने का चित्रण है उस चित्रपट को ले आओ । उसे देखने का बहाना बनाकर उसी पर दृष्टि गड़ाये रखूँगा । इस प्रकार केशव के आने पर मैं बैठा रहूँगा तथा प्रत्युत्थानादि से उनका सत्कार नहीं करूँगा ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा (जाकर पुनः लौटकर) महाराज की जय हो । यही वह चित्रपट है ।

दुर्योधन—मेरे संमुख इसे फैलाओ ।

कञ्चुकीय—महाराज की जैसी आज्ञा (चित्रपट फैलाता है) ।

दुर्योधन—अहो यह चित्रपट तो देखने के योग्य है । यह दुःशासन केशयुक्त हाथ में द्रौपदी को पकड़े हुये है । और यह है द्रौपदी ।

दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते ॥ ७ ॥

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति । एष युधिष्ठिरः,

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः ।

दुर्योधनः—चित्रपटे लिखितं वस्तुविन्यासं प्रकटयति—अहो इत्यादि पदेन ।

अन्वयः—दुशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना (इयं द्रौपदी) राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखा इव शोभते ॥ ७ ॥

दुःशासनेति—दुःशासनपरामृष्टा दुःशासनेन=दुर्योधनकनीयसा भ्रात्रा । परामृष्टा=परिमर्दिता केशाम्बराकर्षणेनेति शेषः । संभ्रमोत्फुल्ललोचना सम्भ्रमेण=भीत्या उत्फुल्ले=विकसिते नेत्रे=नयने यस्याः सा राहुवक्त्रान्तरगता राहोः वक्त्रे=वदने अन्तरगता=अभ्यन्तरीभूता चन्द्रलेखा=इन्दुकला इव=यथा शोभते=विराजते । इयं कथा विस्तरेण महाभारते सभापर्वणि द्रष्टव्या । अत्रोपमालंकारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ७ ॥

दुरात्मा=दुष्टस्वभावः । सर्वराजसमक्षम्=राजौघप्रत्यक्षम् । प्रवृद्धामर्षः=प्रवृद्धः अमर्षः=क्रोधः यस्य तादृशः । सभास्तम्भम्=सभास्थितम् स्तम्भम् । तुलयति=उत्पाटयति ।

चित्रपटगतां तदानींतनां युधिष्ठिरावस्थां वर्णयति दुर्योधनः—

अन्वयः—सत्यधर्मघृणायुक्तः द्यूतविभ्रष्टचेतनः (एष युधिष्ठिरः)

दुःशासन द्वारा केशों के घसीटने से जिस द्रौपदी की भयवश आँखें विकसित हो गई हैं ऐसी यह राहु के मुख में फँसे चन्द्र की कला जैसी शोभित हो रही है ॥ ७ ॥

यह दुष्टात्मा भीम है जो समस्त राजमण्डल के सामने अपमानित द्रौपदी को देखकर अत्यन्त क्रोध से तिलमिला कर सभागृह के खम्भों को उखाड़ रहा है । और यह हैं युधिष्ठिर ।

जो सत्य, धर्म एवं दया से युक्त होकर भी जूये में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो

करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम् ॥ ८ ॥

एष इदानीमर्जुनः,

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ-
स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत् ।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम् ॥ ९ ॥

अपाङ्गविक्षेपैः वृकोदरं शान्तामर्षं करोति ॥ ८ ॥

सत्येति—सत्यधर्मघृणायुक्तः सत्येन धर्मेण घृणया—दयया च युक्तः= सहितः । द्यूतविभ्रष्टचेतनः द्यूतेन=द्यूते पराजयेन विभ्रष्टा=विनष्टा चेतना=बुद्धिः यस्य स एवंभूतः एष युधिष्ठिरः अपाङ्गविक्षेपैः अपाङ्गानां= कटाक्षाणां विक्षेपैः=वीक्षणैः वृकोदरम्=भीमसेनम् शान्तामर्षं शान्तः अमर्षः= क्रोधः यस्य तम् तथाविधम् करोति=विदधाति । (इति चित्रपत्रे दर्शयति) अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ८ ॥

एवम् चित्रपटगतामर्जुनावस्थां वर्णयति दुर्योधनः—

अन्वयः—रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठः (अयम् अर्जुनः) तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा सर्वराज्ञः उत्सादयिष्यन् इव शनैः गाण्डिवज्याम् समाकर्षति ॥ ९ ॥

रोषेति—रोषाकुलाक्षः रोषेण=क्रोधेन आकुले=व्याप्ते अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः । स्फुरिताधरोष्ठः स्फुरितौ=अधरोष्ठौ=दन्तच्छदौ यस्य सः तथाविधोऽयमर्जुनः तत्=पुरोवर्तिशत्रुराजकम् । तृणाय=तृणसमम् । अकिञ्चित्करं मत्वा=परिज्ञाय सर्वराज्ञः=समस्तभूपान् । उत्सादयिष्यन्=

अपने कटाक्ष के सकेत से उन भीमसेन को शान्त कर रहे हैं। इसी समय अर्जुन दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ८ ॥

जिनकी आँखें क्रोध से लाल-लाल हो रही हैं और अधरोष्ठ फड़क रहे हैं इतना ही नहीं वे समस्त शत्रुसमूहों को तृण के समान समझते हुये समस्त राजमण्डल को उखाड़ फेंकने की मुद्रा में अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को खींच रहे हैं ॥ ९ ॥

एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति । एतौ नकुलसहदेवौ,

कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिशहस्तौ
परुषितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ ।
विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ ॥ १० ॥

निर्मूलयिष्यन् इव —यथा शनैः = मन्दं यथा स्यात्तथा गाण्डिवज्याम् गाण्डिवस्य ज्या मौर्वी = ताम् । समाकर्षति = सम्यक् प्रकारेणाकर्षणं करोति । उत्प्रेक्षालङ्कारः । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ९ ॥

इदानीम् क्रमप्राप्तां चित्रपटगां नकुलसहदेवावस्थां विशिनष्टि दुर्योधनः—

अन्वयः—कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिशहस्तौ परुषितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ विगतमरणशङ्कौ (इमौ नकुलसहदेवौ) मृगपोतौ तेजसा हरिम् इव मे भ्रातरम् अभिप्रयातौ स्तः ॥ १० ॥

कृतेति—कृतपरिकरबन्धौ कृतः = विहितः परिकरस्य = कटिप्रदेशस्य वस्त्रस्य बन्धो याभ्यां तौ । चर्मनिस्त्रिशहस्तौ चर्म = फलकं निस्त्रिशः = खड्गञ्च हस्ते ययोस्तौ । परुषितमुखरागौ परुषितं निष्ठुरीभूतम् मुखरागम् मुखवर्णम् ययोस्तौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ स्पष्टम् प्रत्यक्षम् यथा स्यात्तथा दष्टौ = चर्वितौ अधरोष्ठौ = दशनच्छदौ याभ्यां तौ । विगतमरणशङ्कौ विगता =

और यह युधिष्ठिर उन्हें ऐसा करने से रोक रहे हैं । और ये दोनों नकुल और सहदेव हैं ।

जो युद्ध के लिये तैयार होकर अपना फेटा कसकर बाँध चुके हैं । हाथ में ढाल और तलवार ले चुके हैं । क्रोध के कारण जिनके मुख विवर्ण होकर कठोर हो चुके हैं, जो क्रोध के कारण अपने दाँतों को ओंठ से चबा रहे हैं । और जो अपनी मृत्यु का भय त्याग कर अपने तेज से शीघ्रतापूर्वक इस प्रकार मेरे भाइयों पर आक्रमण के लिये उतावले हैं जैसे हिरण के बच्चे अपने मृत्यु का भय त्यागकर अपने तेज से सिंह को आक्रान्त कर रहे हों ॥ १० ॥

एष युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति—

नीचोऽहमेव विपरीतमतिः कथं वा
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः ॥ ११ ॥

मरणस्य = मृत्योः शङ्का संदेहः ययोस्तौ । (इमौ नकुलसहदेवौ) मृगपोतौ= हरिणशावकौ हरिम् = सिंहम् इव = यथा तेजसा = पराक्रमेण मम भ्रातरं= दुःशासनम् अभिप्रयातौ=अभियानं कृतवन्तौ । यथा हरिणशावकौ मृत्युशंकामविगणय्य स्वतेजसा सिंहं घर्षयतस्तथेमौ यमजावपि स्वतेजसा सिंहमिव मे भ्रातरमभियानं कृतवन्तौ स्तः इति भावः । अत्रोपमालंकारः । मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

युधिष्ठिरः कुमारौ = नकुलसहदेवौ उपेत्य = गत्वा । निवारयति निषेधति एवंभूतेन वचनेन—

अन्वयः—विपरीतमतिः अहमेव नीचः नयानयज्ञौ रोषं परित्यजतम् । सत्त्वाधिकेषु द्यूताधिकारम् अवमानम् अमृष्यमाणाः वचनीयपराक्रमाः कथं वा स्युः ॥ ११ ॥

नीच इति—विपरीतमतिः विपरीता = विपर्ययं गता मतिः बुद्धिर्यस्य सः । अहमेव = युधिष्ठिर एव नीचः = निकृष्टः । नयानयज्ञौ = नयश्च = नीतिश्च, अनयश्च = अनीतिश्च तौ जानीतः इति ; रोषम् = क्रोधम् । परित्यजतम् = परिजहीतम् । सत्त्वाधिकेषु = सत्त्वेषु = बलज्ञानादिषु अधिकास्तेषु ज्येष्ठेष्वस्मास्वित्यर्थः यद्वा बलवत्सु शत्रुगणेषु द्यूताधिकारम् कैतव-

---

और ये युधिष्ठिर उन कुमारों के पास जाकर उन्हें ऐसा करने से मना कर रहे हैं।

भाई ! मैं तो नीच ही हूँ । मेरी बुद्धि पलटी हुई है पर तुम दोनों तो न्याय और अन्याय जानने वाले हो । इसलिये इस समय क्रोध को किसी प्रकार शान्त करो । जूये में अपना अधिकार खो कर और अपमान को न सहकर अपने से बल में अधिक इन शत्रुगणों पर शक्ति प्रदर्शित करना तो मात्र अपनी वाचनिक वीरता होगी ॥ ११ ॥

एष गान्धारराजः,

अक्षान् क्षिपन् स कितवः प्रहसन् सगर्वं
सङ्कोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या ।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यभिखं नयज्ञः ॥ १२ ॥

क्रीडासामर्थ्यम् । अवमानम्=जयमानम् अमृष्यमाणाः=असहमानाः भवन्ति इति शेषः । वचनीयपराक्रमाः, वचनीयाः=निन्दनीयाः पराक्रमाः=सामर्थ्याः येषां ते तादृशा कथं स्युः=केन प्रकारेण भवेयुः ॥ ११ ॥

चित्रपटस्थितं गान्धारराजं शकुनिं दर्शयति दुर्योधनः—

अन्वयः—कितवः सः अक्षान् क्षिपन् सगर्वं प्रहसन् स्वकीर्त्या द्विषतां मुदं सङ्कोचयन् इव स्वैरासनः नयज्ञः (शकुनिः) रुदन्तीं द्रुपदराजसुतां काक्षेण पश्यति अभिखं लिखति च ॥ १२ ॥

अक्षानिति—कितवः=धूर्त्तः । सः=शकुनिः । अक्षान्=द्यूतक्रीडापाशान् ; क्षिपन्=प्रसारयन् । सगर्वम्=सदर्पम् । प्रहसन्=हास्यं कुर्वन् । स्वकीर्त्या=निजयशसा । द्विषताम्=शत्रूणाम् । मुदम्—प्रहर्षम् । संकोचयन्=लघूकुर्वन् । इव=यथा स्वैरासनः=स्वच्छन्दोपविष्टः । नयज्ञः=द्यूतन्यायकुशलः । (अयं शकुनिः) रुदन्तीम्=विलपन्तीम् । द्रुपदराजसुताम्=द्रौपदीम् । काक्षेण=अपाङ्गेन । पश्यति=अवलोकयति । अभिखम्=आकाशसंमुखम् । लिखति=आकाशे स्वाभिप्रायम् प्रकटयति । वसन्ततिलकावृत्तम् । उत्प्रेक्षालंकारः ॥ १२ ॥

और यह है गान्धार देश का राजा ।

यह धूर्त्त पासे को फेंकता है और गर्व से भरा हुआ हँस भी रहा है मानो अपनी कीर्ति से शत्रुओं की प्रसन्नता को संकुचित कर रहा हो। यह द्यूतनीति का पारङ्गत पण्डित शकुनि अपने आसन पर स्वच्छन्दतापूर्वक बैठा हुआ एक ओर सामने आकाश में कुछ लिख रहा है तो दूसरी ओर अपने कनखियों से रोती हुई द्रौपदी की ओर देख भी रहा है ॥१२॥

एतावाचार्यपितामहौ तां दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ। अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता - अहो युक्तलेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि कोऽत्र।

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः।

दुर्योधनः—बादरायण। आनीयतां स विहगवाहनमात्रविस्मितो दूतः।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः।)

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण।

आचार्यपितामहौ=द्रोणभीष्मौ। लज्जायमानौ=ह्रींपरिगतौ पटान्तान्तर्हितमुखौ पटान्ते=वस्त्राञ्चले अन्तर्हितम्=तिरोहितं मुखं याभ्यां तौ तथाभूतौ। पुनः चित्रपटं प्रशंसितुमुपक्रमते अहो इत्यादिना। वर्णाढ्यता=यथावसरं। शुक्लादिवर्णदानसौष्ठवम् भावोपपन्नता=भावप्रदर्शनसाफल्यम्। युक्तलेखता=स्पष्टतया औचित्येन च चित्रीकरणम्। सुव्यक्तन्तु=सुस्पष्टम्।

विहगवाहनमात्रविस्मितः विहायसा गच्छतीति विहगः पक्षिराजः गरुडः तादृशेनः वाहनमात्रेण विस्मितः=गर्वितः। दूतः=श्रीकृष्णाख्यः।

दुर्योधनः—वयस्य=प्रियमित्र कर्ण।

यह आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म उस अवस्था में बिलखती द्रौपदी को देखकर लज्जित हो वस्त्रांचल से मुख ढंक लिये हैं। अहा! इस चित्र पर कैसा चटक रंग दिया गया है। अहा इसका सुन्दर भाव कितना प्रशंसनीय है? ओह बहुत ही युक्तियुक्त इस चित्र का निर्माण किया गया है। और बड़ा ही स्पष्ट भाव अंकित हुआ है। मैं प्रसन्न हूं। अरे यहीं पर कौन?।

काञ्चुकीय महाराज की जय।

दुर्योधन—बादरायण। एक साधारण पक्षी के वाहन पर गर्व करने वाले उस दूत को बुलाओ।

काञ्चुकीय—महाराज की जैसी आज्ञा (कहकर चला जाता है)।

दुर्योधन—मित्र कर्ण।

प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः स कृष्णः ।
श्रोतुं सखे ! त्वमपि सज्जय कर्ण ! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥ १३ ॥

(ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च ।)

वासुदेवः—अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया

अन्वयः अद्य पाण्डवानां वचनात् कृष्णमतिः सः कृष्णः दौत्येन भृत्य इव प्राप्तः किल । अतः हे सखे कर्ण ! त्वमपि युधिष्ठिरस्य नारीमृदूनि वचनानि श्रोतुम् कर्णौ सज्जय ॥ १३ ॥

प्राप्त इति—अद्य=संप्रति । पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणाम् युधिष्ठिरादीनाम् । वचनात्=संमत्या वचसा वा । कृष्णमतिः कृष्णा=कलुषिता मतिः=बुद्धिर्यस्यासौ तादृशः कृष्णः वासुदेवः । दौत्येन=दूतकार्येण । भृत्यः=आज्ञाकरः, इव प्राप्तः=उपस्थितः । अतः हे सखे=हे मित्र । कर्ण=राधेय । त्वमपि । युधिष्ठिरस्य=ज्येष्ठपाण्डुपुत्रस्य । नारीमृदूनि नारी इव मृदूनि=कोमलानि याच्ञापराणि न तु वीरभाषितानि । वचनानि=वचांसि । श्रोतुम्=आकर्णयितुम् । कर्णौ=श्रोत्रे । सज्जय=समुद्यतौ विधेहि । भृत्य इवेत्यत्रोपमालंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १३ ॥

अद्य=संप्रति । खलु निश्चयेन । धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया धनञ्जयः=अर्जुनः तेन सह अकृत्रिमम् । स्वाभाविकी या मित्रता=सख्यम् तया ।

यह कलुषित बुद्धि वाला कृष्ण आज पाण्डवों के कहने से नौकर के समान दूत बनकर आया है । अतः हे कर्ण ! स्त्रियों जैसी युधिष्ठिर की कोमलता (कायरता) पूर्ण वाणी सुनने के लिये तुम भी अपने कानों को तैयार कर लो ॥ १३ ॥

(तदनन्तर कृष्ण और कञ्चुकीय प्रवेश करते हैं)

वासुदेव—आज निश्चय ही मैं धर्मराज द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अर्जुन से प्रगाढ़ मैत्री होने के कारण युद्ध के घमण्ड से परिपूर्ण तथा कहा न

चाहवदर्पमनुक्तग्राहिणं सुयोधनं प्रति मयाप्यनुचितदौत्यसमयोऽनुष्ठितः । अथ च,

कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ-
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य ।
भीमस्य कोपशिखिना युधि पार्थपत्त्रि-
चण्डानिलैश्च कुरुवंशवनं विनष्टम् ॥ १४ ॥

आहवदर्पम्=आहवस्य=युद्धस्य दर्पम्=अहङ्कारिणम् अत्र दर्पशब्दो दर्पशीलपरः । अनुक्तग्राहिणम् उक्तं न गृह्णातीति अनुक्तग्राहिणम्=हितमपि मदीयं वचनमाग्रहपरतया असंपादयन्तम् । अनुचितदौत्यसमयः मत्कृते उचितं न भवतीति अनुचितः अनुचितः दौत्यसमयः=दूतकर्म अनुष्ठितः=संपादितः ।

अथ भाविन कुरुवंशविनाशमुत्प्रेक्षमाणो भगवानाह —

अन्वयः—युधि रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य भीमस्य कृष्णापराभवभुवा कोपशिखिना पार्थपत्त्रिचण्डानिलैः च कुरुवंशवनं विनष्टम् (प्राप्तमिति जाने) ॥ १४ ॥

कृष्णेति—युधि=संग्रामे रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य रिपूणां वाहिनी रिपुवाहिनी=शत्रुसैन्यम् तस्यां ये इभाः=गजाः तेषां कुम्भस्थली=मस्तकं तस्य दलने=विदारणे तीक्ष्णा=अत्युग्रा गदा यस्य सः तस्य । भीमस्य=वायुपुत्रस्य कृष्णापराभवभुवा कृष्णायाः=द्रौपद्याः केशाम्बराकर्षणेन यः पराभवः=तिरस्कारः तस्माद् भवति=जायते इति

मानने वाले उस दुर्योधन के पास अनुचित दूतकर्म की मर्यादा में बंधकर आया हूं ।

और भी

कृष्णा (द्रौपदी) के अपमान से उत्पन्न शत्रु सैन्य के गजराजों को विदीर्ण करने वाली तीक्ष्ण गदा धारण करने वाले भीमसेन की क्रोधाग्नि से तथा युद्धस्थल में अर्जुन के बाणरूपी प्रचण्ड आंधी से मैं इस समय कुरुवंश रूपी वन को विनष्ट हुआ देख रहा हूं ॥ १४ ॥

इदं सुयोधनशिविरम्। इह हि—

आवासाः पार्थिवानां सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिता
  विस्तीर्णाः शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैरुपचिताः।
हेषन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा बृंहन्ति करिण
  ऐश्वर्यं स्फीतमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम् ॥ १५ ॥

तेन कोपशिखिना कोपः = क्रोध. एव शिखी = अग्निः तेन। पार्थपत्रिचण्डानिलैः पार्थस्य = अर्जुनस्य पत्रिणः = वाणा एव चण्डानिलाः = प्रचण्डवायवः तैः कुरुवंशवनम् = कुरुणां वंश एव वनम् = कौरवारण्यम्। विनष्टम् = नाशम् प्राप्तमिति जाने = अनुमिनोमि। साङ्गरूपकम्। वसन्ततिलकावृत्तम् च ॥ १४ ॥

अथेदं स्वपुरो वर्तमानं कौरवशिविरं विशिनष्टि श्रीकृष्णः—

अन्वयः—पार्थिवानाम् आवासाः सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिताः। विस्तीर्णाः शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैः उपचिताः। मन्दुरास्थाः तुरगवरघटाः ह्रेषन्ते। करिणः बृंहन्ति। एतत् स्फीतम् ऐश्वर्यम् स्वजनपरिभवात् आसन्नविलयम् प्राप्तम् इति दृश्यते ॥ १५ ॥

आवासा इति—पार्थिवानाम् = पृथ्वीपतीनाम्। आवासाः = निवासभूमयः। सुरपुरसदृशाः सुराणां = देवानाम् पुराणि तैः सदृशाः = तुल्याः। स्वच्छन्दविहिताः स्वच्छन्देन = स्वतन्त्रेण विहिताः = निर्मिताः। विस्तीर्णाः = विशाला शस्त्रशालाः शस्त्राणाम् = आयुधानाम् शालाः = गृहाणि बहुविधकरणैः नानाप्रकारसाधनैः शस्त्रैः = हेतिभिः उपचिताः = प्रवृद्धाः। मन्दुरास्थाः मन्दुरायाम् = वाजिशालायां तिष्ठन्तीति तादृशाः तुरगवरघटाः

अच्छा यही है दुर्योधन का शिविर ! अरे यहाँ

स्वतन्त्र रूप से (अलग-अलग) महाराजाओं के आवास इन्द्रलोक की भाँति बने हुये हैं। बहुत बड़े-बड़े शस्त्रागार हैं जो अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण हैं। घोड़साल में उत्तमोत्तम घोड़ों के समूह हिनहिना रहे हैं तथा मदमस्त गजराज चिंघाड़ रहे हैं। किन्तु इतना बड़ा दुर्योधन का यह ऐश्वर्य अपने परिवार (युधिष्ठिर) को कष्ट देने तथा अनादर करने के कारण अब विनाश के कगार पर खड़ा है ॥ १५ ॥

भोः !

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः ।
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

भो वादरायण ! किं प्रवेष्टव्यम् ।

तुरगवराणां = श्रेष्ठजातिवाजिनाम् घटाः = समूहाः । ह्रेषन्ते = शब्दायमानास्तिष्ठन्ति । करिणः = गजाः बृंहन्ति = गर्जन्ति । एतत् = दृश्यमानम् । स्फीतम् = प्रवृद्धम् । ऐश्वर्यम् — आवासशस्त्रागारगजवाज्यादिविभवम् । स्वजनपरिभवात् स्वजनानाम् = स्वबन्धूनां । परिभवात् = अनादरात् । आसन्नविलयम् आसन्नः = निकटस्थः विलयः = विनाशः यस्य तत् तादृशम् प्राप्तम् दृश्यते इति शेषः । उपमा स्वभावोक्तिरलंकारः । सुवदनावृत्तम् ॥ १५ ॥

अथ वासुदेवः दुर्योधनशिविरं दृष्ट्वा स्वमनसि विचारयति·

अन्वयः—सुयोधनः दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः मां दृष्ट्वा कार्यं नैव करिष्यति ॥ १६ ॥

दुष्टेति—सुयोधनः = एतन्नामा धृतराष्ट्रज्येष्ठपुत्रः । दुष्टवादी दुष्टम् = अपुण्यम् वदतीति = तच्छीलः अप्रियवक्ता । गुणद्वेषी गुणान् द्वेष्टीति तच्छीलः = क्षमादिगुणरहितः । शठः = धूर्त्तः कितवो वा । स्वजननिर्दयः स्वजनेषु = आत्मीयेषु जनेषु = वर्गेषु निर्दयः = दयारहितः वर्त्तते एतादृशस्सः माम् = श्रीकृष्णं दृष्ट्वा = विलोक्य । कार्यम् = सन्धिरूपम् कार्यम् नैव करिष्यति = नैव विधास्यति । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ १६ ॥

पुनः दुर्योधनद्वारे वादरायणनामकं द्वारपालं दृष्ट्वा पृच्छति वासुदेवः किमिति-किमह प्रविशेयमित्यर्थः ।

अरे भाई !

कटुभाषी, दूसरों के गुणों से द्वेष रखने वाला धूर्त एवम् अपने बन्धुओं पर निर्दयता का व्यवहार करने वाला यह दुर्योधन निश्चय ही मुझे देखकर कभी भी इस सन्धि रूप कार्य को नहीं करेगा ॥ १६ ॥

हे वादरायण ! क्या हमें प्रवेश करने की आज्ञा है ?

काञ्चुकीयः—अथ किमथ किम्। प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभः।

वासुदेवः—(प्रविश्य) कथं कथं मां दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः। अलमलं सम्भ्रमेण। स्वैरमासतां भवन्तः।

दुर्योधनः—कथं कथं केशवं दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः। अलमलं सम्भ्रमेण। स्मरणीयः पूर्वमाश्रावितो दण्डः। नन्वहमाज्ञप्ता।

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! किमास्से।

कञ्चुकीयः—तस्य तेजसा परिभूयमान आह अथ किमिति—ससंभ्रमम् द्विरुक्तिः। पद्मनाभः पद्मं नाभौ=उदरे यस्य सः=कमलनाभः।

वासुदेवः—संभ्रान्ताः=विक्लवं संप्राप्य समुत्थिताः। अलम् अलम् इति निषेधार्थकमव्ययपदम्। संभ्रमेण=त्वरयोत्थानेन। स्वैरम् स्वच्छन्दतया शनैर्वा। आसताम्=उपविशन्तु।

दुर्योधनः—आश्रावितः=संसूचितः आज्ञप्तो वा। आज्ञप्ता=निर्देष्टा अहमाज्ञप्ता इत्यनेन अहं दुर्योधनो नाम महाभयंकरः आज्ञोल्लंघनेन कठिनं दण्डं दास्यामीत्यर्थः संसूच्यते।

वासुदेवः—वासुदेवः पृच्छति—किमास्से=किं त्वमिदानीमपि उपविष्ट एवेत्याशयः।

कञ्चुकीय—और क्या ? और क्या ? आप पद्मनाभ अवश्य ही प्रवेश के अधिकारी हैं।

वासुदेव—(प्रविष्ट होकर) क्यों क्यों मुझे देखकर सभी क्षत्रिय घबड़ा गये। बस ! घबड़ाइये नहीं घबड़ाइये नहीं। आप लोग धीरे-धीरे बैठे रहें।

दुर्योधन—क्यों क्यों ? केशव को देखते ही सभी क्षत्रिय घबड़ा उठे। अरे ! घबड़ाइये नहीं। पूर्व में मेरे द्वारा सुनाये गये दण्ड को आप लोग स्मरण रखिये। इस बात का ध्यान रखिये कि घोषणा मैंने की है।

वासुदेव—हे सुयोधन ! क्या तुम बैठे हो ?

दुर्योधनः—(आसनात् पतित्वा आत्मगतम्) सुव्यक्तं प्राप्त एव केशवः ।

उत्साहेन मतिं कृत्वाऽऽप्यासीनोऽस्मि समाहितः ।
केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम् ॥ १७ ॥

अहो बहुमायोऽयं दूतः ! (प्रकाशम्) भो दूत ! एतदासनमास्यताम् ।

वासुदेवः—आचार्य ! आस्यताम् । गाङ्गेयप्रमुखा राजानः ।

दुर्योधनः—सुव्यक्तम्=याथार्थ्येन वस्तुतत्त्वेन वा ।

इदानीं दुर्योधनः स्वयं केशवप्रभावमनुभूय तदेवाह—उत्साहेनेति—

अन्वयः—अहं (दुर्योधनः) उत्साहेन मतिं कृत्वा अपि समाहितः आसीनः अस्मि तथापि केशवस्य प्रभावेण आसनात् चलितः अस्मि ॥ १७ ॥

उत्साहेनेति—अहम्=दुर्योधनः । उत्साहेन=उत्साहगुणयुक्तेन । मतिं=बुद्धिं । कृत्वा=विधाय । अपीति संभावनायाम् । समाहितः=सावधानतया । आसीनः=आसने उपविष्टः अस्मि । तथापि=केशवस्य=नारायणस्य । प्रभावेण=महिम्ना । आसनात्=निजोपवेशनस्थानात् सिंहासनादित्यर्थः । चलितोऽस्मि=पतितोऽस्मि । अनादरार्थमप्रत्युत्थाने निषिद्धमानेऽपि मया स्वयमेव विकम्प्यते इत्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १७ ॥

बहुमायः=बह्वी माया यस्य सः—अनेककपटगुणनिधानः । आस्यताम्=उपविष्यताम् ।

वासुदेवः—समीपस्थं चित्रपटं दृष्ट्वा आदौ प्रशस्य ततस् तत्र द्रौपदी-

---

दुर्योधन—(आसन से लड़खड़ा कर अपने मन में) निश्चय ही यह केशव सामने आ गया ।

यद्यपि मैं सावधानी से उत्साहपूर्वक बुद्धि से बैठा हुआ हूँ । फिर भी केशव के प्रभाव से अपने आसन से विचलित हो उठा । अरे यह दूत तो बड़ा मायावी है (प्रकाश में) हे दूत ! यह है आसन । इस पर बैठो ॥१७॥

वासुदेव—आचार्य बैठिये । भीष्मादि प्रमुख सभी राजगण स्वच्छन्दता

स्वैरमासतां भवन्तः । वयमप्युपविशामः । (उपविश्य) अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः । मा तावत् । द्रौपदीकेशधर्षणमत्रालिखितम् । अहो नु खलु,

सुयोधनोऽयं स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति वालिशत्वात् ।
को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु ॥१८॥

केशधर्षणं दृष्ट्वा निषेधति—मा तावदिति आलोकनानर्होऽयं चित्रपट इति भावः । पुनः चित्रपटमपनेतुमाज्ञापयति—

अन्वयः—अयं सुयोधनः वालिशत्वात् स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति किन्तु सभासु नष्टघृणः लोके कः नाम स्वयम् आत्मदोषम् उद्घाटयेत् ॥ १८ ॥

सुयोधनः इति—अयम्=महाखलः । सुयोधनः=दुर्योधनः वालिशत्वात् वालिशस्य भावः वालिशत्वं तस्मात्=मौर्ख्यात् । स्वजनावमानम्=स्वजनस्यावमानं तस्मात्=आत्मकृतस्वजनपराभवम् । पराक्रमम्=स्वशौर्यम् । पश्यति=जानाति अवलोकयति वा किन्तु सभासु=राजपरिषत्सु । नष्टघृणः नष्टा घृणा=लज्जा यस्य तादृशः । लोके भुवने को नाम=प्रसिद्धः बुद्धिमान् । आत्मदोषम्=स्वकीयं=पापम् । स्वयमेव उद्घाटयेत्=प्रकाशयेत् । दुर्योधनातिरिक्तो नान्यः पुरुषः यः राजपरिषत्सु एतादृशं स्वकृतं पापं प्रकाशयितुं शक्नुयादित्यर्थः ॥ १८ ॥

पूर्वक आसन पर बैठें । हम भी बैठ रहे हैं (बैठकर) अहा यह चित्रपट तो देखने योग्य है । अथवा इसे नहीं देखना चाहिये । इसमें तो द्रौपदी के केशघर्षण की घटना चित्रित की गई है ।

अहो यह निश्चय ही बड़े दुःख की बात है !

जो यह दुर्योधन अपने बान्धवों के अपमान को मूर्खता के कारण उसे अपना पराक्रम समझ रहा है । भला संसार में ऐसा निर्लज्ज कौन होगा जो सभा के बीच अपने दोषों को प्रकट करेगा ॥ १८ ॥

आः अपनीयतामेष चित्रपटः ।

दुर्योधनः—वादरायण ! अपनीयतां किल चित्रपटः ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः (अपनयति) ।

दुर्योधनः—भो दूतः ।

धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो भ्राताऽर्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः ।
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ सर्वे सभृत्याः कुशलोपपन्नाः ।।१९।।

अपनीयताम्—उत्सार्यताम्—दूरीक्रियताम् ।

दुर्योधनः—अपनीयताम्=दूरीक्रियताम् ।

दुर्योधनः दूतं प्रति युधिष्ठिरादीनां कुशलप्रश्नं प्रष्टुमुपक्रमते—धर्मात्मज इति—

अन्वयः—मे भ्राता धर्मात्मजः वायुसुतः भीमः त्रिदशेन्द्रसूनुः अर्जुनः विनीतौ तौ अश्विसुतौ च सभृत्याः सर्वे कुशलोपपन्नाः सन्ति किमिति शेषः ।। १९ ।

धर्मात्यज इति—मे=मम । भ्राता=वान्धवः । धर्मात्मजः=धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः वायुसुतः=पवनपुत्रः । भीमः । त्रिदशेन्द्रसूनुः=इन्द्रपुत्रः । अर्जुनः=गाण्डीवी । विनीतौ=विनम्रौ । अश्विसुतौ=अश्विननीकुमारपुत्रौ यमौ च=यमलौ नकुलसहदेवौ च सभृत्याः=ससेवकाः । सर्वे=समस्ताः अपि कुशलोपपन्नाः=सकुशलाः सन्ति किमिति शेषः । अत्र सर्वत्र युधिष्ठिरादौ तत्तद्विशेषणदानेन ते देवपुत्रा नह्यस्माकं दायादा इति व्यज्यते—उपजातिवृत्तम् ।। १९ ।।

अरे बस । चित्रपट को यहाँ से हटा दो ।

दुर्योधन—वादरायण ! इस चित्रपट को दूर हटाओ ।

कञ्चुकीय—महाराज की जैसी आज्ञा (दूर हटाता है)

दुर्योधन – हे दूत !

धर्मपुत्र युधिष्ठिर, वायुपुत्र भीम, इन्द्रपुत्र मेरा भाई अर्जुन एवम् अश्विनीकुमार के विनीत जुड़वाँ पुत्र आदि अपने अपने सेवकों के साथ सकुशल तो हैं ।। १९ ।।

वासुदेवः—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य । अथ किमथ किम् । कुशलिनः सर्वे । भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामयं च दृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः—

अनुभूतं महद्दुःखं सम्पूर्णं समयः स च ।
अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्यं तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

इति ।

दुर्योधनः—कथं कथं दायाद्यमिति ।

वासुदेवः—सदृशम् =उचितम । गान्धारिपुत्रस्य=धृतराष्ट्रपत्नीजातस्य । अनामयम् =नीरोगता । विज्ञापयन्ति =विनिवेदयन्ति ।

अथ युधिष्ठिरादीनां विज्ञापनं प्रस्तौति भगवान् वासुदेवः

अन्वयः—(हे दुर्योधन ! अस्माभिः) महद् दुःखम् अनुभूतम् । स च समयः सम्पूर्णम् । अतः अस्माकम् अपि यद् धर्म्यम् दायाद्यम् तद् प्रविभज्यताम् ॥ २० ॥

अनुभूतमिति—हे दुर्योधन अस्माभिः महत् = अत्यन्तम् । दुःखम् = क्लेशजातम् । अनुभूतम् = सम्प्राप्तम् । स च समयः = त्रयोदशवर्षपर्यन्तवनवासकालावधिः । सम्पूर्णम् यातम् = पूर्णमभवत् । अतः अस्माकम् यद् = यावत्परिमाणकम् । धर्म्यम् = धर्मतः प्राप्तम् । दायाद्यम् दायम् = कुलधनम् आद्यम् = अदनीयम् भोग्यवस्तु पितृरिक्थमिति यावत् तद् प्रविभज्यताम् = विभागं कृत्वाऽस्मभ्यम् संप्रदीयताम् । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ २० ॥

वासुदेव—गान्धारी पुत्र सुयोधन का ऐसा पूछना उचित ही है और क्या और क्या ? सब सकुशल हैं । वे युधिष्ठिरादि भी आपके शरीर की और राज्य के भीतर तथा बाहर के कुशल क्षेम को पूछकर निवेदन करते हैं ।

हम लोगों ने महान् दुःख सहन किया वह (वनवास की सारी) प्रतिज्ञा पूरी हो गई अतः हमलोगों का धर्मतः प्राप्त जो भी पैतृक अंश हो उसे प्रविभक्त कर दीजिये ॥ २० ॥

दुर्योधन—कैसा कैसा उनका हिस्सा ?

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदाप्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥२१॥

दायाद्यमिति श्रीकृष्णोक्तिं श्रुत्वा दुर्योधनस्तद् वचनं खण्डयितुमुपक्रमते ननेति न तेऽस्माकम् दायाद्याः अतो मदीये रिक्थे तेषां विभागप्रश्न एव नोदेतीति तत्र युक्ति प्रदर्शयन् आह—

अन्वयः—वने मृगयाप्रसङ्गतः कृतापराधः मे पितृव्यः मुनिशापम् अवाप्तवान् । सः तदाप्रभृति एव स्वदारनिःस्पृहः अतः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥ २१ ॥

वने—वने=अरण्ये । मृगयाप्रसङ्गतः मृगयायाः=आखेटकस्य प्रसङ्गः प्रशक्तिस्तस्मात् । कृतापराधः कृतः=विहितः अपराधः—आगः येन सः मे पितृव्यः=मम पितुः कनिष्ठभ्राता पाण्डुः । मुनिशापम् मुनेः शापम् मुनिशापम्=मुन्याक्रोशम् । आप्तवान्=प्राप्तवान् । (कस्मिश्चित् काले स्वधर्मपत्न्या सह किंदमनामा महर्षिः मृगरूपमास्थाय क्रीडां चकार । तदा आखेटकप्रसङ्गेन नृपतिः पाण्डुः तौ दृष्ट्वा मृगभ्रमेण तं मुनिं शरैर्जघान । स च महर्षिस्तदैव स्वमृगरूपं विहाय तस्मै । त्वमपि यदा स्त्रिया सह क्रीडां करिष्यसि तदैव पञ्चत्वमवाप्स्यसि इति शापं दत्तवान् इयं कथा महाभारते आदिपर्वणि ११७ अध्याये द्रष्टव्या) तदा प्रभृत्येव=तत्कालादारभ्यैव सः=मम पितृव्यः पाण्डुः । स्वदारनिस्पृहः=स्वदारेभ्यः निर्गता स्पृहा यस्य सः तादृशः=स्त्रीप्रसङ्गविरक्तः । अतः परात्मजानाम्=परात्मजातानाम् तेषामिति शेषः । पितृताम्=पितृधनभाजनत्वम् । कथं व्रजेत्=कथं प्राप्नुयात् । औरसानां पुत्राणाम् स्वपितृधनभाक्त्वं भवति न तु जारजातानामिति दुर्योधनस्याशयः । वंशस्थवृत्तम् ॥ २१ ॥

वन में आखेट करने गये हमारे चाचा पाण्डु अपराध कर बैठने के कारण मुनि के द्वारा शाप को प्राप्त हो गये । फिर तभी से वे स्त्री संभोग से विरत रहे । अत; दूसरे से उत्पन्न हुये पुत्रों की पिता के जायदाद में भागीदारी कैसी ? ।। २१ ।।

वासुदेवः—पुराविदं भवन्तं पृच्छामि ।

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते ॥ २२ ॥

मा मा भवान् !

वासुदेवः—पुराविदम् पुरा=प्राक्तनमितिहासम् वेत्तीति तम्=पूर्वकालिकेतिहासरवेत्तारम् । तदेव प्रसङ्गतः प्रस्तौति—विचित्रवीर्यः इत्यादिना—

अन्वयः—(यदा) विषयी विचित्रवीर्यः क्षयेण विपत्तिं यातः पुनः अम्बिकायाम् व्यासेन जातः ते जनकः एषः धृतराष्ट्रः कथम् राज्यं लभेत् ॥ २२ ॥

विचित्रवीर्यं इति—(यदा) विषयी=विषयेषु आसक्तः । विचित्रवीर्यः=तव पितामहः । क्षयेण=राजयक्ष्मणा । विपत्तिम्=मृत्युम् । यातः=प्राप्तः । पुनः=विचित्रवीर्यमरणानन्तरम् । अम्बिकायाम्=तत्पाणिगृहीतायाम् तव पितामह्याम् । व्यासेन=कृष्णद्वैपायनेन । जातः=उत्पादितः ते जनकः=तव पिता । एषः धृतराष्ट्रः । कथम् केन प्रकारेण । राज्यम्=कुरुवंशीयम् । कथं लभेत्=कथं प्राप्नुयात् । सोऽप्यनधिकारी । उपजातिवृत्तम् । इयं कथा द्रष्टव्या म० भा० आदिपर्वणि १।९५ ॥ २२ ॥

मा मा भवान्=अलं कुतर्केणेत्यर्थः ।

वासुदेव—आप तो बहुत पीछी की बात जानते हैं अतः एक बात पूछता हूँ ।

जब विषयासक्त विचित्रवीर्य (तुम्हारे पितामह) क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त हो गये तब पुनः अम्बिका में व्यास के द्वारा उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र किस प्रकार राज्य के उत्तराधिकारी हो सकते हैं अतः आप ऐसी बात न कहें । ऐसी बात न कहें ॥ २२ ॥

एवं परस्परविरोधविवर्धनेन
शीघ्रं भवेत् कुरुकुलं नृप ! नामशेषम् ।
तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोषं
यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

दुर्योधनः—भो दूत ! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम् ।

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते

एवमुक्त्वा कल्याणकरं मार्गमुपदिशति भगवान् वासुदेवः—

अन्वयः—हे नृप ! एवम् परस्परविरोधविवर्धनेन कुरुकुलम् शीघ्रम् नामशेषं भवेत् । तत् भवान् रोषम् अपकृष्य युधिष्ठिरमुखाः त्वां यत् प्रणयाद् ब्रुवन्ति तत् कर्तुमर्हति ॥ २३ ॥

एवमिति—हे नृप=हे भूपाल । एवम्=अनेन प्रकारेण । परस्परविरोधविवर्धनेन परस्परं=अन्योन्यम् विरोधः=शत्रुता तस्य विवर्धनम् वृद्धीकरणम् तेन । कुरुकुलम्=कौरववंशः । शीघ्रम्=सत्वरम् । नामशेषम्=नाममात्रावशिष्टम् । भवेद्=स्यात् । तत्=तस्मात् कारणात् । भवान्=दुर्योधनः । रोषम्=कोपम् । अपकृष्य=दूरं कृत्वा युधिष्ठिरमुखाः=युधिष्ठिरादयः । त्वाम् यत् प्रणयात्=प्रेम्णः । ब्रुवन्ति=कथयन्ति । तत्=तथा । कर्तुम्=विधातुम् । अर्हति=योग्योऽस्ति । तवैवं कथनेन परस्परं विरोधो वर्धेत् अतः शत्रुभावं परित्यज्य तेषामनुकूलमाचरणं कुर्वित्याशयः ॥ २३ ॥

दुर्योधनः—राज्यव्यवहारम्=राज्यवर्त्तनम् । एवं पूर्वोक्त दूतवाक्यं खण्डयन् राज्यप्राप्तेरुपायान्तरं प्रदर्शयति—

अन्वयः—सहृदयैः नृपात्मजैः रिपून् जित्वा राज्यं नाम भुज्यते । लोके

हे राजन् ! इस प्रकार परस्पर विरोध के बढ़ने से यह प्रसिद्ध कौरव वंश कहीं नाम मात्र के लिये शेष न रह जाय अतः आप क्रोध को त्याग ऐसा कुछ करें जैसा कि युधिष्ठिरादि पाण्डव आप से प्रेमपूर्वक कहते हैं ॥ २३ ॥

दुर्योधन—हे दूतः आप राजव्यवहार नहीं जानते हैं ।

राज्य तो सहृदय (साहसी) राजपुत्रों के द्वारा अपने शत्रुओं से

तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥२४॥

वासुदेवः—भो सुयोधन ! अलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् ।

तु तत्र याच्यते वा पुनः दीनाय दीयते तु न। चेत् नृपतित्वम् आप्तुम् काङ्क्षा तर्हि ते अचिरात् साहसं कुर्वन्तु वा शमाय शान्तमतिभिः जुष्टम् आश्रमम् स्वैरं प्रविशन्तु ।। २४ ।।

राज्यमिति—सहृदयैः समानानि हृदयानि येषां तैः=उदारचित्तैः महाशयैरित्यर्थः । नृपात्मजैः=राजपुत्रैः । रिपून्=शत्रून् । जित्वा=पराजित्य । राज्यम्=राष्ट्रम् । नाम इति प्रसिद्धौ । भुज्यते=पाल्यते लभ्यते वा लोके=भुवने । तु तत्=राज्यम् । न याच्यते=प्रार्थ्यते । भिक्षया राज्यलाभो न क्वचिच्छ्रुतमित्यर्थः । वा=अथवा । पुनः दीनाय=याचमानाय । तत् दीयते=प्रदीयते । तु=इत्यपि । न=नास्ति । चेत्=यदि । नृपतित्वम्=भूपत्वम् । आप्तुम्=संलब्धुम् । काङ्क्षा=अभिलाषा । तर्हि ते=पाण्डवाः । अचिरात्=शीघ्रतया । साहसम्=पौरुषम् । कुर्वन्तु=संपादयन्तु । वा=अथवा शमाय=शान्तिप्राप्तये । शान्तमतिभिः शान्ता मतिर्येषां ते तैः=दान्तचित्तैः । जुष्टम्=संसेवितम् । आश्रमम्=अरण्यम् । स्वैरम्=स्वच्छन्दम् । प्रविशन्तु=गच्छन्तु । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। २४ ।।

वासुदेवः—अलम्=विरम । बन्धुजने=स्वजने । परुषम् तीक्ष्णम् कठोरं वा । अभिधातुम्=वक्तुम् ।

जीत कर भोग करने की वस्तु है। संसार में वह माँगा नहीं जाता और न तो वह दीन बनकर भिक्षा माँगने वाले को दिया ही जाता है। यदि उन्हें राज्य के प्राप्त करने की इच्छा हो तो शीघ्र ही साहस (पुरुषार्थ) प्रदर्शित करें। अन्यथा शान्ति प्राप्त करनी हो तो वन में शान्तात्माओं से युक्त किसी आश्रम में स्वच्छन्दतापूर्वक निवास करें।। २४ ।।

वासुदेव—हे सुयोधन ! अपने बन्धुजनों के प्रति इस प्रकार की कटु वाणी का प्रयोग बन्द करो।

पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः ॥ २५ ॥

दुर्योधनः—

स्यालं तव गुरोर्भूपं कंसं प्रति न ते दया ।
कथमस्माकमेवं स्यात् तेषु नित्यापकारिषु ॥ २६ ॥

वासुदेवः दुर्योधनं नीतिमार्गमुपदिशति—

अन्वयः— पुण्यसंचयसंप्राप्ताम् नृपश्रियम् अधिगम्य यः सुहृद्बन्धून् वञ्चयेत् सः विफलश्रमः भवेत् ॥ २५ ॥

पुण्येति— पुण्यसंचयसंप्राप्ताम् पुण्यानाम्=सुकृतानाम् संचयेन=एकत्रीकरणेन प्राप्ताम्=अधिगताम् । नृपश्रियम् नृपस्य श्रियम्=राजलक्ष्मीम् । अधिगम्य=संप्राप्य । यः=पुरुषः । सुहृद्बन्धून=मित्रज्ञातीन् । वञ्चयेत्=प्रतारयेत् । सः=पुरुषः । विफलश्रमः विफलः=व्यर्थः श्रमः=परिश्रमो यस्य तादृशः भवेत् । सुहृद्बन्धुवञ्चकानां राज्यप्राप्तिर्व्यर्थेति भावः ॥ २५ ॥

अथेदानीं दुर्योधनः श्रीकृष्णोक्तेः प्रतिवादं करोति—

अन्वयः—(यदि) तव गुरोः स्यालं भूपं कंसं प्रति ते दया न । (तर्हि) नित्यापकारिषु तेषु अस्माकम् एवं कथं स्यात् ॥ २६ ॥

स्यालमिति—(यदि) तव=भवतः कृष्णस्य गुरोः=पितुः वसुदेवस्य । स्यालम्=पत्नीभ्रातरम् । भूपम्=नृपतिम् । कंसम्=एतन्नामकं मथुराधीशम् । प्रति ते=तव दया=अनुकम्पा न=नहि जाता (तर्हि) नित्यात्रकारिषु नित्यम्=सततम् अपकुर्वन्ति तच्छीलम् येषां तेषु=अपकरणशीलेषु । तेषु=पाण्डवेषु । अस्माकम्=कौरवाणाम् । एवम्=

पुण्य संचय से प्राप्त होनेवाली राज्यश्री को प्राप्त कर जो अपने बन्धु-बान्धवों को ठगता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है ॥ २५ ॥

दुर्योधन—जब तुमने अपने बाप के साले (मामा) राजा कंस के प्रति दया नहीं की तब नित्य 'अपकार करने वाले उन पाण्डवों के प्रति भला हम कैसे इस प्रकार की दया का बर्त्ताव करें ॥ २६ ॥

वासुदेवः—अलं तन्मद्दोषतो ज्ञातुम्।

कृत्वा पुत्रवियोगार्त्तां बहुशो जननीं मम।
वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा हतोऽयं मृत्युना स्वयम् ॥ २७ ॥

दुर्योधनः—सर्वथा वञ्चितस्त्वया कंसः। अलमात्मस्तवेन। न शौर्यमेतत् पश्य,

---

दयाभावः। कथं स्यात् केन प्रकारेण भवितुमर्हति। यदि त्वया स्वमातुलेऽपि कृपा न कृता तर्हि नित्यापकारपरेषु एषु पाण्डवेषु मत्तः कृपा कथमपेक्ष्यते इति भावः। कंसवधकथा द्र० भागवत १०·४४ अध्याये। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २६ ॥

वासुदेवः—अलमिति—कंसं प्रति मया दया न कृतेत्यत्र याथातथ्यम् त्वं न जानासि। तत्र मम दोषो नास्तीति श्रीकृष्णः प्रस्तौति—

अन्वयः—(कंसः) मम जननीं बहुशः पुत्रवियोगार्त्तां कृत्वा वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा च (पीडयते स्म) अतः अयम् स्वयम् मृत्युना हतः ॥ २७ ॥

कृत्वेति—(अयम् कंसः) मम=कृष्णस्य। जननीं=मातरं। बहुशः=अनेकवारम्। पुत्रवियोगार्त्ताम्=पुत्रस्य वियोगस्तेन आर्त्ताम्=पुत्रविरहसन्तप्तां कृत्वा=विधाय। 'कंसेन' हि देवक्या षड्गर्भा निपातिताः 'हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना' इति भागवते (द्र० १०.२.४) किञ्च वृद्धम्=जरठम् स्वपितरम्=उग्रसेनम् बद्ध्वा कारागारे निक्षिप्य पीडयते स्म। तेनायम् स्वयम्=आत्मना। मृत्युना=अन्तकेन। हतः=निहतः नान्यः कश्चन हन्तेति भावः। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २७ ॥

वासुदेव—उस विषय में तुम्हें हमारा दोष समझना व्यर्थ है।

जिसने मेरी माता देवकी को पुत्र वियोग से बहुत बार दुःखी बनाया वह वृद्ध पिता को कारागार में डालकर स्वयं ही मृत्यु के द्वारा मारा गया ॥ २७ ॥

दुर्योधन—तुमने सब प्रकार से कंस को धोखा ही दिया अतः अपनी प्रशंसा बन्द करो। तुम्हारी यह कोई बहादुरी नहीं है। देखो—

जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ ।
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्यं तदेतत् क्व गतं तवासीत् ॥२८॥

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम् । इह तिष्ठतु तावदस्मद्गतः परिहासः । स्वकार्यमनुष्ठीयताम् ।

दुर्योधनः—आत्मस्तवेन = आत्मप्रशंसाकरणेन । शौर्यम् = पराक्रमम् । अथेदानीम् कृष्णकृत्यं प्रकाश्य तं दूषयति—

अन्वयः—अथ जामातृनाशव्यसनाभितप्ते मगधेश्वरे रोषाभिभूते भयातुरस्य पलायमानस्य तव एतत् तत् शौर्यम् क्व गतम् आसीत् ॥२८॥

जामातृनाशेति—जामातृनाशव्यसनाभितप्ते जामातुः = कंसस्य नाशव्यसनम् = मृत्युजन्यार्त्तिम् तेन अभितप्ते = शोकाकुले । मगधेश्वरे = मगधराजे जरासन्धे इत्यर्थः । रोषाभिभूते = रोषेणाभिभूतस्तस्मिन् = क्रोधाभिभूते पलायमानस्य पलायतेऽसौ पलायमानस्तस्य = अपसरतः । भयातुरस्य = भयभीतस्य । तव = कृष्णस्य । एतत् तत् शौर्यम् = पराक्रमः । क्व = कुत्र । गतमासीत् मातुले एवं पराक्रमशीलस्य तव जरासन्धे पराक्रमः क्व गतः । कथं तेन सह समरं विहाय पलायनम् स्वीकृतम् । उपजातिवृत्तम् ॥ २८ ॥

वासुदेवः—देशकालावस्थापेक्षि देशं कालम् अवस्थां चापेक्षते इति = देशकालावस्थोचितम् । शौर्यम् = पराक्रमम् । नयानुगामिनाम् = नीतिविदाम् । तिष्ठतु = विरमतु ।

जब अपने दामाद (कंस) की मृत्यु से व्यथित हो क्रोध में भरे मगधेश्वर जरासंध ने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया। उस समय भय से त्रस्त हो भागते हुये तुम्हारी यह शूरता कहाँ चली गई थी ॥ २८ ॥

वासुदेव—हे सुयोधन ! नीतिशास्त्र का अनुसरण करने वालों का पराक्रम देश काल और अवस्था का विचार करते हुये प्रकट होता है। अच्छा हमलोगों का परिहास यहीं तक रहे। अब अपना-अपना कार्य करना चाहिये।

कर्त्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयांल्लोकयोरुभयोरपि ॥ २९ ॥

दुर्योधनः—
देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत् ।
पिष्टपेषणमेतावत् पर्याप्तं छिद्यतां कथा ॥ ३० ॥

इदानीं स्वःसमनप्रयोजनं प्रस्तौति श्रीकृष्णः—

अन्वयः—भ्रातृषु स्नेह कर्त्तव्यः । गुणेतराः विस्मर्त्तव्याः बन्धुभिः सह संबन्धः उभयोरपि लोकयोः श्रेयान् (भवति) ॥ २९ ॥

कर्त्तव्य इति—भ्रातृषु=भातिषु । स्नेहः=प्रेमभावः । कर्त्तव्यः=विधातव्यः । गुणेतराः=अवगुणविषया दोषाः । विस्मर्त्तव्याः=विस्मरणीयाः । यतः बन्धुभिः=भ्रातृभिः सह सम्बन्धः=स्नेहसंबन्धः । उभयोरपि=ऐहिकपारलौकिकयोः लोकयोः । श्रेयान्=कल्याणकारी भवतीति शेषः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ २९ ॥

अथेदानीं दुर्योधनः तैः सह सम्बन्धस्यासंभाव्यतां प्रदर्शयति—

अन्वयः—देवात्मजैः मनुष्याणां बन्धुता कथं भवेत् । कथा छिद्यताम् । एतावत् पिष्टपेषणं पर्याप्तम् ॥ ३० ॥

देवेति—देवात्मजैः देवानाम्=अमराणाम् आत्मजैः=सूनुभिः तैः सह=साकम् । मनुष्याणाम्=मरणशीलानाम् । बन्धुता=भ्रातृत्वम् । कथम्=केन प्रकारेण । स्यात्=भवेत् । कथा=पाण्डवैः सह सम्बन्धरूपा । छिद्यताम्=विरम्यताम् । एतावत्=पर्याप्तम् यदाऽपन जातम् तत् पिष्टपेषणम्=चूर्णितस्य चूर्णीकरणम् । पर्याप्तम्=पूर्णम् अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ३० ॥

भाइयों पर स्नेह प्रदर्शित करना चाहिये । उनके दोषों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये । क्योंकि बन्धुओं से किया गया उत्तम संबन्ध दोनों लोकों में कल्याणकारी होता है ॥ २९ ॥

दुर्योधन—देवपुत्रों के साथ मनुष्यों के भाईचारे (दायाद्य) की संभावना किस प्रकार हो सकती है । यह कथा तो पिष्टपेषणमात्र है । अतः इस कथा को यहीं समाप्त कीजिये ॥ ३० ॥

वासुदेवः—(आत्मगतम्)

प्रसाद्यमानः साम्नाऽयं न स्वभावं विमुञ्चति ।
हन्त संक्षोभयाम्येनं वचोभिः परुषाक्षरैः ॥ ३१ ॥

(प्रकाशम्) भोः सुयोधन ! किं न जानीषेऽर्जुनस्य बलपराक्रमम् ।

दुर्योधनः—न जाने ।

वासुदेवः—भोः ! श्रूयतां,

कैरातं वपुरास्थितः पशुपतिर्युद्धेन संतोषितो

वासुदेवः—(आत्मगतम् = स्वमनसि)

अन्वयः—अयं साम्ना प्रसाद्यमानः स्वभावम् न मुञ्चति हन्त । परुषाक्षरैः वचोभिः एनम् संक्षोभयामि ॥ ३१ ॥

प्रसाद्यमान इति—अयम्=दुर्योधनः । साम्ना=सान्त्वनेन वचनेन प्रसाद्यमानः प्रसाद्यते इति प्रसाद्यमानः=अनुनीयमानः । सन् स्वभावम् स्वभावगतं पाण्डवान् प्रति द्वेषम् न विमुञ्चति=न त्यजति । हन्त इति खेदे । परुषाक्षरैः परुषाणि अक्षराणि येषु तैः=कर्कशवचोभिः । एनम्=दुर्योधनम् । संक्षोभयामि=सम्यक् प्रकारेण क्षुब्धं करोमि । व्याकुलं विचलितं वा करोमीत्यर्थः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अथेदानीं भगवान् वासुदेवः अर्जुनस्य बलपराक्रमं संश्राव्य तं संक्षुब्धीकर्तुं प्रवर्तते—

अन्वयः—कैरातम् वपुः आस्थितः पशुपतिः येन युद्धेन संतोषितः

वासुदेव—(अपने मन में)

शान्ति से प्रसन्न किये जाने पर भी यह अपना स्वभाव नहीं छोड़ रहा है तो अब परुषाक्षर पूर्ण वचनों से इसे क्षुब्ध करूँगा ।। ३१ ।।

(प्रकाश में) हे सुयोधन ! क्या तुम अर्जुन का बल पराक्रम नहीं जानते ?

दुर्योधन—नहीं जानता ।

वासुदेव—तो मुझसे सुनो ।

उस अर्जुन ने किरातवेषधारी शंकर को युद्ध में संतुष्ट किया ।

वह्नेः खाण्डवमश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश्छादिता ।
देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचा नीताः क्षयं लीलया
नन्वेकेन तदा विराटनगरे भीष्मादयो निर्जिताः ।। ३२ ।।

अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि ।

खाण्डवम् अश्नतः वह्नेः येन शरैः सुमहती वृष्टिः छादिता । देवेन्द्रार्तिंकराः निवातकवचाः येन लीलया क्षयं नीताः । किञ्च तदा विराटनगरे तेन एकेन भीष्मादयः निर्जिताः ।। ३२ ।।

कैरातमिति—किरातस्येदं कैरातम्=शावरम् । वपुः=शरीरम् । आस्थितः=संधृतः । पशुपतिः=महादेवः । येन=अर्जुनेन । युद्धेन=संग्रामेण । संतोषितः=प्रसादितः । किञ्च खाण्डवम्=एतन्नामकं वनम् । अश्नतः=दहतः । वह्नेः=विभावसोः । संतोषार्थम् येन अर्जुनेन शरैः बाणैः । इन्द्रेणकृता सुमहती वृष्टिः छादिता = दूरीकृता । देवेन्द्रार्त्तिकराः । देवेन्द्रस्य आर्त्तिकराः=पीडाकराः । निवातकवचाः=एतन्नामकाः राक्षसाः । येन लीलया = अनायासेन । क्षयम्=विनाशम् । नीताः=प्रापिताः । किञ्च तदा=गोहरणकाले विराटनगरे तेन एकेन = एकाकिना । भीष्मादयः= पितामहादयः । निर्जिताः = पराजिताः (एतादृशोऽर्जुनस्तस्य पराक्रमं विज्ञाय मदीयं वचनमनुष्ठीयतां भवतेति भावः) ।। ३२ ।।

खाण्डव वन में जब आग लगी तो वाणों की वर्षा कर उसे ढँक दिया जिससे उसकी रक्षा के लिये की जानेवाली इन्द्र की वृष्टि व्यर्थ हो गई । देवेन्द्र इन्द्र को पीड़ा पहुँचाने वाले निवात कवच नामक राक्षसों का जिसने लीलापूर्वक वध कर दिया । बहुत कहने से क्या जिसने अकेले उस समय जब विराटनगर में गोहरण किया गया था तो तुम्हारे भीष्मादि सब योद्धाओं को भी पराजित कर दिया ।। ३२ ।।

और भी तुम्हारे आँखों के सामने हो घटी घटना कहता हूँ ।

ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम् ।
विक्रोशन् घोषयात्रायां फाल्गुनेनैव मोक्षितः ॥ ३३ ॥

किं बहुना,

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज ।
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥ ३४ ॥

हे दुर्योधन ! पुनः त्वमपि अर्जुनेनोपकृत इति प्रत्यक्षं तस्यापरं पराक्रमं प्रदर्शयति श्रीकृष्णः ।

अन्वयः—ननु त्वम् घोषयात्रायाम् चित्रसेनेन नभस्तलम् नीयमानः विक्रोशन् फाल्गुनेन एव मोक्षितः ॥ ३३ ॥

नन्विति—हे दुर्योधन ! ननु=निश्चयेन त्वम् तदानीम् घोषयात्रायाम् चित्रसेनेन=एतन्नामकेन गन्धर्वेण । नभस्तलम्=आकाशम् । नीयमानः=हठादाकृष्यमाणः । विक्रोशन्=आर्त्तशब्देन चीत्कारं कुर्वन् । फाल्गुनेन=अर्जुनेन । एव मोक्षितः गन्धर्वसकाशात् परिमोचितः । एतत् तस्य शौर्यम् त्वया कथं न स्मर्यते इति शेषः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३३ ॥

अथेदानीं स्वागमनप्रयोजनमुपस्थापयति भगवान् श्रीकृष्णः—

अन्वयः—हे धृतराष्ट्रज मद्वाक्यतः (तस्मै) राज्यार्द्धम् दातुम् अर्हसि । हि अन्यथा पाण्डवाः सागरान्तां गाम् हरिष्यन्ति ॥ ३४ ॥

दातुमिति—हे धृतराष्ट्रज धृतराष्ट्राज्जात इति सम्बुद्धौ=हे धृतराष्ट्रसुत ! (यथा धृतराष्ट्रोऽन्धस्तथा त्वमपि मा भूरिति युक्तं संबोधनम् ।) मद्वाक्यात्=मदीयवचनात् । (तस्मै=अर्जुनाय) राज्यार्द्धम्=राज्या-

---

घोषयात्रा पर्व में जब चित्रसेन तुम्हें पकड़ कर आकाश में ले जा रहा था और तुम रो रहे थे उस समय इसी अर्जुन ने ही तुम्हें छुड़ाया भी था ॥ ३३ ॥

अधिक क्या कहूँ ।

हे धृतराष्ट्र के सपूत ! तुम मेरे कहने से अपने राज्य का आधा भाग उन्हें दे दो । नहीं तो समुद्रवसना सारी पृथ्वी पाण्डव तुमसे हरण कर लेंगे ॥ ३४ ॥

दुर्योधनः—कथं कथम् । हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ।

प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमकर्मा
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः ।
परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ ३५ ॥

अर्धभागम् । दातुम्=समर्पयितुम् । अर्हसि=योग्यो भवसि । हि निश्चयेन । अन्यथा=महायुद्धाकरणेन । पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः । सागरान्ताम् सागरः अन्ते यस्यास्ताम्=समुद्रपर्यन्ताम् । गाम्= पृथ्वीम् । हरिष्यन्ति= स्वायत्तीकरिष्यन्ति । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३४ ॥

दुर्योधनः --कथम्=केन प्रकारेण ।

अथेदानीम् दुर्योधनः दूतवाक्यमपहर्तुं मनाः स्वाग्रहं प्रकाशयति—

अन्वयः— यदि युद्धे भीमकर्मा मारुतः स्वयम् प्रहरति । किञ्च यदि शक्रः पार्थरूपेण साक्षात् प्रहरति तथापि हे परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिः पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये तृणम् अपि न दास्ये ॥ ३५ ॥

प्रहरतीति यदि युद्धे=संग्रामे । भीमकर्मा भीमम् भयकरम् कर्म=क्रिया यस्य तादृशः । अत्र भीमरूपीत्येव पाठो युक्तः भीमस्य रूपमस्ति अस्मिन् इति भीमरूपी । मारुतः=पवनदेवः । प्रहरति=प्रहारं करोति । यदि=चेत् शक्रः=इन्द्रः । पार्थरूपेण अर्जुनरूपेण साक्षात् प्रहरति=युद्धे प्रहारं करोति—तथापि हे परुषवचनदक्ष-परुषवचने=कठोरभाषणे दक्ष=कुशल श्रीकृष्णेति शेषः । त्वद्वचोभिः=त्वद्वचनैः । पितृभुक्ते पितृभिः भुक्ते=स्वपितृपालिते । वीर्यगुप्ते=स्वपराक्रमरक्षिते । स्वराज्ये=स्वस्य

दुर्योधन—कैसे कैसे ? वे पाण्डव हर कर लेंगे ?

यदि युद्ध में वायु भीम रूप से प्रहार करेंगे अथवा यदि अर्जुन रूप से स्वयं इन्द्र भी साक्षात् रूप से प्रहार करेंगे तो भी हे कठोर वाणी के प्रयोग में कुशल श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारे कहने से पितृपरम्परा से आगत, स्ववीर्य-रक्षित एवं स्वशासित अपने राज्य का एक तृण भी उन्हें देने वाला नहीं हूं ॥ ३५ ॥

वासुदेवः—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल तृणान्तराभिभाषकाः ।

दुर्योधनः—भो गोपालक ! तृणान्तराभिभाष्यो भवान् ,

अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च ।
मल्लानपि सुनिर्लज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः ।। ३६ ।।

राज्यं तस्मिन् = स्वराष्ट्रे । तृणमपि—तृणपरिमाणमपि । न धास्ये—नार्पयिष्यामि । युद्धे मरणं वरम् किन्तु राज्यात्तृणमात्रमपि भूमिदानं वरं नेत्यर्थः । मालिनीवृत्तम् ।। ३५ ।।

वासुदेवः—कुरुकुलकलङ्कभूत कुरूणां कुले कलङ्कभूतस्तत्संबुद्धौ—कुरुवंश किल्बिष ! अयशोलुब्ध यशसि लुब्धो न भवतीति तत्संबुद्धौ—अपकीर्त्यभिलाषिन् । तृणान्तराभिभाषकाः तृणेन अन्तरं कृत्वा अभिभाषकाः—तृणव्यवधानं कृत्वा वार्त्तालापकारिणः । अयं भावः—त्वं पापोऽसि पापिना सह प्रत्यक्षभाषणं निन्दनीयम् अतः तृणमन्तर्विधाय त्वया सह वयं वार्त्तालापकारिणः अन्यथा संसर्गजन्यदोषतया वयमपि पापिनो भवेम इत्यर्थः ।

दुर्योधनः—तृणान्तराभिभाष्यः तृणान्तरेण अभिभाष्यः = तृणमन्तरितं कृत्वा भाषणार्हो भवान् । यतस्त्वं पापीयान् इति तदेव स्पष्टयति —

अन्वयः—अवध्यां प्रमदां हत्वा (किञ्च अवध्यम्) हयम् गोवृषम् एव किञ्च मल्लान् अपि हत्वा सुनिर्लज्जः सन् साधुभिः सह वक्तुम् इच्छसि ।। ३६ ।।

वासुदेव—हे कुरुकुल के कलङ्क ! हे मात्र अपयश चाहने वाले दुर्योधन ! तुम इतने बड़े पापी हो कि तुमसे प्रत्यक्ष भाषण में भी पाप लगता है) हम लोग प्रत्यक्ष तो नहीं किन्तु बीच में तृण रखकर तुमसे भाषण करते हैं ।

दुर्योधन—अरे गोपालक ! सच पूछा जाय तो आप ही प्रत्यक्ष भाषण के योग्य नहीं किन्तु बीच में तृण रखकर भाषण के योग्य हो ।

अवध्य प्रमदा (मातृतुल्या पूतना) को मारकर अवध्य घोड़े (केशी नामक दैत्य) को मार कर कि बहुना अवध्य साँड़ (अरिष्टासुर) को मार कर तथा कंस के मल्ल मुष्टिक और चाणूर को मार कर निर्लज्ज तुम हम सभी सज्जनों से वार्तालाप करना चाहते हो ? ।। ३६ ।।

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! ननु क्षिपसि माम् !

दुर्योधनः—आः, अभाष्यस्त्वम् ।

अहमवधृतपाण्डुरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा ।
अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भाषे ॥ ३७ ॥

अवध्यामिति—हन्तुं योग्या वध्या सा न भवतीति अवध्या ताम्=हननायोग्याम् । प्रमदाम्=अबलां पूतनामिति यावत् (इयं कथा भागवते १०.६ अध्याये द्रष्टव्या) हयम्=केशिनामानम् (द्र० भा० १०.३७) अथ गोवृषम्=अरिष्टासुरम् (द्र० भा० १०.३६ अ०) मल्लान् मुष्टिकचाणूरान् (द्र० भा० १०.४३-४४ अध्यायौ) च हत्वा=विनाश्य । सुनिर्लज्जः=अत्यन्तनिर्लज्जः सन् साधुभिः=सज्जनैरस्माभिः । सह वक्तुम्=आलपितुम् । इच्छसि=अभिवाञ्छसि । इदं ते सुतरामयोग्यमिति भावः । अनुष्टुप्छन्दः ॥ ३६ ॥

वासुदेवः—ननु=निश्चयेन । क्षिपसि=तिरस्करोषि ।

दुर्योधनः—अभाष्यः=भाषणानर्हः ।

अथेदानीम् दुर्योधनः कृष्णस्याभाष्यत्वमेव प्रतिपादयति—

अन्वयः—अवधृतपाण्डुरातपत्रः द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा अहम् । अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः कथयामि भवद्विधैः सह न भाषे ॥ ३७ ॥

अवधृतपाण्डुरातपत्रः अवधृतम्=संधारितम् । पाण्डुरम्=शुभ्रम् । आतपत्रम्=छत्रं येन सः । द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा द्विजवराणाम्=श्रेष्ठब्राह्मणानाम् हस्तैः=पाणिभिः धृतैः अम्बुभिः=पानीयजलैः सिक्तः=अभिषिक्तः । मूर्धा=शिरः मस्तको वा यस्य सः । एवम्भूतः अहं दुर्योधनः ।

वासुदेव—हे दुर्योधन ! अब तुम मुझ पर आक्षेप करने लगे ।

दुर्योधन—अरे ! तुम तो भाषण करने योग्य नहीं हो ।

श्वेत छत्र धारण करने वाला, ब्राह्मणों के हाथ में रखे घड़े तीर्थ जल से मन्त्रपूर्वक अभिषिक्त शिरवाला मैं अपने पीछे-पीछे चलनेवाले तथा प्रणाम करते समय मस्तक को झुका देनेवाले इन राजसमूहों से बात कर रहा हूं—तुम्हारे जैसे भृत्यों से नहीं ॥ ३७ ॥

वासुदेवः—न व्याहरति किल मां सुयोधनः भोः !

शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर पिङ्गल ! ।
त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ३८ ॥

भो भो राजानः ! गच्छामस्तावत् ।

दुर्योधनः—कथं यास्यति किल केशवः ! दुःशासन ! दुर्मर्षण !

अवमतनृपमण्डलानुयात्रैः अवमतस्य नम्रीभूतस्य नृपमण्डलस्य—राजसंघस्य अनुयात्रैः—अनुयायिभिः कथयामि भवद्विधैः—भवत्सदृशैः कुत्सितैरित्यर्थः । सह—साकम् । न भाषे भाषणं न करोमीति । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३७ ॥

वासुदेवः—न व्याहरति—मया सह वार्तालापं न करिष्यति ।

मयेदानीमनभिभाषणपरिणाममुपदर्शयति भगवान् कृष्णः—

अन्वयः—शठ ! बान्धवनिःस्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! त्वदर्थात् अयम् कुरुवंशः अचिरात् नाशम् एष्यति ॥ ३८ ॥

शठ इति—हे शठ—कितव धूर्त धृष्ट इति यावत् । बान्धवनिःस्नेह बान्धवेषु—ज्ञातिषु निर्गतः—दूरीभूतः स्नेहः—कृपाभावो यस्य तत्संबुद्धौ । काक—वायसवत् कुत्सितचेष्ट । केकर—के मूर्ध्नि नेत्रतारा कर्तुं शीलमस्य नेत्रविकारयुक्त इत्यर्थः । वलिर 'वलिरः केकरे' इत्यमरः । पिङ्गल—मर्कट । त्वदर्थात्—तव कारणात् । अयम्—वर्तमानः । कुरुवंशः—कुरुकुलम् । अचिरात्—शीघ्रम् । एव नाशम्—विनाशम् । एष्यति—गमिष्यति । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३८ ॥

दुर्योधनः—दूतसमुदाचारम्—दूतोचितां मर्यादाम् । अतिक्रान्तः—समुल्लङ्घितः ।

वासुदेव—अच्छा तो यह सुयोधन मुझसे बोलना नहीं चाहता !

हे शठ (धूर्त) ! भाइयों से निर्दयता का व्यवहार करने वाले हे ! काक ! हे केकर (ऐंचा ताना) हे मर्कट ! निश्चय ही तुम्हारे कारण इस सारे कुरुवंश का विनाश होनेवाला है ॥ ३८ ॥

अच्छा तो हे हे राजाओं ! अब यह मैं जा रहा हूं ।

दुर्योधन—यह केशव किस प्रकार जायगा ? दुःशासन ! दुर्मर्षण,

दुर्मुख ! दुर्बुद्धे ! दुष्टेश्वर ! दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बध्यताम् । कथमशक्ताः । दुःशासन ! न समर्थः खल्वसि ।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः ।
हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं
स्ववचनकृतदोषो बध्यतामेष शीघ्रम् ॥ ३६ ॥

अथेदानीं केशवं बन्धने कर्तुमसमर्थान् दुःशासनादीन् प्रोत्साहयति दुर्योधनः—

अन्वयः—करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता सः कृष्णः पशुपकुलनिवासात् आनुजीव्यानभिज्ञः (अस्ति) हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानाम् समक्षम् स्ववचनकृतदोषः एषः शीघ्रम् बध्यताम् ॥ ३६ ॥

व्याख्या—करितुरगनिहन्ता करिणः = कुवलयापीडस्य तुरगस्य = केशिनामासुराख्यस्य निहन्ता = विनाशकः कंसहन्ता कंसस्य हन्ता = कंसविघातकः स कृष्णः पशुपकुलनिवासात् = पशुपानां कुले निवासस्तस्मात् = गोपालककुलवासात् । आनुजीव्यानभिज्ञः = राजव्यवहारापरिचितः । हृतभुजबलवीर्यः हृतं भुजानां बलवीर्यम् यस्य सः = नष्टबाहुबलपराक्रमः । पार्थिवानाम् = सर्वराज्ञाम् । समक्षम् = प्रत्यक्षम् । स्ववचनकृतदोषः स्ववचनेन उच्छृङ्खलवाण्या कृतः दोषः = अपराधः येन एषः = एतादृशः कृष्णः । शीघ्रम् = आशु । बध्यताम् = बद्धः क्रियताम् । अनेन हि राज्ञां समक्षम् उच्छृङ्खल-

---

दुर्मुख, दुर्बुद्धि ! दुष्टेश्वर इस केशव ने दूत की मर्यादा का अतिक्रमण किया है इसलिये इसे शीघ्र बाँध लो । अरे यह अशक्त क्यों ? दुःशासन क्या तुम भी निग्रह में समर्थ नहीं हो ?

हाथी (कुवलयापीड), तुरग (केशी नामक दैत्य) तथा कंस को मारने वाला यह कृष्ण ग्वालवालों के साथ रहने के कारण अनुजीव्य (जीविका कमा कर जीने वाले भृत्यादि) की मर्यादा से अनभिज्ञ है । अतः तुम लोग इसके बाहुबल तथा पराक्रम को उखाड़ फेंको । और अपने कटु वचनों से मेरा अपमान करने वाले इसे राजाओं के सामने देखते बाँध लो ॥ ३६ ॥

अयमशक्तः । मातुल ! बध्यतामयं केशवः । कथं पराङ्मुखः पतति । भवतु अहमेव पाशैर्बध्नामि । (उपसर्पति)

वासुदेवः—कथं बद्धुकामो मां किल सुयोधनः । भवतु सुयोधनस्य सामर्थ्यं पश्यामि । (विश्वरूपमास्थितः)

दुर्योधनः—भो दूत !

सृजसि यदि समन्ताद् देवमायाः स्वमायाः
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारं सुरास्त्रैः ।
हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो

वचनभाषणेन ममापराधो विहितः । अतो अस्य बन्धनं क्रियतामिति भावः ।। ३९ ।।

अशक्तः=निर्बलः । पराङ्मुखः=पलायमानः । (उपसर्पति=गच्छति) ।

वासुदेवः—(विश्वरूपम्=विराड्रूपम् आस्थितः=धृतः)

अथेदानीं विराड्रूपेण संस्थितं भगवन्तं दृष्ट्वा दुर्योधनस्तम् भर्त्सयति—

अन्वयः—यदि त्वम् समन्ताद् स्वमायाः देवमायाः वा सृजसि । यदि वा दुर्निवारैः सुरास्त्रैः प्रहरसि तथापि हयगजवृषभाणां पातनाद् जातदर्पः

अच्छा यह शक्तिहीन है। तो मामा शकुनि तुम्हीं इस केशव को बाँधो—अरे यह भी पीछे की ओर भाग रहा है। अच्छा अब मैं ही पाश से इसे बाँधूंगा (उठ कर चलता है)

वासुदेव—क्या यह दुर्योधन मुझे बाँधना चाहता है ? अच्छा अब इस सुयोधन के सामर्थ्य को देखूंगा। (विश्वरूप में प्रकट होकर स्थित हो गये)।

दुर्योधन—हे दूत !

तुम चारों ओर देवमाया, अथवा स्वमाया की (वैष्णवी माया) भले ही रचना करो अथवा अप्रतिहत देव अस्त्रों से मुझ पर प्रहार ही क्यों

नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाऽद्य ॥ ४० ॥

आः तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य । आः तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः । अयं केशवः । अहो दीर्घत्वं केशवस्य । कथं न दृष्ट केशवः । अयं केशवः । सर्वत्र मन्त्रशालायां केशवा भवन्ति । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भो भो राजानः ! एकेनैकः केशवो बध्यताम् । कथं स्वयमेव पाशैर्बद्धाः पतन्ति राजानः । साधु भो जम्भक ! साधु !

त्वम् अद्य मया नरपतिगणमध्ये बध्यसे ॥ ४० ॥

सृजसीति—भोः दूत ! यदि=चेत् त्वम् समन्तात्=परितः स्वमायाः स्वस्य माया वा:=जनविमोहिनी वैष्णवीमायाः । देवमायाः देवाना मायाः वा । सृजसि=उत्पादयसि । यदि वा दुर्निवारैः=अनिवार्यमाणैः । सुरास्त्रैः=देवायुधविशेषैः । प्रहरसि=मयि प्रहारं करोषि । तथापि हयगजवृषभाणाम् । हयस्य=केश्याख्यस्य गजस्य=कुवलयापीडस्य, वृषभस्य=अरिष्ट नाम्नः तेषाम् । पातनाद्=वधकरणात् । जातदर्पः जातो दर्पः यस्य सः=संजातगर्वः त्वम् अद्य=इदानीम् । नरपतिगणमध्ये=सर्वराज्ञां समक्षम् । मया=दुर्योधनेन । बध्यसे=बन्धनं प्राप्यसे । मालिनीवृत्तम् ॥ ४० ॥

जम्भक=ऐन्द्रजालिक मायाविन् । साधु=सुष्ठु ।

न करो फिर भी हाथी, घोड़ा, बैल आदि का वध करने से अहङ्कार करने वाले तुम्हें मैं आज इन राजाओं के सामने बाधूंगा ॥ ४० ॥

अहा ! अभी खड़े रहो । अरे यह तो केशव दिखाई नहीं दे रहे हैं । अच्छा यह केशव हैं अरे इतने सूक्ष्म केशव । अरे रुको । कैसे केशव दिखाई नहीं देते ? अरे यह केशव हैं । इतने बड़े केशव ! कैसे केशव दिखाई नहीं देते यह केशव हैं । अरे यह सब जगह सभाभवन में केशव ही केशव हो गये । तो अब मैं क्या करूं ? अच्छा उपाय दिखाई पड़ा—हे हे राजाओं एक-एक कर इस केशव को बांध लो । अरे यह क्या ये सब राजागण स्वयं ही पाशों में बंध कर गिर रहे हैं । बहुत अच्छा हे मायाविन् ! बहुत अच्छा ।

मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालै-
विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् ।
पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिविरोपनीतं
त्वां बाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः ॥ ४१ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

अथेदानीं दुर्योधनः स्वकार्मुककृतां श्रीकृष्णविषयिकीं परिणतिमुपस्थापयति—

अन्वयः—मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् शिविरोपनीतं त्वाम् बाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः पाण्डुतनयाः पश्यन्तु ॥ ४१ ॥

मदिति—मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः मम कार्मुकं=धनुः तस्य उदरात्=अभ्यन्तरतः विनिःसृतानि=बहिर्भूतानि बाणानां=शराणां जालानि=समूहास्तैः । विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्, विद्धात्=वेधकारणात् क्षरन्ति=स्रवन्ति यानि क्षतजानि रुधिराणि तैः रञ्जितम्=लोहितवर्णम् सर्वगात्रम्=सर्वशरीरावयवम् यस्य तम्=रुधिराप्लावितशरीरमित्यर्थः । शिविरोपनीतम् शिविरे—सैनिकावासे उपनीतम्=सारथिना प्राप्तम् त्वाम्=दूतभूतं श्रीकृष्णम् । बाष्परुद्धनयनाः बाष्पैः=अश्रुभिः रुद्धानि=समावृतानि नयनानि=नेत्राणि येषां ते । परिनिःश्वसन्तः परितः=सर्वतः निःश्वसन्तः शोकोच्छ्वासं गृह्णन्तः । पाण्डुतनयाः=युधिष्ठिरादयः । पश्यन्तु=अवलोकयन्तु । वसन्ततिलकावृत्तम् । स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ ४१ ॥

मेरे धनुष से छोड़े गये बाण समूहों से विद्ध तथा रक्तस्राव से रञ्जित शरीर वाले एवं शिविर में सारथी के द्वारा ले जाये गये तुम्हें ये पाण्डवगण अश्रुपूर्ण नेत्रों से दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये देखें ॥ ४१ ॥

(चला जाता है)

वासुदेवः—भवतु, पाण्डवानां कार्यमहमत्र साधयामि । भोः सुदर्शन ! इतस्तावत् ।

(ततः प्रविशति सुदर्शनः ।)

सुदर्शनः—एष भोः ।

श्रुत्वा गिरं भगवतो विपुलप्रसादा-
न्निर्धावितोऽस्मि परिवारिततोयदौघः ।

पाण्डवकार्यसाधनार्थं भगवताहूतः सुदर्शनः स्वामुपस्थितिं विज्ञापयति—

अन्वयः—विपुलप्रसादात् भगवतो गिरं श्रुत्वा परिवारिततोयदौघः निर्धावितः अस्मि । कमलायताक्षः कस्मिन् प्रकुपितः खलु । किञ्च अद्य मया कस्य मूर्धनि प्रविजृम्भितव्यम् ।

श्रुत्वेति—विपुलप्रसादात् विपुलश्चासौ प्रसादस्तस्मात्=महतोऽनुग्रहात् । भगवतः=श्रीकृष्णस्य । गिरम्=वाचम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य । परिवारिततोयदौघः परिवारितः=दूरीकृतः तोयदानाम्=मेघानाम् ओघः=समूहो येन सः समुत्सारितसमस्तमेघवृन्द इत्यर्थः । निर्धावितः=झटिति चलितः अस्मि । कमलायताक्षः कमले इव आयते अक्षिणी यस्य सः=पुण्डरीकाक्षः श्रीकृष्ण इत्यर्थः । कस्मिन् जीवे इति शेषः । प्रकुपितः=प्रकर्षेण क्रुद्धः । खलु=निश्चयेन । कस्य—अपकारिणो जीवस्य । मूर्धनि=मस्तके वा अद्य=इदानीम् । मया=सुदर्शनेन । प्रविजृम्भितव्यम्=स्वपराक्रमं प्रकाशितव्यम् । कस्य मूर्धानमहं खण्डयामीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४२ ॥

वासुदेव—अच्छा ! तो अब पाण्डवों का काम मैं ही सिद्ध करूँ । हे सुदर्शन इधर आवो ।

(तदनन्तर सुदर्शनचक्र प्रवेश करता है)

सुदर्शन—यह मैं उपस्थित हूं ।

आप की वाणी को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ मेघखण्डों को विदीर्ण करता हुआ दौड़ कर आ पहुंचा हूं । हे कमल नेत्र ! आप इस समय

कस्मिन् खलु प्रकुपितः कमलायताक्षः
कस्याद्य मूर्धनि मया प्रविजृम्भितव्यम् ॥ ४२ ॥

क्व नु खलु भगवान् नारायणः ।
अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः ।
एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः ॥ ४३ ॥

क्व नु—कुत्र वर्तते । भगवान् नारायणः—श्रीकृष्णः ।

अथेदानीं सुदर्शनः नारायणं विशिनष्टि ।

अन्वयः—(अयं नारायणः) अव्यक्तादिः अचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः एकः अनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः स नारायणः (क्वास्ते इत्यन्वेषयति सुदर्शनः) ॥ ४३ ॥

अव्यक्तादिरिति—अयं नारायणः अव्यक्तादिः न व्यक्तः न ज्ञातः आदिर्यस्य तथाभूतः = अनादिरित्यर्थः । अचिन्त्यात्मा अचिन्त्यः = मनोवाग्बुद्धीन्द्रियागम्यः आत्मा = स्वरूपो यस्य सः अचिन्त्यविभव इत्यर्थः । लोकसंरक्षणोद्यतः लोकानाम् संरक्षणार्थम् पालनार्थम् उद्यतः = तत्परः भुवनपालनकर्मणि सर्वदा तत्पर इत्यर्थः । एकः अद्वैतः अपि अनेकवपुः = अनेकशरीरप्रविष्टः (एकोऽहं बहु स्याम् इति श्रुतेः) श्रीमान् श्रीरस्ति अस्मिन् श्रीमान् = षडैश्वर्ययुक्तः । द्विषद्बलनिषूदनः द्विषताम् = शत्रूणाम् बलम् = शक्तिं सैन्यं वा निषूदयति विनाशयति तथाभूतः नारायणः क्व वर्तते इत्यन्वेषयति सुदर्शनः ॥ ४३ ॥

किस पर प्रकुपित हो गये हैं । किसके शिर पर मुझे अपनी शक्ति प्रकट करनी होगी (अर्थात् किसका वध करना है) अरे कहाँ हैं भगवान् नारायण । ॥ ४२ ॥

जिसका आदि कोई नहीं जानता, जिसका स्वरूप बुद्धि से परे है जो निरन्तर लोकरक्षार्थ उद्यत रहते हैं, जो एक होकर भी अनेक शरीर धारण किये हुये हैं जो श्रीमान् (षडैश्वर्य युक्त) एवं शत्रुओं के सैन्य का विनाश करते हैं ॥ ४३ ॥

(विलोक्य) अये अयं भगवान् हास्तिनपुरद्वारे दूतसमुदाचारेणोपस्थितः। कुतः खल्वापः, कुतः खल्वापः। भगवति आकाशगङ्गे! आपस्तावत्। हन्त स्रवति। (आचम्योपसृत्य) जयतु भगवान् नारायणः (प्रणमति।)

वासुदेवः—सुदर्शन! अप्रतिहतपराक्रमो भव।

सुदर्शन—अनुगृहीतोऽस्मि।

वासुदेवः—दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः।

सुदर्शनः—कथं कथं कर्मकाल इति। आज्ञापयतु भगवानाज्ञापयतु।

किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि

दूतसमुदाचारेण=दूतमर्यादाशिष्टाचारेण।

वासुदेवः—अप्रतिहतपराक्रमः अप्रतिहतः=अनिरुद्धः पराक्रमः=बलं यस्य तादृशः।

वासुदेवः—कर्मकाले कर्मणः काले=समये उचितसमये इत्यर्थः।

अथेदानीं सुदर्शनः स्वां शक्ति भगवति निवेदयन् प्रार्थयति—

अन्वयः—मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि किम्? वा सकलम् मकरालयं

(देखकर) अरे ये भगवान् हस्तिनापुर के द्वार पर दूत बनकर उपस्थित हैं। जल कहाँ है जल कहाँ है? भगवति! आकाशगङ्गे! शीघ्र ही जल दो। प्रसन्नता की बात है कि जल गिर रहा है (आचमन कर पास जाकर) भगवान् नारायण सबसे उत्कृष्ट बने रहें (ऐसा कह कर प्रणाम करता है)।

वासुदेव—सुदर्शन! तुम्हारा पराक्रम अप्रतिहत बना रहे।

सुदर्शन—भगवन् अनुगृहीत हुआ।

वासुदेव—भाग्यवश तुम कर्म काल में आ गये।

सुदर्शन—कैसा कैसा कर्मकाल! आज्ञा दीजिये महाराज आज्ञा दीजिये।

क्या मेरु और मन्दर को उखाड़ फेंकूं अथवा सारे मकरालय (समुद्र

संक्षोभयामि सकलं मकरालयं वा ।
नक्षत्रवंशमखिलं भुवि पातयामि
नाशक्यमस्ति मम देव ! तव प्रसादात् ॥ ४४ ॥

वासुदेवः—भोः सुदर्शन ! इतस्तावत् । भोः सुयोधन ।

यदि लवणजलं वा कन्दरं वा गिरीणां

संक्षोभयामि किम् । भुवि अखिलं नक्षत्रवंशं पातयामि किम् हे देव ! तव प्रसादात् मम (किमपि) अशक्यं नास्ति ॥ ४४ ॥

किमिति—मेरुमन्दरकुलम् मेरुश्च मन्दरश्च मेरुमन्दरौ=एतन्नामकौ पर्वतविशेषौ तयोः कुलम्=समूहम् परिवर्त्तयामि=उत्खातयामि । यद्वा मेरोः स्थाने मन्दरं मन्दरस्थाने च मेरुमित्येवं रूपेण स्थानपरिवर्त्तनम् करोमि किम् । वा=अथवा । सकलम्=सम्पूर्णम् । मकरालयम्=समुद्रम् । संक्षोभयामि=मथित्वा विचलितं आविलं वा करोमि किम् ? अथवा भुवि=पृथिव्याम् । अखिलम्=निःशेषम् । नक्षत्रवंशम् नक्षत्राणाम्=उडुगणानां वंशम्=कुलं समूहं वा पातयामि=भ्रंशयामि किम् । हे देव=भगवन् । तव=भवतः । प्रसादात्=अनुग्रहात् मम=सुदर्शनस्य अशक्यम्=असाध्यं किमपि नास्ति । मया हि संभवमसंभवं वा सर्वं कर्त्तुं शक्यते इत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४४ ॥

वासुदेवः सुदर्शनमाहूय दुर्योधनमुद्दिश्य भर्त्सयति यदत्र कुत्रापि गमने तव मुक्तिर्नास्ति—

अन्वयः—हे चपल दुर्योधन ! यदि त्वं लवणजलं वा गिरीणां कन्दरं

को) संक्षुब्ध (मन्थन से मलीन अथवा चञ्चल) कर दूँ अथवा आकाश-मण्डल से समस्त नक्षत्रमण्डल को पृथ्वी पर गिरा दूँ । हे देव ! तुम्हारी कृपा से मेरे लिये कुछ भी अशक्य नहीं है ॥ ४४ ॥

वासुदेव—हे सुदर्शन इधर आओ ! हे सुयोधन !

अब यदि तुम क्षार समुद्र में पर्वत की कन्दराओं में नक्षत्रमण्डलों के

ग्रहगणचरितं वा वायुमार्गं प्रयासि ।
मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं
भवतु चपल ! चक्रं कालचक्रं तवाद्य ॥ ४५ ॥

सुदर्शन—भोः सुयोधनहतक ! (इति पुनर्विचार्य) प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः ।

महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले ।

वा ग्रहगणचरितम् (मार्गम्) वा वायुमार्गं प्रयासि तथापि मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं (इदं) चक्रम् अद्य तव कालचक्रं भवतु ॥ ४५ ॥

यदीति—हे चपल=चञ्चल दुर्योधन । यदि=चेत् । त्वम् लवणजलम्=क्षारोदम् वा=अथवा गिरीणां=पर्वतानां । कन्दरम्=गुहां वा ग्रहगणचरितम् ग्रहगणैः नक्षत्रगणैः चरितम्=संचरणशीलम् आकाशमिति यावत् । वायुमार्गम्=अन्तरिक्षलोकं वा । प्रयासि=पलायसे तथापि मम=श्रीकृष्णस्य । भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगम् भुजानां बलम्=बाहुवीर्यम् तेन योगम्=संबन्धम् प्राप्तं=लब्धं सत् सञ्जातवेगम् उत्पन्नरयसम् इदं चक्रम्=सुदर्शननामकम् । तव=दुर्योधनस्य । अद्य=इदानीम् । कालचक्रम् कालस्य चक्रम्=मृत्युचक्रम् । भवतु=भवेदित्यर्थः पलायमानेऽपि चक्रसुदर्शनात्तवमृत्युरवश्यंभावीत्यर्थः ॥ ४५ ॥

सुदर्शनः—सुयोधनहतक=हतभाग्य सुयोधन !

अधुना सुयोधनो न हन्तव्यः किञ्चित्कालानन्तरमयं हन्तव्य इति भगवन्तं स्मारयति सुदर्शनः—

अन्वयः—हे देव ! भूतले महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य (तव)

मार्ग आकाश में अथवा वायुमार्ग (अन्तरिक्ष) में चाहे कहीं भी जाओ मेरी भुजाओं के बल से संचालित होने के कारण अत्यन्त वेगवान् यह सुदर्शनचक्र अब तुम्हारा कालचक्र होकर रहेगा ॥ ४५ ॥

सुदर्शन—हे हतभाग्य सुयोधन ! (इतना कहकर पुनः कुछ विचारते हुये) प्रसन्न हों प्रसन्न हों भगवान् नारायण !

पृथ्वी का भार उतारने के लिये आपने अवतार लिया है । किन्तु मात्र

अस्मिन्नेव गते देव । ननु स्याद्विफलः श्रमः ॥ ४६ ॥

वासुदेवः—सुदर्शन ! रोषात् समुदाचारो नावेक्षितः । गम्यतां स्वनिलयमेव ।

सुदर्शनः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । कथं कथं गोपालक इति । त्रिचरणातिक्रान्तत्रिलोकीं नारायणः खल्वत्रभवान् । शरणं

अस्मिन् एव गते विफलः श्रमः स्यात् ननु ॥ ४६ ॥

महीति । हे देव=हे द्योतनात्मक परमात्मन् । भूतले=पृथिव्याम् महीभारापनयनम् मह्याः=उर्व्याः भारः राक्षसादेरिति शेषः तस्य अपनयनम्=विनाशम् कर्त्तुम् विधातुं जातस्य=अवतरितस्य तव अस्मिन् एव गते=मात्रैतस्य विनाशे कृते । श्रमः=आगमनरूपपरिश्रमः । विफलः=निष्फलः स्यात् भवेत ननु इति तर्कनायाम् । एतेन सहाम्येऽपि पृथिव्याः भारभूता नृपाः हन्तव्याः येनावतारप्रयोजनं सार्थकं भवेन्मात्रैकस्यास्य हनने तु श्रमो विफल एवेति भावः । अनुष्टुप्छन्दः ॥ ४६ ॥

वासुदेवः—रोषात् क्रोधावेशेन समुदाचारं=कर्त्तव्यपथः । नावेक्षितः न परिज्ञातः ।

सुदर्शनः—राज्ञः संबोध्य प्रशास्ति यन्नायं गोपालः । किन्तु त्रिचरणातिक्रान्तत्रिलोक त्रिचरणेन त्रिपदेन अतिक्रान्तः=समुल्लङ्घितः त्रिलोको येन सः तथाभूतः नारायणः विराड् रूपधारी त्रिविक्रमो नारायण इति भावः ।

इस दुर्योधन की मृत्यु से तुम्हारा अवतरित होने का सारा श्रम व्यर्थ होगा ॥ ४६ ॥

वासुदेव—सुदर्शन ! क्रोध के कारण मुझे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं हुआ । तो तुम अपने निवासस्थान पर लौट जाओ ।

सुदर्शन—भगवान् नारायण की जैसी आज्ञा । गोपालक (गौओं का पालन करने वाले) कैसे ! अपने तीन चरणों से सारे त्रिलोक को नाप

व्रजन्तु भवन्तः । यावद् गच्छामि । अये एतद् भगवदायुधवरं शार्ङ्गं प्राप्तम् ।

तनुमृदुललिताङ्गं स्त्रीस्वभावोपपन्नं
हरिकरधृतमध्यं शत्रुसङ्घैककालः ।
कनकखचितपृष्ठं भाति कृष्णस्य पार्श्वे

अतो भवन्त एतस्य शरणं व्रजन्त्विति पुनश्च गमनायोद्यतः सन् भगवत्संकल्पमात्रेणोपस्थितं शार्ङ्गं दृष्ट्वा तमेव वर्णयति—

अन्वयः—तनुमृदुललिताङ्गम् स्त्रीस्वभावोपपन्नं हरिकरधृतमध्यं शत्रुसंघैककालः कनकखचितपृष्ठं नवसलिलदपार्श्वे चारु विद्युल्लता इव कृष्णस्य पार्श्वे भाति ॥ ४७ ॥

व्याख्या—तनुमृदुललिताङ्गम् तनु=कृशम् मृदु=मसृणं च ताभ्याम् । ललितम्=मनोहरम् अङ्गम्=शरीरावयवं यस्य तत् । स्त्रीस्वभावोपपन्नम् स्त्रियः स्वभावस्तेन उपपन्नम् युक्तम्=वक्रतया यद्वा तासां कटाक्षवीक्षणस्य तथात्वारोपेणोपमितम् । स्त्रीस्वभावेनोपमितम् । हरिकरधृतमध्यम् । हरिकरेण=विष्णुपाणिना धृतः मध्यो मध्यभागो यस्य तत्=विष्णुमुष्टिस्थितमिति भावः । शत्रुसंघैक कालः शत्रूणां सङ्घः तेषाम् एकः कालः तथाभूतम् विपक्षसमूह विध्वकमित्यर्थः । कनकखचितपृष्ठम् ।

लेने वाले आप त्रिविक्रम नारायण अवश्य हैं । हे राजाओं आप लोग इनकी शरण में जावें । अच्छा अब मैं जाता हूं । अरे यह भगवान् का सर्वश्रेष्ठ आयुध शार्ङ्ग धनुष आ गया ।

इस शार्ङ्ग का अङ्ग तनु (सूक्ष्म) मृदु (कोमल) तथा ललित (मनोज्ञ) है यह स्त्रीस्वभाव (तीक्ष्ण चपल तथा टेढ़ापन) से युक्त है । इसका मध्यम भाग भगवान् के हाथों से गृहीत है । यह शत्रुओं के समूह के लिये अकेले ही काल हैं । इसका पृष्ठ भाग सुवर्ण से जटित है इस समय यह शार्ङ्ग धनुष श्रीकृष्ण के समीप होने से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे श्यामल मेघ के समीप विद्युच्छटा । हे हे शार्ङ्ग ! भगवान् नारायण का

नवसलिलदपार्श्वे चारु विद्युल्लतेव ॥ ४७ ॥

भो भोः ! शार्ङ्ग, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः । गम्यतां स्वनिलयमेव । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि । अये इयं कौमोदकी प्राप्ता ।

मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया
सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा ।

कनकेन सुवर्णेन खचितं अनुस्यूतम् पृष्ठम्=पृष्ठभागो यस्य तत् । नवसलिलदपार्श्वे नवानाम्=नूतनानाम् सलिलदानाम्=मेघानाम् । पार्श्वे=समीपे । चारु=सुन्दरं यथा स्यात्तथा विद्युल्लता=तडिद्रेखा इव कृष्णस्य=वासुदेवस्य । पार्श्वे=समीपे भाति=शोभते । मालिनीवृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ४७ ॥

पुनः भगवतः संकल्पमात्रेणोपस्थितां कौमोदकीं गदां दृष्ट्वा वर्णयति सुदर्शनः—

अन्वयः—मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा गिरिवरतटरूपा दुर्निवारा अतिवीर्या देववृन्दानुयाता इयं कौमोदकी शीघ्रं नभसि व्रजति ॥ ४८ ॥

व्याख्या—मणिकनकविचित्रा मणिभिः कनकेन=हाटकेन च विचित्रा=अनेकरूपा । चित्रमालोत्तरीया चित्रवर्णा माला उत्तरीयम्=ऊर्ध्ववस्त्रं यस्याः सा । सुररिपुगणगात्रध्वंसने सुररिपुगणानाम्=असुरसमूहानां गात्राणि=शरीराणि ध्वंसने=विनाशे जाततृष्णा जाता=उत्पन्ना तृष्णा=लोभो

क्रोध अब शान्त हो गया है अतः तुम अपने निवासस्थान पर लौट जाओ। अच्छा तो मैं भी जाता हूँ। अरे यह कौमोदकी गदा उपस्थित हो गई ॥ ४७ ॥

जो गदा मणियों एवं स्वर्ण से निर्मित होने के कारण तथा विचित्र वर्ण की माला का उत्तरीय धारण की है। देवद्वेषी असुरों के शरीर को चूर्ण करने की तृष्णा से युक्त तथा पर्वत प्रान्त भाग जैसी विशाल है।

गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या
व्रजति नभसि शीघ्रं मेघवृन्दानुयात्रा ॥ ४८ ॥

हे कौमोदकि ! प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः । हन्त निवृत्ता । यावद्गच्छामि । अये अयं पाञ्चजन्यः प्राप्तः ।

पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरो
नारायणाननसरोजकृतप्रसादः ।

यस्याः सा । गिरिवरतटरूपा गिरीणां वरः तस्य तटम्=प्रान्तभागम् । तदिव रूपं=स्वरूपं यस्याः सा पर्वतप्रान्तभागतीक्ष्णफलकेत्यर्थः । दुर्निवारा=दुःखेन निवारणं अवरोधो यस्याः सा तादृशी । अतिवीर्या=अति=महत् वीर्यम्=पराक्रमो यस्याः सा=लोकोत्तर पराक्रमा । मेघवृन्दानुयात्रा मेघवृन्दस्य=मेघसमूहस्य अनुयात्रम्=अनुगमनं यस्या सा जलदसमूहानुगा इयम् कौमोदकी=भगवतः श्रीकृष्णस्य गदा नभसि=आकाशे व्रजति=गच्छति । मालिनीवृत्तम् । रूपकालंकारः ॥ ४८ ॥

अथावसरं प्राप्तं पाञ्चजन्यं वर्णयति सुदर्शनः—

अन्वयः—पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरः नारायणानन सरोजकृतप्रसादः यस्य प्रलयसागरघोषतुल्यम ध्वनम् निशम्य असुराङ्गनानाम् गर्भाः निपतन्ति ॥ ४९ ॥

पूर्णेति—पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरः पूर्णेन्दुश्च कुन्दश्च कुमुदोदरश्च हारश्च तेषामिव गौरः=अशेषचन्द्रमाध्यकैरवोदरहारशुभ्रः । अतिधवलवर्ण इत्यर्थः । नारायणाननसरोजकृतप्रसादः नारायणस्य=भगवतः श्रीकृष्णस्य

इसका वीर्य अप्रतिहत है तथा शीघ्रतापूर्वक मेघ घटाओं के पीछे पीछे आकाशमण्डल में जा रही है ॥ ४८ ॥

हे कौमोदकि ! भगवान् नारायण का अब कोप शान्त हो गया । अच्छा यह लौट पड़ा तो अब चलूं । अरे यह पाञ्चजन्य उपस्थित हो गया ।

वह पाञ्चजन्य पूर्णचन्द्र, कुन्द कुमुद एव मुक्ताहार के समान शुभ्रवर्ण वाला है, भगवान् नारायण के मुख कमल का इसे प्रसाद (कृपा) प्राप्त

यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषतुल्यं
गर्भा निशम्य निपतन्त्यसुराङ्गनानाम् ॥ ४९ ॥

हे पाञ्चजन्य ! प्रशान्तरोषो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः । अये नन्दकासिः प्राप्तः ।

वनिताविग्रहो युद्धे महासुरभयङ्करः ।

आननसरोजेन = मुखकमलेन कृतः = विहितः प्रसादः = अनुग्रहो यत्र सः तादृशः । एतादृशस्य यस्य पाञ्चजन्यस्य प्रलयसागर घोषतुल्यम् प्रलयकाले संक्षुब्धः यः सागरः तस्य घोषः = महानिनादः तेन तुल्यम् = समानम् । स्वनम् = शब्दम् । निशम्य = श्रुत्वा । असुराङ्गनानाम् = असुराणाम् दैत्यानाम् या अङ्गनास्तासां गर्भाः = भ्रूणाः निपतन्ति = स्रवन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् । मालोपमालंकारः ॥ ४९ ॥

तदानीमवसरप्राप्तं नन्दकनामानं भगवतोऽसिं वर्णयति सुदर्शनः—

अन्वयः—वनिताविग्रहः युद्धे महासुरभयंकरः अयम् गगने शीघ्रं प्रयाति सति महोल्का इव विभाति च ॥ ५० ॥

वनितेति—वनिताविग्रहः वनितायाः स्त्रियः विग्रहः = शरीरमिव विग्रहो यस्य सः दीप्तिमत्त्वेन शुभ्रवर्णत्वेन तैक्ष्णत्वेन मनोज्ञत्वेन कोषरूपगुहान्तर्गतत्वेन च खड्गस्य वनिताविग्रहसादृश्यम् । युद्धे = संग्रामे । महासुरभयंकरः महासुराणाम् = दैत्यप्रवराणां भयं करोतीति तादृशः अयम् =

है उसकी ध्वनि 'प्रलयकालीन' सागर के समान अत्यन्त गम्भीर है जिसे सुनते ही दैत्याङ्गनाओं के गर्भ गिर जाते हैं ॥ ४९ ॥

हे पाञ्चजन्य ! भगवान् नारायण का क्रोध शान्त हो गया । अब आप लौट जाओ । प्रसन्नता की बात है कि यह लौट गया । अरे यह तो नन्दक नाम की तलवार आ गई ।

जिसका शरीर वनिता के शरीर के समान दीप्त एवं तीक्ष्ण है । एवं जो कोषान्तर्गत रूप गृह में निवास करने के कारण आवृत है जो दैत्यों के लिये युद्धस्थल में महाभयङ्कर है । ऐसी यह नन्दक नाम की तलवार

प्रयाति गगने शीघ्रं महोल्केव विभात्ययम् ॥ ५० ॥

हे नन्दक ! प्रशान्तरोषो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि । अये एतानि भगवदायुधवराणि ।

सोऽयं खड्गः खरांशोरपहसिततनुः स्वैः करैर्नन्दकाख्यः
सेयं कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा ।

नन्दकनामासिः । गगने = वियति । शीघ्रम् = आशु । प्रयाति = गच्छति सति । महोल्का महती चासौ उल्का = महोत्पातसूचककेतुः इव विभाति = संशोभते ॥ ५० ॥

भगवदायुधवराणि भगवतः = वासुदेवस्य । आयुधवराणि = आयुधेषु वराणि = श्रेष्ठायुधानि सन्ति ।

अथेदानीं समष्टयायुधानि वर्णयति सुदर्शनः —

अन्वयः—सः अयं नन्दकाख्यः खड्गः यः स्वैः करैः खरांशोः उपहसिततनुः इयं सा कौमुदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा एषा सा शार्ङ्गाभिधानां चापरेखा या प्रलयघनरवज्यारवा अयं सः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः यः शशिकर विशदः गम्भीरघोषः वर्तते ॥ ५१ ॥

सः अयम् = पूर्वोक्तः भगवत्पार्श्ववर्ती । नन्दकाख्यः = नन्दक नाम्ना प्रसिद्धः । खड्ग = असिः । यः स्वैः = स्वकीयैः । करैः = रश्मिभिः । खरांशोः खराः = तीक्ष्णाः अंशवः = किरणाः यस्य तस्य = सूर्यस्य । अपहसिततनुः अपहसिता = उपहासं प्रापिता तनुर्यस्य सः = सूर्यं तिरस्कृततैक्ष्ण्य इत्यर्थः । किञ्च इयं सा = पुरोवर्तमाना । कौमोदकी = एतन्नाम्नी

आकाश में तेजी से जाती हुई उत्पात केतु के समान प्रतीत हो रही है ॥ ५० ॥

हे नन्दक भगवान का क्रोध शान्त हो गया, आप चले जाओ । अच्छा यह लौट गया तो मैं भी चलूं । अरे यही हैं भगवान् के श्रेष्ठ श्रेष्ठ अस्त्र !

यह वही खड्ग है जो तीक्ष्ण किरणोंवाले सूर्य का भी अपनी तीक्ष्णता से उपहास कर रहा है यह वह कौमोदकी नाम की गदा है जो शत्रुपक्ष के

सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापरेखा
सोऽयं गम्भीरघोषः शशिकरविशदः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः ॥५१॥

हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य !
दैत्यान्तकृन्नन्दक ! शत्रुवह्ने ! ।

पक्षा या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा सुराणां रिपवः=असुराः तेषां कठिनानि=दृढतराणि यानि उरः स्थलानि=हृदयानि तेषां क्षोदः=चूर्णीकरणम् भञ्जनं वा तत्र दक्षा=कुशला समर्था वा। एषा सा=अपवत्साग्निच्यवर्तिनी शार्ङ्गाभिधाना शार्ङ्गं अभिधानं नाम यस्याः सा चापरेखा=धनुः पद्धतिः या प्रलयघनरवज्यारवा प्रलये=प्रलयकाले ये घनाः=मेघाः तेषां रवः=स्वन इव ज्यायाः=मौर्व्याः रवः यस्याः सा। किञ्च अयं सः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः यः शशिकरविशदः शशिनः चन्द्रस्य करः=किरण इव विशदः=समुज्ज्वलः गम्भीरघोषः गम्भीरो घोषो रवो यस्य सः वर्तते इति शेषः। स्रग्धरावृत्तम्। दीपकालंकारः ॥ ५१ ॥

पुनः सुदर्शनः सर्वाणि तानि तान्यायुधानि संबोध्य स्वस्वस्थानगमनार्थमाज्ञापयति —

अन्वयः— हे शत्रुवह्ने नन्दक ! इदानीं दैत्यान्तकृत् भगवान् मुरारिः अत्र प्रशान्तरोषः हि तावत् स्वरूपावम् एव गच्छ ॥ ५२ ॥

हे शार्ङ्ग इति—शत्रुवह्ने शत्रूणां वह्निः=दाहकस्तत्संबुद्धौ। एतच्च प्रतिनाम्नि विशेषणपदेन योज्यम्। हे शार्ङ्ग=एतन्नामकचापः कौमोदकि=एतन्नाम्नि गदे। पाञ्चजन्य=एतन्नामकशङ्ख। नन्दक=एतन्नामासे! दैत्यान्तकृत्=दैत्य विनाशकर्ता भगवान् मुरारिः=श्रीकृष्णः। प्रशान्त-

---

योद्धाओं के कठिन वक्षःस्थल को विदीर्ण करने में अत्यन्त निपुण है। यह वही शार्ङ्ग नाम का धनुष है जिसकी प्रत्यञ्चा की ध्वनि प्रलयकालीन मेघ के समान गम्भीर है और यह है वह शङ्खराज पाञ्चजन्य जो चन्द्रमा के समान शुभ्र वर्णोंवाला तथा गम्भीर ध्वनि करनेवाला है ॥ ५१ ॥

शत्रुओं के लिये अग्निस्वरूप एवं दैत्यों के लिये कालस्वरूप हे शार्ङ्ग !

प्रशान्तरोषो भगवान् मुरारिः
स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत् ॥ ५२ ॥

हन्त ! निवृत्ताः । यावद् गच्छामि । अये अत्युद्धूतो वायुः । अतितपत्यादित्यः । चलिताः पर्वताः । क्षुब्धाः सागराः । पतिताः वृक्षाः । भ्रान्ता मेघाः । प्रलीना वासुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वराः । किन्नु खल्विदम् ? अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्तः ।

सुरासुराणां परिखेदलब्धं येनामृतं मातृविमोक्षणार्थम् ।

रोषः — प्रशान्तः रोषो यस्य सः वर्तते हि — निश्चयेन तावत् — अतः । स्वस्थानम् — स्वस्वावासम् । एव गच्छ — प्रयाहि । उपजातिवृत्तम् ॥ ५२ ॥

हन्त ! इत्यानन्दे । निवृत्ताः — स्वस्वस्थानं परावृत्ताः । अत्युद्धूतः — अतिशयेन कम्पयन् प्रचण्ड इत्यर्थः ; क्षुब्धाः — आविलाः क्षोभं प्राप्ताः वा । भ्रान्ताः — घूर्णमानाः । प्रलीनाः — अन्तर्हिताः अथेदानीमवसरं प्राप्तं गरुडं दृष्ट्वा सुदर्शनः तस्य प्रशस्ति करोति ।

अन्वयः येन मातृविमोक्षणार्थं सुरासुराणां परिखेदलब्धम् अमृतं आच्छिन्नम् आसीत् । किञ्च तदर्थं द्विषतः मुरारेः त्वाम् उद्वहामि इति वरः अपि दत्तः । अयं स गरुडः उपस्थितः इति शेषः ॥ ५३ ॥

हे कौमोदकि हे पाञ्चजन्य एवं हे नन्दक भगवान् मुरारी का कोप अब शान्त हो गया अतः आप सब अपने अपने स्थानों को लौट जायें ॥ ५२ ॥

अच्छा प्रसन्नता की बात है कि सब चले गये । तो मैं भी अब चलता हूँ । अरे यह प्रचण्ड वायु का वेग । यह सूर्य में अत्यधिक ताप तथा पर्वत चलायमान हो रहे हैं । सागर संक्षुब्ध हो रहा है, वृक्ष गिर रहे हैं, बादल आकाशमण्डल में चक्कर काट रहे हैं । वासुकि प्रभृति नागगण छिप रहे हैं यह सब क्या है ? मालूम हो गया भगवान् के वाहन गरुड़ जो आ रहे हैं ।

जिन्होंने अपनी माता को कद्रू की दासता से मुक्त करने के लिये देवताओं एवं असुरों के द्वारा अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त अमृत का अपहरण

आच्छिन्नमासीद् द्विषतो मुरारेस्त्वामुद्वहामीति वरोऽपि दत्तः ॥५३॥

हे काश्यपप्रियसुत ! गरुड ! प्रशान्तरोषो भगवान् देवदेवेशः । गम्यतां स्वनिलयमेव । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि ।

एते [स्थिता वियति किन्नरयक्षसिद्धाः]
देवाश्च संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः ।

सुरासुराणामिति—येन = गरुडेन । मातृविमोक्षणार्थम् मातुः = स्वस्वमातुः विनतायाः विमोक्षणं तस्मै सुरासुराणां = देवदानवानाम् । परिखेदलब्धम् परिखेदेन अत्यन्त परिश्रमेण लब्धम् प्राप्तम् । अमृतम् = सुधाम् । आच्छिन्नम् स्वायत्तीकृतम् । किञ्च अमृतार्थं द्विषतः = द्वेषं कुर्वतः मुरारेः विष्णोः त्वाम् उद्वहामि = त्वद्वहनं करोमि इति मान कृत्वा वरः अपि दत्तः । उपजातिवृत्तम् ॥ ५३ ॥

काश्यपप्रियसुतकश्यप एव काश्यपस्तस्य प्रियसुतस्तत्संबुद्धौ । देवदेवेशः = भगवान् वासुदेवः । स्वनिलयम् = स्वकीयावासम् ।

एवं सर्वाण्यायुधानि परावर्त्य स्वयं गन्तुमिष्यमाणः सुदर्शनः अन्तरिक्षस्थानां तत्तद्देवयोनिविशेषाणाम् तदानींतनामवस्थां वर्णयति

अन्वयः—वियति एते स्थिताः किन्नरयक्षसिद्धाः संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः देवाः च अच्युते रुष्टे विगतकान्तिगुणाः किञ्च प्रशान्तं श्रुत्वा निवृत्ततापाः सन्तः सदनानि व्रजन्ति ॥ ५४ ॥

एते इति—वियति = आकाशे एते स्थिताः = वर्त्तमानाः किन्नरयक्ष-

कर लिया और विष्णु को मैं तुम्हारा वाहन बनूंगा ऐसा वर भी दिया (वे गरुड़ उपस्थित हो गये) ॥ ५३ ॥

हे कश्यप के प्रिय पुत्र गरुड़ देवाधिदेव भगवान श्री कृष्ण का कोप अब शान्त हो गया । अतः अपने घर लौट जाइये । अहा लौट गये । तो अब मैं भी चलता हूं ।

ये आकाशमण्डल में स्थित किन्नर, यक्ष, सिद्ध और देवगण भगवान को रुष्ट देखकर भय से मुकुटमण्डित अपने शिर को कँपाते हुये अपने

रुष्टेऽच्युते विगतकान्तिगुणाः प्रशान्तं
श्रुत्वा श्रयन्ति सदनानि निवृत्ततापाः ॥ ५४ ॥

यावदहमपि कान्तां मेरुगुहामेव यास्यामि । (निष्क्रान्तः ।)

वासुदेवः—यावदहमपि पाण्डवशिबिरमेव यास्यामि ।

(नेपथ्ये)

न खलु न खलु गन्तव्यम् ।

वासुदेवः—अये वृद्धराजस्वर इव । भो राजन् ! एष स्थितोऽस्मि ।

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रः ।)

सिद्धाः किन्नराश्च यक्षाश्च सिद्धाश्च ते = देवयोनिविशेषाः । संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः संभ्रमेण = भ्रान्त्या चलन्तः = कम्पमानाः मुकुटाः = शिरोभूषणानि येषां तानि तथा भूतानि उत्तमाङ्गानि = मूर्धानः येषां ते तथाभूताः देवाश्च = अमराश्च अच्युते = भगवति श्रीकृष्णे । रुष्टे = क्रुद्धे । विगतकान्तिगुणाः विगताः = विनष्टाः कान्तीनाम् = तेजसां गुणाः येषां ते तेजोविरहिता जाता इति शेषः । किञ्च प्रशान्तम् = प्रशमितकोपं । श्रुत्वा = आकर्ण्य । निवृत्ततापाः निवृत्तः = प्रनष्टः तापो = मानसोज्वरः येषां ते तथाभूताः सुप्रसन्ना इत्यर्थः । सदनानि स्वस्वावासान् । श्रयन्ते = आश्रयन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५४ ॥

शरीर की कान्ति से विहीन हो गये थे । किन्तु अब श्रीकृष्ण का कोप शान्त हुआ देख ये सभी अपने अपने धाम की ओर जा रहे हैं ॥ ५४ ॥

तो अब मैं भी अत्यन्त मनोहर मेरु की कन्दरा में जाता हूँ (इतना कहकर चला जाता है) ।

वासुदेव—तो अब मैं भी पाण्डवों के शिविर में जा रहा हूँ ।

(नेपथ्य में)

नहीं नहीं निश्चय ही मत जाइये ।

वासुदेव—अरे यह तो वृद्ध महाराज का स्वर है । हे राजन् ! यह मैं खड़ा हूँ ।

(तदनन्तर धृतराष्ट्र का प्रवेश)

धृतराष्ट्रः—क्व नु खलु भगवान् नारायणः । क्व नु खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः । क्व नु खलु भगवान् विप्रप्रियः । क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः ।

मम पुत्रापराधात् तु शार्ङ्गपाणे ! तवाधुना ।
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष ! पादयोः पतितं शिरः ॥ ५५ ॥

वासुदेवः—हा धिक् ! पतितोऽत्र भवान् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

धृतराष्ट्रः—अनुगृहीतोऽस्मि । भगवन् ! इदमर्घ्यं पाद्यं च प्रतिगृह्यताम् ।

अथेदानीं पुत्रापराधात् कुपितं भगवन्तं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः तं प्रसादयितुकामः प्रार्थयति—

अन्वयः हे शार्ङ्गपाणे ! हे त्रिदशाध्यक्ष ! मम पुत्रापराधात् अधुना मम एतत् शिरः तव पादयोः पतितम् ॥ ५५ ॥

ममेति—शार्ङ्गपाणे शार्ङ्गं पाणौ यस्य तत्संबोधने हे शार्ङ्गपाणे=शार्ङ्गधर ! त्रिदशाध्यक्ष त्रिदशानां=देवानामध्यक्षस्तत्संबुद्धौ= हे विबुधनायक ! मम=धृतराष्ट्रस्य । पुत्रापराधात् पुत्रस्य=दुर्योधनस्य अपराधः=आगस्तस्मात् । अधुना=इदानीम् । तव पादयोः=चरणयोः मम=धृतराष्ट्रस्य एतत् शिरः । पतितम्=प्राप्तम् । अनुष्टुव्वृत्तम् ॥ ५५ ॥

धृतराष्ट्र—अरे भगवान् नारायण कहाँ हैं ? पाण्डवों का कल्याण करनेवाले भगवान् कहाँ हैं ? ब्राह्मणों के प्रिय भगवान् कहाँ हैं ? देवकीनन्दन भगवान् कहाँ हैं ?

हे शार्ङ्गपाणे ! हे देवाधिदेव ! अब पुत्रों के अपराध के कारण यह मेरा शिर तुम्हारे चरणों पर पड़ा हुआ है ॥ ५५ ॥

वासुदेव—हाय धिक्कार है जो आप मेरे चरणों में गिर गये । उठिये, उठिये ।

धृतराष्ट्र—भगवन् मैं अनुगृहीत हो गया यह अर्घ्य है यह पाद्य है इसे ग्रहण कीजिये ।

वासुदेवः— सर्वं गृह्णामि । किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

धृतराष्ट्रः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।

वासुदेवः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

धृतराष्ट्रः यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (निष्क्रान्तः ।)

(भरतवाक्यम् ।)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ५६ ॥

वासुदेवः—उपहरामि = करोमि ।

धृतराष्ट्र—परम् = अधिकम् ।

ग्रन्थान्ते ग्रन्थकारः मङ्गलाभिशंसनं कुर्वन्नाह—

अन्वयः—सागरपर्यन्तम् हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमां महीम् नः राजसिंहः प्रशास्तु ॥ ५६ ॥

इमामिति—सागरः = समुद्रः पर्यन्तः सीमा यस्याः सा ताम् । हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम् हिमवान् च विन्ध्यश्च द्वौ कुण्डले = कर्णभूषणे यस्याः सा ताम् एकातपत्राङ्काम् एकः केवलम् आतपत्रम् = छत्रं अङ्कं यस्याः सा तादृशीम् महीम् नः = अस्माकम् राजसिंहः = नृपवरः । प्रशास्तु = शासनं करोतु रक्षत्वित्यर्थः ॥ ५६ ॥

वासुदेव—आपका सब कुछ स्वीकार है । पुनः तुम्हारा क्या कल्याण करूँ ?

धृतराष्ट्र—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अब इससे अधिक मुझे चाहिये ही क्या ?

वासुदेव—अच्छा तो आप पुनः दर्शन देने के लिये आइये ।

धृतराष्ट्र—भगवान् नारायण की जैसी आज्ञा ।

(चला जाता है)

(भरत वाक्य)

हिमालय एवं विन्ध्याचल जिसके दो कुण्डल स्वरूप में स्थित हैं ऐसी सागरपर्यन्त विस्तृत भूमि पर हमारे राजसिंह एकच्छत्र राज्य करें॥ ५६॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

दूतवाक्यं समाप्तम्

* * *

(निष्क्रान्ताः = निर्गताः सर्वे = पात्राणि)

दूतवाक्यम् समाप्तम् ।

* * *

(सब चले जाते हैं)

।। दूतवाक्य समाप्त ।।

दूतवाक्याभिधस्यास्य भासेन निर्मितस्य तु
टीकेयं रचिता शुभ्रा-भूयाच्च विदुषां मुदे ।
सप्तवेदाभ्रयुग्माब्दे धनुः राशि स्थिते रवौ
समाप्तौ पौषमासस्य पूर्त्तिरस्याः कृता मया ।।

।। शुभं भूयात् ।। पठतां पाठयतां च मङ्गलम् ।।

* * *

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देवद्विजनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

२. प्रस्तावना-आमुख—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है। इसी को प्रस्तावना भी कहते हैं।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु—नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं। दूसरे

लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूचित करने-पिरोनेवाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

४. प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

५. नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

६. विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने के लिये प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर संकीर्ण होता है।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अंकों के बीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती हैं।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं ।

९, प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है ।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुवेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने, कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है । उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं ।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान-युक्त। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक होता है ।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है । यथासंभव वह नायक के गुणों से युक्त होती है ।

१३, अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाः	श्लोकाङ्काः
अक्षान् क्षिपन्	१२
अनुभूतं महद्	२०
अवध्यां प्रमदां	३६
अव्यक्तादि	४३
अहमवधूत	३७
आवासाः पार्थिवानाम्	१५
इमां सागर	५६
उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणाम्	२
उत्साहेन मतिम्	१७
उद्धूतरोष	४
एते स्थिता वियति	५४
एवं परस्पर	२३
करितुरगनिहन्ता	३९
कर्तव्यो भ्रातृषु	२९
किं मेरुमन्दर	४४
कृतपरिकरबन्धो	१०
कृत्वा पुत्रवियोगार्तां	२७
कृष्णापराभव	१४
कैरातं वपु	३२
ग्रहणमुपगते	६
जामातृनाश	२८
तनुमृदुल	४७
दातुमर्हसि	३४
दुःशासनपरा	७
दुष्टवादी गुण	१६
देवात्मजैर्मनुष्याणां	३०
धर्मात्मजो	१९
ननु त्वं चित्र	३३
नीचोऽहमेव	११
पादः पायात्	१
पुण्यसञ्चय	१५
पूर्णेन्दुकुन्द	४९
प्रसाद्यमानः	३१
प्रहरति यदि	३५
प्राप्तः किलाद्य	१३
मणिकनक	४८
मत्कार्मुकोदर	४१
मम पुत्रापराधात्	५५
महीभारापनयनम्	४६
यदि लवणजलम्	४५
राज्य नाम	२४
रोषाकुलाक्षः	९
वनिताविग्रहो	५०
वने पितृभ्यो	२१
विचित्रवीर्यो	२२
शठ बांधव	३८
श्यामो युवा	३
श्रुत्वा गिरं	४२
सत्यधर्मघृणा	८
सुयोधनोऽय	१८
सुरासुराणां	५३
सृजसि यदि	४०
सेनानिनाद	५
सोऽयं खड्गः	५१
स्यालं तव	२६
हे शार्ङ्ग कौमोदकि	३२

॥ श्री ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला २८४

महाकविभासविरचितम्

दूतघटोत्कचम्

‘गङ्गा’ संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च

गङ्गासागर रायः

सर्वभारतीय काशीराज न्यासस्थ
दुर्ग रामनगर, वाराणसी

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक
पो० बा० नं० ११३९
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी–२२१००१

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारु प्रिंटर्स, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५५
मूल्य : रू० १५-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ
एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३३४४५, ३३५९३०

प्रधान शाखा :
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१
फोन : ३२०४१४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
294

DŪTAGHAṬOTKACAM

OF

BHĀSA

With Gangā Sanskrit and Hindi Commentaries, Introduction and Appendices]

Edited and Commented
By
Dr. Ganga Sagar Rai, M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar near Maidagin
VARANASI-221001 (INDIA)

©Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

First Edition : 1998
Phone : 333445, 335930

Main Branch—
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
Chowk (The Benaras State Bank Building)
VARANASI (INDIA)
Phone : 320414

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद श्रृङ्खला में 'दूतघटोत्कचम्' नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति-ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। १९१२ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता है। वे प्रकाशन के साथ ही सम्पूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह लघु प्रयास भी है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणि मिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अधमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। टीका में जिन पूर्ववर्ती टीकाकारों से सहायता मिली है उनके प्रति भी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्कृत संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरञ्जीवि श्री राजेन्द्र जी ने जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी
चैत्र शुक्ल प्रतिपदा २०५५ वि०
२९ मार्च, १९९८ ई०

गङ्गासागर राय

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक प्रसारित की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत–साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियां

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्यमणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महा-महोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य के तञ्जौर पुस्तका-

लय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाटक साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्न उल्लेख लिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टंता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्यतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'— ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैला कर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारि अन्दे अ अवन्दो ।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविता कामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

—प्रसन्नराघव १।२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तः मुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्तो शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः…… ……।।"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक

के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गार प्रकाश' में स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्तो पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाटयशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है।

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाटयशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का विष्णु धर्म नाटक अभी तक अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के अन्तराल में समाविष्ट हुई तथा केवल सूक्ति मात्र ही रह गयो और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूव ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवनवृत्त

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। पठन-पाठन की तत्कालीन प्रचलित परिपाटी के अनुसार भास का ब्राह्मण होना भी स्वतः सिद्ध है। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान उन्होंने बताया है। भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुगा-

मिनी पत्नी के पति एवं पितृभक्त सन्तान के प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' के वे अनुयायी थे।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दतं च तथैव तिष्ठति॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।'

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धा सर्वयत्नाः फलन्ति॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—हमारे राजा ससागर उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण—कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज

संस्कृत—साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के

नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरञ्जक इन नाटकों का क्या ? सौमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त ही हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के कारणों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था। फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने विदेशी आक्रमणकारियों को देवनागरी लिपि में लिखित मरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग दिया जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल की चपेट में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ सुगम नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूत घटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्ण

भार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पत्र लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ से अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक की हस्त प्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति यहीं प्राप्त हो सकी।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तेकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्न लिखित हैं—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायण
२. अविमारक
३. स्वप्नवासवदत्ता
४. प्रतिमा नाटक
५. मध्यम व्यायोग
६. पञ्चरात्र
७. अभिषेक
८. दूत वाक्य
९. दूत घटोत्कच
१०. कर्णभार
११. ऊरुभङ्ग
१२. बाल चरित
१३. चारुदत्त

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया।

बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाशित भास के तेरह नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—उदयनवेन्दुसवर्णा।
—स्वप्नवासवदत्ता।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो····प्रतिज्ञायौ०।

इत्यादि।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत

वाक्य में राजसिंह राजा के सागर पर्यन्त एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसके हिमालय और विन्ध्य दो कुण्डल हैं।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६–१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा में नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता हैं।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाट्य शास्त्र में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—जब महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त वर होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' वन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर हैं।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों या वाक्यों को खण्डित या पूर्ण किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्र नामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय।' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।"—बाल १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"।—पञ्चरात्र १।२५
"हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—कर्ण० १७

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक हीं व्यक्ति रहा होगा।

नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० वी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज,

डा० बार्नेट—ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डॉ० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(अ) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल से प्राप्त होना।

(ब) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(स) रीति ग्रन्थों में 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(द) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्नवासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इसी आधार पर चाक्यारों की रचना प्रामाणिक सिद्ध होती है।

चाक्यारों की रचना की अप्रामाणिकता ?

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(अ) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता असिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव

का कारण हो सकता है। इसके साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ब) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(स) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हो एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(द) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

कुछ लोगों का मत है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राज सभाओं में रहता तो अपनी कृतियों अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्व

घोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्र वर्मन् आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटको की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में उल्लिखित मत प्रामाणिक रूप से लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक, चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भास रचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है। विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय

संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में भी मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध

में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शदी में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास के नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश

दक्षिण के बिद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं। इसके सम्वन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मत की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हों तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक

संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्रपर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं—अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है।

भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन मुख्यतः किया। अन्य स्थानों का वर्णन प्रकरणोपात्त है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

---

[1] ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ६ यही मत डा० पुसालकर का भी है। द्र० भास : ए० स्टडी।

दूतघटोत्कच नाटक का संक्षिप्त कथानक

महाकवि भास के द्वारा विरचित इस नाटक का कथानक महाभारत पर आधारित है। नाटक की कथावस्तु का सम्बन्ध अभिमन्यु की मृत्यु के उपरान्त की घटनाओं से है। संशप्तकगणों से युद्ध के निमित्त कृष्ण के साथ अर्जुन दूर चले गये हैं और छल-कपट का सहारा लेकर कौरवों ने अर्जुन के पुत्र वीर अभिमन्यु को युद्ध में एकाकी तथा निहत्था पाकर उसका बध कर डाला हैं। नाटक का कथानक इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है और सभ्यों की मङ्गल कामना हेतु विष्णु भगवान् से प्रार्थना करता है। उसी समय नेपथ्य में शब्द सुनाई पड़ता है; उस शब्द को सुन कर वह कहता है कि मैं समझ गया कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अभिमन्यु को चारों तरफ से घेर कर मार डाला तथा अभिमन्यु के तीखे बाणों से क्षत-विक्षत होकर नष्ट चेतन राजागण अर्जुन के पुनः आक्रमण के भय से जिस तरफ अर्जुन गए थे उसी ओर देखते हुए अपने शिविर में लौट रहे हैं। सब चले जाते और भट आता है। भट कहता है कि सैकड़ों पुत्रों तथा सुयोग्य बन्धु-बान्धवों से सम्पन्न विशिष्ट ज्ञान एवं विद्या से विनम्र व्यवहार वाले महाराज धृतराष्ट्र से निवेदन करो कि बालक अभिमन्यु ने अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम प्रदर्शित कर युद्ध क्षेत्र में राजाओं, हाथी, घोड़ों एवं सेना को व्याकुल कर दिया था। सुभद्रापुत्र अभिमन्यु रण में अत्यन्त शूर होने के कारण स्वर्ग में सब दिशाओं से शीघ्रता पूर्वक सैकड़ों राजकुमारों के आने पर भी अपने पितामह इन्द्र की गोद में बैठाया गया। उसी समय धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुःशला तथा प्रतिहारी आते है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि कौन ऐसा निर्भीक है जो हम लोगों के शिशु अभिमन्यु के बध के पाप से कलङ्कित वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है तथा इस प्रकार अप्रिय वचन बोल कर मेरे कर्ण पथ को दूषित किया। गान्धारी कहती हैं कि मुझे ऐसा लगता है कि पुत्रों

का विनाश करके कौरव एवं पाण्डवों के बीच युद्ध होगा । धृतराष्ट्र कहते हैं कि मालूम हैं । जब गान्धारी पूछती हैं कि कब होगा तब वे बताते हैं कि अभिमन्यु के बध से अत्यन्त क्रुद्ध और कुपित कृष्ण के द्वारा गृहीत लगाम और चाबुक से युक्त रथ पर अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष की सहायता से सम्पूर्ण संसार को विनष्ट कर डालेगें, तत्पश्चात् की अवस्था में विश्व शान्ति को प्राप्त होगा । गान्धारी शोक प्रकट करते हुए कहती हैं कि हाय पुत्र अभिमन्यु ! इस प्रकार के कुल–विग्रह और मनुष्यों के विनाश कारक युद्ध को उपस्थित करके हे पौत्र ! तुम अब कहाँ चले गये । दुःशला कहती है कि जिसने वधू उतरा को विधवा बनाया उसने अपने पक्ष की युवतियों को भी विधवापन दिया है । धृतराष्ट्र पूछते हैं कि इस विपत्तिरूपी सागर की सूचना किसने दी ? भट कहता है महाराज मैंने । धृतराष्ट्र पूछते हैं कि तुम कौन हो ? तो वह कहता है कि मैं जयत्रात हूँ । धृतराष्ट्र उससे पूछते हैं कि अपना जीवन किसे अप्रिय है । जिसने अभिमन्यु का बध किया । भट कहता है कि महाराज अनेक राजाओं ने मिल कर अभिमन्यु को मारा परन्तु जयद्रथ ही उसका निमित्त था । धृतराष्ट्र जयद्रथ का निमित्त होना सुन कर शोक प्रकट करते हैं तथा कहते हैं कि जयद्रथ मारा गया । यह सुन कर दुःशला रोती है । धृतराष्ट्र उसे सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि पुत्री ! मत रोओ ! तुम्हारे पति को तुम्हारा सौभाग्य अवश्य ही अरुचिकर है जिसने स्वयं अपने को अर्जुन के बाणों का लक्ष्य बनाया है । दुःशला धृतराष्ट्र से उतरा के पास जाने की आज्ञा माँगती है वह कहती हैं कि—मैं उत्तरा से जाकर कहूँगी कि—आज जो वेष धारण किया है मैं उसे कल धारण करुंगी । गान्धारी दुःशला को मना करती हुई कहती हैं कि पुत्री अमङ्गल मत बोलो । तुम्हारे पति जीवित हैं । गान्धारी के वचनों पर अविश्वास प्रकट करती हुई दुःशला कहती है, मा ! मेरा ऐसा सौभाग्य कहां ? कौन, जिसने कृष्ण सखा अर्जुन का अपकार किया है जीवित रहने की आशा करेगा ? धृतराष्ट्र दुःशला की बातों का समर्थन करते हुए कहते हैं—बेचारी दुःशला सत्य कहती है क्योंकि—जो अभिमन्यु कृष्ण की भुजाओं का तकिया लगा कर उसकी गोदी में पला तथा स्वयं मदयुक्त

बलराम जिसे देख कर भागिनेय प्रेम से और भी मदमत्त हो जाते थे, जो पृथा के पुत्र देवताओं के समान विक्रम वाले पांचों पाण्डवों का प्रेम पात्र था उसे मार कर स्वयं दुष्कर्म करने वाला कौन भला इस संसार में अधिक दिन तक जीवित रह सकता है। धृतराष्ट्र भट से पूछतें है कि इस प्रकार की घटना को देख कर अर्जुन ने क्या किया ? भट बताता है कि अर्जुन उस समय नहीं थे। जब संशप्तक की सेना ने अर्जुन और कृष्ण को रोक लिया तभी राजकुमार अभिमन्यु ने स्वयं रणाङ्गनों में प्रवेश किया। धृतराष्ट्र शोक करते हैं और कहते हैं कि इस अवस्था में उसका वध सर्वथा सम्भव था। सिंह के रहते भला कौन गुफा में जा सकता है ? अब शेष पाण्डव क्या कर रहे हैं ? भट कहता है कि महाराज। अन्य पाण्डव स्वयं अभिमन्यु के शव को चिता पर नहीं रख रहें हैं क्योंकि अर्जुन मृत पुत्र के शव को देख लें, तथा जिन राजाओं ने उसके शरीर पर शराघात किया है उनके नाम का विचार कर रहें हैं। धृतराष्ट्र गान्धारी से कहते हैं कि आओ, हम सब गंगा के तट पर ही चलें। उसी समय दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि वहां आते हैं।

दुर्योधन दुःशासन से कहता है कि अभिमन्यु के वध से हमारा पाण्डवों से विरोध और बढ़ गया, शत्रुओं की विजय डगमगा गई, कृष्ण का गर्व भी विनष्ट हो गया तथा हमें पूर्ण रूप से विजय की प्राप्ति के साथ-साथ यश भी प्राप्त हुआ। दुःशासन दुर्योधन की बातों का समर्थन करते हुए कहता है कि निश्चय ही जयद्रथ की सेना ने शत्रु-सेना को जीत कर पाण्डवों को रोक दिया और सैकड़ों शराघातों से अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने पर पहले भीष्म पितामह की मृत्यु से जो कष्ट हमें मिला था वही आज युद्ध क्षेत्र में उनके पुत्र के वध के द्वारा तीखे शोक रूपी बाणों के प्रहार से उन पाण्डवों के हृदय को विद्ध किया है। दुर्योधन कहता है कि आइए हम सब पूज्य पिता को प्रणाम करें। शकुनि मना करते हुए कहते है कि धृतराष्ट्र को आपस का झगड़ा अच्छा नहीं लगता क्योंकि पाण्डव लोग उन्हें प्रिय हैं, वे हम लोगों की निन्दा किया करते हैं। इसलिए जय

पाकर युद्ध से निवृत्त होने पर प्रसन्न मुख हो हम लोगों को प्रणाम करने के लिए उनके पास जाना अनुरूप होगा। दुर्योधन कहता है—मामा जी कुछ भी हो हम सब पूज्य पिता का अभिवादन करेगें। धृतराष्ट्र को दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि प्रणाम करते हैं।

धृतराष्ट्र कहते हैं 'कि पुत्र मैं कैसे आशीर्वाद दूँ क्योंकि अर्जुन और कृष्ण के हृदय रूप सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का वध होने पर आप लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हैं।'

दुर्योधन पूछता है—तात ! यह भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ ?

धृतराष्ट्र कहते हैं—तुम पूछते हो यह भ्रम कैसे हुआ ? अनेक पुत्रों वाले इस कुल में सौ पुत्रों से भी अधिक प्यारी केवल एक कन्या है और वह तुम भाइयों की कृपा से निन्दनीय वैधव्य को प्राप्त करेगी।

दुर्योधन पूछता है कि पिता जी इसमें जयद्रथ ने क्या किया। धृतराष्ट्र कहते हैं कि जयद्रथ ने ही पाण्डवों को रोका था। दुर्योधन कहता है कि केवल जयद्रथ ही अकेले नहीं थे बल्कि अन्य राजकुमार भी उनके साथ थे।

यह सुन कर धृतराष्ट्र बहुत दुःखित होते हैं और कहते हैं कि बहुत लोगों के साथ मिल कर निर्दयता पूर्वक शिशु पुत्र पर प्रहार करते हुए तुम लोगों की भुजायें क्यों नहीं गिर गईं ? दुर्योधन कहता है वृद्ध पितामह को मार कर उन लोगों की भुजायें जब नहीं गिर गई तो तरुण पुरुषों के समान बलशाली इस बालक को मारने पर हम लोगों की भुजाएं कैसे गिरेगी। दुर्योधन धृतराष्ट्र से कहते हैं कि भीष्म और अभिमन्यु की मृत्यु में कोई समानता नहीं है क्योंकि भीष्म की मृत्यु उनकी इच्छा और उनके आदेश पर आई अतएव उन्हें आत्म सन्तोष था परन्तु अभिमन्यु तो अर्जुन का प्रथम अङ्कुर था जिसे काट डाला गया। दुःशासन कहता है कि पिताजी वह बालक नहीं था क्योंकि हम सब से युद्ध करते हुए उसने अपने बाणों से राजाओं

को वैसे ही व्याप्त कर दिया जैसे अपनी किरणों से सूर्य घिरा होता है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि बालक अभिमन्यु ने ऐसा पराक्रम दिखाया तो पुत्र शोक से दुःखी अर्जुन तुम लोगों का क्या करेगें ? दुर्योधन पूछता है कि पिताजी अर्जुन कौन है ?

धृतराष्ट्र कहते हैं कि यदि तुम अर्जुन को नहीं जानते हो तो जाकर इन्द्र से पूछो, जो पहले निवात-कवच राक्षसों के जीवन के उपहार के द्वारा पूजित हुआ, उस शङ्कर से पूछो, जिस किरात वेशधारी को अर्जुन ने अनेक शस्त्रास्त्रों से सन्तुष्ट किया था, उस अग्नि से पूछो, जिसका तर्पण खाण्डव वन में हुआ और आज उस गन्धर्व चित्राङ्गद से पूछो, जिसने तुम्हें परास्त किया अर्जुन के द्वारा तुम रक्षित हुए। दुर्योधन कहता है कि अर्जुन के समान मेरी सेना में कर्ण है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि बेचारा कर्ण हास्यास्पद है क्योंकि इन्द्र ने उसका कवच हरण कर लिया, वह अर्धरथ और प्रमादी है, कपट के द्वारा अर्जित उसकी विद्या भी विफल है तथा वह दयावान् है। कर्ण अर्जुन की समानता तभी कर सकता है जबकि इन्द्र, अग्नि और शिव स्वय उसके अस्त्र शिक्षक बनें। शकुनि धृतराष्ट्र से कहता है कि आप हम लोगों की निन्दा करने में समर्थ हैं, धृतराष्ट्र कहते हैं कि हे शकुनि तुम्हारे ही कर्मों के परिणाम स्वरूप कौरव कुल का द्वेषाग्नि शिशु की आहुति के पश्चात् भी शान्त नहीं हो रही है। उसी समय सहसा भूकम्प के समान कम्पन तथा आकाश से उल्कापात होता है। धृतराष्ट्र दुर्योधन से कहते हैं कि ऐसा मालूम होता है कि पौत्र अभिमन्यु को मरा हुआ देख कर मानो इन्द्र रो रहे हैं और उन्हीं के अश्रु-विन्द उल्का रूप में आकाश से गिर रहे हैं। दुर्योधन इसका पता लगाने के लिए भट जयत्रात को भेजता है। वह लौट कर बताता है कि अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि जिसकी प्रतिज्ञा के प्रताप से पृथ्वी कांप गई उसके धनुष ग्रहण करते ही स्पष्ट है कि तीनों लोक डगमगा जायेगा। दुर्योधन जयत्रात से पूछता है कि अर्जुन ने क्या प्रतिज्ञा की ? वह बताता है, 'जिस कौरव ने मेरे पुत्र का बध किया है और जो राजागण उससे

सन्तुष्ट हुये हैं उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूंगा और ऐसा न होने पर गाण्डीव के साथ चितारोहण करूंगा। यह सुन कर दुर्योधन कहता है कि हम सब उनकी प्रतिज्ञा में बाधा डालेगें। धृतराष्ट्र पूछते हैं, पुत्र क्या करोगे ?

दुर्योधन कहता है कि जयद्रथ को अपनी सारी अक्षौहिणी से छिपा देगें। और भी, जैसा आचार्य द्रोणाचार्य कहेंगे हम सब सैन्य व्यूह की अजेय रचना करेंगे, और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को न पूर्ण करके अर्जुन हाथी और सेना के साथ आग में जल मरेंगे। दुर्योधन के इस प्रकार के कथन को सुन कर धृतराष्ट्र कहते हैं कि पृथ्वी के अन्दर प्रवेश करने पर एवं आकाश मण्डल मे चढ़ जाने पर भी, कृष्ण ही हैं नेत्र जिनके ऐसे पाण्डव के बाण जयद्रथ का पीछा सर्वत्र करेंगे और उसे नहीं छोड़ेगें।

उसी समय घटोत्कच प्रवेश करता है। वह मन में सोचता है कि मैं सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के वध से प्रेरित होकर कृष्ण के आदेश को मान कर पापी हृदय वाले शत्रु को देखने जाता हूँ जैसे अङ्कुश से प्रेरित गज ग्रास लेने जाता है। सभा भवन में पहुँच कर वह स्वयं अपना परिचय देते हुए कहता है कि श्री कृष्ण के आदेश को ग्रहण करके मैं हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच अपने गुरुजनों को, जो अपने ही पाप कर्मो के कारण अब शत्रु हो गये हैं देखने की इच्छा से यहां आया हूँ। दुर्योधन उसे बुलाते हुए कहता है कि मैं दुर्योधन यहां हूँ तुम आओं और निर्भय होकर श्री कृष्ण का सन्देश सुनाओ, मुझे बहुत कौतूहल है। घटोत्कच जाता है और धृतराष्ट्र की शारीरिक बनावट एवं पुष्टता को देख कर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहता है कि यह वृद्ध हैं फिर भी झुर्रियां नहीं पड़ी हैं और मांसल पुष्ट बाहुमूल वाले तथा श्रद्धेय रूप हैं क्योंकि सौ पुत्रों को उत्पन्न किया है। मालूम होता है कि देवताओं को स्वर्गलोक की रक्षा में शङ्का हो गई थी, अतः ब्रह्मा ने श्रीमान् को अन्धा बनाया। वह धृतराष्ट्र के समीप जाकर युधिष्ठिरादि का प्रणाम निवेदन तथा अपना अभिवादन कहता है। धृतराष्ट्र कहते हैं आओ पुत्र ! जो भाई की मृत्यु के कारण तुम्हारी आत्मा दुःखित है यह केवल

तुम्हारे ही शोक का विषय नहीं है अपितु मेरा भी मन दुःखित है, इस आशय को तुम नहीं समझते। मैं अपने पुत्रों के अपराध से दयनीय किया गया हूँ। घटोत्कच भगवान् श्री कृष्ण का सन्देश सुनाने को कहता है, यह सुन कर धृतराष्ट्र अपने आसन से उठ खड़े होकर कहते हैं कि भगवान् श्री कृष्ण ने मेरे लिए क्या आज्ञा दी है। घटोत्कच उन्हें आसन पर बैठ कर ही सन्देश सुनने के लिए कहता है। वह सन्देश सुनाता है—'हाय पुत्र अभिमन्यु! हाय पुत्र कुरुकुल के दीपक! हाय पुत्र यदुकुल के अङ्कुर! तुम अपनी माँ एवं मामा, मुझे भी छोड़ कर पितामह को देखने के लिए स्वर्गलोक में चले गये। एक पुत्र के विनाश से अर्जुन की यह अवस्था हुई है फिर तुम्हारी अवस्था क्या होगी पितामह! तो शीघ्र ही पने पक्ष की सम्पूर्ण सेना को लौटा लो जिससे अपने पुत्र शोक से उठी हुई अग्नि में हवि की भांति तुम्हारे ही शरीर एवं प्राण भ जल जायँ।

धृतराष्ट्र कहते हैं—क्रोध के साथ उद्योगशील श्री कृष्ण ने ऐसा कहा है मैं तः मानो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि अर्जुन ने सारे क्षत्रियों के विनाश के लिए ही निश्चय किया है। घटोत्कच के सन्देश को सुन कर दुर्योधन कहता है यह हास्यास्पद है, क्योंकि देवताओं के साथ मन्त्रणा करते-करते उन्हें गर्व हो गया है जो केवल पार्थ के द्वारा सम्पूर्ण क्षत्रिय मण्डल को मरा हुआ समझते हैं घटोत्कच दुर्योधन से कहता है कि मैं श्री कृष्ण द्वारा भेजा गया सन्देश कह रहा हूँ और तुम हँस रहे हो, वास्तव में अर्जुन के कर्मों को तुम्हें बतलाना उचित है और तुम भी श्री कृष्ण का सन्देश सुनों। दुःशासन कहते हैं कि जिसकी आज्ञा सम्पूर्ण भूमण्डल के राजागण धारण करते है उसके सम्मुख किसी अन्य का सन्देश नहीं सुना जायेगा।

घटोत्कच दुःशासन से कहता है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे लिए क्या राजा नहीं हैं? खेद है। जिस श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के कारागार से दीन-राजाओं को मुक्ति दी, भीष्म के कर कमलों से जिसने राजाओं के समक्ष अर्घ्यदान लिया, लक्ष्मी स्वयं जिस पर अनुरक्त हैं और उनका हृदय ही जिस श्री कृष्ण

का शयन गृह है वह वन्दनीय चक्रपाणि राजाओं का भी राजा तुम्हारे लिए कैसे राजा नहीं हैं। दुर्योधन दुःशासन से कहता है कि विवाद बन्द करो। श्री कृष्ण राजा हों या अराजा हों, वे बली हों या निर्बल हों, इसके कथन की क्या आवश्यकता, बतलाओ तुम्हारे प्रभु ने क्या कहा है। घटोत्कच कहता है—भगवान् चक्रपाणि तीनों लोकों के स्वामी प्रभु ही हैं। विशेष रूप से हम लोगों के स्वामी हैं। और भी क्षत्रियों का विनाश अब समाप्त हो समझो सौ राजाओं के वध से अब पृथ्वी हल्की हो, क्योंकि पुत्र के निधन से उठे उग्र अस्त्रों के प्रहार से रण के प्रारम्भ होने पर अर्जुन के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होगा।

शकुनि कहता है—यदि कहने मात्र से ही यह पृथ्वी जीती जा सके और यदि वाक्य-वाक्य से सबका वध ही होना है तो समझो सारे क्षत्रिय मार डाले गये।

घटोत्कच शकुनि से कहता है—हे शकुनि ! जुए के पाशों को छोड़ दो और अपने क्रीडा फलक को शराघात के अनुरूप युद्ध करने के योग्य बना दो। यहाँ कहीं स्त्री का अपहरण या राज्य का धोखे से अपहरण करना नहीं है। यहां तो अति तीखे बाण और प्राण ही क्रीडा पाश हैं। दुर्योधन उसे शान्त कराते हुए कहता है कि तुम दूत के नियमों का उल्लंघन करके कठोर वचन बोलते हो और सबकी निन्दी करते हो, तुम दीर्घबाहु, बकवास करते समय कुछ भी नहीं गिनते, यदि तुम्हें अपनी माता हिडिम्बा के द्वारा प्राप्त विकराल रूप पर गर्व है तो हम सब भी राक्षसों के समान विकट स्वभाव वाले हैं।

घटोत्कच कहता है कि आप लोग राक्षसों से भी अधिक कठोर स्वभाव के हैं क्योंकि निशाचर भी लाक्षागृह में सोये हुए भाइयों को नहीं जलावेंगें। निशाचरों को वह स्मरण भी नहीं होगा कि कभी उन्होंने युद्ध क्षेत्र में अपने पुत्र को मारा हो। यद्यपि राक्षसों का स्वरूप बड़ा विकराल होता है,

उनके स्वभाव में परुषता होती है फिर भी तुम लोगों की भाँति दयाहीन नहीं होते।

दुर्योधन कहता है कि आप दूत के रूप में यहां आए हैं युद्ध करने के लिए नहीं अतः अपना सन्देश लेकर चले जाइये, हम सब दूत को मारने वाले नहीं हैं।

घटोत्कच क्रोधित होकर कहता है कि 'दूत' कह कर मेरी निन्दा करते हो। तुम सब लोग मिल कर मुझ पर प्रहार करो, मैं प्रत्यन्चा कट जाने के कारण दुर्बल बना हुआ अभिमन्यु नहीं हूँ, यह मुट्ठी बांध कर खड़ा हूँ जिस पुरुष को यमपुर जाना हो आ जाय।

धृतराष्ट्र घटोत्कच से कहते हैं पौत्र घटोत्कच क्षमा करो, क्षमा करो, मेरे वचनों पर ध्यान दो। घटोत्कच शान्त हो जाता है और पूछता है क्या प्रार्थना करनी है।

दुर्योधन कहता है—किसकी प्रार्थना ? मेरे वचन से ऐसे कहना—क्यों व्यर्थ में कल्पना करते हो, हम सब तुम्हारे परुष वचनों से विजित नहीं हो सकते। तुम पाण्डवों के साथ रहना और मैं सैकड़ों क्षत्रियों से युक्त निरन्तर बाण—प्रहार के द्वारा तुम्हारे वचनों का उत्तर दे दूँगा। घटोत्कच जाने को उद्यत होता है परन्तु जाते-जाते वह श्री कृष्ण का अन्तिम सन्देश सुनाता है कि जो आचरणीय हो उसे करो, अपने बान्धवों का समादर करो, जो कुछ करने की हार्दिक इच्छा हो उसे इस पृथ्वी पर कर लो क्योंकि पाण्डवों के रूप में हितकारी उपदेश की भांति यमराज सूर्य की किरणो के साथ (प्रातः) तुम्हारे पास आयेंगें। सभी चले जाते हैं और इसी के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण

नाटक का नामकरण हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के दौत्य कर्म के आधार पर किया गया है। घटोत्कच भगवान् श्री कृष्ण का दूत बन कर कौरव

सभा में जाकर सन्देश देता है। नाटक में घटोत्कच का आगमन लगभग आधे नाटक के बाद होता है, परन्तु उसका दौत्यकर्म प्रदर्शित करना ही नाटककार को अभीष्ट था और इसमें वे सफल भी रहे हैं। इसी के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

नाटकीय कथावस्तु का आधार

महाभारत की कथा में नाटक के अन्य पात्रों का वर्णन, अर्जुन का कृष्ण के साथ जाकर संशप्तकों से युद्ध करना, अभिमन्यु का चक्रव्यूह में मृत्यु आदि घटनाओं का वर्णन है परन्तु घटोत्कच का दूत बन कर कौरवों के पास जाना नाटककार की मौलिक कल्पना पर आधारित है। दूत घटोत्कच का दौत्यकर्म महाभारत में नहीं है।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्धहस्त हैं। इनके नाटकीय पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर उसको जीवन्तता प्रदान करते हैं। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण इस प्रकार है—

घटोत्कच

जिसके आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है वही नाटक का प्रधान पात्र भी है। घटोत्कच के चरित्र में नम्रता, व्यवहार कुशलता, शिष्टता, वाक्पटुता, वीरता आदि गुणों का मञ्जुल समन्वय दिखलायी पड़ता है। घटोत्कच के चरित्र में शालीनता एवं शिष्टता समान रूप में दिखलायी पड़ती है, वह मर्यादा का ध्यान रखते हुए धृतराष्ट्र को शिष्टता पूर्वक प्रणाम करता है, प्रणाम करते समय सहसा उसे याद आ जाता है तो पहले युधिष्ठिरादि पाण्डवों का निवेदन प्रणाम करने के बाद अपना प्रणाम कहता है—

'युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भवन्तमभिवादयन्ति। पश्चाद्घटोऽमभिवादये।'

घटोत्कच वाक्पटु भी है। जब दुर्योधन उससे कहता है कि तुम्हीं राक्षस नहीं, बल्कि हम लोग भी राक्षस के समान विकट स्वभाव वाले हैं, तब घटोत्कच कहता है कि तुम लोग राक्षसों से भी निन्दनीय चरित्र वाले हो, क्योंकि राक्षस तुम लोगों जैसा निकृष्ट कर्म नहीं कर सकता—

न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातृन् दहन्ति निशाचराः,
शिरसि न तथा भ्रातुः पत्नीं स्पृशन्ति निशाचराः।

न च सुतवधं सङ्ख्ये कर्तुं स्मरन्ति निशाचरा,
विकृतवपुषोऽप्युग्राचारा घृणा न तु वर्जिताः ॥ ४७

अर्थात् निशाचर भी लाक्षागृह में सोये हुए भाइयों को नहीं जलावेगें। वे अपनी भावज के शिर पर हाथ वैसा नहीं लगावेगें, निशाचरों को तो स्मरण भी नहीं होगा कि कभी उन्होंने युद्ध क्षेत्र में अपने पुत्र को मारा हो। यद्यपि राक्षसों का रूप बड़ा विकराल होता है और उनके स्वभाव में कठोरता होती है परन्तु तुम लोगों के समान दयाहीन नहीं होते।

घटोत्कच के चरित्र में वीररसोचित व्यवहार गुण कूट-कूट कर भरा है। जब दुर्योधनादि पाण्डवों को तिरस्कृत तथा उसे दूत समझ कर निन्दित करते हैं तो वह क्रोधित हो जाता है और मुट्ठी बांध कर उनसे युद्ध के लिए तैयार हो जाता है—

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः।
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ॥ ५०

अर्थात् घटोत्कच ओठ काट कर मुट्ठी बांध कर खड़ा हो जाता है और कहता है कि जिस पुरुष को यमपुर जाना हो आ जाय।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाटककार ने बहुत अंशों में घटोत्कच के क्रूर एवं राक्षसी स्वभाव का परिहार करते हुए उन्नत रूप में उसके चरित्र को प्रस्तुत किया है।

धृतराष्ट्र

नाटक में धृतराष्ट्र का चरित्र सत्य का पक्षधर तथा अन्याय के विरोधी रूप में परिलक्षित होता है। वे गृह कलह से अत्यन्त दुःखी है, अभिमन्यु का मारे जाने की खबर सुन कर वे बहुत दुःखी होते हैं। इसीलिए वे हमेशा पाण्डवों की प्रशंसा तथा कौरवों की निन्दा करते हैं।

वे कहते हैं—

बहूनां समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम्।
बाले पुत्रे प्रहरतां कथं न पतिता भुजाः॥ १७

अर्थात् बहुत लोगों के एकत्रित प्रयास से निर्दयता पूर्वक शिशु पुत्र पर प्रहार करते हुए तुम लोगों की भुजाएं क्यों नहीं गिर गईं।

जब शकुनि धृतराष्ट्र से कहता है कि आप हम लोगों की निन्दा करने में समर्थ हैं तो वह कहते हैं—

त्वया हि यत्कृतं कर्म सततं द्यूतशालिना।
तत्कुलस्यास्य वैराग्निर्बालेष्वपि न शाम्यति॥ २४

अर्थात् द्यूत क्रीडा में दक्ष तुमने निरन्तर जो कर्म किया उसी के कारण इस कौरव कुल की द्वेषाग्नि शिशु के आहुति के पश्चात् भी शान्त नहीं हो रही है।

धृतराष्ट्र घटोत्कच के क्रोध को शान्त भी कराते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि धृतराष्ट्र के चरित्र में न्यायप्रियता एवं स्पष्टवादिता आदि गुण झलकता है।

दुर्योधन, शकुनि एवं दुःशासन का चरित्र बहुत अंशों में एक ही सिक्के विभिन्न पहलुओं के रूप में समान है। ये अत्यन्त अभिमानी, क्रूर एवं दुष्ट स्वभाव के हैं। निहत्थे बालक अभिमन्यु को मार कर गर्व का अनुभव करते हैं।

गान्धारी तथा उनकी पुत्री दुःशला का चरित्र कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

समीक्षण

दूत घटोत्कच नाटक को नाटक किस श्रेणी में रखा जाय, इस विषय में विद्वानों में मतैक्य है। डा० गणपति शास्त्री का अभिमत है कि यह नाटक न तो सुखान्त है और न दुःखान्त ही, अपितु यह मध्य में समाप्त हो जाता है। डा० ए० वी० कीथ इस नाटक को व्यायोग मानते हैं। इसके सम्बन्ध में उनका कथन है कि नाटक के अधिकांश अंश में युद्ध की योजना और उससे सम्बन्धित वार्ता है। नाटक के कुछ अंशों में व्यायोग के चिह्न हैं परन्तु इसके विपरीत डा० पुसालकर इसे उत्सृष्टिकाङ्क मानते हैं। उत्सृष्टिकाङ्क के कुछ स्पष्ट लक्षण इसमें दिखलायी भी पड़ते हैं। दशरूपककार ने इसके लक्षण के सम्बन्ध में लिखा है—

'उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्धचा प्रपञ्चयेत्।
रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः॥
भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः।
वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ॥

—३।७०-७२

अर्थात उत्सृष्टिकाङ्क का लक्षण है—'बुद्धि-प्रपञ्चित प्रख्यात वृत्त, करुण रस, वाग्युद्ध तथा जय-पराजय, स्त्रियों से घिरा रहना। इत्यादि ये सभी बातें इस नाटक में है।

भरत वाक्य के अभाव में कुछ लोग इस नाटक को अपूर्ण मानते हैं। डा० विन्तरनित्स नाटक के अन्तिम श्लोक जो श्री कृष्ण के सन्देश के रूप में है उसके प्रति आशङ्का प्रकट कर उस श्लोक को सन्दर्भ से बाहर का मानते हैं। जो भी हो परन्तु उस श्लोक का प्रयोग वहां पर सार्थक ही प्रतीत होता है।

नाटक में करुण तथा वीर रस का प्रयोग हुआ है। परन्तु प्रमुख रस करुण ही है जिसकी निष्पति धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुःशला की उक्तियों में है तथा अभिमन्यु की मृत्यु से करुणा का वातावरण प्रस्तुत होता है। घटोत्कच तथा दुर्योधन के विवाद में वीर-रस की झलक दिखलाई पड़ती है।

कार्य व्यापार की दृष्टि से नाटक को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम धृतराष्ट्र का दरबार जिसमें ये अपने पुत्रों के दुष्कर्मों के प्रति चिन्तित तथा अर्जुन के बल-पौरुष के सम्बन्ध में उन्हें बताते हैं। दूसरा वह जिसमें श्री कृष्ण का सन्देश वाहक बन कर घटोत्कच कौरवों की सभा में उपस्थित होता है।

महाकवि भास ने नाटक में मानव मन की आशाओं, आकाक्षाओं दुर्बलताओं, उत्तर-प्रत्युत्तर, कारुणिक व्यङ्ग्य आदि का बड़ा ही सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत कर नाटच कला की सफलता को हासिल किया है।

जहां धृतराष्ट्र कौरवों की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि एकाकी बालक पर प्रहार करते हुए तुम लोगों के हाथ क्यों नहीं गिर गये? वहीं तुरन्त दुर्योधन उत्तर देता है—'यदि वृद्ध भीष्म को छल से मार कर उनके हाथ नहीं गिरे तो हमारी भुजायें कैसे गिरेगीं? इसी प्रकार घटोत्कच भी दुर्योधन के बातों का उत्तर देता है।

नाटक में कारुणिक व्यङ्ग्य का उदाहरण मिलता है। जैसे—अभिमन्यु के वध करने वाले को न जानते हुए भी दुःशला ने भयानक सत्य का अमाङ्गलिक उद्घाटन स्वयं अपने कर दिया—

'जेण दाणिं बहूए उत्तराए वेधव्वं दाइदं,
तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठं।'

अर्जुन के पराक्रम का वर्णन करते हुए धृतराष्ट्र का यह कथन द्रष्टव्य है—

शक्रं पृच्छ पुरा निवातकवचप्राणोपहारार्चितं
पृच्छास्त्रैः परितोषितं बहुविधैः कैरातरूपं हरम्।

पृच्छाग्निं भुजगाहुतिप्रणयिनं यस्तर्पितः खाण्डवे
विद्यारक्षितमद्य येन च जितस्त्वं पृच्छ चित्राङ्गदम् ॥ २२

अर्थात् उस इन्द्र से पूछो, जो पहले निवात कवच राक्षसों के जीवन के उपहार के द्वारा पूजित हुआ उस शङ्कर से पूछो, जिस किरात वेशधारी को अर्जुन ने अनेक शस्त्रास्त्रो से सन्तुष्ट किया था उस अग्नि से पूछो, जो सर्प यज्ञ से प्रसन्न होने वाली है और जिसका तर्पण खाण्डव वन में हुआ और आज उस गन्धर्व चित्राङ्गद से पूछो, जिसने तुम्हें परास्त किया पर अर्जुन के द्वारा तुम रक्षित हुए।

घटोत्कच जो श्री कृष्ण का सन्देश कहता है वह भी अत्यन्त उपयुक्त है। एक तरफ वह शान्ति तथा नम्रता का प्रतीक है तो दूसरी तरफ वीरता, पौरुष एवं स्वाभिमान युक्त है—

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्कांक्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ।

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभिः सममुपैठष्यति वः कृतान्तः ॥ ५२

अर्थात् जो आचरणीय हो उसे करो, अपने वान्धवों का आदर करो, जो कुछ तुम्हारी हार्दिक इच्छा हो सब कुछ इस पृथ्वी पर करो, क्योंकि पाण्डवों के रूप में, हितकारी उपदेश की भांति यमराज सूर्य की किरणों के साथ (प्रातः) तुम्हारे पास आएंगे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दूत घटोत्कच एक सफल एकाङ्की नाटक है।

◆

पात्राणि

पुरुष

धृतराष्ट्रः—दुर्योधनस्य पिता
भटः—जयत्रातो वार्ताहरः
दुर्योधनः—कुरुराजः
दुःशासन—कुरुराजस्य यवीयान् भ्राता
शकुनिः—कुरुराजस्य मातुलः
घटोत्कचः—दौत्येनागतो भीमपुत्रो राक्षसः

स्त्री

गान्धारी—दुर्योधनस्य माता
दुःशला—दुर्योधनस्य स्वसा जयद्रथ पत्नी
प्रतिहारी—द्वार पालिका

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भासनाटकचक्रे

दूतघटोत्कचम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेत [redacted]

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

नारायणस्त्रिभुवनैकपरायणो वः
पायादुपायशतयुक्तिकरः सुराणाम् ।

अथ कविकुलचूडामणिः पदवाक्यप्रमाणपारावारीणः वैष्णवाग्रणीस्तत्र श्रीमान् महाकविर्भासः दूतघटोत्कचं नाम नाटकं चिकीर्षुर्ग्रन्थविघ्नविधातायादौ नारायणस्मरणपूर्वकं आशीर्वादात्मकं मङ्गलं सूत्रधारमुखेनोपस्थापयति—

सूत्रधारः—

अन्वयः—त्रिभुवनैकपरायणः सुराणाम् उपायशतयुक्तिकरः लोकत्रयाविरतनाटकतत्ववस्तुप्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारःनारायणः वः पायात्॥ ॥

(नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—त्रिभुवन की रक्षा में सर्वदा तत्पर, देवताओं के विजय के लिये सैंकड़ों उपाय करने वाले तथा तीनों लोकों में सर्वदा होने वाले नाटक

लोकत्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तु-
प्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः ॥ १ ॥

(परिक्रम्य) एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग पश्यामि ।

(नेपथ्ये ।)

भो भो निवेद्यतां निवेद्यतां तावत् ।

व्याख्या—नारायण इति–त्रिभुवनैकपरायणः त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं तत्र एकः = प्रधानः परायणः = संलग्नः रक्षणे इति शेषः किञ्च सुराणाम् = देवानां (विजयार्थम्) उपायशतयुक्तिकरः उपायानां = उद्योगानां शतानि तेषां या युक्तिः = योजना तां करोतीति = विदधातीति तादृशः = अनेकोपाययोजकः । लोकत्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तुप्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः लोकत्रयस्य = भुवनत्रयस्य यत् अविरतम् = निरन्तरं नाटकम् = अभिनयस्तस्य तन्त्रं = कला तत्र यद् वस्तु = कथावस्तु तस्य या प्रस्तावना = स्थापना तस्या यत् प्रतिसमापनं = परिसमाप्तिः तस्य सूत्रधारः = मुख्यसञ्चालकः एवं विशेषणविशिष्टः नारायणः नरा एव नाराः जलानि तदेव अयनं = स्थानं यस्य सः = क्षीरसमुद्रवासी महाविष्णुः वः = युष्मान् अध्येतृश्रोतृदर्शकान् । पायात् = रक्षेत् । सर्वतो विघ्नविनाशाद्रक्षणं कुर्यादित्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

की कथाबस्तु, प्रस्ताबना तथा प्रतिसमाप्ति के सूत्रधार भगवान् नारायण आप सभी (इस नाटक के अध्येता, श्रोता तथा दर्शकों) की रक्षा करें (घूम कर) हम आप सभी महानुभावों को सूचित कर रहे हैं । अरे सूचना देने में व्यग्र मुझे यह कैसा शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है ? अच्छा तो देखता हूँ ।। १ ।।

(नेपथ्य में)

अरे लोगों, हे लोगों ! तब तक निवेदन करो, निवेदन करो ।

सूत्रधारः—भवतु। विज्ञातम्। एष खलु संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये तदनन्तरमुपगतभीष्मवधामर्षितैर्धार्तराष्ट्रैः परिवार्य निपातितः कुमारोऽभिमन्युः। तथाहि—

यान्त्यर्जुनप्रत्यभियानभीता
यतोऽर्जुनस्तां दिशमीक्षमाणाः।

संशप्तकानीकनिवाहिते संशप्तकाः=एतन्नामका राजानः सैन्यविशेषा वा। यद्वा शपथपूर्वकं ये युद्धयन्ते तथाभूता राजानः प्रकृते च त्रिगर्तराजपुत्राः सुशर्मादयः नवकोटयस्तदनुयायिनश्च तेषामनीकैः=सेन्यैः निवाहिते=आह्वाने दूरं प्रस्थिते जनार्द्दनसहाये धनञ्जये=कृष्णद्वितीये अर्जुने संशप्तकवधार्थं दूरं गते सतीत्यर्थः। तदनन्तरम्=ततः परम् उपगतभीष्मवधामर्षितैः उपगतः=सम्प्राप्तः भीष्मवधः=भीष्मनिधनं तेन अमर्षिताः=सञ्जातकोपाः तैः। धार्त्तराष्ट्रैः=धृतराष्ट्रपुत्रैः दुर्योधनादिभिः। परिवार्यः=परितः आवार्यः।

युद्धे अभिमन्यौ निपातिते ततः परावर्त्तितां राज्ञां संशयितावस्थां वर्णयति—

अन्वयः—अर्जुनप्रत्यभियानभीताः यतः अर्जुनः तां दिशम् ईक्षमाणाः सौभद्रबाणाङ्कितनष्टसंज्ञाः नराधिपाः स्वानि निवेशनानि यान्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—अर्जुनप्रत्यभियानभीताः अर्जुनस्य=कुन्तीपुत्रस्य विजयस्य प्रत्यभियानेन=प्रत्याक्रमणेन भीताः=संत्रस्ताः। यतः=यस्यां दिशि। अर्जुनः=पार्थः

सूत्रधार—अच्छा समझ गया। सशप्तक गणों के द्वारा श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन को युद्धस्थल से दूर ले जाये जाने के कारण भीष्म पितामह के वध से क्षुब्ध धृतराष्ट्र पुत्रों ने अभिमन्यु को युद्ध स्थल मे चारों ओर से घेर कर मार डाला।

इस प्रकार—

सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु के बाणों के प्रहार से अचेतावस्था को प्राप्त हुये

नराधिपाः स्वानि निवेशनानि
सौभद्रबाणाङ्कितनष्टसंज्ञाः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—भो भो ! निवेद्यतां तावत्पुत्रशतश्लाघ्यबान्धवाय विज्ञानविस्तारितविनयाचारदीर्घचक्षुषे महाराजाय धृतराष्ट्राय । एष खलु

गत इति शेषः तां दिशम् = आशाम । ईक्षमाणाः = अवलोकयन्तः । सौभद्रबाणाङ्कितनष्टसंज्ञाः सौभद्रस्य = अभिमन्योः बाणैः = विशिखैः अङ्किताः = व्रणयुक्ता आहता इत्यर्थः । तैः विनष्टा संज्ञाः = चेतनाः येषां ते तथाभूता नराधिपाः = राजानः । स्वानि = नैजानि । निवेशनानि = शिबिराणि यान्ति = गच्छन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ २ ॥

(स्थापना = प्रस्तावना)

पुत्रशतश्लाघ्यबान्धवाय पुत्रशतेन श्लाघ्यः = प्रशंसाहः बान्धवः = परि-

---

ये राजागण अर्जुन के आक्रमण के भय से संत्रस्त होकर जिस दिशा में अर्जुन गये थे उसी दिशा की ओर देखते हुये अपने अपने शिविरों की ओर लौट रहे हैं ॥ २ ॥

(ऐसा कह कर सूत्रधार चला जाता है)

प्रस्तावना समाप्त ।

(इसके बाद नट का प्रवेश)

अरे भाइयों ! सैकड़ों पुत्रों को जन्म देने के कारण सम्पन्न परिचर वाले तथा विनयाचार को विस्तारित करने के कारण दूरदर्शी महाराज धृतराष्ट्र से निवेदन करो ।

योधस्यन्दनवाजिवारणवधैर्विक्षोभ्य राज्ञां बलं
बालेनार्जुनकर्म येन समरे लीलायता दर्शितम् ।
सौभद्र स रणे नराधिपशतैर्वेगागतैः सर्वंशः
खे शक्रस्य पितामहस्य सहसैवोत्सङ्गमारोपित ॥३॥

वारो यस्य तस्मै । विस्तारितविनयाचारदीर्घचक्षुषे विस्तारितः = लोकेप्रसारितः विनयाचारः = विनम्रव्यवहारः स एव दीर्घं = विशालं चक्षुः = दिव्यदृष्टिर्यस्य सः ।

इदानीं भटः सोभद्रस्य निधनं धृतराष्ट्राय निवेदयन् तस्य कर्म प्रशंसति—

अन्वयः—योधस्यन्दनवाजिवारणवधैः राज्ञां बलं विक्षोभ्य येन बालेन लीलायता समरे अर्जुनकर्म दर्शितम् । रणे स सोभद्रः नराधिपशतैः वेगागतैः सर्वंशः खे पितामहस्य शक्रस्य सहसैव उत्सङ्गम् आरोपितः ॥ ३ ॥

व्याख्या—योधेति—योधस्यन्दनवाजिवारणवधैः योधानां स्यन्दनवाजिनां वारणानां च वधैः = सैनिकरथाश्वकरिणां हननैः । राज्ञाम् = नृपाणां । बलम् = सैन्यं । विक्षोभ्य = विद्राव्य । येन बालेन = अभिमन्युना लीलायता = क्रीडां कुर्वता । समरे = संग्रामे । अर्जुनकर्म = अर्जुनस्य = धनञ्जयस्य कर्म = विपक्षविध्वंसः । दर्शितम् = प्रकटीकृतम् । रणे सः = महापराक्रमी । सोभद्रः = अभिमन्युः । नराधिपशतैः = असंख्यराजभिः । वेगागतैः = वेगेन = त्वरया आगतैः = सम्प्राप्तैः । सर्वंशः = सर्वतो भावेन खे = आकाशे स्वर्गे

निश्चय ही जिस अभिमन्यु ने युद्ध क्षेत्र में योद्धाओं, रथों के घोड़ों तथा हाथियों का वध कर सम्पूर्ण राजाओं की सेना को विनष्ट (तहस नहस) कर खेल ही खेल में अपने पिता अर्जुन का पराक्रम प्रदर्शित किया किन्तु आज उसी सुभद्रानन्दन अभिमन्यु को बड़े वेग के साथ चारों ओर से आक्रमण के लिये आये इन सैकड़ों राजाओं ने बड़ी शीघ्रता से सहसा स्वर्ग में उसके पितामह इन्द्र की गोद में बैठा दिया ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी दुःशला प्रतिहारी च ।)

धृतराष्ट्रः– कथं नु भोः !

केनैतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे
कोऽयं मे प्रियमिति विप्रियं ब्रवीति ।
कोऽस्माकं शिशुवधपातकाङ्क्षितानां
वंशस्य क्षयमवघोषयत्यभीतः ॥ ४ ॥

इति यावत् । पितामहस्य = शक्रस्य = इन्द्रस्य । सहसैव = द्राक् । उत्सङ्गम् = क्रोडम् । आरोपितः = संस्थापितः । युद्धे असंख्याकपदातिरथाश्ववारणवधं कृत्वा राजभिरनेकैः परिवार्याभिमन्योः वधः कृतः इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३ ॥

अथेदानीमभिमन्युवधं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः दुःखितः सन् विलपति—

अन्वयः—एतत् श्रुतिपथदूषणं मे केन कृतम् । मे प्रियम् इति कः विप्रियं ब्रवीति । अभीतः कः शिशुवधपातकाङ्क्षितानां अस्माकं वंशस्य क्षयम् अवघोषयति ॥ ४ ॥

व्याख्या—केनेति–सौभद्रः रणे उपरतः इत्येवं रूपम् सब्दम् । श्रुतिपथदूषणम् श्रुत्योः = कर्णयोः पथः मार्गस्य = दूषणम् = अपराधः । मे = मम धृतराष्ट्रस्य । केन = अज्ञातेन । कृतम् = विहितम् इति कोऽयमिति शेषः । मे प्रियम् = धृतराष्ट्रस्य इष्टम् = अभिलषितम् इति कः = पुरुषोऽसौ । विप्रियम्

(इसके अनन्तर रंग मंच पर धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुःशला
तथा प्रतीहारी का प्रवेश)

धृतराष्ट्र—अरे यह क्या ?

किसने मेरे कर्ण पथ को दूषित किया ? यह कौन है जो मेरा प्रिय समझ कर ऐसा अप्रिय कर रहा है । इतना ही नहीं वह कौन ऐसा निर्भीक है

गान्धारी—महाराअ ! अत्थि पुण जाणीअदि केवलं पुत्तसंखअकारओ कुलविग्गहो भविस्सदित्ति । [महाराज ! अस्ति पुनर्ज्ञायते केवलं पुत्रसंक्षयकारकः कुलविग्रहो भविष्यतीति ।]

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! ज्ञायते ।

गान्धारी—महाराअ कदा णु खु । [महाराज कदा नु खलु ।]

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! शृणु—

अद्याभिमन्युनिधनाज्जनितप्रकोपः
सामर्षकृष्णधृतरश्मिगुणप्रतोदः ।

=अनभिमतं । ब्रवीति=संश्रावयति । अभीतः=निर्भीकः । कः=पुमान् । शिशुवधपातकाङ्किताना शिशोर्वधः स एव पातकः तेन अङ्कितानाम्=अभिमन्युवधपापलाञ्छितानाम् । अस्माकम्=कौरवाणाम् । वंशस्य=कुलस्य । क्षयम्=विनाशम् । अवघोषयति=घोषणां करोति । मम वंशनाशं कः प्रचारयतीत्यर्थः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ४ ॥

अतः परं स्थविरः धृतराष्ट्रः वंशक्षयकारकं कुलविग्रहं सन्दिहानः गान्धारीं प्रति आह—

अन्वयः—अद्य अभिमन्युनिधनात् जनितप्रकोपः सामर्षकृष्णधृतरश्मि-

जो शिशु वध के पाप से कलङ्कित हमारे इस वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है ॥ ४ ॥

गान्धारी—महाराज ! ऐसा तो है ही मुझे मालूम भी पड़ रहा है—हमारे इस कुल का विग्रह समस्त पुत्रों का विनाश कर डालेगा ।

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! मालूम तो ऐसा ही पड़ रहा ।

गान्धारी—महाराज ! ऐसा कब होगा ?

धृतराष्ट्र—गान्धारि सुनो ।

अभिमन्यु के वध से उत्पन्न क्रोध वाले तथा आवेश युक्त श्रीकृष्ण के

पार्थः करिष्यति तदुग्रधनुःसहायः
शान्ति गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः ।।५।।

गान्धारी—हा वच्छ अभिमञ्ञो ! ईदिसे पि णाम पुरुसक्खअकारए कुलविग्गहे वत्तमाणे वालभावणिमज्जणं अम्हाणं भग्गकमेण करअंतो कहिं दाणिं पोत्तअ ! गदोसि । [हा वत्स अभिमन्यो ! ईदृशेऽपि नाम

गुणप्रतोदः तदुग्रधनुःसहायः स पार्थः (एवम्) करिष्यति येन लोकः विनाशम् अवाप्य शान्ति गमिष्यति ॥ ५ ॥

व्याख्या—अद्येति-अद्य = सम्प्रति । अभिमन्युनिधनात् = अभिमन्युविनाशात् जनितप्रकोपः जनितः = समुत्पन्नः प्रकोपः = प्रकृष्ट रोषः यस्य सः । सामर्षकृष्णघृतरश्मिगुणप्रतोदः सामर्षो = मर्षयुक्तो यः कृष्णः = वासुदेवः तेन घृतो रश्मिगुणो = वल्यः प्रतोदः = कशा च यस्य सः । तदुग्रधनुःसहायः तच्च तत् उग्रधनुः तदेव सहायः = साधनभूतो यस्य सः = गाण्डीवी । पार्थः = अर्जुनः एवम् युद्धमिति शेषः करिष्यति = विधास्यति । येन लोकः = भुवनम् विनाशम् = संक्षयम् । अवाप्य = लब्ध्वा । पश्चात् शान्तिम् = स्वस्थप्रकृतिम् । गमिष्यति = यास्यति । अर्जुनः पुत्रशोकपरितप्तः कृष्णगाण्डीवयोः सहायेन सर्वान् विपक्षीयलोकान् विनाश्य ततः विश्रामं प्राप्स्यतीत्यर्थः ।। ५ ।।

पुरुषक्षयकारके = मनुष्यविनाशजनके । कुलविग्रहे = वंशविग्रहे वर्त्तमाने = प्रवर्त्तमाने । भाग्यक्रमेण = भाग्यविपर्यासेन । बालभावनिमज्जनम् =

द्वारा रथ के घोड़ों की लगाम और चावुक के धारण कर लिये जाने पर अर्जुन अपने कठिन धनुष की सहायता से आज सारे संसार का तहस नहस कर देंगे इस प्रकार विनाश हो जाने के तदनन्तर यह सारा संसार शान्ति की प्राप्त करेगा ।। ५ ।।

गान्धारी—हाय अभिमन्यु ! इस प्रकार पुरुष-क्षय-कारक कुल विग्रह

पुरुषक्षयकारके कुलविग्रहे वर्तमाने बालभावनिमज्जनमस्माकं भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक ! गतोऽसि ।]

दुःशला—जेण दाणि बहूए उत्तराए वेधव्वं दाइदं तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठं । [येनेदानीं वध्वै उत्तरायै वैधव्यं दत्तं, तेनात्मनो युवतिजनाय वैधव्यमादिष्टम् ।]

धृतराष्ट्रः—अथ केनैष व्यसनार्णवस्य सेतुबन्धः कृतः ।

भटः—महाराज । मया ।

धृतराष्ट्रः—को भवान् ।

भटः—महाराज ! ननु जयत्रातोऽस्मि ।

धृतराष्ट्रः—जयत्रात !

बाल्यावस्थायां निधनम् । येन = शत्रुणा । आत्मनः = स्वपक्षस्य युवतिजनकृते । वैधव्यम् । आदिष्टम् = विज्ञप्तम् ।

अभिमन्युवधः जिज्ञासातः धृतराष्ट्रः भटं परिपृच्छति—

के होने पर तुम बालभाव से उसमें निमज्जित हो गये । इस प्रकार हे पौत्र ! हमारे भाग्य का क्षय कर तुम कहाँ चले गये ?

दुःशला—जिसने इस समय बहू उत्तरा को इस प्रकार विधवापन दिया है उसने अपने पक्ष की युवतियों को भी विधवापन का निमन्त्रण दिया है ।

धृतराष्ट्र—अच्छा बताओ ! किसने इस विपत्ति के महासागर पर पुल बाँधा है ?

भट—महाराज मैंने ।

धृतराष्ट्र—अरे भाई तुम कौन हो ?

भट—महाराज ! मैं जयत्रात हूँ ।

धृतराष्ट्र—अरे जयत्रात !

केनाभिमन्युर्निहतः कस्य जीवितमप्रियम् ।
पञ्चानां पाण्डवाग्नीनामात्मा केनेन्धनीकृतः ॥ ६ ॥

भटः—महाराज ! बहुभिः, किल पार्थिवैः समागतैर्निहत कुमारोऽभिमन्युः । स्यात्तु जयद्रथो निमित्तभूतः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निमित्तभूतः ।

भटः—महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निहतः ।

अन्वयः—हे जयत्रात ! अभिमन्युः केन निहतः । कस्य जीवितम् अप्रियम् । केन पञ्चानाम् पाण्डवाग्नीनाम् आत्मा इन्धनी कृतः ॥ ५ ॥

व्याख्या—केनेति–जयत्रात ! अभिमन्युः=अर्जुनसुतः । केन=पुरुषेण । निहतः निधनं प्रापितः । कस्य=मानवस्य । जीवितम्=आयुः । अप्रियम्=अनभिलषितम् केन=मर्त्येन । पञ्चानाम् पाण्डवाग्नीनाम् पञ्च पाण्डवा एव अग्नयस्तेषाम्=पाण्डववह्नीनाम् । मध्ये । आत्मा=स्वजीवनम् । इन्धनीकृतः इन्धनत्वेन समर्पितः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ६ ॥

किसने अभिमन्यु का वध किया ? किसे अपना जीवन अच्छा नहीं लगा और किसने इस पाण्डवरूपी पञ्चाग्नि को अपनी आत्मारूपी ईन्धन प्रदान किया ? ॥ ६ ॥

भट—महाराज वैसे तो बहुत से राजाओं ने मिल कर कुमार अभिमन्यु का वध किया किन्तु उसमें जयद्रथ ही निमित्त कारण थे ।

धृतराष्ट्र—बड़े खेद की बात है जो जयद्रथ उस वध के निमित्त हुये ।

भट—महाराज ! और क्या ?

धृतराष्ट्र—तब दुःख है कि जयद्रथ अब मारा गया ।

(तच्छ्रुत्वा दुःशला रोदिति ।)

धृतराष्ट्रः—कैषा रोदिति ।

प्रतीहारी—महाराअ ! भट्टिदारिआ दुस्शला । [महाराज ! भर्तृदारिका दुःशला ।]

धृतराष्ट्रः—वत्से अलमलं रुदितेन । पश्य,

भर्तुस्ते नूनमत्यन्तमवैधव्यं न रोचते ।
येन गाण्डीविवाणानामात्मा लक्षीकृतः स्वयम् ।। ७ ।।

धृतराष्ट्रः दुःशलारोदनमाकर्ण्य अभिमन्युवधे जयद्रथ निमित्तकारणं मत्वा स्वयमेव तेन वैधव्यं क्रीतमिति वस्तुस्थितिं प्रदर्शयति—

अन्वयः—भर्तुः ते अवैधव्यं नूनम् अत्यन्तं न रोचते येन स्वयं गाण्डीविवाणानाम् आत्मा लक्षीकृतः ॥ ७ ॥

व्याख्या—भर्त्तुरिति-(तव) भर्त्तुः=जयद्रथस्य ते=तव अवैधव्यम् विधवाया भावः वैधव्यम् तन्न भवतीति तथाभूतम्=सौभाग्यम् अत्यन्तम्=अतिशयं न रोचते=न स्वदते इति नूनम्=निश्चयम् । येन=तव भर्त्रा जयद्रथेन । गाण्डीविवाणानाम् = अर्जुनविशिखानाम् । आत्मा=स्वजीवनम् । स्वयम्=आत्मनैव । लक्षीकृतः=लक्ष्यभूतो विहितः । अनुष्टुव्वृत्तम् ॥ ७ ॥

(यह सुन कर दुःशला रोने लगती है)

धृतराष्ट्र—यह कौन रो रही है ?

प्रतीहारी—महाराज ! राजकुमारी दुःशला !

धृतराष्ट्र—पुत्रि ! मत रोओ । देखो—

तुम्हारा यह सौभाग्य निश्चय ही तुम्हारे पति को अरुचिकर है । जिसने कि स्वयम् अपने को अर्जुन के बाणों का लक्ष्य बनाया ॥ ७ ॥

दुःशला—तेण हि अणुजाणादु मं तादो, अहं वि गमिस्सं वहूए उत्तराए सआसं। [तेन ह्यनुजानातु मां तातः, अहमपि गमिष्यामि बध्वा उत्तरायाः सकाशम् ।]

धृतराष्ट्रः—वत्से किमभिधास्यसि ।

दुःशला—ताद ! एवं च भणिस्सं—अज्जकालिअं च दे वेसग्गहणं अहं वि उवधारइस्सामि त्ति । [तात ! एवं च भणिष्यामि—अद्यकालिकं च ते वेषग्रहणमहमप्युपधारयिष्यामीति ।]

गान्धारी—पुत्तिए मा खु मा खु अमंगलं भणाहि । जीवदि खु दे भत्ता । [पुत्रिके ! मा खलु, खल्वमङ्गलं भण । जीवतु खलु ते भर्त्ता ।]

दुःशला—अम्ब ! कुदो मे एत्तिआणि भाअधेआणि । जो जणद्दणसहाअस्स धणंजअस्स विप्पिअ करिअ कोहि णाम जीविस्सिदि । [अम्ब ! कुतो मे एतावन्ति भागधेयानि । यो जनार्दनसहायस्य धनञ्जयस्य विप्रयं कृत्वा को हि नाम जीविष्यति ।]

अनुजानातु = आज्ञापयतु ।

दुःशला—अतएव मुझे आप आज्ञा दें मैं भी वधू उत्तरा के पास जाऊंगी ।

धृतराष्ट्र—पुत्री ! तू यह क्या कह रही है ?

दुःशला—हे तात ! और मैं वधू उत्तरा से कहूँगी कि आज वाला तुम्हारा वेष मैं भी धारण करने वाली हू ।

गान्धारी—पुत्रि ! इस प्रकार अमङ्गल मत बोलो ! मत बोलो । क्योंकि तुम्हारे पति अभी जीवित हैं ।

दुःशला—माँ मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? ऐसा वह कौन है जो कृष्ण सखा अर्जुन का अपकार कर जीने की इच्छा करे ।

धृतराष्ट्रः—सत्यमाह तपस्विनी दुश्शला । कुतः—

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्के विवृद्धश्चिरं
यो मत्तस्य हलायुधस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मदः ।
पार्थानां सुरतुल्यविक्रमवतां स्नेहस्य यो भाजनं
तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वैर्दुष्कृतैर्जीवितम् ॥८॥

अन्वयः—यः कृष्णस्य अष्टभुजोपधानरचिते अङ्के चिरं विवृद्धः यः मत्तस्य हलायुधस्य प्रीत्या द्वितीयः मदः भवति । यः सुरतुल्यविक्रमवतां पार्थानां स्नेहस्य भाजनम् तं हत्वा स्वकीयैः दुष्कृतैः इह जीवितं कः उपलप्स्यति ॥ ८ ॥

स्व

व्याख्या—यः = अभिमन्युः । कृष्णस्य = वासुदेवस्य । अष्टभुजोपधानरचिते अष्टानां भुजानां = बाहूनाम् उपधानम् = उपबर्हः तेन रचिते = विहिते । अङ्के = क्रोडे । चिरं = बहुकालपर्यन्तम् । विवृद्धः = वृद्धि सम्प्राप्तः । यः = सौभद्रः । मत्तस्य = मदयुक्तस्य हलायुधस्य = बलरामस्य । प्रीत्या = प्रेम्णा । द्वितीयः = अन्यः । मदः भवति भागिनेयस्नेहेन हर्षकारक इत्यर्थः । यः = सौभद्रः । सुरतुल्यविक्रमवतां = देवसमानपराक्रमशीलानाम् । पार्थानाम् = पाण्डवानाम् । स्नेहस्य पुत्रप्रेम्णः । भाजनम् = पात्रम् । तं = तथाभूमभिमन्युम् । हत्वा = निहत्य स्वैः = स्वकीयैः । दुष्कृतैः = पापकर्मभिः । इह = लोके । चिरं = बहुकालम् । जीवितम् = प्राणान् । कः =

धृतराष्ट्र—बेचारी दुःशला ठीक ही कह रही हैं ।

जो अभिमन्यु आठ भुजाओं के लगाने योग्य तकिये वाले श्री कृष्ण चन्द्र की गोद में बहुत दिन तक पाल कर बड़ा बनाया गया तथा स्वयं मदमत्त श्री बलराम जिसे देख कर और भी मस्ती से झूम उठते थे । किं बहुना जो पृथापुत्र पाँचों पाण्डवों का प्रेम पात्र था उसे मार कर वह कौन हैं जो अपने दुष्कर्मों से चिरकाल तक जीवित रहने की इच्छा करे ।

जयतात्र ! अथ तदवस्थ पुत्रं दृष्ट्वा किं प्रतिपन्नं तेन गाण्डीवधन्वना ।

भटः—महाराज ! किं वार्जुनसमीपे वृत्तमेतत् ?

धृतराष्ट्रः—कथमर्जुनोऽपि नात्रासीत् ।

भटः—महाराज ! अथ किम ?

धृतराष्ट्रः—कथमिदानीं वृत्तमेतत् ?

भटः—श्रूयतां–संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये स बालभावाददृष्टदोषः सग्राममवतीर्णः कुमारोऽभिमन्युः ।

पुमान् । उपलप्स्यति = प्राप्स्यति । गतं तस्य जीवितमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८ ॥

तदवस्थम् = रणप्राङ्गणे निहनम् । प्रतिपन्नम् = विहितम् । संशप्तकानीकनिवाहिते संशप्तकानां = त्रिगर्त्तानां अनीकैः = सैन्यैः । निवाहिते = निर्वासिते । अदृष्टदोषः = युद्धदोषानभिज्ञः ।

अच्छा जयतात्र ! इस प्रकार की अवस्था में (वधयुक्त) अपने पुत्र को देख कर गाण्डीवधारी अर्जुन ने क्या किया ?

भट—महाराज क्या ऐसी घटना अर्जुन के सामने हुई ?

धृतराष्ट्र—तो क्या अर्जुन भी वहाँ नहीं थे ?

भट—महाराज और क्या ?

धृतराष्ट्र—तो फिर ऐसी घटना किस प्रकार घट गई ।

भट—अच्छा सुनिये ! जब संशप्तकों की सेना श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन को रण क्षेत्र से दूर ले गई तब बाल सुलभ चपलता वश राजकुमार अभिमन्यु ने युद्ध के दोषों पर विचार न कर स्वयं रण क्षेत्र में प्रवेश किया ।

धृतराष्ट्रः—हन्त युक्तरूपोऽस्य वधः । को हि सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं शक्तः । अथ शेषाः पाण्डवाः किमनुतिष्ठन्ति ।

भटः—महाराज ! श्रूयताम् ।

चितां न तावत्स्वयमस्य देहमारोपयन्त्यर्जुनदर्शनार्थम् ।
तेषां च नामान्युपधारयन्ति यैस्तस्य गात्रे प्रहृतं नरेन्द्रैः ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! तदागम्यताम् । गङ्गाकूलमेव यास्यावः ।

अभिमन्यौ निहते शेषाः पाण्डवाः किं व्यवस्यन्तीति पृष्टे धृतराष्ट्रे भटः उत्तरयति—

अन्वयः—(ते) अर्जुनदर्शनार्थम् अस्य देहम् तावत् चितां स्वयम् नारोपयन्ति किञ्च यैः नरेन्द्रैः तस्य गात्रे प्रहृतम् तेषां नामानि उपधारयन्ति च ॥ ९ ॥

व्याख्या—(ते = पाण्डवाः) अर्जुनदर्शनार्थम् अर्जुनो मृतमेनं पश्यत्विति उद्देशेन । अस्य = अभिमन्योः । देहम् = शवम् । चिताम् = काष्ठरचितामिति शेषः । स्वयम् = आत्मना । न आरोपयन्ति = स्थापयन्ति । इदानीम् यैः नरेन्द्रैः = नृपैः । तस्य = अभिमन्योः । गात्रे = शरीरे प्रहृतम् प्रहारो विहितः तेषाम् = राज्ञाम् । नामानि = अभिधेयानि । उपधारयन्ति = निश्चिन्वन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र—शोक ! तभी तो उसका वध सम्भव हुआ। अन्यथा सिंह के रहते भला कौन उसकी गुफा में प्रवेश करने का साहस कर सकता है ? अच्छा इस समय शेष पाण्डव क्या कर रहे हैं ?

भट—महाराज ! सुनिये ।

अर्जुन मृत पुत्र के शव को देख लें इसलिये अन्य पाण्डव उसे चिता पर नहीं रख रहे हैं और जिन राजाओं ने उसके शरीर पर प्रहार किया है उनके नामों का पता लगा रहे हैं ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! तब आओ हम सब गंगा तट पर ही चलें ।

गान्धारी—महाराअ ! णं तर्हि गाहामो । [महाराज ! ननु तत्र गाहावहे ।]

धृतराष्ट्रः गान्धारि श्रृणु ।

अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः ।
न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैः कर्तुं नृपाणां शिविरोपरोधम् ॥१०॥

गाहावहे = निमज्जावः ।

अथ धृतराष्ट्रः गान्धारीं गङ्गाकूलगमनप्रयोजनमुपस्थापयति—

अन्वयः—हे गान्धारि स्वेन अपराधेन हतेभ्यः तव आत्मजेभ्यः अद्यैव जलं दास्यामि । अहम् सलिलप्रदानैः नृपाणां शिविरोपरोधम् कर्त्तुं न शक्तः अस्मि ॥ १० ॥

व्याख्या—अद्यवेति–हे गान्धारि ! स्वेन = स्वकीयेन । अपराधेन = दोषेण । हतेभ्वः = निधनं गतेभ्यः । तव आत्मजेभ्यः = पुत्रेभ्यः । अद्यैव = इदानीमेव । जलम् = तिलाञ्जलिं । दास्यामि । किञ्च अहम् सलिलप्रदानैः = तिलाञ्जलिदानैः । नृपाणाम् – राज्ञाम् । शिविरोपरोधम् = पूतिशिविरं मत्वा रणान्निवर्त्तनम् । न = नहि शक्तः = समर्थः अस्मि । युद्धे एते मरिष्यन्तीति नूनमतः तान्वारयितुं नाहं शक्त इत्यर्थः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

गान्धारी—महाराज ! तो हम सब वहाँ चल कर गंगा में स्नान करेंगे ।

धृतराष्ट्र—गान्धारि सुनो ।

आज ही हम लोग अपने अपराध से मरे हुये तुम्हारे तुम्हारे इन पुत्रों को जलाञ्जलि दे दें इस जलाञ्जलि दान से हम राजाओं को शिविर में प्रतिबन्धित नहीं कर सकते अर्थात् जलाञ्जलि दान का अनुरोध उनसे नहीं कर सकते ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनो दुश्शासनः शकुनिश्च ।)

दुर्योधनः--वत्स दुशासन !

यातोऽभिमन्युनिधनात् स्थिरतां विरोधः
प्राप्तो जयः प्रचलिता रिपवो निरस्ताः ।
उन्मूलितोऽस्य च मदो मधुसूदनस्य
लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्दः ॥ ११ ॥

दुर्योधनोऽभिमन्योर्वधे स्वमनोऽभिलषितसिद्धिं वर्णयन्नाह—

अन्वयः—अभिमन्युनिधनात् विरोधः स्थिरतां यातः । जयः प्राप्तः । रिपवः प्रचलिताः निरस्ताः । अस्य मधुसूदनस्य मदः उन्मूलितः च अद्य मया अभ्युदयेन समं शब्दः लब्धः ॥ ११ ॥

व्याख्या—यात इति–अभिमन्युनिधनात् अभिमन्योः = सौभद्रस्य निधनात् = मरणात् । विरोधः = विद्वेषः । स्थिरतां = सुदृढत्वम् । यातः = प्राप्तः । इदं ममानुकूलम् । मया जयः = विजयः । प्राप्तः = लब्धः । रिपवः शत्रवः । प्रचलिताः=प्रकम्पिताः । निरस्ताः = पराजिताः । अस्य मधुसूदनस्य = केशवस्य । मदः = गर्वः । उन्मूलितः = उत्पाटितः । दूरीकृत इत्यर्थः । अद्य = इदानीम् । मया = दुर्योधनेन । अभ्युदयेन = समुन्नत्या । समं=

(तदनन्तर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि का प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन--वत्स दुःशासन !

अब अभिमन्यु की इस मृत्यु से हमारा विरोध दृढ़तर हो गया मुझे विजय मिल गई। शत्रुगण विचलित होकर निराश हो गये। किं बहुना इस श्रीकृष्ण का सारा मद विनष्ट हो गया। आज मैंने अपनी उन्नति के साथ यश को भी प्राप्त कर लिया ॥ ११ ॥

दुश्शासनः—अहो नु खलु,

रुद्धाः पाण्डुसुता जयद्रथबलेनाक्रम्य शत्रोर्बलं
सौभद्रे बिनिपातिते शरशतक्षेपैर्द्वितीयेऽर्जुने ।
प्राप्तैश्च व्यसनानि भीष्मपतनादस्माभिरद्याहवे
तीव्राः शोकशराः कृताः खलु मनस्येषां सुतोत्सादनात् ॥१२॥

साकम् । शब्दः = विजयघोषणाम् । लब्धः = सम्प्राप्तः । मदीयसर्वाण्यभीष्टानि परिपूर्णानि जातानीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ११ ॥

दुःशासनः भ्रातरं दुर्योधनं प्रति रणे स्वकृतानि कर्माणि प्रशंसन्नाह—

अन्वयः—जयद्रथबलेन शत्रोर्बलम् आक्रम्य पाण्डुसुता रुद्धाः । द्वितीयेऽर्जुने सौभद्रे शरशतक्षेपैः विनिपातिते भीष्मपतनात् व्यसनानि प्राप्तैः अस्माभिः च अद्य आहवे सुतोत्सादनात् एषां मनसि तीव्राः शोकशराः कृताः खलु ॥ १२ ॥

व्याख्या—रुद्धा इति–जयद्रथबलेन जयद्रथस्य बलं तेन = जयद्रथपराक्रमेण शत्रोः = विपक्षस्य । बलम् = सैन्यम् । आक्रम्य = विजित्य । पाण्डुसुताः = युधिष्ठिरादयः । रुद्धाः – चक्रव्यूहप्रवेशेन वारिताः । द्वितीयेऽर्जुने = अर्जुनतुल्यपराक्रमे सौभद्रे = अभिमन्यौ शरशतक्षेपैः शरशतानां क्षेपास्तैः = असह्यबाणप्रयोगैः विनिपातिते = मिधनं गते । भीष्मपतनात् = पितामहविनाशात् । व्यसनानि दुःखानि प्राप्तैः = लब्धैः अस्माभिः अद्य = अस्मिन्दिने । आहवे = संग्रामे सुतोत्सादनात् = पुत्रविनाशात् । एषां

दुःशासन—अहा निश्चय ही ।

जयद्रथ की सेना ने शत्रु की सेना पर आक्रमण कर पाण्डवों को वीच में ही रोक दिया । द्वितीय अर्जुन कहे जाने वाले सुभद्रानन्दन अभिमन्यु के मारे जाने से भीष्म पितामह के मारे जाने से हम लोगों को जितना

शकुनिः—

जयद्रथेनाद्य महत्कृतं रणे नृपैरसम्भावितमात्मपौरुषम् ।
प्रसह्य तेषां यदनेन संयुगे समं सुतेनाप्रतिमं हृतं यशः ॥१३॥

दुर्योधनः—मातुल ! इतस्तावत् । दुश्शासन ! इतस्तावत् । तत्रभवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

=पाण्डवानाम् मनसि = हृदये । तीव्राः = तीक्ष्णाः । शोकशराः शोका एव शराः = शोकरूपा वाणाः । कृताः = उत्खाताः । एषां पुत्रबिनाशादस्माभिरपि ते शोकाकुलाः कृता इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १२ ॥

शकुनिर्जयद्रथं प्रशंसमान आह—

अन्वयः—अद्य जयद्रथेन रणे नृपैः असम्भावितम् महत् आत्मपौरुषं कृतम् यत् अनेन संयुगे प्रसह्य तेषां सुतेन समं अप्रतिमं यशः हृतम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—जयद्रथेनेति–अद्य = अस्मिन्दिने । रणे = आहवे । जयद्रथेन नृपैः = राजभिः असम्भावितम् = अतर्कितम् । महत = विशालं आत्मपौरुषम् = स्वपराक्रमम् । कृतम् बिहितम् । यदनेन संयुगे = संग्रामे । तेषाम् = पाण्डवानां । प्रसह्य = बलात्कृत्य । सुतेन = अभिमन्युना । समम् = सार्धम । अप्रतिमम् = अद्वितीयम् । यशः = कीर्त्तिः । हृतम् = स्वायत्तीकृतम् । सहोक्तिरलङ्कारः । वंशस्थवृत्तम् ॥ १३ ॥

दुःख प्राप्त हुआ था उसका बदला आज युद्ध में उनके पुत्र को मार कर तीखे शोकरूपी वाण पाण्डवों के हृदय में चुभा कर हम लोगों ने ले लिया ॥ १२ ॥

शकुनि—आज जयद्रथ ने रण क्षेत्र में ऐसा महान् पराक्रम प्रदर्शित किया जो अन्य राजाओं के लिये असम्भव था क्योंकि उन्होंने युद्ध में पाण्डवों की सेना पर आक्रमण कर उनके पुत्र का तो वध किया ही साथ ही साथ उनका यश भी विनष्ट कर दिया ।

दुर्योधन—मामा इधर आओ, दुःशासन इधर आओ । पूज्य पिता जी को हम लोग प्रणाम करेंगें ।

शकुनिः—वत्स दुर्योधन ! मा मैवम् ।

कामं न तस्य रुचितः कुलविग्रहोऽय-
मस्मांश्च गर्हयति स प्रियपाण्डवत्वात् ।
युद्धोत्थितैर्जयमवाप्य हि तुल्यरूपं
एवं प्रहृष्टवदनैरभिगन्तुमेनम् ॥ १४ ॥

अभिमन्युमरणानन्तरं तातं वन्दितुं गच्छन्तं दुर्योधनं दृष्ट्वा शकुनिः तस्माद्वारयति—

अन्वयः—तस्य अयं कुलविग्रहः कामं न रुचितः सः प्रियपाण्डवत्वात् अस्मान् गर्हयति च । हि युद्धोत्थितैः जयम् अवाप्य एवं प्रहृष्टवदनैः अस्माभिः एनम् अभिगन्तुं तुल्यरूपम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—काममिति—तस्य = धृतराष्ट्रस्य । अयम् = वर्त्तमानः । कुलविग्रहः परस्परं वंशविरोधः कामम् = यथेष्टम् । न रुचितम् = न प्रियम् । सः = राजा प्रियपाण्डवत्वात् प्रियाः पाण्डवाः यस्य तस्य भावः तस्मात् युधिष्ठिरादिषु स्नेहातिशयात् । अस्मान् = दुर्योधनादीन् । गर्हयति = भर्त्सयति । हि = यतः । युद्धोत्थितैः युद्धात् = आहवात् उत्थिताः = उत्पन्नाः तैः । जयम् = विजयम् । अवाप्य = सम्प्राप्य । एवम् = अनेन प्रकारेण । प्रहृष्टवदनैः = प्रसन्नाननैः । एनम् = धृतराष्ट्रं । अभिगन्तुम् सम्मुखमभिवादनार्थं यातुम् । तुल्यरूपम् = सदृशम् उचितमित्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १४ ॥

शकुनि—वत्स दुर्योधन ! ऐसा मत करो ।

परस्पर अपने ही कुल में होने वाला यह विग्रह उनको रुचिकर नहीं है, पाण्डव अधिक प्यारे हैं इसलिये हम लोगों की भर्त्सना करते हैं । अच्छा तो यह होगा कि हम लोग युद्ध में विजय प्राप्त कर प्रसन्न मुद्रा में प्रणाम करने के लिये इनके पास चलते ॥ १४ ॥

दुर्योधनः—मातुल ! मा मैवम् । यथा तथा भवतु । तत्रभवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

उभौ—बाढम् । (परिक्रामतः)

दुर्योधनः—तात ! दुर्योधनहमभिवादये ।

दुश्शासनः—तात ! दुश्शासनोऽहमभिवादये ।

शकुनि—शकुनिरहमभिवादये ।

सर्वे—कथमाशीर्वचनं न प्रयुज्यते ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! कथमाशीर्वचनमिति ।

सौभद्रे निहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः ।
जीविते निरपेक्षाणां कथमाशी प्रयुज्यते ॥ १५ ॥

अभिवादनान्तरमाशीर्वचनमलब्ध्वा पृष्टे सति धृतराष्ट्रः तत्र हेतुं प्रदर्शयति—

अन्वयः—कृष्णपार्थयोः हृदये बाले सौभद्रे निहते सति जीविते निरपेक्षाणाम् आशीः कथं प्रयुज्यते ॥ १५ ॥

दुर्योधन—मामा जी ऐसा नहीं । चाहे जो कुछ भी हो हम लोग पूज्य पिता जी का अभिवादन अवश्य करेंगे ।

दोनों—बहुत अच्छा (उधर घूम कर चले जाते हैं ।)

दुर्योधन—तात ! मैं दुर्योधन आपको अभिवादन करता हूँ ।

दुःशासन—तात ! मैं दुशासन आपको अभिवादन करता हूँ ।

शकुनि—मैं शकुनि आपको अभिवादन करता हूँ ।

सभी—क्यों आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं ?

धृतराष्ट्र—पुत्र ! आशीर्वाद किस प्रकार दूँ ।

अर्जुन और श्रीकृष्ण के हृदय के टुकड़े सुभद्रानन्दन अभिमन्यु के मारे

दुर्योधनः—तात ! किं कृतोऽयं सम्भ्रमः ।

धृतराष्ट्रः—किं कृतोऽयं सम्भ्रम इति ।

एका कुलेऽस्मिन्बहुपुत्रनाथे
लब्धा सुता पुत्रशताद्विशिष्टा ।

व्याख्या—सौभद्रे इति–कृष्णश्च पार्थश्च तयोः = केशवार्जुनयोः हृदये = आत्मस्वरूपे । वाले = शिशौ । सौभद्रे = अभिमन्यौ । निहते = घातिते सति । जीविते = जीवने । निरपेक्षाणाम् = अपेक्षारहितानां निराशानामित्यर्थः । युष्माकम् आशीः = आशीर्वचनम् । कथं = केन प्रकारेण प्रयुज्यते = दीयते । गतासून् प्रति मया कथमाशीर्वचनं दातव्यमित्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १५ ॥

सम्भ्रमः = सन्देहः ।

दुर्योधनेन सम्भ्रमकारणे पृष्टे सति तत्र हेतुं धृतराष्ट्रः प्रतिपादयति—

अन्वयः—बहुपुत्रनाथेऽस्मिन्कुले पुत्रशताद्विशिष्टा एका सुता लब्धा सा बान्धवानां भवतां प्रसादात् अश्लाघ्यं वैधव्यम् अवाप्स्यति इति ॥१६॥

व्याख्या—एकेति–बहुपुत्रनाथे बहवः = अनेके । पुत्राः = सूनवः नाथाः = स्वामिनः यस्मिन् स तस्मिन् । अस्मिन् कुले = कौरववंशे । पुत्रशताद् = शतसङ्ख्याकपुत्रात् विशिष्टा गुणेन गरीयसी अभीष्टा च । एका = केवला । सुता = पुत्री दुःशलानाम्नी । मया लब्धा = सम्प्राप्ता । सा

जाने पर जो अपने जीवन के प्रति सर्वथा निराश हो रहे हों भला उन्हें किस प्रकार आशीर्वाद दिया जा सकता है ? ॥ १५ ॥

दुर्योधन—आपको इस प्रकार का यह भ्रम किस प्रकार हुआ ?

धृतराष्ट्र—तुम अब भी पूछ रहे हो कि यह भ्रम कैसे हुआ ?

अनेक पुत्रों से सनाथा इस कुल में सौ पुत्रों से भी अधिक, प्यारी मात्र

णा

सा बान्धवाणां भवतां प्रसादाद्
वैधव्यमश्लाध्यमवाप्स्यतीति ॥ १६ ॥

दुर्योधनः - तात ! किं चात्र जयद्रथस्य ।

धृतराष्ट्रः – तेन किल वरविदग्धेन रुद्धाः पाण्डवाः ।

दुर्योधनः—आः, तेन रुद्धाः । बहुभिः खल्वन्यैः ।

धृतराष्ट्रः—भोः कष्टम् ।

=पुत्री । भवतां बान्धवानाम् भ्रातृणाम् । प्रसादात् = कर्मणः फलेन । अश्लाध्यम् =निन्दनीयम् । वैधव्यम्=दुर्भगत्वम् विधवाभावं । अवाप्स्यति=प्राप्स्यति । भवतां गर्हितकर्मणा मत्पुत्री वैधव्यं यास्यतीति विचार्य न मे मनः भवत्सु आशीर्वचनार्थं प्रसरतीति भावः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १६ ॥

वरविदग्धेन – महादेवप्रसादात्प्राप्तवरदानाहङ्कारेण ।

यदि तु मात्रजयद्रथेन वरदानदृप्तेन पाण्डवा रुद्धास्तदा तस्यैव निधनं भविष्यति किन्तु यदा बहुभिः नृपैस्ते रुद्धास्तदा भृशमनर्थमिति शपति—धृतराष्ट्रः ।

एक कन्या मुझे प्राप्त हुई किन्तु अब वह तुम्हारे जैसे भाइयों की कृपा से वैधव्य प्राप्त करेगी ? ॥ १६ ॥

दुर्योधन—तात ! इसमें जयद्रथ ने क्या किया ?

धृतराष्ट्र—उसने वरदान के गर्व से पाण्डवों को जो बीच में रोक लिया ।

दुर्योधन—अरे हाँ उसने तो रोका किन्तु अन्य राजकुमारों ने भी तो रोका ।

धृतराष्ट्र—ओह बड़े कष्ट की बात है ।

बहूनां समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम् ।
बाले पुत्रे प्रहरतां कथं न पतिता भुजा ॥ १७ ॥

दुर्योधनः—तात !

वृद्धं भीष्मं छलैर्हत्वा तेषां न पतिता भुजाः ।
हत्वाऽस्माकं पतिष्यन्ति तमबालपराक्रमम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—निर्घृणात्मनां बहूनां समवेतानां एकस्मिन् बाले पुत्रे प्रहरतां तेषां भुजा कथं न पतिताः ॥ १७ ॥

व्याख्या—बहूनामिति–निर्घृणात्मनाम् निर्गता घृणा = दया यस्माद् स निर्घृणः आत्मा येषां ते तेषाम् निष्ठुरचित्तानाम् । बहूनाम् = अनेकानाम् । समवेतानाम् = एकत्रकृतसङ्घानाम् । एकस्मिन् = असहाये । बाले = शिशौ । पुत्रे = सुते सौभद्रे इति शेषः । प्रहरतां = प्रहारं कुर्वताम् । राज्ञामिति शेषः । भुजाः = हस्ताः । कथं = केन प्रकारेण न पतिताः = पतनं न प्राप्ताः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्रवचनं श्रुत्वा तद् खण्डयन् दुर्योधनः स्वपक्षं प्रतिपादयति—

अन्वयः—यदि वृद्धं भीष्मं छलैः हत्वा तेषां भुजाः न पतिताः तर्हि अबालपराक्रमं त हत्वा अस्माकं भुजाः पतिष्यन्ति किम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—वृद्धमिति–वृद्धम् = जरठम् । भीष्मम् = पितामहम् । छलैः = कपटैः । हत्वा = निपात्य । तेषां = पाण्डवानां । भुजाः = कराः न पतिताः

अनेक निर्दयी राजाओं ने समवेत (एकत्रित) होकर अकेले उस बालक पर जब प्रहार किया तब उन लोगों की भुजा क्यों नहीं गिर गई ॥ १७ ॥

दुर्योधन—तात—

वृद्ध भीष्म को कपट से मारने पर जब शत्रुओं की भुजायें नहीं गिरी,

धृतराष्ट्रः—वत्स ! किं भीष्मस्य निपातनमभिमन्योश्च वध. समः।

दुर्योधनः—तात ! कथं न समः।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! श्रूयताम्,

स्वच्छन्दमृत्युर्निहतो हि भीष्मः स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः।
अयं तु बालः कुरुवंशनाथश्छिन्नोऽर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः॥ १९॥

=न भ्रष्टाः। तदा अबालपराक्रमम् = अबालवत् पराक्रमो यस्य तम् = महाविक्रमशालिनम्। तम् = अभिमन्युं हत्वा। अस्माकम् = कौरवाणां भुजाः पतिष्यन्ति = भ्रष्टाः भविष्यन्ति किमिति शेषः॥ १८॥

इदानीं दुर्योधनोक्तं भीष्माभिमन्य्वोः समं वधमिति खण्डयन्नाह—

धृतराष्ट्रः—

अन्वयः—हि भीष्मः स्वेन उपदेशेन कृतात्मतुष्टिः स्वच्छन्दमृत्युः निहतः। अयं तु कुरुवंशनाथः बालः अर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः छिन्नः॥ १९॥

व्याख्या—स्वच्छन्देति—हि = यतः। भीष्मः = पितामहः। स्वेन = स्वकीयेन। उपदेशेन = स्वमरणकारणविज्ञापनेन। कृतात्मतुष्टिः कृता = विहिता आत्मतुष्टिः—आत्मसन्तोषो येन सः। स्वच्छन्दमृत्युः स्वच्छन्द आत्मवशगा मृत्युर्यस्य सः। निहतः = रणे विनष्टः। अयं तु कुरुवंशनाथः

तब महान् पराक्रमी जिसका शौर्य तरुणों के जैसा था ऐसे उस बालक के मारने पर हम लोगों की भुजायें क्यों गिरेंगी ?॥ १८॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! क्या भीष्म के वध और अभिमन्यु के वध में समानता है ?

दुर्योधन—तात ! कैसे समता नहीं ?

धृतराष्ट्र—अच्छा पुत्र ! सुनो !

भीष्म की मृत्यु उनकी इच्छा पर निर्भर थी, इसलिये वे मरे भी अपनी इच्छानुसार और अपनी मृत्यु के कारण को पाण्डवों को उपदेश कर मरे

दुश्शासनः—तात ! बालो न बाल इति । अभिमन्युना—

धृतराष्ट्रः—किं किं दुश्शासनो व्याहरति ।

दुश्शासनः—अथ किम् ।

सर्वेषां नः पश्यतां युध्यतां च
व्यायामोष्णं गृह्य चापं करेण ।

कुरुवंशस्य नाथः=कुरुवं स्य भाविराजा बालः=शिशुः । अर्जुनस्य=पार्थस्य । प्रथमः=अग्रेसरः । प्रवालः नूतनोदीयमानकिसलयः पुत्ररूपाङ्कुरः । छिन्नः=कर्त्तितः अतएव नोभयोर्वधस्तुल्य इति भावः । उपजातिवृत्तम् ॥ १९ ॥

अथ दुःशासनस्तस्य बालकस्याबालपराक्रमत्वं व्याहरति—

अन्वयः—नः सर्वेषां पश्यतां युध्यतां च व्यायामोष्णं चापम् करेण गृह्य अभ्यामलैः अंशुजालैः सूर्येण इव बाणैः सर्वे भूमिपालाः अङ्किताः ॥ २० ॥

व्याख्या—नः=अस्माकम् । सर्वेषाम्=अखिलभूभृताम् । पश्यताम्=अवलोकयतां युद्धयतां=संग्रामं कुर्वतां च । व्यायामोष्णम् व्यायामेन धनुर्विस्फारणेन उष्णम्=अशीतम् । चापम्=धनुः । करेण=हस्तेन । गृह्य=

और यह बालक कुरुवंश को कृतार्थ करने वाला था विशेष कर अर्जुनरूपी वृक्ष का प्रथम जायमान अङ्कुर था जिसका बध तुम लोगों ने किया ॥ १९ ॥

दुःशासन—पिताजी ! बालक तो था पर बड़ा तेजस्वी था ।

धृतराष्ट्र—कौन यह कौन ! क्या यह दुःशासन बोल रहा ।

दुःशासन—और क्या ?

युद्ध करते हुये हम सभी के देखते-देखते वह बालक बारम्बार खींचने चढ़ाने से उष्णता को प्राप्त धनुष को हाथ में ले उससे छोड़े हुये बाणों से

सूर्येणेवाभ्यागतैरंशुजालैः
सर्वे बाणैरङ्किता भूमिपालाः ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रः—कष्टं भोः !

बालेनैकेन तावद्भोः ! सौभद्रेणेदृशं कृतम् ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तः पार्थो वः किं करिष्यति ॥ २१ ॥

आदाय । अभ्यागतैः = समागतैः । अंशुजालैः = किरणसमूहैः सूर्येण = भानुना इव = यथा । सर्वे = अशेषाः । भूमिपालाः = राजानः । बाणैः = विशिखैः । अङ्किताः = व्रणिताः । उपमालङ्कारः । शालिनीवृत्तम् ॥ २० ॥

सौभद्रपराक्रममाकर्ण्य धृतराष्ट्रः स्वपुत्राणां कृते भाविभयं प्रदर्शयति—

अन्वयः—भोः यदि तावद् एकेन बालेन सौभद्रेण ईदृशं कृतम् तर्हि पुत्रव्यसनसन्तप्तः पार्थः वः किं करिष्यति ॥ २१ ॥

व्याख्या—बालेनेति—भोः = दुर्योधन । यदि तावद् = आदावेव । एकेन केवलेन । बालेन = शिशुना । ईदृशम् = असाधारणं महत्कर्म । कृतम् = विहितम् । तर्हि पुत्रव्यसनसन्तप्तः=पुत्रव्यसनेन सन्तप्तः = अभिमन्युवधदुःखसन्तप्तः । पार्थः = अर्जुनः । वः = युष्माकम् कौरवाणां । किं करिष्यति किं विधास्यति । युष्माकं कृते महद् भयमुपस्थितम् । अत्र यूयमेव विमृशध्वमहं किं वक्ष्यामीति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २१ ॥

आये हुये सारे राजाओं को इस प्रकार घायल कर दिया जैसे सूर्य अपनी किरणों से सारी पृथ्वी को ढक लेता है ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—ओह ! बड़ा कष्ट ।

अरे भाई ! जब एक बालक अभिमन्यु ने इतना बड़ा पराक्रम प्रदर्शित किया तो पुत्र के शोक से सन्तप्त अर्जुन तुम लोगों का क्या करेंगे ॥ २१ ॥

दुर्योधनः—किं करिष्यति ।

धृतराष्ट्रः—तत्करिष्यति, यत्सावशेषायुषो द्रक्ष्यथ ।

दुर्योधनः—तात ! कस्तावदर्जुनो नाम ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र । अर्जुनमपि न जानीषे ।

दुर्योधनः—तात ! न जाने ।

धृतराष्ट्रः—तेन हि अहमपि न जाने । किन्तु, अर्जुनस्य बलवीर्यज्ञा बह्वः सन्ति । तान् पृच्छ ।

दुर्योधनः—तात ! केऽर्जुनस्य बलवीर्यज्ञा मया प्रष्टव्याः ।

सावशेषायुषो सावशेषायुर्येषां ते = जीवने विद्यमाने बलवीर्यज्ञाः बलं च वीर्यं च बलवीर्ये ते जानन्ति बलवीर्यज्ञानकारिणः ।

इदानीं दुर्योधनेनार्जुनस्य बलवीर्यज्ञानकारके पृष्टे धृतराष्ट्रः तं सम्बोधयति—

दुर्योधन—वे क्या कर सकते हैं ।

धृतराष्ट्र—वह तो ऐसा करेगें जैसा आयुः शेष होने पर तुम लोग देखोगे ?

दुर्योधन—पिता जी ! वह अर्जुन हम लोगों के सामने क्या है ?

धृतराष्ट्र—तो पुत्र ! तुम अर्जुन को भी नहीं जानते ।

दुर्योधन—पिता जी ! मैं तो उसे नहीं जानता ।

धृतराष्ट्र—तो मैं भी नहीं जानता किन्तु अर्जुन के बल और पराक्रम को जानने वाले बहुत लोग हैं । उनसे पूछो—

दुर्योधन—पिता जी वे कौन-कौन लोग अर्जुन के बल और पराक्रम को जानने वाले हैं जिन लोगों से मैं पूछूं ।

धृतराष्ट्र—तो पुत्र सुनो—

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! श्रूयताम् ।

शक्रं पृच्छ पुरा निवातकवचप्राणोपहारार्चितं
पृच्छास्त्रैः परितोषितं बहुविधैः कैरातरूपं हरम् ।
पृच्छाग्निं भुजगाहुतिप्रणयिनं यस्तर्पितः खाण्डवे
विद्यारक्षितमद्य येन च जितस्त्वं पृच्छ चित्राङ्गदम् ॥२२॥

अन्वयः—पुरा निवातकवचप्राणोपहारार्चितं शक्रं पृच्छ । बहुविधैः अस्त्रैः परितोषितं कैरातरूपं हरं पृच्छ, यः खाण्डवे तर्पितः (तादृशम्) भुजगाहुतिप्रणयिनं अग्निं पृच्छं, येन त्वं जितः तं विद्यारक्षितं चित्राङ्गदं अद्य पृच्छ च ॥ २२ ॥

व्याख्या—पुरा = पूर्वकाले आदौ वा निवातकवचप्राणोपहारार्चितम् निवातकवचानाम् = एतन्नामकदैत्यानां प्राणा एवोपहाराः = प्राणार्पणरूपो बलिस्तेन अर्चितम् = सम्पूजितम् । शक्रम् = इन्द्रं पृच्छ = तत्सकाशाज् जानीहि । बहुविधैः = नानाप्रकारैः । अस्त्रैः = आयुधैः । परितोषितम् = सर्वतो भावेन प्रसादितम् । कैरातरूपम् = किरातरूपधारिणं । हरम् = सदाशिवम् । पृच्छ = तत्सकाशाज् जिज्ञासस्व । यः अग्निः खाण्डवे = खाण्डववनदाहकाले । तर्पितः = प्रीणितः भुजगाहुतिप्रणयिनं भुजगानामाहुतिभिः प्रणयोऽस्ति अस्य = सर्पाहुतिभिः परितोषशीलम् । अग्निम् पृच्छ = तत्सकाशाज्जानीहि । किञ्च येन = विद्याधरेण त्वं जितः तादृशम् विद्यया रक्षितं विक्षारक्षितं विद्याधरम् । चित्राङ्गदम् = तन्नामकं गन्धर्वं । पृच्छ = तत्सकाशा-

---

उस इन्द्र से पूछो, जिसकी पूजा निवातकवचों के प्राणोपहार द्वारा अर्जुन ने की, किरातरूपधारी भगवान् शंकर से पूछो जिन्हें अर्जुन ने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सन्तुष्ट किया था, उस अग्नि से पूछो जिसे खाण्डव वन में सर्पों की आहुति देकर अर्जुन ने तृप्त किया था और उस चित्राङ्गद

दुर्योधनः—यद्येतद्वीर्यमर्जुनस्य किमस्माकं बले न सन्ति प्रतियोद्धारोऽर्जुनस्य ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! के ते ।

दुर्योधनः—ननु कर्ण एव तावत् ।

धृतराष्ट्रः—अहो हास्यः खलु तपस्वी कर्णः ।

दुर्योधन—केन कारणेन ।

धृतराष्ट्रः—श्रूयताम् ।

शक्रापनीतकवचोऽर्धरथः प्रमादी
व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलो घृणावान् ।

दवेहि कोऽयमर्जुनो नामेति। एताः सर्वाः कथाः महाभारते द्रष्टव्याः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २२ ॥

बले = सैन्ये । प्रतियोद्धारः = प्रतिभटाः ।

धृतराष्ट्रः अधुना अर्जुनापेक्षया कर्णस्यावरत्वं प्रदर्शयन्नाह—

अन्वयः—कर्णः शक्रापनीतकवचः अर्धरथः प्रमादी व्याजोपलब्धविफला-

नामक विद्याधर से पूछो जिससे तुम परास्त हुये थे पर अर्जुन ने जिसे परास्त किया था ॥ २२ ॥

दुर्योधन—यदि अर्जुन में ऐसा पराक्रम है तो क्या अर्जुन की समानता रखने वाले उद्भट योद्धा हमारी सेना में नहीं है ?

धृतराष्ट्र—पुत्र ! कौन हैं वे ।

दुर्योधन—सबसे पहले तो कर्ण ही है ।

धृतराष्ट्र—वह बेचारा कर्ण तो उसके सामने हास्यास्पद है ।

दुर्योधन—किस कारण ।

धृतराष्ट्र—पुत्र सुनो ।

इन्द्र ने उसका कवच माँग लिया, वह अर्धरथी एवं प्रमादी है, कपट से

कर्णोऽर्जुनस्य किल यास्यति तुल्यभावं
यद्यस्त्रदानगुरवो दहनेन्द्ररुद्राः ॥ २३ ॥

शकुनि—प्रभवति भवानस्मानवधीरयितुम् ।

स्त्रबलः घृणावान् एतादृशः कर्णः अर्जुनस्य तुल्यभावं (तदा) यास्यति किल दहनेन्द्ररुद्राः (तस्य) अस्त्रदानगुरवः स्युः ॥ २३ ॥

व्याख्या—कर्णः = अधिरथपुत्रः । शक्रापनीतकवचः शक्रेण - इन्द्रेण अपनीतम् - अपहृतम कवचं = वर्म यस्य सः । अर्धरथः तल्लक्षणं महाभारते उद्योगपर्वणि (१९८·९) 'रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते । घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः । इत्युक्तेः । प्रमादी प्रमादः अस्ति अस्येति प्रमादी = अनवधानचित्तः अनुद्वुद्धसंस्कारवानित्यर्थः । व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलः व्याजेन = छद्मना उपलब्धम् = सम्प्राप्तम् अतएव विफलम् = निष्फलम् अस्त्रबलम् = आयुधवीर्यम् यस्य सः । घृणावान् घृणा अस्ति अस्येति = दयालुः । एवंभूतः कर्णः अर्जुनस्य तुल्यभावम् = सादृश्यं तदा यास्यति किल यदि दहनेन्द्ररुद्राः = दहनश्च इन्द्रश्च रुद्रश्च = अग्निशक्रशिवाः तस्य अस्त्रदानगुरवः = आयुधप्रदातारः तस्य स्युः = भवेयुः । तदा तयोः तुल्यता भविष्यति नान्यथेति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् । सम्भवालङ्कारश्च ॥ २३ ॥

प्रभवति = समर्थो भवति । अवधीरयितुम् = घर्षयितुम् । अधुना स्वप्रतिकूलं भाषमाणं शकुनिं भर्त्सयति धृतराष्ट्रः—

उपार्जित विद्या के कारण उसका अस्त्र बल भी विफल हैं । इसके अतिरिक्त वह दयालु भी है । कर्ण अर्जुन की तुलना में तभी आ सकता है कि जबकि इन्द्र, अग्नि और शिव स्वयं उसके अस्त्र शिक्षक बनें ॥ २३ ॥

शकुनि—आप हम लोगों की अवधीरणा (निन्दा) करने में समर्थ हैं ।

धृतराष्ट्रः—शकुनिरेष व्याहरति । भोः शकुने !

त्वया हि यत्कृतं कर्म सततं द्यूतशालिना ।
तत्कुलस्यास्य वैराग्निर्बालेष्वपि न शाम्यति ॥ २४ ॥

दुर्योधनः—अये,

भूमिकम्पः सशब्दोऽयं कुतो नु सहसोत्थितः ।
उल्काभिश्च पतन्तीभिः प्रज्वालितमिवाम्बरम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—हि द्यूतशालिना त्वया सततं यत्कर्म कृतं तद् अस्य कुलस्य वैराग्निः बालेषु (हूयमानेषु) अपि न शाम्यति ॥ २४ ॥

व्याख्या—त्वयेति-हि = यतः । द्यूतशालिना द्यूतेन = द्यूतक्रीडया शाल्यते शोभते तेन = द्यूतक्रीडाशोभिना । त्वया = शकुनिना । सततम् = निरन्तरं यत् कर्म कृतम् तद् अस्य कुलस्य = कौरवकुलस्य वैराग्निः = द्वेषवह्निः बालेषु = अभिमन्य्वादिषु हूयमानेषु इति शेषः न शाम्यति = न शान्तिं प्राप्नोति । त्वया कुलेऽस्मिन्ने तादृशोऽग्निः प्रज्वालितः यदभिमन्योः मरणेऽपि न शान्तिं यास्यतीति भावः ॥ २४ ॥

अथ तदानीं सहसा भूमिकम्परूपमुत्पातं दृष्ट्वा दुर्योधनः साश्चर्यं वदति—

अन्वयः—अयं सशब्दः भूमिकम्पः सहसा कुतः नु उत्थितः किञ्च पतन्तीभिः उल्काभिः अम्बरं प्रज्वलितम् इव (अभवत्) ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र—यह शकुनि बोल रहा है…हे शकुने !

सर्वदा जूआ खिलाने में दक्ष रह कर तुमने निरन्तर जो-जो कर्म किया है उसके परिणाम स्वरूप इस कौरव कुल की द्वेषाग्नि बालक अभिमन्यु की आहुति दी जाने पर भी शान्त नहीं हो पा रही है ॥ २४ ॥

दुर्योधन—अरे ।

यह सहसा कोलाहल के सहित भूकम्प कहाँ से आ गया और आकाश

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! एवं मन्ये,

सुव्यक्तं निहतं दृष्ट्वा पौत्रमायस्तचेतसः ।
उल्कारूपाः पतन्त्येते महेन्द्रस्याश्रुबिन्दवः ॥ २६ ॥

व्याख्या—भूमिकम्प इति–नु = वितर्के । सशब्दः शब्देन सहितः = ध्वनि युक्तः । भूमिकम्पः = भूमेः = पृथिव्याः कम्पः = वेपथुः कुतः = कस्मात् नु = इति वितर्के । उत्थितः=प्रादुर्भूतः । पतन्तीभिः=आकाशादागच्छन्तीभिः उल्काभिः =ज्योतिपुञ्जविशेषैः । अम्बरम् = आकाशम् । प्रज्वलितम् = प्रदीप्तम् इव जातमिति शेषः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्रः उल्काविषये स्वानुमानं प्रकटयति—

अन्वयः—(समरे) पौत्रं निहतं दृष्ट्वा आयस्तचेतसः महेन्द्रस्य एते अश्रुबिन्दवः उल्कारूपाः पतन्ति इति सुव्यक्तम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—सुव्यक्तमिति–समरे पौत्रम् = अभिमन्युम् । निहतम् = घातितं । दृष्ट्वा = अवलोक्य । आयस्तचेतसः आयस्तं = व्यथितं चेतः = हृदयं यस्य तस्य । महेन्द्रस्य = शक्रस्य । एते = पुरो दृश्यमानाः । अश्रुबिन्दवः बाष्पकणाः । उल्कारूपाः भूत्वा पतन्ति = आकाशादधो गच्छन्ति । अनुष्टुब् वृत्तम् । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ २६ ॥

से होने वाला यह उल्कापात इतना भयङ्कर है कि मानो वह आकाश को ही जला देगा ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है ।

पौत्र को मरा हुआ देख कर इन्द्रदेव दुःख के कारण रो रहे हैं । उन्हीं के ये अश्रुविन्दु उल्कापात के रूप में आकाश से गिर रहे हैं । यह बात स्पष्ट है ॥ २६ ॥

दुर्योधन—जयत्रात ! गच्छ, पाण्डवशिविरे शङ्खपटहसिंहनादरवोन्मिश्रः किं कुतोऽयं शब्द इति ज्ञायताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । संशप्तकानीकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन धनञ्जयेन निहतं पुत्रमङ्कस्थमश्रुभिः परिषिच्य जनार्दनावभर्त्सितेन प्रतिज्ञातं किलानेन ।

दुर्योधनः—किमिति किमति !

भटः—

तस्यैव व्यवसायतुष्टहृदयैस्तद्विक्रमोत्साहिभि-
स्तुष्टास्यैर्जितमित्यवेक्ष्य सहसा नादः प्रहर्षात्कृतः ।

दुर्योधनाज्ञया जयत्रातो दुर्योधमशिविरं गत्वा अर्जुनप्रतिज्ञातेन तदा जायमानं भूविचलनादिकं श्रावयति—

अन्वयः—तस्यैव व्यवसायतुष्टहृदयैः तद्विक्रमोत्साहिभिः तुष्टास्यैः जितम् इत्यवेक्ष्य प्रहर्षात् सहसा नादः कृतः । संक्षोभितैः पार्श्वैः गुरुभिः धराधरवरैः आक्रान्ता भूमिः आगतसम्भ्रमा युवतिः इव तस्मिन् क्षणे कम्पिता ॥२७॥

व्याख्या—तस्यैवेति—तस्यैव = अर्जुनस्यैव । व्यवसायतुष्टहृदयैः व्यव-

दुर्योधन—जयत्रात ! तुम पाण्डवों के शिविर में जाओ और पता लगावो कि यह शङ्ख, पटह (नगाड़ा) एवं वीरों के सिंहनाद से मिश्रित शब्द किस कारण हो रहा है ?

भट—जैसी आज्ञा—(निकल कर पुनः आकर) महाराज की जय हो । संशप्तकों की सेना को मार कर लौटे हुये अर्जुन ने अपने मृत पुत्र को गोद में लेकर उसे अश्रुजल से सींच कर श्री कृष्ण की भर्त्सना से उत्साहित होकर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा की है ।

दुर्योधन—क्या क्या ?

भट—अर्जुन की इस प्रतिज्ञा से सन्तुष्ट हुये तथा उनके पराक्रम के

आक्रान्ता गुरुभिर्धराधरवरैः संक्षोभितैः पार्थिवै-
भूमिश्चागतसम्भ्रमेव युवतिस्तस्मिन् क्षणे कम्पिता ॥२७॥

धृतराष्ट्रः—

प्रतिज्ञासारमात्रेण कम्पितेयं वसुन्धरा ।
सुव्यक्तं धनुषि स्पृष्टे त्रैलोक्यं विचलिष्यति ॥ २८ ॥

सायेन = समुद्योगेन तुष्टानि = सन्तोषं प्रापितानि हृदयानि = चेतांसि येषां ते तैः । तद्विक्रमोत्साहिभिः तस्य = अर्जुनस्य विक्रमान् उत्साहयितुं शीलमेषां ते तैः । तुष्टास्यैः = प्रसन्नमुखैः । जितम् = पराजितम् कौरवकुलमिति शेषः इत्यवेक्ष्य = विचार्य । प्रहर्षात् = हर्षातिरेकात् सहसा = झटिति । नादः = सिंहनादः । कृतः = विहितः । संक्षोभितैः = अभिमन्युमरणात् सशोकैः । पार्थिवैः=राजभिः । गुरुभिः=महद्भिः । धाराधरैः=भूभृद्भिः पर्वतैः । आक्रान्ता = अधिष्ठिता इयं भूमिः = वसुन्धरा । तस्मिन्क्षणे = तत्समये । आगतसम्भ्रमा जातसाध्वसा । युवतिः = तरुणी । इव = यथा । कम्पिता = वेपथुमती । इदमेव भूकम्पस्य नादस्य च कारणम् । उत्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २७ ॥

अथेदानीं धृतराष्ट्रः जयत्रातवचनमाकर्ण्य ततोऽधिकं भयमाशंसमान आह—

अन्वयः—(यस्य) प्रतिज्ञासारमात्रेण इयं वसुन्धरा कम्पिता तस्य धनुषि स्पृष्टे त्रैलोक्यं विचलिष्यति इति सुव्यक्तम् ॥ २८ ॥

उत्साह को बढ़ाते हुये प्रसन्न चित्त वाले राजाओं ने यह समझ कर कि "अब कौरव गण जीत लिये गये" इसलिये हर्षातिरेक से यह सहसा सिंहनाद किया है। बड़े-बड़े पर्वतों से अक्रान्त यह पृथ्वी उन राजाओं के क्षोभ से ऐसी प्रकम्पित हो उठी जैसे कोई युवती सन्त्रस्त होकर कांप उठे ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र—जिसकी प्रतिज्ञा मात्र के प्रताप से यह पृथ्वी कांप उठी

दुर्योधनः - जयत्रात ! किमनेन प्रतिज्ञातम् ।

भटः—

येन मे निहतः पुत्रस्तुष्टिं ये च हते गताः ।
श्वः सूर्येऽस्तमसम्प्राप्ते निहनिष्यामि तानहम् ॥ २९ ॥

इति ।

व्याख्या—(यस्य = अर्जुनस्य) प्रतिज्ञासारमात्रेण प्रतिज्ञासारमेव प्रतिज्ञासारमात्रं तेन = प्रतिज्ञावस्तुमात्रेण । इयम् = प्रत्यक्षा । वसुन्धरा = पृथ्वी । कम्पिता = वेपथुमती जाता । पुनः तस्य धनुषि स्पृष्टे = कार्मुकस्पर्शे त्रैलोक्यम् = त्रिभुवनम् । विचलिष्यति = क्षुब्धं भविष्यति इति सुव्यक्तम् = सुस्पष्टम् ॥ २८ ॥

जयत्रातनामको भटः अर्जुनस्य प्रतिज्ञातं दुर्योधनं प्रत्याह—

अन्वयः—येन मे पुत्रः निहतः (तस्मिन्) हते ये च तुष्टिं गताः श्वः सूर्ये अस्तम् असम्प्राप्ते तान् अहम् निहनिष्यामि ॥ २९ ॥

व्याख्या—येनेति-येन = युध्यता पुरुषेण । मे = मम । पुत्रः = सुतः । निहतः = घातितः । तस्मिन् हते = विनष्टे । ये च = राजानः । तुष्टिम् = प्रसन्नतां गताः = प्राप्ताः । श्वः = आगामिनि दिवसे । सूर्ये = भास्करे । अस्तम् = अस्ताचलम् । असम्प्राप्ते = ततोऽर्वाक् । तान् = उभयविधान् शत्रून् । अहम् = अर्जुनः । निहनिष्यामि = नाशयिष्यामि । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥२९॥

फिर उसके धनुष के स्पर्श करने पर तीनों लोक डगमगा जायेगें यह बात स्पष्ट है ॥ २८ ॥

दुर्योधन—जयत्रात तो अर्जुन ने क्या प्रतिज्ञा की है ।

भट—जिसने मेरे पुत्र का वध किया है, और उसके वध से जो-जो राजा प्रसन्न हुये हैं उन सभी को मैं कल सूर्यास्त से पूर्व ही मार डालूंगा ॥ २९ ॥

यही—

दुर्योधनः—प्रतिज्ञाव्याघाते कि प्रायश्चित्तम्।

भट—चितारोहणं किल गाण्डीवेन सह।

दुर्योधनः—मातुल! चितारोहणं चितारोहणम्। वत्स दुश्शासन! चितारोहणं चितारोहणम्। वयमपि तावत्प्रतिज्ञाव्याघाते प्रयत्नमनुतिष्ठामः।

धृतराष्ट्रः—पुत्र! किं करिष्यसि।

दुर्योधनः—ननु सर्वाक्षौहिणीसन्दोहेन च्छादयिष्ये जयद्रथम्।

अपि च—

प्रतिज्ञाव्याघाते प्रतिज्ञायाः = शपथस्य व्याघाते = विघ्निते अपूर्त्तावित्यर्थः। किं प्रायश्चित्तम् = कः प्रत्यवायः। चितारोहणम् = चितां विरच्य तत्राधिरोहणम्। प्रतिज्ञाव्याघाते = शपथापूर्त्तौ। सर्वाक्षौहिणीसन्दोहेन = सर्वाक्षौहिणीसैन्यसमूहेन। छादयिष्ये = गोपयिष्ये।

अर्जुनेन जयद्रथवधप्रतिज्ञाते तत्प्रतिज्ञाभङ्गोपायप्रकारं प्रदर्शयति दुर्योधनः—

दुर्योधन—प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने पर प्रायश्चित्त क्या करेंगे।

भट—अपने गाण्डीव धनुष को लेकर चितारोहण।

दुर्योधन—मामा जी! चितारोहण! चितारोहण। पुत्र दुःशासन! चितारोहण चितारोहण। तो अब हम लोगों को भी उनकी प्रतिज्ञापूर्ति में बाधा डालने का प्रयत्न करना चाहिये।

धृतराष्ट्र—पुत्र! तो क्या करोगे?

दुर्योधन—समस्त अक्षौहिणी सेना के समूह से जयद्रथ को छिपा रखेंगे।

और भी—

द्रोणोपदेशेन यथा तथाहं संयोजये व्यूहमभेद्यरूपम्।
खिन्नाशयास्ते सगजा सयोधा अप्राप्तकामा ज्वलनं विशेयुः ॥३०॥

धृतराष्ट्रः —

अपि प्रविष्टं धरणीमप्यारूढं नभःस्थलम्।
सर्वत्रानुगमिष्यन्ति शरास्ते कृष्णचक्षुषः ॥ ३१ ॥

अन्वय.—द्रोणोपदेशेन अहम् तथा अभेद्यरूपं व्यूहं संयोजये यथा ते खिन्नाशयाः सगजाः सयोधाः अप्राप्तकामाः सन्तः ज्वलनं विशेयुः ॥३०॥

व्याख्या—द्रोणेति—द्रोणोपदेशेन द्रोणस्य = स्वाचार्यस्य तन्नामकसेनापतेः उपदेशेन = आदेशेन । अहम् = दुर्योधनः । तथा = तेन प्रकारेण । अभेद्यरूपम् = केनापि भेदनेऽसमर्थम् । व्यूहम् = सैन्यविशेषरचनां । संयोजये = विरचिष्यामि । यथा = येन प्रकारेण । ते = पाण्डवाः । खिन्नाशयाः खिन्नः = प्रशिथिलः आशयः = अभिप्रायः येषां ते तथाभूताः राजानः । सगजाः = हस्तिभिः सहिताः । सयोधाः = ससैन्याः । अप्राप्तकामाः अप्राप्तः = अनधिगतः कामः = मनोऽभिलाषः येषां ते । ज्वलनम् = वह्निम् । विशेयुः = प्रविशेयुः । द्रोणाचार्याज्ञया तथा सैन्यव्यूहं रचयिष्यामि यथा प्रतिज्ञापूर्त्तिस्तु दूरे ते स्वयमेवाग्नौ विनष्टा भवेयुरित्यर्थः ॥ ३० ॥

दुर्योधनोपायं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः तं भर्त्सयति यत् त्वं किमपि कर्त्तुं न प्रभवसि यतः पाण्डवशराणां कृते किमप्यगम्यं नास्ति ते अवश्यमेव स्वप्रतिज्ञां सफलीकरिष्यन्तीत्याह—

अन्वयः—धरणीं प्रविष्टम् अपि नभःस्थलमारूढम् अपि कृष्णचक्षुषः ते शराः सर्वत्र अनुगमिष्यन्ति ॥ ३१ ॥

आचार्य द्रोण जैसा कहेंगे उसके अनुसार हम अभेद्य सैन्य व्यूह की रचना करेंगे। जिससे असफल मनोरथ हुये पाण्डव गण अपने योद्धाओं और हाथियों के साथ अपने आप आग में जल मरेंगे ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्र—चाहे कोई पृथ्वी तल में प्रविष्ट हो जावे, चाहे कोई आकाश

भटः—

क्रूरमेवं नरपतिं नित्यमुद्यतशासनम् ।
यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीवेत्स तत्क्षणम् ।। ३२ ।।

व्याख्या—अपीति–धरणीम् = पृथ्वीम् । प्रविष्टम् = कृतगमनम् । अपि सम्भावनायाम् । नभःस्थलम् = आकाशम् । आरूढम् = उड्डीयमानम् । अपि कृष्णचक्षुषः कृष्णः = वासुदेवः चक्षुः = सम्मतिदायकः यस्य तस्य = अर्जुनस्य । ते = प्रसिद्धाः । शराः = बाणाः । सर्वत्र = सर्वस्मिन् स्थाने अप्रतिहत-रूपेणेति शेषः । अनुगमिष्यन्ति = जयद्रथस्य पृष्ठभागमनुसरिष्यन्ति । जयद्रथ-रक्षणे न कोप्युपायः सफलो भविष्यतीत्यर्थः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥३१॥

इदानीमपरो भटः दुर्योधनस्वभावमालोचयति–यदेतादृशोऽप्रियवादी धृतराष्ट्रः स्वपितृगौरवात् दुर्योधनेन क्षान्तः यदि कश्चिदन्यो एवं वदेन्नाम तदा तस्य मृत्युरवश्यं भावीत्याह—

अन्वयः—नित्यम् उद्यतशासनं नरपतिं यदि एवं कश्चित् अपरः क्रूरम् ब्रूयात् (तदा) स तत्क्षणम् न तु जीवेत् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—क्रूरमिति–नित्यम् = सततम् । उद्यतशासनम् उद्यतम् दण्ड-दानार्थमिति शेषः शासनम् = आदेशो यस्य तम् । नरपतिं भूपालम् दुर्योधनम् । यदि एवम् = धृतराष्ट्र इव कश्चित् = कोऽपि । अपरः = अन्यः पुमान् क्रूरम् = निष्ठुरम् । ब्रूयात् = प्रवदेत् । तदा सतु = पुरुषः । तत्क्षणं = सद्यः एव न तु जीवेत् = आयुः शेषो न भवेत् । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ३२ ॥

मार्ग में उड़ कर चला जाय, किन्तु तब भी कृष्ण की मन्त्रणा के अनुसार चलने वाले अर्जुन के बाण सर्वत्र जयद्रथ का पीछा करेंगे ॥ ३१ ॥

भट—निरन्तर प्रजा को दण्ड देने वाले इस राजा के सामने यदि कोई दूसरा ऐसा क्रूर (अप्रिय) वचन कहता तो वह क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ३२ ॥

(ततः प्रविशति घटोत्कचः !)

घटोत्कचः—एष भोः !

प्रयामि सौभद्रविनाशचोदितः दिदृक्षुरद्यारिमनार्यचेतसम् ।
विचिन्तयंश्चक्रधरस्य शासनं यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो बलिम् ।।२३।।

इदानीं रङ्गभूमौ प्रविष्टो घटोत्कचः स्वोद्देश्यं वर्णयति—

अन्वयः—सौभद्रविनाशचोदितः सन् चक्रधरस्य शासनं विचिन्तयन् अहम् अङ्कुशशङ्कितः गजेन्द्रः बलिं यथा अनार्यचेतसं अरिम् दिदृक्षुः प्रयामि ॥ २३ ॥

व्याख्या—प्रयामीति–सौभद्रविनाशचोदितः सौभद्रस्य = अभिमन्योः विनाशेन चोदितः = प्रेरितः । सन् । चक्रधरस्य = चक्रपाणेः श्रीकृष्णस्य । शासनम् = आदेशम विचिन्तयन् = विचारयन् च । अङ्कुशशङ्कितः अङ्कुशेन = सृणिना शङ्कितः = विचिकित्सितः । गजेन्द्रः = करिवरः । बलिम् = ग्रासम् आहर्त्तुमिति शेषः । यथा = इव । अनार्यचेतसम् अनार्यं = दूषितं चेतः = हृदयं यस्य तम् । अरिम् = शत्रुं । दिदृक्षुः = द्रष्टुमिच्छुः । प्रयामि = गच्छामि । यथा गजः अङ्कुशत्राससन्त्रस्तः बलिमाहर्त्तुं गच्छति तथाहमपि कृष्णस्य तं शासनं विचिन्तयन् शत्रुं द्रष्टुं गच्छामीति भावः । उपमालङ्कारः । वंशस्थवृत्तम ।। २३ ।।

(तदनन्तर घटोत्कच का प्रवेश)

घटोत्कच—हे यह ।

मैं सुभद्रानन्दन अभिमन्यु के वध से प्रेरित होकर तथा श्री कृष्ण के आदेश को मान कर क्रूर चित्त वाले शत्रुओं को देखने की इच्छा से जा रहा हूँ जिस प्रकार अङ्कुश से भयभीत गजराज नलि लेने के लिये जाता है ।। २३ ।।

(अधो अवलोक्य) इदमस्योपस्थानगृहद्वारम् । यावदवतरामि । (अवतीर्य) आत्मनैवात्मानं निवेदयिष्ये । भोः !

हैडिम्बोऽस्मि घटोत्कचो यदुपतेर्वाक्यं गृहीत्वागतो
द्रष्टव्योऽत्र मया गुरुः स्वचरितैर्दोषैर्गतः शत्रुताम् ।

उपस्थानगृहद्वारम् = अभिनन्दनीयं भवनप्रवेशमार्गम् तद्गृहद्वारं यत्र जनाः राजानं दर्शयन्ति ।

दुर्योधनस्याभिनन्दनार्हं भवनद्वारं गत्वा घटोत्कचः स्वयमेवात्मानमागतं निवेदयति—

अन्वयः—अहम् हैडिम्बः घटोत्कचः यदुपतेः वाक्यं गृहीत्वा (इह) आगतः अस्मि । हि मया अत्र स्वचरितैः दोषैः शत्रुतां गतः गुरुः द्रष्टव्यः ।

व्याख्या—हैडिम्बं इति–अहम् हैडिम्बः हिडिम्बायाः अपत्यं पुमान् = हिडिम्बापुत्रः । घटोत्कचः = एतन्नामा । यदुपतेः = श्रीकृष्णस्य । वाक्यम् आदेशम् । गृहीत्वा = शिरस्याधाय आगतः अस्मि । हि मया = घटोत्कचेन अत्र = अस्मिस्थाने स्वचरितैः स्वेन = स्वयमेव आचरितैः = विहितैः । दोषैः = अपराधैः । शत्रुतां शत्रोभवितताम् = वैरित्वम् । गतः = सम्प्राप्तः । गुरुः = धृतराष्ट्रः द्रष्टव्यः = दर्शनीयः ।

(नीचे देख कर) अच्छा तो यही प्रवेश करने वाला सभागृह का द्वार है तो तब तक उतरता हूँ । (उतर कर) और (दूसरे को कहाँ बुलाने जाऊँ) अपने आप ही राजा से अपने आने का वृत्त निवेदन करता हूँ।

मैं हूँ हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच जो श्री कृष्ण का सन्देश लेकर आया हूँ । अब यहाँ मैं उन गुरुजनों का दर्शन करना चाहता हूँ जो अपने आचरणगत पापों से अब शत्रुता को प्राप्त हो रहे हैं।

दुर्योधनः—

एह्येहि प्रविशस्व शत्रुभवनं कौतूहलं मे महत्
धृष्टं श्रावय जनार्दनवचो दुर्योधनोऽहं स्थितः ।। ३४ ।।

घटोत्कचः - (प्रविश्य) अये अयमत्रभवान् धृतराष्ट्रः ! अनार्यं-

घटोत्कचमागतं दृष्ट्वा दुर्योधनस्तस्य प्रवेशमभिनन्दयन् तत्सकाशाज्जिज्ञासते—

अन्वयः—एहि एहि । शत्रुभवनं प्रविशस्व । मे महत् कौतूहलम् । धृष्टं जनार्दनवचः मां श्रावय । अहं दुर्योधनः स्थितः ।। ३४ ।।

व्याख्या—एह्येहीति–एहि एहि = आगच्छ आगच्छ । प्रवेशानुमोदनार्थं द्विरुक्तिः । शत्रुभवनम् = अरेः गृहम् । प्रविशस्वः = प्रवेशं विधेहि । मे = दुर्योधनस्य । महत् = परमम् कौतूहलम् = औत्कण्ठ्यातिशयम् । धृष्टम् = निर्भयं यथा स्यात्तथा । जनार्द्दनवचः जनार्द्दनस्य = श्रीकृष्णस्य वचः = वचनम् । श्रावय = कर्णगोचरीकुरु । अहम् = दुर्योधनः । स्थितः श्रोतुं दत्तावधानः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।। ३४ ।।

अनार्यशतस्य = सदोषशतस्य । उत्पादयिता = जनकः । ननु — निश्चयेन । ललितगम्भीराकृतिविशेषः ललितया = मनोहरेण गम्भीरया आकृत्या = रूपेण विशिष्यते इति तथा ।

धृतराष्ट्रं दृष्ट्वा घटोत्कचः आश्चर्यं प्रकटयति—

दुर्योधन—आओ ! आओ ! अपने शत्रु के भवन में प्रवेश करो मुझे तुम्हारे आने से कुतूहल हो रहा है निर्भय होकर श्री कृष्ण का सन्देश सुनाओ । यह दुर्योधन मैं यहीं पर स्थित हूँ ।। ३४ ।।

घटोत्कच—(प्रवेश कर) अरे ! यही पूजनीय महाराज धृतराष्ट्र हैं जो

शतस्योत्पादयिता । अयं ननु ललितगम्भीराकृतिविशेषः । आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

वृद्धोऽप्यनाततवलीगुरुसंहृतांसः
श्रद्धेयरूप इव पुत्रशतस्य धृत्या ।
मन्ये सुरैस्त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै-
स्त्रासान्निमीलितमुखोऽत्रभवान् हि सृष्टः ।।३५।।

अन्वयः—वृद्धः अपि अनाततवल्ली गुरुसंहृतांसः पुत्रशतस्य धृत्या श्रद्धेयरूपः सुरैः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः त्रासात् निमीलितमुखः अत्र भवान् सृष्ट इति मन्ये ।। ३५ ।।

व्याख्या—वृद्ध इति-वृद्धः = जठरः अपि । अनाततवली अनातता = अविस्तृता वली = चर्मश्लथता यस्य सः । गुरुसंहृतांसः गुरू = विशालौ संहृतौ = संहननौ सुपुष्टौ अंसौ = स्कन्धौ यस्य सः । पुत्रशतस्य पुत्राणां शतं तस्य । धृत्या = धारणेन । श्रद्धेयरूपः = श्रद्धेयः श्रद्धां कर्त्तुं योग्यं रूपं आकृतिविशेषो यस्य । सुरैः = देवैः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः त्रिदिवस्य = स्वर्गस्य रक्षणे = पालने जातशङ्कैः = उत्पन्नसन्देहैः त्रासात् = भयात् ।

अनार्य शतपुत्रों के जनक हैं। ये तो परम गम्भीर और सुन्दरता से युक्त विशिष्ट रूप वाले हैं।

आश्चर्य आश्चर्य

यद्यपि ये वृद्ध हो रहे हैं तथापि इनके चेहरे पर कहीं भी झुर्रियाँ नहीं पड़ी हैं। इनके बाहु मूल बड़े ही सुपुष्ट मांसल और विशाल हैं सौ पुत्रों के पिता होने के कारण इनकी आकृति श्रद्धा के योग्य है, ऐसा मालूम पड़ता है कि देवताओं को स्वर्ग की रक्षा में इनसे भय उत्पन्न हो गया था इसीलिये इन श्रीमान् को अन्धा बना कर उत्पन्न किया (सन्निकट जाकर) पितामह ! अभिवादन करता हूँ मैं घटोत्कच ! (इतना आधा ही कह कर) नहीं नहीं

(उपसृत्य) पितामह ! अभिवादये घटोत्कच—(इत्यर्धोक्ते) न न अयमक्रमः। युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भवन्तमभिवादयन्ति। पश्चाद्घटोत्कचोऽहमभिवादये ।

धृतराष्ट्रः—एह्येहि पुत्र !

न ते प्रियं दुःखमिदं ममापि
यद् भ्रातृनाशाद् व्यथितस्तवात्मा ।

निमीलितमुखः निमीलितम् = मुद्रितं मुखम् = आननम् यस्य सः । नेत्रयो‹रुपलक्षणमिदम् । अत्र भवान् = धृतराष्ट्र। सृष्टः = रचितः इति मन्ये = अनुमिनोमि । वसन्ततिलकावृत्तम् । उत्प्रेक्षालङ्कारः ।। ३५ ।।

अक्रमः = क्रमविपर्ययः ।

घटोत्कचाभिवादनेन तुष्टहृदयो धृतराष्ट्रः स्वकीयान्तरात्मनः दुःखं व्यनक्ति ।

अन्वयः—(हे घटोत्कच) भ्रातृनाशात् तव आत्मा व्यथितः इति यत् तत् ते प्रियं न इदं ममापि दुःखम् । इत्थम् अयम् अर्थः ते न अनुगतः मत्पुत्रदोषात् कृपणीकृतः अस्मि ।। ३६ ।।

व्याख्या—नेति–हे घटोत्कच ! भ्रातृनाशात् भ्रातुः = अभिमन्योः नाशात् = मरणात् । तव = घटोत्कचस्य । आत्मा = अन्तःकरणम् । व्यथितः = दुःखितं इति यत् तत् = तस्मात् कारणात् । ते = तव । न प्रियम् = प्रिय-

---

मुझ से क्रम भङ्ग हो गया मेरे परम पूजनीय युधिष्ठिरादिकों ने आपको प्रणाम कहा हैं तत्पश्चात् मैं घटोत्कच आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥

धृतराष्ट्र—आवो पुत्र आओ ।

जो भाई की मृत्यु से तुम्हारी आत्मा दुःखी हो रही है यह दुःख केवल तुम्हें ही नहीं है अपितु इससे मेरा मन बड़ा दुःखी है । इस प्रकार यह कार्य

इत्थं च ते नानुगतोऽयमर्थो
मत्पुत्रदोषात्कृपणीकृतोऽस्मि ॥ ३६ ॥

घटोत्कचः—अहो कल्याणः खल्वत्रभवान् । कल्याणानां प्रसूतिं पितामहमाह भगवांश्चक्रायुधः ।

धृतराष्ट्रः—(आसनादुत्थाय ।) किमाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुधः ।

घटोत्कचः—न न न । आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो जनार्दनस्य सन्देशः ।

धृतराष्ट्रः—यदाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुधः । (उपविशति ।)

करं किन्तु ममापि = धृतराष्ट्रस्य अपि । इदं पौत्रनिधनम् । दुःखम् = दुःखकरम् । इत्थं च = एवं च । ते = तव । अयमर्थः = एतत्कार्यम् । न अनुमतः नाभिमतः । किन्तु अहमपि मत्पुत्रदोषात् = दुर्योधनापराधात् । कृपणीकृतः = दैन्यतां गतः । अस्मि । उपजातिवृत्तम् ॥ ३६ ॥

कल्याणः = हितानुवक्ता । कल्याणानाम् = मङ्गलानाम् । प्रसूतिं = जनकम् । चक्रायुधः = श्रीकृष्णः । क्षिप्रम् = सत्वरम् । आत्मबलाधानम् =

केवल तुम्हारे लिये ही प्रतिकूल नहीं है । किन्तु मेरे पुत्रों के द्वारा किये गये अपराध के कारण मैं भी दीन बना दिया गया हूँ ॥ ३६ ॥

घटोत्कच—अहो कितने हितकारी हैं आप । इस प्रकार कल्याण परम्परा की बात को जन्म देने वाले आप पितामह को भगवान् चक्रपाणि नें सन्देश दिया है ।

धृतराष्ट्र—(अपने आसन से उठते हुये) भगवान् चक्रधर ने मुझे क्या आज्ञा दी है ।

घटोत्कच—नहीं नहीं नहीं ऐसा न करें । आसन पर बैठे-बैठे ही आप श्रीकृष्ण का सन्देश श्रवण करें ।

धृतराष्ट्र—भगवान् श्री कृष्ण की जैसी आज्ञा (ऐसा कह कर आसन पर बैठ जाते हैं)

घटोत्कचः—पितामह ! श्रूयताम् । हा वत्स अभिमन्यो ! हा वत्स कुरुकुलप्रदीप । हा वत्स यदुकुलप्रवाल ! तव जननीं मातुलं च मामपि परित्यज्य पितामहं द्रष्टुमाशया स्वर्गमभिगतोऽसि । पितामह ! एकपुत्रविनाशादर्जुनस्य तावदीदृशी खल्ववस्था, का पुनर्भवतो भविष्यति । ततः क्षिप्रमिदानीनामात्मबलाधानं कुरुष्व । यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्नं दहेत्प्राणमयं हविरिति ।

धृतराष्ट्रः—

सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेनैतदुदाहृतम् ।
पश्यामीव हि गाण्डीवो सर्वक्षत्रवधे धृतः ॥ ३७ ॥

आत्मबलस्य = स्वसैन्यस्य आधानम् = निरोधम् । प्राणमयम् = प्राणस्वरूपम् । हविः = हवनीयं द्रव्यम् ।

धृतराष्ट्रः प्रकारान्तरेण घटोत्कवचनं समर्थयते—

अन्वयः—सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेन एतद् उदाहृतम् । हि (अहम्) गाण्डीवं सर्वक्षत्रवधे धृतः पश्यामि ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सक्रोधेति–सक्रोधव्यवसायेन क्रोधेन सहितः सक्रोधः व्यवसायो यस्य तेन = सकोपोद्योगयुक्तेन । कृष्णेन = वासुदेवेन । एतद् = पूर्वोक्तं ।

घटोत्कच—तो पितामह सुनिये ! हा वत्स अभिमन्यो ! हाय पुत्र कुरु कुल के दीपक ! हाय पुत्र यदुकुल के अङ्कुर ! तुम अपनी माता विशेष कर मुझ मामा को भी छोड़ कर पितामह के दर्शन की अभिलाषा से स्वर्गलोक में चले गये । हे पितामह ! जब एक पुत्र के विनाश से अर्जुन की यह अवस्था हुई है तब फिर सौ पुत्रों के विनाश हो जाने पर आपकी क्या अवस्था होगी ! इसलिये शीघ्रातिशीघ्र अपनी इस सेना को युद्ध से रोको जिससे पुत्र शोक उत्पन्न हुई यह अग्नि तुम्हारे प्राणमय हवि को न जलावे ।

धृतराष्ट्र—क्रोध के आवेग से आविष्ट हुये श्री कृष्ण ने ऐसा कहा है,

सर्वे—अहो हास्यमभिधानम् ।

घटोत्कचः—किमेतद्धास्यते ।

दुर्योधनः—एतद्धास्यते ।

देवैर्मन्त्रयते सार्धं स कृष्णो जातमत्सरः ।
पार्थेनैकेन यो वेत्ति निहतं राजमण्डलम् ।। ३८ ।।

वचः = वचनम् । उदाहृतम् = सन्देष्टव्यरूपेण कथितम् । हि = यतः गाण्डीवी अर्जुनः । सर्वक्षत्रवधे सर्वेषाम् = समेषाम् क्षत्राणां = क्षत्रियाणाः वधे = विनाशे । घृतः = सन्धारित इति पश्यामि = प्रत्यक्षमवलोकयामि ।।३७।।

दुर्योधनः श्रीकृष्णस्य सन्देशं हास्यास्पदं मन्यमानस्तत्रकारणमुद्भावयति—

अन्वयः—जातमत्सरः स कृष्णः देवैः सार्धं मन्त्रयते । यः एकेन पार्थेन राजमण्डलं निहतं वेत्ति ।। ३८ ।।

व्याख्या—देवैरिति–जातमत्सरः जातः = अभिमन्युवधेनास्माकं विजयात् उत्पन्नः मत्सरः = ईर्ष्या यस्य सः । सः = प्रसिद्धः । कृष्णः = वासुदेवः । देवैः = त्रिदिशैः । सार्धम् = साकम् । मन्त्रयते = मन्त्रणां करोति न त्विहलोकैरित्यर्थः । यः एकेन = केवलेन । पार्थेन = अर्जुनेन । राजमण्डलम् = राजसमूहं । निहतम् = विनष्टं । वेत्ति = जानाति । यथा कश्चित् स्वप्ने

किन्तु मैं तो प्रत्यक्ष रूप में देख रहा हूँ कि अर्जुन समस्त क्षत्रियों के विनाश के लिये निश्चित रूप से तुला हुआ है ।। ३७ ।।

सभी—अहो इस प्रकार का कहना तो सर्वथा हास्यपूर्ण है ।

घटोत्कच—इसमें हास्य की कौन सी बात कही गई ।

दुर्योधन—इसमें हास्यास्पद बात यह है ।

कृष्ण को ईर्ष्या हो रही रही है, इसलिये वह इस लोक की बात न कर

घटोत्कचः—

हससि त्वमहं वक्ता प्रेषितश्चक्रपाणिना ।
श्रावितं पार्थकर्मेदमहो युक्तं तवैव तु ।। ३९ ।।

अपि च, भवतापि श्रोतव्यो जनार्दनसन्देशः ।

देवैः सह वार्त्तालापो विधीयते तथैव स्वप्नवदसम्भावनीयोऽयं कृष्णस्य सन्देश इत्यर्थः ।। ३८ ।।

एतच्छ्रुत्वा घटोत्कचः दुर्योधनं भर्त्सयति—

अन्वयः—त्वं हससि । अहं वक्ता चक्रपाणिनः प्रेषितः इदं पार्थकर्म श्रावितम् अहो इदं तु तवैव युक्तम् ।। ३९ ।।

व्याख्या—हससीति–त्वं = दुर्योधनः । हससि = हास्यं करोषि । अहं वक्ता = घटोत्कचः । चक्रपाणिना = चक्रधरेण कृष्णेनेत्यर्थः । प्रेषितः = प्रेरितः । इदं पार्थकर्म = अर्जुनकृत्यं । श्रावितम् = मद् द्वारा ते कर्णगोचरी कारितम् । अहो = इत्थम् । इदं तु = अयं व्यवहारः तवैव युक्तम् = शोभनीयम् श्रीकृष्णसन्देशं श्रुत्वा नान्यः कश्चिदेतादृशः यो नामोपहसेत् । इदं चोपहासपूर्वकम् निन्दनीयं कर्म तवैव शोभते इत्यर्थः । अनुष्टुव् वृत्तम् ।। ३९ ।।

भवता = दुर्योधनेन । क्षत्रियावमानिन् = क्षत्रियावमानकर्त्तः । मा तावद् = अलं सन्देशदानादित्यर्थः ।

देवताओं से मन्त्रणा कर रहा है जो मात्र एक अर्जुन के द्वारा सारे क्षत्रिय मण्डल को मरा समझ रहा है ।। ३८ ।।

घटोत्कच—चक्रपाणि भगवान् श्री कृष्ण के द्वारा भेजा गया मैं घटोत्कच सन्देश का वक्ता हूँ । जिसने अर्जुन का यह कर्म सुनाया फिर भी तुम हँस रहे हो अहो यह तुम्हारे लिये उचित ही हैं ।। ३९ ।।

और अब आप भी श्री कृष्ण का सन्देश सुनिये ।

दुश्शासनः—मा तावत् भोः ! क्षत्रियावमानिन् !

पृथिव्यां शासनं यस्य धार्यंते सर्वपार्थिवैः ।
सन्देशः श्रोष्यतेऽप्यन्यो न राज्ञस्तस्य सन्निधौ ॥४०॥

घटोत्कचः—कथ दुश्शासनो व्याहरति । अरे दुश्शासन ! अराजा भवतां चक्रायुधः । हं भो !

अथ दुःशासनः घटोत्कचं श्रीकृष्णसन्देशदानाद्विरन्तुमुपक्रमम् तत्र हतु प्रदर्शयति—

अन्वयः—यस्य शासनम् पृथिव्यां सर्वपार्थिवैः धार्यंते तस्य राज्ञः सन्निधौ अन्यः सन्देशः न श्रोष्यते ॥ ४० ॥

व्याख्या—पृथिव्यामिति—यस्य = राज्ञो दुर्योधनस्य । शासनम् = आज्ञा मादेशं वा । पृथिव्याम् = वसुन्धरायाम् । सर्वपार्थिवैः = निखिलराजसमूहैः । धार्यंते = नतशिरसा उह्यते । तस्य राज्ञः = नृपस्य सन्निधौ । अन्यः = सामान्यजनप्रेषितः । सन्देशः = वाचिकम् । न श्रोष्यते = नाकर्ण्यते । अतस्त्वया श्रीकृष्णसन्देशोऽनर्हत्वान्न दातव्य इति भावः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ४० ॥

घटोत्कचः श्रीकृष्णस्य राजराजत्वमुपपादयति—

दुःशासन—अरे ऐसा नहीं हो सकता । हे क्षत्रियों का अपमान करने वाले ।

इस पृथ्वी में जिसकी आज्ञा का पालन समस्त राजागण करते हैं उस राजा के सन्निधान में कोई अन्य जैसा तैसा संदेश नहीं सुना जायगा ॥४०॥

घटोत्कच—क्या यह दुःशासन बोल रहा हैं ? अरे दुःशासन तत्र भवान् श्री कृष्ण तुम्हारी दृष्टि में राजा नहीं हैं यह खेद हैं ।

मुक्ता येन यदा पुरा नृपतयः प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया
येनार्घ्यं नृपमण्डलस्य मिषतो भीष्माग्रहस्ताद्धृतम् ।
श्रीर्यस्याभिरता नियोगसुमुखो श्रीवक्षशय्यागृहे
श्लाघ्यः पार्थिवपार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुधः ॥४१॥

अन्वयः—पुरा यदा येन प्रभ्रष्टमानोच्छ्रयाः नृपतपः मुक्ताः । नृपमण्डलस्य मिषतः येन भीष्माग्रहस्ताद् अर्घ्यं हृतम् । यस्य श्रीवक्षशय्यागृहे नियोगसुमुखी श्रीः अभिरता । पार्थिवपार्थिवः श्लाघ्यः चक्रायुधः तव (मते) राजा कथं न ? ॥ ४१ ॥

व्याख्या—मुक्तेति–पुरा=प्राक्तनसमये । यदा=यर्हि । येन=श्रीकृष्णेन ।
प्रभ्रष्टमानोच्छ्याः प्रभ्रष्टाः मानस्य उच्छ्रयाः=उन्नतयः येषां ते । नृपतयः=
राजानः । मुक्ताः=जरासन्धकारागारान्मोचिताः । नृपमण्डलस्य = राज-
समूहस्य । निषतः = पश्यतः । येन = श्रीकृष्णेन । भीष्माग्रहस्ताव्
= भीष्मकस्य रुक्मिणीपितुः अग्रहस्ताद्=हस्ताग्रभागात् । यद्वा युधिष्ठिर-
राजसूये सर्वराजानां सन्निधौ भीष्महस्तात्=तव पितामहसकाशात् । अर्घ्यम्
=पूजाम् । हृतम्=अर्हणं प्रपेदे इत्यर्थः । यस्य=श्रीकृष्णस्य । श्रीवक्ष-
शय्यागृहे श्रीवक्षस्य शय्यागृहम्=हृदयं तस्मिन् । नियोगसुमुखी नियोगेन=
आज्ञया सुमुखी=सुप्रसन्ना । श्रीः=लक्ष्मीः । अभिरता=संलग्ना विराजते
इति शेषः । पार्थिवपार्थिवः पार्थिवानां पार्थिवः=राजराजेश्वरः । श्लाघ्यः
=सर्वथा प्रशंसास्पदः । चक्रायुधः=श्रीकृष्णः । तव=भवतः मते इति

जिन्होंने जरासन्ध के कारागार से बड़े-बड़े मानी क्षत्रियों को जो अपने
मान के भ्रष्ट हो जाने से सर्वथा दीन हो चुके थे मुक्त किया जिन्होंने
युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में समस्त राजमण्डल के देखते-देखते भीष्म के हाथ
से अर्घ्य ग्रहण किया, जिनके श्रीवक्षरूप शय्या गृह में श्री लक्ष्मी (रुक्मिणी)
अनुरक्त रह कर आज्ञा पालन करने के लिये तत्पर रहती हैं ऐसे राज-

दुर्योधनः—दुश्शासन ! अलं विवादेन ।

राजा वा यदि वाऽराजा बली वा यदि वाऽबली ।
बहुनात्र किमुक्तेन किमाह भवतां प्रभुः ॥ ४२ ॥

घटोत्कचः—अथ किमथ किम् । प्रभुरेव त्रैलोक्यनाथो भगवांश्चक्रायुधः । विशेषतोऽस्माकं प्रभुः । अपि च,

---

शेषः । राजा=चक्रवर्त्ती सम्राट् । कथं न=केन हेतुना नास्ति । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४१ ॥

अथेदानीं दुर्योधनः दुःशासनं विवादाद्विनिवार्य श्रीकृष्णसन्देशं श्रावयितुम् घटोत्कचमनुमोदते—

अन्वयः—यदि (श्रीकृष्णः) राजा वा अराजा वा यदि बली वा अबली वा अत्र बहुना उक्तेन किम् । भवतां प्रभुः किम् आह ॥ ४२ ॥

व्याख्या—राजेति–यदि श्रीकृष्णः राजा वा=नृपो वा । अराजा वा=अनृपो वा । किञ्च यदि बली=बलवान् वा अबली=निर्बलो वा स्यात् अत्र=विषये । बहुना=भृशम् । उक्तेन=युक्तिप्रत्युक्तया विवादेन वा किम्=कः लाभः व्यर्थ एवेति भावः । भवतां प्रभुः=स्वामी श्रीकृष्णः किमाह=किमुक्तवान् इति उच्यतामिति शेषः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ४२ ॥

अथ किम् अथ किम्=हर्षे द्विरुक्तिः ।

राजेश्वर सबके वन्दनीय श्री कृष्ण तुम्हारी दृष्टि में राजा क्यों नहीं है ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—दुःशासन ! अब विवाद बन्द करो ।

चाहे श्री कृष्ण राजा हों अथवा न हों चाहे वे बलवान् हों या निर्बल हों ! इस विवाद से क्या लाभ । बताओ तुम्हारे प्रभु ने क्या कहा है ॥ ४२ ॥

घटोत्कच—और क्या ! और क्या ! भगवान् चक्रधर तीनों लोकों के स्वामी प्रभु ही हैं, उसमें भी विशेष रूप से हम लोगों के ।

अवसितमवगच्छ क्षत्रियाणां विनाशं
नृपशतविनिचित्या लाघवं चास्तु भूमेः ।
न हि तनयविनाशादुद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः
समरशिरसि कश्चित्फाल्गुनस्यातिभारः ।। ४३ ।।

घटोत्कचः श्रीकृष्णंसन्देशं संश्रावयति—

अन्वय—इदानीं क्षत्रियाणां विनाशं अवसितम् । नृपशतविनिचित्या भूमेः लाघवं अस्तु च । तनयविनाशात् उद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः समरशिरसि फाल्गुनस्य कश्चित् अतिभारः न ।। ४३ ।।

व्याख्या—अवसितमिति—इदानीम् = अस्मिन्समये । क्षत्रियाणाम् विनाशम् = निधनम् । अवसितम्=प्रारब्धम् । अवगच्छेति शेषः । नृपशतविनिचित्या नृपाणां राज्ञां शतं = शतसंख्याकम् तस्य विनिचित्या = एकत्रीभवनेन । तेषां विनाशात् भूमेः = पृथिव्याः । लाघवम् = लघुत्वभावम् । अस्तु – भवतु च । तनयविनाशात = पुत्रनिधनात् । उद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः उद्यतानि सन्नद्धानि उग्राणि अस्त्राणि तेभ्यः मुक्तैः = उत्थापितोग्र'स्त्रसम्प्रेरितैः । समर शिरसि = रणभूमौ फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य । कश्चित् = कोऽपि । अतिभारः = अत्यायासः प्रयत्नाधिक्यं वा न भविष्यतोति शेषः । तनये मृतेऽपि अर्जुनः अञ्जसा क्षत्रियान् विजेष्यतीति भावः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४३ ॥

अब इसके अनन्तर सन्देश सुनो—

अब क्षत्रियों का विनाश पूर्ण समझो । असंख्य राजाओं के विनष्ट हो जाने से पृथ्वी का भार हलका ही होने वाला हैं । पुत्र के विनाश से उग्र अस्त्रों वाले रण के प्रारम्भ होने पर अर्जुन के लिये रण क्षेत्र में कोई भी कार्य दुष्कर नहीं होगा अर्थात् क्षण मात्र में अर्जुन असम्भव को भी सम्भव कर दिखावेंगे ॥ ४३ ॥

शकुनिः—

यदि स्याद्वाक्यमात्रेण निर्जितेयं वसुन्धरा ।
वाक्ये वाक्ये तर्हि भवेत्सर्वक्षत्रवधः कृतः ॥ ४४ ॥

घटोत्कचः—शकुनिरेष व्याहरति । भोः शकुने !

अक्षान्विमुञ्च शकुने ! कुरु बाणयोग्य-
मष्टापदं समरकर्मणि युक्तरूपम् ।

अथेदानीं शकुनिः घटोत्कचवाक्यं प्रक्षिपति—

अन्वयः—यदि वाक्यमात्रेण इयं वसुन्धरा विजिता स्यात् तर्हि वाक्ये वाक्ये सर्वक्षत्रवधः कृतः भवेत् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—यदीति–यदि = चेत् । वाक्यमात्रेण = कथनेनैव । इयम् = विद्यमाना वसुन्धरा = वसुधा । निर्जिता = स्वायत्तीकृता । स्यात् = भवेत् । तर्हि वाक्ये वाक्ये प्रति वाक्यम् । मयाऽयं जितः मया अयं जितः = इत्येतावन्मात्रेणेत्यर्थः सर्वक्षत्रवधः सर्वेषां = समेषां क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणां वधः = अन्तः भवेत् = स्यात् । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ४४ ॥

तथावादिनं शकुनिं भर्त्सयति घटोत्कचः—

अन्वयः—हे शकुने अक्षान् विमुञ्च । समरकर्मणि बाणयोग्यम् युक्तरूपम् अष्टापदं कुरु हि अत्र दारहरणं न । राज्यतन्त्रं न च । अत्र प्राणाः पणः उग्रबलैः बाणैः रतिः च ॥ ४५ ॥

शकुनि—यदि मात्र वाणी के कहने से ही पृथ्वी जीती जा सके तो एक-एक वाक्य के कहने से सारे पृथ्वी के राजाओं का भी क्षय हो गया ऐसा समझना चाहिये ॥ ४४ ॥

घटोत्कच—यह शकुनि कह रहा है । हे शकुने !

तुम जूये वाले पाशों को छोड़ दो, बाणघात के अनुरूप क्रीडा फलक

न ह्यत्र दारहरणं न च राज्यतन्त्रं
प्राणाः पणोऽत्र रतिरुग्रबलैश्च बाणैः ॥४५॥

दुर्योधनः—भो भोः ! प्रकृतिं गतः ।

क्षिपसि वदसि रूक्षं लङ्घयित्वा प्रमाणं
न च गणयसि किञ्चिद्व्याहरन्दीर्घहस्तः ।

व्याख्या—अक्षानिति—हे शकुने = दुर्योधनमातुल । अक्षान् = अक्षक्रीडायोग्यपाशान् । विमुञ्च = त्यज । समरकर्मणि = रणभूमौ । युक्तरूपम् = तदनुकूलम् । बाणयोग्यम् = विशिखोचितम् । अष्टापदम् = द्यूतक्रीडाफलकम् । कुरु = विधेहि । अत्र दारहरणम् = दाराणां हरणं न अस्ति । राज्यतन्त्रम् = कपटेन राज्यापहरणमपि न वर्तते इति शेषः । अत्र = अस्मिन् रणभूमौ प्राणाः = जीवनानि । पणः = ग्लहः । उग्रबलैः उग्रम् = अतिकठिनम् बलम् = सामर्थ्यं येषां तैः = बलाधिक्यशालिभिः । बाणैः = विशिखैः । रतिः = अनुरागः च । अतोऽत्र तव न गतिरित्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥४५॥

इदानीं मातुलापमानमसहमानो दुर्योधनः घटोत्कचं घर्षयति—

अन्वयः—प्रमाणं लङ्घयित्वा रूक्षं वदसि क्षिपसि च । दीर्घहस्तः व्याहरन् किञ्चिद् न च गणयसि । यदि तव मातृपक्षोग्ररूपः दर्पः चेत् तदावयमपि राक्षसोग्रस्वभावाः रौद्राः खलु ॥ ४६ ॥

को युद्ध करने योग्य बनाओ। इस युद्ध क्षेत्र में दारापहरण और कपट राजनीति का नामोनिशान भी नहीं है यहाँ तो प्राणों की बाजी लगानी है और तीखे उग्र बल वाले बाणों से रति करनी है ॥ ४५ ॥

दुर्योधन—हे हे। तुम अपने स्वभाव के अनुकूल बात करते हो।

यदि तुम राजकीय नियमों की मर्यादा का उल्लङ्घन करके कठोर वाक्य कहते हो और निन्दा करते हो। इतना ही नहीं विशाल बाहु होने के कारण हम लोगों को कुछ नहीं समझते अतः यदि तुम्हें अपने मातृ-पक्ष के द्वारा

यदि खलु तव दर्पो मातृपक्षोग्ररूपो
वयमपि खलु रौद्रा राक्षसोग्रस्वभावाः ॥ ४६ ॥

घटोत्कच —शान्त शान्तं पापम् । राक्षसेभ्योऽपि भवन्त एव क्रूरतराः ।

कुतः.

व्याख्या— क्षिपसीति–प्रमाणम् = राजकीयनियमम् । लङ्घयित्वा = अतिक्रम्य: रूक्षम् = परुषम् । वदसि = ब्रवीषि । किं च क्षिपसि = निन्दसि । अस्मान् इति शेषः । दीर्घहस्तः दीर्घौ हस्तौ यस्य सः = विशालभुजः । व्याहरन् जल्पन् न च किञ्चित् गणयसि = विचारयसि । यदि = चेत् । तव = घटोत्कचस्य । मातृपक्षोग्ररूपः मातुः = हिडिम्बायाः पक्षेण उग्रं = क्रूरतरं रूपं = स्वरूपम् यस्य सः । तादृशः दर्पः = अभिमानम् । तर्हि वयमपि = कौरवा अपि राक्षसोग्रस्वभावाः = राक्षसतुल्यकर्मशीलाः । रौद्राः = भयङ्कराः । खलु = निश्चयेन । अतोऽस्माकं राजसभायां वाणीसंयमपूर्वकं वचनं वक्तव्यमित्यर्थः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४६ ॥

न केवलं भवन्तो राक्षसास्तेभ्योऽप्यधिकं भवन्तः क्रूरकर्माण इति साधयति घटोत्कचः दुर्योधनादीन्प्रति—

उग्र रूप में होने वाले दर्प (अहङ्कार) का अभिमान है तो यह भी निश्चित रूप से समझ लो कि हम लोग भी राक्षस के समान बड़े उग्र स्वभाव वाले और महाभयङ्कर है ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । आप लोग तो राक्षसों से भी अधिक कठोर स्वभाव वाले हैं ।

क्योंकि—

न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातॄन् दहन्ति निशाचराः
शिरसि न तथा भ्रातुः पत्नीं स्पृशन्ति निशाचराः ।
न च सुतवधं संख्ये कर्तुं स्मरन्ति निशाचरा
विकृतवपुषोऽप्युग्राचारा घृणा न तु वर्जिता ।। ४७ ।।

अन्वयः—निशाचराः सुप्तान् भ्रातॄन् जतुगृहे न दहन्ति । निशाचराः भ्रातुः पत्नीं शिरसि तथा न स्पृशन्ति । निशाचराः संख्ये सुतवधं कर्त्तुं स्मरन्ति अपि न । ते विकृतवपुषः उग्राचारा अपि ते घृणा न तु वर्जिताः ॥ ४७ ॥

व्याख्या—न त्विति—निशाचराः = राक्षसाः । सुप्तान् = निद्रितान् विश्वासोपगतानिति शेषः । भ्रातॄन् = स्वबन्धून् । विशेषत इति शेषः । जतुगृहे = लाक्षागृहे न तु दहन्ति = न तु कदापि भस्मसात् कुर्वन्ति । अयं भावः विश्वासोपगतान् तत्रापि निद्रितान् तत्रापि भ्रातॄन् तत्रापि जतुगृहे भवन्त इव न भस्मसात् कुर्वन्ति । एवमग्रेऽपि बोद्धव्यम् । निशाचराः भ्रातुः पत्नीम् = बन्धुभार्यां शिरसि = मस्तके तथा न तु स्पृशन्ति । यथा भवद्भिः द्रौपदी मस्तकं स्पृष्टम् । किं च निशाचराः । संख्ये = संग्रामे सुतवधम् = पुत्रहननम् । कर्त्तुं = सम्पादयितुं न स्मरन्ति सुतवधस्मरणमपि न कुर्वन्ति हननं तु नितरां दूरतरमिति भावः। विकृतवपुषः=भीषणविग्रहा अपि । उग्राचाराः = जुगुप्सितः-कर्माणः अपि ते घृणा=दया न वर्जिताः = यद्यपि तेषु दया न व्यज्यते किन्तु

राक्षस कभी भी अपने भाइयों को विशेष रूप से लाक्षागृह में विश्वस्त होकर सोने वालों को नहीं जलाते । वे अपनी भ्रातृ पत्नी के शिर का उस प्रकार हाथ से स्पर्श नहीं करते जैसा कि तुम लोगों ने किया है । इतना ही नहीं युद्ध में राक्षसों को स्मरण नहीं होता कि वें अपने पुत्र का बध करें किन्तु तुम लोगों ने वह भी कर दिखाया । वे रूप से बड़े भयङ्कर तथा कर्म से बड़े उग्र होते हैं यह सही है पर दयालु भी होते हैं किन्तु तुम लोग तो बड़े निष्ठुर हो ॥ ४७ ॥

दुर्योधनः—

दूत खलु भवान् प्राप्तो न त्वं युद्धार्थमागतः ।
गृहीत्वा गच्छ सन्देशं न वयं दूतघातका ॥ ४८ ॥

घटोत्कचः—(सरोषम्) किं दूत इति मां प्रधर्षयसि । मा तावद् भोः न दूतोऽहम् ।

तेऽपि दयालवः भवन्तस्तु नितरां निर्दया अतस्तेभ्योऽपि उग्रतरा इति भावः ॥ ४७ ॥ हरिणीवृत्तम्

घटोत्कचकृताक्षेपमसहमानः दुर्योधनस्तस्य कार्यं स्मारयति—

अन्वयः—खलु भवान् दूतः प्राप्तः त्वम् युद्धार्थं न आगतः खलु सन्देशं गृहीत्वा गच्छ । वयं दूतघातकाः न ॥ ४८ ॥

व्याख्या—दूत इति–खलु = निश्चयेन । भवान् = घटोत्कचः । दूतः = सन्देशहारी । प्राप्तः = इहागतः । त्वम् = त्वम् युद्धार्थं = युद्धं कर्त्तुं न आगतः = नात्र सम्प्राप्तः खलु = निश्चयेन । अतः सन्देशम् = वाचिकम् । गृहीत्वा = आदाय । गच्छ = स्वस्थानम् प्रयाहि । वयम् = धार्त्तराष्ट्राः । दूतघातकाः = दूतप्राणापहारिणः न = नहि भवामः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ४८ ॥

प्रधर्षयसि = भीषयसि ।

इदानी घटोत्कचः नाहं दूतः किन्तु दृढपराक्रमी मनस्वी योद्धेत्याह—

दुर्योधन—आप दूत बन कर यहाँ आये हैं युद्ध करने के लिये तो नहीं । अपने सन्देश का उत्तर लेकर यहाँ से चले जाओ हम लोग दूत का वध नहीं करते ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—(क्रोध के साथ) क्या आप मुझे दूत समझ कर अवहेलना करना चाहते हैं । ऐसा मत समझो मैं दूत हूँ ।

अलं वो व्यवसायेन प्रहरध्वं समाहताः ।
ज्याच्छेदाद् दुर्बलो नाहमभिमन्युरिह स्थितः ।। ४९ ।।

महानेष कैशोरकोऽय मे मनोरथः ।

अपि च,

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः ।
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ।। ५० ।।

अन्वयः—वः व्यवसायेन अलम् । समाहताः प्रहरध्वम् । ज्याच्छेदात् दुर्बलः अभिमन्युः इह अहं न स्थितः ।। ४९ ।।

व्याख्या—अलमिति—वः = युष्माकम् । व्यवसायेन = उद्योगेन । अलम् व्यर्थम् । समाहताः = एकत्रीभूताः । यूयं प्रहरध्वम् = प्रहारं कुरुध्वम् । ज्याच्छेदात् ज्यायाः छेदस्तस्मात् = मौर्वीभङ्गात् । दुर्बलः = निर्बलः अभिमन्युः = सौभद्रः न । इह = अस्मिन् स्थाने । अहम् = घटोत्कचः स्थितः = उपस्थितः ॥ ४९ ॥

कैशोरकः किशोर एव कैशोरकः – किशोरावस्थायां जातः ।

अथेदानीं घटोत्कचः स्वकैशोरकमभिलाषं दर्शयितुमनाः स्वमनोरथं वीरमुद्रया प्रदर्शयति—

अन्वयः—दष्टोष्ठः मुष्टिम् उद्यम्य एष घटोत्कचः तिष्ठति कश्चित् पुमान् उत्तिष्ठतु यः यमालयम् गन्तुम् इच्छेत् ॥ ५० ॥

अब और विचार मत कीजिये । आप सब लोग मिल कर मुझ पर प्रहार कीजिए । यह जान लो कि प्रत्यञ्चा के कट जाने से मैं सर्वथा दुर्बल अभिमन्यु नही ॥ ४९ ॥

मेरा यह अत्यन्त प्रबल किशोरावस्था का यह मनोरथ है ।

और भी—

यह घटोत्कच दांतों से अपना ओठ काट कर मुट्ठी बांधे खड़ा है

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

धृतराष्ट्रः—पौत्र घटोत्कच! मर्षयतु मर्षयतु भवान्। मद्वचनावगन्ता भव।

घटोत्कचः—भवतु भवतु। पितामहस्य वचनाद् दूतोऽहमस्मि। तथापि हि न शक्नोमि रोषं धारयितुम्। किमिति विज्ञाप्यः।

दुर्योधन—आः कस्य विज्ञाप्यम्। मद्वचनादेवं स वक्तव्यः।

व्याख्या—दष्टौष्ठ इति–दष्टौष्ठः दष्टौ ओष्ठौ = दंशितदन्तच्छदौ यस्य सः। एषः = भवतां पुरो वर्त्तमानः घटोत्कचः = हैडिम्बेयः। मुष्टिम् उद्यम्य = उत्थाप्य तिष्ठति = वर्त्तते। कश्चित् = कोपि। पुमान् = पुरुषः उत्तिष्ठतु = आगच्छतु। यश्च यमालयम् = यमपुरं। गन्तुम् = प्रयातुम्। इच्छेत् = अभिलषेत्। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ५० ॥

मद्वचनावगन्ता मद्वचने = धृतराष्ट्रवचसि अवगन्ता = दत्तावधानो भव।

अथेदानीं दुर्योधनः घटोत्कचं सन्दिशति यद् मद्वचनात्कृष्णः एवं वक्तव्यः।

जो यमालय जाने की इच्छा कर रहा हो वह सभास्थल से उठ कर सामने आ जाय ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र—पौत्र घटोत्कच! क्षमा करो, क्षमा करो। और मेरी बात पर ध्यान दो।

घटोत्कच—अच्छा अच्छा! पितामह के वचनानुसार मैं दूत ही हूँ। फिर भी मैं अपने क्रोधको धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। अच्छा! मुझे आप लोगों द्वारा श्री कृष्ण से क्या प्रार्थना करनी है?

दुर्योधन—'क्यों किससे कैसी प्रार्थना' मेरे वचन से उनसे ऐसा कहना—

किं व्यर्थं बहु भाषसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वयं
कोपान्नार्हसि किंचिदेव वचनं युद्धं यदा दास्यसि ।
निर्यास्येष निरन्तरं नृपशतच्छत्रावलीभिर्वृत-
स्तिष्ठ त्वं सह पाण्डवैः प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैः ॥५१॥

घटोत्कचः—पितामह ! एष गच्छामि ।

अन्वयः—हे श्रीकृष्ण ! व्यर्थं किं बहु भाषसे । वयं ते पारुष्यसाध्या न । खलु कोपात् एव किञ्चिद् वचनं (वक्तुं) न अर्हसि । यदा युद्धं दास्यसि (तदा) एष (अहम्) निरन्तरं नृपशतच्छत्रा वलीभिः वृतः निर्यामि एव । त्वं पाण्डवैः सह तिष्ठ । ते प्रतिवचः सायकैः दास्यामि ॥ ५१ ॥

व्याख्या—किमिति—व्यर्थम् किम् = किमर्थम् । बहुभाषसे = भृशं जल्पसि । वयं = कौरवाः । ते = तव । पारुष्यसाध्याः = कठोरवचनेन वशीभूताः । न भवामः खलु = निश्चयेन कोपात् = क्रोधात् एव । किञ्चित् = किमपि । वचनम् = वाक्यम् । वक्तुमिति शेषः । नार्हसि = न योग्यो भवसि । यदा युद्धम् दास्यासि = करिष्यसि तदा एष अहम् = दुर्योधनः । निरन्तरम् = सततम् । नृपशतच्छत्रावलीभिः नृपशतान्येव छत्रावल्यः ताभिः = वृतः परिवृतः । निर्यामि = निर्गच्छामि । त्वं = कृष्णः । पाण्डवैः = युधिष्ठिरादिभिः सह = साकम् । तिष्ठ = स्थितिं विधेहि । ते = तव । प्रतिवचः = प्रत्युत्तरं सायकैः = विशिखैः । दास्यामि = प्रत्यर्पयिष्यामि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

क्यों व्यर्थ में बहुत सी बातें कहते हो ? हम लोग तुम्हारे परुष वचनों से डरने वाले नहीं हैं क्रोध से बोल कर तुम हम लोगों का कुछ नहीं कर सकते । जब युद्ध करना चाहोगे तब मैं सैकड़ों राजाओं की छत्रावली से घिरा हुआ युद्ध स्थल में चलूंगा । उस समयमैं तुम्हारे इन वचनों का उत्तर बाणों से दूंगा ॥ ५१ ॥

घटोत्कच—अच्छा पितामह । यह मैं चला ।

धृतराष्ट्रः—पौत्र ! गच्छ, गच्छ ।

घटोत्कचः—भो भो राजानः । श्रूयतां जनार्दनस्य पश्चिमः सन्देशः ।

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्काङ्क्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।

पश्चिमः = अन्तिमः !

घटोत्कचः श्रीकृष्णस्यान्तिमम् सन्देशम् सर्वान् राज्ञः प्रति श्रावयति—

अन्वय—धर्मं समाचर । स्वजनव्यपेक्षां कुरु । इह मनसि यत् काङ्क्षितं तत्सर्वम् अनुतिष्ठ जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी कृतान्तः सूर्यांशुभिः समं वः उपेष्यति इति ॥ ५२ ॥

व्याख्या—धर्ममिति—धर्मम् = सुकृति । पुण्यं वा समाचर = विधेहि । स्वजनव्यपेक्षां स्वजनानां = स्वबन्धूनां व्यपेक्षाम् = अभिलषितदर्शनालापषादिकं कुरु = सम्पादय । मनसि = हृदये । इह = संसारे यत् काङ्क्षितम् मनोऽभिलषितम् । तत्सर्वम् = सकलम् । अनुतिष्ठ = विधेहि । जात्योपदेशः जात्यः = आभिजात्यः हितकर इत्यर्थः उपदेशो = शिक्षणं यस्य सः । इव = यथा । पाण्डवरूपधारी पाण्डवस्य रूपं धरतीति = अर्जुनस्वरूपं धृत्वा कृतान्तः = यमः कालो वा । वः = युष्माकं । सूर्यांशुभिः सूर्यस्य अंशवः तैः = सूर्यकिरणैः । समम् = साकम् प्रान्तरेव । उपेष्यति = आगमिष्यति । यदान्तिमे क्षणे

धृतराष्ट्र—पौत्र ! जाओ जाओ ।

घटोत्कच—हे हे राजाओं ! अब जनार्दन श्री कृष्ण का अन्तिम सन्देश सुन लो ।

श्री कृष्ण ने कहा है कि !

धर्म का आचरण करो। अपने सगे सम्बन्धियों से मिलजुल लो। मन में जो-जो अभिलाषायें हों उन सभी को शीघ्र पूरी कर लो। क्योंकि यह

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभिः सममुपैष्यति वः कृतान्तः ॥ २५ ॥ इति ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

दूतघटोत्कचं नामोत्सृष्टिकाङ्कं समाप्तम् ॥

* * *

कर्त्तव्यम् तत् शीघ्रं कुरुध्वम् । कतिपयैरे वाहोभिः वः कालः समुपस्थित इति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५२ ॥

सांकृत्यायनेन डॉ० गङ्गासागररायशर्मणा कृता दूतघटोत्कच-उत्सृष्टिकाङ्कस्य गङ्गानाम्नी टीका समाप्ता

* * *

काल हितोपदेष्टा की तरह पाण्डवों का रूप धारण कर सूर्य की किरणों के साथ ही तुम्हारे पास जाने वाला है ॥ ५२ ॥

(सब चले जाते हैं)

॥ दूतघटोत्कच नामक उत्सृष्टिकाङ्क समाप्त ॥

* * *

परिशिष्टम्—१

नाटकीयपारिभाषिकशब्दविमर्शः

(१) नान्दी—

आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति सञ्ज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देवद्विजनृपादि की स्तुति होती है । यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मंगलवाची शब्दों से संयुक्त होती है ।

(२) प्रस्तावना-आमुख—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः सलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तुतावनाऽपि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संवद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है । उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं ।

(३) सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाटयस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाटयोपकरण—वस्तु नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं। सूत्रधार

इनका उल्लेख करता है। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित-करने पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति-सूत्रधार कहा जाता है।

(४) प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

(५) नेपथ्य—

कुशीलकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

(६) विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने के लिये प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर सङ्कीर्ण होता है।

(७) प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अंकों के बीच में होता है तथा अन्य विशेषतायें विष्कम्भक की होती है।

(८) स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं ।

(९) प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है ।

(१०) विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है । उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं ।

(११) नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह स्मृति-प्रज्ञा कला-मान-युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र–दृष्टि एवं धार्मिक होता है ।

(१२) नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है । यथासम्भव वह नायक के गुणों से युक्त होती है ।

(१३) अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दु सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ को समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

(१४) नाटक—

नाटक की परिभाषा देते हुये बताया गया है कि जिसमें वीर अथवा शृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हों, अन्य रस गौण रूप में वर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हों, नाटक कहा जाता है।

वीर शृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

तथा—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्का परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्बहणेद्भुतः ॥

—सा० द०, ६।६–१०

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक का निम्नलिखित लक्षण है—

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्ताऽनुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥

यस्मात्स्वभावं सन्त्यज्य साङ्गोपाङ्गव्यतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥"

—ना० शा०, १९।१४७

(१५) काञ्चुकीय—

काञ्चुकीय के लक्षण में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः काञ्चुकीयेत्यभिधीयते ॥"

काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता । वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविधगुणों से युक्त होता है । कामादि दोषों से वर्जित तथा सभी कार्यों के विषयों में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है । मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

"ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥"

* * *

भास की प्रशस्तियां

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्टः हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिश्चन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
(कालिदासः मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाटचदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाटचशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका)

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाङ्काः

अक्षान्विमुच्च ४५
अद्याभिमन्यु ५
अद्यैव दास्यामि १०
अपि प्रविष्टं ३१
अलं वो व्यव ४९
अवसितमवगच्छ ४३
एका कुलेऽस्मिन् १६
कामं न तस्य १४
किं व्यर्थो ६१
कृष्णस्याष्टभुजो ८
केनाभिमन्यु ६
केनैतत् ४
क्रूरमेवं नरपतिम् ३२
क्षिपसि वदसि ४६
चितां न तावत् ९
जयद्रथेनाद्य १३
तस्यैव २७
त्वया हि यत् २४
दष्टोष्ठो मुष्टि ५०
दूतः खलु भवान् ४८
देवैर्मन्त्रयते ३८

श्लोकाङ्काः

द्रोणोपदेशेन ३०
धर्मं समाचर ५३
न तु जतुगृहे ५२
न ते प्रियं ३६
नारायणस्त्रिभुवनै १
पृथिव्यां शासनं ४०
प्रतिज्ञासार २८
प्रयामि सौभद्र ३३
बहूनां समुपेतानां १७
बालेनैकेन २१
भर्तुस्ते नूनं ७
भूमिकम्प २५
मुक्ता येन यदा ४१
यदि स्यात् वाक्य ४४
यतोऽभिमन्यु ११
यान्त्यर्जुन २
येन मे निहितः २९
योधस्यन्दन ३
राजा वा यदि ४२
रुद्धाः पाण्डु १२
वृद्धं भीष्मम् १८

श्लोकाङ्काः
वृद्धोऽप्यनातत ३५
शक्रं पृच्छ पुरा २२
शक्रापनीत २३
सक्रोधव्यव ३७
सर्वेषां नः पश्यताम् २०

श्लोकाङ्काः
सुव्यक्तं निहतम् २९
सौभद्रे निहते १५
स्वच्छन्दमृत्यु १९
हसति त्वमहं ३९
हैडिम्बोऽस्मि ३४

◆

डा० गंगासागर राय की कृतियां

मौलिक ग्रन्थ:—१. महाकवि भवभूति (स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, म० म० मिराशी पं० बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा तदुत्तर (१९६५) एतद्विषयक समस्त ग्रन्थों द्वारा उद्धृत) । २. वैदिक आख्यान । ३. पौराणिक आख्यान । ४. अलङ्कारपीयूष । 5. Vaedic Sakhas.

हिन्दी अनुवाद सहित:—१. काव्यमीमांसा । २. बालरामायण (डॉ० रामकरण शर्मा, बलदेव उपाध्याय, पं० बदरीनाथ शुक्ल, पं० पट्टाभिराम शास्त्री प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रशंसित तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत) । ३. शाङ्खायन ब्राह्मण (डॉ० आर० एन० दाण्डेकर, पं० बलदेव उपाध्याय, पं० पट्टाभिराम शास्त्री प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत) । ४. वामनपुराण (संयुक्त रूप से) । ५. शाङ्खायन गृह्यसूत्र (भाष्य सहित) उ० प्र० सरकार द्वारा विशिष्ट पुरस्कार से पुरष्कृत । ६. शाङ्खायन श्रौतसूत्र (भाष्य सहित) । ७. याज्ञवल्क्य स्मृति टीका सहित ८. ध्वन्यालोक ।

संस्कृत हिन्दी टीका सहित:—१. नीतिशतक (अंग्रेजी अनुवाद भी), २. चन्द्रालोक, ३. अविमारक नाटक, ४. अभिषेक नाटक, ५. बाल चरित, ६. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, ७. प्रतिमा, ८. स्वप्नवासवदत्ता, ९. वेणीसंहार, १०. मुद्राराक्षस, ११. कर्पूरमञ्जरी, १२. बाल-भारत, १३. हरविजय (प्रथम सर्ग), १४. पञ्चतन्त्र (अपरीक्षित कारक), १५. रघुवंश (त्रयोदश चतुर्दश सर्ग), १६. मृच्छकटिक, १७. चारुदत्त, १८. मध्यम व्यायोग, १९. कर्णभार, २०. दूतघटोत्कचम्, २१. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, २२. ऊरुभङ्ग, २३. दूतवाक्यम् ।

अंग्रेजी अनुवाद—१. कूर्मपुराण (संयुक्त रूप से), २. नीति शतक ।

सम्पादन:—१. बालरामायण । २. स्कन्दपुराणीय मानसखण्ड । ३. अष्टाविंशत्युपनिषद । ४. वसिष्ठ लिङ्ग पुराण । ५. श्लोक वार्तिक ।

पत्रिकाओं का सम्पादन:—पुराणम् (सह-सम्पादक), २. हिन्दुत्व (सहायक सम्पादक), ३. विद्यामन्दिर पत्रिका, ४. ध्रुपद वार्षिकी (सह सम्पादक) ।

शोधपत्र—एक सौ के लगभग शोधपत्र ।

।। श्रीः ।।

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९३

महाकविभासविरचितम्

कर्णभारम्

'गंगा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च:

डा० गंगासागररायः

सर्वभारतीय कांशीराज न्यासस्थ

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

चौखम्भा संस्कृत भवन

वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्भा संस्कृत भवन
संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)
(बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : +९१-५४२-२४२०४१४ (दु.)
+९१-५४२-२३३४७५५ (नि.)

© *चौखम्भा संस्कृत भवन*
सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०६४
मूल्य : रु. २५-००

वितरक
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)
(बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)

मुद्रक : जौहरी प्रोसेस, वाराणसी

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
293

KARNABHĀRAM

OF
BHĀSA

*[With 'Gangā' Sanskrit and Hindi Commentaries,
Introduction and Appendices]*

Edited and Commented by
DR. GANGA SAGAR RAI, M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
VARANASI-221001 (INDIA)

Publishers

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Sanskrit, Ayurveda & Indological Publishers & Distributors
Post Box No. 1160
Chowk, (Opp. Chitra Cinema)
(Bank of Baroda Building)
Varanasi-221001 (India)
Telephone : +91-542-2420414 (S)
+91-542-2334755 (R)

Second Edition : 2007

© *Chaukhambha Sanskrit Bhawan*
All Rights Reserved

Distributors

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
Chowk, (Opp. Chitra Cinema)
Varanasi-221001 (India)

Printed at : Jauhari Process, Varanasi

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद शृङ्खला में 'कर्णभारम्' नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति-ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता है वे प्रकाशन के साथ ही सम्पूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणि मिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अघमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। टीका में जिन पूर्ववर्ती टीकाकारों से सहायता मिली है उनके प्रति भी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भ संस्कृत संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरञ्जीवि श्री राजेन्द्र जी ने जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी

रङ्गभरी एकादशी २०५४ वि० **गङ्गासागर राय**

१ मार्च, १९९८ ई०

भास की प्रशस्तियां

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

(बाणभट्टः हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी १५)

(४) भावम्मि जलणमित्तो कन्तीदेवे अ जस्व रहुआरे ।
सो बन्धवे वन्धम्मि हरियन्दे आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिश्चन्द्रे च आनन्दे ॥]

(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितबशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।

(कालिदासः मालविकाविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्तो शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।

(नाटचदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।

(नाटचशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका)

पात्राणि

कर्णः—अङ्गेश्वरः कौरवसेनापतिः ।

शल्यः—शल्यराजः कर्णसूतः ।

भटः—सूचकः ।

शक्रः—ब्राह्मणरूपधारीन्द्रः ।

देवदूतः—इन्द्रसन्देशवाहकः ।

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक प्रसारित की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक सी-मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत–साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियां

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्यमणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य के तञ्जौर पुस्तका-

लय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाटक साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्न लिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥

—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिन्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्यतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैला कर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारि अन्दे अ अवन्दो।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविता कामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

—प्रसन्नराघव १।२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तः मुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः...... ....॥"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक

के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गार प्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्तो पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है।

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का विष्णु धर्म नाटक अभी तक अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के अन्तराल में समाविष्ट हुई तथा केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूव ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवनवृत्त

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। पठन-पाठन की तत्कालीन प्रचलित परिपाटी के अनुसार भास का ब्राह्मण होना भी स्वतः सिद्ध है। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान उन्होंने बताया है। भासवर्णा श्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुगा-

मिनी पत्नी के पति एवं पितृभक्त सन्तान के प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' के वे अनुयायी थे।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दतं च तथैव तिष्ठति॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।'

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमनाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धा सर्वयत्नाः फलन्ति॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—हमारे राजा ससागर उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें किसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर बिन्ध्य पर्वत दो कर्ण-कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में बिन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज

संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के

नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरञ्जक इन नाटकों का क्या ? सौमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त ही हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के कारणों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने विदेशी आक्रमणकारियों को देवनागरी लिपि में लिखित सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग दिया जिसके परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल की चपेट में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ सुगम नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूत घटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्ण

भार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पत्र लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ से अभिषेक तथा प्रविमा नाटक की हस्त प्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति यहीं प्राप्त हो सकी।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरिण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तेकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्न लिखित हैं—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायण
२. अविमारक
३. स्वप्नवासवदत्ता
४. प्रतिमा नाटक
५. मध्यम व्यायोग
६. पञ्चरात्र
७. अभिषेक
८. दूत वाक्य
९. दूत घटोत्कच
१०. कर्णभार
११. ऊरुभङ्ग
१२. बाल चरित
१३. चारुदत्त

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया।

बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाशित भास के तेरह नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—उदयनवेन्दुसवर्णा।
—स्वप्नवासवदत्ता।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो····प्रतिज्ञायो०।

इत्यादि।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावता' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत

वाक्य में राजसिंह राजा के सागर पर्यन्त एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसके हिमालय और विन्ध्य दो कुण्डल हैं।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६–१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा में नियमों का भास के नाटकों में उल्लंन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता हैं।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाटय शास्त्र में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाटच निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाटयनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—जब महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त वर होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों!) का प्रयोग कई स्थानों पर हैं।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों या वाक्यों को खण्डित या पूर्ण किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्र नामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय।' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।"—बाल १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"।—पञ्चरात्र १।२५

"हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—कर्ण० १७

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाना है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक हीं व्यक्ति रहा होगा।

नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० वी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटो, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज,

डा० बार्नेट–ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डॉ० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(अ) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल से प्राप्त होना।

(व) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(स) रीति ग्रन्थों में 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(द) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्न-वासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इसी आधार पर चाक्यारों की रचना प्रामाणिक सिद्ध होती है।

चाक्यारों की रचना की अप्रामाणिकता ?

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(अ) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता असिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल पुथल भी उसके अभाव

का कारण हो सकता है। इसके साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ब) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(स) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हो एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

कुछ लोगों का मत है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राज सभाओं में रहता तो अपनी कृतियों अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्व

घोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्र वर्मन् आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटको की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में उल्लिखित मत प्रामाणिक रूप से लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेचैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक, चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भास रचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है। विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय

संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में भी मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध

में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास के नाटकं को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तः साक्ष्य एवं वाह्य साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन् चतुर्थ शतक के वीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं। इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मत की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हों तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक

संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं—अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है।

भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौंच, कैलाश आदि का वर्णन मुख्यतः किया। अन्य स्थानों का वर्णन प्रकरणोपात्त है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[१] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज-व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

---

[१] ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ६ यही मत डा० पुसालकर का भी है। द्र० भास : ए० स्टडी।

कर्णभार नाटक का संक्षिप्त कथानक

नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है तथा वह मङ्गल कामना करते हुए कहता है जिस विष्णु भगवान् के नृसिह स्वरूप को देख कर नर–नारी, राक्षस, देवगण तथा पाताल लोक आश्चर्य चकित हो गया, और जिन्होंने अपने वज्र के समान कठोर नख से दैत्यराज हिरण्यकशिपु का हृदय विदीर्ण किया, दानवों की सेना को परास्त करने वाले ऐसे विष्णु भगवान् आप लोगों का कल्याण करें। उसी समय नेपथ्य में शब्द सुनायी पड़ता है कि महाराज अङ्गदेशाधिपति कर्ण से निवेदन करो। नेपथ्य के शब्द को सुन कर सूत्रधार कहता है कि अच्छा! समझा कि दुर्योधन की आज्ञा से घबड़ाया हुआ हाथ जोड़े हुए परिचारक कर्ण को, भयङ्कर युद्ध होने की सूचना दे रहा है। सूत्रधार चला जाता है। इसके अनन्तर भट आता है जो अङ्गदेशाधिपति कर्ण से यह निवेदन करना चाहता है कि युद्ध काल उपस्थित हो गया है तथा आज अर्जुन के ध्वज के सम्मुख सिह के समान राजागण जो हाथी घोड़े रथों पर आरूढ़ होकर सिंहनाद कर रहे हैं और उनके युद्ध–आह्वान को सुन कर भी युद्ध के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। उसी समय कर्ण उन्हें दिखायी देते हैं। उन्हें देख कर कहता है कि अङ्गराज कर्ण युद्ध वेष को धारण कर शल्यराज सारथि के साथ अपने भवन से निकल कर युद्ध स्थल की ओर जा रहे हैं। परन्तु कर्ण अभूतपूर्व मानसिक सन्ताप में हैं, कर्ण को सन्तप्त देख कर भट कहता है कि अत्यन्त प्रखर पराक्रमी, युद्ध स्थल में सर्व प्रमुख योद्धा, बलशाली कर्ण बुद्धिमान् होकर भी इस समय शोक से ऐसे परितप्त हो रहे हैं जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक प्रखर किरणों वाला सूर्य मेघमाला से आच्छादित हो जाय। वह चला जाता है।

कर्ण अपने सारथि शल्य के साथ आते हैं। कर्ण कहते हैं कि ऐसा कभी नहीं हुआ है कि मेरे शरसन्धान के लक्ष्य से राजे–महाराजे जीवित बच जांय, मैं युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को पा जाऊँ तो कौरवों का अभीष्ट पूर्ण कर दूँगा, वह शल्य (सारथि) से अर्जुन के सामने रथ ले चलने को कहते हैं।

फिर वह मन में सोचते हैं कि युद्ध के समय में कायरता भाव मेरे मन में कैसे उत्पन्न हो गया ? मेरे अतुल शक्ति की तुलना क्रुद्ध यमराज से हो सकती है और जो युद्ध स्थल में दोनों तरफ शस्त्र प्रहार के द्वारा अनेक योद्धाओं, घोड़ों, रथों और हाथियों के टुकड़े–टुकड़े कर डालता था, वही आज युद्ध का समय उपस्थित होने पर क्लीवता का भाव आ रहा है। वह पश्चाताप करते हुए कहता है कि महान् कष्ट की बात है कि मैं पहले कुन्ती से उत्पन्न हुआ और संसार में 'राधेय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, युधिष्ठिरादि तो मेरे छोटे भाई हो हैं। आज चिर–प्रतीक्षित युद्ध का समय आ गया परन्तु मेरी अस्त्र–शस्त्र शिक्षा इस समय व्यर्थ सिद्ध हो रही है और माता कुन्ती ने भी मना किया है कि अपने अनुज युधिष्ठिरादि पर अस्त्र न चलाना।

इस प्रकार विचार करते हुए कर्ण अपने सारथि शल्यराज से अपने अस्त्रों की प्राप्ति का वर्णन करता है। वह कहता है कि पहले मैं अस्त्र विद्या सीखने के उद्देश्य से विद्युत् लता के समान पीली और लम्बी जटा वाले तेज से देदीप्यमान परशु को धारण करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ भृगुवंश के ध्वज और क्षत्रियों के विनाशक परशुराम के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। तब परशुराम जी आशीर्वाद देकर मुझ से पूछा 'आप कौन है ?' तथा किस प्रयोजन से यहां आये हैं ? तब मैंने कहा कि भगवन् समस्त अस्त्र–विद्या सीखने के निमित्त मैं आपके पास आया हूं। यह सुन कर मुनिश्रेष्ठ परशुराम ने कहा कि मैं केवल ब्राह्मणों को ही अस्त्र–विद्या का उपदेश देता हूँ, क्षत्रियों को नहीं। यह सुन कर मैंने कह दिया कि मैं क्षत्रिय नहीं हूँ और उन्होंने मुझे उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय बीतने पर एक बार फल, मूल, समिधा, कुश तथा कुसुम लाने के लिए जाते समय गुरुजी के साथ मैं जङ्गल में गया था। गुरुजी जङ्गल में परिभ्रमण करने से श्रान्त हो गये और मेरी गोद में ही सिर रख कर सो गये। दैव–दुर्योग से मेरे अभाग्यवश वज्रमुख नामक कीड़े ने मेरे जाघों में काटना प्रारम्भ किया परन्तु उस असह्य वेदना को मैं इसलिए सहन कर रहा था कि गुरुदेव की निद्रा भंग न होने पावे। जाघों में कीड़ा के काटने से रक्त बहने लगा और

उस रुधिर के स्पर्श से गुरुदेव जाग उठे। जागते ही उनकी क्रोधाग्नि धधक उठी और उन्होंने मुझे शाप दिया कि 'युद्धकाल में तुम्हारे अस्त्र विफल हो जांय।' अब उनके अस्त्रों की मैं परीक्षा करूँगा। कर्ण इस प्रकार शल्य से कह कर अपने अस्त्रों का परीक्षण करता है परन्तु अस्त्र भी नि:शक्त दिखाई पड़ते हैं और वे अपना प्रभाव नही दिखाते तथा उसके घोड़े भी दीन भावापन्न होकर बार-बार ठोकर खा रहे हैं और सप्तच्छद के समान मदधारा की गन्ध से युक्त मस्त गजराज भी दीन होकर मानो रणस्थल से लौटने का संकेत कर रहे हैं। कर्ण की इस प्रकार की बातों को सुन कर तथा अश्वों एवं गजों के दीन भाव को देख कर शल्य पश्चाताप करते हैं परन्तु कर्ण उन्हें समझाता है कि इस समय विषाद करना व्यर्थ है क्योंकि 'संग्राम' में मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति तथा विजयी होने पर यश मिलता है, अत: लोक में दोनों स्थितियां ही अधिक सम्माननीय मानी जाती हैं इसलिए युद्ध करने में निष्फलता नहीं है और युद्ध की अभिलाषा रखने वाले गरुड़ के समान वेगशाली काबुली जाति के ये घोड़े जिनकी रक्षा मुझे करनी चाहिए ये मेरी रक्षा करेंगे और मैं पाण्डवों की कठिन रण सीमा में प्रवेश करके अत्यन्त प्रसिद्ध गुणों वाले युधिष्ठिर को बाँध लूंगा तथा अपने तीव्र एवं प्रखर बाणों से अर्जुन को मार दूँगा। ऐसा कह कर कर्ण युद्ध के लिए शल्यराज के साथ रथारूढ़ होता है तथा कर्ण शल्य से कहता है कि अर्जुन के पास मेरे रथ को ले चलो। उसी समय जोर से आवाज होती है कि हे कर्ण मैं बहुत बड़ी भिक्षा मांगता हूँ। कर्ण उस शब्द को सुन कर कहता है कि यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं अपितु कोई ऐश्वर्यवान् व्यक्ति हैं जिसके गम्भीर घोष के प्रभाव से मेरे चलते हुए घोड़े कान खड़े करके उसी ओर देखते हुए एकाएक रुक गये मानों चित्र लिखित हों और उनका अपने शरीर पर कुछ वश नहीं रह गया हो। ऐसा कह कर वह ब्राह्मण को बुलाता है। इन्द्र वेषधारी ब्राह्मण के समीप आने पर कर्ण उन्हें सादर प्रणाम करता है। कर्ण के प्रणाम को सुन कर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ठिठक जाते हैं और सोचते हैं कि मुझे क्या आशीर्वाद देना चाहिए क्योंकि यदि दीर्घायु हो ऐसा कहता हूँ तो चिरञ्जीवी होगा यदि नहीं कहता हूँ तो मुझे मूर्ख समझेगा फिर सोच कर कहते हैं कि हे कर्ण सूर्य,

चन्द्र, हिमवान् एवं सागर की भाँति तुम्हारा यश हो। कर्ण इस आशीर्वाद को सुन कर कहता है कि भगवन् आपने 'दीर्घायु' होने का वरदान क्यों नहीं दिया अथवा यही आशीर्वाद अति सुन्दर है क्योंकि केवल धर्म ही मनुष्य के द्वारा यत्नपूर्वक साध्य है। राज्यलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा के समान चञ्चल है, इसलिए प्रजा का पालन करने वाला मृत्यूपरान्त केवल यश से ही जीवित रहता है। आप अपना प्रयोजन बताइये मैं आपको क्या दूँ।

इन्द्र ने कहा है कि मैं बहुत बड़ी भिक्षा चाहता हूँ। कर्ण उन्हें आश्वस्त करता है कि आपको बड़ी भिक्षा दी जायेगी, यदि आपको पसन्द हो तो स्वर्ण शृङ्ग से मण्डित, स्वस्थ तथा सुन्दर अमृत के समान मधुर दुग्ध की धारा बहाने वाली सन्तुष्ट बछड़ों वाली एक हजार गाएँ दे सकता हूँ।

इन्द्र कहते हैं कि एक हजार गायों से कुछ काल तक ही दूध पीऊँगा। इसलिए नहीं चाहता।

कर्ण ने कहा कि ब्राह्मण देव यदि आप गाय नहीं चाहते तो सूर्य के घोड़ों के समान, अनेक राजाओं द्वारा प्रशंसित उत्तम काबुली जाति के अद्भुत गुणों से युक्त, वायु के समान वेग वाले एक हजार घोड़ों को देता हूँ।

इन्द्र ने कहा कि—घोड़ों पर थोड़े समय तक चढ़ूँगा इसलिए घोड़े नहीं चाहिए।

कर्ण ने कहा कि मैं आपको अनेक हाथियों का समूह देता हूँ, जो मेघ के समान गम्भीर घोष वाले तथा युद्ध भूमि में अनेक शत्रुओं को बिनष्ट करने वाले हैं। किन्तु इन्द्र इसे भी अस्वीकार कर देते हैं। तदनन्तर कर्ण अमित स्वर्ण जीत कर सम्पूर्ण भूमि, अग्निष्टोम यज्ञ का फल, और अन्त में अपना शिर भी देने को कहता है। परन्तु इन्द्र उसे भी अस्वीकार कर देते हैं। उन्हें कुछ स्वीकार करता न देख कर कर्ण ने कहा कि हे ब्राह्मणदेव आपको अभीष्ट हो तो यह कवच मेरे जन्म के साथ ही रक्षा के लिए उत्पन्न

हुआ, हजारों अस्त्रों तथा देव–दानवों से भी अभेद्य हैं इस कवच के साथ कुण्डल को भी आपको दे दूँ।

कर्ण की बात सुन कर इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं और तुरन्त ही कहते हैं कि—'दे दो'। कर्ण जब देने को उद्यत होता है तो शल्य उसे देने से मना करते हैं। तब कर्ण शल्यराज से कहता है कि आप मना मत करिये क्योंकि समय बीतने पर उपार्जित विद्या भी नष्ट हो जाती है, मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी गिर पड़ते हैं, समयानुसार जलाशय का जल भी सूख जाता है, किन्तु दान की हुई वस्तु और हवनादि किया हुआ अन्न कभी नष्ट नहीं होता, वह ज्यों का त्यों बना रहता है अर्थात् पुण्य का नाश नहीं होता। ऐसा कह कर वह अपना कवच–कुण्डल ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को देता है, इन्द्र उसे लेकर जाते हैं और मन में सोचते हैं कि पहले ही मैंने अर्जुन की विजय के लिए जो सब देवताओं से प्रतिज्ञा की थी वह आज कर लिया, अब ऐरावत हाथी पर चढ़ कर कर्ण और अर्जुन के युद्ध को देखूंगा।

इन्द्र के चले जाने पर शल्य कर्ण से कहते हैं कि आप इन्द्र के द्वारा ठग लिये गये, इस पर कर्ण कहता है कि वस्तुतः इन्द्र ही मुझसे ठगे गये, क्योंकि अनेक यज्ञों से तृप्त, दानवों के समूह के विनाशक, मुकुट को धारण करने वाले और ऐरावत को थपथपाने से कठोर अङ्गुलियों वाले इन्द्र मेरे से उपकृत हुए। इसके बाद ब्राह्मण वेष धारण कर एक देवदूत आता है और कहता है कि हे कर्ण आपका कवच–कुण्डल लेने के कारण इन्द्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने विमला नामक यह अमोघ शक्ति दी है इससे आप पाण्डवों में से किसी एक का वध कर सकते हैं। कर्ण कहते हैं कि मैं दान का बदला नहीं लेता। देवदूत कहता है कि आप इसे ब्राह्मण वचन समझ कर स्वीकार करें। ब्राह्मण आज्ञा समझ कर कर्ण उसे ग्रहण कर लेते हैं और देवदूत कहता है कि जब आप इसे स्मरण करियेगा तभी आपके पास चली आयेगी। देवदूत चला जाता है। उसके पश्चात् कर्ण और शल्य रथारूढ़ होते हैं। उसी समय उन्हें अत्यन्त गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ती है। उसे सुन कर कर्ण कहते हैं कि यह प्रलय कालीन समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर ध्वनि करने वाला कृष्ण

का शङ्ख है अथवा अर्जुन का। युधिष्ठिर के पराजय से कुपित होकर अर्जुन आज मुझ से अवश्य ही यथाशक्ति युद्ध करेगा। शल्यराज मेरे रथ को अर्जुन के रथ के पास ले चलो। दोनों प्रस्थान करते हैं भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटकीय कथावस्तु का मूलस्रोत

नाटक के कथानक के मूलस्रोत महाभारत है। कर्ण का आख्यान महाभारत के अनेक पर्वों में वर्णित है। महाभारत में कर्ण का इन्द्र को कवच कुण्डल काट कर देना तथा उस कवच-कुण्डल के बदले इन्द्र से एक मायाविनी शक्ति प्राप्त करना और उसके द्वारा घटोत्कच का वध आदि घटनाओं का उल्लेख (आदि पर्व, ६७।१४४-४७) (वन पर्व ३००-३०२, १०), शान्ति पर्व, तथासभा पर्व के अध्याय ६८।४४-४५ और अध्याय १२०।३९-५२ में वर्णित है। परशुराम के यहां अस्त्र शिक्षा तथा उनके शाप का वृत्तान्त शान्ति पर्व के तीसरे अध्याय और कर्ण पर्व के २६वें अध्याय में निबद्ध है। इन्ही कथाओं के आधार इस नाटक का कलेवर महाकवि भास के द्वारा खड़ा किया गया है।

नाटक के कथानक में मूल स्रोतों से अन्तर

महाभारत के विभिन्न पर्वों में बिखरी कथाओं को इस नाटक में से नाटककार ने सङ्कलित किया है परन्तु इस सङ्कलन में मूल आधार से अन्तर है। जैसे—

(१) महाभारत में इन्द्र का ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में आना और कर्ण से कवच कुण्डल का दान मांगना आदि पाण्डवों के वनवास के समय वन पर्व में दिया गया है। परन्तु नाटक में उस घटना की संघटना युद्ध भूमि के प्रस्थान के समय की गई है। सम्भवतः नाटककार ने ऐसा इसलिए किया हो कि युद्ध के समय अपना कवच-कुण्डल दूसरे को नहीं दिया जाता परन्तु कर्ण दे देता है, इस घटना से दर्शक के अन्तर्मन में कर्ण की महती दानशीलता की छाप पड़ती है।

(२) महाभारत में सूर्य स्वयं कर्ण को स्वप्न में बताते हैं कि इन्द्र छल पूर्वक तुमसे कवच-कुण्डल मागेंगें, उन्हें मत देना, नाटक में इस घटना का वर्णन नहीं है।

(३) महाभारत में कर्ण शक्ति की याचना इन्द्र से स्वयं करता है परन्तु नाटक में कवच-कुण्डल के बदले में प्रतिग्रह स्वरूप शक्ति लेने से कर्ण इंकार कर देता है तथा देवदूत के द्वारा यह कहने पर कि ब्राह्मण यह वचन है तब जाकर ब्राह्मण वचन के पालनार्थ उस शक्ति को स्वीकार करता है। इन्द्र का कवच-कुण्डल लेने पर पश्चाताप करना तथा स्वयं देवदूत भेज कर कर्ण को अमोघ शक्ति देना, यह कवि की मौलिक कल्पना का ही परिणाम है।

(४) महाभारत का शल्य तथा नाटक के शल्य चरित्र में पर्याप्त अन्तर है जबकि दोनों जगह कर्ण का सारथि शल्य ही है। परन्तु महाभारत का शल्य कटु भाषी है तथा बात-बात में कर्ण को हतोत्साहित करता है। नाटक का शल्य सहृदय, संयमी, उदारमना, मृदुभाषी आदि सभी मानवीय गुणों से युक्त है। वह कर्ण का शुभेच्छु है। जब इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल मांगते हैं तो वह कर्ण को देने से मना करता है।

५) नाटक में ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र का प्राकृत भाषा का प्रयोग भी आश्चर्यजनक है क्योंकि नि.मत: भृत्य, स्त्रियां और अशिक्षित लोग ही इसका प्रयोग करते हैं।

नाटक का नामकरण

नाटककार ने नाटक का नामकरण 'कर्णभारम्' क्यों रखा यह एक विचारणीय प्रश्न है क्योकि नाटक में कहीं भी इसका प्रयोग नहीं हुआ है। प्रो० इस नामकरण पर विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रो० ए० डी० पुसालकर के मतानुसार कर्ण के कानों के भारभूत कुण्डल दान को केंद्र मान कर इस नाटक का नाम कर्णभार है। इस सम्बन्ध में वे यह भी कहते हैं कि जब कर्ण ने वाचिक रूप से कुण्डलों को दान कर दिया

तो उसके बाद वे भारभूत हो गये। वाचिक दान और क्रियात्मक दान के मध्य में उनके भारभूत होने से नाटक का नाम कर्णभार हुआ।[1] परन्तु यह यह व्यवस्था भी अपूर्ण है क्योंकि कर्ण के द्वारा प्रधान देय वस्तु कुण्डल नहीं बल्कि कवच था, जिसका इस शीर्षक व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं जुटता। डाक्टर विन्तरनित्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के कठिन कार्य से तथा डाक्टर मैक्स लिण्डेन्यू भार का अर्थ कवच से लेते हैं।[2]

कुछ विद्वानों की सम्मति में कर्ण का युद्ध कौशल ही उसके लिए भार स्वरूप हो गया था। युद्ध कौशल की अनुपयोगिता के तीन कारण थे—(१) परशुराम का शाप। (२) अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डवों को न मारने के लिए कुन्ती को वचन देना। (३) इन्द्र को कवच-कुण्डल का दान।[3] डा० जी० के० भट्ट का मत है कि कर्ण की चिन्ता ही भार स्वरूप हो जाने के कारण नाटक का नाम 'कर्णभारम्' रखा गया यहाँ भार का अर्थ कौरव सेना की रक्षा के उत्तरदायित्व से लिया है। प्रो० देवधर ने नाटक की इस व्याख्या को अधूरी माना है। इस प्रकार नाटक के नामकरण के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि नाटक का शीर्षक स्पष्ट नहीं है।

नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

नाटकीय पात्रों के चरित्राङ्कन में महाकवि भास सिद्धहस्त हैं। इनके पात्र नाटक में भार स्वरूप न होकर उसे जीवन्तता प्रदान करते हैं। प्रस्तुत एकाङ्की में तीन पात्रों का चरित्र प्रमुखता प्राप्त कर सका है। प्रथम इस नाटक के नायक कर्ण हैं, दूसरा कर्ण के सारथि शल्य और तीसरा ब्राह्मण वेषधारी देवराज इन्द्र हैं। इन्हीं पात्रों के चरित्र पर यहाँ संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

---

१. द्र० ए० डी० पुसालकर 'भास : ए० स्टडी' पृ० १८८

२. द्र०, कर्णभार की भूमिका, प्रो० देवधर, पृ० ३

२. द्र०, ए० एस० पी० अय्यर, 'भास' पृ० ६००

कर्ण

इस नाटक का नायक कर्ण है। उसके चरित्र में विभिन्न तत्त्वों का मंजुल समन्वय दिखलायी पडता है। वह महान शूर-वीर, सहृदय दानी और योद्धा है परन्तु साथ ही दूसरी ओर मानव सुलभ कमजोरियां भी उसे घेरे हुए हैं। जहां एक तरफ अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए वह आगे बढ़ता है वहीं दूसरी ओर उसके सामने विभिन्न बाधाएँ और निराशाएं आ घेरती हैं और वह हतोत्साहित हो जाता है। नाटक के प्रारम्भ में घोड़ों के स्खलनादि को देख कर वह शङ्कित हो जाता है और उसका मन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में फँस जाता है। इसी प्रसंग में वह अपने सारथि शल्य से परशुराम जी के यहाँ से शस्त्र प्राप्ति की शिक्षा तथा शाप का वृत्तान्त बतलाता है। शस्त्रों की विफलता का उसे आशङ्का है और उसकी पुष्टि के लिए वह शस्त्रों का परीक्षण भी करता है। इन सबके विपरीत परिस्थितियों में भी कर्ण अपने धैर्य एवं वीरता का परित्याग नहीं करता, बल्कि, शल्य से कहता है कि अर्जुन के रथ के सामने मेरे रथ को ले चलो। युद्ध में मैं पाण्डवों की कठिन रण सीमा में प्रवेश करके अत्यन्त प्रसिद्ध गुणों वाले धर्मराज युधिष्ठिर को बांध कर अपने तीव्र और प्रखर बाणों से अर्जुन को मार कर पाण्डवों की उस दुर्गम सेना को भयानक सिंह के मर जाने पर सुगम (निरापद) जंगल के समान बना दूंगा—

समरमुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा।
मम शरवरवेगैरर्जुनं पातयित्वा
वनमिव हतसिंहं सुप्रवेशं करोमि॥ १४

इस नाटक में कर्ण के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह निखरी है कि वह गो-ब्राह्मण भक्त, महान् दानशील तथा अप्रतिग्रही है। वह ब्राह्मण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए कृतसङ्कल्प दिखलायी पड़ता है। छद्म ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र जब गोधन, गजधन,

बाजिधन और सुवर्ण आदि लेना अस्वीकार कर देते हैं तो वह अपना शिर देने की बात कहता है। क्योंकि उसका विश्वास है कि शरीर विनष्ट होने के बाद केवल यश ही शेष रहता है—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः ।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्धया हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७

कर्ण के चरित्र की महानता और दानशीलता उस समय चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है जब वह ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को अपना अंग त्राण कवच और कुण्डल देने को कहता है, क्योंकि वह युद्ध मैदान में अपना रक्षा कवच दान कर रहा है। शल्य जब उसे कवच-कुण्डल दान करने से मना करते हैं तो वह कहता है कि—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२

अर्थात् समय बीतने पर उपार्जित विद्या नष्ट हो जाती है, मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी गिर पड़ते हैं, जल भी सरोवर में जाकर गर्मी आने पर सूख जाता है किन्तु हवनादि किया हुआ पदार्थ या दान में जो दिया हुआ है वह ज्यों-का-त्यों बना रहता है अर्थात् पुण्य तथा यश शाश्वत है।

कर्ण दान के प्रतिफल स्वरूप कुछ पाने की आशा नहीं करता, इसीलिए जब देवदूत इन्द्र के द्वारा प्रदत्त विमला नामक शक्ति उसे देता है तो वह लेने से इन्कार कर देता है। परन्तु जब देवदूत यह कहता है कि यह ब्राह्मण वचन है तब उसे ब्राह्मण वचन समझ कर स्वीकार कर लेता है। कर्ण के चरित्र में मानव सुलभ दया की भावना भी विद्यमान है, वह कहता है कि पहले कुन्ती से उत्पन्न होकर वह राधेय के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ, इसलिए युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव मेरे छोटे भाई हैं तो

उसका छोटे भाइयों की रक्षा और ममता भाव परिलक्षित होता है। धर्मानुसार छोटा भाई पुत्रवत् होता है :—

> पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातृन् यवीयसः ।
> पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥
> —मनु० ९।१०८

इस प्रकार कर्ण महान धैर्यशाली, वीर, पराक्रमी तथा दानी के रूप में चित्रित किया गया है।

इन्द्र

इन्द्र के चरित्र में दो विरोधी गुणों का निदर्शन हुआ है एक तरफ वे स्वार्थी तथा कपटी हैं दूसरी ओर वे उदार भी है। कर्ण के पास वे छद्म ब्राह्मण वेषधारी के रूप में जाते हैं और उससे भिक्षा माँगते हैं। दान में जब कर्ण गौ, अश्व, गज, पृथ्वी, अग्निष्टोम का फल आदि देने के लिए कहता है तो उसे अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए अस्वीकार कर देते हैं और जब वह कवच-कुण्डल देने को कहता है तो वह तत्क्षण स्वीकार कर लेते हैं। अपने स्वार्थपूर्ण कार्य सफल होने पर कहते हैं—

> 'पूर्वमेवा—(हम् ?) र्जुन विजयार्थं सर्व-
> देवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् ।
> तस्मादहमप्यै रावतमारूह्या-
> र्जुनकर्णयोर्द्वन्दयुद्धं पश्यामि ॥

अर्थात् पहले ही मैंने अर्जुन की विजय के लिए जो सब देवताओं से प्रतिज्ञा की थी वह आज मैंने कर लिया अतएव अब मैं ऐरावत पर चढ़ कर कर्ण और अर्जुन के युद्ध को देखूंगा।

परन्तु इन्द्र का चरित्र यहीं उदात्त भी हो जाता है जब वे कर्ण के कवच-कुण्डल लेने पर पश्चाताप करते हैं और देवदूत से विमला नामक

शक्ति कर्ण के पास भेजते हैं, उस शक्ति का गुण यह था कि वह किसी भी एक पुरुष का वध कर सकती थी। इन्द्र का प्राकृत बोलना भी उनके चरित्र की विशेषता है क्योंकि नाटक में ब्राह्मण पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं।

शल्य

नाटक में शल्य का चरित्र विशेष रूप से नहीं चित्रित किया गया है, इनका चरित्र कर्ण के चरित्र को उभारने का माध्यम मात्र है। महाभारत के शल्य और नाटक के शल्य के चरित्र में पर्याप्त अन्तर है महाभारत के समान ये कटुभाषी, कठोर, निर्दयी, हतोत्साहित करने वाले नहीं बल्कि मृदुभाषी दयालु, सहृदय तथा कर्ण शुभेच्छु हैं। वह इतने भावुक हैं कि जब दुःखद घटना का वर्णन होता है तो स्वयं कष्ट का अनुभव करते है। वह कर्ण के हित चिन्तन में निरन्तर सोचते रहते है, कर्ण जब ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को अपना कवच–कुण्डल दान देते हैं तो वह उन्हें दान देने से रोकता है। और जब कर्ण कवच कुण्डल दे देते हैं तो कहता है कि 'हे अङ्गराज ! आप अवश्य ही ठग लिये गये।' इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाटक में शल्य का चरित्र एक सहृदय सारथी के रूप में चित्रित किया गया है।

समीक्षण

महाकवि भास के नाटकों में 'कर्णभारम्' एकाङ्की नाटक होते हुए भी अपना विशेष स्थान एवं महत्त्व रखता है। काव्यरस के परिपाक तथा कलनत्रय के निर्वाह में यह नाटक सफल है। इसमें सम्पूर्ण घटना चक्र सीमित पात्रों के द्वारा एक ही काल एवं स्थान पर एक ही उद्देश्य की पूर्ति हेतु अग्रसर दिखाई पड़ता है। नाटक में रचना विधान की दृष्टि से कुछ कमी खटकती है। जैसे—नाटक के प्रारम्भ में कर्ण शल्य से कहते हैं, 'जहाँ अर्जुन हैं वहीं मेरे रथ को ले चलो' फिर कुछ समय पश्चात परशुराम से अस्त्र शिक्षा की प्राप्ति तथा उसके विस्फलता के शाप का वर्णन करते हैं। कर्ण और शल्य दोनों रथ पर आरूढ़ होते हैं और कर्ण कहते हैं कि अर्जुन के समीप मेरे रथ को ले चलो। दोनों

के रथारूढ़ होने के पश्चात् ब्राह्मण का शब्द सुनाई पड़ता है। रङ्गमञ्चीय ऐसा निर्देश होता है कि पुनः वे रथारूढ़ होते हैं। यह रङ्गमञ्चीय निर्देश की त्रुटि एक भूल है तथा अभिनय में भी यह समस्या उत्पन्न हो सकती है कि कर्ण कब रथारूढ़ होते हैं और कब उतरते हैं ?

नाट्य रचना विधान की दृष्टि से 'कर्णभारम्' को किस प्रकार का नाटक माना जाय। इसे 'व्यायोग' नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें युद्ध संघर्ष या वीररस का वर्णन नहीं है। इसे 'उत्सृष्टिकाङ्क' नामक एकाङ्की की श्रेणी में रखा जा सकता है।

दशरूपककार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं प्रपञ्चयेत्।
रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः॥

भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः।
वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ॥

—दशरूपक ३, प्रकाश : ७०-७८

दशरूपककार की इस कसौटी पर यह नाटक पूरा खरा तो नहीं उतरता परन्तु अधिक साम्य रखता है। इसलिए कर्णभारम् को उत्सृष्टिकाङ्क कहा जा सकता है।

रस की दृष्टि से सम्पूर्ण नाटक का विषय वीर-रस और युद्ध भूमि से सम्बन्ध रखता है परन्तु सम्पूर्ण नाटक में करुण रस की छाया विद्यमान रहती है। डा० पुशलकर ने छद्म ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र का प्राकृत भाषा के प्रयोग को हास्य का पुट माना है। अलङ्कारों की योजना में भी नाटककार ने पर्याप्त सफलता हासिल की है। कर्ण जैसे महारथी योद्धा के लिए भाव का दैन्य ऐसे समय में उद्भव हुआ जब उसकी अवस्थिति प्रशस्त नहीं कहीं जा सकती। कर्ण की उपमा कितनी सुन्दर है—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
शौर्ये च सम्प्रति सशोकमुपैति धीमान् ।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥ ४

अत्यन्त प्रखर पराक्रम से युक्त, युद्धस्थल में सर्वप्रमुख योद्धा, बलशाली कर्ण बुद्धिमान् होकर भी इस समय शोक से ऐसे परितप्त हो रहे हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक प्रखर किरणों वाला सूर्य मेघमाला से आच्छादित हो जाय ।

कर्ण की झुझलाहट और बेबसी इस श्लोक में देखी जा सकता है—

अयं स कालः क्रमलब्धशोभनो
गुणप्रकर्षो दिवसोऽयमागतः
निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितं
पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥ ८

अर्थात् यह समय अत्यन्त उपयुक्त है और अनेक दिनों से प्रतीक्षित दिन आ गया किन्तु मेरी अस्त्र–शिक्षा इस समय व्यर्थ सिद्ध हो रही है और माता कुन्ती ने मुझे मना भी किया है कि अपने छोटे भाइयों पर अस्त्र न चलाना।

नाटककार ने यहां पर कर्ण को विवश दिखा कर करुणा का पुट उड़ेल दिया है।

नाटककार ने कर्ण के द्वारा एक गम्भीर तथ्य का उद्घाटन कराते हुए संसार की असारता तथा धर्म एवं दान की महत्ता पर प्रकाश डाला है—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्धया हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७

अर्थात् केवल धर्म ही मनुष्य के द्वारा यत्नपूर्वक साध्य है। राजलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की भांति चञ्चल है, इसलिए प्रजा का पालन करने वाला अपने शरीरपात के बाद केवल यश से ही जीवित रहता है।

तथा—

शिक्षा क्षयं गच्छन्ति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपोः।

जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुत च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२

युद्ध की सार्थकता का महत्त्व निम्नलिखित श्लोक में देखा जा सकता है—

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वातु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२

अर्थात् संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग प्राप्त होता है और जीतने पर यश मिलता है, अतः लोक में दोनों ही स्थितियां माननीय मानी जाती हैं, इसलिए युद्ध करने में निष्फलता नहीं है।

उपर्युक्त श्लोक पर श्रीमद्भागवद्गीता के निम्न श्लोक की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौतेन्य युद्धाय कृतनिश्चयः॥

गीता, २, ३७

महाकवि भास पात्रों का स्वरूप का वर्णन बड़े सजीव तथा सुन्दर ढंग से करते हैं। परशुराम जी का वर्णन साक्षात् उनके वेष विन्यास को सामने उपस्थित कर देता है। देखिए—

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप—
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम्।

क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि॥ ९

अर्थात् विद्युत् की लता के समान पीली और लम्बी जटा के समूह एवं प्रभा की परिधि से घिरे हुए परशु को धारण करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ, भृगुवंश के ध्वज और क्षत्रियों के विनाशक परशुराम के निकट जाकर मैं उन्हें प्रणाम करके चुपचाप एक तरफ खड़ा हो गया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाकवि भास के द्वारा विरचित 'कर्णभारम्' सफल नाटक है।

* * *

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भासनाटकचक्रे

कर्णभारम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारी-
नरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः।

नत्वा गजाननं देवं श्रिया सह श्रियः पतिम्।
साम्बं शिवं च भानुं च व्याख्येयं क्रियते मया ॥

अथ सरस्वतीहासभूतो महाकविर्भासः कर्णभारं नाम नाटकं चिकीर्षुः ग्रन्थविघ्नविघाताय सूत्रधारमुखेन स्वेष्टदेवतास्मरणपूर्वकं सभ्यानामाशीर्वादात्मकं मङ्गलं निर्दिशति—नरमृगपतीत्यादि।

अन्वयः—नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारीनरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः सुररिपुबलहन्ता श्रीधरः वः श्रियेऽस्तु ॥१॥

(नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—जिन विष्णु के नरसिंह विग्रह को देख कर नर-नारी, राक्षस, देवगण और पाताल लोक आश्चर्यचकित हो गये तथा जिन्होंने वज्र के

करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रियै वः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । (परिक्रम्य, कर्णं दत्त्वा ।) अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

व्याख्या—नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारीनरनरदनुजसुपर्वव्रात पाताललोकः नरस्य=मनुष्यस्य, मृगपतेः सिंहस्य, च यद् वर्ष्म = विग्रहः शरीरं तस्य आलोकनेन=सम्प्रेक्षणेन भ्रान्ताः=चकितचकिताः कृताः नारीणाम्=मानवस्त्रीणां नराणाम् = मानवानाम्, दनुजानां = दानवानाम् सुपर्वणाम् = देवगणानाम् व्राताः = समूहाः पाताललोकाश्च येन सः । करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः करे जातः करजः = नखः स एव कुलिशः = वज्रः तस्य पाल्या = कोटया भिन्नम् = विदीर्णम् दैत्येन्द्रस्य = हिरण्यकशिपोः वक्षः = उरःस्थलम् येन सः । सुररिपुबलहन्ता सुररिपूणाम् = दैत्यानाम् रक्षसां बलम् = सैन्यम् हन्तीति तथाभूतः = दनुजसैन्यविघातकः । श्रीधरः = इन्दिरापतिः भगवान् नृसिंहः वः = युष्माकम् । नाटकदर्शकानाम् श्रोतृणां च श्रिये = कल्याणाय । अस्तु = भवतु । मालिनीवृत्तम् । ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणम् । पर्यायोक्तिरलङ्कारश्च ॥ १ ॥

आर्यमिश्रान् आर्याः = कुलशीलदिगुणयुक्ताः सभ्याः ते च ते मिश्राः = पूज्यास्तान् । विज्ञापयामि = निवेदयामि । अङ्गेश्वराय = अङ्गदेशाधिपाय कर्णायेत्यर्थः । सूत्रधारः सामाजिकान् प्रति नाटकपूर्वरङ्गमुपस्थापयति संग्रामे इति ।

समान कठोर अपने नखाग्र से दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) का वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ऐसे दानवों के सैन्य का विनाश करने वाले श्री (नृसिंह) भगवान् आप सभी सभ्यों का कल्याण करें ॥ १ ॥

इस प्रकार मैं आप सभी महानुभावों को सूचित करता हूं (घूम कर

(नेपथ्ये)

भो भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय ।

सूत्रधारः—भवतु । विज्ञातम् ।

संग्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः ।
निवेदयति सम्भ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

अन्वयः—संग्रामे तुमुले जाते सम्भ्रान्तः भृत्यः दुर्योधनाज्ञया कलिताञ्जलिः सन् कर्णाय निवेदयति ॥ २ ॥

व्याख्या—संग्रामे इति—संग्रामे=युद्धे, तुमुले=घोरे, महाभयङ्करे। जाते=भूते सम्भ्रान्तः = व्याकुलचित्तः भृत्यः = सेवकः दुर्योधनाज्ञया दुर्योधनस्य आज्ञया= आदेशेन कलिताञ्जलिः कलितः = विहितः सम्पुटितः । अञ्जलिः = करसम्पुटो येन सः कर्णाय – अङ्गराजाय निवेदयति = विज्ञापयति । भयङ्करः संग्रामो भवतीति शेषः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

कान लगा कर) अरे ! सूचना देने के लिए व्यग्र मुझ सूत्रधार को यह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है (अच्छा देखता हूँ) ।

(नेपथ्य में)

हे लोगो, हे लोगो ! अङ्गदेशाधिपति महाराज कर्ण से निवेदन करो ।

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

दुर्योधन की आज्ञा से घबड़ाया हुआ यह भृत्य हाथ जोड़ कर कर्ण को भयंकर युद्ध होने की सूचना दे रहा है ॥ २ ॥

(चला जाता है)

प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाङ्गेश्वराय युद्धकाल उपस्थित इति ।

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्तात्
मुदितनृपतिसिंहैः सिंहनादः कृतोऽद्य ।

प्रस्तावना = आमुखं स्थापना वा ।

इदानीम् युद्धे पार्थाभिमुखं दुर्योधनप्रयाणमपि सूचयति भटः ।

अन्वयः—पार्थकेतोः पुरस्तात् करितुरगरथस्थैः मुदितनृपतिसिंहैः अद्य सिंहनादः कृतः अतः अरिनिनादैः दुःसहालोकवीरः अधिगतार्थः नागकेतुः त्वरितं समरम् प्रस्थितः ॥ ३ ॥

व्याख्या—करीति–पार्थकेतोः पृथायाः पुत्रः पार्थः = अर्जुनस्तस्य केतुः ध्वजः तस्य । पुरस्तात् = अग्रे । करितुरगरथस्थैः करयः = हस्तिनः तुरगाः अश्वाः रथाश्च तेषु तिष्ठन्तीति तथाभूताः तैः । मुदितनृपतिसिंहैः मुदिताः = हर्षयुक्ताः ये नृपतिसिंहाः = राजशार्दूलाः तैः । अद्य = संग्रामे सिंहनादः = सिंहशब्दः इव गर्जनमित्यर्थः कृतः । अतः अरिनिनादैः = शत्रुगर्जनशब्दैः । दुःसहालोक-

---

प्रस्तावना समाप्त

(तदनन्तर भट का प्रवेश)

भट—हे हे लोगों ! निवेदन करो, निवेदन करो । महाराज कर्ण से कि युद्धकाल उपस्थित हो गया है ।

अर्जुन की ध्वजा के आगे आगे हाथी घोड़े एवं रथ पर सवार हुए प्रसन्न चित्त ये राजसिंह सिंहनाद कर रहे हैं । शत्रुओं के सिंहनाद से दुःसह एक

त्वरितमरिनिनादैर्दुस्सहालोकवीरः
समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

(परिक्रम्य विलोक्य) अये अयमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृतः शल्यराजेन सह स्वभवनान्निष्क्रम्येत एवाभिवर्तते । भोः किं नु खलु युद्धोत्सवप्रमुखस्य दृष्टपराक्रमस्याभूतपूर्वो हृदयपरितापः ।

वीरः। दुःसहः=सोढुमशक्यः आलोकः=तेजोविशेषः यस्य स चासौ वीरश्च=असहनशीलपराक्रमः। अधिगतार्थः अधिगतम्=परिज्ञातम् अर्थम्=प्रयोजनं येन सः। नागकेतुः=नागः=मणिमयो हस्ती केतौ=ध्वजे यस्य सः=हस्तिचिह्नध्वजः दुर्योधन इत्यर्थः। त्वरितम्=द्रुतम्। समरम्=युद्धभूमिम्। प्रस्थितः=प्रस्थानं कृतवान्। मालिनीवृत्तम् ॥ ३ ॥

समरपरिच्छदपरिवृतः समरस्य=युद्धस्य परिच्छदेन=वेशभूषया परिवृतः=परितो वृतः अलङ्कृतः सज्जितो वा। अङ्गराजः=कर्णः। युद्धोत्सवप्रमुखस्य युद्धस्य=समरस्य उत्सवः=समारोहः तस्मिन् प्रमुखस्य=अग्रगण्यस्य। दृष्टपराक्रमस्य दृष्टः=अवलोकितः पराक्रमो=वीरता यस्य तस्य। अभूतपूर्वः=पूर्वं न भूतः इत्यभूतपूर्वः=नूतनः। परितापः=चिन्ता।

वीर और हाथी की ध्वजा वाला यह दुर्योधन इन समस्त बातों को जान कर शीघ्र ही युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा है ॥ ३ ॥

(घूम कर पुनः देख कर)

अरे ! ये अङ्गराज (कर्ण) युद्धोचित वेष धारण किये शल्यराज के साथ अपने भवन से निकल कर इधर की ओर आ रहे हैं। अरे यह क्या ? युद्धरूपी उत्सव के प्रमुख (सेनापति) और अत्यन्त पराक्रमशील इन कर्ण के मन में यह अभूतपूर्व परिताप कैसा ?

एष हि—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
शौर्ये च सम्प्रति सशोकमुपैति धीमान् ।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥ ४ ॥

अथेदानीं भटः कर्णं विशिनष्टि—

अन्वयः—अत्युग्रदीप्तिविशदः समरे शौर्ये च अग्रगण्यः धीमान् सम्प्रति सशोकम् उपैति । निदाघसमये प्राप्ते घनराशिरुद्धः स्वभावरुचिमान् सूर्यः इव अयं कर्णः भाति ॥ ४ ॥

व्याख्या—अत्युग्रेति—अत्युग्रदीप्तिविशदः अत्युग्रया = महोत्कटया दीप्तया = प्रतापातिशयकान्त्या विशदः = प्रद्योतितः । समरे = युद्धे । शौर्ये = पराक्रमे च अग्रगण्यः = अग्रेसरः । धीमान् धीरस्त्यस्मिन्निति धीमान् = दुद्धिमान् सम्प्रति = युद्धकाले सशोकम् = शोकयुक्तम् । उपैति = आगच्छति । निदाघसमये = ग्रीष्मर्त्तौ । घनराशिरुद्धः घनानां = मेघानाम् राशिभिः = समूहैः रुद्धः = समाच्छादितः । स्वभावरुचिमान् स्वभावतः = प्रकृतिगतः रुचिरस्त्यस्मिन् इति स्वभावरुचिमान् = सहजकान्तिमान् । सूर्यः = दिवाकरः । इव = यथा । अयं कर्णः भाति = शोभते । यथा ग्रीष्मर्त्तौ सहजप्रकाशितः सूर्यः मेघाच्छन्नतया मलिनकान्तिः जायते तथायं कर्णोऽपि युद्धकाले शोकमलिनकान्तिः युक्तः सन् न प्रतिभातीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् । उपमार्थान्तरन्यासालङ्कारौ ॥ ४ ॥

क्योंकि ये—

अत्यन्त प्रखर तेजस्विता से जाज्वल्यमान युद्धस्थल में तथा पराक्रम में सदा अग्रगामी तथा बुद्धिमान् होकर भी शोक से इस प्रकार परितप्त हो रहे हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक प्रखर किरणों वाले सूर्य मेघमाला से आच्छादित हो फीका पड़ जाते हैं ॥ ४ ॥

यावदपसर्पामि । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कर्णः शल्यश्च ।)

कर्णः—

मा तावन्मम शरमार्गलक्षभूता
सम्प्राप्ताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः ।
कर्तव्यं रणशिरसि प्रियं कुरूणां
द्रष्टव्यो यदि स भवेद्धनञ्जयो मे ॥ ५ ॥

अपसरामि = दूरं गच्छामि । अथेदानीं कर्णः स्वमनसि गतां चिन्तां व्यनक्ति—

अन्वयः—तावद् शरमार्गलक्षभूताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः सम्प्राप्ताः ते मा आयान्तु । (मया अद्य) रणशिरसि कुरूणां प्रियं कर्त्तव्यम् यदि स धनञ्जयः मे द्रष्टव्यः भवेत् ॥ ५ ॥

व्याख्या—मा इति–तावद्=आदौ । शरमार्गलक्षभूताः शराणां=वाणानां, विशिखानाम् मार्गेषु=पदवीषु लक्षभूताः=लक्ष्यत्वेन संस्थिताः । क्षितिपतयः=राजानः । सजीवशेषाः जीवेन सहिताः सजीवास्तैः शेषाः जीविता इत्यर्थः । सम्प्राप्ताः=उपस्थिताः । ते मा आयान्तु=ते मम सम्मुखं नागच्छन्त्वित्यर्थः । मया अद्य रणशिरसि=युद्धभूमौ । कुरूणाम्=दुर्योधनादीनाम् । प्रियम्=इष्टम् । कर्त्तव्यम्=सम्पादनीयम् । यदि=चेत् । स

अच्छा ! अब यहाँ से हट जाता हूँ (ऐसा कह कर चला जाता है)

(तदनन्तर पूर्व निर्दिष्ट कर्ण और शल्य का प्रवेश)

कर्ण—अच्छा हो कि आज जीवित ये राजे महाराजे मेरे बाणों के लक्ष्य बनकर न आवें । अतः युद्धस्थल में अर्जुन के दिखाई पड़ जाने पर मुझे कौरवों का अभीष्ट पूर्ण करना है ॥ ५ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः— बाढम् । (चोदयति ।)

कर्णः—अहो नु खलु ।

अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्र-
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु ।

धनञ्जयः = अर्जुनः । मे = मम कर्णस्य । द्रष्टव्यः = अक्षिगोचरो भवेत् = स्यात् । अद्य युद्धे अन्ये राजानः मत्सम्मुखं नागच्छेयुरहमद्यार्जुनं विजित्य कौरवाणां प्रियं साधयामीत्यर्थः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

चोद्यताम् = प्रेर्यताम् ।

शल्यं प्रति सम्प्रति युद्धकाले उपस्थिते क्वाप्यपूर्वामननुभूतां वैकल्यतां संसूचयन्नाह कर्णः ।

अन्वयः—अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु युद्धकाले क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः मम अपि चेतसि वैधुर्यम् आपतति ॥ ६ ॥

व्याख्या—अन्योन्येति—अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारणरथेषु अन्योन्यम् = परस्परम् शस्त्राणाम् = आयुधानाम् विनिपातैः प्रहारैः विनिकृत्तगात्राः = कर्त्तितशरीराः योधाः = वीराः अश्वाः = वाजिनः, वारणाः

हे शल्यराज ! जहाँ वह अर्जुन है वही मेरे रथ को ले चलो ।

शल्य—बहुत अच्छा (रथ ले जाता है)

कर्ण—अरे यह कैसे ?

युद्धस्थल में दोनों पक्षों से शस्त्र प्रहार होने पर जिसके द्वारा अनेक योद्धा, घोड़े, रथ और हाथियों के शरीर टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं जिसके अतुलनीय पराक्रम की तुलना क्रुद्ध हुये यमराज के पराक्रम से की

क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

भोः कष्टम् ।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः।
युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

=करिणः रथाः =स्यन्दनानि येषु तेषु । महाहवेषु = महायुद्धेषु । युद्धकाले = समरसमये । क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः क्रुद्धः = कुपितः यः अन्तकः = मृत्युः, यमः तस्य प्रतिमा इव प्रतिमा यस्य एतादृशः यः विक्रमः सः अस्ति अस्य इति तस्य = कुपितकालसदृशपराक्रमस्य । ममापि = कर्णस्य । चेतसि = चित्ते, मनसि । वैधुर्यम्=दैन्यम् । आपतति=आगच्छति। यद्यपि मादृशस्य वीरस्य कृते एतन्न युक्तमिति शेषः। उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ६ ॥

अथेदानीं स्ववैधुर्यकारणं निरूपयन्नाह—

अन्वयः—पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नः राधेय इति विश्रुतः पाण्डवाः युधिष्ठिरादयः मे यवीयांसः ॥ ७ ॥

व्याख्या—पूर्वमिति–पूर्वम् = प्रथमम् । कुन्त्याम् = पाण्डोर्ज्येष्ठपत्न्याम् । समुत्पन्नः = जातः (अहम्) राधेयः राधायाः अपत्यं पुमान् राधेयः। इति =इत्थम् । विश्रुतः = लोके ख्यातिं गतः। अतः ते पाण्डवाः =पाण्डुपुत्राः युधिष्ठिरादयः = युधिष्ठिरः आदिः येषां ते युधिष्ठिरादयः = युधिष्ठिरप्रमुखाः

जा सकती है इस प्रकार के मेरे मन में आज युद्धकाल में उपस्थित होने पर यह कायरता क्यों ? ॥ ६ ॥

अरे महान् कष्ट हैं।

पूर्व में कुन्ती से उत्पन्न होकर तदनन्तर राधेय के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डुपुत्र मेरे छोटे भाई हैं ॥ ७ ॥

अयं स कालः क्रमलब्धशोभनो
गुणप्रकर्षो दिवसोऽयमागतः ।
निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितं
पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥ ८ ॥

पञ्च । मे = मम कर्णस्य । यवीयांसः = कनिष्ठाः भ्रातरः सन्तिः । एवं जानन्नपि मद्विधानां वीराणां तेषां हननं किं युक्तं भवेदिति दैन्यकारणं व्यज्यते । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

इदानीं शिक्षितानामस्त्राणां वैयर्थ्यमुपपाद्य तत्र हेतुं प्रदर्शयति—

व्याख्या—गुणप्रकर्षः क्रमलब्धशोभनः सः कालः अयम् दिवसः आगतः हि मया च क्षिक्षितं अस्त्रम् निरर्थम् । पुनः मातुः वचनेन वारितः न ॥ ८ ॥

व्याख्या—अयमिति–गुणप्रकर्षः गुणेन = अस्त्रादिनैपुण्यप्रदर्शनद्वारा प्रतीक्षमाणेन प्रकर्षः = अत्युत्कृष्टः । क्रमलब्धशोभनः क्रमेण = दिनक्रमेण लब्धः = प्राप्तः शोभनः = सुन्दरः स कालः युद्धार्थमर्जुनेन साम्मुख्यरूपसमयः । अयम् = प्रवर्त्तमानः । दिवसः = वासरः । आगतः = सम्प्राप्तः । हि = किन्तु । मया = कर्णेन । शिक्षितम् = अभ्यस्तम् । अस्त्रम् = बाणविद्या । निरर्थम् = विफलम् । पुनश्च मातुः = कुन्त्याः । वचनेन = वचसा आदेशेन च वारितः = पाण्डववधनिषिद्धः त्वया हि अर्जुनं व्यतिरिच्य युधिष्ठिरादिषु इमान्यस्त्राणि न कदाचिदपि प्रक्षेप्स्यनीति । वंशस्थवृत्तम् ॥ ८ ॥

यह वही काल है जिसकी मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था । गुण की प्रकर्षता को प्रगट करने वाला यह समय आज उपस्थित हो गया किन्तु मेरी यह अस्त्र–शिक्षा इस समय व्यर्थ सिद्ध हो रही हैं । और क्या कहें मेरी माता ने मुझे मना भी किया है (कि युधिष्ठिरादि तुम्हारे छोटे भाई हैं उन पर दिव्यास्त्र का प्रयोग न करना) ॥ ८ ॥

भोः शल्यराज ! श्रूयतां ममास्त्रस्य वृत्तान्तः ।

शल्यः—ममाप्यस्ति कौतूहलमेनं वृत्तान्तं श्रोतुम् ।

कर्णः—पूर्वमेवाहं जामदग्न्यस्य सकाशं गतवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः

कर्णः—ततः

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप-
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम् ।

अधुना कर्णः शल्यं प्रति स्वस्मै दिव्यायुधप्राप्तिरूपमुपाख्यानं संस्मारयन्नाह—

अन्वयः—(अहम्) विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम् उद्यत्प्रभावलयिनम् परशुं दधानम् क्षत्रान्तकं भृगुवंशकेतुं मुनिवरं गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितः अस्मि ॥ ९ ॥

व्याख्या—विद्युदिति—विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम् विद्युच्चेयं लता विद्युल्लता = तडिद्वल्ली तद्वत् कपिलः = पिङ्गवर्णः तुङ्गः = महान् जटायाः कलापः = समूहः विस्तृतिर्वा यस्य सः। उद्यत्प्रभावलयिनम् उद्यन्ती = उदीयमाना प्रभा = कान्तिः तस्याः वलयम् अस्ति अस्य तम् = प्रद्योतितकान्ति-

---

हे शल्यराज ! मेरे अस्त्रों की प्राप्ति की कथा सुनो ।

शल्य—मुझे भी वृत्तान्त को सुनने का बड़ा कुतूहल है ।

कर्ण—मैं पहले जामदग्न्य (परशुराम) के पास गया ।

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—तदनन्तर ।

विद्युल्लता के समान फैली हुई जटा-जूट से उदीयमान प्रभा परिधि से घिरे हुये परशु धारण करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ भृगु वंश के ध्वजा स्वरूप

क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि । को भवान् किमर्थमिहागत इति ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः भगवन् ! अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

परिधिमन्तम् । परशुम् = कुठारम् आयुधविशेषम् । दधानम् = धारयन्तम् । क्षत्रान्तकम् = क्षत्रियाणामन्तकारकम् । भृगुवंशकेतुम् = भार्गवान्वयश्रेष्ठम् । मुनिवरम् = तपस्विषु श्रेष्ठम् । गत्वा = उपसृत्य । प्रणम्य च निकटे = सन्निधौ । निभृतः=मौनमालम्ब्य:, तूष्णीं । स्थितः अस्मि = अभवम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ९ ॥

पूर्वं यदुक्तं मया शिक्षितम् अस्त्रं निरर्थमिति तस्य कारणं प्रदर्शयन्नाह—

क्षत्रियान्तक परशुराम के निकट जाकर मैंने उन्हें प्रणाम किया । फिर चुपचाप एक कोने में खड़ा हो गया ॥ ९ ॥

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—तब परशुराम ने मुझे आशीर्वाद देकर (मुझ से) इस प्रकार पूछा—'आप कौन है ? और यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं ।'

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—तदनन्तर मैं 'समस्त अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ' ऐसा मैंने कहा ।

शल्य:—ततस्तत ।

कर्णः—तत उक्तोहं भगवता ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि न क्षत्रियाणामिति ।

शल्य—अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियवंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्णः—ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।

शल्य—ततस्ततः ।

कर्ण—ततः कतिपयकालातिक्रमे कदाचित्फलमूलसमित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्य:—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः स गुरुर्वनभ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपगतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

शल्य—फिर इसके बाद ।

कर्ण—तब उन भगवान् ने मुझ से कहा—मैं ब्राह्मणों को ही अस्त्र विद्या का उपदेश करता हूँ क्षत्रियों को नहीं ।

शल्य—हाँ उन भगवान् का क्षत्रियों से जो पुराना वैर है। अच्छा फिर ।

कर्ण—तब मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । ऐसा कह कर उनसे अस्त्र शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया ।

शल्य—फिर इसके बाद ।

कर्ण—तब कुछ समय बीतने पर एक बार फल, मूल, समिधा, कुश तथा पुष्प लाने के लिए मैं भी उनके साथ वन गया ।

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—इसके अनन्तर वन में भ्रमण करने के परिश्रम से वे परिश्रान्त हो मेरी गोद में ही सो गये ।

शल्य—तब फिर ।

कर्णः—ततः

कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान्ममोरुद्वये
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्धैर्यात्तदा वेदना ।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितो
बुद्ध्वा मां च शशाप कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ।१०।

अन्वयः—दैवात् बज्रमुखेन कृमिणा मम ऊरुद्वये कृत्ते सति तदा गुरोः निद्राच्छेदभयात् धैर्यात् वेदना असह्यत। ततः क्षतजाप्लुतः सः उत्थाय सहसा रोषानलोद्दीपितः माम् बुद्ध्वा ते अस्त्राणि कालविफलानि सन्तु इति (मां) शशाप ॥ १० ॥

व्याख्या—कृत्ते इति--दैवात् = अदृष्टवशात् । बज्रमुखेन = वज्रवन्मुखं यस्य तथाभूतेन = अन्वर्थनामकेन । कृमिणा=कीटेन । मम ऊरुद्वये कृत्ते=विदारिते दष्टे सति । तदा = तस्मिन्समये । गुरोः = परशुरामस्य निद्राच्छेदभयात् निद्रायाः = स्वापस्य च्छेदः = भङ्गः तस्य भयं = सन्त्रासः तस्मात् । धैर्यात् =अविक्लवात् धैर्यमालम्बय । वेदना=कृमिदंशनजन्यपीड़ा । असह्यत=अमृष्यत। क्षतजाप्लुतः क्षतजेन = रुधिरेण आप्लुतः = आर्द्रगात्रः । सः = महर्षिः परशुरामः । उत्थाय = स्वापं विमुच्य । सहसा = झटिति । रोषानलोद्दीपितः रोष एव अनलः=अग्निः तेन उद्दीपितः=जाज्वल्यमानः । माम् = कर्णम् क्षत्रियमिति ।

कर्ण—तदनन्तर ।

अदृष्ट वशात् वज्रमुख नामक कृमि ने मेरे दोनों जंघों में काट लिया फिर भी सोये हुये गुरु के निद्रा-भङ्ग होने भय से मैंने उस असह्य वेदना को धैर्यपूर्वक सह लिया, तदनन्तर रक्त से लथपथ हो जाने पर वे उठ कर बैठ गये। फिर तो उन्होंने मुझे क्षत्रिय जान क्रोधाग्नि से धधकते हुये शाप दिया कि समय आने पर (मेरे द्वारा प्राप्त किये गये) तुम्हारे अस्त्र विफल हो जावें ॥ १० ॥

शल्यः—अहो कष्टमभिहितं तत्रभवता।

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम्। (तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वीर्याणीव लक्ष्यन्ते। अपि च—

इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा
मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः।

बुद्ध्वा = ज्ञात्वा। ते = तव कर्णस्य। अस्त्राणि = आयुधानि। कालविफलानि काले = प्राप्तावसरे विफलानि = निरर्थकानि सन्तु = भवन्तु इति = एवं रूपं। शशाप = शापं दत्तवान्। अस्मात् कारणात् तानि विस्मृतानीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः॥ १०॥

निर्वीर्याणि = सामर्थ्यरहितानि।

इदानीं रणे प्रस्थातुमिच्छन्कर्णः स्वाग्रे अपशकुनानि दृष्ट्वा स्वकीयं पराभवं संसूचयन्नाह—

अन्वयः—हि दैन्येन निमीलितेक्षणाः मुहुः स्खलन्तः विवशाः इमे तुरङ्गमाः सप्तच्छददानगन्धिनः गजाः च रणे निवर्त्तनम् निवेदयन्ति इव॥ ११॥

व्याख्या—इमे इति-हि = यतः। दैन्येन = दीनतामापन्नेन कातरत-

शल्य—अरे तब तो उन्होंने बड़ी कष्टकर बात कहीं।

कर्ण—तब तक मैं अपने प्राप्त किये गये अस्त्रों की कथा का परीक्षण करता हूं (ऐसा करके) ये सभी अस्त्र निर्वीर्य जैसे दिखाई पड़ रहे हैं।

और भी—

अपनी दीनता से आँख बन्द किये ये घोड़े अपनी विवशता से बारम्बार मार्ग में स्खलित हो रहे हैं। सप्तच्छन्द के समान कटु मदधारा वाले

गजाश्च सप्तच्छददानगन्धिनो
निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम् ॥ ११ ॥

शङ्खदुन्दुभयश्च निःशब्दाः ।

शल्यः—भोः कष्टं किं नु खल्विदम् ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं विषादेन ।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

येत्यर्थः । निमीलितेक्षणाः निमीलितानि = मुद्रितानि ईक्षणानि = नयनानि यैस्ते । अतएव मुहुः = भूयो भूयः । स्खलन्तः = प्रभ्रश्यन्तः । विवशाः = पराधीनाः । इमे = पुरतो वर्त्तमानाः । तुरङ्गमाः=घोटकाः अश्वाः । सप्तच्छददानगन्धिनः सप्तच्छदस्य दान इव गन्धः अस्ति एषामिति = सप्तपर्णगन्धतुल्यमदस्राविणः गजाः = हस्तिनः च । रणे = संग्रामे । निवर्त्तनम् = परावर्त्तनम् पराभवमिति भावः । निवेदयन्ति = संसूचयन्ति इव । रणाभिमुखं पतन्तः अश्वाः करिणश्च मे रणान्निवर्त्तनं सूचयन्ति न तु गमनमिति भावः । वंशस्थवृत्तम् ॥ ११ ॥

इदानीं कर्णः अपशकुनानि नगण्यानि मन्यमानः रणे वीराणां कृते जयपराजययोरुभयोः साफल्यं प्रदर्शयति—

अन्वयः—रणे (वीरः) हतः अपि स्वर्गं लभते जित्वा यशः लभते लोके उभे बहुमते । रणे निष्फलता नास्ति ॥ १२ ॥

ये मत्त गजराज भी दीन होकर जैसे रण स्थल से लौट चलने की सूचना दे रहे हैं ॥ ११ ॥

शङ्ख तथा दुन्दुभी भी निःशब्द हो रहे हैं ।

शल्य—तब तो बड़ा कष्ट है । यह सब क्या हो रहा है ?

कर्ण—शल्यराज ! अब इस समय विषाद करना व्यर्थ है ।

संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग प्राप्त होता है और जीतने पर यश मिलता

अपि च

इमे हि युद्धेष्वनिर्वर्तिताशा
हया सुपर्णेन समानवेगाः।
श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाता
रक्षन्तु मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—हतोपीति··(रणे = संग्रामे वीरः = योद्धा) हतः अपि = मृत्युं प्राप्तः अपि। स्वर्गं = स्वर्गलोकं। लभते = प्राप्नोति। किञ्च जित्वा = विजित्य तु। यशः = कीर्त्तिं लभते = प्राप्नोति। लोके = भुवने वीराणां कृते उभे अपि = स्वर्गयशसी। बहुमते = अभीष्टे। अतः रणे निष्फलता = फलराहित्यम् नास्ति = न वर्त्तते उभयथा लाभ एव ॥ १२ ॥

इदानीमश्वैः स्वकीयं शुभमाशंसमान आह—

अन्वयः—हि युद्धेषु अनिवर्त्तिताशाः सुपर्णेन समानवेगाः श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाताः इमे हयाः यद्यपि मया रक्षितव्यम् तथापि ते (इदानीं) मां रक्षन्तु ॥ १३ ॥

व्याख्या—इमे इति··हि = यतः। युद्धेषु = संग्रामेषु। अनिवर्त्तिताशाः अनिवर्त्तिता = सफला आशा यैस्ते। सुपर्णेन = गरुत्मता। समानवेगाः

है इस प्रकार लोक में दोनों ही अधिक माननीय माने जाते हैं अतः युद्ध में निष्फलता नहीं है ॥ १२ ॥

और भी—

जिनसे युद्ध में कभी निराशा नहीं की जा सकती ऐसे गरुड के समान वेगवान् तथा शोभा वाले ये श्रीसम्पन्न काबुल देश में उत्पन्न हुये ये घोड़े जिनकी रक्षा मुझे भी करनी चाहिये मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम् । अक्षयोऽस्तु पतिव्रतानाम् । अक्षयोऽस्तु रणेष्वपराङ्मुखानां योधपुरुषाणाम् । अक्षयोऽस्तु मम प्राप्तकालस्य । एष भोः प्रसन्नोऽस्मि ।

समरमुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा ।

समानो वेगो येषां ते = तुल्यरयाः । श्रीमत्सु = श्रीः अस्ति एषु तेषु = श्रीप्रदायिषु काम्बोजकुलेषु = काम्बोजदेशोत्पन्नवंशेषु लोके काबुली इति ख्यातिगतेषु जाताः = प्रादुर्भूताः इमे = संग्रामे वर्त्तमानाः । हयाः = अश्वाः । यद्यपि मया रक्षितव्यम् = रक्षितुं योग्यास्तथापि ते एव (इदानीं = अस्मिन् युद्धकाले) माम् = कर्णं रक्षन्तु = रक्षां कुर्वन्तु । सत्कुलप्रसूतिकारणेन इमे अश्वाः मया रक्षणीयास्तथापि एते मां रक्षन्तु इत्याशासे । उपजातिवृत्तम् ।। १३ ।।

गोब्राह्मणानां = गावश्च ब्राह्मणाश्च तेषाम् = गोविप्राणाम । अक्षयः = संवृद्धिः । अस्तु = भूयात् । पतिव्रतानाम् = मनसा वाचा कर्मणा पतिपरायणानां साध्वीनां नारीणाम् । रणेषु = युद्धेषु अपराङ्मुखानाम् = अपृष्ठदर्शिनां योधपुरुषाणाम् – वीरपुरुषाणाम् । प्राप्तकालस्य = प्राप्तः कालः अन्तको यस्य तस्य । मम = कर्णस्य अक्षयः विनाशराहित्यम् । अस्तु – भूयात् । प्रसन्नः = सहर्षचित्तः ।

इदानीं महावीरः कर्णः शल्यं प्रति स्वचिकीर्षितं व्यनक्ति—

अन्वयः—पाण्डवानां असह्यं समरमुखं प्रविश्य प्रथितगुणगणाढ्यं धर्म-

गो और ब्राह्मणों का कल्याण हो, पतिव्रता स्त्रियों का कल्याण हो, युद्ध में पराङ्मुख न होने वाले योद्धाओं का कल्याण हो, इस शुभ अवसर को प्राप्त करने वाले मेरा भी कल्याण हो। अब मैं सर्वथा प्रसन्न हूँ।

पाण्डवों की सेना के अग्रभाग में सबके सामने प्रवेश कर गुण गणों से

मम शरवरवेगैरर्जुनं पातयित्वा
वनमिव हतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

शल्यः—बाढम् ।

(उभौ रथारोहणं नाटयतः ।)

कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

राजं बद्ध्वा च मम शरवरवेगैः अर्जुनं पातयित्वा हतसिंहं वनम् इव सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

व्याख्या—समरेति–पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणां । असह्यम् = सर्वथा सोढुमशक्यम् समरमुखम् = रणाभिमुखं । प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा । प्रथितगुणगणाढ्यम्प्रथितेन=प्रसिद्धेन गुणगणेन=गुणसमूहेन आढ्यम्=संपन्नं प्रशंसार्हमित्यर्थः । धर्मराजम् = युधिष्ठिरम् । बद्ध्वा = बन्धनं विधाय पाशैरिति शेषः । किं च मम = कर्णस्य । शरवरवेगैः शरेषु वराः = बाणश्रेष्ठाः तेषां वेगाः प्रवाहास्तैः । अर्जुनम्=एतन्नामकं मध्यमपाण्डवम् । पातयित्वा=निपात्य हत्वेत्यर्थः। हतसिंहम् हतः सिंहः यस्मिन्तत् = विनष्टमृगपतिम् । वनम् = अरण्यम् । इव = यथा । सुप्रवेशम् = सुखेन प्रवेशयोग्यम् रणस्थलमिति शेषः । करोमि = सम्पादयामि । मालिनीवृत्तम् । दृष्टान्तालङ्कारः ॥ १४ ॥

प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले युधिष्ठिर को बाँध कर तथा अपने तीव्र एवं प्रखर बाणों से अर्जुन को युद्धभूमि में गिरा कर भयानक सिंह के मर जाने पर निरापद वन के समान समस्त रणस्थली को सबके लिए सुगम बना दूँगा ॥ १४ ॥

शल्यराज ! तो हम दोनों रथ पर सवार हों ।

शल्य—बहुत अच्छा !

(दोनों रथ पर चढ़ने का नाटक करते हैं)

कर्ण—शल्यराज ! जहाँ ये अर्जुन हैं वहीं मेरा रथ ले चलिये ।

(नेपथ्ये)

भो कण्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि। [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—(आकर्ण्य) अये वीर्यवान् शब्दः ।

श्रीमानेष न केवलं द्विजवरो यस्मात्प्रभावो महा-
नाकर्ण्य स्वरमस्य धोरनिनदं चित्रार्पिताङ्गा इव ।

चोद्यताम् = सम्प्रेर्यताम् । वीर्यवान् = गम्भीरः ।

रणाभिमुखं प्रस्थितः कर्णः मार्गे भिक्षुयाचितं शब्दं श्रुत्वा तामोजस्विनीं वाचं निरूपयन्नाह—

अन्वयः—एषः केवलं द्विजवरः न अपि तु श्रीमान् यस्मात् महान् प्रभावः धीरनिनदं स्वरमाकर्ण्य मम एते हयाः उत्कर्णस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्राननाः अस्ववशाङ्गयष्टि सहसा यान्तः चित्रार्पिता इव तिष्ठन्ति ॥ १५ ॥

व्याख्या—श्रीमानिति—एषः=याचकः । केवलम्=एकमात्रं । द्विजवरः= ब्राह्मणश्रेष्ठः न अपि तु श्रीमान्=श्रिया विशिष्टःविशिष्टशोभासंपन्नः । यस्माद्= यस्य वचनात् । महान् = अतिशयितः प्रभावयुक्तः वर्चस्वीति यावत् । अस्य = याचकस्य धीरनिनदम् धीरः = गम्भीरः निनदः घोषः यस्मिन् स तम् । स्वरम् = वाचम् । आकर्ण्य = श्रुत्वा । मम एते हयाः = घोटकाः उत्कर्ण-

---

(नेपथ्य में)

हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँगता हूँ ।

कर्ण—(सुन कर) अरे यह तो बड़ा ओजस्वी स्वर है ।

यह केवल साधारण ब्राह्मण नहीं किन्तु ऐश्वर्य सम्पन्न भी हैं अतः इसका प्रभाव महान् है इसके गम्भीर घोष को सुन कर मेरे चलते हुये

उत्कर्णास्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्रानना-
स्तिष्ठन्त्यस्ववशाङ्गयष्टि सहसा यान्तो ममैते हयाः ॥ १५ ॥

आहूयतां स विप्रः । न न । अहमेवाह्वयामि । भगवन्नित इतः ।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणरूपेण शक्रः)

शक्र—भो मेघाः, सूर्येणैव निवर्त्य गच्छन्तु भवन्तः । (कर्णमुपगम्य)

स्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्रानना उत्कर्णाः उत् = ऊर्ध्वं कर्णाः येषां ते = ऊर्ध्वकर्णाः स्तिमिताञ्चिताक्षाः स्तिमितानि = निमीलितानि अञ्चितानि = मनोहराणि अक्षीणि = नयनानि येषां ते । वलितग्रीवार्पितानना: वलितायां ग्रीवायाम् अर्पितानि अग्राननानि येषां ते = भुग्नग्रीवप्रदत्तमुखाग्रभागाः उत्कर्णाश्च स्तिमिताञ्चिताक्षाश्च वलितग्रीवार्पिताग्राननाश्चेति। अस्ववशाङ्गयष्टि स्ववशा न भवतीति अस्ववशा अङ्गयष्टिः यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात् = पराधीनशरीरं सहसा = झटिति । यान्तः = गच्छन्तः । चित्रार्पिताङ्गाः चित्रे = चित्रफलके अर्पितानि = प्रदत्तानि अङ्गानि = शरीराणि येषां ते = चित्रलिखिता इव = यथा तिष्ठन्ति = गमनात्प्रतिनिवृत्ता भवन्ति । याचकस्यास्य वचसः प्रभावादेव मे तुरङ्गाः चित्रलिखिता इव गमनात्प्रतिनिवृत्ता इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । अत्युक्तिगर्भितोपमालङ्कारः ॥ १५ ॥

ये घोड़े कान खड़े करके निर्निमेष दृष्टि से गर्दन टेढ़ी कर उसमें अपने मुख के अग्रभाग को लगाये चित्रलिखित से हो गये हैं और शरीर पर काबू न पा सकने के कारण मानो विवश हो गये हैं ॥ १५ ॥

अच्छा उस ब्राह्मण को बुलाओ । नहीं नहीं रहने दो । मैं स्वयं इन्हें बुलाता हूँ । भगवन् ! इधर आइये इधर ।

(तदनन्तर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र का प्रवेश)

शक्र—हे मेघो ! अब तुम लोग सूर्य के साथ लौट जाओ (कर्ण के समीप जाकर)

भो कण्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि। [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे।]

कर्णः—दृढं प्रीतोऽस्मि भगवन् !

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके
राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः।
विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥ १६ ॥

इदानीं ब्राह्मणं दृष्ट्वा तस्याशीर्वादलाभेनात्मानं कृतकृत्यं मन्यमानः कर्णः कथयति—

अन्वयः—अद्य लोके राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः कृतार्थगणनाम् यातः तु विप्रेन्द्रपादरजसा पवित्रमौलिः एषः अहं कर्णः भवन्तं नमस्करोमि ॥ १६ ॥

व्याख्या—यात इति–अद्य = सम्प्रति। लोके = भुवने। राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः राजेन्द्राणां = राजेश्वराणां मौलौ = शिरसि ये मणयः रत्नानि तै रञ्जितं = सुशोभितं पादपद्मं = चरणकमलं यस्य सः। कृतार्थगणनाम् = कृतार्थानाम् गणनाम् = संख्यानम्। अहं = कर्णः। यातः = प्राप्तः। तु = किन्तु विप्रेन्द्रपादरजसा = विप्रेन्द्राणां = द्विजेन्द्राणां पादरजसा = चरणरेणुना। पवित्रमौलिः = पवित्रमस्तकः। एषः भवत्पुरःसरं स्थितः। अहं

हे कर्ण बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्ण—हे भगवन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

अनेक प्रतापी राजाओं के मुकुट की मणियों से जिसका चरण कमल शोभित है जो कृत-कृत्यता प्राप्त करने वाले राजाओं की गणना में है ब्राह्मणों के चरणों की धूलि से पवित्र मस्तक वाला ऐसा यह कर्ण आपको प्रणाम करता है ॥ १६ ॥

शक्रः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यं, यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये दीर्घायुर्भविष्यति। यदि न वक्ष्ये मूढ इति मां परिभवति। तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि। भवतु दृष्टम्। (प्रकाशम्) भो कण्ण! सुय्ये विअ, चन्दे विअ, हिमवन्ते विअ, सागले विअ, चिट्ठदु दे जसो। [भो कर्ण! सूर्य इव, चन्द्र इव, हिमवान् इव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः।]

कर्णः—भगवन्! किं न वक्तव्यं दीर्घायुर्भवेति। अथवा एतदेव शोभनम्। कुतः—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्धया हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

कर्णः। भवन्तम् = याचकम्। नमस्करोमि = प्रणमामि। वसन्ततिलकावृत्तम्। छेकानुप्रासालङ्कारः ॥ १६ ॥

प्रणामान्तरं ब्राह्मणेन दत्तमाशीर्वचनं समर्थयति कर्णः—

अन्वयः—हि पुरुषेण धर्मः यत्नैः साध्यः नृपश्रियः भुजङ्गजिह्वाचपलाः तस्मात् देहेषु नष्टेषु प्रजापालनमात्रबुद्धया गुणाः धरन्ते ॥ १७ ॥

शक्र—(अपने मन में) अब मुझे इसके लिये कैसा आशीर्वाद देना चाहिये यदि तुम दीर्घायु हो ऐसा आशीर्वाद देता हूँ तो चिरञ्जीवी होगा यदि आशीर्वाद न दूँ तो मुझे मूर्ख समझेगा इसलिये दोनों को छोड़ कर क्या कहना चाहिये (अच्छा उपाय समझ में आ गया) हे कर्ण! सूर्य के समान, चन्द्रमा के समान, हिमवान् के समान, तथा सागर के समान तुम्हारा यश बना रहे।

कर्ण—भगवन्! क्या आपको मुझे दीर्घायु हो ऐसा आशीर्वाद नहीं देना चाहिये था अथवा मेरे लिये यही अच्छा है। क्योंकि—

केवल धर्म ही मनुष्य के लिये यत्नपूर्वक साध्य है (क्योंकि) राजलक्ष्मियाँ

भगवन् किमिच्छसि । किमहं ददामि ।

शक्र—महत्तरं भिक्खं याचेमि । [महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—महत्तरां भिक्षां भवते प्रदास्ये । श्रूयन्तां मद्विभवाः ।

गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि
द्विजवर ! रुचितं ते तृप्तवत्सानुपात्रम् ।

व्याख्या—धर्मं इति—हि = यतः । पुरुषेण = मानवेन । धर्मः = शास्त्रोक्तविधिः यत्नैः = स्वकीयोद्योगैः । साध्यः = कर्त्तव्यः । नृपश्रियः = राजलक्ष्म्यः । भुजङ्गजिह्वाचपलाः भुजङ्गानां = सर्पाणां जिह्वा = रसना इव चपलाः = चञ्चलाः । तस्मात् = कारणात् । देहेषु = शरीरेषु । हतेषु = विनष्टेषु । प्रजापालनमात्रबुद्ध्या प्रजानां पालनं = संरक्षणं तन्मात्रा बुद्धिः = मतिः तया । गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः धरन्ते = अवशिष्टा भवन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ १७ ॥

इदानीं महत्तरां भिक्षां याचे । इति ब्राह्मणोक्तिमनुनिशम्य याच्ञायां तत्सङ्कोचदूरीकरणार्थं स्वकीयविभवं प्रकाशयति कर्णः—

अन्वयः—हे द्विजवर ! (अहम्) गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि तृप्तवत्सानुपात्रं तरुणं अधिकं अर्थिप्रार्थनीयं विहितकनकशृङ्गं पवित्रं रुचितं गोसहस्रं ते ददामि ॥ १८ ॥

तो सर्प की जिह्वा की भाँति चञ्चल है इसलिये प्रजा-पालन करने वाली अपनी बुद्धि से शरीर के पात हो जाने पर भी राजाओं के गुण (यश) स्थिर रहते हैं ॥ १७ ॥

अच्छा भगवन् ! तुम क्या चाहते हो ? मैं तुम्हें क्या दूँ ।

शक्र—बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ ।

कर्ण—अवश्य ही बहुत बड़ी भिक्षा आपको दूँगा । मेरा ऐश्वर्य सुनिये—

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! गुणवान् अमृत के समान दूध की धारा बहाने वाले

तरुणमधिकमर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनकशृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

शक्रः—गोसहस्सं त्ति। मुहुत्तअं खिरं पिबामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गोसहस्रमिति। मुहूर्तकं क्षीरं पिबामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

व्याख्या—गुणवदिति—हे द्विजवर = हे ब्राह्मणश्रेष्ठ। (अहं = कर्णः) गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि गुणवतां = प्रशस्तगुणयुक्तानां अमृतकल्पानां = सुधासदृशानां क्षीराणाम् = दुग्धानां धारामभिवर्षितुं शीलमस्येति। तृप्तवत्सानुयात्रं तृप्तानाम् वत्सानां अनुयात्रा यस्य तत् = वत्सतृप्त्यनन्तरमपि लोकयात्रानिर्वाहकम्। तरुणम् = युवानम्। अधिकम् = सविशेषम् अर्थिप्रार्थनीयं अर्थिभिः = याचकैः प्रार्थनीयम् = याचनीयम्। विहितकनकशृङ्गं विहितानि = अलङ्कृतानि कनकैः = सुवर्णैः शृङ्गाणि यस्मिस्तत्। पवित्रम् = यज्ञार्हम्। रुचितम् = शोभनम्। गोसहस्रम् = गवाम् = धेनूनां सहस्रम् = दशशतसंख्याकं। ते = तुभ्यं ददामि = स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं भवते समर्पयामि। मालिनीवृत्तम् ॥ १८ ॥

'मुहूर्तकं क्षीरं पिबामी'ति तत्रारुचि प्रदर्शयन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा अन्यद्देयवस्तुप्रतिपादयति कर्णः—

अपने बछड़ों को दुग्ध से तृप्त करने के अनन्तर लोक यात्रा के लिये पर्याप्त दूध दूहने वाले की तरुणावस्था सम्पन्न, अर्थियों के द्वारा अभ्यर्थित पवित्र स्वर्ण मण्डित सींग वाली इस प्रकार की गौओं के सहस्र मैं तुम्हें दान देने में समर्थ हूँ ॥ १८ ॥

शक्र—क्या कहा गायों का सहस्र! कुछ समय तक ही दूध पीऊँगा अतः हे कर्ण मैं नहीं चाहता, नहीं चाहता।

कर्ण—किं नेच्छति भवान् । इदमपि श्रूयताम् ।

रवितुरगसमानं साधनं राजलक्ष्म्या
सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् ।
सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि ॥ १९ ॥

शक्रः—अस्स त्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि । [अश्व इति । गुहुर्तकम् आलुभामि नेच्छाभि कर्णनेच्छामि ।]

अन्वयः—रवितुरगसमानं राजलक्ष्म्याः साधनं सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातं सुगुणम् अनिलवेगम् युद्धदृष्टापदानं वाजिनां बहु सहस्रं सपदि ते ददामि ॥ १९ ॥

व्याख्या—रवीति–रवितुरगसमानम् रवेः तुरगाः तैः समानम् = सूर्याश्वतुल्यम् । राजलक्ष्म्याः = राज्ञां लक्ष्मीः तस्याः = नृपश्रियः । साधनम् = कारणम् । सकलनृपतिमान्यम् = सकलानां = सम्पूर्णानां नृपतीनां = राज्ञाम् । मान्यम् = मानार्हम् । मान्यकाम्बोजजातम् मान्येषु = प्रशस्ततरेषु काम्बोजेषु = एतन्नामकदेशविशेषेषु जातम् = समुत्पन्नम् । सुगुणम् = प्रशस्तगुणयुक्तम् । अनिलवेगम् = वायुजवम् । युद्धदृष्टापदानं युद्धेषु दृष्टानि अपदानानि परिशुद्धकर्मणि पराक्रमयुक्त कर्माणीत्यर्थः । यस्मिमतत् = आह्वदृष्ट-

कर्ण—क्या कहते हैं मैं नहीं चाहता, तो यह भी सुनिये ।

सूर्य के घोड़ों के समान लाल वर्ण वाले राज लक्ष्मी के साधनभूत, अनेक राजाओं से प्रशंसित, अद्भुत गुणों से युक्त, वायु के समान तीव्र वेग वाले तथा युद्ध क्षेत्र में जिनकी वीरता देखी जा चुकी है ऐसे घोड़ों के सहस्र मैं तुम्हें सद्यः प्रदान करता हूँ ॥ १९ ॥

शक्र—क्या कहा घोड़े । ऐसे घोड़ों पर थोड़े ही काल तक चढ़ूँगा अतः नहीं चाहता, कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्णः—किं नेच्छति भगवान् । अन्यदपि श्रूयताम् !

मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं
गिरिवरनिचयाभं मेघगम्भीरघोषम् ।
सितनखदशनानां वारणानामनेकं
रिपुसमरविमर्दं वृन्दमेतद्ददामि ॥ २० ॥

पराक्रमादि कर्मवृत्तम् । वाजिनां = तुरगाणां । बहुसहस्रं = अनेकसहस्रसंख्याकम् । सपदि = सद्यः । ते = तुभ्यं । ददामि = अर्पणं करोमि । मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

तदपि अस्वीकुर्वन्तं दृष्ट्वा कर्णः अन्यद्देयवस्तु प्रतिपादयति—

अन्वयः—मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानम् गिरिवरनिचयाभम् मेघगम्भीरघोषं सितनखदशनानां वारणानां रिपुसमरविमर्दं एतद अनेकम् वृन्दं ते ददामि ॥ २० ॥

व्याख्या—मदेति-मदसरितकपोलं मदनेन=दानेन सरिताः=सिक्ता कपोला =गण्डस्थला यस्मितत् । षट्पदैः भ्रमरैः । सेव्यमानम् = निरन्तरं विराजितम् । गिरिवरनिचयाभम् गिरिवराणां = पर्वतश्रेष्ठानां निचयाः = पुञ्जाः तेषामाभा इव आभा यस्मितत् । मेघगम्भीरघोषम् मेघः = जलदः इव गम्भीरः घोषः स्वरः यस्मिस्तत् । सितनखदशनानां सिताः = शुभ्रवर्णाः नखाः दशनाश्च येषां तेषां = शुभ्रनखदन्तानाम् । वारणानाम् = गजानाम् । रिपुसमरविमर्दम्

कर्ण—क्या आप इन्हें नहीं चाहते । अच्छा और सुनिये—

गण्डस्थल से मद की नदियाँ बहाने वाले, भ्रमर गणों से सर्वदा व्याप्त, गिरि समूह के समान विशाल शरीर वाले, मेघ के समान गम्भीर गर्जना करने वाले शुभ्र वर्ण के दाँत और नख वाले, तथा युद्ध भूमि में शत्रु समूह को विनष्ट करने वाले ऐसे अनेक हाथियों के समूह मैं तुम्हें दूँगा ॥ २० ॥

शक्रः—गअ त्ति। मुहुत्तअं आलुहामि णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गज इति। मुहूर्तकम् आलुभामि नेच्छामि कर्ण नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भवान्। अन्यदपि श्रूयताम्। अपर्याप्तं कनकं ददामि।

शक्रः—गह्लिअ गच्छामि। (किंचिद् गत्त्रा) णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गृहीत्वा गच्छामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

कर्ण—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि।

शक्रः—पुहुवीए किं करिस्सम्। [पृथिव्या किं करिष्यामि।]

कर्ण—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि।

शक्र—अग्निट्ठोमफलेण किं कय्यं। [अग्निष्टोमफलेन किं कार्यम्।]

=शत्रूणाम् समरे=संग्रामे विमर्द्दम्=मर्द्दनकारकम्। एतत्=इदम्। अनेकम् बहु। वृंन्दं=समूहं। ते ददामि=दानं करोमि। मालिनो-वृत्तम्॥ २०॥

अग्निष्टोमफलम्=वैतानिकेऽग्नौ संसाध्यः स्वर्गफलप्रदः वेदविद्भिर-

---

शक्र—क्या कहते हो हाथियों के समूह? थोड़े समय तक चढ़ूँगा अतः नहीं चाहता। कर्ण! नहीं चाहता।

कर्ण—क्या आप इसे भी नहीं चाहते। और भी सुनो। अकूत सोना दूँगा—

शक्र—लेकर चला जाऊँगा (कुछ दूर जाकर) नहीं चाहिये कर्ण मुझे तुम्हारा सोना नहीं चाहिये।

कर्ण—तो भूमि जीत कर दूँगा।

शक्र—पृथ्वी लेकर क्या करना है।

कर्ण—तो अग्निष्टोम का फल दूँगा।

शक्र—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या करना है।

कर्णः—तेण हि मच्छिरो ददामि । [तेन हि मच्छिरो ददामि ।]

शक्रः—अविहा अविहा । [अविहा अविहा !]

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहास्त्रैः ।

वश्यमाचरणीयः वेदोक्तः अग्निष्टोमनामको यज्ञविशेषः स्वसम्पादितः तस्य फलं ददामि = दातुमिच्छामि ।

एवं तत्तद् देयं मुहुर्मुहुः निषेधन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा तदभिलषिते कवचकुण्डले दातुं स्वयं कर्णः प्रतिश्रृणोति—

अन्वयः—अङ्गैः सहैव जनितम् मम देहरक्षासहास्त्रैः देवासुरैः अपि यन्न भेद्यम् तथापि कुण्डलाभ्यां सह इदं कवचं यदि भगवते रुचितं स्यात् तर्हि मया प्रीत्या देयम् ।। २१ ।।

व्याख्या—अङ्गैरिति-अङ्गैः = शरीरावयवैः । सहैव = सार्धमेव । जनितम् = उत्पन्नम् । मम = कर्णस्य । देहरक्षा = शरीर रक्षणार्थं । सहास्त्रैः = आयुधधारिभिः । देवासुरैः = देवदानवैः । अपि यन्न भेद्यम् = भेत्तुं योग्यम् । तथापि कुण्डलाभ्याम् = कर्णाभरणाभ्याम् । सह = साकम् । कवचम् = वर्म । यदि = चेत् भगवते = ब्राह्मणाय । रुचितम् = अभिल-

---

कर्ण—तो मैं अपना शिर देता हूँ ।

शक्र—अनर्थ । अनर्थ

कर्ण—डरिये मत, मत डरिये । आप प्रसन्न हों ! और भी सुनिये—

शरीरावयवों के साथ ही मेरी रक्षा के लिये इन दो कुण्डलों के साथ मेरा कवच भी उत्पन्न हुआ है जो देवताओं और दानवों से सर्वथा

देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ॥२१॥

शक्रः—(सहर्षम् ।) देदु, देदु । [ददातु, ददातु ।]

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः । किं नु खल्वनेककपटबुद्धेः कृष्णस्योपायः । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तमनुशोचितम् । नास्ति संशयः (प्रकाशम्) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम् ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं वारयितुम् । पश्य

लषितम् । स्यात् = भवेत् । तदा मया = कर्णेन । प्रीत्या = सहर्षचित्तेन । देयम् = दातुं योग्यम् । यद्यप्यनेन कवचेन ममाङ्गरक्षणं भवति तथापि यदीदं भवदभीष्टं स्यात्तर्हि तदपि ददामीति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २१ ॥

कवचदाने समुद्यते कर्णे शल्येन वारितः कर्णः दानमाहात्म्यं प्रतिपादयति—

दुर्भेद्य है यदि आपको अभीष्ट हो तो मैं प्रसन्नता पूर्वक इन दो कुण्डलों के साथ यह कवच आपको दे दूँ॥ २१ ॥

शक्र—दीजिये दीजिये ।

कर्ण—(मन ही मन) यही इसका मतलब था । अवश्य ही अनेक कपट व्यवहारों में पटु बुद्धि वाले श्री कृष्ण का षड्यन्त्र है, अच्छा तो यह भी हो ले । मुझे धिक्कार है जो इस प्रकार अनुचित विचार कर रहा हूँ । कोई संशय नहीं करना चाहिये (प्रकट रूप में) तो इसे लीजिये ।

शल्य—अङ्गराज ! कवच मत दीजिये, मत दीजिये ।

कर्ण—शल्यराज ! बस बस मुझे मत रोकिये, देखिये ।

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपा ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

तस्माद् गृह्यताम् (निकृत्य ददाति ।)

अन्वयः—कालपर्ययात् शिक्षा क्षयं गच्छति सुबद्धमूलाः पादपाः निपतन्ति । जलस्थानगतं जलं शुष्यति च । किन्तु हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

व्याख्या—शिक्षेति–कालपर्ययात् कालस्य = समयस्य पर्ययः = विपरिवर्त्तनं तस्मात् । शिक्षा = अध्ययनम् । क्षयम् = नाशम् । गच्छति = प्राप्नोति । सुबद्धमूलाः सुबद्धानि = दृढतरं निगडितानि मूलानि येषां ते तथाभूताः । पादपाः = वृक्षाः । निपतन्ति = भूमौ विशीर्णाः भवन्ति । जलस्थानगतं जलस्य स्थानम् = जलाशयं तत्र गतम् = प्राप्तम् जलाशयस्थं जलम् = नीरं शुष्यति = शुष्कतां याति च । किन्तु यत् हुतम् = वैधे आधारभूते अग्नौ समन्त्रं प्रक्षिप्तम् । दत्तम् = उचिते देशकाले सत्पात्रे प्रत्यर्पितम् । तत् तथैव = अविनश्वररूपेण तिष्ठति = वर्त्तमानो भवति । अतः सर्वेभ्यः वस्तुभ्यः हुतं दत्तं च प्रशस्ततरमिति भावः । वंशस्थवृत्तम् ॥२२॥

समय के विपरीत होने पर उपार्जित विद्या नष्ट हो जाती है, मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी उखड़ कर गिर जाते हैं जल भी जलाशय में जाकर सूख जाता है किन्तु वैध आधार में दी गई समन्त्रक हबि तथा देशकाल तथा पात्र में विचार कर दिया हुआ दान ज्यों का त्यों बना रहता हैं उसका क्षय नहीं होता ॥ २२ ॥

इसलिये लीजिये महाराज ! शरीर से उखाड़ कर कवच देता है ।

शक्रः—(गृहीत्वा आत्मगतम्) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवाहमर्जुनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावतमारुह्यार्जुनकर्णयोर्द्वन्द्वयुद्धं पश्यामि । (निष्क्रान्तः ।)

शल्यः—भो अङ्गराज ! वञ्चितः खलु भवान् ।

कर्णः—केन ?

शल्यः—शक्रेण ।

कर्णः—न खलु । शक्रः खलु मया वञ्चितः । कुतः,

अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसङ्घमर्दनः ।

(निकृत्य = उत्पाटच) वञ्चितः = वञ्चनां प्रापितः । न खलु = नैवैतद् वाच्यम् ।

'वञ्चितः खलु भवानि'ति शल्योक्ति तिरस्करोति कर्णः—

अन्वयः—द्विजैः अनेकयज्ञाहुतितर्पितः किरीटवान् दानवसंघमर्द्दनः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिः पाकशासनः मया कृतार्थः खलु ॥ २३ ॥

शक्र—(कवच लेकर अपने मन में) ओह ! ये दोनों ले तो लिया । मैंने पूर्वकाल में देवताओं के समक्ष अर्जुन के विजय के लिये प्रतिज्ञा की थी वह वह काम आज पूरा हो गया । अतएव अब मैं ऐरावत पर चढ़ कर कर्ण और अर्जुन का द्वन्द्व युद्ध देखूंगा ।

(चला जाता है)

शल्य—अङ्गराज ! आप ठग लिये गये ।

कर्ण—किसके द्वारा ।

शल्य—इन्द्र के द्वारा ।

कर्ण—नहीं नहीं इन्द्र ही मेरे द्वारा ठग लिया गया । क्योंकि—

अनेक यज्ञों में आहुतियाँ देकर ब्रम्हाण लोग जिसे प्रसन्न करते हैं

सुरद्विपस्फालनकर्कशाङ्गुलि-
र्मया कृतार्थः खलुः पाकशासनः ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण! कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तापेन पुर-

व्याख्या—अनेकेति—द्विजैः = ब्राह्मणक्षत्रियादिभिः । अनेकयज्ञाहुतितर्पितः अनेकेषु=बहुषु यज्ञेषु = मखेषु या आहुतयस्ताभिः तर्पितः= प्रीणितः । किरीटवान् =किरीटः अस्ति अस्येति किरीटवान् =मुकुटधारी । दानवसंघमर्द्दनः दानवसङ्घान् = दैत्यसमूहान् मर्द्दयति=नाशयति तथाभूतः । सुरद्विपस्य =ऐरावतस्य आस्फालनम् तैः कर्कशा अङ्गुलयः यस्य सः = ऐरावतसम्वालनसञ्जातकठिनाङ्गुलीकः । पाकशासनः = पाकशत्रुः इन्द्र इत्यर्थः । मया=कर्णेन । कृतार्थः=सफलमनोरथः । कृतः—सम्पादितः । ब्राह्मणा अनेवयज्ञहविषा यं प्रीणयन्ति स शक्रः मत्तो याचमानः मया समधिगतमनोरथोऽभूदिति । वंशस्थवृत्तम् ॥ २३ ॥

कवचकुण्डलग्रहात् = कवचकुण्डलप्रतिग्रहणात् । जनितपश्चात्तापेन = समुत्पन्नखेदेन । शक्रः सन्नप्यहं कर्णसकाशात् प्रतिग्रहमकार्षमिति पश्चात्तापं

जो किरीट धारण करने वाला तथा दानव समूहों का विनाशक है इतना ही नहीं ऐरावत की पीठ थपथपाते रहने के कारण जिसके हाथों की अङ्गुलियों में घट्ठे पड़ गये हैं ऐसा वह इन्द्र आज मेरे द्वारा स्वयम् उपकृत हुआ यह मेरे लिये प्रशंसा की बात है ॥ २३ ॥

(ब्राह्मण रूप में देवदूत प्रवेश कर)

देवदूत—हे कर्ण कवच और कुण्डल के प्रतिग्रह से उत्पन्न पश्चात्ताप के कारण इन्द्र ने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है। पाँच पाण्डवों में किसी

न्दरेणानुगृहीतोऽसि । पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला नाम शक्तिरियं प्रतिगृह्यताम् ।

कर्णः—धिग्, दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मयातिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ।

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।

कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

देवदूतः—बाढम् । (निष्क्रान्तः)

कर्णः—शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

कुर्वता । पुरन्दरेण = इन्द्रेण । दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि = यस्मै मया दत्तं तस्याधमर्णस्य सकाशान्नाहं किञ्चिद्वाञ्छामीत्यर्थः ।

एक के वध के लिये यह अमोघ अस्त्र जिसका नाम विमला शक्ति है उसे ग्रहण करो ।

कर्ण—धिक्कार है । दान के प्रतिफल स्वरूप मैं किसी से कुछ नहीं लेता ।

देवदूत—अच्छा ! तो ब्राह्मण का वचन मान कर ही ग्रहण करो ।

कर्ण—क्या कहते हो ब्राह्मण के वचनानुसार । अच्छा मैंने कभी ब्राह्मण वचन का उल्लङ्घन नहीं किया है, तो वह मुझे कब प्राप्त होगी ।

देवदूत—जभी स्मरण करोगे तभी वह तुम्हें प्राप्त होगी ।

कर्ण—बहुत अच्छा । मैं उपकृत हो गया । तो आप लौट जाइये ।

देवदूत—बहुत अच्छा । (ऐसा कह कर चला गया)

कर्ण—शल्यराज ! तब रथ पर चढ़ा जाय ।

शल्यः – बाढम् । (रथारोहणं नाटयतः ।)

कर्णः—अये ! शब्द इव श्रूयते । किं नु खल्विदम्

शङ्खध्वनिः प्रलयसागरघोषतुल्यः
कृष्णस्य वा न तु भवेत्स तु फाल्गुनस्य ।
नूनं युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा
पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥ २४ ॥

युद्धार्थं प्रस्थितः रथस्थः कर्णः आहवे शङ्खध्वनिं श्रुत्वा कस्यायं शङ्खध्वनिः श्रीकृष्णस्यार्जुनस्य वेति विचिकित्सायाम् अर्जुनस्यैवायं भवेदिति अनुमिनोति —तदेवाह–

अन्वयः—प्रलयसागरघोषतुल्यः शङ्खध्वनिः कृष्णस्य वा न तु भवेत् स तु फाल्गुनस्य भवेत् । युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा पार्थः अद्य यथावलम् युद्धं करिष्यति इति नूनम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—शङ्खध्वनिरिति–प्रलयसागरघोषतुल्य प्रलयसागरः = प्रलयकालिक समुद्रः तस्य घोषः तेन तुल्यः = सदृशः । शङ्खध्वनिः शङ्खस्य ध्वनिः = कम्बुरवः । कृष्णस्य = वासुदेवस्य । वा = एव । न तु भवेत् = न स्यात् । स तु = ध्वनिः । फाल्गुनस्य = अर्जुनस्यैव भवितुमर्हति । यतः युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा । युधिष्ठिरस्य = धर्मराजस्य पराजयः = परिभवः तेन कोपितः – क्रुद्धः आत्मा = मनः यस्य सः । पार्थः = पृथापुत्रः = अर्जुनः । अद्य = सम्प्रति संग्रामे । यथावलम् बलमनतिक्रम्येति यथाबलम् = यावच्छक्ति । युद्धम् = संग्रामं । करिष्यति = विधास्यति । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २४ ॥

शल्य—ठीक है। (दोनों रथ पर चढ़ने का नाटक करते हैं ।

कर्ण—अरे यह शब्द जैसा सुनाई पड़ता है यह क्या ?

प्रलय कालीन समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर शब्द करने वाला यह कृष्ण के शङ्ख की ध्वनि है अथवा अर्जुन के शङ्ख की ध्वनि है। निश्चय ही युधिष्ठिर के पराजय को सुन कर क्रोधित हुआ यह अर्जुन मुझ से अपनी सारी शक्ति लगा कर युद्ध करेगा ॥ २४ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः - बाढम् !

(भरतवाक्यम्)

सर्वत्र सम्पदः सन्तु नश्यन्तु विपदः सदा ।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेक प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्तौ

इति कर्णभारं समाप्तम् ।

अधुना भरतवाक्येन नाटकावसानं करोति—

अन्वयः—सर्वत्र सम्पदः सन्तु सदा विपदः नश्यन्तु । राजगुपोपेतः एकः राजा नः भूमिं प्रशास्तु ॥ २५ ॥

व्याख्या—सर्वत्र=सर्वस्मिन् जगति । सम्पदः = सम्पत्तयः । सन्तु=तिष्ठन्तु भवन्तु । सदा = सर्वदा । विपदः = विपत्तयः । नश्यन्तु = प्रणाशं गच्छन्तु । राजगुणोपेतः = राजलक्षणयुक्तः । एकः = केवलः । राजा = भूपः । राजसिंह इत्यर्थः । नः = अस्माकम् । भूमिम् = वसुन्धराम् । प्रशास्तु = प्रकर्षतया शासनं करोतु । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्तौ = रङ्गमञ्चाद्बहिर्गतौ)

इति भासकृते कर्णभारे डा० गङ्गासागररायकृता गङ्गा व्याख्या समाप्ता

आश्विनस्य सिते पक्षे नवम्यां भृगुवासरे ।
टीका पूर्णतां याता प्रसीदत्वम्बिकाऽनया ॥

तो शल्यराज । जहाँ यह अर्जुन है वहीं मेरा रथ ले चलिये ।

शल्य—बहुत अच्छा ।

(भरत वाक्य)

सारे संसार में सम्पत्ति परिपूर्ण रहे । सर्वदा के लिये विपत्तियों का नाश हो जावे । राजोचित लक्षणों से युक्त राजा हम लोगों की इस पृथ्वी का शासन करे ॥ २५ ॥

(सब चले जाते हैं)

कर्णभार नाटक की भाषा टीका सम्पूर्ण
कर्णभार नाट समाप्त

* * *

परिशिष्टम्—१

नाटकीयपारिभाषिकशब्दविमर्शः

(१) नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देवद्विजनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

(२) प्रस्तावना-आमुख—

नटो विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है। उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं।

(३) सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु—नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं सूत्रधार

इसका उल्लेख करता है। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूचित करने पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति-सूत्रधार कहा जाता है।

(४) प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

(५) नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

(६) विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने लिये प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर सङ्कीर्ण होता है।

(७) प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अङ्कों के बीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती हैं।

(८) स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं ।

(९) प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है ।

(१०) विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुवेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने, कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है । उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं ।

(११) नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा कला-मान-युक्ता शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है ।

(१२) नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है । यथासम्भव वह नायक के गुणों से युक्त होती है ।

(१३) अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

(१४) नाटक—

नाटक की परिभाषा देते हुये बताया गया है कि जिसमें वीर अथवा श्रृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्य रस गौण रूप में बर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हो, नाटक कहा जाता है।

वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

तथा—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्विताम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्कां परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्बहणेद्भुतः ॥

—सा० द०, ६।६-१०

भरतमुनि के नाटयशास्त्र में नाटक का निम्नलिखित लक्षण है—

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्ताऽनुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥

यस्मात्स्वभावं सन्त्यज्य माङ्गोपाङ्गव्यतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥"
—ना० शा०, १९।१४७

(१५) काञ्चुकीय—

काञ्चुकीय के लक्षण में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीयेत्यभिधीयते ॥"

अर्थात् काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता। वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविधगुणों से युक्त होता है, कामादि दोषों से वर्जित तथा सभी कार्यों के विषयों में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है। मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

'ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता ॥'

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकपादः	श्लोकाङ्काः
अङ्गैः सहैव	२१
अत्युग्रदीप्ति	४
अनेकयज्ञाहुति	२३
अन्योन्यशस्त्र	९
अयं स कालः	८
इमे हि दैन्येन	११
इमे हि युद्धे	१३
करितुरगरथ	३
क्रूरो वज्रमुखेन	१०
गुणवदमृत	१८
धर्मो हि यत्नै	१७
नरमृगपति	१
पूर्वं कुन्त्या	७
मदसरितकपोल	२०
मा तावन्मम	५
यातः कृतार्थं	१६
रवि तुरगसमानं	१९
विद्युल्लता	९
शंखध्वनि प्रलयः	२४
शिक्षा क्षयं गच्छति	२२
श्रीमानेष न	१५
संग्रामे तुमुले	२
समरमुखमसह्यं	१३
सर्वत्र संपदः	२५
हतोऽपि लभते	१२

*

डा० गङ्गासागर राय की कृतियां

मौलिक ग्रन्थ—

१. महाकवि भवभूति (स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, म० म० मिराशी पं० बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा तदुत्तर (१९६२) एतद्विषयक समस्त ग्रन्थों द्वारा उद्धृत)। २. वैदिक आख्यान। ३. पौराणिक आख्यान, ४. अलङ्कारपीयूष, 5. Vadic Sakhas.

हिन्दी अनुवाद सहित—

१. काव्यमीमांसा। २. बालरामायण (डॉ० रामकरण शर्मा, बलदेव उपाध्याय, पं० बदरीनाथ शुक्ल, पं० पट्टाभिरामशास्त्री प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रशंसित तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)। ३. शाङ्खायन ब्राह्मण (डॉ० आर० एन० दाण्डेकर, पं० बलदेव उपाध्याय, पं० पट्टाभिराम शास्त्री प्रभृति विद्वानों से प्रशंसित तथा उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत)। ४. वामनपुराण (संयुक्त रूप से)। ५. शांखायन गृह्यसूत्र (भाष्य सहित) उ०प्र० सरकार द्वारा विशिष्ट पुरस्कार से पुरस्कृत ६. शांखायन श्रौतसूत्र (भाष्य सहित)। ७. याज्ञवल्क्य स्मृति टीका सहित

संकृस्त तथा हिन्दी टीका सहित—

१. नीतिशतक (अंग्रेजी अनुवाद भी), २. चन्द्रालोक, ३. अविमारक नाटक, ४. अभिषेक नाटक, ५. बाल चरित, ६. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, ७. प्रतिमा, ८. स्वप्नवासवदत्ता, ९. वेणीसंहार, १०. मुद्राराक्षस, ११. कर्पूरमञ्जरी, १२. बाल-भारत, १३. हरविजय (प्रथम सर्ग), १४. पञ्चतन्त्र (अपरीक्षित कारक), १५. रघुवंश (त्रयोदश-चतुर्दश सर्ग), १६. मृच्छकटिक, १७. चारुदत्त, १८. मध्यम व्यायोम, १९. कर्णभार, २०. दूतघटोत्कचम्।

अंग्रेजी अनुवाद—

१. कूर्मपुराण (संयुक्त रूप से), २. नीति शतक।

संपादन—

१. बालरामायण। २. स्कन्दपुराणीय मानसखण्ड। ३. अष्टाविशत्युपनिषद। ४. वसिष्ठ लिङ्ग पुराण। ५. श्लोक वार्तिक।

पत्रिकाओं का संपादन—

१. पुराणम् (सह-संपादक), २. हिन्दुत्व (सहायक संपादक), ३. विद्यामन्दिर पत्रिका, ४. ध्रुपद वार्षिकी (सह संपादक)।

शोधपत्र—

एक सौ के लगभग शोधपत्र

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२६० [redacted]

महाकविभासविरचितम्

पञ्चरात्रम् [redacted]

'गंगा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च [redacted]

डा० गंगासागररायः

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्बा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक
पोस्ट बाक्स नं० ११३९
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : श्री सरिता प्रेस; भैरोनाथ वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०५३
मूल्य : रु० ५०-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल पाठ
एवं टीका - परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३३४४५, ३३५९३०

प्रधानशाखाः फोनः ३२०४१४
चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

290

PAÑCARĀTRAM

OF

BHĀSA

[*With 'Gangā' Sanskrit and Hindi Commentaries*]

Edited and Commented by

Dr. GANGA SAGAR RAI, M. A., Ph. D.

All India Kashiraj Trust

Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar near Maidagin)
VARANASI-221001 (INDIA)

@ Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi
Phone : 333445, 335930
First Edition : 1996

Branch :- Ph. 320414
CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
CHOWK (The Benaras State Bank Building)
Varanasi-221001

निवेदन

भासनाटक चक्र की टीका और भाषानुवाद शृङ्खला में पञ्चरात्र नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम संतोष का अनुभव कर रहे हैं। आशा है कि भास के अन्य नाटकों की टीकायें भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेंगे और तदुपरान्त भास के विषय में एक साङ्गोपाङ्ग पूर्ण परिचयात्मक अध्ययन भी दे सकेंगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता कि वे प्रकाशन के साथ ही संपूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणिमिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थं इनका मैं अधमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश, जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उसके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरंजीवि राजेन्द्र जी ने जो तत्परता दिखाई धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रतिधन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी
अक्षयतृतीया २०५३ वि०
ई० २० अप्रैल १९९६

गङ्गासागर राय

भास की प्रशस्तियाँ

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्टः हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्य रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेवः प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
(कालिदासः मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्त शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाटयदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाटयशास्त्रपर अभिनवगुप्त की टीका)

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक विस्तीर्ण की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिपाक होता है—नाटकान्तं कवित्वम्’। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटकों की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारो की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ठ स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ—

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्य मणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य में तंजोर पुस्तकालय से

केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाट्य साहित्य में अपना अन्यतम स्थान कालिदास से पूर्व से ही रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः"।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभापण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्वंशो लेभे भासो देव कुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्निपरीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है —

भामनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्पति राज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र=अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि स्वप्न नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैला कर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्राप्त किया है।

भासम्भि जलवमित्ते कन्तीदेवे जहावि रहुवारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारिअन्दे अ जाणन्दो ॥

— गउडवहो ।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास की कविताकामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ॥

—प्रसन्नराघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्यदर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है—

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराज ……… ।"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनव भारती में किया है—

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराजविजय' की टीका में भास के विष्णुधर्म नाटक का उल्लेख किया गया है। परन्तु भास का 'विष्णुधर्म' नाटक अभी अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के गाल में समाविष्ट हुई। केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवनवृत्त—

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवन वृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उनके नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णनन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णव मतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान बताया है। महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पति चरणानुरागिनी पत्नी के पति एवं सन्तान प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था।

'धर्मो रक्षति रक्षितः'

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्ध मूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दतं च तथैव तिष्ठति ॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'

भास उद्योग के महत्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्नि र्जायते मथ्यमनाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्म भीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्न वासव दत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—

हमारे राजा ससागरा उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण कुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय हैं। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जब वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोका-

नुरंजक इन नाटकों का क्या ? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त है। विद्वानों ने नाटकों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्यस्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहवे वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने देवनागरी लिपि में उपलब्ध सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग विदेशी आक्रमण कारियों को दिया। जिसके परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल के गाल में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होवे के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा उरुभङ्ग के हस्तलेख मिले, इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ अभिषेक तथा प्रतिमानाटक की

हस्तप्रतियाँ प्राप्त कीं । इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं । गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं । निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी । यह भी सम्भव हो सकता है कि यह कर्णभारम् का अग्रिम अंश हो ।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेंट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी । उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की ।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्नलिखित हैं —

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण
(२) अविमारक
(३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमा नाटक
(५) मध्यम व्यायोग
(६) पञ्चरात्र
(७) अभिषेक
(८) दूत वाक्य
(९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार
(११) ऊरुभङ्ग
(१२) बालचरित
(१३) चारुदत्त

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है । परन्तु इस नाटक के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया । बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले सज्जन का विचार मिथ्या है । इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रामाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व—

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रतिपाद्य भास के तेरह नाटकों की प्रमाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार द्वारा मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः सूत्रधारः। सूत्रधारः—
उदयनवेन्दुसवर्णौ .... ।

—स्वप्न वासवदत्त।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो........प्रतिज्ञायौ०। इत्यादि।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्को के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्को के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के लेखक के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत वाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसका शासन हिमालय से विन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६–१९ तथा अन्य नाटकों के भरत वाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा के नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता है।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभाषित वाक्यों (पाठों) का प्रयोग किया है।

भास ने भरत के नाट्य में अविहित छ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्य निर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालंकार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का बध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे— 'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर है।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१६) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्रनामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे—अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए निवेद्यतां-निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतंत्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहाश्च लोके :"

—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयासि' ।—बाल० १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता , परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई ।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते" ।—पञ्चरात्र १।२५

"हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—(कर्ण० १७)

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती । इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूत वाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है ।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा ।

इन नाटकों का प्रणेता कौन था—

भास के नाटकों की प्रमाणिकता के विषय में मतैक्य है । भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है ।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जये ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं ।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हन राजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज, डा० वार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत मानते हैं ।

तृतीय वर्ग—डा० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भास कृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है ।

केरलीय चाक्यारों की रचना —

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केवल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(क) नाटकों की हस्त प्रतियों का केवल केरल में प्राप्त होना ।

(ख) यदि नाटक चक्र भास कृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता ।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है ।

(घ) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्न-वासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है । इस आधार पर चाक्यारों की प्रमाणिता सिद्ध होती है ।

चाक्यारों के रचना की अप्रामाणिकता –

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नही कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजना-शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजन शक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे । इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं –

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रमाणिकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता है । इसके साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो ।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रमाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन हैं, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो । इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते ।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है

कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन् या हेन मादन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि रखा था, अतः राजसिंह प्रशस्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राजसभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन् आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई। भास के नाटकों की प्रमाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रमाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक चाक्यार, पल्लवनरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता हैं। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भासकृत नहीं है।

विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन् चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश—

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते है।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हो तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमानाटक में अभिषेक संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख हैं अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला, (विदेह) अंग, बंग, जनस्थान दक्षिणापथ, तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने लंका, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया हैं, भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों

हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र चित्रकूट, मेरु, मन्दिर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, ये राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त वैदिक-कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे

प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अभिमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

—o—

---

[1] ए० एस० पी० अय्यर कृत 'भास' पृ० ७, यही मत डा० पुसालकर का भी है।

पञ्चरात्र

नाटक का संक्षिप्त कथानक—

संस्कृत साहित्य के नाटचजगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के द्वारा विरचित इस नाटक का कथानक महाभारत के विराट पर्व पर आधृत है। यह नाटक तीन अङ्कों में विभक्त है। इसका कथानक इस प्रकार है -

प्रथम अङ्क—

नान्दी के बाद सूत्रधार आता है और यह बताता है कि महाराज दुर्योधन का यज्ञ हो रहा है, जिसमें देश के सभी राजागण प्रेमवश अपने सभी बाल-बच्चों के साथ आये हुए हैं। इसके पश्चात् तीन ब्राह्मण आते हैं और वे कुरुराज के यज्ञ कि विभव के सम्बन्ध में कहते हैं—ब्राह्मणोच्छिष्ट अन्नों के बिखरे होने से ऐसा लगता है मानों सभी दिशाओं में काश के फूल खिले हों, होमधूम से तरुगण के फूलों की गन्ध भर गई है, व्याघ्र और हिरण एक से हो रहे हैं और पर्वत की गुफाओं में रहने वाले सिंह हिंसा से निवृत्त हो गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज के साथ सारा संसार यज्ञदीक्षित हो रहा है। दूसरा ब्राह्मण इस बात का समर्थन करते हुए कहता है कि हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव तृप्त हो गये हैं, यज्ञ में प्राप्त धन से विप्रगण तृप्त हो गये हैं, पशुसमूह के साथ पक्षीगण भी प्रसन्न हो रहे हैं, सब मानव आनन्दित हैं, इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रसन्न दीख रहा है, महाराज के सद्गुणों से यह मर्त्यलोक स्वर्ग का अतिक्रमण कर रहा है। इस प्रकार वे आपस में बात ही कर रहे है कि कुछ उत्पाती बालकों के लड़कपन से यज्ञमण्डप में आग लग गई किन्तु ऋत्विजों ने किसी प्रकार अग्नि शान्त करके यज्ञ सम्पन्न किया।

यज्ञ पूर्ण समारोह के साथ समाप्त होने के पश्चात् दुर्योधन अपने मित्र कर्ण और मामा शकुनि से मंत्रणा कर गुरुजनों को प्रणाम करता है। भीष्म—द्रोण दुर्योधन को यज्ञ में सम्मिलित राजाओं से मिलाते हैं। दुर्योधन

सभी का अभिवादन स्वीकार करता है। इसी समय दुर्योधन को यह मालूम होता है कि सम्पूर्ण राजा तो आ गये परन्तु विराट नहीं आये हैं। शकुनि बताते हैं कि मैंने उनके पास दूत भेजा था, सम्भव है मार्ग में हों। इसके पश्चात् दुर्योधन गुरु द्रोण से कहता है कि आप मेरे धर्म तथा धनुर्वेद के उपदेष्टा हैं कृपया अपनी दक्षिणा स्वीकार करें। द्रोण कहते हैं कि दक्षिणा रहने दो बाद में माँग लूंगा, परन्तु दुर्योधन के बहुत आग्रह करने पर द्रोणाचार्य कहते हैं कि और किसी वस्तु की तो मुझे अपेक्षा नहीं परन्तु जिनका कोई आश्रय नहीं तथा बारह वर्षों से जिनका पता नहीं चला है तुम उन पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। यही मेरी भिक्षा तथा दक्षिणा है। यह सुनकर शकुनि तुरन्त उद्विग्न हो जाता है और कहता है कि दक्षिणा देने का संकल्प किया है। क्या यह उचित है कि यज्ञ रूप प्रस्ताव उपस्थित कर के उसे धार्मिक वञ्चना द्वारा ठगा जाय? द्रोणाचार्य कहते हैं कि अपने भाइयों को उनका पैतृक राज्य लौटा दो यह कहना प्रवञ्चना — कैसे हुई? भीष्म अपने साम वचनों से सबको शान्त कराते हैं।

दुर्योधन, मामा शकुनि से मन्त्रणा करने की अनुमति माँगता है और जब दुर्योधन मामा शकुनि से पाण्डवों को आधा राज्य देने के सम्बन्ध में पूछता है तो शकुनि कहता है कि नहीं देना चाहिए। कर्ण से पूछने पर कहता है कि भगवान् राम ने जिस सौभ्रात्र का अनुभव तथा पालन किया, मैं उसका निषेध नहीं कर सकता हूँ, राज्य देना या न देने के विषय में आपका अधिकार है परन्तु युद्ध छिड़ने पर आपकी सहायता करूंगा, जब दुर्योधन शकुनि से गुरु दक्षिणा देने के मिथ्या भाषण से मुक्त होने का उपाय पूछता है तो शकुनि उसे द्रोण के पास ले जाकर कहता है कि दुर्योधन कहते हैं कि यदि आप पाँच रात्रियों के भीतर पाण्डवों का पता लगा दें तो वह पाण्डवों को आधा राज्य दे देगें। यह सुनकर द्रोणाचार्य उसकी शर्त मानने को तैयार नहीं होते और कहते हैं कि छल करने की कामना से निरन्तर बारह वर्षों तक खोज कर आप लोग जिनका पता नहीं लगा सके, पाँच रातों में मैं उनका पता कैसे लगा दूं? स्पष्ट शब्दों में यही कह दीजिए की

दक्षिणा नहीं देनी है। भीष्म के अनुरोध पर द्रोणाचार्य शर्त स्वीकार कर लेते हैं।

इसी समय दुर्योधन के दरबार में विराट नगर से दूत लौट आता है और यह बताया है कि विराट के सम्बन्धी सौ भाई कीचक को किसी व्यक्ति ने बिना अस्त्र-शस्त्र के हाथों से ही मार दिया। इस दुःख के कारण वे उपस्थित नहीं हो सके। यह समाचार सुनकर भीष्म को यह विश्वास हो जाता है कि यह कार्य भीमसेन के अलावा दूसरा नहीं कर सकता और वे द्रोण से दुर्योधन की शर्त को मान लेने को कहते हैं। द्रोणाचार्य सभी के सामने पञ्चरात्र वाली शर्त स्वीकार कर लेते हैं।

भीष्म दुर्योधन को यह सलाह देते हैं कि विराट का गोधन हरण कर लो क्योंकि विराट के साथ गुप्त शत्रुत्व है तथा वह तुम्हारे यज्ञ में भी सम्मिलित होने नहीं आया। सभी लोग इस सलाह को स्वीकार कर लेते हैं परन्तु द्रोण विरोध प्रकट करते हुए कहते हैं कि विराट हमारे प्रिय शिष्यों में हैं, उनका गोधन हरण क्यों किया जायेगा? भीष्म द्रोण को बताते हैं कि जब वहाँ आक्रमण होगा तो कृतज्ञता वश पाण्डव वहाँ विराट की सहायता के लिए आवेगें, बस वे प्रकाश में आ जायेगें और आप का काम बन जायेगा। इस प्रकार मन्त्रणा करने के बाद भीष्म द्रोण, कर्ण, कृप, शकुनि, दुर्योधन आदि कौरव सदल बल विराट, के गोधन पर आक्रमण करते हैं।

द्वितीय अङ्क –

वृद्ध गोपाल अपने परिवार के साथ सम्बन्धी गोपालकों से वार्तालाप कर रहा था। वह कहता है मेरी गायें सवत्सा रहें। गोप युवतियाँ सदा सधवायें रहें। हमारे महाराज विराट सार्वभौम राजा हों, महाराज विराट के जन्म गाँठ के शुभ अवसर पर गोदान के लिए नगरोद्यान के मार्ग पर आने के लिए गायें सजाई गई हैं, गोप बालक-बालिकायें मंगल मना रहे हैं। महाराज के वर्षगाँठ के अवसर पर नाचे गावें यह वृद्ध गोपाल आदेश देता है। इसी समय कौरव आकर गोधन का हरण करते हैं। गायें इधर-उधर भागती हैं। भट जाकर विराट को गोधन हरण की सूचना देता है। यह खबर सुनकर राजा क्रोधित होता

है और भट से कहता है रण का विस्तृत समाचार बताओ, भट कहता है कि रथ से उड़ी हुई धूल से गायें एकवर्ण हो गई थीं। उन पर चाबुक के आघातों से रेखाओं के बन जाने से नाना वर्णों की लकीरें पड़ गई हैं। यह सुनकर महाराज विराट शीघ्र ही रणक्षेत्र से लाने के लिए उद्यत होते हैं। इसी समय विराट भट से कहते हैं कि भगवान् युधिष्ठिर को बुलाओ। भगवान् के आने पर महाराज विराट सारी घटना उससे निवेदित करते हैं। कौरवों की सेना में भीष्म पितामह आये हैं यह सुनकर विराट सूत से कहते है कि मेरा रथ शीघ्र ले आओ, श्रद्धेय भीष्म रण के अतिथि के रूप में आयें हैं, अपने बाणों से उन्हें मैं आज प्रसन्न करूँगा, जीत पाऊँगा यह मनोरथ करना अनुचित है। विराट रथ सजाने को कहते हैं परन्तु उन्हें पता चलता है कि रथ पर सवार होकर राजकुमार उत्तर शत्रु सैन्य को विफल करने के लिए चले गये हैं। उन्हें यह भी बताया जाता है कि उत्तर ने रथ का सारथि बृहन्नला को बनाया है। यह सुनकर राजा आश्चर्य चकित एवं चिन्तित होते हैं, पर भगवान् उन्हें ढाढस बँधाते हुए कहते हैं कि महाराज, घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें यह भी सूचित किया जाता है कि उत्तर का रथ युद्ध मैदान छोड़कर श्मशान की ओर चला गया है। पुनः भट आकर विराट को बताया है कि कुमार उत्तर का रथ श्मशान से लौट कर युद्ध मैदान में आ गया। उसने अपने बाणों के प्रहार से सभी विपक्षियों को पराङ्मुख कर दिया। समाचार लाने वाले का कहना है कि द्रोणाचार्य ने यह उसी धनुष की टंकार है ऐसा समझकर लड़ना छोड़ दिया। भीष्म ने ध्वजा में लगे नामों को देखकर प्रहार करना छोड़ दिया। बाणों के प्रहार से कर्ण पराभूत हो रहे हैं, दूसरे नृप गण यह क्या हो गया ऐसा सोचकर चकरा रहे हैं केवल अभिमन्यु निर्भय भाव से लड़ता जा रहा है। इसके पश्चात् भट सूचना देता है कि गोहरण में अपनी विजय हुई। धार्तराष्ट्र परास्त होकर भाग गये।

विराट बृहन्नला बने अर्जुन को सभा में बुलाते हैं। और युद्ध का विस्तृत समाचार पूछते हैं। बृहन्नला कहना ही चाहती है कि उसी समय भट आकर यह समाचार देता है कि अभिमन्यु युद्ध में बन्दी बना लिया गया। अभिमन्यु को पकड़ने वाला वही है जिसे

राजा ने पाकशाला में नियुक्त किया। यह समाचार सुनकर राजा बृहन्नला से अभिमन्यु को बुलाने के लिए भेजते हैं। भीम तथा बृहन्नला अभिमन्यु को चिढ़ाते हैं। अभिमन्यु वीर क्षत्रिय कुमार के समान भीम तथा बृहन्नला के बातों का उत्तर देता है। अभिमन्यु निर्भीकता पूर्वक राजा विराट से बात करता है और कहता है कि यदि आप लोगो ने मुझे बाहु बल से पकड़ लिया है तो मेरे मध्यम तात भीम मुझे हाथों से ही छुड़ा ले जायेंगे।

इसी समय कुमार उत्तर वहाँ उपस्थित होता है और कहता है कि आज के युद्ध में विजय श्री दिलवाने वाले अर्जुन ही बृहन्नला बने हैं। इन्होंने श्मशान से अपना धनुव तथा अक्षय तरकश ले आकर भीष्म आदि नृपतियों को परास्त किया तथा हम लोगों की रक्षा की। वह युद्ध का सारा वृतान्त भी बताता है। अर्जुन कहते हैं कि यदि मैं अर्जुन हूं तो निश्चय रूप से यह भीमसेन तथा वह युधिष्ठिर हैं। युधिष्ठिर यह बताते हैं कि अब अज्ञातवास समाप्त हो चुका है। इन सब बातों से अभिमन्यु को आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ, उसे अपने पितृवर्गो से मिलकर नितान्त सन्तोष हुआ। सभी लोग परस्पर आपस में मिलते हैं। विराट अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन को देने का प्रस्ताव करते हैं, परन्तु अर्जुन इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि मैंने सम्पूर्ण अन्तःपुर को माता समझकर उसकी पूजा की है अतः आपके द्वारा दी गई उत्तरा को मैं पुत्र-अभिमन्यु की स्त्री के रूप में ग्रहण करता हूँ।

अर्जुन के इस प्रस्ताव का सभी अनुमोदन करते हैं। युधिष्ठिर इस प्रस्ताव को पितामह भीष्म के पास कुमार उत्तर के द्वारा भेजते हैं।

तृतीय अङ्क—

सूत आकर यह सूचित करता है कि शत्रुओं ने अभिमन्यु का अपहरण कर लिया। यह समाचार सुनकर द्रोण और भीष्म घबड़ाते हैं, दुर्योधन कहता है कि मैं अभिमन्यु को छुड़ाऊँगा क्योंकि मेरा बैर उसके पिता से है उससे नहीं, पहले वह मेरा लड़का है बाद में पाण्डवों का। शकुनि कहता है कि इसमें चिन्ता करने की बात नहीं, विराट अर्जुन और कृष्ण के भय से

अभिमन्यु को छोड़ देंगे। सूत यह भी बताता है कि कोई पैदल वीर ने आकर रथ को हाथ से पकड़ लिया, घोड़ों ने पूरा जोर लगाया फिर भी रथ खड़ा रहा, वह रथ पर चढ़ गया और अभिमन्यु को अपने कब्जे में कर लिया। यह सुनकर भीष्म कहते हैं यह समझिये कि अभिमन्यु भीम के अंक में पड़ गया है। द्रोण पितामह के बात का अनुमोदन करते हुए भीम के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करते हैं कि भीम ने कान तक बाण छोड़ा, मैंने कहा तुम्हारा शिर हिल गया जो बाण चलाने में दोष है, बस झट वह बाण की तरफ दौड़ गया और लक्ष्य तक पहुँचने से पहले ही उसने अपने छोड़े गये बाण को पकड़ लिया। शकुनि इस बात का विरोध करता हुआ कहता है कि संसार में कोई दूसरा बलवान् नहीं है केवल पाण्डव ही आपको बलवान् दिखाई पड़ते हैं। उसी समय सूत आकर यह सूचित करता है कि जिस बाण ने आपकी ध्वजा को विद्ध किया है उसपर किसी का नाम अंकित है। बाण मंगाया जाता है। शकुनि बाण पर अर्जुन का नाम पढ़कर फेंकता है जो द्रोण के पैरों पर गिरता है। द्रोण बाण लेकर कहते हैं कि शिष्य अर्जुन ने बाण भीष्म को प्रणाम करने के लिए चलाया था और यह बाण क्रमशः मुझे प्रणाम करने के लिए मेरे पैरों पर आ पड़ा। शकुनि कहता है कि बाण पर विश्वास नहीं करना चाहिए और यह अर्जुन नामधारी कोई दूसरा योद्धा होगा। दुर्योधन कहता है कि मैं राज्य का आधा भाग तभी दूंगा, जब युधिष्ठिर को लाकर दिखादेंगे।

इसी समय दूत रूप में विराटनगर के राजकुमार उत्तर आते हैं, आचार्य पितामह प्रभृति राजगण को प्रणाम करने के बाद बताते हैं कि मुझे युधिष्ठिर ने भेजा है और कहा है कि 'उत्तरा मुझे पुत्रवधू के रूप में प्राप्त हुई है। मैं आपलोगों की प्रतीक्षा कर रहा हूं, विवाह यहाँ हो या वहाँ इसका आपलोग निर्णय करें।' शकुनि झट उत्तर देता है कि नहीं। द्रोणाचार्य कहते हैं कि पञ्चरात्र के भीतर पाण्डवों का पता लग गया, इसलिए धर्मपूर्वक देने को स्वीकार की गई गुरुदक्षिणा धर्मपूर्वक ही दे दी जाय। दुर्योधन अपनी प्रतिज्ञा को पुरा करता है और घोषणा करता

है कि पाण्डवों को आधा राज्य दिया, और कहता है कि सत्य के कारण लोग मरने के बाद भी यशःशरीर से जीवित रहते हैं। द्रोण ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

दुर्योधन—नाटक में सर्व प्रधान व्यक्ति दुर्योधन है नाटक की सम्पूर्ण कथा तथा संपूर्ण क्रिया-कलाप उसी की ओर उन्मुख हैं। उसके द्वारा यज्ञानुष्ठान कराये जाने का वर्णन है जिसकी प्रशंसा सभी ने की है। यज्ञ का सफलतापूर्वक पूर्णाहुति तथा उसमें देश-देशान्तर के सभी राजाओं का उपस्थित होना तथा उनके द्वारा दुर्योधन कर देना आदि सम्पूर्ण कार्य उसके शौर्य—पराक्रम को प्रकट करते हैं। वह यज्ञ के होम धूमों से देवताओं का तथा प्रभूत मात्रा में दक्षिणाओं से ब्राह्मणों को तृप्त करता है। यज्ञ की सफलता से उसे इतना आत्मसंतोष हुआ कि वह इसी देह से स्वर्गसुख का अनुभव करने लगा और मरने के बाद स्वर्ग सुख को काल्पनिक कहता है।

दुर्योधन का गुरु चरणों में अटूट प्रेम है। वह गुरु द्रोण से गुरु दक्षिणा मांगने के लिए बार-बार कहता है। जब गुरु द्रोण दक्षिणा रूप में पाण्डवों का आधा राज्य देने को कहते हैं तो थोड़े समय के लिए वह विचलित होता है और मंत्रणा करने के लिए समय माँगता है, परन्तु शकुनि के बार-बार समझाने पर भी वह अपने दिये गये वचन से मुकरना नहीं चाहता है। वह कहता है कि गुरु देव के हाथ में संकल्प के लिए जल छोड़ दिया है और कुल वृद्धों के सामने मैंने वचन दिया है। इसलिए मैं गुरु-दक्षिणा को पूरा करूंगा चाहे गुरु देव ने वञ्चना क्यों न की हो।

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम्।
तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप! जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम्॥ १।४७

दुर्योधन स्वाभिमानी है। जब गुरु द्रोण कहते हैं कि यदि पाण्डवों का राज्य नहीं लौटाया जायेगा तो वे बलपूर्वक ले लेंगे तो यह सुनकर दुर्योधन काफी उत्तेजित हो जाता है और कहता है कि द्रौपदी के केश-कर्षण के समय उन्होंने अपना पराक्रम क्यों नहीं प्रदर्शित किया।

पाण्डवों का प्रबल शत्रु होते हुए भी उनके पुत्र अभिमन्यु से प्रेम करता हैं। जब उसे ज्ञात होता है कि विराट के गोधनहरण के समय अभिमन्यु बन्दी बना लिया गया तो वह कहता है कि मैं अभिमन्यु को शीघ्र छुड़ाऊँगा क्योंकि पहले वह मेरा पुत्र है बाद में पाण्डवों का—

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञाति भेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्
सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ॥ ३।४

दुर्योधन अपनी बात पर दृढ़ रहता है, जब उसे शर्त के अनुसार पाँच रात के भीतर ही पाण्डवों का पता लग जाता है तो वह उन्हें आधा राज्य लौटाने को सहर्ष तैयार हो जाता है, वह कहता है कि मरने के बाद व्यक्ति सत्य के सहारे बहुत दिन तक जीवित रहता है।

बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथा पुरम्।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ ३।२५

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नाटककार ने दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त उदात्त प्रस्तुत किया है।

द्रोणाचार्य—गुरु द्रोण अत्यन्त शिष्यवत्सल आचार्य हैं उन्हें अपने लिए कोई कामना नहीं है, दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों का राज्यहरण कर निष्कासन कर देना उनके हृदय में हमेंशा सालता रहता है। जब दुर्योधन गुरु दक्षिणा माँगने की बात करता है तो वह दक्षिणा के रूप में पाण्डवों का आधा राज्य लौटा देने की बात कहते हैं। और इस कार्य के निमित्त शकुनि जैसे शठ व्यक्ति को भी अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं।

ब्राह्मण होते हुए भी द्रोणाचार्य एक ख्याति प्राप्त योद्धा थे। दुर्योधन उन्हें धर्म तथा धनुष दोनों का आचार्य कहता है। उनके युद्धविद्याविशारद का परिचय तब मिलता है जब भीष्म द्रोण के सम्बन्ध में कहते है—

'ममायुधं वृत्तिरं पहृवस्तव'

द्रोणाचार्य के शिष्य वत्सलता तथा उदारता का परिचय हमें देखने को मिलता है जब दुर्योधन आधा राज्य पाण्डवों को देने की घोषणा करता है

तब वे कहते हैं कि दोनों वंश के पारस्परिक कलह शान्त हो जाने हम सभी प्रसन्न है और सम्पूर्ण पृथ्वी हमारे राजसिंह का पालन करे—

हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धः कुलसंग्रहः ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ३।२६

संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्रोण निस्पृह, उदात्तमना तथा शिष्यवत्सल आचार्य है ।

भीष्म—भीष्म का चरित्र अत्यन्त प्रशस्त रूप में प्रदर्शित किया गया है । वे पाण्डवों के लिए हार्दिक सहानुभूति रखते थे । वे हमेशा न्याय संगत बात ही करते थे । दुर्योधन को हमेशा हितकारी सुझाव देते थे तथा उसे यह भी बताते थे कि शकुनि मित्र के रूप में तुम्हारा शत्रु है इसके ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए । उनके चरित्र में विनय तथा शिष्टाचार की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है तथा वे धर्म की प्रतिमूर्ति ही है । इसके साथ ही वह नीतिवान भी है । जहाँ उन्होंने सुना कि कीचक का बिना शस्त्र के वध हुआ तब वे समझ गये कि यह कार्य भीम के बिना दूसरे से सम्भव नहीं है और वे द्रोणाचार्य से कहते हैं कि दुर्योधन की पाँच रात वाली शर्त स्वीकार कर ले और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुर्योधन को यह सलाह देते हैं कि विराट का गोधन हरण किया जाय । उनके इस मन्तव्य को न तो दुर्योधन और न ही शकुनि समझ पाता है । उनकी नीति कुशलता तब और अधिक प्रदर्शित होती है जब वे शकुनि से कहते हैं कि बुढ़ापे के कारण मेरी आँखें शिथिल हो गयी हैं कृपया आप इस बाण पर खुदे नाम को पढ़े 'वत्स !. गान्धारराज ! । जराशिथिलं में चक्षुः । वाच्यतामयं शरः ।

कर्ण—कर्ण का चरित्र इस नाटक में बहुत कम आया है परन्तु उसके चरित्राङ्कन में नाटककार ने पूरी सावधानी बरती है । वह विनयशील, कर्म में विश्वास करनेवाला तथा वीरतापूर्ण पौरुष वाला व्यक्ति है । उसकी दानशीलता तथा वीरता तब झलकती है जब वह कहता है कि जो क्षत्रिय अपने पुत्र के लिए धन संचय करता है वह ठगा जाता है, राजा को सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को देकर पुत्रों के लिए केवल चाप रख छोड़ना चाहिए—

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षी वञ्चयते सन्निधाता ।
त्रिप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ॥ १।२५

कर्ण कहता है कि धन और देह दोनों नश्वर हैं। संसार में केवल यश शेष रहता है—

इक्ष्वाकु–शर्य्याति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाम्बरीषाः ।
एते सकोशाः पुरुषाः सराष्ट्रा नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ॥ १।२५

कर्ण गलत बात का कभी समर्थन नहीं करता, जब दुर्योधन पाण्डवों के राज्य लौटाने के सम्बन्ध में उससे राय पूछते हैं तो वह कहता है कि राम ने जिस सौभ्रात्र का अनुभव और पालन किया उसका निषेध में नहीं करता परन्तु युद्ध छिड़ने पर हम आपकी सहायता करेंगे—

रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि ।
क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं सङ्ग्रामकालेषु वयं सहायाः ॥

कर्ण की वीरता उस समय स्पष्ट झलकती है जब उसे ज्ञात होता है कि युद्ध में अभिमन्यु बन्दी बना लिया गया, तो वह कहता है कि आपके प्रिय कार्य को करने में वह बन्दी बनाया गया और हम उसे बचा नहीं सके ऐसी स्थिति में हमको धनुष छोड़ कर वल्कल वस्त्र धारण कर लेना चाहिए—

मा तावत् स्वजनभयात् तु बालभावाद्
        व्यापन्नः समरमुखे तव प्रियार्थम् ।
अस्माभिर्न च परिरक्षितोऽभिमन्यु-
        र्गृह्यन्तां धनुरपनीय वल्कलानि ॥ ३।५

शकुनि—इसके चरित्र में छल, कपट, प्रवञ्चना आदि की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। पाण्डवों से वह हमेशा जला करता है, इसीलिए जब दुर्योधन गुरुदक्षिणा के रूप में पाण्डवों का राज्य लौटाने की बात कहता है तो वह उसका विरोध करते हुए दुयर्धोन को यह समझाता है कि गुरु तुम्हें ठग रहे हैं। दुर्योधन को मन्त्रणा के समय भी वह यही सुझाव देता है कि उनका राज्य मत लौटाओ, पञ्चरात्र की शर्त भी वही रखता है। जब अर्जुन के नाम अक्षरों से अंकित बाण मिलता है तो वह ईर्ष्यावश कहता है कि कोई दूसरा अर्जुन होगा। अभिमन्यु को जब विराटनगर

बन्दी बनाए जाने का समाचार दुर्योधन को ज्ञात होता है तो वह उसे छुड़ाने के लिए उद्विग्नता प्रकट करता है। उस समय शकुनि कहता हैं कि विराट अभिमन्यु को अर्जुन, कृष्ण या बलराम के भय से छोड़ देगा। उसे छुड़ाने की आवश्यकता नहीं। इन सारी दुष्टताओं के साथ-साथ उसे पाण्डवों के बल-पौरुष का भी ज्ञान है। जब दुर्योधन उससे पूछता है कि कोई ऐसा राज्य बताओ जो पाण्डवों को दिया जाय तो वह कहता है कि कोई ऐसा देश नहीं है और पार्थ से बढ़कर कोई बलवान नहीं है। जहाँ युधिष्ठिर राजा होंगे वहाँ तो ऊसर भी उपजाऊ हो जायेगा—

> शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद् बलवत्तरः।
> ऊषरेऽष्वपि सस्यं स्यात् यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ १.४६

युधिष्ठिर— युधिष्ठिर धर्म की प्रतिमूर्ति, प्रतिज्ञापरायण तथा मर्यादा के प्रबल पोषक हैं। कौरवों ने उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया परन्तु फिर भी उनके मन में कौरवों के प्रति कोई बुरी भावना नहीं है तथा वे उनसे बहुत प्रेम करते हैं। जब दुर्योधन की सेना विराट के ऊपर आक्रमण करती है तो उन्हें दुःख होता है, और दुर्योधन के अपराध को अपना अपराध समझकर खेद के स्वर में कहते हैं—

> एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि।
> वैरप्रियैस्तैर्हि कृतेऽपराधे यत्सत्यमस्माभिरिवापराद्धम्॥ २.९

उनकी महानता के सम्बन्ध में शकुनि कहता है कि जहाँ युधिष्ठिर राजा होंगे वहाँ ऊसर भी उपजाऊ हो जायेगा—

> 'ऊषरेऽष्वपि सस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः'। १।४६

युधिष्ठिर के सम्बन्ध में विराट कहता है—

'यदि शक्तोऽपि युधिष्ठिरो मर्षयति, नाहं मर्षयामि'।

(द्वि० अङ्क)

अर्थात् कौरवों के दुष्टतापूर्ण कार्य को समर्थ होकर युधिष्ठिर ही सह सकते हैं मैं नहीं सहूँगा।

वे भगवान् के नाम से विराट के यहा अज्ञातवास व्यतीत करते समय भी अपने स्वरूप की रक्षा करते हैं और कभी भी अपने प्रति सन्देह नहीं होने देते।

जब विराट ने उत्तरा के साथ अर्जुन के विवाह का प्रस्ताव रखा तब युधिष्ठिर सोचते हैं कि कहीं अर्जुन उत्तरा के प्रेम के कारण यह बात स्वीकार कर ले तो यह बात लज्जा की है । वे कहते हैं —

एतदवनतं शिरः ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युधिष्ठिर का चरित्र अत्यन्त ही उदात्त रूप में प्रदर्शित किया गया है ।

अर्जुन—अर्जुन का चरित्र एक वीर पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है, बृहन्नला के रूप में कुमार उत्तर का सारथी होना तथा युद्ध के मैदान में पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोण समेत समस्त कौरव सेना को परास्त करना उनकी वीरता का परिचायक है । इतना होते हुए भी उन्हें अभिमान नहीं है । युद्ध का सारा श्रेय स्वयं न लेकर कुमार उत्तर को देते हैं ।

पाण्डवों का महान् निन्दक शकुनि भी कहता है कि पार्थ से बढ़कर कोई बलवान् नहीं है ...

'कः पार्थाद् बलवत्तरः' ।

अर्जुन के चरित्र की प्राञ्जलता उस समय चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लेती है जब विराट ने पारितोषिक के रूप में उसे उत्तरा को देने की बात कही । तब वे कहते हैं -

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया ।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ ३।७१

भीम—भीम एक वीर योद्धा है । उनकी भुजाओं में बहुत शक्ति है । वे इतने बाहुबली हैं कि उन्होंने बिना अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग के सौ भाई कीचकों को मार दिया । उसकी द्रुतगामिता के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करते हुए गुरु द्रोण कहते हैं —

कर्णायते तेन शरे विमुक्ते विकम्पितं तस्य शिरो मयोक्तम् ।
गत्वा तदा तेन च वाणतुल्यमप्राप्तलक्ष्यः स शरो गृहीतः ॥

भीष्म भी उसकी बहादुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस समय

द्रौपदी को सभा में अपमानित किया गया उसी समय वह सभा के स्तम्भों से प्रहार करना चाह रहा था परन्तु युधिष्ठिर ने उसे रोक लिया—

येन भीष्मः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः।
यद्येकस्मिन् विमुक्तः स्यान्नास्माच्छकुनिराक्षिपेत् ॥ १।३८

भीम द्रौपदी से बहुत प्रेम करता है। जब अभिमन्यु को वन्दी बनाये जाने पर अर्जुन अपनी नाराजगी प्रकट करते हैं तो वह कहता है—

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान् को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते।
इष्टापत्त्या किन्तु दुःखे हि मग्ना पश्यत्वेनं द्रौपदीत्याहृतोऽयम् ॥
२।४६

अभिमन्यु को पकड़े जाने से होनेवाले दोषों को जानते हुए भी उसने यह कार्य केवल दुःख में पड़ी द्रौपदी के पुत्र दर्शन के लिए किया।

अभिमन्यु—अभिमन्यु अपने पिता के समान ही वीर तथा उत्साहसम्पन्न बालक है। युद्ध के मैदान में निर्भय होकर युद्ध करता है—

'भयेऽप्येको बाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति' (द्वि० अंक)

अर्जुन युद्ध में अभिमन्यु का कौशल देखकर उसकी वीरता के सम्बन्ध में कहते हैं—

'सदृश इह तु तेन नास्ति कश्चित् क इह भवेन्निहतेषु कीचकेषु।'
(द्वि० अंक)

अभिमन्यु से जब अर्जुन पूछते हैं कि तुम निहत्थे आदमी के द्वारा कैसे पकड़े गये तो वह कहता है कि निःशस्त्र होकर ये मेरे सामने गये इसलिए मैं पकड़ा गया क्योंकि पिता अर्जुन को स्मरण कर निहत्थे पर कौन प्रहार करे—

अशस्त्रो मामभिगतस्ततोऽस्मि ग्रहणं गतः।
न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यादर्जुनं पितरं स्मरन् ॥ २।५२

उसकी वीरता के सम्बन्ध में अर्जुन के द्वारा चिढ़ाये जाने पर उसका पौरुष उबल पड़ता है और वह कहता है कि मेरे कुल में ऐसी परम्परा नहीं है कि स्वयं अपनी प्रशंसा करें, यदि आपको देखना है तो मरे हुए सैनिकों के शरीर को देखिये, वाणों पर दूसरा नाम नहीं पाइयेगा—

अलमात्मस्तवं कर्तुं नास्माकमुचितं कुले।
हतेषु हि शरान् पश्य नाम नान्यद् भविष्यति ॥ २।५०

विराट—विराट का चरित्र-चित्रण सुसंस्कृत तथा प्रजावत्सल राजा के रूप में हुआ है। ब्राह्मणों के प्रति उनके मन बड़ी श्रद्धा है। अपने जन्म गांठ के उपलक्ष्य में गोदान करते हैं। जब उन्हें ज्ञात होता है कि कौरव सेना गोधन हरण कर रही है तो वे तुरन्त रथ सजाने की आज्ञा देते हैं; जब उन्हें बताया जाता है कि कुमार उत्तर बृहन्नला को सारथि बनाकर युद्ध मदान में गये तो वे सारथि के ऊपर क्रोधित होते हैं कि तुम क्यों नहीं गये। जब तक युद्ध में विजय का समाचार नहीं मिलता तब तक वे काफी चिन्तित रहते हैं और भगवान् युधिष्ठिर से मंत्रणा करते रहते हैं। जब उन्हें मालुम होता है कि भीष्म भीरण में आये हैं तो वे जय के लिए नहीं बल्कि अपनी वीरता का कौशल दिखलाने की बात करते हैं—

रथमानय शीघ्रं में श्लाघ्यः प्राप्तो रणतिथिः।
तोषयिष्ये शरैर्भीष्मं जेष्यामीत्यमनोरथः ।। २।१३

अभिमन्यु को बन्दी बनाये जाने पर भी उसके प्रति सौजन्यपूर्ण व्यवहार करते हैं। क्योंकि पाण्डवों के प्रति वे आदर भाव रखते थे। पाण्डवों के प्रति कितना सम्मान भाव उनके मन में था उसकी पुष्ठि उनके इस कथन से होती है —

शूराणां सत्यसन्धानां प्रतिज्ञां परिरक्षताम् ।
पाण्डवानां निवासेन कुलं मे नष्टकल्मषम् ।। २।६६

उत्तर—राजकुमार है। कौरवों के द्वारा गोधन हरण का समाचार सुनकर वह बृहन्नला (अर्जुन) को अपना सारथि बनाकर युद्ध भूमि में जाता है और वहीं पर उसको बृहन्नला के असली स्वरूप का ज्ञान होता है।

युद्ध में कुशलता दिखलाने वाले वीरों के नाम अंकित करने से उसके सैन्य संरक्षण कौशल का परिचय मिलता है।

वह अत्यन्त निःशंक तथा निडर है। अन्त में एक दूत के रूप में उत्तरा के विवाह के सम्बन्ध में दुर्योधन की सभा में उपस्थित होता है।

समीक्षण

महाकवि भास का यह नाटक काव्योत्कर्ष की दृष्टि से उत्तम कोटि का कहा जायेगा। सरल शब्दावली में भावों को अभिव्यक्त करना भास की अपनी विशेषता है। शब्दों के माध्यम से भास ऐसा

चित्र उपस्थित करते हैं कि सम्पूर्ण दृश्य सामने आ जाता है। शकुनि के मुख से 'अषरेऽपि हास्यं स्थाघत्र राजा युधिष्ठरः' की उक्ति बरबस ही हृदय को मुग्ध कर लेती है। नाटक में स्थान-स्थान पर अलंकारों का प्रयोग भी नितान्त स्पृहणीय है। ब्राह्मणों के द्वारा दुर्योधन की यज्ञ-समृद्धि का वर्णन भास ने बड़ी कुशलता से किया है।

नाटक में स्थान-स्थान पर ऐसी हृदय हारिणी सूक्तियों का प्रयोग इतनी बारीकी के साथ किया गया है कि उसके प्रभावोत्पादन में दूनी वृद्धि कर देती हैं। जैसे—'सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः, 'मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति', 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते', आदि।

महाभारत के कथानक को एक नया आयाम एवं कलेवर प्रदान करते हुए नाटककार ने पाँच रातों में पाण्डवों का पता लग जाने पर उनका राज्य लौटाने की दुर्योधन की प्रतिज्ञा तथा लग जाने पर राज्य लौटा देना नाटककार की अपनी सूझ-बूझ का परिचय देता है।

भास ने महाभारत के कथा को नया आयाम देने के साथ-साथ दुर्योधन के चरित्र के संपूर्ण कल्मषों को धोते हुए उदात्त बनाने का प्रयास किया है।

डा० ए० बी० कीथ ने पञ्चरात्र को रूपकों के दस भेदों में 'समवकार' माना है। साहित्यदर्पण में समवकार का लक्षण निम्नलिखित प्रकार से दिया है—

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्।
सन्धयो निर्विमर्षास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे ॥

'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के आधार पर इसे समवकार माना जा सकता है परन्तु भास के नाटकों में नाट्यशास्त्र के नियमों का कठोरतापूर्वक पालन नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह व्यायोग नामक नाट्य प्रकार है।

नाटक का प्रधान रस वीर है। नाटक में श्रृङ्गार रस का नितान्त अभाव है, इसका कारण यह है कि नाटक में स्त्री पात्रों का न होना। संक्षेप में कह सकते हैं कि पञ्चरात्र नाटक महाकवि भास की लेखन कला एवं नाट्य चातुरी का ज्वलन्त उदाहरण है।

पात्र-परिचय

दुर्योधन — कुरुदेश का राजा।
भीष्म — कौरवों तथा पाण्डवों के पितामह
द्रोण — धनुष् विद्याचार्य
कर्ण — अङ्गदेशाधीश तथा दुर्योधन के मित्र
शकुनि — दुर्योधन के मामा तथा गान्धारराज
वृद्धगोपालक — विराट के घोषपाल
गोमित्रक — चरवाहा
भगवान् — अज्ञातवासी युधिष्ठिर
भीमसेन — विराट के पाकाध्यक्ष
बृहन्नला — नपुंसकरूप में अर्जुन
राजा — विराट, मत्स्यदेशाधीश
उत्तर — विराट के पुत्र
अभिमन्यु — अर्जुन के पुत्र
सूत — सारथि
काञ्चुकीय — विराट के कञ्चुकी
भट — राज भृत्य

॥ श्रीः ॥

पञ्चरात्रम्

'गंगा' संस्कृत-हिन्दी-टीकोपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

द्रोणः पृथिव्यर्जुनभीमदूतो यः कर्णधारः शकुनीश्वरस्य ।
दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिरः स पायाद् विराडुत्तरगोऽभिमन्युः ॥ १ ॥

नत्वा विनायकं विष्णुं शिवं दुर्गां दिनेश्वरम् ।
पञ्चरात्रस्य विवृतिं वितनोमि यथामति ॥

अथ कविकर्मकुशलः लोकशास्त्रोभयविचक्षणः वैष्णवाग्रणीः आस्तिकशिरोमणिः महाकविर्भासः पञ्चरात्रं नाम नाटकं निर्मित्सुः प्रारीप्सितग्रन्थपरिसमाप्तितदभिनयसाफल्यसंपत्तिपरिपन्थिदुरितप्रशमाय पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गं मङ्गलमारचयति—द्रोण इति ।

सूत्रधारः—

अन्वयः—द्रोणः पृथिव्यर्जुनभीमदूतः यः शकुनीश्वस्य कर्णधारः दुर्योधनः भीष्मयुधिष्ठिरः उत्तरगः अभिमन्युः सः विराट् पायात् ॥ १ ॥

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है)

जो द्रोण (काक) के तुल्य कृष्ण वर्ण है, जिन्होंने पृथ्वी प्राप्त कराने के लिये भीम तथा अर्जुन का दूतत्व किया, जो शकुनीश्वर (गरुड़) के नियामक हैं जो युद्ध में दुर्योधन (अजेय) तथा उत्तम हैं जो अभिमन्यु (सर्वयज्ञ रूपेण आराध्य) हैं वह विराट् आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण हमारी तथा आप सभी की रक्षा करें ॥ १ ॥

(परिक्रम्य) एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

द्रोण इति—द्रोणः=काकः लक्षणया तत्सदृशश्यामवर्णः, पृथिव्यर्जुनभीमदूतः पृथिव्यां=भुवे अर्जुनभीमदूतः=अर्जुनभीमयोः दूतः=प्रेष्यभावं गतः । यः अर्जुनभीमयोः प्राप्तव्यभूभागंदापयितुं दूतरूपं धृत्वा दुर्योधसभां गत इत्यर्थः । शकुनीश्वरस्य=पक्षिराजगरुडस्य यः कर्णधारः=नियामकः दुर्योधनः—दुखेन योध्यते यद्वा दुःखं=दुखकरं योधनं येन सः । अतिबलतया पराजेतुमशक्य इत्यर्थः । भीष्मयुधिष्ठिरः विभेत्यस्मादिति भीष्मः=दुष्टजनभयङ्करः स चासौ युधिष्ठिरश्च—युधि स्थिरश्च उत्तरगः=प्रसिद्धमार्गगामी अनिन्द्याचरणः इत्यर्थः, अभिमन्युः मन्युं—यज्ञमभिगतः । यज्ञैराराधनीय इति यावत् । सः एतादृशः । विराट्=आदिपुरुषः भगवान् कृष्ण इत्यर्थः पायात्=रक्षेत् । नाटकप्रेक्षकान् तत्प्रयोक्तृंश्च मङ्गलेन योजयेदित्यर्थः । द्रोणशब्दस्य लक्षणया श्यामलार्थे प्रयोगो यथा मृच्छकटिके 'अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोत्थितः ।' उपर्युदीच्यश्रेष्ठेष्वप्युत्तरः इत्यमरः । 'शकुनिः पुंसि विहगे सौबले कारणान्तरे' इत्यमरटीका । भीष्मयुधिष्ठिरशब्दे नीलपीतादिवत् विशेषणोभयपदसमासः । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ युधि' इत्यमरः । अत्र ''मुख्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' इति लक्षणात् मुद्रालङ्कारः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १ ॥

एवम्=अग्रे वक्ष्यमाणम् । आर्यमिश्रान्=आदरणीयसभ्यान् । अये—हृदयगतविषादकोपसूचकमव्ययपदम् । विज्ञापनव्यग्रे=स्वाभिमतबोधनायोद्युक्ते । शब्द इव=ध्वनिरिव । अनिश्चित इति शेषः । श्रूयते=कर्णगोचरी भवति । पश्यामि—कुतोऽयं किमर्थश्चायं ध्वनिर्जायते इति परीक्ष्ये इत्यर्थः ।

(कुछ चल कर)

आप सभी पूज्य वर्गों से इस प्रकार निवेदन कर रहा हूँ । अरे मेरे निवेदन करते ही वह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है । अच्छा देखता हूँ ।

(नेपथ्ये)

अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः !

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

सर्वैरन्तःपुरैः सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु ।
यज्ञो दुर्योधनस्यैष कुरुराजस्य वर्तते ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

स्थापना ।

(नेपथ्ये=रङ्गपृष्ठभागेध्वनिर्भवतीति शेषः । स च वक्ष्यमाणरूपः; अहो=इत्याश्चर्ये: कुरुराजस्य=दुर्योधनस्य; यज्ञसमृद्धिः=यज्ञवैभवम्; विज्ञातम्-पूर्वं श्रुतस्य शब्दस्य निमित्तमवधारितमित्यर्थः ॥ १ ॥

अन्वयः—सर्वैः अन्तःपुरैः सार्धं राजसु प्रीत्या प्राप्तेषु कुरुराजस्य दुर्योधनस्य एषः यज्ञः वर्त्तते ॥ १२ ॥

सर्वैरिति—सर्वैः=अशेषैः; अन्तःपुरैः=अवरोधवधूजनैः; सार्धम्=साकम्; राजसु=सर्वेषु नृपेषु; प्रीत्या=प्रसन्नतया । प्राप्तेषु=समागतेषु । सत्सु । कुरुराजस्य-दुर्योधनस्य । एषः=यज्ञः प्रवर्त्तते । महामहिमशालिनः दुर्योधनस्यैषः यज्ञः प्रवर्त्तते यत्र दुर्योधनप्रेम्णा अशेषा भूपालाः सावरोधाः समागताः सन्ति । इति ज्ञातं शब्दकारणमिति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥२॥

स्थापना=प्रस्तावना । प्रायः सर्वेषु रूपकेषु भासकवेरेषा परिपाटी दृश्यते यत् सः प्रस्तावना स्थाने स्थापनाशब्दमेव प्रयुङ्क्ते ।

(नेपथ्य में)

अहा कुरुराज दुर्योधन की यज्ञसमृद्धि विलक्षण है !

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

यह महाराज दुर्योधन का यज्ञ हो रहा है—जिसमें देश के समस्त राजागण प्रेम-पूर्वक अपने परिवार के साथ आये हुये हैं ।

(प्रस्थान)

स्थापना

(ततः प्रविशन्ति ब्राह्मणास्त्रयः)

सर्वे—अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः ।

प्रथमः—इह हि,

द्विजोच्छिष्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो
हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः ।
मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो

(प्रविशन्ति=रङ्गभूमिमागच्छन्ति)

अहो=इत्याश्चर्ये। यज्ञसमृद्धिः=यज्ञवैभवम् इदानीं प्रथमो ब्राह्मणः दुर्योधनस्य यज्ञवैभवं वर्णयति ।। २ ।।

अन्वयः—द्विजोच्छिष्टैः अन्नैः दिशः प्रकुसुमितकाशाः इव हविर्धूमैः सर्वे तरुगणाः हृतकुसुमगन्धाः इवः व्याघ्राः मृगैः तुल्याः गिरयश्च वधनिभृतसिंहाः च जाताः नृपे दीक्षां प्राप्ते सर्वं जगद् अपि दीक्षितम् इव जातमिति ।। १२ ।।

द्विजेति—द्विजोच्छिष्टैः=ब्राह्मणगणभुक्तावशिष्टैः ब्राह्मणगृहीतरुर्वरितैर्वा; अन्नैः=सिद्धैर्भक्तादिभिस्तण्डुलादिभिर्वा; दिशः=आशाः; प्रकुसुमितकाशाः=प्रफुल्लकाशाः इव दृश्यते इति शेषः; हविर्धूमैः=हुयमानवत्तद्द्रव्यजनितधूमैः; सर्वे तरुगणाः=वृक्षसमूहाः; हृतकुसुमगन्धाः=अपगतसुगन्धा इव जाता इति शेषः; व्याघ्राः=शार्दूलाः; मृगैः=पशुभिः तुल्याः समानाः अहिंसका जाता इति शेषः; गिरयः=पर्वता च; वधनिभृतसिंहाः=परहिंसानिवृत्तकेसरिणः। जाता इति शेषः। तत्र सर्वत्रकारणमुत्प्रेक्षते। नृप

(तदनन्तर तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सभी--अहा कुरुराज का यज्ञ वैभव विलक्षण है।

प्रथम--यहाँ पर ब्राह्मणों के उच्छिष्ट अन्नों से सभी दिशायें ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों सर्वत्र काशों के फूल खिले हों। यज्ञधूम से वृक्षों के पुष्पों की सुगन्धि मारी गई है। बाघ और हरिन एक समान ही रहे हैं, पर्वत की गुफाओं में रहने वाले सिंह हिंसा से विरत हो रहे हैं। इस समय ऐसा

नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव ।। ३ ।।

द्वितीयः—सम्यग् भवानाह ।

तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखं तृप्ता द्विजेन्द्रा धनै-
स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणयुतास्ते ते नराः सर्वशः ।
हृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गर्जन्नृपे सद्गुणै-
रेवं लोकमुदारुरोह सकलं देवालयं तद् गुणैः ।। ४ ।।

इति=नृपे—राजनि दुर्योधने दीक्षां प्राप्ते—यज्ञदीक्षां गृहीते ; जगदपि=अखिललोकोऽपि दीक्षितम्=कृतयज्ञनियममिव जातमिति शेषः ; 'यथा राजा तथा प्रजा' इति न्यायादिति भावः ; दीक्षिता हि निवृत्तकामक्रोधाः सर्वात्मना शान्ताः सन्तो यज्ञमारभन्ते एवं राजनि तथाभूते तदनुरोधात्तद्भयाद्वा सिंहादयोऽपि त्यक्तहिंसादिस्वभावा जाता इत्यर्थः ; हेतूत्प्रेक्षालङ्कारः ; शिखरिणी वृत्तम् ।। ३ ।।

द्वितीयोऽपि तदेव समर्थयन् यज्ञप्रशस्तिमुपपादयति—सम्यक्=युक्तम् । आह=कथयति—

अन्वयः—अमरोत्तममुखं अग्निः हविषा तृप्तः द्विजेन्द्राः धनैः तृप्ताः गोगणयुताः ते ते पक्षिगणाः च सर्वशः तृप्ताः । नराः अपि तृप्ताः सद्गुणैः नृपे गर्जत् इदं जगत् संप्रति सर्वतो हृष्टम् एवं तद्गुणैः सकलं लोकं देवालयम् उदारुरोह ।। ४ ।।

तृप्त इति अमरोत्तममुखं अमरोत्तमाः—देवश्रेष्ठाः इन्द्रादयस्तेषां मुखम्=हविग्रहणसाधनं; अग्निः=पावकः ; हविषा=हविर्द्रव्यगणेन; तृप्तः=

प्रतीत हो रहा है कि महाराज के साथ हो सारा संसार दीक्षित हो गया है ।। ३ ।।

दूसरा · आप ठीक कह रहे हैं ।

हवि से देवताओं के मुख स्वरूप अग्नि तृप्त हो गये हैं, ब्राह्मण लोग यज्ञ दक्षिणा से तृप्त हो गये हैं गोगण (पशु समूहों) के साथ पक्षी गण भी प्रसन्न हैं । सभी लोग प्रसन्न हैं, महाराजके सद्गुणों से सारी पृथ्वी व्याप्त है। इस प्रकार यह मृत्यु लोक देवलोक (स्वर्ग) का अतिक्रमण कर रहा है ।।४।।

तृतीयः—इमेऽत्रभवन्तो द्विजातयः,

राज्ञां वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यंप्रभूतश्रवा
वार्द्धक्येऽप्यभिवर्धमाननियमाः स्वाध्यायशूरैर्मुखैः ।
विप्रा यान्ति वयःप्रकर्षशिथिला यष्टित्रिपादक्रमाः
शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकरा जीर्णा गजेन्द्रा इव ॥ ५ ॥

संतुष्टः ; द्विजेन्द्राः=विद्याविनयसम्पन्ना ब्राह्मणश्रेष्ठाः ; धनैः=दक्षिणाद्रव्यैः ; तृप्ताः=संतुष्टाः ; गोगणयुताः गोगणैः=युताः=गोगण सहिताः ; ते ते पक्षिणः अपि यथाभिमताहारलाभेन सर्वशः=सर्वात्मना ; तृप्ताः=अतीवसंतोषं प्राप्ताः ; सद्गुणैः प्रशस्तगुणसमूहैः ; नृपे=राज्ञि । गर्जत्=नृपविषये उच्चैः प्रतिपादयत् ; इदं जगत्=भुवनं ; संप्रति हृष्टं=प्रीतिपात्रं सत् ; एवं तद्गुणैः सकलं लोकम् देवालयम्=स्वर्गम् ; उदारुरोह=अत्यक्रामत् ; राजनि वर्त्तमानान् गुणान् प्रशंसदिदं सर्वं लोकम् स्वर्गम् आरुरोहेत्यर्थः ; शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४ ॥

तृतीयः इदानीं यज्ञगतान् सर्वान् गुणज्ञान् द्विजातीन् प्रशंसन् तेषां दर्शनार्हतामुपपादयति—

अन्वयः—राज्ञां वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यप्रभूतश्रवाः वार्धक्ये अपि अभिवर्द्धमाननियमाः स्वाध्यायशूरैः मुखैः वयःप्रकर्षशिथिलाः शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकराः यष्टित्रिपादक्रमाः विप्राः जीर्णा गजेन्द्रा इव (मखे) यान्ति ॥ ५ ॥

राज्ञामिति—राज्ञाम्=यज्ञे दुर्योधनानुरोधादागतानां नृपाणाम् । वेष्टपट्टघृष्टचरणाः वेष्टपट्टेन=उष्णीषनामकशिरोवेष्टनेन घृष्टाः=संघट्टिताः

तीसरा—ये हैं परमपूज्य द्विजाति गण—

जिनके चरण प्रणाम करते समय राजाओं के शिरःस्थ पगड़ी से घिस रहे हैं, जो श्रुतियों के ज्ञाता हैं, बुढ़ापे में भी जिनके व्रतादि नियम बढ़ते ही जा रहे हैं, जिनके मुखस्वाध्याय में प्रवीण हैं, जिनके शरीर वृद्ध हो जाने के के कारण शैथिस्य भाव को प्राप्त हो रहे हैं, जो छड़ी के सहारा सेकर अपने शिष्यों के कंधों पर हाथ रख कर वृद्ध गज के समान धीरे-धीरे चल रहे हैं ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवकाः ! भो भो माणवकाः !! अनवसितेऽवभृथस्नाने न खलु तावदग्निरुत्स्रष्टव्यो भवद्भिः ।

प्रथमः—हा धिग्, दर्शितमेव तावद् बटुचापलम् ।

चरणाः=पादाः येषां ते । श्लाघ्यप्रभूतश्रवाः श्लाघ्यः=प्रशस्तः प्रभूतः=बहुविषयः श्रवः=शास्त्रविषयकं ज्ञानं येषां ते तथोक्ताः । वार्धक्ये=वृद्धतां गते अपि अभिवर्द्धमाननियमाः अभिवर्द्धमानाः=अहरहरुपचीयमानाः नियमाः=सन्तोषास्तिक्यभावाः येषां ते स्वाध्यायशूरैः=वेदाध्ययनखेदैः मुखैः=वदनैः । वयःप्रकर्षशिथिलाः वयःप्रकर्षेण=आयुषो वृद्ध्या शिथिलाः=श्लथशरीराः । शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकराः शिष्याणां=छात्राणां स्कन्धेषु=अंसप्रदेशेषु निवेशिताः=संस्थापिताः अञ्चिताः=पूजिताः कराः=हस्ताः अत्रेदं बोध्यम् एकेन हस्तेन दण्डं दधानाः अपरं हस्तं शिष्यांसप्रदेशे दधानाः तादृशाः । यष्टित्रिपादक्रमाः द्वौ पादौ तृतीयः पादः यष्टिः=दण्डः अतएव त्रिपादेन क्रमणं=यज्ञमुखे गमनं येषां ते तथाभूताः द्विजातयः जीर्णाः=वृद्धाः । गजेन्द्राः=करिणः इव=यथा यान्ति मखे इति शेषः । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ५ ॥

माणवकाः=वटवः । अनवसिते=असमाप्ते । अवभृथस्नाने यज्ञान्ते विहिते तन्नामके स्नाने । अग्निः=कुण्डस्थवह्निः उत्स्रष्टव्यः=इतस्ततः प्रक्षेप्तव्यः । यद्यपि यज्ञः समाप्तस्तथापि नावभृथस्नानं जातमतो बटुभिर्नेतस्ततः कुण्डवह्निः प्रक्षेप्तव्य इत्यर्थः ।

हा धिक्=धिक्कारार्हम्=वटुचापलं । यत्तेन तद्दर्शितमेव=प्रकटीकृतमेव ।

इदानीं वटुचापलेन संदह्यमानाग्निना दुर्योधनस्य सन्मखावस्थां वर्णयन् प्रथमो ब्राह्मणः कथयति—

सभी ब्राह्मण—हे हे ब्रह्मचारियों, हे हे बालकों जब तक यज्ञान्त स्नान समाप्त नहीं हो जाता तब तक आप लोग यज्ञशाला की अग्नि बाहर न निकालें ।

पहला—हाय ! इन लड़कों ने लड़कपन कर ही दिया । यज्ञ-स्तम्भों के

एषा भो ! दीप्तयूपा कनकमयभुजेवाभाति वसुधा
चैत्याग्निर्लौकिकाग्निं द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते ।
नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा हरितकुशतया वेदी परिवृता
प्राग्वंशं चैष धूमो गज इव नलिनीं फुल्लां प्रविशति ॥६॥

अन्वयः—भोः दीप्तयूपा एषा वसुधा कनकमयभुजा इव आभाति। अयं चैत्याग्निः लौकिकाग्निं द्विजः वृषलं इव पार्श्वे न सहते। हरितकुशतया परिवृता वेदी अत्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा न। एष धूमः च प्राग्वंशे गजः फुल्लां नलिनीम् इव प्रविशति ॥ ६ ॥

एषेति—भोः=संबोधनपदम्। दीप्तयूपा=दीप्तः अग्निसंपर्कवशात्प्रज्वलितावयवः यूपः=यज्ञगतस्तम्भः यस्यां सा तादृशी एषा वसुधा=यज्ञभूमिः। कनकमयभुजा=स्वर्णविरचितभुजशालिनी। इव=यथा। आभाति=शोभते। अत्र ज्वलमानयूपानां स्वर्णवर्णतया भुजाकारतया चेयमुत्प्रेक्षा। चैत्याग्निः=यज्ञवेदीगतो श्रौतवह्निः। लौकिकाग्निम्=माणवकैर्ज्वालितं संस्कारहीनं लौकिकाग्निम्। ब्राह्मणः वृषलम्=शूद्रम्। इव पार्श्वे=स्वसमीपे। न सहते=न मृष्यति यज्ञाग्नेरपेक्षया वातप्रक्षिप्तस्याग्नेरल्पप्रकाशतया शूद्रोपमा। यथा—ब्राह्मणः स्वसमीपे शूद्रमभिभवति तथा यज्ञाग्निः लौकिकाग्निमभिभवतीत्यर्थः। हरितकुशतया=हरितकुशसमूहेन। परिवृता=आच्छादिता। वेदी स्थण्डिलगता भूमिः नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा=नाधिकदग्धतला आभाति। किञ्च एषः धूमः, प्राग्वंशं=यजमाननिवासगेहम् तथैव प्रविशति यथा गजः फुल्लां=विकसितां। नलिनीं=कमलिनीं। विशति। अत्रोत्प्रेक्षोपमालङ्कारौ। सुवदनाच्छन्दः। ६ ॥

जल उठने से ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो पृथ्वी के हाथ निकले हैं, यज्ञाग्नि लौकिकाग्नि को अपने पास इस प्रकार नहीं आने देती जैसे ब्राह्मण शूद्र को पास फटकने नहीं देता। हरितकुशावृत्त वेदी अभी अधिक दग्ध नहीं हो सकी है, इतना ही नहीं जिस प्रकार हाथी फूली हुई नलिनी को नष्ट करने के लिये जा रहा हो उसी प्रकार यह धूम भी प्राग्वंश (यज्ञदीक्षित यजमान के रहने का स्थान) की ओर बढ़ रहा है ॥ ६ ॥

द्वितीयः—एवमेतद्,

अग्निरग्निभयादेव भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः ।
कुले व्युत्क्रान्तचारित्रे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ॥ ७ ॥

तृतीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा ।
नारीवोपरतापत्या बालस्नेहेन दह्यते ॥ ८ ॥

इदानीं द्वितीयो ब्राह्मणः प्रथमकथितब्राह्मणवचनं सत्यापयति—

अन्वयः—एषः अग्निः अग्निभयात् भीतैः द्विजैः व्युत्क्रान्तचारित्रे कुले ज्ञातिभयात् ज्ञातिः इव निर्वास्यते ॥ ७ ॥

अग्निरिति एषः = अयम् ; अग्निः = प्राग्वंशे रक्षितो गार्हपत्याग्निः । अग्निभयात् = लौकिकाग्निनिमित्तजन्यत्रासात् ; भीतैः = त्रस्तैः ; द्विजैः व्युत्क्रान्तचारित्रे = उल्लङ्घितसदाचारे; कुले = वंशे; ज्ञातिभयात् = दुर्जनदायादजन्यत्रासात् ; ज्ञातिः = बान्धवः इव ; निर्वास्यते = अन्यत्र नीयते ; यथा ज्ञातिषु दुर्जनभावं गतेषु तत्संसर्गपरिहारेच्छया ज्ञातिविशेषोऽन्यत्र नीयते तथैवायं गार्हपत्याग्निरपि लौकिकाग्निदौर्जन्यसंसर्गान्निनीषया बहिर्नीयते इत्यर्थः; उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ॥ ७ ॥

इदानीं तृतीयो ब्राह्मणः अपरयोर्द्वयोर्ध्यानाकृष्टि करोति—

अन्वयः घृतपूर्णा शकटी च वारिणा सिच्यमाना अपि उपरता पत्या नारी बालस्नेहेन इव दह्यते ॥ ८ ॥

दूसरा—यह ठीक है ।

अग्निभय से भयभीत ब्राह्मणगण अग्नि को इस प्रकार निकाल रहे हैं जसे कुल में असच्चरित्र के उत्पन्न हो जाने पर उसे ज्ञाति लोग ज्ञातिभय से बाहर कर देते हैं ॥ ७ ॥

तीसरा—आप लोग इधर भी देखिये ।

घी से परिपूर्ण यह शकटी (घी लाने वाली गाड़ी) वारम्वार जल से सींचे जाने पर भी उस प्रकार जल रही है जैसे कोई स्त्री अपने संतान के मर जाने पर आँसूओं से तर रहने पर भी भीतर-भीतर जलती रहती है ॥ ८ ॥

प्रथमः—सम्यग् भवानाह,

एतां चक्रधरस्य धर्मशकटीं दग्धुं समभ्युद्यतो
दर्भे शुष्यति नीलशाद्वलतया वह्निः शनैर्वामनः ।
वातेनाकुलितः शिखापरिगतश्चक्रं क्रमेणागतो
नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपुः सूर्यायते पावकः ॥ ९ ॥

शकटीति—घृतपूर्णा=होमावशिष्टाज्येन युता, शकटी=यज्ञसामग्रीवाहनार्थं निर्मितं क्षुद्रशकटम्; वारिणा सिच्यमाना अपि उपरतापत्या=मृतपुत्रा; नारी=स्त्री; इव=यथा बालस्नेहेन=मृतापत्यप्रेम्णा, अन्यत्राल्पावशिष्टघृतरूपस्नेहेन च दह्यते=प्रज्वलति; शकटीयं स्वल्पावशिष्टघृतस्नेहेन तथा दह्यते यथा काचन मृतपुत्रा नारी स्वापत्यस्नेहेन बलवद्दह्यते; उपमालङ्कारः; अनुष्टुवृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—वह्निः नीलशाद्वलतया वामनः सन् दर्भे शनैः शुष्यति चक्रधरस्य एताम् धर्मशकटीं दग्धुं समुद्यतः सन् वातेन आकुलितः शिखापरिगतः क्रमेण चक्रं आगतः पावकः नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपुः सूर्यायते ॥ ९ ॥

एतामिति—वह्निः=अग्निः; नीलशाद्वलतया=नीलः=श्यामलः यः शाद्वलः=हरितबालतृणं तदाश्रयतया वामनः=कुब्जीभूतः सन्; दर्भे=तृणे; शनैः=मन्दं मन्दम्; शुष्यति सति चक्रधरस्य=क्षमाचक्रवर्तिनः; दुर्योधनस्येति शेषः; एताम्=पुरोदृश्यमानाम्; धर्मशकटीम्-यज्ञसामग्रीवाहकं यानम्; दग्धुं समभ्युद्यतः=तत्परः सन् वातेन=वायुना, आकुलितः=संधुक्षितः; शिखापरिगतः=ज्वालाजालव्याप्तः क्रमेण=क्रमशः। चक्रम्=रथाङ्गम्; आगतः=प्राप्तः सन् पावकः=अग्निः; नेमीमण्डलमण्डलीकृत-

---

पहला—आप का कहना सत्य है।

हरी हरी घासों से आवृत स्थान के कारण यह अग्नि पहले वामन (अत्यन्त लघु) रूप में थी, पर धीरे-धीरे सूखी घास पर आ जाने से फैल रही है और अब महाराज के यज्ञीय यान को जलाने में तत्पर है, वायु की प्रेरणा प्राप्त कर यह आग क्रमशः पहिये तक पहुँच गई है, अब नेमी के चारों ओर लग जाने से क्रमशः सूर्य के समान गोलाकार हो गई है ॥ ९ ॥

द्वितीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

वल्मीकमूलाद् दहनेन भीतास्तत्कोटरैः पञ्च समं भुजङ्गाः।
समं विपन्नस्य नरस्य देहाद् विनिस्सृता: पञ्च यथेन्द्रियाणि ॥ १० ॥

तृतीयः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

दह्यमानस्य वृक्षस्य सानिलेन मखाग्निना।

वपुः नेमीमण्डले मण्डलीकृतवपुः=गोलाकारशरीरः सूर्यापते=सूर्य इव गोलशरीरः भवति ; अस्यायमाशयः दुर्योधनधर्मशकटदाहप्रवृत्तोऽयमग्निः बालतृणपूर्णे स्थाने संकुचितोऽपि अधिकसंतापेन दर्भे शुष्यति सति ज्वालाकरालः वातसंधुक्षितश्च सन् चक्रारभागमुपेत्य मण्डलाकारतामुपगतो भानुबिम्बवत्प्रकाशते इत्यर्थः ; उपमालङ्कारः ; शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ९ ॥

द्वितीयोऽपि वल्मीकछिद्रान्निस्सरतः पञ्चभुजङ्गान् प्रति अपरयोर्द्वयोर्ध्यानमाकर्षति—

अन्वयः—पञ्च भुजङ्गाः दहनेन भीताः दल्मीकमूलात् कोटरैः समं निर्गताः ये विपन्नस्य नरस्य देहात् विनिःसृता पञ्चेन्द्रियाणि यथा प्रतीयन्ते ॥ १० ॥

वल्मीकेति—पञ्च=तत्संख्याकाः ; भुजङ्गाः=सर्पाः ; दहनेन = वह्निजनितदाहेन; हेतौ तृतीया; भीताः=मयापन्नाः सन्तः वल्मीकमूलात्=वल्मीकाधःप्रदेशात्। कोटरैः=छिद्रैः समं निर्गताः ये विपन्नस्य=मृतस्य नरस्य देहात्=शरीरात् विनिःसृताः=बहिर्गताः पञ्चेन्द्रियाणि=प्राणादिपञ्चावयवाः यथा प्रतीयन्ते; अत्रपञ्चेन्द्रियशब्दः पञ्चप्राणोपलक्षणम्। विनिःसृता इति पुल्लिङ्गनिर्देशात्। इन्द्रियाणां दशसंख्याकत्वेन प्रसिद्धेश्च। उपमालङ्कारः अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १० ॥

तृतीयोऽपि दन्दह्यमानवृक्षकोटरादुड्डीयमानान् पक्षिणः प्रदर्शयति—

अन्वयः—सानिलेन मखाग्निना दह्यमानस्य वृक्षस्य कोटरान्तर-

अग्निभय से वल्मीक के छिद्रों से एक साथ पाँच सर्प निकल रहे हैं जैसे मरे हुये मनुष्य के देह से एक साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियां निकल जाती हैं ॥१०॥

तीसरा—आप लोग देखिये देखिये।

वायुप्रेरित यज्ञाग्नि से जलनेवाले वृक्षों के कोटरों से पक्षीगण उड़ रहे

कोटरान्तरदेहस्थाः खगाः प्राणा इवोद्गताः ॥ ११ ॥

प्रथम—:एवमेतत्,

शुष्केणैकेन वृक्षण वनं पुष्पितपादपम्।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणेव दह्यते ॥ १२ ॥

द्वितीयः—

एते वातोद्धता वंशा दह्यमाना मखाग्निना।

देहस्थाः खगाः प्राणा इव उद्गताः ॥ ११ ॥

दह्यमानस्येति—सानिलेन—वायुना सहितेन; मखाग्निना=यज्ञाग्निना; दह्यमानस्य=जाज्वल्यमानस्य; वृक्षस्य; कोटरान्तरदेहस्थाः कोटरस्य अन्तरे=अभ्यन्तरे; देहेन शरीरेण तिष्ठन्तीति तादृशाः खगाः=पक्षिणः; प्राणा इव उद्गताः अन्यत्रप्रस्थिताः; यथा म्रियमाणस्य पुंसः हृदयप्रदेशात् प्राणाः उत्क्रामन्ति तथैव दह्यमानस्य वृक्षस्य कोटरात् पक्षिणः उड्डीयन्ते इति पश्यताम् ॥ ११ ॥

प्रथमस्तस्यैव वचनं समर्थयन् सन्नाह—

अन्वयः—शुष्केण एकेन वृक्षेण पुष्पितपादपं वनं चरित्रहीनेन पुरुषेण कुलम् इव दह्यते।

शुष्केणेति—एकेन शुष्केण=नीरसेन; वृक्षेण=पादपेन; पुष्पितपादपम्=संफुल्लद्रुमं। वनम्। चरित्रहीनेन=भ्रष्टशीलेन; पुरुषेण कुलम्; इव=यथा; दह्यते=प्रज्वाल्यते एकस्य दुश्चरितस्य दोषेण यथा सकलं कुलं दह्यते तद्वदेकेन शुष्केण वृक्षेण समस्तमपि वनं दह्यते इत्यर्थः। उपमालङ्कारः ॥ १२ ॥

अन्वयः—एते वातोद्धता मखाग्निना दह्यमाना वंशाः मनुष्याणां भाग्यानि इव उन्नमन्ति नमन्ति च ॥ १३ ॥

हैं जैसे मृत्यु के समय शरीर से प्राण निकल रहे हों ॥ ११ ॥

पहला—ठीक है—

जैसे एक दुराचारी पुरुष पवित्र स्थल को दूषित कर देता है, वैसे ही यह एक सूखा वृक्ष हरे-भरे फूले हुये वन को जला रहा है ॥ १२ ॥

दूसरा—यज्ञाग्नि से प्रज्वलित किन्तु वायु से प्रकम्पित ये बांस मनुष्यों

भाग्यानीव मनुष्याणामुन्नमन्ति नमन्ति च ॥ १३ ॥

तृतीयः— सम्यग् भवानाह,

लतया सक्तया स्कन्धे शुष्कया वेष्टितस्तरुः ।
निबिष्टो दुष्कुले साधुः स्त्रीदोषेणेव दह्यते ॥ १४ ॥

प्रथमः—इदमपरं पश्यतां भवन्तौ,

एत इति—एते=पुरोऽवस्थिताः ; वातोद्धताः=वायुचालिताः किञ्च मखाग्निना=यज्ञाग्निना ; दह्यमानाः=जाज्वल्यमानाः वंशाः=कीचकाः ; मनुष्याणाम्=लोकानाम् ; भाग्यानि=अदृष्टानि इव=यथा उन्नमन्ति=ऊर्ध्वं गच्छन्ति नमन्ति=अधः आयान्ति च ; यथा कस्यचित्पुरुषस्य भाग्यानि कदाचिदुन्नतानि कदाचिदवनतानि च जायन्ते तद्वदेतानि वंशकदम्बकानि वायुवशात्कम्पितानि कदाचिदूर्ध्वं कदाचिच्चाधो यान्तीति भावः । उपमालङ्कारः ॥ १३ ॥

अन्वयः—स्कन्धे सक्तया शुष्कया लतया वेष्टितः तरुः दुष्कुले निविष्टः साधुः स्त्रीदोषेण इव दह्यते ॥ १४ ॥

लतस्येति—स्कन्धे=शाखामूले ; सक्तया=संलग्नया; शुष्कया लतया=व्रतत्या ; वेष्टितः=परिवृतः ; तरुः=वृक्षः ; दुष्कुले=चरित्ररहिते वंशे; निविष्टः=उत्पन्नः ; साधुः=सज्जनः पुरुषः स्त्रीदोषेण इव दह्यते=ज्वलति ; स्वयं सरसोपि वृक्षः शुष्कलतासंसर्गेण तथा दह्यते यथा चरित्रयुक्तः साधुः स्त्रीदोषेण विपन्नो भवति । उपमालङ्कारः ॥ १४ ॥

के समान कभी नीचे और कभी ऊपर जाते हैं ॥ १३ ॥

तीसरा—आप ठीक कह रहे हैं ।

जैसे दुराचारी वंश में प्रविष्ट साधु (भला) आदमी सभी संसर्ग दोष से दूषित हो जाता है उसी तरह यह वृक्ष अपनी शाखाओं में संसक्त इन लताओं के दोष से जल रहा है ॥ १४ ॥

पहला—और आप यह देखें ।

वनं सवृक्षक्षुपगुल्ममेतत् प्रकाममाहारमिवोपभुज्य ।
कुशानुसारेण हुताशनोऽसौ नदीमुपस्प्रष्टुमिवावतीर्णः ॥ १५ ॥

द्वितीयः—एषः,

गतो वृक्षाद् वृक्षं विततकुशचीरेण दहनः
कदल्या विप्लुष्टं पतति परिणामादिव फलम् ।

अन्वयः—असौ हुताशनः सवृक्षक्षुपगुल्मम् एतद् वनं प्रकामं आहारम् इव उपभुज्य कुशानुसारेण नदीम् उपस्नष्टुम् इव अवतीर्णः ॥ १५ ॥

वनमिति—असौ=एषः ; हुताशनः=अग्निः; सवृक्षक्षुपगुल्मम्, वृक्षैः=तरुभिः क्षुपैः=ह्रस्वशाखातरुभिः गुल्मैः=स्तम्बैः च सहितम् वनम् प्रकामम्=पर्याप्तम् । आहारम्=भोजनम् इव उपभुज्य=भक्षयित्वा कुशानुसारेण=नदीतटप्ररूढ़कुशमार्गाश्रयणेन नदीम् समीपस्थामिति शेषः । उपस्नष्टुम्=आचमनं कर्त्तुम् । इव अवतीर्णः=समागतः ; यथा कृताहारः कोऽपि पुरुषः जलं पातुं नदीमवतरति तथायमग्निः समस्तं वनं दग्ध्वा कुशमार्गमाश्रित्य नदीतटमुपेत इति पश्येति भावः । उपस्प्रष्टुमिवेत्यत्र हेतूत्प्रेक्षा । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—दहनः वृक्षाद् वृक्षं विततकुशचीरेण गतः कदल्या फलं विप्लुष्टं परिणामाद्, इव पतति महता मधुपटलचक्रेण युक्तः असौ अग्रे तालः चिरं मूले दग्धः रुद्रस्य परशुः इव पतति ॥ १६ ॥

यत: इति—एषः दहनः=अग्निः ; वृक्षात्=आश्रितैकस्मात्तरोः ; वृक्षम्=अन्यवृक्षम् ; विततकुशचीरेण विततम्=आस्तीर्णम् यत् कुशरूपं चीरम्=वल्कलं तेन=आस्तीर्णकुशचीरद्वारा गतः=संप्राप्तः ; कदल्याः=

ये अग्निदेव वृक्ष, झाड़ी और लताओं समेत इस वन को खाकर पेट भर जाने पर कुशा के सहारे नदी में उतर रहे हैं मानों भोजनोपरान्त आचमन करने के लिये जा रहे हों ॥ १५ ॥

दूसरा—यह यह ।

फैले हुए कुशा रूप चीर के सहारे ये अग्निदेव एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जा रहे हैं । इस कदली वृक्ष का फल वस्तुतः पके फल की भाँति पृथ्वी

असौ चाग्रे तालो मधुपटलचक्रेण महता
चिरं मूले दग्धः परशुरिव रुद्रस्य पतति ॥ १६ ॥

तृतीयः—हन्त सत्पुरुषरोष इव प्रशान्तो भगवान् हुताशनः ।

एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।
दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥ १७ ॥

रम्भानामकवृक्षस्य फलम् विप्लुष्टं=दग्धं सत् परिणामात्=परिपक्वादिव पतति=विशीर्यते ; महता मधुपटलचक्रेण=मधुयुक्तच्छत्रेण युक्तः असौ अग्रे तालः तालवृक्षः ; चिरम्=बहोः कालात् ; मूले=मूलभागे ; दग्धः=विप्लुष्टः सन् ; रुद्रस्य=शिवस्य; परशुः इव पतति ; 'गतो वृक्षादित्यनेन दहनस्य प्रसरणशीलता द्योत्यते; दह्यमानं कदलीफलं पक्वम् इव, मधुपटलयुतः तालतरुः रुद्रस्य परशुरिवेत्युभयत्रोपमालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ।

हन्त=हर्षबोधकमव्ययपदम्। सत्पुरुषरोषः=सज्जनजनकोपः इव; ॥१६॥ हुताशनः=अग्निः; प्रशान्तः=दहनाद्विरतः

अन्वयः—अग्नेः एतद् बलं इन्धनानां परिक्षयात् आर्यस्य विभवानां परिक्षयात् दानशक्तिः इव नष्टम् ॥ १७ ॥

एतदिति—अग्नेः=यज्ञवह्नेः ; एतद्=पुरोदृश्यमानविशालज्वालारूपम् ; बलम्=दाहसामर्थ्यम् । इन्धनानाम्=दाह्यकाष्ठानाम् । परिक्षयाद्=समाप्तिकारणात् ; आर्यस्य=धार्मिकपुरुषस्य ; विभवानाम्=धनसम्पदाम् ; परिक्षयात्=विनाशकारणात् ; दानशक्तिः=दानसामर्थ्यम्

पर गिर रहा है। यह आगे दिखाई पड़ने वाला ताड़ का पेड़ जिस पर अनेक मधुमक्खियों के छाते हैं बहुत देर तक मूल के जल जाने पर अब शिव के फरसे की तरह भूमि पर गिर रहा है ॥ १६ ॥

तीसरा—अहा ! सत्पुरुष के रोष के समान अग्निदेव शान्त हो गये ।

इन्धन के अभाव से अग्निदेव का बल शान्त हो गया—जिस प्रकार किसी धार्मिक पुरुष की दानशक्ति धन के समाप्त हो जाने पर समाप्त हो जाती है ॥ १७ ॥

प्रथमः—

स्रुग्भाण्डमरणीं दर्भानुपभुङ्क्ते हुताशनः ।
व्यसनित्वान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः ॥ १८ ॥

द्वितीयः—

अवनतविटपो नदीपलाशः पवनवशाच्चलितैकपर्णहस्तः ।

इव नष्टम् = अवसितम् । यथा कस्यचित्साधुपुरुषस्य दानसामर्थ्यमवसितेषु वित्तेषु भवति तथास्य वह्नेः सामर्थ्यम् इन्धनपरिक्षयादवसितं जातमित्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ १७ ॥

अन्वयः—व्यसनित्वात् क्षीणः नरः आत्मनः परिच्छदम् इव क्षीणः हुताशनः स्रुग्भाण्डम् अरणीं दर्भान् उपभुङ्क्ते ॥ १८ ॥

स्रुगिति—व्यसनित्वात्=मद्यपानद्यूतादिषु प्रवृत्तत्वात् ; क्षीणः= नष्टविभवः । नरः आत्मनः=स्वकीयस्य; परिच्छदम्=आभरणवसनादिकम् इव ; क्षीणः=स्वल्पज्वालः ; हुताशनः = अग्निः ; स्रुग्भाण्डम् , अरणीम् स्रुक्=दारुमयं होमसाधनम् ; भाण्डम्=घृतपात्रम् ; अरणीम्=मन्थनकाष्ठम् चेति सर्वमपि होमपरिकरम् ; दर्भान् कुशान् चोपभुङ्क्ते=प्रज्वालयति ; यथा मद्यादिव्यसनेषु प्रसक्तो नरः आत्मनः गोक्षेत्रादिकं विनाश्य क्षीणविभवे जाते स्वाभरणवसनादिकं विक्रीय विनाशयति तथैवायं वह्निरपि सर्वं यज्ञसामग्रीजातं विनाश्येदानीं होमोपकरणसाधनं स्रुग्भाण्डादिकं विनाशयतीत्यर्थः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

द्वितीयः—

अन्वयः—अवनतविटपः पवनवशात् चलितैकपर्णहस्तः (एषः) नदी-

पहला –जैसे द्यूत आदि दुर्व्यसनों से निर्धन मनुष्य अपने वस्त्राभूषणों को बेंच कर खाता है—उसी प्रकार मन्दता को प्राप्त हुई अग्नि जब स्रुक्, भाण्ड, अरणी तथा कुशा आदि अपनी यज्ञ सामग्री को जला रही है ॥१८॥

दूसरा—यह नदी के तट पर का पलाश 'वृक्ष' जिसकी शाखायें झुकी हुई हैं और जिसका पत्र रूप हाथ वायु वेगवश पानी में हिल रहा है

दवदहनविपन्नजीवितानामुदकमिवैष करोति पादपानाम् ।। १९ ।।

तृतीयः—तदागम्यताम् । वयमपि तावदुपस्पृशामः ।

उभौ—बाढम् ।

(सर्वे उपस्पृश्य)

प्रथमः—अये ! अयमत्रभवता कुरुराजो दुर्योधनो भीष्मद्रोणपुरःसरसर्वराजमण्डलेनाऽनुगम्यमान इत एवाभिवर्तते । इमे हि,

---

पलाशः दवदहनविपन्नजीवितानाम् पादपानाम् उदकम् इव करोति ।।१९।।

अवनतेति—अवनतविटपः=विनम्रशाखः, पवनवशात्=वायुवेगवशात् । चलितैकपर्णहस्त=चपलीभूतैकपत्रभुजः; एषः पुरोदृश्यमानः । नदीपलाशः=नदीतटगतो विशेषवृक्षः ; दवदहनविपन्नजीवितानाम् , दवदहनेन=दवाग्निना विपन्नं प्रनष्टम् जीवनम्=असवः येषां तथाभूतानां पादपानाम्=वृक्षाणाम्; उदकम्=प्रेताय दीयमानमञ्जलि इव करोति=सम्पादयति ; अयं भावः यथाकश्चिन्मनुष्यः मृतेभ्यः स्वबन्धुभ्यः स्वदक्षिणं करं व्यापारयन् तदुद्देश्येन जलं ददाति तथैवायं पलाशतरुः पवनवेगाच्चलितैकपत्रभुजः सन् यज्ञाग्निना गतप्राणेभ्यः स्वबन्धुरूपवृक्षेभ्यः जलमिव ददातीति; अत्र जलस्पर्शो जलदानरूपेणोत्प्रेक्ष्यते तेनोत्प्रेक्षालङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।। १९ ।।

उपस्पृशामः=आचमनं कुर्मः ; बाढम्=सुष्ठूक्तम् । अनुगम्यमानः=अनुस्रियमाणः ; इत एवाभिवर्त्तते=इत एवायातीत्यर्थः ; कृतावभृथस्नानं दुर्योधनं दृष्ट्वा पौराणामुक्ति वर्णयति प्रथमः ब्राह्मणः ।

ऐसा प्रतीत होता है मानो वह आग में जलकर मरे हुए अपने वृक्ष बन्धुओं को जलाञ्जलि दे रहा है ।। १९ ।।

तीसरा—आइये, हम लोग भी आचमन कर लें

दोनों—ठीक है ।

(सभी आचमन कर)

पहला—अहा ! ये कुरुराज दुर्योधन, भीष्मद्रोणप्रधान राजमण्डल से अनुगम्यमान होकर इधर की ओर आ रहे हैं । ये लोग—

यज्ञेन भोजय महीं जय विक्रमेण;
रोषं परित्यज, भव स्वजने दयावान् ।
इत्येवमागतकथामधुरं ब्रुवन्तः
कुर्वन्ति पाण्डवपरिग्रहमेव पौराः ॥ २० ॥

तदागम्यताम् । वयमपि तावत् कुरुराजं सम्भावयामः ।

उभौ—बाढम् ।

सर्वे—जयतु भवान् जयतु ।

अन्वयः—(हे राजन्) यज्ञेन भोजय ; विक्रमेण महीं जय । रोषं परित्यज स्वजने दयावान् भव । इति एवं आगतकथामधुरं ब्रुवन्तः पौराः पाण्डवपरिग्रहम् एव कुर्वन्ति ॥ २० ॥

यज्ञेनेति हे राजन् यज्ञेन=विहितमखेन ; भोजय=अन्नवस्त्रादियथेष्टवस्तुसंप्रदानेन प्राणिनां तर्पणं कुरु ; विक्रमेण=स्वशौर्येण ; महीम्=समस्तां पृथ्वीम् ; जय=आत्मसात्कुरु ; रोषम्=अकारणं कोपम् ; परित्यज=जहीहि । स्वजने=आत्मीयपरिजने ; दयावान्=कृपायुक्तः । भव । इति एवम्=इत्थम् ; आगतकथामधुरं=स्वागतपूर्वकं मिष्ठभाषणम् ; ब्रुवन्तः=कथयन्तः ; पौराः=पुरवासिनो जनाः ; पाण्डवपरिग्रहम्=पाण्डवजनपक्षपातम् ; एव=निश्चयेन ; कुर्वन्ति=सम्पादयन्ति । अवभृथस्नाननिवृत्तं दुर्योधनं दृष्ट्वा तत्स्वागतपूर्वकं पूर्वोक्तं वचनं व्याहरन्तः पुरवासिनः वस्तुगत्या पाण्डवानां तद्विक्थदानार्थं प्रार्थयन्तः शोभनमेव कुर्वन्तीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

यज्ञ से सारी पृथ्वी तृप्त करो—सारी पृथ्वी अपने पराक्रम से जीत लो, कोप का परित्याग करो-आत्मीय जनों पर दया करो, इस प्रकार परम्परा जन्य कानों को भला लगने वाले वचन कहते हुये पाण्डवों के प्रति अपना पक्षपात प्रकट कर रहे हैं ॥ २० ॥

अच्छा तो आइये हम लोग भी कुरुराज का सम्भाव करें ।

दोनों—बहुत अच्छा !

सभी—श्रीमान् की जय हो, जय हो ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ ।)

द्रोणः—धर्ममालम्बमानेन दुर्योधनेनाऽहमेवानुगृहीतो नाम । कुतः,

अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः ॥ २१ ॥

संभावयामः=सत्कारं कुर्मः विष्कम्भकः वृत्तवर्त्तिष्यमाणकथाबोधको द्वित्रिजनवार्त्तालापः धर्मम्=विहितं कर्म; आलम्बमानेन=आचरणं कुर्वता ; अहम्=द्रोणः ; अनुगृहीतः=कृपापात्रीकृतः ।

इदानीमाचार्यद्रोणः शिष्याचरितो दोषः गुरुमेव कलङ्कयतीति न मातरं न पितरमिति प्रकाशयन् स्वाभिप्रायं प्रकटीकरोति—

अन्वयः—शिष्यदोषः बन्धून् अतीत्य मित्राणि अवलङ्घ्य आचार्यम् आगच्छति । हि बालं अपत्यं गुरवे प्रदातुः मातुः पितुः (तत्र) अपराधः नास्ति ॥ २१ ॥

अतीत्येति—शिष्यदोषः=शिष्यजने वर्त्तमानोऽधर्माद्याचरणरूपो व्यापारः ; बन्धून्=स्वजनान् ; अतीत्य=अतिक्रम्य; मित्राणि=सुहृदः ; च अवलङ्घ्य=उल्लङ्घ्य; आचार्यम्=उपदेष्टारम् शिक्षकं गुरुं वा आगच्छति=संस्पृशति । शिष्यदोषेण आचार्यस्य निन्दा भवतीत्यर्थः ; किञ्च बालम्=शिक्षोपयुक्तावस्थाशालिनम् ; अपत्यम्=पुत्रादिकम् ; गुरवे=

(सभी का प्रस्थान)

विष्कम्भक

(भीष्म तथा द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—इस प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान के आयोजन से दुर्योधन ने वस्तुतः मुझे ही अनुगृहीत किया है——

शिष्य का दोष केवल उसके गुरु पर पड़ता है, बन्धुओं तथा मित्रों पर नहीं। क्योंकि माता पिता अपने बालक को गुरु के हाथ समर्पित कर देते हैं अतः इस विषय में उनका अपराध नहीं माना जाना चाहिये ॥ २१ ॥

भीष्मः—एष दुर्योधनः,

अवाप्य रूप्यग्रहणात् समुच्छ्रयं रणप्रियत्वादयशो निपीतवान् ।
निषेव्य धर्मं सुकृतस्य भाजनं स एव रूपेण चिरस्य शोभते ॥२२॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्च ।)

आचार्याय प्रदातुः=शिक्षादिना मानवरूपेण संस्कारार्थं समर्पयितुः ; मातुः पितुश्च अपराधः=पुत्रद्वारापराधजन्यो दोषः । नैवास्ति । विनयने गुरोरेवाधिकारात् शिष्यकृतदोषेणाचार्यस्यैव निन्दनं न पित्रोरित्यर्थः । उपजातिवृत्तम् ॥ २१ ॥

इदानीं भीष्मः दुर्योधनं प्रशंसति—

अन्वयः—रूप्यग्रहणात् समुच्छ्रयम् अवाप्य रणप्रियत्वाद् अयशः निपीतवान् स एषः एव धर्मं निषेव्य सुकृतस्य भाजनं सन् रूपेण चिरस्य शोभते ॥२२॥

अवाप्येति—रूप्यग्रहणात्=राजेभ्यः प्राप्तव्यार्थस्य कररूपेण ग्रहणात् ; समुच्छ्रयम्=राज्यश्रीसमभ्युदयम् ; अवाप्य=आसाद्य; रणप्रियत्वात्=युद्धस्नेहात् ; अयशः=भीरुत्वरूपामपकीर्त्तिम् ; निपीतवान्=निगीर्णवान् निरवशेषं लुप्तवान् ; वा स एष=दुर्योधनः धर्मं=यज्ञानुष्ठानरूपं सुकृतम् ; निषेव्य=संपाद्य ; इदानीं सुकृतस्य=पुण्यस्य ; भाजनम्=पात्रं सन् । रूपेण=धार्मिकजनोचितेन वेषेण ; चिरस्य=बहुकालाय ; शोभते=प्रकाशते ; अयंभावः राजवंशे जायमानस्य सत्पुरुषस्य कर्मोचितमनुष्ठानं कर्त्तव्यम् । धनसंग्रहो युद्धोद्यतत्वम् धर्माचारश्च । तत्राद्यं द्वितयमनेन प्रागेव संपादितम् । संप्रति तृतीयस्यापि कर्त्तव्यस्य पूरणादयम्, कृतकार्यस्तेनास्य क्वाप्यनिर्वचनीया शोभाविर्भवतीति भावः । वंशस्थवृत्तम् ॥ २२ ॥

भीष्म—दुर्योधन धन प्राप्त कर बड़ा आदमी बन गया है । रणप्रिय होने से कलङ्क दूर कर दिया है और इस समय धर्म का उत्तम आचरण कर बहुत भला लग रहा है ॥ २२ ॥

(तदनन्तर-दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधनः—

कृतश्रद्धो ह्यात्मा वहति परितोषं गुरुजनो
जगद् विश्वस्तं मे निवसति गुणो नष्टमयशः ।
मृतैः प्रायः स्वर्गो यदिह कथयत्येतदनृतं
परोक्षो न स्वर्गो बहुगुणमिहैवैष फलति ॥ २३ ॥

इदानीं विहितधर्मानुष्ठानो दुर्योधनः स्वकीयामवस्थां वर्णयन्नाह—

अन्वयः—हि (मे) आत्मा कृतश्रद्धः गुरुजनः परितोषं वहति जगद् विश्वस्तं सत् मे गुणः निवसति । अयशः नष्टम् । इह यत् (लोकः) मृतैः स्वर्गः प्राप्यः कथयति एतद् अनृतम् स्वर्गः परोक्षः न किन्तु एषः इहैव बहुगुणं सत् फलति ॥ २३ ॥

कृतश्रद्धेति—हि=निश्चयेन , मे आत्मा=हृदयम् ; कृतश्रद्धः=धर्माद्यनुष्ठानजनकव्यापारे विहितास्तिक्यम् ; गुरुजनः=पितृपितामहाचार्यादिगणः ; परितोषं=संतोषम् । मदीययागाद्यनुष्ठानेनेति शेषः ; वहति=प्राप्नोति ; जगद्=सकलो लोकः ; विश्वस्तम्=मयि कृतविश्रम्भणम् ; गुणः=दयौदार्यादिरूपः ; निवसति=जायते। अयशः=कार्पण्यादिजन्यापकीर्त्तिः ; नष्टम्=समाप्तम् ; इह यत् लोकः मृतैः स्वर्गः=स्वर्गवाससुखं ; प्राप्यः=मरणोत्तरकाललभ्यः इति कथयति ; एतत्=लोककथनम्; अनृतम्=असत्यं किन्तु स्वर्गः परोक्षः न=परोक्षप्राप्यो न भवति ; किन्तु एषः=स्वर्गः ; इहैव—इहलोके एव अत्रैव जन्मनि वा; बहुगुणं सत् फलति=फलवान् भवति अनेन यज्ञानुष्ठानेन मम हृदये आस्तिक्यभावः समुत्पन्नः गुरुजनः संतोषितः । जगति मे विश्वासो जातः ; ममौदार्यादिगुणानामुदयो जातः अयशश्च विनष्टम् ; यज्ञानुष्ठानेन पूर्णमनोरथोहं लोकानां मृतैः स्वर्गः

दुर्योधन-आज मेरी आत्मा श्रद्धालु हो गई है, गुरुजन प्रसन्न हो रहे हैं, संसार मेरा विश्वास कर रहा है, मुझमें दया आदि गुणों का निवास हो रहा है, मेरे सारे कलंक नष्ट हो गये । लोगों का यह कहना कि स्वर्ग मरने पर प्राप्त होता है, मुझे झूठा मालूम पड़ता है, स्वर्ग कहीं परोक्ष में नहीं है किन्तु वह अनेक गुणों द्वारा यहीं फल प्रदान करता है ॥ २३ ॥

कर्णः – गान्धारीमातः ! न्यायेनागतमर्थमतिसृजता न्याय्यमेव भवता कृतम् । कुतः,

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षी वञ्च्यते सन्निधाता ।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ॥ २४ ॥

प्राप्यः इति कथनमनृतं मन्ये । मम स्वर्गसुखस्य इहैव जन्मनि अस्मिन्नेव लोके प्रत्यक्षत्वात् । शिखरिणीवृत्तम् ॥ २३ ॥

कर्णः—गान्धारीमातः=गान्धारी माता यस्य सः तत्संबुद्धौ ; न्यायेन=उचितमार्गेण ; आगतम्=संप्राप्तम् ; अतिसृजता=यज्ञाद्यनुष्ठानव्याजेन सत्पात्रे प्रत्यर्पयता; न्यायम्=युक्तियुक्तम् । इदानीं अङ्गराजः कर्णः दुर्योधनं सन्मित्रतया तस्योत्साहं संवर्धयन्नुपदिशति ॥ २३ ॥

अन्वयः—क्षत्रियाणाम् समृद्धिः बाणाधीना, पुत्रापेक्षी सन्निधाता (क्षत्रियः) वञ्च्यते । राज्ञा सर्वम् वित्तम् विप्रोत्सङ्गे आवर्ज्य । सुतेभ्यः चापमात्रं देयम् ॥ २४ ॥

बाणेति—क्षत्रियाणाम्=राजन्यानाम् ; समृद्धिः=धनैश्वर्यादिः बाणाधीना=बाणलभ्या । भवति । क्षत्रियैर्धनैश्वर्यादिरूपसमृद्धिः बाणेन संप्राप्यते इत्यर्थः ; पुत्रापेक्षी=पुत्रमपेक्ष्य तदुद्देश्येन सन्निधाता=धनसञ्चयकारकः क्षत्रियः वञ्च्यते=विप्रलभ्यते ; राज्ञा सर्वं वित्तम् विप्रोत्सङ्गे=ब्राह्मणक्रोडे ; आवर्ज्य=समर्प्य ; सुतेभ्यः चापमात्रम्=धनुः मात्रम् ; देयम्=अर्पणीयम् अयमाशयः राज्ञा धनं विप्रेभ्यः प्रतिपादनीम् । सुतेभ्यस्तु चापमात्रं देयम् । यतस्ते स्वचापबलेन धनिनो भवेयुस्तेषां धनलाभार्थं चिन्ता न कर्त्तव्येति भावः । शालिनीवृत्तम् ॥ २४ ॥

कर्ण- दुर्योधन ! न्यायपूर्वक प्राप्त धन का दान करते हुये आप ने ठीक ही किया है ।

क्षत्रियों की संपत्ति उनके बाणों पर निर्भर है । जो क्षत्रिय अपने पुत्र के लिये धन एकत्रित करना है वह विधाता द्वारा ठगा जाता है राजा को तो अपना सारा धन ब्राह्मणों को देकर पुत्रों के लिये मात्र धनुष ही छोड़ना चाहिये ॥ २४ ॥

शकुनिः—सम्यगाह गङ्गोपस्पर्शनाद् धौतकल्मषोऽङ्गराजः ।

कर्णः—

इक्ष्वाकु-शर्याति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाऽम्बरीषाः ।
एते सकोशाः पुरुषाः सराष्ट्रा नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ।।२५।।

सर्वे—गान्धारीमातः ! यज्ञसमाप्त्या दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । भो आचार्य ! अभिवादये ।

शकुनिः— सम्यग्=युक्तियुक्तम् । गङ्गोपस्पर्शनात्=गङ्गास्नानात् । धौतकल्मषः = विधूतपापः ।

पुनः कर्णः दुर्योधनं कीर्तिलाभायोपदिशन् धनादिकोशजातस्य अनित्यतां संसूचयति—

अन्वयः—इक्ष्वाकुशर्यातिययातिराममान्धातृनाभागनृगाम्बरीषाः एते पुरुषा सकोशाः सराष्ट्राः शरीरैः नष्टाः किन्तु क्रतुभिः धरन्ते ।। २५ ।।

इक्ष्वाक्विति—इक्ष्वाकुप्रभृति अम्बरीषान्तोष्टौराजानः स्वनामख्याताः एते सकोशाः=कोशैः सहिताः ; सराष्ट्राः=स्वराज्येन सहिताश्च ; पुरुषाः शरीरैः = स्वदेहैः । नष्टाः = मृताः किन्तु क्रतुभिः=स्वस्वानुष्ठितयज्ञैः ; धरन्ते=जीवन्ति ; इक्ष्वाकुप्रभृतयो राजानः कालातिपाताद् राष्ट्रैः कोशैः शरीरैश्च सह मृताः किन्तु यशःशरीरेण तेऽद्यापि जीवन्तीत्यर्थः ; इन्द्रवज्रावृत्तम् ।। २५ ।।

शकुनि—गङ्गाजल आचमन करने से सर्वथा पापरहित अङ्ग-राज कर्ण ने सर्वथा उचित बात कही है—

कर्ण—महाराज इक्ष्वाकु-शर्याति-ययाति-भगवान् राम, मान्धाता-नाभाग, नृग तथा अम्बरीष-ये सभी राजागण अपने कोश तथा राष्ट्र के साथ विनष्ट हो गये फिर भी केवल अपने द्वारा अनुष्ठित यश रूपी शरीर से जीवित हैं ।। २५ ।।

सभी—गान्धारी तनय ! सौभाग्य से आप का यज्ञ समाप्त हो गया और आप अभ्युदय के भाजन बन रहे हैं ।

दुर्योधन—मैं आप सभी का कृतज्ञ हूँ । आचार्य मैं प्रणाम करता हूँ ।

दोणः—एह्येहि पुत्र ! अयमक्रमः ।

दुर्योधनः—अथ कः क्रमः ?

द्रोणः—किं न पश्यति भवान् ?

दैवतं मानुषीभूतमेष तावन्नमस्यताम् ।
अहं नाचरणं मन्ये भीष्ममुत्क्रम्य वन्दितुम् ॥ २६ ॥

भीष्मः—मा मा भवानेवम् । बहुभिः कारणैरपकृष्टोऽहं भवतः । कुतः,

सर्वे—दिष्टया=सौभाग्येन ; वर्धते=एधमानस्तिष्ठति ।

द्रोणः—एह्येहीत्यत्र द्विरुक्तिरादरप्रदर्शनाय । अक्रमः—अयं तवादौ मह्यं प्रणमनं क्रमरहितोऽस्ति । मदपेक्षया प्रथमं भीष्मः प्रणम्यतां ततो अहमिति क्रमो युक्तो भवेदित्यर्थः ।

इदानीं द्रोणः भीष्मप्रशस्ति देवरूपेण वर्णयन् तन्नमस्कारार्थं दुर्योधनमुपदिशति—

अन्वयः—एषः मानुषीभूतम् दैवतं तावत् नमस्यताम् अहं भीष्मं उत्क्रम्य वन्दितुं आचरणं न मन्ये ॥ २६ ॥

दैवतमिति—एषः=भीष्मः ; मानुषीभूतम् दैवतम्=देवःसन्नपि मनुष्यरूपेणावतीर्णः । अष्टौ वसुषु अन्यतमत्वेनास्य देवत्वादित्यर्थः ; तावत्=प्रथमम् । नमस्यताम्=प्रणम्यताम् ! भीष्मम् उत्क्रम्य=विहाय ; वन्दितुम्=स्वं प्रणन्तुं । आचरणम्=युक्तम् ; क्रमं न मन्ये=नाङ्गीकरोमि ; अयं वसुस्वरूपः भीष्मः भवता आदौ प्रणम्यः परतोहमिति क्रमः युक्तः स्यादिति भावः ॥ २६ ॥

द्रोण—आओ बेटा आओ । प्रणाम का यह क्रम ठीक नहीं हैं ।

दुर्योधन—तो कौन क्रम ठीक होगा ।

द्रोण—क्यों आप नहीं समझ रहे हैं ।

देवता हो कर जो मनुष्य रूप में पृथ्वी पर अवतार ग्रहण किये हैं पहले उन भीष्म को नमस्कार करो, मैं भीष्म को छोड़कर पहले अपने प्रणाम को धर्म-संगत नहीं मानता ॥ २६ ॥

भीष्म—नहीं आप ऐसा न कहें, कई कारणों से मैं आप की अपेक्षा न्यून हूँ, क्योंकि—

अहं हि मात्रा जनितो भवान् स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव ।
द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्यमहत्तरा वयम् ॥२७॥

द्रोण:—नोत्सहन्ते महात्मनो ह्यात्मानमुपस्तोतुम् । एहि पुत्र ! अभिवादयस्व माम् ।

दुर्योधनः—आचार्य ! अभिवादये ।

इदानीं भीष्मः स्वापेक्षया द्रोणस्योत्कृष्टत्वं स्वस्य चापकृष्टत्वं बहुभिर्युक्तिभिः साधयन् तदेव क्रमो युक्त इत्याह—

अन्वय:—हि अहं मात्रा जनितः भवान् स्वयं जातः मम वृत्तिः आयुधम् तव तु अपह्नवः भवान् द्विजः वयं क्षत्रियवंशजाः भवान् गुरुः वयं शिष्यमहत्तराः ॥ २७ ॥

अहमिति—हि=यतः ; अहम्=भीष्मः ; मात्रा जनितः=समुत्पादितः तेन मम रक्तवीर्यदूषितत्वसम्भवः ; भवान्=द्रोणः ; स्वयं जातः=उत्पन्नः अयोनिजत्वात्वात् ; भरद्वाजमुनेः वीर्यस्य कलशे संस्थापनात्तवोत्पत्तिरतोऽयोनिजत्वमित्यर्थः ; मम वृत्तिः=जीवनोपयिकम् ; आयुधम्=शस्त्रम् ; तव तु अपह्नवः=सर्वभूतस्नेहः ; 'मैत्रः करुण एव चे'ति स्मृतेः ; भवान् द्विजः-ब्राह्मणः ; वयं क्षत्रियवंशजाः=क्षत्रियकुलोत्पन्नाः ; भवान् गुरुः=ब्राह्मणत्वेन सकलशास्त्रोपदेष्टा ; वयं तु शिष्यमहत्तराः शिष्येषु=ब्राह्मणानुशासनीयेषु क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु महत्तराः=उत्तमाः ; तदेवं जन्मशुद्धिकर्मशुद्धिजातिशुद्धिभिर्भवान् श्रेष्ठ इति क्रमयुक्तोऽयं प्रणाम इत्यर्थः । वंशस्थवृत्तम् ॥ २७ ॥

क्योंकि मैं माता के द्वारा उत्पन्न हूं आप स्वयंभू अयोनिज हैं, मेरी जीविका आयुध है, आप की जीविका सर्वप्राणि सुहृदत्व स्नेह हैं, आप ब्राह्मण हैं, मैं क्षत्रिय हूँ, आप गुरु हैं, और मैं आप के शिष्यों का पितामह हूँ ॥ २७ ॥

द्रोण—ठीक ही है बड़े लोग अपनी प्रशंशा उचित नहीं मानते तो आओ बेटा मुझे ही प्रणाम करो ।

दुर्योधन—आचार्य ! मैं अभिवादन करता हूँ ।

द्रोणः—एह्येहि पुत्र ! एवमेवावभृथस्नानेषु खेदमवाप्नुहि ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । पितामह ! अभिवादये ।

भीष्मः—एह्येहि पौत्र ! एवमेव ते बुद्धिप्रशमनं भवतु ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल ! अभिवादये ।

शकुनिः—वत्स !

एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान् ।
राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥ २८ ॥

महात्मानः=महान्तः ; उपस्तोतुम् = प्रशंसितुम् ; न उत्सहन्ते=नेच्छन्ति । अवभृथस्नानेषु=यज्ञान्तस्नानविधिषु ; खेदम्=आयासम् ; आप्नुहि=अनुभवस्व ।

बुद्धिप्रशमनम्=बुद्धिनैर्मल्यम् ।

प्रणमन्तं दुर्योधन शकुनिस्तमाशीर्भिरभियोजयति—

अन्वयः—एवमेव आप्तदक्षिणान् सर्वान् क्रतून् समानीय राजसूये जरासंध इव नृपान् जित्वा आनय ॥ २८ ॥

एवमिति—एवमेव=इत्थमेव ; आप्तदक्षिणान्=ब्राह्मणेषु दीयमानदक्षिणाकान् ; सर्वान्=अखिलान् ; क्रतून्=यज्ञान् । समानीय=सुसंपाद्य; राजसूये = तन्नामके यज्ञे । जरासंध इव नृपान् जित्वा आनय=वशवर्तिनं कुरु ; जरासंधो नाम नृपः राजसूये सर्वान्नृपान् विजित्य यथा कारागारे स्थापितवान् तथा त्वमपि कुर्विति भावः ॥ २८ ॥

द्रोण—आओ बेटा आओ । इसी प्रकार यज्ञान्त स्नान से खेद प्राप्त करते रहो ।

दुर्योधन—आप से अनुगृहीत हूं । पितामह ! मैं प्रणाम करता हूं ।

भीष्म—आओ बेटा आओ । इसी तरह तुम्हारी बुद्धि प्रशान्त बनी रहे ।

दुर्योधन—मैं अनुगृहीत हुआ । मामा ! मैं प्रणाम करता हूं ।

शकुनि—वत्स ! इसी प्रकार यज्ञ करते रहो, उन यज्ञों में बड़ी-बड़ी दक्षिणायें देते रहो । अन्त में राजसूय यज्ञ कर जरासन्ध के समान सभी राजाओं को बन्दी बनाओ ॥ २८ ॥

द्रोणः—अहो ! आशीर्वचनेऽपि शकुनिरुद्योगं जनयति । अहो ! प्रियविरोधः खल्वयं क्षत्रियकुमारः ।

दुर्योधनः—वयस्य ! कर्ण ! गुरुजनप्रणामावसाने प्राप्तक्रममुपभुज्यतां वयस्यविस्रम्भः ।

कर्णः—गान्धारीमातः !

क्रतुव्रतैस्ते तनु गात्रमेतत् सोढुं बलं शक्ष्यसि पीडयानि ।
अन्तस्त्वनामन्त्र्य न घर्षयामि राजर्षिधीराद् वचनात् भयं मे ॥२६॥

आशीर्वचने = आशीः वाक्ये ; उद्योगम् = कलहार्थंप्रेरणम् ; जनयति = उत्पादयति ; प्रियविरोधः = वैररसिकः ; उपभुज्यताम् = अनुभूयताम् ; वयस्यविस्रम्भः = मित्रस्नेहालिङ्गनम् ।

इदानीं कर्णः विहितक्रतुशुचिशरीरं राजर्षितुल्यं दुर्योधनं प्रशंसयन्नाह—

अन्वयः—एतत् ते गात्रम् क्रतुव्रतैः तनु, (यदि) बलं (सोढुं) शक्ष्यसि (चेत्तदा) पीडयानि, अतः तव अन्तः जनामन्त्र्य न घर्षयामि यतः राजर्षिधीरात् तव वचनात् मे भयम् (भवति) ॥ २६ ॥

क्रतुव्रतैरिति एतद् = इदम् ; ते = तव ; गात्रम् = वपुः ; क्रतुव्रतैः क्रतुविहितोपवासादिनियमैः ; तनु = कृशम् । यदि त्वं बलम् = आलिङ्गनावसरे मदीयां शक्तिं सोढुं शक्ष्यसि = समर्थो भविष्यसि तदा त्वां पीडयानि = बलवदालिङ्गनं ददानि अतः तव अन्तः = चित्तं ; अनामन्त्र्य =

द्रोण—अहो ! आश्चर्य है जो यह शकुनि आशीर्वाद के वचन में भी इस दुर्योधन को युद्ध के लिये प्रोत्साहित कर रहा है; इस क्षत्रिय कुमार को विरोध रुचिकर प्रतीत होता है ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण ! गुरुजनों के प्रणाम करने के बाद क्रम प्राप्त मित्रोचित मिलने की बारी आई है ।

कर्ण—गान्धारीनन्दन ! यह तुम्हारा शरीर यज्ञ में किये गये व्रतों के कारण कृश हो गया । है यदि मेरा बल सहन करने में सक्षम हो तो मैं आलिङ्गन करूँ । किन्तु बिना पूछे मैं ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि राजर्षि के समान तुम्हारे वचन से भी भय उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

दुर्योधनः—एवमेव ते बुद्धिरस्तु ।

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन !! एष महेन्द्रप्रियसखो भीष्मको नाम भवन्तं सभाजयति ।

दुर्योधनः—स्वागतमार्याय । अभिवादये ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन !! एष दक्षिणापरिघभूतो भूरिश्रवा नाम भवन्तं सभाजयिष्यति ।

अनापृच्छय ; न घर्षयामि=नालिङ्गनमाचरामि ; राजर्षिधीरात्=राजर्षिवदतिगम्भीरात् ! ते वचनात् मे भयं भवतीति शेषः ; यज्ञानुष्ठाननियमादिना कृशकायस्त्वं मदालिङ्गनजं बलं यदि सोढुं शक्ष्यसि तदाहं त्वां दृढमालिङ्ग्य सुखायिष्यामि : किन्त्वेतत्तदैव करिष्यामि यदा त्वं मां तथा कर्त्तुमाज्ञापायिष्यसि , तवाभिप्रायज्ञानं विना नाहं तथा कर्त्तुं प्रवर्त्तयिष्ये; त्वं हि राजर्षिरिवातिगंभीराणि वचांसि व्याहरसि तदहं हठधर्मितया साधोस्तवालिङ्गने विभेमीत्यर्थः । उपजातिश्छन्दः ॥ २९ ॥

महेन्द्रप्रियसखः=इन्द्रस्य प्रियमित्रम् ; सभाजयति=स्वागतं व्याहरति ; यज्ञान्ते हि सर्वे सम्मानप्रदर्शनार्थं यज्ञकर्त्तारमभिनन्दयन्तीति शिष्टाचारः दक्षिणापयपरिघभूतः=विन्ध्यप्रदेशस्य अर्गलस्वरूपः रक्षक इत्यर्थः । सभाजयता=बहुमानयता ; वासुभद्रेण=श्रीकृष्णेन वासुदेवनाम्नेत्यर्थः रामभद्रादिवदयं प्रयोगः । अभिमन्युः=शुभद्रायामर्जुनाज्जातस्तन्नामकः । शकुनिकृतमेतदनन्तरं सहदेवकृतप्रणामनिवेदनमभिमन्युकृतप्रणामविस्मारणाय यथायमभिमन्युं नाशीभिर्युञ्ज्यादित्यर्थः; पितृसदृशपराक्रमः=अर्जुनतुल्यपराक्रमशीलः; सभाजजयति=अभिनन्दति । सर्वराजमण्डले अभिनन्दनार्थं दिग्भ्यो विदि-

---

दुर्योधन—तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे ।

द्रोण—बेटा दुर्योधन ! इन्द्र के प्रियसखा जिनका नाम भीष्मक है तुम्हें बधाई देते हैं ।

दुर्योधन—आप का स्वागत है । मैं आप को प्रणाम करता हूं ।

भीष्म—पौत्र दुर्योधन ! ये दक्षिणा के परिघ के समान भूरिश्रवा हैं, जो आप को बधाई देते हैं ।

दुर्योधनः—स्वागतमार्याय ।

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन !! भवतो यज्ञं सभाजयता वासुभद्रेण प्रेषितोऽभिमन्युर्भवन्तं सभाजयति ।

शकुनिः—वत्स ! दुर्योधन ! एष जरासन्धपुत्रः सहदेवो भवन्तमभिवादयति ।

दुर्योधनः—एह्ये हि वत्स ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।

सर्वे—एतत् सर्वं राजमण्डलं भवन्तं सभाजयति ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि ! भोः ! किन्नु खलु समागते सर्वराजमण्डले विराटो नागच्छति ।

शकुनिः—प्रेषितोऽस्य मया दूतः । शङ्के पथि वर्तते इति ।

ग्भ्यश्च राजानः समगताः किन्तु विराटस्यानागमनं तदपराधं व्यञ्जयतीत्यर्थः । दूतः=संदेशहरः ; शङ्के=संभावयामि; पथि=मार्गे ; धर्मे धनुषि चाचार्यः=धर्मस्य धनुर्विद्यायाश्चोपदेशकः ; दक्षिणा=यज्ञेवृतत्वादाचार्यरूपस्य पारितोषिकम् ; भवतु भवतु=तिष्ठतु तिष्ठतु । व्यपश्रयिष्ये = कालान्तरेण याचयिष्ये ; मदीया दक्षिणा भवत्समीपे एव तिष्ठतु यथावसरं याचिष्ये इति द्रोणाशयः ; आचार्योऽपि व्यपश्रयिष्यते = सामान्ययाचको हि समयान्तरे दातारं याचते यः आचार्यो न भवति भवांस्तु ममाचार्यः नोचितं व्यपाश्रयणमिति दुर्योधनाशयः । किन्तु खलु प्रयोजनम् दक्षिणाग्रहणस्य

दुर्योधन—आप का स्वागत है ।

द्रोण—पुत्र दुर्योधन ! यह अभिमन्यु तुम्हें बधाई देता है जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने तुम्हें बधाई देने के लिये भेजा है ।

शकुनि—वत्स दुर्योधन ! यह जरासन्ध का पुत्र सहदेव तुम्हें बधाई देता है ।

दुर्योधन—आओ वत्स ! पिता के सदृश पराक्रमी बनो ।

सभी—यह समस्त राजमण्डल आप को बधाई देता है ।

दुर्योधन—मैं आप सब से अनुगृहीत हुआ । क्या बात है कि सभी राजाओं के आने पर भी विराट नहीं आये ।

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा है । संभव है मार्ग में आ रहे हों ।

दुर्योधनः——भो आचार्य ! धर्मे धनुषि चाचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा ।

द्रोणः—दक्षिणेति । भवतु भवतु । व्यपश्रयिष्ये तावद् भवन्तम् ।

दुर्योधनः——कथमाचार्योऽपि व्यपश्रयिष्यते ।

भीष्मः——भोः ! किन्नु खलु प्रयोजनं, यदा-

पीतः सोमो बाल्यदत्तो नियोगा-
छत्रच्छाया सेव्यते ख्यातिरस्ति ।
किं तद् द्रव्यं किं फलं को विशेषः
क्षत्राचार्यो यत्र विप्रो दरिद्रः ॥ ३० ॥

प्रार्थना व्यर्था आचार्यस्य पूर्णमनोरथत्वात्कृतकृत्यत्वाच्चेति भीष्माशयस्तत्र कारणं वक्ष्यत्यग्रिमेण श्लोकेन—

अन्वयः—द्रोणेन बाल्यदत्तः सोमः नियोगात् पीतः । छत्रच्छाया सेव्यते । ख्यातिः अस्ति । क्षत्राचार्यः विप्रः यत्र दरिद्रः तत् किं द्रव्यम् । किंफलम् । कः विशेषः (अस्ति) ॥ ३० ॥

पीत इति—द्रोणेन बाल्यदत्तः=बाल्यावस्थया दत्तः ; सोमः=सोमाख्ययज्ञे सोमलतारसः ; नियोगात्=शास्त्रीयानुष्ठानानुसारात् ; पीतः=आस्वादितः ; छत्रच्छाया=त्वादृशस्य नृपस्याश्रयः ; सेव्यते=उपभुज्यते । ख्यातिः=प्रसिद्धिः अस्ति ; क्षत्राचार्यः=निखिलराजशिरोमणेस्तव गुरुः अयं द्रोणः ; यत्र=विषये ; दरिद्रः=हीनः स्यात् तादृशं किं द्रव्यम् ; किं फलं

दुर्योधन—हे आचार्य ! हे धर्मोपदेष्टा तथा हे धनुर्विद्या के आचार्य ! आप अपनी दक्षिणा स्वीकार कीजिये ।

द्रोण—दक्षिणा ! अच्छा रहने दो कालान्तर में मांग लूंगा ।

दुर्योधन—आचार्य हो कर आप मागेंगे क्यों ?

भीष्म—इन्हें दक्षिणा की आवश्यकता ही क्या है ।

आचार्य ने युवावस्था में विधान पूर्वक सोमरस का पान किया, तुम्हारी छत्रच्छाया में निवास करते हैं, पर्याप्त यश प्राप्त है । ऐसी कौन सी वस्तु है, ऐसा कौन फल है अथवा ऐसी कौन विशेषता है जिसमें ये क्षत्रियाचार्य विप्र दरिद्र हों ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु भवान् , किमिच्छति । किमनुतिष्ठामि ।

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन !! कथयामि ।

दुर्योधनः—किमिदानीं भवता विचार्यंते ।

प्राणाधिकोऽस्मि भवता च कृतोपदेशः
शूरेषु यामि गणनां कृतसाहसोऽस्मि ।
स्वच्छन्दतो वद किमिच्छसि किं ददानि
हस्ते स्थिता मम गदा भवतश्च सर्वम् ॥ ३१ ॥

को वा विशेषः । न कोऽपीत्यर्थः । अयं भावः द्रोणेन सोमलता रसः बाल्य एव पीतः । भवादृशस्य चक्रवर्त्तिनः नृपस्याश्रयो गृहीतः । ख्यातिरस्त्येव । तदयं कुत्रापि विषये नास्ति हीना । यदर्थं दक्षिणाग्रहणानुरोधः उपयुज्येतेत्यर्थः । शालिनीवृत्तम् ॥ ३० ॥

किमनुतिष्ठामि=केन वस्तुना भवतः सेवां संपादयामि । किमिदानीं भवता विचार्यंते । मयि दक्षिणां दातुं समुद्यते विचारो व्यर्थः सत्वरमाज्ञापयतु भवानिति दुर्योधनाशयः ।

अन्वयः—प्राणाधिकः अस्मि । भवता कृतोपदेशः च अस्मि । शूरेषु गणनां यामि । कृतसाहसः अस्मि । स्वच्छन्दतः वद । किमिच्छसि । किं ददामि । यदा मम हस्ते गदा स्थिता ततो भवतः सर्वमेवाधीनम् ॥ ३१ ॥

प्राणेति—अहं प्राणाधिकः प्राणेभ्योऽधिकः स्नेहपात्रं तवास्मीति शेषः ; भवतः कृतोपदेशः=लब्धशस्त्रविद्यस्तेनशासनार्हः शिष्यः अस्मि; शूरेषु=वीरेषु ; गणनां=परिगणितः; यामि=भवामि कृतसाहसः=साहसी अस्मि ; तदेवं सर्वथा दातृत्वयोग्यताशालिनि मयि दक्षिणां दातु-

---

दुर्योधन—गुरुदेव ! आज्ञा दीजिये क्या आप चाहते हैं, मैं क्या दूँ ।

द्रोण—पुत्र दुर्योधन । कहता हूँ ।

दुर्योधन—अब आप क्या सोचते हैं ?

मैं आपका प्राण से भी प्यारा शिष्य हूँ, आपने मुझे उपदेश दिया है—वीरों में मेरी प्रथम गणना है युद्ध में मैं साहस करने वाला हूँ । आप यथेच्छ कहिये क्या दूँ, मेरे हाथ में गदा रहे, सारा धन आपका है ॥३१॥

द्रोणः—पुत्र ! ब्रवीमि खलु तावत् । वाष्पवेगस्तु मां बाधते ।

सर्वे—कथमाचार्योऽपि बाष्पमुत्सृजति ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन !! अफलस्ते परिश्रमः ।

दुर्योधनः—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

दुर्योधनः—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

मुद्यते सति स्वच्छन्दतः=स्वेच्छानुसारेण संकोचं विहाय ; वद=कथय, किम् इच्छसि=अभिलषसि ? ; किं ददामि=किं समर्पयामि ; यदा मम हस्ते गदा स्थिता ततो भवतः सर्वं विभवजातमधीनं करिष्ये इति शेषः । अतः संकोचं विहाय प्रार्थ्यतामलं विचारेणेति दुर्योधनाशयः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३१ ॥

वाष्पवेगः=अश्रुप्रवाहः ; बाधते=वक्तुं प्रतिषेधति; वक्तुं समुद्यतस्य ममाश्रुप्रवाहः मां वक्तुमक्षमं करोतीत्यर्थः ।

आचार्योऽपि—सर्वशास्त्रज्ञानसमर्थोऽपि धैर्यादिगुणविशिष्टोऽपि वाष्पमुत्सृजति=रोदिति ।

द्रोण—बेटा ! अभी बताता हूं, किन्तु अश्रुप्रवाह मुझे ऐसा करने से रोक रहा है ।

सभी—क्या बात है जो आचार्यप्रवर अश्रुपात कर रहे हैं ।

भीष्म—पौत्र, दुर्योधन ! तुम्हारा सारा प्रयत्न निष्फल है ?

दुर्योधन—अरे कोई है यहाँ ?

(भट प्रवेश कर)

भट—जय हो महाराज की ।

दुर्योधन—जल लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (वाहर जा कर फिर लौट कर) जय हो महराज की । यह पानी है ।

दुर्योधनः—आनय । (कलशं गृहीत्वा) भो आचार्य ! अश्रुपातोच्छिष्टस्य मुखस्य क्रियतां शौचम् ।

द्रोणः—भवतु भवतु । मम कार्यक्रियैव मुखोदकमस्तु ।

दुर्योधनः—हा धिक् ,

यदि विमृशसि पूर्वजिह्मतां मे यदि च समर्थयसे न दास्यतीति ।
शरशतकठिनं प्रयच्छ हस्तं सलिलमिदं करणं प्रतिग्रहाणाम् ॥३२॥

अफलः=व्यर्थः ; एतावता परिश्रमेणापि त्वमाचार्यं दक्षिणाग्रहणोद्यतं कर्त्तुं न प्रभुरभूरित्यर्थः । आपः=जलानि; अश्रुपातोच्छिष्टस्य=अश्रुपातेनोपहतस्य ; शौचं क्रियताम्=मुखप्रक्षालनं विधीयताम् ; कार्यक्रिया = मदीहितकार्यसंपादनम् ; मुखोदकम्=मुखप्रक्षालनार्थं जलम् ; मदीयामभिलाषां पूरयत्वेतावतैव मे मुखप्रक्षालनजलमलमनेन बाह्योदकेनेत्याचार्याशयः ।

दुर्योधनस्तदा बाष्पमुत्सृजन्तमाचार्यं दृष्ट्वात्मानं धिक्कुर्वन् दानविषये स्वकीयंदाढर्यं सूचयन् आचार्यसंदेहवारणाय ब्रवीति—

अन्वयः—यदि मे पूर्वजिह्मतां विमृशसि यदि च न दास्यति इति समर्थयसे तदा शरशतकठिनं हस्तं प्रयच्छ प्रतिग्रहाणां करणम् इदं सलिलं तव हस्ते अधुनैव प्रयच्छामि इति शेषः ।। ३२ ।।

यदीति—यदि मे=मम दुर्योधनस्य ; पूर्वजिह्मतां=पूर्वकृतं कापट्यम् ; विमृशसि=विचारयसि, यदि च न दास्यति इति समर्थयसे=

दुर्योधन—लाओ । (कलश लेकर) गुरुदेव ? आँसुओं से अपवित्र मुख का मार्जन करें ।

द्रोण—रहने दो ! मेरे कार्य की सिद्धि हो मेरे लिये मुखोदक है ।

दुर्योधन—ओह ! मुझे धिक्कार है ।

यदि आप मेरी प्राक्तन कुटिलता पर ध्यान दे रहे हों अथवा यदि यह सोचते हों कि यह नहीं देगा तो सैकड़ों बाणों के समान कर्कश अपने हाथों को आगे बढ़ाइये और दान के करणभूत (असाधारण कारण) इस जल को ग्रहण कीजिये ।। ३२ ।।

द्रोणः— हन्त ! लब्धो मे हृदयविश्वासः । पुत्र ! श्रूयतां ।

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥३३॥

विश्वसिषि तदा शरशतकठिनम्=बाणाभ्यासकर्कशम् ; हस्तं=करम् ; प्रयच्छ=मदग्रे प्रसारय ; प्रतिग्रहाणाम्=दानस्वत्वाङ्गीकाराणाम् ; करणम्=साधनम् ; इदं सलिलं=जलम् ; तव हस्ते अधुनैव प्रयच्छामिति शेषः ॥ ३२ ॥

हन्तीति=हर्षबोधकमिदं पदम् ; हृदयविश्वासः=मनसः प्रत्ययः । सर्वेषां राज्ञां समक्षे विशेषतो यज्ञान्ते सजलस्पर्शां दक्षिणादानप्रतिज्ञामन्यथा न करिष्यतीति हृदये विश्वसमीति द्रोणाचार्याभिप्रायः ।

दुर्योधनकृताग्रहं स्वीकार्याचार्यप्रवरः दक्षिणां भिक्षां च याचते—

अन्वयः—येषा निराश्रयाणां (भ्रमतां) द्वादशभिः संवत्सरैः क्वापि गतिः न दृष्टा-तादृशानामेषां पाण्डवानां त्वं संविभाग कुरु इति एषा च मम भिक्षा दक्षिणा च ॥ ३३ ॥

येषामिति—येषां निराश्रयाणाम्-कुत्राप्याश्वस्तेनाश्रयमलभमानानाम् ; यत्र तत्र भ्रमतामित्यर्थः ; पाण्डवानाम् द्वादशभिः संवत्सरैः=वर्षैः ; क्वापि=कुत्रापि ; गतिः=अवस्थानम् ; न दृष्टा=न ज्ञाता ; तादृशानामेषां पाण्डवानां त्वं संविभागम्-अंशदानम् राज्यार्धदानरूपम् ; कुरु=विधेहि ; इति एषा=त्वया क्रियमाणा पाण्डवांशदानघोषणा ; च=एव ; मम भिक्षा दक्षिणा च भविष्यतीति शेषः ; यदा त्वं स्वकीयराज्यात् निराश्रयतया यत्र तत्र भ्रमतां पाण्डवानां लभ्यमंशदानं कृत्वा तान् सुखयिष्यसि तदाहमात्मानं लब्धदक्षिणं प्राप्तभिक्षं च मन्ये । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ३३ ॥

सोद्वेगम्-उद्वेगेन=व्याकुलतया सहितं । पाण्डवेभ्यो राज्यप्रदानस्यासह्यतया जातोद्वेगः । मा तावद् द्रोणवाक्यं स्वीकुरु इति शेषः ।

द्रोण—हर्ष की बात है मेरे हृदय में विश्वास हो गया अच्छा सुनो—

जिन बेचारों का कोई-आश्रय नहीं है जो बारह वर्षों से दृष्टि पथ नहीं आये तुम उन पाण्डवों को अपना आधा राज्य दे दो यही मेरी भिक्षा तथा दक्षिणा समझो ॥ ३३ ॥

शकुनिः—(सोद्वेगम्) मा तावद् भोः !

उपन्यस्तस्य शिष्यस्य विश्वस्तस्य च गौरवे ।
यज्ञप्रस्तुतमुत्पाद्य युक्तेयं धर्मवञ्जना ? ॥ ३४ ॥

द्रोणः—कथं धर्मवञ्चनेति । तावद् भो गान्धारविषयविस्मित ! शकुने !!

शकुनिराचार्याय दीयमानां तादृशीं दक्षिणां वञ्चनां मन्यमानो दुर्योधनं निषेधति—

अन्वयः—उपन्यस्तस्य गौरवे च विश्वस्तस्य शिष्यस्य यज्ञप्रस्तुतम् उत्पाद्य इयं धर्मवञ्चना युक्ता ॥ ३४ ॥

उपन्यस्तेति—उपन्यस्तस्य=दक्षिणादानार्थमुद्यतस्य ; गौरवे=भवतां गुरुत्वे ; विश्वस्तस्य=कृतविश्रम्भस्य ; शिष्यस्य=आत्मानुशासितस्य ; यज्ञप्रस्तुतम्=यागरूपे कर्मणि प्रस्तावम् । उत्पाद्य=जनयित्वा इयम्=त्वयाभिक्षारूपेण दक्षिणारूपेण च उपन्यस्ता ; धर्मवञ्चना धर्माचरणव्याजोत्पन्नं छलम् ; युक्ता=उचिता किमिति काक्वा छलयुक्तता बोध्यते ; यः भवति सर्वथा विश्वसिति यश्च यज्ञे दक्षिणां दातुं समुद्यतः तादृशस्य शिष्यस्य यज्ञप्रस्तावे याञ्चया काठिन्यमुपाद्यैषा वञ्चना नितान्तमनुपयुक्तेति भावः ; अतो यज्ञे विश्वासमुत्पाद्यैतादृश्या याञ्चया त्वयायं शिष्यः सर्वथा वञ्च्यते ॥ ३४ ॥

कथं धर्मवञ्चनेति=इयं धर्मवञ्चना नास्ति ; गान्धारविषयविस्मित=गान्धारदेशाधिपत्यप्राप्त्या गर्वोद्धत ! शकुने ; त्वदनार्यभावात्=तव दौर्जन्यकारणेन ! सर्वलोकमनार्यम्=यथा त्वमनार्यस्तथैव परानपि अनार्यत्वेन प्रेक्षसे ।

शकुनि—(घबड़ाहट के साथ) नहीं भाई ऐसा नहीं—

जिस शिष्य ने अपने गुरु के गौरव पर विश्वास कर दक्षिणा देने का उपक्रम किया क्या यह उचित है कि यज्ञ में दक्षिणा का प्रस्ताव उपस्थित कर उसे धार्मिक वञ्चना की जाये ॥ ३४ ॥

द्रोण—कैसी धर्मवञ्चना । अरे गान्धारराज्य को प्राप्त कर गर्व करने

त्वदनार्यभावात् सर्वलोकमनार्यमिति मन्यसे । हन्त भोः !!

भ्रातृणां पैतृकं राज्यं दीयतामिति वञ्चना ।
किं परं याचितैर्दत्तं बलात्कारेण तैर्हृतम् ।। ३५ ।।

सर्वे—कथं बलात्कारेण नाम ।

इदानीं द्रोणाचार्यः भवता धर्मवञ्चना क्रियते इति शकुन्युक्तिं खण्डयन्नाह—

अन्वयः—'भ्रातृणां पैतृकं राज्यं दीयताम्' इति वञ्चना याचितैः दत्तं बलात्कारेण हृतम् इत्यनयोः किं परम् ।। ३५ ।।

'भ्रातृणामिति—भ्रातृणाम् = एकवंशजातत्वेन बन्धुत्वसमुपागतानां पाण्डवानाम् ; पैतृकम्=पित्रंशभूतं ; राज्यं दीयताम् इति वञ्चना=छलं कथं मन्यसे नैतच्छलमिति शेषः ; तेभ्यो राज्यदानस्यौचित्यात् । याचितैः=मया ब्राह्मणेन विशेषतः आचार्येण प्रार्थितैः भवद्भिः दत्तम् बलात्कारेण=बलप्रयोगेण वा तै=पाण्डवः ; हृतम्=स्वायत्तीकृतम् ; अनयोः किं परम्=किमुत्कृष्टम् ; मत्प्रार्थनया एभ्यो दीयते बलात्कारेण वा पाण्डवैर्ह्रियते इत्यनयोः पक्षयोः कः ज्यायानिति विचारे मदीयः पक्षो भवतापि स्वीकर्तव्यः । अतो मयि तव वञ्चनाबुद्धिरयुक्तेति ।। ३५ ।।

बलात्कारेणेति—भीष्मद्रोणातिरिक्तानां सर्वेषां राजन्यानामियमुक्तिः पाण्डवाः कथमस्मासु स्थितेषु बलाद्धरिष्यन्तीति भावः । अवभृथस्नानमेव=यज्ञान्तस्नानमेव । अत्र द्यूतो नास्तिः ये राज्यांशभागिनस्तेषामंशो भवता न्यायेन दातव्य इति भीष्माभिप्रायः । मित्रमुखस्य शत्रोः=कपटमित्रस्य ।

वाले शकुनि ! तुम अपने अनार्य होने के कारण सारे संसार को अनार्य समझते हो । यह बड़े खेद की बात है—

अपने भाइयों को उनका पैतृक राज्य लौटा दो यदि यह प्रवञ्चना है तो तुम्हीं बताओ माँग लेने पर उनका हिस्सा दे देना उचित होगा—अथवा यदि वे बलपूर्वक अपना राज्य ले लें वह अच्छा होगा ।। ३५ ।।

सभी—बल पूर्वक क्यों लेंगे ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन !! अवभृथस्नानमात्रमेव खलु तावत् । मित्रमुखस्य शत्रोः शकुनेर्वचनं न श्रोतव्यम् । पश्य पौत्र !

यत् पाण्डवा द्रुपदराजसुतासहायाः
कान्ताररेणुपरुषाः पृथिवीं भ्रमन्ति ।
यत्त्वं च तेषु विमुखस्त्वयि ते च वामा-
स्तत् सर्वमेव शकुनेः परुषावलेपः ।। ३६ ।।

दुर्योधनः—भवतु, एवं तावदाचार्य ! पृच्छामि ।

भीष्मः इदानीं कौरवपाण्डवयोर्विरोधस्थितिमुपपाद्य द्रोणोक्तिं समर्थयन्नाह —

अन्वयः—यत् द्रुपदराजसुतासहायाः पाण्डवाः कान्तारेणुपरुषाः पृथ्वीं भ्रमन्ति, यच्च त्वं तेषु विमुखः ते च त्वयि वामाः । तत् सर्वं एव शकुनेः परुषावलेपः ।। ३६ ।।

यदिति—द्रुपदराजसुतासहायाः=द्रौपदीसहिताः पाण्डवाः = युधिष्ठिरादयः ; कालान्तरेणुपरुषाः=गहनारण्यधूलिधूसरिताः पृथ्वीं भ्रमन्ति=धरित्रीं पर्यटन्ति; यच्च त्वं तेषु=पाण्डवेषु त्वं विमुखः ते च त्वयि वामाः=पराङ्मुखाः ; तत् सर्वं एव अस्य शकुनेः वञ्चना परुषावलेपः रूक्षगर्वफलम् ; द्रौपदीसहिताः पाण्डवा यद् गहनारण्ये पर्यटन्ति तत्सर्वः शकुनेः पारुष्यवचनपरिणामोऽवगत्य त्वं तादृशो मा भूरिति भीष्माशयः ।। ३६ ।।

भवतु=तिष्ठतु विवाद इति शेषः ।

भीष्म पौत्र दुर्योधनः तुमने अभी-अभी यज्ञान्तस्नान किया है । मुख से मिलता प्रगट करने वाले किन्तु भीतर से शत्रु इस शकुनि की बात मत सुनो, देखो पौत्र !

द्रौपदी को साथ ले कर पाण्डव लोग घोर जङ्गल की धूलि से रूक्ष शरीर हो कर दर-दर भटक रहे हैं, और जिस लिये तुम उनसे विमुख हो और वें तुमसे विमुख हैं, उसका सारा कारण इस शकुनि की निर्दयता तथा घमण्ड है ।। ३६ ।।

दुर्योधन—अच्छा गुरुदेव मैं आप से पूछता हूँ—

द्रोणः—पुत्र ! कथय ।

दुर्योधनः—

यत् पुरा ते सभामध्ये राज्ये माने च धर्षिताः ।
बलात्कारसमर्थैस्तैः किं रोषो धारितस्तदा ।। ३७ ।।

द्रोणः—अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वञ्चितो द्यूताश्रयवृत्तिर्युधिष्ठिरः प्रष्टव्यः,

---

यदि पाण्डवाः बलात्कारेण राज्यहरणे समर्थास्तदा तदानीं द्यूतकाले एव तैः कथं न बलप्रयोगो विहित इति दुर्योधनः आचार्यं पृच्छति---

अन्वयः—यत् पुरा ते राज्ये माने च धर्षिताः तदा बलात्कारसमर्थैः तैः रोषः किम् धारितः ।। ३७ ।।

यदिति—यत् पुरा=द्यूतकाले ; द्यूतकाले राजसभायां वा ; राज्ये=राज्यापहारे ; माने=सकलराजसन्निधौ द्रौपद्याः केशाम्बराकर्षणादिना प्रतिष्ठायां धर्षिताः=अपमानिताः ; तदा=तस्मिन्समये ; बलात्कारसमर्थैः=बलप्रयोगदक्षैः तैः रोषः=कोपः ; किम्=किमर्थम् ; धारितः=निरुद्धः ; समर्थैस्तैस्तदैव राज्यमानहरणकाले एव पुरुषार्थप्रकटनं कर्त्तव्यं स्यात् किन्तु तूष्णीमवस्थानेन तेषां वीर्यराहित्यं ज्ञायते इति दुर्योधनाशयः ।। ३७ ।।

अत्र=विषये । बलाप्रदर्शनकारणे ; धर्मच्छलेन=सत्यवचनपालनपरेण ; वञ्चितः=प्रतारितः ; द्यूताश्रयव्यसनी=अक्षक्रीडारसिकः ।

द्रोण--पूछो बेटा ?

दुर्योधन यदि पाण्डव लोग अपने बल में समर्थ हैं तो जब हमने द्यूतसभा में उनके राज्य तथा मान का अपहरण कर उन्हें अपमानित किया उस समय उन्होंने अपना रोष क्यों छिपा लिया और अपना बल प्रदर्शित क्यों नहीं किया ।। ३७ ।।

द्रोण --इस विषय में धर्म की आड़ में ठगे गये द्यूत व्यसनी युधिष्ठिर से पूछो ।

येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः ।
यद्येकस्मिन् विमुक्तः स्यान्नास्माञ्छकुनिराक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

भीष्मः—अन्यत् प्रस्तुतमन्यदापतितम् । भो आचार्य ! कार्यमत्र गुरुतरं, न कलहः ।

द्रोणः—माऽत्र कर्दनं कार्यं, कलह एव भवतु ।

भीष्मः—प्रसीदत्वाचार्यः । पश्य पौत्र !

त्वयायं प्रश्नः युधिष्ठिरेण कर्त्तव्यः योऽक्षक्रीडाव्यसनी येन च सर्वेषां हननाय द्यूतसभास्थस्तम्भमुत्पाटयितुकामः भीमो निषिद्धः इति धर्षयन् द्रोणः दुर्योधनं प्रत्याह—

अन्वयः—येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन् एव वारितः यदि एकस्मिन् विमुक्तः स्यात्तदा शकुनिः अस्मान् न आक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

येनेति—येन=युधिष्ठिरेण ; भीमः सभास्तम्भं=सभागृहमध्यस्थस्तम्भसमुदायम् ; तोलयन्=एतेन स्तम्भेन एतेन वा स्तम्भेन प्रहारमाचराणीति परीक्षमाणः एव वारितः=निषिद्धः । यदि एकस्मिन् द्यूतसमारम्भे युधिष्ठिरेण स्वेच्छया व्यवहर्त्तुमाज्ञप्तः स्यात्तदा शकुनिः अस्मान् न आक्षिपेत् = एव न निन्देत् । तदैव स्तम्भमुत्पाट्य भीमेन हननात् नायमवसरो लभेतेति भावः ॥ ३८ ॥

प्रस्तुतम्=प्रक्रान्तम् ; आपतितम्=संजातम् ; दुर्योधनं यथाकथंचिदनुनीय पाण्डवेभ्यो राज्यदानं विचारितं स्यात् तत्स्थाने द्रोणदुर्योधनयोः कलह आपतित इति भावः । कर्दनम = भिक्षारूपतया राज्यप्रदानम् ; कार्यम् = पाण्डवेभ्यो राज्यप्रदानम् । कलहः=विरोधः ।

सभा स्तम्भ को अजमाने वाला भीम जिनके मात्र संकेत करने पर शान्त हो गया यदि वे केवल इस कार्य के लिये भीमसेन को छोड़ देते तो आज—शकुनि को हम लोगों के ऊपर आक्षेप करने का अवसर न आता भीष्म—

बात दूसरी हो रही थी और बीच में दूसरी बदल गयी आचार्य ! कार्य प्रधान हैं कलह नहीं ॥ ३८ ॥

द्रोण—अब दैन्य प्रदर्शित करना उचित नहीं—कलह ही हो ले ।

भीष्म—आचार्य प्रसन्न हों । देखो पौत्र—

ये दुर्बलाश्च कृपणाश्च निराश्रयाश्च
त्वत्तश्च साम मृगयन्ति न गर्वयन्ति ।
ज्येष्ठो भवान् प्रणयिनस्त्वयि ते कुटुम्बे
तान् धारयिष्यसि मृगैः सह वर्तयन्तु ।। ३९ ।।

शकुनिः—वर्तयन्तु वर्तयन्तु ।

कर्णः—भो आचार्य! अलममर्षेण । दुर्योधनो हि नाग,

इदानीं भीष्मः द्रोणदुर्योधनयोः कलहवारणपूर्वकं स्वकीयं विचारं समुपस्थापयति—

अन्वयः—ये दुर्बलाः च कृपणाः च निराश्रयाः च त्वत्तः साम मृगयन्ति न गर्वयन्ति । भवान् ज्येष्ठः इति ते च त्वयि प्रणयिनः । तान् कुटुम्बे धारयिष्यसि वा ते मृगैः सह वर्त्तयन्तु इति विचारय ।। ३९ ।।

ये इति—ये=पाण्डवाः ; दुर्बलाः = सैन्यादिशक्तिरहिताः ; कृपणाः= दीनाः च सन्तः त्वत्तः=त्वया साकम् । साम=शान्ति ; मृगयन्ति= कामयन्ते न च गर्वयन्ति=गर्वं न कुर्वन्ति । ज्येष्ठो भवान् । ते च त्वयि प्रणयिनः=सस्नेहाः ; तान् = पाण्डवान् ; कुटुम्बे= परिवारे ; अन्तर्भाव्य धारयिष्यसि=पालयिष्यसि ? अथवा ते=पाण्डवाः ; मृगैः सह वर्त्तयन्तु=यावज्जीवं हरिणैः सह घोराटव्यां चरन्तु । अनयोः कतरदुपयुक्तं भवेदिति त्वमेव विचारय ; जीविकादानमथवा तदुपेक्षणमिति विभाव्य पश्येति भावः ।। ३९ ।।

वर्त्तयन्तु = मृगैः सहैव वने तिष्ठन्तु । अलममर्षेण=क्रोधं मा कुर्वित्यर्थः ।

जो पाण्डव निर्बल है, दुःखी और आश्रय हीन हैं, तुमसे साम (शान्ति) का व्यवहार करते हैं, कभी गर्व नहीं करते तुम उनसे बड़े हो, वे तुम पर प्रेम करते हैं, ऐसी स्थिति में तुम अपने परिवार में शरण न दोगे तो क्या वे इसी प्रकार वन में मृगों के साथ भटकते फिरेंगे ।। ३९ ।।

शकुनि—यदि वन में मृगों के साथ रहें तो रहें ।

कर्ण—हे आचार्य आप क्रोध न करें ।

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणो
वरपुरुषविशेषं नेच्छति स्तूयमानम् ।
गतमिदमवसानं रक्ष्यतां शिष्यकार्यं
गज इव बहुदोषो मार्दवेनैव वाह्यः ॥ ४० ॥

इदानीं कर्णः दुर्योधनस्वभावं वर्णयन् द्रोणाय सम्मति ददाति यद् भवता मार्द्वेन स्वकार्यं साधनीयं न पारुष्येणेति —

अन्वयः—दुर्योधनः परुषार्थं हितम् अपि श्राव्यमाणः सन् रुष्यति वरपुरुषविशेषं स्तूयमानं न इच्छति इदम् अवसानं गतं शिष्यकार्यं रक्ष्यतां बहुदोषः गज इव मार्द्वेन एव बाह्यः ॥ ४० ॥

हितमपीति—दुर्योधनः परुषार्थं=निष्ठुरार्थयुक्तं कठिनं वा हितमपि परिणामे शुभङ्करमपि श्राव्यमाणाः=उच्यमानः सन् रुष्यति=कुप्यति ; हितमपि परुषं वचनं सोढुं न शक्यते इति भावः ; वरपुरुषविशेषम्= वरस्य=श्रेष्ठस्य पुरुषस्य=पुंसः विशेषम्=गुणातिशयं वा स्तूयमानं= प्रशस्यमानं न इच्छति=नाभिलषति कस्यापि प्रशंसां श्रोतुं न शक्नोतीति भावः ; इदम् अवसानं गतं=समाप्तं शिष्यकार्यं = यज्ञसंपादनात्मकं दुर्योधनस्य कृत्यं ; भवता रक्ष्यताम्=दक्षिणाग्रहणेन पूर्यताम् ; बहुदोषः= नानादोषयुक्तः ; गजः=करी ; इव = यथा ; मार्द्वेन=सामप्रयोगेण बाह्यः=निर्वाह्यः कार्यसमाप्तिगमनीयो वा । असहिष्णुः दुर्योधनस्वभावस्तस्माच्छान्तिमवलम्ब्य यज्ञसमाप्तिसाधनं दक्षिणाग्रहणं करोतु । यथा बहुदोषयुक्तः करी सामप्रयोगेण निर्वाह्यते अभीष्टस्थानं नीयते च ; उपमालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४० ॥

यह दुर्योधन कठोर शब्दों में कहे गये हितकारी वचनों को सुनकर भी कुपित हो जाता है, यह अतिमानी है, इसलिये दूसरे पुरुष की प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, अब यह बात समाप्त हो चुकी है। अपने शिष्य का कार्य कीजिये जैसे मदमत्त हाथी को फुसलाकर कर वश में किया जाता है उसी प्रकार आप इस दुर्योधन को मृदुता के साथ मनाइये झगड़ने से क्या लाभ ॥ ४० ॥

द्रोणः—वत्स ! कर्ण !! तेजस्वि ब्राह्मण्यम् । काले सम्बोधितोऽस्मि । एषोऽहं भवच्छन्दमनुवर्ते । पुत्र ! दुर्योधन !! अहं तव प्रभावा ननु ।

भीष्मः—एष इदानीं मार्गेणारब्धः । सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् ।

दुर्योधनः— न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः ।

द्रोणः— एतत् तवैव युक्तम् । तत् पुत्र !

त्वं वञ्चयसे यदि मया न तवात्र दोष-
स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैष लाभः ।

तेजस्वि=तेजोयुक्तम् ; ब्राह्मण्यम् = विप्रत्वम् ; काले=उचितसमये; संबोधितोऽस्मि=यथार्थविषये स्मारितोस्मि ; भवच्छन्दम्=भवदभिप्रायम् ; अनुवर्ते=अनुसरामि ; एषः=द्रोणः ; मार्गेण=उपयुक्तप्रकारेण ; आरब्धम्=कार्यं प्रति प्रवृत्तः ; प्रभावी = महत्तरः श्रेष्ठः त्वयाहं पूज्य इत्यर्थः : सान्त्वम्=सामप्रयोगः ; दुर्विनीतानाम्=अविनयसंपन्नानाम् ; ओषधम्=चिकित्सा ; दुर्विनीता हि साम्नैव साध्यन्ते ; तदयमुचितो द्रोणस्योपक्रम इत्यर्थः । न ममैव=न केवलं मम ; किन्तु कुलस्यापि=वंशस्यापि ।

इदानीं द्रोणः दुर्योधनं प्रति स्वकीयपूज्यतामुपपाद्य शिक्षयति—

अन्वयः—यदि त्वं मया वञ्च्यसे अत्र तव दोषः न । यदि वा त्वां

द्रोण—वत्स कर्ण ! ब्राह्मण का स्वभाव तेजस्वी होता है । तुमने समय पर स्मरण दिलाया । पुत्र दुर्योधन, मैं हूं तुम्हारा, गुरु ।

भीष्म—अब इस समय ये रास्ते पर चल रहे हैं, दुर्विनीतों की दवा शान्ति ही है ।

दुर्योधन—आप केवल हमारे ही नहीं, हमारे कुल के स्वामी हैं ।

द्रोण—बेटा ! ऐसा कहना तुम्हें उचित ही है, इसलिये बेटा ।

यदि तुम मेरे द्वारा ठगे जाते हो तो इसमें तुम्हारा दोष नहीं हैं लोग मुझे ही दोषी कहेंगे यदि मैं दक्षिणा देने के लिये तुम्हें पीडित करता हूं तो

भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां
धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति ॥ ४१ ॥

दुर्योधनः—तेन हि समर्थयितुमिच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र ! केन समर्थयितुमिच्छसि ?

भीष्मेन कर्णेन कृपेण केन किं सिन्धुराजेन जयद्रथेन ।
किं द्रौणिनाऽऽहो विदुरेण सार्धं पित्रा स्वमात्रा वद पुत्र ! केन ॥ ४२ ॥

पीडयामि एषः तवैव लाभः । अस्तु हि महाकुलानां परस्परगताः भेदाः धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति ॥ ४१ ॥

त्वमिति—यदि त्वं मया वञ्च्यसे=प्रतार्यसे ; अत्र तव दोषः=अपराधः न ; किन्तु शिष्यवञ्चनकलङ्को मामेव दूषयेन्न तु त्वामित्यर्थः ; यदि वा त्वां पीडायमि=हठाद्दक्षिणारूपेण तद राज्यार्धं पाण्डवेभ्यो दापयामि तदा एष लाभः तवैव-भ्रातृसंविभागस्य, गुरुवचनानुष्ठानस्य मम यज्ञदक्षिणाप्रतिग्रहस्य च सहैव संपादनात्तवैव लाभः ; हि=निश्चयेन ; महाकुलानां=प्रशस्तवंशोद्भवानां त्वादृशानाम् ; परस्परगताः=अन्योन्यविषयाः ; भेदाः=मनोमालिन्यरूपाः विग्रहकारणात्मकाः वा ; धर्माधिकारवचनेषु=धर्मोपदेशाधिकृतमादृशगुरुवचनेषु ; शमीभवन्ति=शाम्यन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

समर्थयितुम्=स्वसहायैरनुमोदनं कारयितुम् सम्मतिदानेनेति शेषः ।

अत्र कस्य समर्थनं वाञ्छसीति द्रोणः दुर्योधनं पृच्छति—

अन्वयः—भीष्मेन, कर्णेन, कृपेण सिन्धुराजेन जयद्रथेन केन किमि-

इसमें प्रतिज्ञा पालन से तुम्हारा ही लाभ है । महाकुल प्रसूत जनों का यारपरिक विरोध गुरु वचनों से शान्त हो जाया करता है ॥ ४१ ॥

दुर्योधन—मैं इस पर समयंम चाहता हूँ ।

द्रोण—बेटा ! किसका समर्थन चाहते हो ।

भीष्म की 'कृपाचार्य की' सिन्धुराज जयद्रथ की 'अश्वस्थामा' की 'विदुर की' माता पिता की 'या किसी अन्य की । बताओ किसका' समर्थन चाहते हो ॥ ४२ ॥

दुर्योधन:—नहि, मातुलेन ।

द्रोण:—किं शकुनिना ? (स्वगतम्) हन्त ! विपन्नं कार्यम् ।

दुर्योधन:—मातुल ! इतस्तावत् । वयस्य ! कर्ण ! इतस्तावत् ।

द्रोण:—(आत्मगतम्) भवतु, एवं तावत् करिष्ये । (प्रकाशम्) वत्स !

शकुनि:—अयमस्मि ।

द्रोण:—वत्स !

क्रोधप्रायं वयो जीर्णं क्षन्तव्यं वटुचापलम् ।

-च्छसि । किं द्रौणिना विदुरेण सार्धं स्वमात्रा पित्रा वा । हे पुत्र ! वद केन किमिच्छसि ? ।। स२ ।।

भीष्मेनेति—भीष्मकर्णकृपजयद्रथानां केन राज्यार्धप्रदानविषये अनुमोद्यमानमिच्छसीति पूर्वार्द्धार्थ: ; यद्वा द्रौणिना=अश्वत्थाम्ना ; विदुरेण सार्धं स्वमात्रा-पित्रा केन समर्थ्यमानमिच्छसीति त्वं वद ; मातुलेन=मातूभ्रात्रा शकुनिना समर्थयितुमिच्छामीति शेष: ; ।। ४२ ।।

विपन्नम्=विनष्टम् ; कपटनीतिनिपुणेन शकुनिनावश्यमेव कार्यस्य विघात: करिष्यते इति द्रोणाशय: ।

इदानीं द्रोण: कार्यविघातमाशङ्कमान: स्वकार्यसिद्धये शकुनेरालिङ्गनं वाञ्छन्नाह—

अन्वय:—जीर्णं वय:क्रोधप्रायं वटुचापलं क्षन्तव्यम् अस्य रूक्षस्य

दुर्योधन—नहीं नहीं मामा की ।

द्रोण—क्या शकुनि की सम्मति चाहते हो ?

(स्वगत) हाय सारा कार्य विनष्ट हो गया ।

दुर्योधन—मामा इधर आइये मित्र कर्ण इधर आओ ।

द्रोण—(स्वगत) अच्छा तब तक ऐसा करता हूं (प्रकट) वत्स । गान्धार राजा इधर तो आओ ।

शकुनि—यह आया ।

द्रोण—वत्स !

बुढ़ापे में क्रोध अच्छा न होता है इसलिये मैंने जो बाल सुलभ चपलता

अस्य रूक्षस्य वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया ॥ ४३ ॥

भीष्मः—(आत्मयतम्)

एष शिष्यस्य वात्सल्याच्छकुनिं याचते गुरुः ।
एवं सान्त्वीकृतोऽप्येष नैव मुञ्चति जिह्मताम् ॥ ४४ ॥

वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया भवति ॥ ४३ ॥

क्रोधप्रायमिति—जीर्णम्=जराग्रस्तम् ; वयः=अवस्था, वार्धक्यमिति यावत् ; क्रोधप्रायम्=क्रोधबहुलं भवतीति शेषः ; तद् वटुचापलम्=बालोचितं मम चाञ्चल्यम् ; परुषभाषणात्मकं क्षन्तव्यम्=मर्षणीयम् ; अस्य=पूर्वोक्तस्य ; मम रूक्षस्य=नीरसस्य कठिनस्य वा वचसः परिष्वङ्गः=आलिङ्गनम् , एव शमीक्रिया=शान्तिसाधनं भवतीति शेषः ; मया यदुक्तं परुषवचनं तत्प्रतिक्रियार्थं त्वामालिङ्गयामिति द्रोणाभिप्रायः ॥ ४३ ॥

भीष्मः पाण्डवस्नेहेन तथा याचमानं द्रोणमवनतं दृष्ट्वा शकुनेः कौटिल्यं निन्दति—

अन्वयः—एषः गुरुः शिष्यस्य वात्सल्यात् शकुनिं याचते । किन्तु एवं सान्त्वीकृतः अपि एषः जिह्मतां नैव मुञ्चति ॥ ४४ ॥

एष इति—एष गुरुः=द्रोणाचार्यः ; शिष्यस्य वात्सल्यात् = पाण्डवस्नेहातिशयात् ; शकुनिम्=तन्नामकं गान्धारदेशराजानम् सर्वथाद्वेष्यभूतम् । याचते=प्रार्थयति । प्रशंशनंकरोतीत्यर्थः ; एवं सामप्रयोगेण सान्त्वीकृतः अनुनीतः अपि एषः = शकुनिः स्वकीयां जिह्मतां=कौटिल्यं । न मुञ्चति=नैव त्यजति ॥ ४४ ॥

शठः=धूर्त्तः । स्वकार्यसाधनार्थं विनयाश्रयणात् । को निश्चयः=तत्र तव किमभिप्रायः । दातव्यमिति=कार्यस्यावश्यानुष्ठेयत्वात् त्वया निषेधेन

की है और जो कठोर शब्द कह दिया है उसे क्षमा करना मैं तुम्हें गले लगा लूं ॥ ४३ ॥

भीष्म—(स्वगत) ये गुरुदेव अपने शिष्य पाण्डवों के प्रति प्रेम होने कारण शकुनि को मना रहे हैं, परन्तु इस प्रकार शान्ति युक्त वचन कहने पर भी यह अपनी कुटिलता नहीं छोड़ता ॥ ४४ ॥

शकुनिः—(आत्मगतम्) अहो शठः खल्वाचार्यः, स्वकार्यलोभान्मां सान्त्वयति ।

(सर्वे परिक्रम्योपविशन्ति ।)

दुर्योधनः— मातुल ! पाण्डवानां राज्यार्धं प्रति को निश्चयः ?

शकुनिः—न दातव्यमिति मे निश्चयः ।

दुर्योधनः—दातव्यमिति वक्तुमर्हति मातुलः ।

शकुनिः—यदि दातव्ये राज्ये किमस्माभिः सह मन्त्रयसे । ननु सर्वमेव प्रदीयताम् ।

दुर्योधनः—वयस्य ! अङ्गराज !! भवानिदानीं न किञ्चिदाह ।

कर्णः—इदानीं किमभिधास्यामि,

बाधा न विधेयेति दुर्योधनाभिप्रायः । मन्त्रयसे = मन्त्रणां करोषि । दातुं निश्चये कृते सति मम सम्मतिग्रहणं व्यर्थमिति शकुनेरभिप्रायः । सर्वमेव प्रदीयताम् न केवलमर्द्धं राज्यमपि तु सर्वमेव प्रदीयतां मदनुमितेरावश्यकतैव नास्ति इति शकुनेरनभिमतप्रकाशोक्तिः । अङ्गराज = अङ्गदेशाधिपते कर्ण । न किञ्चिदाह = त्वयात्रविषये स्वकीयानुमतिः प्रकाशयितव्येति दुर्योधनाभिप्रायः ।

शकुनि—(स्वगत) अरे निश्चय ही आचार्य बड़े धूर्त हैं, जो अपने काम के लिये मुझे मना रहे हैं ।

(सभी आ कर बैठ जाते हैं)

दुर्योधन—मामा पाण्डवों के आधा राज्य देने के प्रति आप का क्या निश्चय है ?

शकुनि—मत दो यही मेरा निश्चय है ।

दुर्योधन—मामाजी आप को कहना चाहिये कि देना उचित है ।

शकुनि—यदि राज्य देना ही है तो हम लोगों से क्या पूछते हो ? पूरा राज्य दे दो ।

दुर्योधन—वयस्य कर्ण ! तुम कुछ नहीं कर रहे हो ?

कर्ण—मैं इस समय क्या कहूँ ।

रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि ।
क्षमाक्षमत्वे तु मवान् प्रमाणं सङ्ग्रामकालेषु वयं सहायाः ॥ ४५ ॥

दुर्योधनः—मातुल ! बलवत्प्रत्यमित्रोऽनुपजीव्यश्च कश्चित् कुदेशश्चिन्त्यताम् । तत्र वसेयुः पाण्डवाः ।

शकुनिः – हन्त भोः !

कर्णः इदानीमितिहासव्याजेन स्वाभिमतं प्रकाशयति—

अन्वयः—रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि तु क्षमाक्षमत्वे भवान् प्रमाणम् । वयं संग्रामकालेषु सहायाः ॥ ४५ ॥

रामेणेति—रामेण=दशरथिना भुक्ताम्=अनुभूतां विहितां च परिपालितां=सर्वथा त्यागपूर्वकं रक्षितां च ; सुभ्रातृताम् = शोभनां भ्रातृस्नेहपरिपाटीम् ; न प्रतिषेधयामि = नैव निवारयामि ; क्षमाक्षमत्वे=राज्यार्धप्रदानस्य युक्तायुक्तत्वविषये भवान् प्रमाणम् = निर्णायकः ; वयम्=तव मित्राणि ; संग्रामकालेषु = युद्धावसरेषु सहायाः = त्वत्पक्षमाश्रित्य सहायकाः ; रामेण हि भ्रातृप्रेमादर्शो स्थापितस्तद्यदि भवते रोचते तर्हि तेभ्यो राज्यार्द्धं देहीति । तद्विषयको निर्णयस्त्वद्विचाराधीनः । किन्तु कुतोऽपि कारणादुपस्थिते युद्धे अहं तव पक्षमवलम्ब्य योत्स्ये । अतो युद्धभयाद्राज्यं न देयं यदि स्वसंमत्या दीयते तर्हि नाहं तत्र निषेद्धेति कर्णाभिप्रायः ॥ ४५ ॥

बलवत्प्रत्यमित्रो बलवद्भिः=सबलैः प्रत्यमित्रैः शत्रुभियुक्तः । अनुपजीव्यः=सस्यसंपदाराहित्येन सर्वथा वस्तुमयोग्यः । कुदेशः = कुत्सितो देशः । पाण्डवेभ्यो दीयतां तेन दक्षिणापि दत्ताभविष्यति=पाण्डवाश्चापि विपन्ना भविष्यन्तीति दुर्योधनस्य द्रोणशकुन्युभयसामञ्जस्ययुक्तोक्तिः ।

राम ने जिस सौभ्रात्र का अनुभव तथा पालन किया मैं उसका निषेध नहीं करता—राज्य देना चाहिये या नहीं इस विषय में आपका अधिकार है, किन्तु युद्ध छिड़ जाने पर, मैं आपकी सहायता करूँगा ॥ ४५ ॥

दुर्योधन—बलवान् शत्रुओं से युक्त कोई ऊषर देश ढूंढ़ना चाहिये जहाँ पाण्डव जाकर रहें ।

शकुनि—खेद है ।

शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद् बलवत्तरः ।
ऊषरेष्वपि सस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

दुर्योधनः—अथेदानीं,

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम् ।

अत्र विषये शकुनिः स्वकीयं मतमुपस्थापयति –

अन्वयः—शून्यम् इति अभिधास्यामि पार्थाद् बलवत्तरः कः ? यत्र युधिष्ठिरः राजा तत्र ऊषरेषु अपि सस्यं स्यात् ॥ ४६ ॥

शून्यमिति—शून्यम्=त्वयोक्तस्य बलवत्प्रत्यमित्रयुक्तस्य सस्यसंपदारहितस्य कुदेशस्यान्वेषणविषये अहमेतावदेवाभिधास्यामि यत् शून्यमिति=तादृशोऽभावग्रस्तो देशोऽप्रसिद्ध इति उत्तरं दास्यामि ; पार्थात्=अर्जुनात् । बलवत्तरः=समधिकवलः ; पार्थापेक्षया समधिकवलस्य पुरुषस्याप्रसिद्धेः तेन तस्य बलवत्प्रत्यमित्रताऽपि न संभवति ; एषमेव तादृशदेशस्यानुपजीव्यतापि नोपपद्यते यत्र युधिष्ठिरः राजा तत्रोषरेष्वपि सस्यसंपदाधिक्यात् । धर्ममूर्त्तेर्युधिष्ठिरस्य ऊषरेष्वपि पादन्यासमात्रेण भूमिः सर्वथा सस्य संपदायुक्ता जायते अतः कस्मिंश्चिदपि देशे दीयमाने तेषां प्रभावातिशयात् बलवत्प्रत्यमित्रतायाः शस्यसंपदाराहित्यस्य च संभवोनास्तीति शकुनेरभिप्रायः ॥ ४६ ॥

एवं शकुनेरनुमितिग्रहणे विफलो दुर्योधनः स्ववचनमवितथं कर्त्तुमनाः संकल्पजलं द्रोणहस्ते ददन् कथयति—

अन्वयः—गुरु करतलमध्ये तोयं आवर्जितम् । मे इह कुलवृद्धै। श्रुतं

इस विषय में मैं यही कहना चाहता हूँ कि ऐसा कोई देश नहीं है, क्योंकि पाण्डवों से बढ़कर कोई बलवान् नहीं है और जहाँ युधिष्ठिर राजा होंगे वहाँ की ऊषर भूमि भी उपजाऊ (धनधान्य से परिपूर्ण) हो जायगी ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब ।

मैंने गुरुदेव के हाथ में संकल्प जल छोड़ दिया है, मैंने कुल के वृद्धों से

तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप ! जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम् ॥ ४७ ॥

शकुनिः—अनृतवचनान्मोचयितव्यो भवान् ननु ?

यत् पृथिव्यां प्रमाणं च तद् इह अपनयः वञ्चना वा यथा वा भवतु हे नृप ! तद् जलं सत्यं कर्त्तुम् इच्छामि ॥ ४७ ॥

गुरुकरेति—गुरुकरतलमध्ये=आचार्यस्य पाणितलमध्ये ; तोयम्=दानार्थं संकल्पितं जलम् । आवर्जितम्=प्रदत्तम् ; इह मे=मम ; कुलवृद्धैः=वंशजातवृद्धैः भीष्मादिभिः श्रुतम्=दानार्थसंकल्पितजलविषये आकर्णितं यत्=दानजलम् । पृथिव्यां प्रमाणं च दानस्य फलविषये सत्यतायां व्यवस्थापकत्वेन प्रसिद्धम् । तत्=तस्मात्कारणात् । इह इदं कर्म अपनयः=दुर्नीतिः । वञ्चना=प्रतारणा ; वा=अथवा यथा वा=अन्य एव वा कोप्यनर्थो भवतु=जायतां नृप=शकुने गान्धारराज । तज् जलं सत्यं कर्त्तुमिच्छामि ; यद्वा तद्वा भवतु गुरुकरतलमध्ये दीयमानस्य जलस्य सत्यतां साधयितुमिच्छता मया राज्यं विभज्यावश्यमेव देयमित्यर्थः ॥४७॥

ननु=निश्चयेन; अनृतवचनात्=मिथ्याभाषणात् ; मोचयितव्यः=विमोचनीयः ; अथ किम्=केन प्रकारेणेति दुर्योधनः पृच्छति । शकुनिः मिथ्याभाषणान्मोक्तुमुपायं विज्ञापयति इतस्तावदिति एवं ब्रूहि मदीयोपायेन राज्यमपि न दातव्यं भविष्यति सत्यं च पालितं भवतीति तादृश उपायो भवतालम्बनीय इत्यर्थः । पञ्चरात्रेणेति—रात्रिपञ्चकेन; पाण्डवानाम्=अज्ञातवासं कुर्वतां, युधिष्ठिरादीनां ; प्रवृत्तिः=वार्त्ता ; उपनीयते=समानीयते यदि पञ्चभी रात्रिभिर्भवन्तः पाण्डवानां प्रवृत्तिमानीय दास्यन्ति तदा राज्यार्द्धं विभज्य दातुमङ्गीकरोमीति वदेति दुर्योधनं प्रेरयतः शकुनेरभिप्रायः ।

ऐसा सुना है, और यही दान का प्रमाण है कि संकल्पपूर्वक दान करना चाहिये । इसलिये हे राजन् ! चाहे अनीति हो चाहे धर्मवञ्चना हो मैं इस दानजल को सत्य करना चाहता हूं ॥ ४७ ॥

शकुनि—तो क्या मैं झूठ बोलने से आपको मुक्त करूं ।

दुर्योधनः—अथ किम् ।

शकुनिः—तेन हीतस्तावत् (उपसृत्य) भो आचार्य ! इहात्र भवान् कुरुराजो भवन्तं विज्ञापयति ।

द्रोणः—वत्स ! गान्धारराज !! अभिधीयताम् ।

शकुनि.—यदि पञ्चरात्रेण पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनेतव्या, राज्यस्यार्धं प्रदास्यति । कलशमानयतु भवानिदानीम् ।

द्रोणः—मा तावद् भोः !

ये कर्तुकामैश्छलनं भवद्भिः संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टाः ।
ते पञ्चरात्रेण मयोपनेया वरं ह्यदत्तं विशदाक्षरेण ॥ ४८ ॥

इदानीमाचार्यः तादृशमनुबन्धमसंभवं मन्यमान आह—

अन्वयः—ये छलनं कर्त्तुकामैः भवद्भिः द्वादशभिः संवत्सरैः न दृष्टा ते एव पञ्चरात्रेण मया उपनेया भवेयुः तस्माद् भवता विशदाक्षरेण अदत्तं वरम् ॥ ४८ ॥

ये इति—ये=पाण्डवाः छलनं=प्रतारणं कर्त्तुकामैः=विधातुमिच्छद्भिः सर्वविधसाधनसंपन्नैरपि भवद्भिः ; द्वादशभिः संवत्सरैः=द्वादशभिर्वर्षैः ; न दृष्टाः=न साक्षात्कृताः ; ते एव=पाण्डवाः; मया=असहायेन ब्राह्मणेन । मात्रपञ्चरात्रेण=एतावता स्वल्पकालेन; उपनेयाः=अन्विष्यानेयाः

दुर्योधन—और क्या ?

शकुनि—अच्छा तो इस प्रकार कहना ठीक होगा (सन्निकट जाकर) हे आचार्य ! तत्र भवान् कुरुराज आप से निवेदन कर रहे हैं ।

द्रोण—वत्स गान्धारराज ! कहिये ।

शकुनि—यदि आप पांच रात्रियों के भीतर पाण्डवों का पता लगा लें तो ये आधा राज्य उन्हे दे देंगे । तो आप पता लगाकर ले आइये ।

द्रोण—अरे भाई ! ऐसा मत कहो ।

छल करने की कामना से आप लोगों ने जिनका पता बारह वर्ष तक नहीं लगा पाया उनका पता मैं पांच रात में लगा लूं ऐसा असंभव है । तो स्पष्ट क्यों नहीं कह देते कि दक्षिणा नहीं देनी है ॥ ४८ ॥

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन !! अच्छलो धर्मः । वयमपि तावदस्मिन्नर्थे प्रीताः स्मः ! पश्य पौत्र ! -

वर्षेण वा वर्षशतेन तेषां
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागम् ।
तस्मात् प्रतिज्ञां कुरु वीर ! सत्यां
सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम् ॥ ४९ ॥

एतत् कथं संभाव्यते असंभव एवेत्याह वरमिति भवता विशदाक्षरेण=स्पष्टाक्षरेण वरमदत्तमित्येवाभिप्रायोऽस्य। भवदुक्तेरित्यभिप्रायो द्रोणस्येत्यर्थः ; उपजातिवृत्तम् ॥ ४८ ॥

अच्छलः=प्रतारणरहितः। न युज्यते एवं कर्त्तुमित्याशयः। अस्मिन्नर्थे = राज्यप्रदानविषये ; प्रीताः स्मः=सन्तुष्यामः।

अत्रैतादृशो तवानुबन्धो न युक्तः यदा ते उपलभ्येरन् तदैव तेषां राज्यार्धप्रविभागं कुरु कालविशेषे त्वयाग्रहो न विधेय इति प्रतिपादयन् भीष्मो वदति—

अन्वयः—वर्षेण वर्षशतेन वा त्वं तेषां पाण्डवानां संविभागं कुरु तस्मात् हे वीर प्रतिज्ञां सत्याम् कुरु। हि कुरूणां प्रतिज्ञा सदा सत्या भवति ॥ ४९ ॥

वर्षेणेति=वर्षेण=अज्ञातवासावसानवर्षानन्तरं ; वर्षशतेन वा=ततोपि कालाधिक्येनेति यावत् ; पाण्डवानां त्वं संविभागं=राज्यार्धप्रदानं : कुरु=विधेहि; कालविशेषे त्वयाग्रहो न विधेयः ; केवलं प्रतिज्ञा सत्यत्वे यतनीयमित्याह—तस्माद् हे वीर=हे शूर; प्रतिज्ञां सत्यां कुरु= असंभवां प्रतिज्ञां परित्यज्य सत्यां प्रतिज्ञां कुरु ; हि=निश्चयेन; कुरूणां=

भीष्म—पौत्र दुर्योधन ! धर्म में छल को स्थान देना ठीक नहीं है तुम्हारे इस कार्य से हम लोग प्रसन्न हैं देखो—

एक वर्ष में हो अथवा सौ वर्ष में हो तुम पांडवों को उनका आधा राज्य दे दो और अपनी प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध करो, क्योंकि कुरुवंशियों की प्रतिज्ञा सर्वदा सत्य होती है ॥ ४९ ॥

दुर्योधनः—एष एव मे निश्चयः ।

द्रोणः—(आत्मगतम्)

अद्य मे कार्यलोभेन हनूमत्त्वं गता स्पृहा ।
लङ्घयित्वार्णवं येन नष्टा सीता निवेदिता ॥ ५० ॥

तत् कुतो न खलु पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनेतव्या ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । विराटनगराद् दूतः प्राप्तः ।

कुरुवंशजातानां प्रतिज्ञा सदा=सर्वदा सत्या भवति ॥ ४९ ॥

एष मे निश्चयः=मया निश्चयोऽयं दृढीकृतः ।

पाण्डवानामन्वेषणे हनुमानिव त्वरितं यत्नपरो भविष्यामीत्याह द्रोण।—

अन्वयः—अद्य कार्यलोभेन स्पृहा हनूमत्त्वं गता येन अर्णवं लंघयित्वा नष्टा सीता निवेदिता ॥ ५० ॥

अद्येति—अद्य=संप्रति; कार्यलोभेन=पाण्डवानां त्वरितान्वेषणे संजात-स्पृहोदयेन । स्पृहा=अभिलाषः । हनूमत्त्वं गता=मम इच्छा हनूमत इच्छा इवातिजागरूका जाता । येन=हनूमता । अर्णवं=सागरं । लंघयित्वा=आक्रम्य । नष्टा=अदर्शनं गता सीता निवेदिता=अन्विष्य रामाय ज्ञापिता ; यथा हनूमता त्वरित सीतान्वेषणं कृतं तथैवाहमपि पाण्डवानामन्वेषणे त्वरितं यत्नपरो भविष्यामीति दुर्योधनाशयः ॥ ५० ॥

प्रवृत्तिः=वार्त्ता समाचारो वा । उपनेतव्या=प्राप्तव्या । विषादेन=दुःखेन । आवृतः=उपगतः । अत्र यज्ञे विराटस्यागमने सस्य दुःखमेव कारणं नान्यात्किमपि वैमनस्यभावमिति आशयः ।

दुर्योधन—मेरा तो ऐसा ही निश्चय है—

द्रोण—आज कार्य सिद्धि की कामना से मेरी इच्छा हनुमान् बनने की है जिन्होंने शीघ्र समुद्र पार कर सीता का पता लगा लिया ॥ ५० ॥

तो अब किस प्रकार पांडवों का पता लगे—

(भट का प्रवेश)

भट—महाराज की जय हो । विराट के यहाँ से दूत आया है—

सर्वे—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयथ । (निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

दूतः—जयतु महाराजः ।

सर्वे—किमागतो विराटेश्वरः ?

दूतः—विषादेनावृतो नोपगच्छति ।

सर्वे—कस्तस्य विषादः ?

दूतः—श्रोतुमर्हति महाराजः । यत् तत्सम्बन्धिसन्निकृष्टं कीचकानां भ्रातृशतं,

रात्रौ छन्नेन केनापि बाहुभ्यामेव हिंसितम् ।
दृश्यते हि शरीराणामशस्त्रजनितो वधः ॥ ५१ ॥

इदानीं विराटस्थानागमनकारणे पृष्ठे तच्छ्यालकस्य कीचकस्य सभ्रातृशतकस्य वधरूपं कारणमुपपादयति—

अन्वयः—रात्रौ छन्नेन केन अपि बाहुभ्यामेव हिंसितम् । हि तेषां शरीराणाम् अशस्त्रजनितो वधः दृश्यते ॥ ५१ ॥

रात्राविति—रात्रौ=निशायाम् ; छन्नेन=गूढरूपधारिणा ; केनापि=

सभी—शीघ्र बुला लाइये ।

भट—जैसी आज्ञा (जाता है)

(दूत प्रवेश कर)

दूत—जय हो महाराज की ।

सभी—क्या विराट आये हैं ?

दूत—दुःख में पड़े हैं इसलिये नहीं आये ।

सभी—उनको क्या दुःख है ?

दूत—महाराज सुनिये—उनके निकट के सम्बन्धी जो सौ भाई कीचक थे ।

वे रात्रि के समय किसी गुप्त व्यक्ति के द्वारा मार डाले गये, क्योंकि उनके शरीरों पर बिना शस्त्र के ही वध के लक्षण मौजूद थे ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथमशस्त्रजनितो वध इति ।

भीष्मः—कथमशस्त्रेणेति । (अपवार्य) भो आचार्य ! अभ्युपगम्यतां पञ्चरात्रम् ।

द्रोणः—(अपवार्य) किमर्थम् ?

भीष्मः—

भीमसेनस्य लीलैषा सुव्यक्तं बाहुशालिनः ।

अज्ञातपरिचयेन ; बाहुभ्यामेव=करमुष्ट्यादिनैव; हिंसितम्=मारितम् ; शतसंख्याकाः विराटश्याला सकीचकबान्धवाः मुष्ट्याघातेन मारिताः । अथ मुष्ट्याघातेन तेषा प्राणापहरणे प्रमाणमाह—दृश्यते इति शरीराणाम् मृतकीचकबान्धववपुषाम् ; अशस्त्रजनितः=अशस्त्राघातविहितः वधः=हिंसा दृश्यते=अवलोक्यते । तेषां शरीरेषु शस्त्राघातचिह्नं न दृश्यते अतोऽनुमीयते तेषां वधः बाहुभ्यामेव जात इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

अशस्त्रवध इति सर्वे साश्चर्यं पृच्छन्ति । भीष्मः तेषां भीमकृतवधं जानन्नपि बाह्यमाश्चर्यं व्यनक्ति कथमित्यादिना । (अपवार्यं=अन्ये न शृणुयुरिति बुद्धया त्रिपताकाकरेण मुखं संछाद्येत्यर्थः । अभ्युपगम्यताम्=स्वीक्रियताम् सम्भाविता पाण्डवानां प्रवृत्युपलब्धिः । तदङ्गीक्रियताम् दुर्योधनोक्तं पञ्चरात्रमिति ।

इदानीं स्वीकारे कारणं वक्ष्यमाणो भीष्मः द्रोणं पाण्डवानाम्वेष्टुं सम्बोधयति—

अन्वयः—एषा लीला सुव्यक्तं बाहुशालिनः भीमस्य एव अस्मिन्

सभी—क्या बिना शस्त्र के ही मारे गये ।

भीष्म—यह कैसे ? जो बिना शस्त्र के ही उनका वध हुआ (एकान्त में मात्र आचार्य को त्रिपताका द्वारा संकेत करते हुए) आचार्य पञ्चरात्र स्वीकार कर लीजिये ।

द्रोण—(एक ओर को) क्यों ?

भीष्म—निश्चय ही महाबाहु भीमसेन की यह लीला है । उनका इन

योऽस्मिन् भ्रातृशते रोषः स तस्मिन् फलितः शते ॥ ५२ ॥

द्रोणः—कथं भवान् जानाति ?

भीष्मः—

कथं पण्डित ! कूलेषु भ्रान्तानां बालचापलम् ।
नाभिजानन्ति वत्सानां शृङ्गस्थानानि गोवृषाः ॥ ५३ ॥

भ्रातृशते यो रोषः सः तस्मिन् शते फलितः ॥ ५२ ॥

भीमसेनस्येति—एष=कीचकशतानामस्त्रप्रयोगं विनैव हिंसारूपा: लीला=क्रीडा ; सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम् ; बाहुशालिनः=महाबलस्य ; भीमसेनस्यैव भवितुमर्हतीति शेषः ; अस्मिन्=दुर्योधनादौ ; भ्रातृशते=भ्रातृशतसंख्याके ; यः रोषः=कोपः ; स रोषः तस्मिन् शते=कीचकादौ भ्रातृशते : फलितः=कृतार्थीभूतः; चिरकालाद् दुर्योधनादौ भ्रातृशतके धारितः रोषः भीमसेनेन कीचकादौ भ्रातृशते चरितार्थीकृतः ; नान्य इदं कष्टं कर्म कर्त्तुमीश इति तेषां प्रवृत्त्युपलब्धिसंभवात्स्वीक्रियतां दुर्योधनोक्तं वचनमिति भीष्माभिप्रायः ।

'कथं जानाति भवान् यद् भीमेनैव संपादितमिदं दारुणं कर्म' इति द्रोणेन पृष्टः भीष्म आह—

अन्वयः—हे पण्डित कूलेषु भ्रान्तानां वत्सानां बालचापलं शृङ्गस्थानानि च गोवृषा न अभिजानन्ति ॥ ५३ ॥

कथमिति हे पण्डित !=हे द्रोण ; कूलेषु=नदीतटेषु ; भ्रान्तानाम्=कृतभ्रमणानां; वत्सानाम्=बालवृषाणाम् ; बालचापलम्=पुच्छचापलादिकम् ; शृङ्गस्थानानि च=शृङ्गविहितमृत्तिकाखननस्थानानि च ; न

सौ भाइयों पर जो क्रोध था उसे उन्होंने सौ भाई वाले कीचक पर ही उतार दिया ॥ ५२ ॥

द्रोण—आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—हे पण्डित ! किनारे पर दौड़ लगानेवाले वत्सों के बाल सुलभ चापल्य तथा उनके शृङ्गों द्वारा खने गये स्थानों को भला वृषराज कैसे नहीं जानेंगे ? ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति ! सिद्धं कार्यम् । (सकाशम्) पुत्र ! दुर्योधन !! अस्तु पञ्चरात्रम् ।

दुर्योधनः—अथ किम् । अस्तु पञ्चरात्रम् ।

द्रोणः—भो भो यज्ञमनुभवितुमागता राजानः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । इहात्रभवान् कुरुराजो दुर्योधनः, न, न, न, मातुलसहितः, यदि पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनेतव्या, राज्यस्यार्धं प्रदास्यति किल, ननु पुत्र !

दुर्योधनः—अथ किम् ।

द्रोणः—एतद् द्विस्त्रिः सम्प्रधार्यताम् ।

शकुनिः—काले ज्ञास्यामि ।

अभिजानन्ति=न बुध्यन्ते ; अस्यायमाशयः वृषपतयः कूलेषु इतस्ततो धावतां बालवत्सानां पुच्छचापलम् शृङ्गोत्खातभूमीश्च कथं नावगच्छेयुः । अतः यथा वृषभाः स्ववत्सानां चरित्रं जानन्ति तथाहमपि स्ववत्सस्य भीमस्यैतदाचरितं दारुणं कर्म निश्चितरूपेण जानामीत्यर्थः ।। ५३ ।।

सिद्धं कार्यम्=पूर्णो मम मनोरथः ; अनुभवितुम्=द्रष्टुम् ; उपनेतव्या=प्राप्तव्या ; अथ किम्=सत्यमिदम् ; द्विस्त्रिः=द्विवारं त्रिवारं वा ; काले ज्ञास्यामि=राज्यप्रदानावसरे विचारं करिष्यामि ।

द्रोण—वृषराज ! तब तो काम बन गया (प्रकट) अच्छा पुत्र दुर्योधन ! मुझे तुम्हारा पञ्चरात्र स्वीकार है ।

दुर्योधन—और क्या रहे पञ्चरात्र ही ।

द्रोण—हे हे ! यज्ञ देखने के लिये आये हुये राजगण । आप लोग भी सुन लें । आदरणीय कुरुराज ने, नहीं नहीं अपने मामा के सहित कुरुराज ने स्वीकार कर लिया है कि यदि पञ्चरात्र के भीतर पाडवों का पता लग जायगा तो उन्हें उनका आधा राज्य दे दिया जायगा क्यों बेटा ! यही निश्चय है न ।

दुर्योधन—और क्या ?

द्रोण—इस बात को पुनः दो या तीन बार विचार लो ।

शकुनि—समय आने पर सोचूंगा ।

द्रोणः—(अपवार्य) किमर्थम् ?

द्रोणः—ननु गाङ्गेय !

भीष्मः—(आत्मगतम्)

आचार्यस्य यदा हर्षो धैर्यमुत्क्रम्य सूचितः ।
शङ्के दुर्योधनेनैष वञ्च्यमानेन वञ्चितः ।। ५४ ।।

(प्रकाशम्) पौत्र ! दुर्योधन !! अस्ति मम विराटेनाप्रकाशं वैरम्, अथ भवतो यज्ञमनुभवितुमनागत इति । तस्मात् क्रियतां तस्य गोग्रहणम् ।

भीष्म इदानीमात्मगतं विचारयति—

अन्वयः—यदा आचार्यस्य हर्षः धैर्यम् उत्क्रम्य सूचितः तेन शङ्के यत् एषः तथा वञ्च्यमानेन दुर्योधनेन एव वञ्चितः ।। ५४ ।।

आचार्यस्येति—यदा=यदि ; आचार्यस्य=द्रोणस्य ; हर्षः=प्रसादः ; धैर्यम्=गाम्भीर्यम् ; उत्क्रम्य=अतिक्रम्य ; सूचितः=प्रकटीभूतः ; तेन शङ्के=संभावयामि यत् ; एषः=आचार्यः ; वञ्च्यमानेन=दक्षिणाद्वारा राज्यविभाजने स्वकार्यं साध्यमानेन ; दुर्योधनेन एव वञ्चितः समयसापेक्षतया एतादृश्या प्रतिज्ञया प्रतारितः ; कदाचिद् द्रोणहृदये सीमामुल्लङ्घ्य संजातोऽयं हर्षातिशयः खेदे परिणतो मा भूदिति भीष्मस्याशङ्केत्यर्थः ।।५४।।

अप्रकाशम्=प्रच्छन्नम् ; वैरम्=विरोधः ; यज्ञे नागत इति व्याजात्प्राचीनकालतो वैराच्च तस्य गोग्रहणं क्रियतामिति भीष्माशयः ; ब्राह्मणार्जवबुद्धे=सरलमते ; ब्राह्मणतया कपटानभिज्ञ ।

द्रोण—गङ्गापुत्र भीष्म ! यह अच्छा हुआ ।

भीष्म (अपने मन में)—आचार्य ने अपना हर्ष सीमा को पार कर सूचित कर दिया है । ऐसी स्थिति में मुझे संदेह हो रहा है कि दुर्योधन को ठगने वाले आचार्य स्वयं ठगे गये हैं ।। ५४ ।।

(प्रकट) पौत्र दुर्योधन ! हम लोगों का विराट के साथ गुप्त वैर है ही तुम्हारे यज्ञ में भी वे सम्मिलित नहीं हुये अतः उनका गोधन हरण कर लो ।। ५४ ।।

द्रोण:—(अपवार्य) भो गाङ्गेय ! प्रियशिष्य: खलु मे तत्रभवान् विराटेश्वर: । किमर्थं तस्य गोग्रहणम् ।

भीष्म:—(अपवार्य) ब्राह्मणार्जवबुद्धे !

धर्षिता रथशब्देन रोषमेष्यन्ति पाण्डवा: ।
अस्ति तेषां कृतज्ञत्वमिष्टं गोग्रहणे स्थितम् ।। ५५ ।।

भट:—जयतु महाराज: । सज्जा: खलु रथा नगरप्रवेशाभिमुखाय ।

द्रोणेन तथाकर्त्तुं निषेधे कृते भीष्मस्तं पृथक्कृत्य एकान्ते तदिष्टसाधनताभूतकारणमुपपादयन् संबोधयति—

अन्वय:—रथशब्देन धर्षिता: पाण्डवा: रोषम् एष्यन्ति । (यत:) तेषां कृतज्ञत्वमस्ति । एवम् गोग्रहणे (अस्माकम्) इष्टं स्थितम् ।। ५५ ।।

धर्षिता इति—रथशब्देन=स्यन्दनघोषेण ; धर्षिता:=आकृष्टकर्णा अतएव सोढुमशक्या: ; पाण्डवा: रोषम्=कोपम् ; एष्यन्ति=प्राप्स्यन्ति । तेषां पाण्डवानाम् कृतज्ञत्वम् अस्ति ; विराटेनाश्रयप्रदानहेतोरुपकृता: पाण्डवा: तदुपरि आक्रमणे जाते कथमपि तटस्था न स्थास्यन्ति=प्रत्युपकारपरास्तेऽवश्यमेव युद्धार्थमागच्छन्ति कृतज्ञत्वादेवम् हि अस्माकं इष्टं पाण्डववार्त्तोपलब्धिरूपं गोग्रहणे स्थितम् । गोग्रहणार्थमाक्रमणे क्रियमाणे न: समीहिता सिद्धिरिति भीष्माभिप्राय: ।। ५५ ।।

सज्ज: = योजिताश्व: ; नगरप्रवेशाभिमुखाय=हस्तिनापुरे प्रवेष्टु-

---

द्रोण—(संकेत से) अजी गाङ्गेय । विराट हमारे प्रिय शिष्यों में हैं उनका गोग्रहण क्यों किया जा रहा है !

भीष्म—(एक मात्र आचार्य से) अजी सरल बुद्धि वाले ब्राह्मण देव !

रथ का शब्द सुनते ही पांडव कुपित हो जायेंगे । उनमें कृतज्ञता जो ठहरी । फिर तो वे प्रकाश में आ जायेंगे । इस प्रकार गोग्रहण से आप का सारा कार्य बम जायगा ।। ५५ ।।

(प्रवेश कर के)

भट—जय हो महाराज की ! नगर की ओर प्रस्थान करने के लिये रथ तैयार है ।

दुर्योधनः—

एभिरेव रथैः शीघ्रं क्रियतां तस्य गोग्रहः ।
गदा यज्ञप्रशान्ता च पुनर्मे करमेष्यति ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मान्मे रथमानयन्तु पुरुषाः,—

शकुनिः— —हस्ती ममानीयतां

कर्णः—

भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः स्थाप्यताम् ।

भीष्मः—

बुद्धिर्मे त्वरते विराटनगरं गन्तुं धनुस्त्वर्यतां

मानीतो रथ इत्यर्थः। तदानीं यज्ञार्थं राजा नगराद्बहिः स्थितः आसीदेत्तदर्थं नगरप्रवेशाभिमुख इत्युक्तिः।

दुर्योधनः स्वकीयोत्साहं वर्णयन्नाह—

अन्वयः—एभिः रथैः एव तस्य गोग्रहः शीघ्रम् क्रियताम्। यज्ञप्रशान्ता गदा च पुनः मे करम् एष्यति ॥ ५६ ॥

एभिरिति—एभिः=हस्तिनापुरप्रवेशार्थं सज्जीकृतः; रथैः=स्यन्दनैः; एव तस्य=विराटस्य; गोग्रहः=गोग्रहणम्; शीघ्रम्=अविलम्बेन। क्रियताम्=विधीयताम्; यज्ञप्रशान्ता=यज्ञकारणेन निवृत्तव्यापारा। चेयं गदा पुनः मे=मम; करम् एष्यति। गोग्रहणार्थं पुनरपि गदामुद्यम्य युद्धोद्युक्तो भविष्यामीत्याशयः ॥ ५६ ॥

इदानीं गोग्रहणार्थं द्रोणादीनां सविशषमुद्योगमाह—

अन्वयः—पुरुषाः तस्मात् मे रथम् आनयन्तु। मम हस्ती आनीयताम्।

दुर्योधन—इन्हीं रथों से शीघ्र विराट का गोधन हरण करना चाहिये। यज्ञ के कारण प्रशान्त गदा फिर हाथ में आ जायेगी ॥ ५६ ॥

द्रोण—तो हे योधाओं! मेरा रथ लाओ ॥ ५७ ॥

शकुनि—मेरा हाथी लाया जाय।

कर्ण—जुते हुये घोड़ों वाले भार वहन में समर्थ रथ ले आना चाहिये।

भीष्म—मेरी बुद्धि विराटपुर जाने को उतावली हो रही हैं। शीघ्र धनुष ले आवो।

सर्वे—

मुक्त्वा चापमिहैव तिष्ठतु भवानाज्ञाविधेया वयम् ॥ ५७ ॥

द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन !! आवां तव युद्धे पराक्रमं द्रष्टुमिच्छावः ।

दुर्योधनः—यदभिरुचितं भवते ।

द्रोणः—वत्स ! गान्धारराज !! अस्मिन् गोग्रहणे तव खलु प्रथमरथः ।

भारार्थं भृशम् उद्यतैः हयैः युक्तः रथः स्थाप्यताम् मे बुद्धिः विराटनगरं गन्तुं त्वरते । धनुः त्वर्यताम् । वयम् आज्ञाविधेयाः अतः चापं मुक्त्वा भवान् इह एव तिष्ठतु ॥ ५७ ॥

तस्मादिति—द्रोणः कथयति—पुरुषाः = राजपुरुषाः । तस्माद्—विराटोपरि कर्त्तव्याक्रमणकारणात् ; मे रथम्=स्यन्दनम् साङ्ग्रामिकमिति यावत् ; आनयन्तु=आहरन्तु ; कर्णः ब्रवीति—भारार्थमिति = भारं वोढुम् भृशम्=अत्यर्थम् ; उद्यतैः=सन्नद्धैः ; हयैः = अश्वैः ; युक्तः रथः इह=अत्र स्थाप्यताम्=आनीयताम् ; भीष्मो वदति मे=मम भीष्मस्य ; बुद्धिः विराटनगरं गन्तुं त्वरते=शीघ्रतां करोति ; तस्माद्धनुः त्वर्यताम्=त्वरितमानीयताम् । सैनिकाः ब्रुवन्ति—भवान्=भीष्मः ; चापम्=धनुः ; मुक्त्वा इहैव तिष्ठतु ; वयम् आज्ञाविधेयाः=भवदाज्ञानुवर्त्तिनः ; वयमेव युद्धं गमिष्यामः भवतो युद्धयात्रा व्यर्था ; शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ५७ ॥

आवाम्=अहं द्रोणः भीष्मश्च ; पराक्रमम् द्रष्टुमिच्छावः अतएव युद्धे

सभी—अभी आप धनुष ग्रहण न करें यही पर रहें, हम लोग आपकी आज्ञा पालन करने वाले तो हैं ही ॥ ५७ ॥

द्रोण—पुत्र दुर्योधन ! हम तथा भीष्म दोनों ही तुम्हारा पराक्रम देखना चाहते हैं ।

दुर्योधन—जो आपको अच्छा लगे ।

द्रोण—वत्स गान्धारराज ! इस गोग्रहण में तुम्हारा रथ पहला रहेगा ।

शकुनिः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति प्रथमोऽङ्कः

* * *

यास्यावः ; इत्याशयः ; प्रथमरथः=सर्वतोऽग्रे वर्त्तमानः ; बाढम्=स्वीकृतम् ; प्रथमः कल्पः=मुख्यो विषयः ।

पञ्चरात्रे प्रथमाङ्कः समाप्तः ।

* * *

शकुनि—ठीक है । यह बात तो बहुत श्रेष्ठ है ।

(सभी चले जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

* * *

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः)

वृद्धगोपालकः---[गावो मेऽहीनवत्सा भवन्तु । अविधवाश्च गोपयुवतयो भवन्तु । अस्माकं राजा विराट एकच्छत्रपृथिवीपतिर्भवतु । महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्यां नगरोपवनवीथ्यामागन्तुं गोधनं सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च एषु ज्यैष्ठ्यं गत्वानुभविष्यामि । (विलोक्य) किं नु खल्वेष वायसः शुष्कवृक्षमारुह्य शुष्कशाखानिघट्टिततुण्डमादित्याभिमुख विस्वरं विलपति । शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य च । यावदेषु ज्यैष्ठ्यं गत्वा गोपदारकाणां दारिकाणां व्याहरामि । अरे गोमित्रक ! गोमित्रक !]

गावो मे अहीणवच्छा होन्तु । अविहवा अ गोवजुवदीओ होन्तु । णो लाआ विलाडो एक्कच्छत्तप्पुहुवीपदी होदु । विलाडष्ष वष्पवड्ढणगोप्पदा-

---

प्रथमाङ्के दुर्योधनयज्ञावसरे विराटस्यानुपस्थित्या क्रुद्धस्य दुर्योधनस्य विराटोपरि आक्रमणं सूचितमिदानीं यथा विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदानकाले भीष्मादिसाहाय्येन तस्याक्रमणं जातं तत् सूचयितुं वृद्धगोपालकप्रसङ्गमुपस्थापयति—

अहीनयत्सा=जीवद्वत्सा ; गोपयुवतयः=गोपस्त्रियः ; अविधवाः भर्तृमत्यः । एकच्छत्रपृथ्वीपतिः = निष्कण्टकः सम्राट् ; वर्षवर्धनगोप्रदानं निमित्तम्=वर्धापनदिवसावसरे गोदानाय ; वायसः=काकः ; शुष्कवृक्षम्=

(बूढे गोपाल का प्रवेश)

वृद्ध-गोपाल—मेरी गायें सदा सवत्सा रहें। गोपयुवतियाँ सदा सधवा रहें । हमारे महाराज विराट निष्कण्टक पृथ्वीमण्डल का राज्य करें । महाराज के जन्म गाँठ के शुभ अवसर पर गोदान के लिये नगरोद्यान के मार्ग पर गायें सजाई गई हैं, ग्वालों के बालक तथा बालिकायें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आनन्द मनाने में तत्पर हैं । इनमें सबसे बड़ा होवे का गौरव आज मुझे मिलेगा (देखकर) क्या बात है कि यह काग शुष्क वृक्ष पर

णणिमित्तं इमर्षिष णअलोववणवीहीए आअन्तुं गोधणं षव्वे अ किदमङ्गलामोदा गोवदालआ दालिआ अ तावत्। दाव। एषु ज्जेष्ठं गच्छिअ अणुभविष्षम्। (विलोक्य) किण्णुहु एषो वाअषो षुक्खलुक्खं आलुहिअ षुक्खषाखाणिघट्टिअतुण्डं आदिच्चाहिमुहं विष्षलं विलवदि। षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माणं गोधणष्ष अ। जाव (परिक्रम्य) एषु ज्जेष्ठं गच्छिअ गोवदालआणं दालिआणं वाहलामि! (परिक्रम्य)।

अले गोमित्तअ! गोमित्तअ!

(प्रविश्य)

नीरसतरुम्; आरुह्य=अधिष्ठाय; शुष्कशाखानिघट्टिततुण्डम्=शुष्कशाखायां तुण्डं घर्षयन्नित्यर्थः; आदित्याभिमुखम्=सूर्याभिमुखः; विस्वरम्=विकृतस्वरं यथा स्यात्तथा विलपति=शोकार्त्तः सन् विरौति; ज्यैष्ठयं गत्वा=सर्वश्रेष्ठत्वरूपम् सत्कारमासाद्य; व्याहरामि=आह्वयामि; वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तम् = नूतनवर्षारम्भकाले दीयमानस्य गोदानस्य कारणात्; तावतीं वेलाम् = यावद् गोधनमायाति तावन्तं कालमिति यावत्। गायन्तो नृत्यन्तो भवामः=नृत्यगानाभ्यां समयं यापयामः; रेणुः=धूलिः; उत्पतिता=समुत्थिता; न खलु रेणुरेव=न केवलं धूलिमात्रमुत्थितमपि तु शङ्खदुन्दुभिघोषः=शङ्खस्वनः; दुन्दुभिस्वनश्च; उत्पतितः=उत्थितः; दिवा चन्द्रप्रभापांडुरजोवगुण्ठितमंडलः=दिवाचन्द्रस्य=दिवसनिशाकरस्य प्रभा=कान्तिः तद्वत् पांडुरं=धवलपीतवर्णम् यद्रजस्तेनावगुण्ठितम्=सर्वतो व्याप्तम् संछन्नं वा मण्डलं=बिम्बं यस्य तादृशोऽयं सूर्यः; अस्ति च नास्ति च दिवसेनास्तित्वमनुमीयते प्रभाभावान्नास्तीत्यनुमीयते इत्यर्थः। दधिपिण्डपाण्डरैः दध्नः पिण्डवत्पाण्डरैः = दधिधवलैः; छत्रैः=आतपत्रैः;

अपनी चोंच घिस रहा है, और सूर्याभिमुख हो कर भयानक शब्द कर रहा है। ईश्वर हमारा और हमारे इन गोधनों का कल्याण करें! तब तक मैं इनमें बूढ़ा बन कर गोप बालक बालिकाओं को बुलाता हूं (घूम कर) अरे गोमित्रक। अरे गोमित्रक।

(गोमित्रक का प्रवेश)

गोमित्रकः—मातुल ! वन्दे ।

मादुल ! वन्दामि ।

वृद्धगोपालकः—[शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य च । अरे गोमित्रक ! महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्यां नगरोपवननीथ्यामागन्तु गोधनं सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च । अरे गोमित्रक ! गोपदारकाणां दारिकाणां व्याहर ।]

षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माअं गोधणष्ष अ । अले गोमित्तअ ! महालाजष्ष विलाडश्श वष्षवड्ढणगोप्पदाणणिमित्तं इमष्षिं णअलोववणवीहीए आअन्तु गोघणं षव्वे च किदमङ्गलामोदआ गोवदालआ दालिआ अ । अले गोमित्तअ ! गोवदालआणं दालिआणं वाहल ।

गोमित्रकः—[यन्मातुल आज्ञापयति । गोरक्षिणिके ! घृतपिण्ड ! स्वामिनि ! वृषभदत्त ! कुम्भदत्त ! महिषदत्त ! आगच्छतागच्छत शीघ्रम् ।]

जं मादुलो आणवेदि । गोलिक्खिणिए ! घिदपिण्ड ! षामिणि ! वषभदत्त ! कुम्भदत्त ! महिषदत्त ! आअच्छह आअच्छह सिग्घं ।

गोमित्रक—मामा जी प्रणाम !

वृद्धगोपाल—शान्ति हो शान्ति हो । हमारी तथा इन गोधनों की शान्ति हो । महाराज विराट की जन्म गाँठ के अवसर पर गोदान के लिये गायें नगर-वाटिका के मार्ग पर सजाई गई हैं गोपबालक बालिकायें मंगल मना रही हैं गोमित्रक ! गोपबालिकाओं को बुलाओ ।

गोमित्रक—जैसी मामा की आज्ञा गोरक्षिणिके ! घृतपिण्ड, स्वामिनि, वृषभदत्त, कुम्भदत्त, महिषदत्त ! आओ आओ शीघ्र आओ ।

घोटकशकटिकां=अश्वयानम् ; आरुह्य=अधिष्ठाय ; घोषम् = आभीरपल्लीम् ; विद्रवन्ति=विनाशयन्ति ; शरसंपाताः = बाणवृष्टयः ; पक्कणम्=आलयम् ; अत्र पक्कणशब्दस्यालयमात्रमर्थः न तु शबरालयः प्रक्रमा-

(ततः प्रविशन्ति सर्वे)

सर्वे—मातुल ! वन्दामहे ।

मादुल ! वन्दामो ।

वृद्धगोपालकः—[शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु. अस्माकं गोधनस्य च गोपदारकाणां दारिकाणां च । महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्यां नगरोपवनवीथ्यामागन्तुं गोधनम् तावतीं वेलां गायतो नृत्यन्तो भवामः ।]

षन्ती होदु षन्ती होदु अह्माणं गोघणष्ष अ गोवनालआणं दालिआणं अ । महालाअष्ष विलाडष्ष वष्षवलुढणगोप्पदाणणिमित्तं इमष्पिं णअलोववणवीहीए आअन्तुं गोघणं । तत्तअं वेलं गाअन्तो णच्चन्तो होम ।

सर्वे—यन्मातुल आज्ञापयति ।

जं मादुलो आणवेदि । (षर्वे नृत्यन्ति ।।

वृद्धगोपालकः—[हीही सुष्ठु नर्तितं, सुष्ठु गीतम् । यावदहमपि नृत्यामि । (नृत्यति)]

हीही षुट्ठु णच्चिदम्, पुट्ठु गाइदं । जाव अहं पि णच्चेमि ।

नुरोधात् ; इमं वृत्तान्तन्=घोषविद्रावणरूपम् समाचारम् ; दस्युकर्मप्रच्छन्नविक्रमैः = दस्युकर्मणि लुण्टाककार्ये प्रच्छन्नः=तिरोहितः विक्रमः

(सभी का प्रवेश)

सभी—मामा जी प्रणाम करते हैं ।

वृद्धगोपाल—शान्ति हो शान्ति हो हमारी गोधन की, गोप बालकों की, गोपबालिकाओं की शान्ति हो । महाराज विराट के वर्धमान दिवस के अवसर पर गोदान के लिये इस नगरोद्यान मार्ग पर गायें आयेंगी । तब तक हम लोग गाते और नाचते रहें ।

सभी—मामा जी की जो आज्ञा ।

(सभी नाचते हैं)

वृद्धगोपाल—अहा ! खूब नाचा खूब गाया तब मैं भी नाचता हूं ।

(नाचता है)

सर्वे—हाहा मातुल ! अतिमहान् रेणुरुत्पतितः ।

हाहा मादुल ! अदिमहन्तं लेनु उप्पदिदो ।

वृद्धगोपालः—न खलु रेणुरेव, शङ्खदुन्दुभिघोष उत्पतितः ।

ण हु लेणुं एव्व, षक्खदुन्दुभिघोषं उप्पदिदो ॥

सर्वे—हाहा मातुल ! दिवाचन्द्रप्रभापाण्डुरजोवगुण्ठितमण्डलः सूर्योऽस्ति च नास्ति च ।

हाहा मादुल ! दिवाचन्दप्पभापण्डुलजोवगुण्ठिदमण्डलुं षुय्यो अत्थि अ णत्थि अ ।

गोमित्रकः—[हाहा मातुल ! एते केऽपि मनुष्या दधिपिण्डपाण्डरैश्छत्रैर्घोटकशकटिकामारुह्य सर्वे घोषं विद्रवन्ति चोराः ।]

हाहा मादुल ! एदे के वि मणुष्षा दहिपिण्डपण्डरेहि छत्तेहि घोडअषअडिअ आलुहिअ षव्वं घोषुं विद्दवण्ति चोला ।

वृद्धगोपालकः—[हीही शरसंपाता उत्थिताः । दारकाः ! दारिकाः ! शीघ्रं पक्कणं प्रविशत ।]

हीही षरषंपादा उठ्ठिदा । दारआ ! दालिआ ! षिग्घं पक्कणं पविषह !

पुरुषार्थः येषां तैस्तथाभूतैः = पराक्रमं प्रच्छाद्य दस्युभावमालम्बमानैः ; धार्त्तराष्ट्रैः = दुर्योधनादिधृतराष्ट्रपुत्रैः ; ह्रियन्ते = नीयन्ते ।

सभी—हाय ! हाय ! मामा जी बड़ी धूल उड़ रही है ।

वृद्धगोपाल—केवल धूल ही नहीं उड़ रही है, शङ्ख और दुन्दुभी का शब्द भी सुनाई पड़ रहा है ।

सभी - दिन के चन्द्रमा की तरह रजो मण्डल से पीली प्रभा वाले वेष्ठित सूर्य का रहना न रहना बराबर है ।

गोमित्रक—हाय मामा जी ! ये कुछ मनुष्य दही के पिण्ड के समान छाते लगाये घोड़ा गाड़ियों पर चढ़ कर घोष को घेर रहे हैं ।

वृद्धगोपाल—अरे ! वाणों की वर्षा होने लगी बालक तथा बालिकाओं शीघ्र घरों में घुस जाओ ।

सर्वे—यन्मातुल आज्ञापयति ।

जं मादुली आणवेदि । (निष्क्रान्ताः)

वृद्धगोपालकः—[हाहा तिष्ठत तिष्ठत । प्रहरत प्रहरत । गृह्णीत गृह्णीत । इमं वृत्तान्तं महाराजविराटाय निवेदयिष्यामः ।]

हाहा चिट्ठह चिट्ठह । पहरह पहरह । गह्णह गह्णह । इमं वुत्तण्तं महालाअविलाडश्श णिवेदइष्षामो ।

(निष्क्रान्तः ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—भो भो निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय—एता हि दस्युकर्मप्रच्छन्नविक्रमैर्धार्तराष्ट्रैर्ह्रियन्ते गाव इति । तत्र हि,

द्रुतैश्च वत्सैर्व्यथितैश्च गोगणैर्निरीक्षणत्रस्तमुखैश्च गोवृषैः ।

इदानीं विराटं निवेदयितुं सवत्सगोवृषाणां शोचनीयावस्थां वर्णयन् भट आह—

अन्वयः—द्रुतैः वत्सः व्यथितैः गोगणैः निरीक्षणत्रस्तमुखैः गोवृषैः च

सभी—मामाजी की जो आज्ञा ।

(सभी जाते हैं)

वृद्धगोपाल—हाय ठहरो ठहरो । मारो मारो । पकड़ो पकड़ो । यह सूचना महाराज विराट को निवेदन करनी चाहिये ।

(जाता है)

(प्रवेशक)

(तदनन्तर भट का प्रवेश)

भट—अरे भाई ! महाराज से निवेदन करो निवेदन करो । लुटेरे का रूप धारण कर गुप्त रूप से अपना पराक्रम प्रदर्शित करने वाले ये धृतराष्ट्र के पुत्र गायों को हरण कर रहे हैं । वहाँ पर ।

बछड़े भाग रहे हैं, गायें दुःख पा रही हैं । गोवृष (साँड़) भयभीत

कृतार्तनादाकुलितं समन्ततो गवां कुलं शोच्यमिहाकुलाकुलम् ॥ १ ॥

इति ।

(नेपथ्ये)

किं धार्तराष्ट्रैरिति ?

भटः—आर्य ! अथ किम् ।

इह कृतार्त्तनादाकुलितं गवां कुलम् आकुलाकुलम् समन्ततः शोच्यम् च जायते ॥ १ ॥

द्रुतैश्चेति—द्रुतैः=पलायनपरैः वत्सैः । व्यथितैः=घोषादध्रियमाणतया पीडितैः । गोगणैः=धेनुभिः च । निरीक्षणत्रस्तमुखैः निरीक्षणेन=दस्यूनां दर्शनमात्रेण त्रस्तमुखैः=भीताकृतिभिः । गोवृषैः=बलीवर्दैः च । कृतार्त्तनादाकुलितं कृतेन आर्त्तनादेन=सकरुणशब्देन आकुलितं=व्याप्तम् । गवां कुलम्=गोसमूहम् । आकुलाकुलम्=अतीवव्यग्रम् । अतश्च समन्ततः=सर्वतः । शोच्यम्=चिन्तनीयं जायते । अय भावः दस्युकृतोपद्रवेण पीडिताः वत्साः पलायन्ते । गोगणाः व्यथिता भवन्ति । बलीवर्दाश्च दस्युगणानवलोक्य भीतानना जायन्ते । एवं गवामार्त्तनादः सर्वतः विजृम्भमाणः भवति । इत्थं गोकुलं शोच्यदशामुपपन्नमिति भावः । इति निवेद्यतामिति शेषः । वंशस्थवृत्तम् ॥ १ ॥

सदृशमेतद्=युक्तमेवैतदिति । भ्रातृजवेषु अपि=स्वपितृव्यपुत्रेषु पाण्डवेषु । द्रोहिणाम्=द्रोहं कुर्वताम् । धार्त्तराष्ट्राणामिति शेषः । ये धार्त्तराष्ट्राः स्वपितृव्यपुत्रेषु पाण्डवेषु अंशदानमकृत्वा द्रोहमाचरन्ति ते स्वमित्रस्थ विराटस्य यदि गोधनं हरन्ति तदा किमाश्चर्यमित्यर्थः ।

हो रहे हैं, चारों ओर हाहाकार का शब्द सुनाई पड़ रहा है । इस समय गो समूह की दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है, सभी गोकुल आकुल हैं ॥ १ ॥

(नेपथ्य में)

क्या कहते हो कौरवों ने उपद्रव मचा रखा है ?

भट—आर्य ! और क्या ?

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् भ्रातृजनेष्वपि द्रोहिणाम् । एते हि,

सज्जैश्चापैर्बद्धगोधाङ्गुलित्रा वर्मच्छन्नाः कल्पितस्यन्दनस्थाः ।
वीर्योत्सिक्ता युद्धसज्जाः कृतास्त्रा राज्ञो वैरं गोषु निर्यातयन्ति ॥२॥

इदानीं विराटे जायमानो द्रोहः तस्य गोषु सफलीकरणमयुक्तमिति कौरवान् निन्दति—

अन्वयः—सज्जैः चापैः वद्धगोधाङ्गुलित्राः वर्मच्छन्नाः कल्पितस्यन्दनस्थाः वीर्योत्सिक्ताः युद्धसज्जाः कृतास्त्राः (कौरवाः) राज्ञो वैरम् गोषु निर्यातयन्ति ॥ २ ॥

सज्जैरिति—सज्जैः=युद्धायोद्यतैः ; चापैः=धनुर्भिः ; उपलक्षिताः ; वद्धगोधाङ्गुलित्राः वद्धे=धृते गोधा=ज्याघातवारणम् अङ्गुलित्राणं यैस्ते तथोक्ता ; वर्मच्छन्ना=कवचावृतदेहाः ; कल्पितस्यन्दनस्थाः=युद्धाय सज्जीकृते रथेऽधिष्ठिताः ; वीर्योत्सिक्ताः=मदोद्धताः ; पराक्रमशालिन इत्यर्थः ; युद्धसज्जाः=संग्रामार्थं कृतदृढनिश्चयाः ; अतएव कृतास्त्राः=गृहीतप्रहरणाः ; एते दुर्योधनादयः ; राज्ञः=विराटस्य ; वैरम् = विरोधभावम् ; गोषु=मूकेषु असहायेषु वराकेषु गोधनेषु ; निर्यातयन्ति = प्रतिशोधयन्ति । राज्ञो वैरेण तद्गवामुपरि शस्त्रसंधानमनुचितमिति भावः ; शालिनीवृत्तम् । प्रत्यनीकमलङ्कारः ॥ २ ॥

जन्मनक्षत्रक्रियाव्यावृत्तस्य=जन्मकालिकनक्षत्रपूजासंलग्नस्य ; अकालनिवेदनम्=पूजाकाले युद्धसूचनमनवसरप्राप्तम् । मन्युम्—कोपम् ; उत्पाद-

---

(प्रवेश कर)

कञ्चुकीय - अपने भ्रातृजनों से भी द्वेष करने वाले इन कौरवों के लिये यह उचित ही है । जो ये लोग—

वाण ताने हुये ज्याघात वारण के लिये अङ्गुलित्राण, पहने हुये, कवचों से युक्त ये कौरव युद्ध सामग्री से युक्त रथों पर सवार हैं । इन्हें अपने पराक्रम का बड़ा अभिमान है, युद्ध के लिये तैयारी किये अस्त्रों को लिये हैं और विराट की शत्रुता का बदला गायों से ले रहे हैं ॥ २ ॥

जयसेन ! जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य तावदकालनिवेदनं मन्युमुत्पादयति । तस्मात् पुण्याहावसाने निवेदयिष्ये ।

भटः—आर्य अतिपाति कार्यमिदं, शीघ्रं निवेद्यताम् ।

काञ्चुकीयः—इदं निवेद्यते ।

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—

मा तावद् व्यथितविकीर्णबालवत्सा
गावो मे रथरवशङ्कया ह्रियन्ते ।
पीनांसश्चलवलयः सचन्दनार्द्रो निर्लज्जो
मम च करः कराणि भुङ्क्ते ॥ ३ ॥

यति=जनयति । पुण्याहावसाने = पुण्याहवाचनानन्तरम् ; अतिपाति = विलम्बासहिष्णु ; इदं कार्यम्=दुर्योधनकृतस्याक्रमणस्य सूचनम् ।

दुर्योधनेन गोग्रहणमनुनिशम्य शोचन् राजात्मानं धिक्कारयति—

अन्वयः—रथरवशङ्कया व्यथितविकीर्णबालवत्साः मे गावः ह्रियन्ते मा तावद् पीनांसः चलवलयः सचन्दनार्द्रः मम च करः कराणि निर्लज्जः भुङ्क्ते ॥ ३ ॥

मा तावदिति—रथरवशङ्कया=स्यन्दनध्वनिभिया ; व्यथितविकीर्ण-

तो जयसेन ठहरो । जन्मनक्षत्रक्रिया में लगे हुये महाराज को इस असमय में सूचना देने से क्रोध उत्पन्न होगा । अतः पुण्याह वाचन के अन्त में सूचना देंगे ।

भट—आर्य ! यह कार्य जल्दी का है, अतः शीघ्र निवेदन करें ।

कञ्चुकीय—लो यह निवेदन कर रहा हूँ ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—गायों के बछड़े रथ के शब्द को सुनकर इधर-उधर भाग रहे हैं, वे पीड़ित होकर छिटपुट रूप में चुराई जा रही हैं और मोटी कन्धों वाला वलय विभूषित तथा चन्दनचर्चित यह मेरा निर्लज्ज हाथ नाना प्रकार के भोजन का (पाकर ग्रहण) आनन्द ले रहा है । इसे धिक्कार है ॥ ३ ॥

जयसेन ! जयसेन !

(प्रविश्य)

भटः—जयतु जयतु महाराजः ।

राजा—अलं महाराजशब्देन ! अवधूतं मे क्षत्रियत्वम् । उच्यतां रणविस्तरः ।

भटः—महाराज ! न विस्तरार्हाणि विप्रियाणि । एष समासः,

एकवर्णेषु गात्रेषु गवां स्यन्दनरेणुना ।

वालवत्साः व्यथिताः=पीडिताः अतएव च विकीर्णाः इतस्ततः पलायमानाः वालवत्साः=स्तनन्धयो वत्साः यासां तास्तथोक्ताः ; मे गावः=धेनवः ; ह्रियन्ते=परैर्नीयन्ते ; मा तावदिति गर्हायाम् । एवं मा भवतु ; पीनांसः=स्थूलस्कन्धः ; चलवलयः=चञ्चलकटकः ; सचन्दनार्द्रः=चन्दनानुलिप्तः ; मे=मम करः=हस्तश्च ; कराणि=नानाभोज्यवस्तूनि; निर्लज्जः सन् भुङ्क्ते=आस्वादयति ; गोषु ह्रियमाणेषु भोज्यवस्तूनि प्रजाभिः प्रदत्तं राजकरं वा पृथिवीपतित्वं विफलयतीत्यर्थः प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ३ ॥

अलं महाराजशब्देन=मयि महाराजेति संबोधनमनुचितमिति भावः । अवधूतम्=तिरस्कृतम् । परैः क्रियमाणगोहरणेनेति शेषः । रणविस्तरः रणवृत्तान्तः विस्तरेण उच्चयतामिति शेषः ।

न विस्तरार्हाणि=विस्तरेण निवेदयितुं न युक्तानि । विप्रियाणि=मनसोऽप्रियत्वाद् विप्रियाणि इति समासः संक्षेपः ।

भटः इदानीं गोहरणरूपवृत्तान्तं समासेन सूचयति—

अन्वयः—गवां गात्रेषु स्यन्दनरेणुना एकवर्णेषु जातेषु कशाघातेषु

जयसेन ! जयसेन !

(प्रवेश कर)

भट—जय हो महाराज की जय हो ।

राजा—मुझे महाराज कह कर मत पुकारो । मेरा क्षत्रियत्व अपमानित हो रहा है । रण का विस्तृत समाचार बताओ ।

भट—महाराज अप्रियवृत्त सविस्तार निवेदन के योग्य नहीं है । संक्षेप इस प्रकार है—

रथ की धूल उड़ने से सभी गायें एक वर्ण की हो गई थीं पर इस समय

कशापातेषु दृश्यन्ते नानावर्णविभक्तयः ॥ ४ ॥

राजा—तेन हि,

धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यतां स्यन्दनो मे
मम गतिमनुयातु च्छन्दतो यस्य भक्तिः ।

नानावर्णविभक्तयः दृश्यन्ते ॥ ४ ॥

एकवर्णेषु इति—गवाम् गात्रेषु=शरीरेषु विभिन्नवर्णेषु इति शेषः; स्यन्दनरेणुना=रथरजसा; एकवर्णेषु=समरूपतां; जातेषु=प्राप्तेषु; कशाघातेषु=दस्युभिः कृतकशाताडनेषु नानावर्णविभक्तयः बहुविधाकृतिविभागाः दृश्यन्ते; गावो हि भिन्नवर्णाः सत्योऽपि रथरजसा समाकृतयो जाताः तासां शरीरोपरि कशाघातेषु जायमानेषु विभक्ताः वर्णरेखाः स्फुटं दृश्यन्ते; तद्गुणालङ्कारः ॥ ४ ॥

इदानीं गवां रक्षणे सन्नद्धो राजा गोरक्षणस्यामोघतामुपपादयति—

अन्वयः—धनुः उपनय। मे स्यन्दनः कल्प्यताम्। यस्य भक्तिः सः छन्दतः मम गतिम् अनुयातु रणशिरसि गवार्थे प्रयत्नः मोघः नास्ति निधनमपि यशः स्यात् तु मोक्षयित्वा धर्मः स्यात् ॥ ५ ॥

धनुरिति—धनुः=मदीयं चापम्। शीघ्रम् उपनय=मत्समीपं प्रापय; मे=मम; स्यन्दनः=रथः; कल्प्यताम्=सज्जीक्रियताम्; यस्य भक्तिः=मयि गोषु च श्रद्धा स्यात् सः स्वच्छन्दतः=निजेच्छया; मम गतिमनुयातु=मम पृष्ठतः आगच्छतु; रणशिरसि=युद्धस्थाने; गवार्थे=गवां मोक्षणार्थम्; कृतः प्रयत्नः मोघः=निष्फलः; नास्ति। निधनमपि=तदर्थं मृत्युरपि; यशः=कीर्तिकरः स्यात्; मोक्षयित्वा=दस्युहस्ताद् गाः मोचयित्वा; तु धर्मः स्यादिति शेषः; अयं भावः अहं गां मोचयितुं गच्छामि गवां विषये

चाबुक के आघात से उत्पन्न विभिन्न वर्ण की रेखायें उन पर पड़ी हुई है ॥ ४ ॥

राजा—तब तो

धनुष लाओ। मेरा रथ शीघ्र तैयार कराओ। जिसके हृदय में स्वाभाविक रूप से गायों के प्रति भक्ति हो वह स्वेच्छया मेरे साथ चले। गायों

रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ॥ ५ ॥

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

राजा—भोः ! किन्नु खलु दुर्योधनस्य मामन्तरेण वैरम् । मा यज्ञमनुभवितुमनागत इति । कथमनुभवामि । कीचकानां विनाशेन वयमुन्नीतसन्तापाः संवृत्ताः । अथवा परोक्षमपि पाण्डवानां स्निग्ध इति । सर्वथा योद्धव्यम् । हास्तिनपुरनिवासाच्छीलज्ञो भगवान् दुर्योधनस्य । अथवा,

---

मयि निर्गते च यः दृढश्रद्धावान् स मम सहायो भवतु । रणे गवार्थं प्रयास्यतो मम प्रयत्नवैफल्यं कथमपि नास्ति । यदा म्रिये तदा यशः मोक्षणे च धर्म एव लभे इत्युभयतः श्रेयोपलब्धिरित्यर्थः । मालिनीवृत्तम् ॥ ५ ॥

मामन्तरेण=मामुद्दिश्य ; अनुभवितुम्=साक्षात्कर्तुम् ; कीचकानाम्=तन्नामकानां शतसंख्याकश्यालकानाम् ; उन्नीतसंतापाः=प्राप्तदुःखाः । संवृत्ताः=जाताः ; परोक्षम्=परोक्षभावेन ; स्निग्धः=स्नेहशाली ; योद्धव्यम्=आक्रमणे यत्किञ्चिदपि कारणं भवेत् युद्धस्यावश्यप्रतिकारकरणात् ; हास्तिनपुरनिवासात्=हस्तिनापुरे पूर्वं कृतवासत्वात् ; शीलज्ञः=स्वभावपरिचितः ; भगवान्=युधिष्ठिरः ; अत्र भगवानिति पदेन सर्वत्र युधिष्ठिर एव गृह्यते विराटाश्रये तस्य तेनैव नाम्ना प्रथितत्वात् ।

के लिये रणक्षेत्र में किया गया प्रयास कभी भी व्यर्थ नहीं होता । यदि युद्ध में मृत्यु हुई तब तो यश मिलेगा और यदि गायों को छुड़ाने में समर्थ हुआ तो धर्म प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

भट—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—अरे ! भाई दुर्योधन का मेरे साथ क्या वैर है ? ओः उसके यज्ञ में जो गया नहीं, जाता भी किस तरह कीचकों के विनाश से हम संतप्त जो थे । अथवा परोक्ष कारण यह भी हो सकता है कि हमें पाण्डवों से स्नेह है । अस्तु सर्वथा लड़ना ही होगा । हस्तिनापुर में निवास करने के कारण भगवान् (युधिष्ठिर) दुर्योधन के स्वभाव से परिचित होंगे ही । अथवा ।

कामं दुर्योधनस्यैष न दोषमभिधास्यति ।
अर्थित्वादपरिश्रान्तः पृच्छत्येव हि कार्यवान् ॥ ६ ॥

कोऽत्र ? (प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा— भगवांस्तावदाहूयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति भगवान् ।)

अन्वयः—एष (भगवान्) कामम् दुर्योधनस्य दोषं न अभिधास्यति हि अर्थित्वाद् अपरिश्रान्तः कार्यवान् पृच्छति एव ॥ ६ ॥

काममिति—एषः=भगवान् युधिष्ठिरः ; कामम्=निश्चयेन; दुर्योधनस्य दोषम्=पराजयसाधनं छिद्रं वा न अभिधास्यति=न कथयिष्यति अशोभनकार्यत्वात् स्वयं कल्याणबुद्धित्वाच्च ; नन्वेवं तस्य परदोषाभिसंधाने निश्चये जाते तत्सकाशे जिज्ञासाप्रकाशनमनुचितमित्याह आर्थित्वादिति अर्थित्वात्=प्रयोजनवशात् ; अपरिश्रान्तः=अखिन्नः ; कार्यवान्=प्रयोजनापेक्षी नरः पृच्छति एव ; वैफल्ये ज्ञातेऽपि कार्यवान् स्वेष्टसाधनार्थम् पृच्छति एव=जिज्ञासामुत्थापयत्येव । अर्थान्तरन्यासः ॥ ६ ॥

अथवा भले ही वे दुर्योधन का दोष न कहें किन्तु जिसे कार्य है वह तो पूछेगा ही, कार्य आ पड़ने पर कोई प्रार्थना करने से क्यों चूके ॥ ६ ॥

अरे कोई है यहाँ ?

(भट प्रवेश कर)

भट—जय हो महाराज की ।

राजा—भगवान् (युधिष्ठिर) को बुलाओ तो ।

(नोट—इस ग्रन्थ में युधिष्ठिर का नामान्तर भगवान् है । इसलिये जहाँ भगवान् शब्द आया है वहाँ युधिष्ठिर समझना चाहिये ।)

भट—महाराज की जो आज्ञा ।

(तदनन्तर भगवान् (युधिष्ठिर) का प्रवेश)

भगवान्—(सर्वतो विलोक्य) भोः ! किन्नु खल्विदम् ।

गजेन्द्राः कल्प्यन्ते तुरगपतयो वर्मरचिता
रथाः सानूकर्षाः कृतपरिकरा योधपुरुषाः ।
समुद्योगं दृष्ट्वा भयमननुभूतं स्पृशति मां
न खल्वात्मन्यस्तं कृतमतिरहं ते तु चपलाः ॥ ७ ॥

विराटसैनिकानां अकस्माद् युद्धार्थमुद्योगं दृष्ट्वा भगवान् युधिष्ठिरः भ्रातृणां मनसश्चाञ्चल्यावस्थितिं विज्ञाय प्रकटनभियाशङ्कते—

अन्वयः—गजेन्द्राः कल्प्यन्ते । तुरगपतयः वर्मरचिताः रथाः सानूकर्षाः योधपुरुषाः कृतपरिकराः समुद्योगं दृष्ट्वा अननुभूतं भयं मां स्पृशति न खलु आत्मन्यस्तं यतः अहं कृतमतिः ते तु चपलाः ॥ ७ ॥

गजेन्द्रा इति—गजेन्द्राः=युद्धोपयुक्ताः हस्तिनः ; कल्प्यन्ते=सज्जन्ते , तुरगपतयः=अश्वारोहाः ; वर्मरचिताः=कवचभृतो भवन्ति ; रथाः=स्यन्दनाः ; सानुकर्षाः=अधःकाष्ठयुक्ताः ; क्रियन्ते ; योधपुरुषाः योद्धारः ; कृतपरिकराः=युद्धसन्नद्धाः भवन्तीति शेषः ; समुद्योगं=युद्धोपक्रमं विलोक्य । अननुभूतं=ममाज्ञातवासः परैर्ज्ञायते इत्येवं रूपम् माम् स्पृशति=प्रभावी करोति चुम्बति वा । न खलु=न निश्चयेन आत्मन्यस्तम्=आत्मनि जातमिदं भयम् ; यतः अहम् कृतमतिः=दृढमतिः । इदं भयं निश्चयेन मम हृदये नास्ति यतोऽहं दृढनिश्चयीत्यर्थः ; किन्तु ते=मम भ्रातरः भीमादयस्तु ; चपलाः=चञ्चलस्वभावाः ; अतः कदाचिदुपस्थिते युद्धे ते स्वमज्ञातवासं युद्धकरणेन प्राकाश्यमानेयुरिति भीतोऽस्मीति भावः ॥ ७ ॥

भगवान्—(चारों ओर देखकर) आः यह क्या हो रहा है ?

हाथी सजाये जा रहे हैं, घुड़सवार कवच पहन रहे हैं, रथों पर जूये रखे जा रहे हैं, बहादुर लोग युद्ध की तैयारी कर रहे हैं । इस युद्धोद्योग को देखकर मुझे एक अभूतपूर्व भय हो रहा है, यह भय मुझे अपने लिये नहीं क्योंकि मैं गम्भीर हूं किन्तु मेरे भाई तो चञ्चल हैं । (अर्थात् कहीं ऐसा न हो कि मेरे भाई युद्ध को देखकर अपने उतावले स्वभाव के कारण अपने को प्रकट कर दें) ॥ ७ ॥

(उपगम्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा—विराटो भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि । भगवन् ! एतदासनम् । आस्यताम् ।

भगवान्—बाढम् । (उपविश्य) भो राजन् !

उद्योग: प्रस्तुत: कस्माच्छ्रीर्न सन्तोषमिच्छति ।
पीडयिष्यति सोत्सेकान् पीडितान् मोक्षयिष्यति ॥ ८ ॥

इदानीं युद्धोद्योगं दृष्ट्वा जातकुतूहलो युधिष्टिर: तत्कारणं जिज्ञासु। विराटं पृच्छति—

अन्वय:—हे राजन् ! कस्माद् उद्योग: प्रस्तुत: किं श्री: संतोषं न इच्छति सोत्सेकान् पीडयिष्यति पीडितान् मोक्षयिष्यति ॥ ८ ॥

उद्योग इति—कस्मात्=कुत: कारणात् । उद्योग: युद्धस्येति शेषः प्रस्तुत:=प्रक्रान्त: ; किम् श्री:=सम्पत्ति:; संतोषम्=तृप्ति ; न इच्छति ; श्रिया अतृप्तो भवान् किं श्रियं समीहमान: परानाक्रमितुं वाञ्छतीति भाव: । तत्र युद्धस्योद्देश्यं द्विधा क्वचिद् गर्वोद्धतस्य गर्वहरणं क्वचिच्च पीडाग्रस्तस्य जनस्य युद्धेन पीडाहरणम् । तदत्र प्रस्तुते युद्धे भवतां किमुद्देश्यमिति पृच्छति सोत्सेकान्=गर्वोद्धतान् । पीडयिष्यति वा पीडितान् मोक्षयिष्यति=आपदत्त्रणं करिष्यतीति भाव: ॥ ८ ॥

(समीप जाकर) जय हो महाराज की जय हो ।

राजा—भगवन् मैं विराट आपको प्रणाम करता हूं ।

भगवान्—कल्याण हो ।

राजा—अनुगृहीत हूं । भगवन् इस आसन पर विराजिये ।

भगवान्—अच्छा (बैठ कर) महाराज ।

यह युद्ध की तैयारी क्यों की जा रही है, क्या लक्ष्मी से सन्तोष नहीं हो रहा हैं, क्या किसी घमण्डी को पीड़ित कीजियेगा या किसी पीड़ित को मुक्त कीजियेगा ॥ ८ ॥

राजा—भगवन् ! गोग्रहणादवमानितोऽस्मि ।

भगवान्—केन ?

राजा—धार्तराष्ट्रैः ।

भगवान्—धार्तराष्ट्रैरिति । (आत्मगतम्) भोः ! कष्टम् ,

एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ।
वैरप्रियैस्तैर्हि कृतेऽपराधे यत्सत्यमस्माभिरिवापराद्धम् ॥ ९ ॥

विराटद्वारा धार्त्तराष्ट्रैः क्रियमाण गोहरणं श्रुत्वा सोत्कम्प्यो युधिष्ठिरः परिशोचति—

अन्वयः—लोके एकोदकत्वं खलु नाम मनस्विनां मनांसि कम्पयते । हि वैरप्रियैः तैः कृतेऽपराधे यत् सत्यम् अस्माभिः अपराद्धम् इव ॥ ९ ॥

एकोदकत्वमिति—लोके=संसारे ; एकोदकत्वम्=समानकुलप्रसूतत्वं खलु नाम=निश्चयेन ; मनस्विनाम् = चेतनाशालिनाम् मनांसि ; कम्पयते=भयमुत्पादयति ; हि=यतः ; वैरप्रियैः = विरोधरसिकैः ; तैः धार्त्तराष्ट्रैः=दुर्योधनादिभिः कृतेऽपराधे =गोग्रहणरूपाकार्ये अनुष्ठिते यत् सत्यम्=अस्माभिः अपराद्धम् इव ; दुर्योधनदोषाद्वयमपि तत्सकुलतया आत्मानं सापराधमिव मन्यामहे इति भावः । यत्र। समानोदकत्वेन संबन्धसत्वाद् विरोधपरिहारो न जायते ; अतो सम्बन्धिष्वेकेन अपराधे कृते तत्संबद्धादन्यानपि संबन्धिनोऽपराधः लज्जयत्येव ; अतः समानोदकसंबन्धो मनस्विनां क्लेशकरो भवतीति भावः । उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् ! गोहरण से अपमानित हो रहा हूँ ।

भगवान्—किससे ?

राजा—धृतराष्ट्र के पुत्रों से ।

भगवान्—धृतराष्ट्र के पुत्रों से (अपने मन में) यह तो बहुत बुरा हुआ ।

समानोदकभाव मनस्वियों के मन को भी कम्पित कर देता है । शत्रुता ही जिन्हें प्रिय है इस प्रकार के धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अपराध किया, किन्तु मुझे मालूम पड़ रहा है कि मैंने स्वयं अपराध किया हो । यह एक वंशज होने का ही तो दण्ड है ? ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् ! किमिदानीं विचार्यते ।

भगवान्—न खलु किञ्चित् । तेषामुत्सुकः ।

राजा—अद्यप्रभृति निभृता भविष्यन्ति । यदि शक्तोऽपि युधिष्ठिरो मर्षयति,
अहं न मर्षयामि ।

भगवान्— एवमेतत् । (आत्मगतम्)

अद्येदानीं पर्णशय्या च भूमौ राज्यभ्रंशो द्रौपदीघर्षणं वा ।
वेषान्यत्वं संश्रितानां निवासः सर्वं श्लाघ्यं यत् क्षमा ज्ञायते मे ॥१०॥

तेषाम्=दुर्योधनादीनाम् ; उत्सुकः=चिन्तायुक्तः भवामीति शेषः ; नाहं किमपि स्वीयविषये चिन्तयामि किन्तु दुर्योधनादीनां भाविदुःखं प्रति शोचामीति भावः ; निभृताः-शान्ताः मौना वा; युद्धे मर्द्दितत्वाद् शान्तगर्वाः इत्यर्थः मर्षयामि=सहिष्ये ।

इदानीं क्षमां प्रशंसमानो युधिष्ठिर आह --

अन्वयः—अद्य इदानीं भूमौ पर्णशम्या, राज्यभ्रंशः वा द्रौपदीघर्षणम् वेषान्यत्वं संश्रितानां निवासं च यत् मे क्षमा ज्ञायते तत्सर्वं श्लाघ्यम् ॥१०॥

अद्येदानीमिति--अद्य इदानीम् = अज्ञातवनवाससमये ; भूमौ=भुवि ; पर्णशय्या = पत्ररचितशयनीयम् ; राज्यभ्रशः=राज्यच्युतिः ; द्रौपदीघर्षणम् = द्रौपद्याः केशाम्बराकर्षणेन कृतावमानम् ; वेषान्यत्वम्=रूपान्तरग्रहणम् (सन्यासिसूदवृहन्नलामन्दुरापालगोरक्षिरूपैर्भ्रातृणां, सैरन्ध्रीभावेन द्रौपद्याश्च विराटराजधान्यामाश्रयग्रहणम्) । संश्रितानाम् = परकीयसेवा-

राजा—भगवन् (युधिष्ठिर) ! आप क्या सोच रहे हैं ?

भगवान्—कुछ तो नहीं । मुझे उनके प्रति ही चिन्ता है ।

राजा—आज से ठण्डे हो जायेंगे । समर्थ होकर भी युधिष्ठिर सहन कर सकते हैं, किन्तु मैं नहीं ।

भगवान्—बात ठीक है । (स्वगत)

आज मेरा जमीन पर पत्ते बिछाकर सोना, राज्यच्युत होना, द्रौपदी का केशाम्बराकर्षण, वेष बदल कर दूसरे के घर में आश्रय लेना यह सभी प्रशंसनीय है क्योंकि विराट उसे मेरी क्षमा मान रहे हैं ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा—अथ किं चेष्टते दुर्योधनः ?

भटः—न खलु दुर्योधन एव, पृथिव्यां राजानः सर्वे प्राप्ताः ।

द्रोणश्च भीष्मश्च जयद्रथश्च शल्योऽङ्गराजः शकुनिः कृपश्च ।
तेषां रथोत्कम्पचलत्पताकैर्भग्ना ध्वजैरेव वयं न बाणैः ॥ ११ ॥

धिक्कृतानां निवासः ; सर्वम्=प्रागुक्तरूपं मे सकलमपि कष्टजातम्_क्षमा ज्ञायते=विराटादिभिः सद्बुद्धिभिः ममाखिलमपि विपत्तिजातं मे=मदीयां क्षमां=सहनशीलत्वम् ; ज्ञायते=बुध्यते , तत्सर्वं श्लाघ्यम्=प्रशंसार्हम् ; सत्यपरत्वात् । शालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

किं चेष्ठते=गोग्रहणार्थं किमुपायं करोति ।

अथेदानीं भटः गोग्रहणार्थं पृथिव्याः सर्वे राजानः समुपस्थिताः येषां ध्वजं दृष्ट्वा वयमाकुला इत्याह—

अन्वयः—द्रोणः भीष्मः जयद्रथः शल्यः अङ्गराजः कर्णः शकुनिः कृपः । तेषां रथोत्कम्पचलत्पताकैः ध्वजैः एव वयम् भग्नाः बाणैः न भग्नाः ॥११॥

द्रोण इति—द्रोणः ; भीष्मः ; जयद्रथः=सिन्धुराजः । शल्यः ; अङ्गराजः=कर्णः ; शकुनिः=दुर्योधनमातुलः ; कृपः=द्रोणाचार्यश्यालकः ; एते सर्वेऽपि प्राप्ता इति भावः ; तेषां=पूर्वोक्तनामकानाम् योधानाम् रथोत्कम्पचलत्पताकैः=रथसंचरणदोधूयमानध्वजदण्डैः ; एव वयम्=भटाः ; भग्नाः=हतोत्साहाः जाताः ; शरैः न भग्नाः बाणसंपातमदृष्ट्वैव

(भट प्रवेश कर)

भट—जय हो महाराज की ।

राजा—इस समय दुर्योधन क्या चेष्टा कर रहा है ?

भट—केवल अकेले दुर्योधन ही नहीं । पृथ्वी के सभी राजा आये हैं ।

द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, शल्य, कर्ण, शकुनि और कृपाचार्य ये सभी आये हैं, उनके कम्पमान रथों के चञ्चल पताकों से ही हमलोग पराजित हो गये हैं । बाणों से नहीं ॥ ११ ॥

राजा—(उत्थाय कृताञ्जलिः) कथं तत्रभवान् गाङ्गेयोऽपि प्राप्तः ।

भगवान्—(आत्मगतम्) साधु धर्षितेनापि नातिक्रान्तः समुदाचारः । भोः !

किमर्थं खलु सम्प्राप्तः कुरूणां गुरुरुत्तमः ।
शङ्के तीर्णा प्रतिज्ञेति स्मारणं क्रियते मम ॥ १२ ॥

राजा—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

ध्वजदण्डदर्शनमात्रेणास्माकं युद्धोत्साहः शिथिलीभूत इति भावः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ११ ॥

तत्र भवान् गाङ्गेयः=भीष्मः ; उत्थाय कृताञ्जलिरिति भीष्मं प्रति आदरप्रदर्शनार्थम् ; साधु = युक्तम् ; धर्षितेन = आक्रान्तेन अपि ; नातिक्रान्तः = न परित्यक्तः ; समुदाचारः = शिष्टाचारः ।

इदानीं युधिष्ठिरः गाङ्गेयप्राप्तौ मनसि वितर्कयन्नाह—

अन्वयः—कुरूणां गुरुसत्तमः खलु किमर्थं सम्प्राप्तः । शङ्के यत् प्रतिज्ञा तीर्णा इति मम स्मारणं क्रियते ॥ १२ ॥

किमर्थमिति—कुरूणाम्=कुरुकुलानां, गुरुसत्तमः=पितामहो भीष्मः किमर्थम्=किं निमितम् ; संप्राप्तः=समागतः; शङ्के=तर्कयामि यत् प्रतिज्ञा=अज्ञातवासरूपो नियमः; तीर्णा=सम्यक् समापिता इति मम स्मारणं क्रियते=स्मार्यते ; त्वयाज्ञातवासः साधुसमापितः इति मां स्मारयितुं तत्र भवान् पितामहोऽत्र समायातः इति तर्कयामीति भावः ॥ १२ ॥

सूतः=रथवाहकः; आहूयताम्=आकार्यताम् ।

राजा—(उठकर हाथ जोड़कर) क्या पूज्य गाङ्गेय भी आये हैं ।

भगवान्—(स्वगत) अपमानित होकर भी विराट ने शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं किया । अरे भाई !

हम कौरवों के पिताबह गाङ्गेय क्यों आये हैं ? क्या हमने अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी कर ली है इसे हमें याद दिलावे के लिये आये हैं ॥ १२ ॥

राजा—कोई है यहां ?

(भट प्रवेश कर)

भटः—जयतु महाराजः ।

राजा—सूतस्तावदाहूयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

सूतः—जयत्वायुष्मान् ।

राजा—रथमानय शीघ्रं मे श्लाघ्यः प्राप्तो रणातिथिः ।
तोषयिष्ये शरैर्भीष्मं जेष्यामीत्यमनोरथः ॥ १३ ॥

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । आयुष्मन् !

विराटः रथमारुह्य भीष्मेण रणसमागममिष्यमाण आह—

अन्वयः—शीघ्रं मे रथम् आनय । श्लाघ्यः रणातिथिः प्राप्तः । भीष्मं शरैः तोषयिष्ये जेष्यामि इति अमनोरथः ॥ १३ ॥

रथमिति—शीघ्रम्=अविलम्बेन ; मे=विराटस्य; रथम्=स्यन्दनम् ; साङ्ग्रामिकमिति शेषः ; आनय । श्लाघ्यः=प्रशंसार्हः; रणातिथिः=युद्धेन सत्कारणीयः; प्राप्तः=समायातः; इमं भीष्मं शरैः=बाणजालैः ; तोषयिष्ये=प्रसादयिष्यामि ; जेष्यामि=भीष्मं पराजिष्ये इति तु अमनोरथः=मनोरथात्परः सर्वथासम्भव इत्यर्थः । तस्याप्रमेयपराक्रमत्वादिति भावः ॥ १३ ॥

भट—महाराज की जय ।

राजा सूत को बुलाओ ।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(सूत प्रवेश कर)

सूत—जय हो महाराज की ।

राजा—मेरा रथ शीघ्र लाओ । पूजा के योग्य रणातिथि आये हैं । आज मैं उन्हें अपने बाणों से प्रसन्न करूँगा । उन्हें जीत पाऊँगा, यह मनोरथ तो सर्वथा अनुचित है ॥ १३ ॥

सूत—आयुष्मान् की जो आज्ञा । आयुष्मन् !

रिपूणां सैन्यभेदेषु यस्ते परिचितो रथः ।
रथचर्यां बहिष्कर्तुं तमास्थायोत्तरो गतः ॥ १४ ॥

राजा—कथं निर्यातः कुमारः !

भगवान्—भो राजन् ! संवार्यतां संवार्यतां कुमारः ।

अगणितगुणदोषो युद्धतीक्ष्णश्च बाल्या-
न्न च दहति न कश्चित् सन्निकृष्टो रणाग्निः ।

इदानीं भवतां जैत्ररथमास्थाय कुमार उत्तरो गत इति निवेदयति—

अन्वयः—यः रिपूणां सैन्यभेदेषु परिमितः रथः तम् आस्थाय रथचर्यां बहिष्कर्त्तुं उत्तरः गतः ॥ १४ ॥

रिपूणामिति—यः = यः प्रसिद्धः ; रिपूणाम् = शत्रूणाम् ; सैन्यभेदेषु = सेनासमुदायभेदनपरेषु ; परिचितः = बहुशोऽभ्यस्तः ; रथः = स्यन्दनः ; तं रथम् आस्थाय = आरुह्य ; रथचर्याम् = रथस्थेनाचरणीयां युद्धकुशलतामित्यर्थः ; बहिष्कर्त्तुं = प्रकाशयितुं ; उत्तरः = एतन्नामाकुमारः ; गतः = प्रस्थितः ; अतोऽसौ रथो नास्तीति भावः ॥ १४ ॥

निर्यातः = निर्गतः ; संवार्यताम् = निरुध्यताम् ।

इदानीं युधिष्ठिरः धार्त्तराष्ट्राणां युद्धकार्कश्यं रणाग्नेश्च भयंकरत्वमुपपादयन् कुमारमुत्तरं युद्धान्निवारयितुं समीहमानो विराटमाह—

अन्वयः—अगणितगुणदोषः युद्धतीक्ष्णः च रणाग्निः सन्निकृष्टः सन् बाल्यात् कश्चिद् न दहति इति न अथ च धार्त्तराष्ट्राः किञ्चित् न परिहरन्ते न खलु परिभवात् ते युद्धदोषान् ब्रवीमि ॥ १५ ॥

आपका जो रथ शत्रुसैन्य विनाश में दक्ष था उसे लेकर कुमार उत्तर अपना रणकौशल दिखलाने के लिये चले गये हैं ॥ १४ ॥

राजा—क्यों कुमार चले गये !

भगवान्—हे महाराज ! कुमार को युद्ध में जाने से रोकिये । रोकिये ।

यतः कुमार युद्ध के गुण दोषों से अनभिज्ञ हैं, लड़कपन के कारण युद्ध में बड़ी तेजी प्रकट करते हैं किन्तु समीपस्थ रणाग्नि किसी को भी

अथ च परिहरन्ते धार्त्तराष्ट्रा न किञ्चि-
न्न खलु परिभवात् ते युद्धदोषान् ब्रवीमि ॥ १५ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमन्यो रथः कल्प्यताम् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

राजा—अथवा एहि तावत् ।

सूतः—आयुष्मन् ! अयमस्मि ।

राजा—

अगणितेति—अगणितगुणदोषो अगणितः=अनिर्णीतः गुणदोषौ लाभहानी यस्य तादृशः अनिश्चितजयपराजयः ; युद्धतीक्ष्णः=संग्रामभीषणः च रणाग्निः सन्निकृष्टः=संप्राप्तः सन् बाल्याद्=बाल्यंदृष्ट्वा कञ्चन न दहतीति न अपितु दहत्येव ; उपस्थिते युद्धे बाल्यभावात् कोऽपि ततो न रक्षितो भवतीति अथ च धार्त्तराष्ट्राः=दुर्योधनादयः ; किञ्चित्=किमपि न परिहरन्ते – नोपेक्षन्ते ; कादृशमपि बाल्यं वृद्धं वा सम्मुखागते न परित्यजन्ति ; न खलु परिभवात्=त्वत्सुतावमाननमुद्दिश्य ते = तुभ्यम् : युद्धदोषान्=संग्रामे संभावितानर्थान् ब्रवीमि - कथयामि ; किन्तु मित्रत्वेन त्वां वच्मीत्यर्थः ; युद्धे हि जयपराजयावनवस्थौ ; बालकोऽयं न मारणीयः इति न कोऽपि परिहीयते युद्धयमानैः ; दुर्योधनादयश्च रणेऽत्यन्तं निर्दयाः अतएव मया कुमारस्य युद्धे प्रस्थानार्थं निषेधः क्रियते न तु तत्र कुमारस्याशक्ततां प्रदर्शयितुं गर्हां वाभिधातुमिति भावः ॥ १५ ॥

जला सकती है, धार्त्तराष्ट्र युद्ध में किसी प्रकार के सैनिक को बचने नहीं देते। यह बात मैं कुमार की निन्दा के उद्देश्य से नहीं कर रहा हूँ केवल युद्ध के दोषों के अभिप्राय से कह रहा हूँ ॥ १५ ॥

राजा—तो शीघ्र दूसरा रथ तैयार करो ।

सूत—जैसी आप की आज्ञा ।

राजा—अथवा इधर आओ ।

सूत—अयुष्मन् यह आया ।

राजा—आज तुमने कुमार के रथ का सञ्चालन क्यों नहीं किया

त्वमिदानीं कुमारस्य किं न वाहितवान् रथम् ।
अनुज्ञातोऽसि किं तेन न राज्ञां सारथिर्भवान् ॥ १६ ॥

सूतः—प्रसीदत्वायुष्मान् । रथं सङ्कल्पयित्वा तु सूतसमुदाचारेणोपस्थितः खल्वहम् । कुमारेण,

किन्नु तत् परिहासार्थं किन्नु तत्रास्ति कौशलम् ।
मामतिक्रम्य सारथ्ये विनियुक्ता बृहन्नला ॥ १७ ॥

इदानीं विराटः स्वसारथिं पृच्छति—

अन्वयः—इदानीं त्वं कुमारस्य रथं किं न वाहितवान् । भवान् राज्ञां सारथिः तेन त्वं किम् न अनुज्ञातः असि ॥ १६ ॥

त्वमिति इदानीम्=अद्य युद्धावसरे प्राप्ते ; त्वं कुमारस्य=उत्तराभिधस्य ; रथम्=यानम् ; किं=कुतः कारणात् । न वाहितवान्=न सञ्चालितवान ; युद्धार्थं गच्छतो राजकुमास्य रथः त्वया कथं न वाहितः इति कोपव्यञ्जको राज्ञः प्रश्नः ; राज्ञां सारथिः=राजरथवाहकः त्वं तेन=राजकुमारेण किम्=किमर्थम् न अनुज्ञातः नानुमतः असि ; राजसारथ्येन चतुरतया संभावितस्यापि तव सारथ्यमसौ कुमारो कथं नान्वमंस्तेत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

संकल्पयित्वा=सम्यक् सज्जीकृत्य ; सूतसमुदाचारेण=सूतोचितशिष्टाचारतया ।

इदानीं सूतः स्वसारथ्यस्याभावत्वमुपपादयति—

अन्वयः—(कुमारेण) मां सारथ्ये अतिक्रम्य वृहन्नला विनियुक्ता तत् परिहासाय किन्नु, किन्नु तत्र कौशलम् अस्ति ॥ १७ ॥

अथवा यतः तुम राजाओं के सारथी हो इसलिये कुमार ने तुम्हें स्वयं रथ चलाने की आज्ञा नहीं दी ।

सूत—आयुष्मान् दया करें । मैं रथ सजाकर स्वयं सारथी के रूप में कुमार के पास गया परन्तु कुमार ने ॥ १६ ॥

न जाने मेरे परिहास के लिये अथवा वृहन्नला में किसी विशेष प्रकार का कौशल देख कर मुझे छोड़ दिया और सारथी के रूप में वृहन्नला को नियुक्त किया ॥ १७ ॥

राजा—कथं बृहन्नलेति ।

भगवान्—राजन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

यदि स्वचक्रोद्धतरेणुदुर्दिनं रथं समास्थाय गता बृहन्नला ।
परान् क्षणैर्नेमिरवैर्निवारयन् विनापि बाणान् रथ एव जेष्यति ॥१८॥

किन्विति—कुमारेण=उत्तरेण ; माम्=सदाकृतसारथ्यमपि रथमादायोपस्थितमपि माम् ; अतिक्रम्य=परित्यज्य ; बृहन्नला=नपुंसकभावापन्नोऽज्ञातवासस्थोऽर्जुनः ; सूतकर्मणीति शेषः ; विनियुक्ता=योजिता ; तद्=बृहन्नलायाः सारथ्ये संयोजनम् ; परिहासार्थम्=उपहासाय किन्नु ? किन्नु=अथवा ; तत्र=बृहन्नलायाम् ; कौशलम्=सारथिकर्मदक्षत्वमस्ति ? तस्याः उपहासार्थं यद्वा तत्र रथचालनकर्मदक्षत्वमस्ति इत्यहं न जाने कथं बृहन्नलेति—बृहन्नलायाः स्त्रीत्वेन सूतकर्मणि इत्यर्थः । विनियोजनं नितामनुपयुक्तमित्याश्चर्यं मन्वानो विराट आह संभ्रमेण=आवेगेन ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरः इदानीं बृहन्नलया उत्तरस्य रथे वाह्यमाने सर्वथा जयाशंसां प्रकटयन् विराटं सान्त्वयति—

अन्वयः—यदि बृहन्नला स्वचक्रोद्धृतरेणुदुर्दिनं रथम् समास्थाय गता (तदा) क्षणैः नेमिरवैः परान् निवारयन् बाणान् विना अपि रथ एव जेष्यति ॥ १८ ॥

यदीति—यदि बृहन्नला स्वचक्रोद्धृतरेणुदुर्दिनम्=स्वरथाङ्गोत्थापितधूलिवर्षाकरम् ; रथम्=स्यन्दनम् । समास्थाय=आरुह्य ; गता=प्रस्थिता ; तदा क्षणैः=अल्पकालैः ; नेमिरवैः=चक्रप्रान्तध्वनिभिः ; परान्=शत्रून् ; निवारयन्=प्रतिषेधयन् । रथ एव स्यन्दनः एव ;

राजा—क्यों बृहन्नला को सारथी बनाया ।

भगवान्—तब घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं ।

यदि रथचन्द्र से उठी हुई धूलि से आकश में मेघमण्डल की सृष्टि करने वाले रथ पर बैठ कर बृहन्नला गई है तो अपनी नेमि के शब्द से ही कुछ क्षणों में शत्रुओं को परास्त कर रथ स्वयं लौट आवेगा कुमार को बाण चलाने की आवश्यकता नहीं होगी ॥ १८ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमन्यो रथः कल्प्यताम् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

भटः—भग्नः खलु कुमारस्य रथः ।

राजा—कथं भग्नो नाम ।

भगवान्—कथमिदानीं भग्नो नाम ।

भट—श्रोतुमर्हति महाराजः ।

बहुभिः समराभिज्ञैराच्छन्नाश्वपथः परैः ।
भग्नो गहनलोभेन श्मशानाभिमुखो रथः ॥ १९ ॥

बाणान्=शरपातान् ; विना अपि जेष्यति=विजयमाप्स्यति ; अयंभावः यदि वृहन्नला कुमारस्योत्तरस्य साहाय्यं कर्त्तुं रथमास्थाय गत्वा तदा स्वल्पकालैरेव तद्रथसंचालनकौशलमेव भवते विजयं प्रदास्यति ; बाणमोक्षस्यावश्यकतैव न भवेदिति । वंशस्थवृत्तम् ॥ १८ ॥

भग्नः=प्रतिनिवृत्तः ; इदानीं भग्नो नाम=वृहन्नलाकृतसारथ्यस्योत्तरस्यासंभाव्यपराजयत्वं मनसि कृत्वा युधिष्ठिरस्येयमुक्तिः ।

इदानीं व्यञ्जनया भटः रथस्य प्रतिनिवर्त्तनमुपपादयति—

अन्वयः—बहुभिः समराभिज्ञैः परैः आच्छन्नाश्वपथः रथः गहनलोभेन श्मशानाभिमुखः भग्नः ॥ १९ ॥

राजा—तो शीघ्र दूसरा रथ तैयार करो ।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा (जाता है)

(पुनः प्रवेश कर)

भट—कुमार का रथ परास्त हो गया ।

राजा—कुमार का रथ परास्त कैसे हो गया ।

भगवान्—इस समय परास्त कैसे हो गया ।

भट—सुनिये महाराज ! बहुत से युद्ध कुशल सैनिकों ने घोड़ों का मार्ग घेर लिया अतः जङ्गल में भाग जाने के लोभ से रथ श्मशान की ओर चल पड़ा ॥ १९ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्) आ ! अत्र खलु गाण्डीवम् । (प्रकाशम्) भो राजन् !

निमित्तं किञ्चिदुत्पन्नं श्मशानाभिमुखे रथे ।
धार्तराष्ट्राः स्थिता यत्र श्मशानं तद् भविष्यति ॥ २० ॥

बहुभिरिति—बहुभिः=बहुसंख्याकैः ; समराभिज्ञैः=युद्धकलाप्रवीणैः परैः=शत्रुभिः ; आच्छन्नाश्वपथः=आवृतरथगमनमार्गः ; अतएव निरुद्धः, रथः=कुमारस्य स्यन्दनः ; गहनलोभेन=आत्मरक्षार्थं वनं प्राप्तुकामेन ; श्मशानाभिमुखः=श्मशानं प्रति ; भग्नः=प्रतिनिवृत्तः ; अयं भावः शत्रुभिः रथस्य मार्गेऽवरुद्धे जाते आत्मरक्षार्थं कुमारस्य रथः श्मशानकाननाभिमुखं प्रस्थितः ; अत्रान्तकथा महाभारते द्रष्टव्या उत्तरं युद्धेऽशक्तं मत्वा वृहन्नलारूपोऽर्जुनः महाश्मशाने संगोपितं निजं गाण्डीवमानेतुं श्मशानाभिमुखं रथमुवाहेति ; तत्त्वानभिज्ञस्य भटस्योत्तरपलायनज्ञानेनेयमुक्तिः । आ इति=स्मरणार्थकमव्ययपदम् ; अत्र=गहने श्मशाने ॥ १९ ॥

इदानीं श्मशानाभिमुखं रथगमनं श्रुत्वा युधिष्ठिरः कथयति यदनेन निमित्तेन जानामि यद् यत्र धार्त्तराष्ट्राः सा भूमिरेव श्मशानतुल्या भविष्यतीति —

अन्वयः—रथे श्मशानाभिमुखे किञ्चिद् निमित्तं उत्पन्नम् यद् यत्र धार्त्तराष्ट्राः स्थिता तद् श्मशानं भविष्यति ॥ २० ॥

निमित्तमिति—रथे=उत्तराधिष्ठिते स्यन्दने । श्मशाभिमुखे=श्मशानगामिनि सति ; किञ्चित् निमित्तम्=शुभशकुनम् ; उत्पन्नम्=जातम् ; किं तच्छुभशकुनमिति बोधयति यद् यत्र=स्थाने ; धार्त्तराष्ट्राः=दुर्योधनादयः ; तत् स्थानं श्मशानं भविष्यति ; श्मशानाभिमुखो रथः शुभशकुनतया शत्रून् पराजेष्यते इति प्रकाशोऽर्थः ; हृदयस्थोऽर्थस्तु श्मशानस्थं गाण्डीवमादाया-

---

भगवान्—(स्वगत) अहा । वहीं पर तो गाण्डीव रखा हुआ है (प्रकाश) महाराज ! कुछ ऐसे लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं कि जहाँ धृतराष्ट्र के पुत्र हैं जब श्मशान की ओर रथ चला गया तब वहाँ की भूमि श्मशान बन कर रहेंगी ॥ २० ॥

राजा—भगवन् ! अकाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति ।

भगवान्—अलं मन्युना । कदाचिदनृतं नोक्तपूर्वम् ।

राजा—आ अस्त्येतत् । गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः – यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—

को नु खल्वेष सहसा कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

जुंतोऽवश्यं शत्रून् मारयिष्यतीति ॥ २० ॥

अकाले=अनुपयुक्ते समये स्वस्थवाक्यम्=अनुद्वेगकरं वचनम् ; मन्युम्=क्रोपम् ; उत्पादयति=जनयति ; मम पुत्रः पलाय्यारण्यं प्रविष्टः त्वं चेद शुभशकुनं मत्वा विजयमाशंससे इति कथनं मह्यं न रोचते इति भावः । अलं मन्युना – क्रोधस्य किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः । यतः मया कदापि अनृतं नोक्तमतोऽधुनापि मम वचोऽवश्यं सत्यं भविष्यतीति विश्वस्यताम् । अस्त्येतत्—भवता कदापि मिथ्या नोक्तमिति सत्यमित्यर्थः । वचनं भटं प्रति ज्ञायतां वृत्तान्तः इति ।

विराटस्तदानीं किमप्यपूर्वं ध्वनिं श्रुत्वा तद् ज्ञानार्थं भटमादिशति—

अन्वयः—को न खलु एष ध्वनिः सहसा मेदिनीम् कम्पयन् इव आविद्धः नदीस्रोत इव क्षणात् संवर्त्तते ॥ २१ ॥

को न्विति—कः नु खलु एष ध्वनिः=शब्दः ; सहसा=हठात् ; मेदिनीम्=पृथ्वीम् । कम्पयन्=चालयन् क्षोभयन् वा ; इव=यथा ; आविद्धः=वक्रीभूतः ; नदीप्रवाहः=नदीस्रोत इव ; संवर्त्तते=प्रादुर्भवति ; अयं भावः यथा नदीप्रवाहः प्रतिबन्धभूतेन शिलाखण्डादिना अवरुद्धो वक्रीभूतः

राजा—भगवान् ! असमय में कहे गये शकुनादि स्वस्थ वाक्य कोप पैदा करते हैं ।

भगवान्—कोप करने की आवश्यकता नहीं है । मैंने इससे पहले कभी मिथ्या नहीं कहा है ।

राजा—हाँ यह बात तो है । अच्छा फिर समाचार ज्ञात करो ।

भटः—जैसी महाराज की आज्ञा (जाता है)

राजा—पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ यह शब्द कहाँ से आ रहा

नदीस्रोत इवाविद्धः क्षणात् संवर्तते ध्वनिः ॥ २१ ॥

ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । श्मशानान्मुहूर्तविश्रान्ततुरगेण कुमारेण तु,

भगवान्—एष मामनृतवादिनं न कुर्यात् ।

राजा—किं कृतं कुमारेण ?

भटः—

कृता नीला नागाः शरशतनिपातेन कपिला
हयो वा योधो वा न वहति न कश्चिच्छरशतम् ।

सन् यथा प्रोच्चैः शब्दायते तथा महीं कम्पयन् इव कोऽयं ध्वनिरुत्पद्यते इति ॥ २१ ॥

मुहूर्त्तविश्रान्ततुरगेण=मुहूर्त्तं मात्र विश्रान्ताः तुरगाः यस्य तेन । क्षणमात्रकृतविश्रामघोटकेन ।

अनृतवादिनं न कुर्यादिति कदाचिदयं मां मिथ्यावादिनं न साधयेत् यद्ययं संवाददाता कुमारस्य पुनः पलायनमभिधास्यति तदाहं शुभशकुनकथनात् मिथ्याभिधायित्वेन प्रत्यायितो भवेयमित्यर्थः ।

इदानीं कुमारकृतं पुरुषार्थं भटो वर्णयति—

अन्वयः—नीला नागाः शरशतनिपातेन कपिलाः कृताः । हयः योधः

है ऐसा जान पड़ता है मानो नदी का प्रवाह उलट गया हो । देखो यह कैसा शब्द है ॥ २१ ॥

(प्रवेश करके)

भट—जय हो महाराज की ! कुमार ने कुछ देर तक श्मशान में घोड़ों को विश्राम दे कर ।

भगवान्—कदाचित यह मुझे मिथ्यावादी न सिद्ध करें ।

राजा—फिर कुमार ने क्या किया ।

भट—सैकड़ों बाणों के प्रहार से काले वर्ण वाले हाथियों को लाल बना दिया । ऐसा कोई घोड़ा या योद्धा नहीं है जो बाण से क्षत विक्षत न हुआ

शरैः स्तम्भीभूताः शरपरिकराः स्यन्दनवराः
शरैश्छन्ना मार्गाः स्रवति धनुरुग्रां शरनदीम् ॥ २२ ॥

भगवान्—(आत्मगतम्)

एतदक्षयतूणित्वं येन शक्रस्य खाण्डवे ।
यावत्यः पतिता धारास्तावन्तः प्रेषिताः शराः ॥ २३ ॥

वा कश्चिदपि शरक्षतम् न वहति इति न । शरपरिकराः स्यन्दनवराः शरैः स्तम्भीभूताः । मार्गाः शरैः छन्नाः । धनुः उग्रां शरनदीं स्रवति ॥२२॥

कृता इति—नीलाः=नीलवर्णाः ; नागाः=गजाः ; शरशतनिपातेन=बहुबाणवर्षणेन ; कपिलाः=रक्तवर्णाः कृताः ; (बहुबाणवर्षणेन स्रवद्रक्ततनवो व्यधीयन्तेति भावः ; कश्चिदपि हयः=अश्वः ; योद्धा वा ; शरक्षतं=बाणव्याविद्धव्रणं न वहति इति न ; सर्वेऽपि अश्वाः योद्धारश्च शरक्षताः विहिता इत्यर्थः । शरपरिकराः=बाणछन्नाः ; स्यन्दनवराः=रथमुख्याः ; शरैः=कुमारोत्सृष्टबाणैः ; स्तम्भीभूताः=स्थाणुभावत्वमापादिताः ; मार्गाः=युद्धस्थलपथाः ; शरैः=बाणैः ; छन्नाः=व्याप्ताः ; धनुः=कुमारमार्गाः चापः ; उग्राम्=अतिभीषणाम् ; शरनदीम्=बाणसरितम् ; स्रवति=प्रवाहयति । तदित्थं=वीराचरणं कृतं कुमारेणेति भटाभिप्रायः ; शिखरिणीवृत्तम् ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरः आत्मगतमेतत्सर्वमक्षयतूणीरस्य प्रभावमिति प्रदर्शयति—

अन्वयः—एतद् अक्षयतूणीत्वम् येन खाण्डवे यावत्यः शक्रस्य धाराः पतिताः तावन्तः शराः प्रेषिताः ॥ २३ ॥

एतदिति—एतद्=अविरलशरवर्षित्वरूपम् ; अक्षयतूणीरत्वम्=बाणक्षयरहिततूणीरभावः ; एतादृशी शरधारा तस्यैव धनुषः सम्भवतीति यद-

---

हो । शरों से घिरे रथ स्तब्ध हो कर अपनी जगह खड़े हैं । वाणों की ऐसी वर्षा हो रही है कि मार्ग दिखाई नहीं पड़ते । कि बहुना धनुष भयङ्कर वाणों की नदी प्रवाहित कर रहा है ॥ २२ ॥

भगवान्—(स्वगत) यह प्रभाव तो उन अक्षय तूणीरों का ही है जिन्होंने खाण्डव वन को जलाने के समय इन्द्र की जितनी वर्षा की धारा प्रवाहित हो रही थी उतने ही वाणों की झड़ी लगाई थी ॥ २३ ॥

राजा—अथ परेष्विदानीं को वृत्तान्तः ।

भटः—अप्रत्यक्षं हि तत्र मे । प्रवृत्तिपुरुषाः कथयन्ति—

धनुर्घोषं द्रोणस्तदिदमिति बुद्ध्वा प्रतिगतो
ध्वजे बाणं दृष्ट्वा कृतमिति न भीष्मः प्रहरति ।

क्षयतूणीरं स्याद् तादृशश्च गाण्डीवधारी एव; तदवश्य कृत्यमिदं तस्यैव गाण्डीवस्य धनुषः भवितुमर्हति ; येन=गाण्डीधारिणा ; खाण्डवे=खाण्डवनामकस्य वनस्य दाहावसरे ; यावत्यः=यावत्संख्याकाः ; शक्रस्य=इन्द्रस्य ; धाराः=जलवृष्टयः ; पतिताः=जाताः ; तावन्तः शराः प्रेषिताः ; अयंभावः खाण्डववनदाहावसरे शक्रकृतयावत्संख्याकजलवृष्टिविन्दवः पतिताः तावत्संख्याकाः वाणाः गाण्डीवेन मुक्ताः ; एतच्चाक्षयतूणीरस्य प्रभावो विज्ञेय इत्यर्थः ।। २३ ।।

परेषु=शत्रुषु ; कः वृत्तान्तः ; कीदृशः समाचारः ; शत्रव इदानीं किं कुर्वन्तीत्यर्थः ; तत्र=शत्रूणां वृत्तविषये ; अप्रत्यक्षम्=अज्ञातम् प्रवृत्तिपुरुषाः=वार्त्ताहराः दूताः ।

इदानीं चारपुरुषैः कथितं युद्धवृत्तान्त राज्ञे निवेदयति भटः—

अन्वयः—द्रोणः तद् इदं धनुर्घोषम् इति बुद्ध्वा प्रतिगतः । ध्वजे बाणं दृष्ट्वा कृतमिति भीष्मः न प्रहरति । कर्णः शरैः भग्न अन्ये नृपतयः किमिदम् इति । एकः अभिमन्युः बाल्यात् भये अपि भयं न गणयति ।। २४ ।।

धनुर्घोषमिति—द्रोणः=कुरुकुलाचार्यः ; तद् इदम्=पूर्वोक्तमभिज्ञातं धयुर्घोषम्=धनुष्टङ्कारः ; इति बुद्ध्वा=ज्ञात्वा ; प्रतिगतः=अर्जुनस्य गाण्डीवटङ्कारमभिज्ञाय युद्धात् प्रतिनिवृत्तः ; ध्वजे=स्वकेतौ ; बाण दृष्ट्वा ; कृतमिति=अलं युद्धेन इति बुद्ध्या भीष्मः न प्रहरति निवृत्तव्यापारो भवति ; कर्णः=अङ्गराजः ; शरैः=कुमाराक्षिप्तबाणैः ; भग्नः=खण्डितः

राजा—अब शत्रु पक्ष का क्या समाचार है ?

भट—वह तो मैं अपनी आँखों से न देख सका । गुप्तचरों का कहना है—

यह उसी धनुष का टङ्कार है ऐसा समझ कर द्रोणाचार्य ने लड़ना छोड़ दिया । भीष्म ने ध्वजा में लगे वाणों को देखकर बस लड़ना व्यर्थ है

शरैर्भग्नः कर्णः किमिदमिति चान्ये नृपतयो
भयेऽप्येको बाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमभिमन्युः प्राप्तः । भो राजन् !

युध्यते यदि सौभद्रस्तेजोऽग्निर्वंशयोर्द्वयोः ।
सारथिः प्रेष्यतामन्यो विक्लवात्र बृहन्नला ॥ २५ ॥

पराजित इति वा ; अन्ये=परे ; नृपतयः=राजानः ; किमिदमिति आश्चर्यचकिताः बभूवुः ; एकः=केवलः ; अभिमन्युः=सौभद्रेयः ; बाल्याद्=युद्धपरिणामाज्ञानवशात् चापल्याद् वा ; भयेऽपि भयकारणसत्त्वेऽपि ; पुरः बाणसन्निपातजायमानेपीत्यर्थः ; भयं न गणयति=निर्भीकः सन् तिष्ठति ; यज्ञे समामन्त्रितस्याभिमन्योर्गोग्रहणसहायकत्वमवगन्तव्यम् ॥ २४ ॥

इदानीं दुर्योधनपक्षाद् युद्धकरणार्थमभिमन्युं समागतं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः चकितः सन् राजानमुपदिशति—

अन्वयः—यदि द्वयोः वंशयोः तेजोऽग्निः अभिमन्युः युध्यते तदा कोऽपि अन्यः सारथिः प्रेष्यताम् अत्र बृहन्नला विक्लवः स्यात् ॥ २५ ॥

युध्यते इति—यदि । द्वयोः वंशयोः=स्वमातृपितृकुलयोर्यादवपाण्डववंशयोः ; तेजोऽग्निः=प्रतापाग्निसदृशः ; अभिमन्युः युध्यते तदा=एवं प्रसक्ते ; कोऽपि अन्यः सारथिः—सूतः ; प्रेष्यताम् ; अत्र=तादृशमहायुद्धे ; बृहन्नला विक्लवा=भयविह्वला ; स्यात् ; षण्ढप्रकृतिं गता बृहन्नला तादृशयुद्धे भयभीता भवेत्तेन कश्चिदन्यः सारथिः प्रेष्यतामिति बाह्यार्थः ।

ऐसा समझ कर प्रहार करना बन्द कर दिया है। कर्ण बाणों के प्रहार से पराभूत हो गये हैं, दूसरे राजा गण यह क्या हो गया ऐसा सोच कर आश्चर्य चकित हो रहे हैं। भय के कारण के सामने रहने पर भी एक मात्र अभिमन्यु बाल सुलभता जन्य चञ्चलता से निर्भय भाव से लड़ता जा रहा है ॥ २४ ॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु आया है। हे महराज !

यादव और पाण्डव कुल का तेजस्वी वीर अभिमन्यु यदि लड़ रहा है तब आप कुमार के रथ पर किसी और सारथी को भेजें। क्योंकि बृहन्नला विवश हो जायगी ॥ २५ ॥

राजा—मा मा भवानेवम् ।

भीष्मं रामशरैरभिन्नकवचं द्रोणं च मन्त्रायुधं
कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ शेषांश्च तांस्तान् नृपान् ।
सौभद्रं स्वशरैर्न घर्षयति किं भीतः पितुः प्रत्ययात्
संसृष्टोऽपि वयस्यभावसदृशं तुल्यं वयो रक्षति ॥ २६ ॥

निगूढार्थस्तु यदि अर्जुनोऽभिमन्युना युद्ध्यते तदा पुत्रवात्सल्यादभिमन्युं न जेतुं शक्नोति तदर्थमपरः कश्चन सहायकः सूतोऽन्विष्य प्रेष्यतामिति भावः ॥ २५ ॥

कुमारेणोत्तरेण सर्वं संपादयिष्यते अन्यस्य सारथेरावश्यकतैव नास्तीति राजा सकारणमाह—

अन्वयः—रामशरैः अभिन्नकवचं भीष्मं मन्त्रायुधं द्रोणं विमुखौ कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ कृत्वा तान् तान् शेषान् च नृपान् विमुखान् कृत्वा उत्तरः कुमारः कि स्वशरैः सौभद्रं न घर्षयति । यद्वा पितुः प्रत्ययात् संसृष्टः अपि तुल्यं वयः वयस्यभावसदृशं रक्षति ॥ २६ ॥

भीष्ममिति—रामशरैः=परशुरामप्रेरितबाणैः ; अभिन्नकवचम्=अविदारितवर्माणम् ; अक्षतकवचमित्यर्थः भीष्मं; मन्त्रायुधम्=मन्त्रप्रहरणम् ; द्रोणं च विमुखौ कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ कृत्वा ; शेषान् तान् तान् नृपान् च विमुखान् कृत्वा=पराजित्य ; उत्तरः कुमारः कि स्वशरैः=स्वबाणैः ; सौभद्रं=अभिमन्युं ; न घर्षयति=न पराजयते ; अवश्यं जेष्यतीत्यर्थः ; यद्वा पितुः=अर्जुनस्य ; प्रत्ययात्=जगदेकवीराख्यातादहेतोः

राजा—भगवान् ! आप ऐसा न कहें ।

परशुराम के बाणों से जिनका कवच भेदा न जा सका ऐसे भीष्म को, मन्त्र पूर्वक अस्त्रों का प्रयोग करने वाले आचार्य द्रोण को एवं कर्ण तथा जयद्रथ को तथा अन्यान्य नृपतियों को रथ से विमुख करने वाला कुमार क्या अभिमन्यु को अपने बाणों से पराभूत नहीं कर देगा अथवा ऐसा हो सकता है अभिमन्यु के पिता अर्जुन से भयभीत होकर कुमार अभिमन्यु से मेल कर ले । अथवा अपने समान अवस्था देख कर उसकी रक्षा कर रहा हो ॥ २६ ॥

भटः—एष खलु कुमारस्य रथः,

आलम्बितो भ्रमति धावति तेन मुक्तो
न प्राप्य घर्षयति नेच्छति विप्रकर्तुम्।
आसन्नभूमिचपलः परिवर्तमानो
योग्योपदेशमिव तस्य रथः करोति॥ २७॥

प्रीतः सन् संसृष्टः अपि मैत्री भाव गतः=तुल्यं वयः=अभिमन्युवयसा समानं वयः कुमारः वयस्यभावसदृशम्=मैत्रीसदृशम् तम् रक्षति ॥ २६ ॥

इदानीं भटः उत्तरकुमारस्य रथकौशलं वर्णयति—

अन्वयः—तेन आलम्बितः भ्रमति। मुक्तः सन् धावति। प्राप्य न घर्षयति। विप्रकर्त्तुं न इच्छति। आवर्त्तभूमिचपलः परिवर्त्तमानः रथः तस्य योग्योपदेशम् इव करोति ॥ २७ ॥

आलम्बित इति—तेन सारथिना आलम्बितः=स्थिरकरणार्थं प्रगृहीतप्रग्रहः सन् भ्रमति=परितः भ्रमिमेति न तु तिष्ठति ; मुक्तः=अग्रे संचालनार्थं मुक्तप्रग्रहः सन् धावति प्रपलायते न तु यथाभिमतं गच्छति ; प्राप्य=अवसरं लब्ध्वा ; न घर्षयति=प्रतिरथं न आक्रामति ; विप्रकर्त्तुम्=प्रतिरथमभिभवितुं च नेच्छति ; आसन्नभूमिचपलः=समीपस्थदेशेऽतिचञ्चलः परिवर्त्तमानः=समन्ततोऽभिचरन् ; रथः तस्य=कुमारस्य; योग्योपदेशम्=शिक्षणानुकूलरथचर्याभ्यासम् इव करोति कुमाररथः कुमारशिक्षणानुकूलां रथचर्यामभ्यस्यति ; न तु वस्तुतो युध्यते इत्यर्थः। स्वभावोक्तिः ॥ २७ ॥

वृत्तान्तम्=युद्धवृत्तम् ; अवजितम्=गोग्रहणे कुमारस्य विजयो जातः ; अपयाताः=पलायिताः ; दिष्ट्येत्यव्ययपदम् हर्षसूचनार्थम्। वर्धते=अभ्युदयं प्राप्नोति ; दृष्टपरिस्पन्दानाम्=साहसं दर्शितवताम् ; कर्माणि=

भट—निश्चय ही कुमार का यह रथ।

सारथी द्वारा ठहराये जाने पर नाचने लगता है, छोड़ देने पर जोरों से भागता है, समीप जाकर भी अपने प्रति रथी को परास्त नहीं करता, सन्निकट जाकर भी बड़ी शीघ्रता से लौट आता है मानो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को रथचर्या का पाठ पढ़ा रहा है ॥ २७ ॥

राजा—गच्छ। भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। जयतु विराटेश्वरः। प्रियं निवेदये महाराजाय। अवजितं गोग्रहणम्, अपयाता धार्तराष्ट्राः।

भगवान्—दिष्ट्या भवान् वर्धते।

राजा—न न। भगवतो वृद्धिरेषा। अथ कुमार इदानीं क्व?

भटः—दृष्टपरिस्पन्दानां योधपुरुषाणां कर्माणि पुस्तकमारोपयति कुमारः।

राजा—अहो श्लाघनीयव्यापारः खल्वयं कुमारः!

ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा।

शौर्यसूचकयुद्धव्यापारान्; आरोपयति=लिखति; श्लाघनीयव्यापारः=प्रशस्तकार्यकारी।

गोग्रहणे शूराणां पराक्रमशालिनां वीराणां पूज्यत्वमुपपादयति—

अन्वयः—हि श्लाघनीयेन कर्मणा ताडितस्य योधस्य अकालान्तरिता पूजा वेदनाम् नाशयति एव ॥ २८ ॥

ताडितस्येति—हि=यतः; श्लाघनीयेन कर्मणा=प्रशंसायोग्यसाहसकर्मणा; ताडितस्य=शत्रुणा प्रहारं प्राप्तस्य; योधस्य=सैनिकस्य;

राजा—तो जाओ। फिर युद्ध के समाचार का पता लगाओ।

भट—महाराज की जो आज्ञा (जाकर फिर लौट कर) जय हो! जय हो महाराज की विराटेश्वर की जय हो। महाराज को प्रसन्नता का समाचार सुनाता हूँ। गोग्रहण में हमारी विजय हुई। दुर्योधन का पक्षभाग गया।

भगवान्—सौभाग्य से आप की अभिवृद्धि हुई।

राजा—नहीं नहीं। यह तो आप की वृद्धि है। अच्छा अभी कुमार कहाँ हैं?

भट—कुमार युद्ध में कुशलता दिखाने वाले वीरों के नाम पुस्तक में अंकित कर रहे हैं।

राजा—कुमार का यह काम प्रशंसनीय है।

युद्ध में आहत हुये वीरों के उनके प्रशंसास्पद किये जाने वाले कार्यों के

अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २८ ॥

अथ बृहन्नलेदानीं क्व ?

भटः —प्रियनिवेदनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा ।

राजा—बृहन्नला तावदाहूयताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति बृहन्नला ।)

बृहन्नला —(निरूप्य सविमर्शम्)

गाण्डीवेन मुहूर्तमाततगुणेनासीत् प्रतिस्पर्धितं

अकालान्तरिता=अव्यवहितकालावच्छिन्नविहिता सद्यः कृतेत्यर्थः । पूजा=पुरस्कारादिना समादरः ; वेदनाम्=शत्रुताडनव्यथाम् ; नाशयति एव=शमयति एव ; युद्धे पराक्रमं प्रदर्शयन् योद्धा यदि युद्धे प्रहारमनुभवति तदा तत्कृतः सत्कारस्तत्प्रहारव्यथां शमयति स्वयोधानां साहसं लिखन् कुमारः साधुकर्म करोति ॥ २८ ॥

प्रियनिवेदनार्थम्=युद्धविजयरूपमभीष्टसंदेशं सूचयितुं अभ्यन्तरम्=अन्तःपुरम् ।

इदानीं बृहन्नला युद्धकाले शनैः शनैः स्वस्मिन् प्रक्रममाणं पुरुषार्थं प्रकटयति—

अन्वयः—आततगुणेन गाण्डीवेन मुहूर्त्तं प्रतिस्पर्द्धितम् आसीत् वाणानां

उपलक्ष में यदि उनकी सद्यः पूजा कर दी जाय तो उन्हें लड़ाई की सारी व्यथा भूल जाती है ॥ २८ ॥

अच्छा ! इस समय बृहन्नला कहाँ पर है ?

भट—प्रसन्नता का समाचार ले कर अन्तः पुर में गई हैं ।

राजा—बृहन्नला को बुलाओ तो ।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा (जाता है)

(बृहन्नला का प्रवेश)

बृहन्नला—(विचार पूर्वक देख कर)

गाण्डीव धनुष पर मौर्वी चढ़ाने में मुझे कुछ देर तक अधिक प्रयास

बाणानां परिवर्तनेष्वविशदा मुष्टिर्न मे संहता ।
गोधास्थानगता न चास्ति पटुता स्थाने हृतं सौष्ठवं
स्त्रीभावाच्छिथिलीकृतः परिचयादात्मा तु पश्चात् स्मृतः ॥२९॥

परिवर्त्तनेषु अविशदा मे मुष्टिः न संहता । गोधास्थानगता पटुता च नास्ति । स्थाने सौष्ठवं हृतम् । स्त्रीभावाच्छिथिलीकृतः आत्मा तु परिचयात् पश्चात् स्मृतः ॥ २९ ॥

गाण्डीवेनेति -आततगुणेन=बद्धमौर्वीकया ; गाण्डीवेन=मम धनुषा मुहूर्त्तम्=क्षणद्वयात्मककालपर्यन्तम् ; प्रतिस्पर्द्धितम् = मम बलपरीक्षणं कृतम् ; तेन किञ्चित्कालपर्यन्तमहं गाण्डीवं साधु विक्रष्टुं न प्रभुरभूवमित्यर्थः । अविशदा = त्यक्ताभ्यासा ; मे=मम ; मुष्टिः बाणानां परिवर्त्तनेषु = बाणमोक्षणग्रहणव्यापारेषु ; न संहता=अदृढा ; आसीदिति शेषः । गोधास्थानगता=ज्याघातवारणस्थानगामिनी च पटुता=दक्षता नास्ति । स्थाने=धानुष्कजनसाध्ये लक्ष्ये । नैपुण्यम्=कौशलम् ; हृतम्=अपनीतम् तदेवं स्त्रीस्वभावात् = स्त्रीरूपधारणात् ; शिथिलीकृतः=निरस्ताभ्यासः आत्मा=युद्धाभ्यासः ; परिचयात्=चिराभ्यासात् ; हेतोः पश्चात् = किञ्चित्कालानन्तरम् ; मया स्मृतः ; अस्यायमाशयः आदौ गाण्डीवे गुणस्थापने मया कियत् कष्टमनुभूतम् ; ततः बाणानां मोक्षणे ग्रहणे च मम मुष्टिरनभ्यस्ता वासीत् । किञ्च गोधास्थानस्य पाटवमप्यपहृतमिव जातम् ; एवम् स्त्रीभावात् चिरमकृतबाणमोक्षस्य मम क्षणं जाड्यमिव प्रत्यभासत । परं क्षणादेव चिरमभ्यसात् तद्युद्धपाटवं जागरूकं मद्बुद्धिपथमारूढमिति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

करना पड़ा । क्षण मात्र के लिये बाणों को पकड़ने तथा छोड़ने में मेरी संस्कार रहित मुठ्ठी बंध नहीं रही थी । गोधा स्थान में पटुता नहीं थी । इस प्रकार स्त्री वेष में रहने के कारण कुछ देर तक मुझे धनुष पर बाण रखने तथा चलाने में कुछ असुविधा प्रतीत हुई । किन्तु थोड़ी ही देर बाद मुझे अपने पुरुषार्थ का स्मरण हो आया ॥ २९ ॥

मया हि,

अनेन वेषेण नरेन्द्रमध्ये लज्जायमानेन धनुर्विकृष्टम् ।
यात्रा नु तावच्छरदुर्दिनेषु शीघ्रं निमग्नः कलुषश्च रेणुः ॥ ३० ॥

भोः,

जित्वापि गां विजयमप्युपलभ्य राज्ञो
नैवास्ति मे जयगतो मनसि प्रहर्षः ।

इदानीं बृहन्नला युद्धकाले स्वकीयां परिस्थितिमुपपाद्य स्वकृतशत्रूणां दुर्दशांतिमुपपादयति—

अन्वयः—मया नरेन्द्रमध्ये अनेन वेषेण लज्जायमानेन धनुः विकृष्टम् । यात्रा तु तावद् शरदुर्दिनेषु आसीत् कलुषः रेणुः शीघ्रः निमग्नः ॥ ३० ॥

अनेनेति—मया नरेन्द्रमध्ये = राजसमाजमध्ये ; अनेन = स्त्रैणेन वेषेण हेतुना लज्जायमानेन = लज्जामनुभवता धनुः विकृष्टम् = अधिज्यगाण्डीवं व्यापारितम् ; यात्रा = यात्रा, संचारस्तु तावद् शरदुर्दिनेषु वाणवर्षेषु आसीत् ; कलुषः = मलिनवर्णश्च रेणुः = भूरजः शीघ्रं निमग्नः = क्षणेन क्षतराजशरीरस्रवद्रक्तसंपर्कात् कीचत्वम् जातम् । उपजातिवृत्तम् ॥ ३० ॥

गोग्रहणे जातेऽपि विजये स्वमनसि प्रहर्षमननुभवती बृहन्नला तत्कारणं स्पष्टयति—

अन्वयः—गां जित्वा अपि राज्ञः विजयम् अपि उपलभ्य मे मनसि जयगतः प्रहर्षः नैवास्ति । यत् समरमूर्धनि दुःशासनं सन्निगृह्य बद्ध्वा अद्य विराटपुरं न प्रविष्टः ॥ ३१ ॥

मैंने इस स्त्री वेश में लज्जा का अनुभव करते हुये भी समस्त राजाओं के सामने धनुष आकृष्ट किया जिससे शत्रुओं को पाकर वाण वर्षा के दुर्दिनों में यात्रा होने लगी । उस समय बाण से आहत शत्रुओं के व्रण से निकली हुई रक्त धारा उनके शरीर में लगी धूलि से लिपट कर लथपथ हो कीचड़ का रूप धारण कर ली ॥ ३० ॥

यद्यपि मैंने गायों को शत्रुओं से छुड़ा लिया, विजय भी प्राप्त की किन्तु मेरे मन में विजय का आनन्द नहीं रहा क्योंकि युद्ध स्थल में आज दुःशासन को वन्दी बना कर विराट पुर में प्रवेश नहीं कर सका ।

दुःशासनं समरमूर्धनि सन्निगृह्य
बद्ध्वा यदद्य न विराटपुरं प्रविष्टः ॥ ३१ ॥

उत्तराप्रीतिदत्तालङ्कारेणालङ्कृतो व्रीडित इवास्मि राजानं द्रष्टुम् । तस्माद् विराटेश्वरं पश्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अये अयमार्यो युधिष्ठिरः,

सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ।
विमुक्तराज्योऽप्यभिवर्धितः श्रिया त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥३२॥

जित्वापीति—गाम्=विराटसम्बन्धिगोधनम् ; जित्वा=शत्रुहस्तादाच्छिद्य ; अपि ; राज्ञः=विराटस्य ; विजयं=शत्रुपराजयरूपमुत्कर्षम् ; उपलभ्य अपि ; मे=मम ; मनसि ; प्रहर्षः=आनन्दातिरेकः ; नैवास्ति ; तत्र कारणमुपपादयति—यत्=यस्मात् समरमूर्धनि=युद्धक्षेत्रे ; दुःशासनं सन्निगृह्य=गृहीत्वा ; बद्ध्वा=संयतं च कृत्वा ; अद्य विराटपुरं न प्रविष्टः =न प्रत्यागतः ; अयं भावः गोधनं परावर्त्यानीतेऽपि विजये लब्धेऽपि मम मनसि प्रहर्षो नास्ति यदहमद्य दुःशासनं वन्दिनं कृत्वा विराटपुरमानेतुं न प्राभवमित्यर्थः ॥ ३१ ॥

उत्तराप्रीतिदत्तालङ्कारेण=उत्तरया=विराटकन्यया प्रीत्या=प्रेम्णा दत्तेन अलङ्कारेण=भूषणविशेषेण ।

इदानीं विराटेश्वरं द्रष्टुमुपगता बृहन्नला तत्समीपे संस्थितं युधिष्ठिरं उपश्लोकयति—

अन्वयः—सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतः नरेश्वरः अपि ब्राह्मणवृत्तिम् आश्रितः विमुक्तराज्यश्रीः अपि श्रिया अभिवर्द्धितः त्रिदण्डधारी अपि दण्डधारकः न च ॥ ३२ ॥

उत्तरा द्वारा प्रेम से प्रदत्त आभूषणों से भूषित हो कर राजा के सामने जाने में मुझे लज्जा सी लग रही है । अच्छा तो विराटेश्वर के पास चलूँ । (चारों ओर देख कर) अरे । यह तो आर्य युधिष्ठिर हैं ॥ ३१ ॥

युवावस्था में होते हुये भी ये कठोर तप में निरत हैं । राजा होकर भी ब्राह्मण वृत्ति अपनाये हुये हैं, राज्य का परित्याग कर देने पर भी श्री युक्त हैं । त्रिदण्ड धारण कर भी किसी को दण्ड नहीं दे रहे हैं ॥ ३२ ॥

(उपगम्य) भअवं ! वन्दामि ।

[भगवन् ! वन्दे ।]

भगवान्—स्वस्ति ।

बृहन्नला—जेदु भट्टा ।

[जयतु भर्ता ।]

राजा—

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते ।
इदं हि रूपं परिभूतपूर्वकं तदेव भूयो बहुमानमागतम् ।। ३३ ।।

सयौवन इति—सयौवनः = युवावस्थायुक्तः ; श्रेष्ठतपोवने रतः = वृद्धजनोपयुक्ततपस्यापरायणः ; नरेश्वरः = राजा अपि ; ब्राह्मणवृत्तिम् = विप्राकारम् ; आश्रितः = अवलम्बमानः ; विमुक्तराज्यः = परित्यक्तराज्याधिकारः अपि श्रिया अभिवर्धितः = श्रीसंपन्नः ; त्रिदण्डधारी = संन्यासिधार्यदण्डत्रयधारणपरः अपि न दण्डधारकः न ; अत्र यः त्रिदण्डधारी सः कथं दण्डधारको वेति विरोधे दुष्टदमनपरो नेत्यर्थाद्विरोधपरिहारः ; अत्र विरोधाभासः स्फुटः ; वंशस्थवृत्तम् ।। ३२ ।।

राजा विराटस्तदानीमागतां बृहन्नलां दृष्ट्वा रूपकुले गर्हयन् कर्म प्रशंसति—.

अन्वयः—रूपम् अकारणम् । कुलम् अकारणं । महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते हि इदं परिभूतपूर्वकं रूपम् तदेव भूयः बहुमानमागतम् ।। ३३ ।।

(समीप जा कर)

भगवन् ! प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—कल्याण हो ।

बृहन्नला—जय हो महाराज की ।

राजा—गौरव में रूप कारण नहीं होता और न तो कुल कारण होता है, चाहे नीच हो या महान् उसका कर्म ही उसकी शोभा में कारण होता है । बृहन्नला का यह वही रूप है जिसे पहले अपमानित किया जाता था और वही आज उत्तम कार्य के कारण आदर का पात्र हो रहा है ।। ३३ ।।

बृहन्नले ! परिश्रान्तामपि भवतीं भूयः परिश्रमयिष्ये । उच्यता रणविस्तरः ।

बृहन्नला—सुणादु भट्टा ।

[शृणोतु भर्ता ।]

राजा—ऊर्जितं कर्म । संस्कृतमभिधीयताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुमर्हति महाराजः ।

(प्रविश्य)

भटः—जगतु महाराजः ।

अकारणमिति—रूपम्=स्वरूपातिशयः ; अकारणम्=आदरातिशयकारणं न भवति ; कुलम्=वंशगौरवम् ; अपि ; अकारणं=आदरहेतुर्न भवति । महत्सु=रूपकुलाभ्यामधिकेषु ; नीचेषु=रूपकुलाभ्यामपकृष्टेषु ; जनेषु च ; कर्म शोभते केवलमाचरणमेवादरस्य जनकं भवति न कुलरूपादिकमिति भावः ; हि इदम्=स्त्रैणम् ; परिभूतपूर्वकम्=स्त्रीत्वेन सर्वैरपि पूर्वमनादृतम् तदेव=अविपरीतं सदपि ; भूयः=पुनः कर्मप्रकर्षाद् बहुमानम्=अत्यादरजनकम् ; आगतम्=प्राप्तम् ; बृहन्नलायाः स्त्रैणं यद्रूपं प्रागुपेक्षाकारणमभूत्तदेव रूपं युद्धे विजयोपलब्ध्यनन्तरं सर्वैराद्रियते ; पुरुषार्थपरत्वात् ; तेन कुलरूपयोः महत्त्वं नास्तीत्यर्थः ; परिश्रान्तम्=युद्धे कृतपरिश्रमम् ; भूयः=पुनः ; परिश्रमिष्ये=श्रमार्थं प्रेरयामि ; ऊर्जितम्=ओजस्वि ; संस्कृतमभिधीयताम् ; संस्कृतभाषैव प्रयुज्यतामित्यर्थः ॥३३॥

बृहन्नले ! यद्यपि तुम परिश्रान्त हो, फिर भी मैं तुम्हें कष्ट देना चाहूँगा । रण का विस्तृत समाचार सुनाओ ।

बृहन्नला—सुनिये महाराज !

राजा—आज यशस्वी वस्तु का वर्णन करना है इसलिये संस्कृत में कहो ।

बृहन्नला—तो महाराज सुनें ।

(भट प्रविष्ट हो कर)

भट—जय हो महाराज की ।

राजा—

अपूर्व इव ते हर्षो ब्रूहि केनासि विस्मितः ।

भटः—

अश्रद्धेयं प्रियं प्राप्तं सौभद्रो ग्रहणं गतः ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथं गृहीतः । (आत्मगतम्)

तुलितबलमिदं सैन्यं परिगणितं च रणेऽद्य मे स दृष्टः ।
सदृश इह तु तेन नास्ति कश्चित् क इह भवेन्निहतेषु कीचकेषु ॥३५॥

अथापूर्वहर्षसमन्वितमागतं कञ्चिद्भटं दृष्ट्वा राजा पृच्छति—

अन्वयः—ते हर्षः अपूर्वः इव केन विस्मितः असि ॥ ३४½ ॥

अपूर्वं इति—ते = तव ; भटस्य हर्षः = आनन्दः ; अपूर्वः = अनिर्वचनीयः अन्यानन्दविलक्षणः इव ; केन = कारणेन ; विस्मितः = चकितः ; असि ; भटः उत्तरयति ॥ ३४½ ॥

अन्वयः—सौभद्रः ग्रहणं गतः इति अश्रद्धेयम् प्रियम् प्राप्तम् ॥ ३४½ ॥

अश्रद्धेयमिति—सौभद्रः = अर्जुनात्सुभद्रायां जातः अभिमन्युनामा ग्रहणं गतः = युद्धे बन्दीभूतः इति अश्रद्धेयम् = विश्वासानर्हम् अपि प्रियं प्राप्तमस्तीति शेषः । तेनातिदुर्लभप्रियप्राप्त्यैव मयानन्दोऽनुभूयते इत्याशयः ॥३४½॥

अन्वयः—अद्य मया इदं तुलितबलम् सैन्यम् परिगणितं । स च रणे अद्य मया दृष्टः तु इह तेन सदृशः कश्चित् न अस्ति अतः कीचकेषु निहतेषु इह तादृशः कः भवेत् ॥ ३५ ॥

राजा—तुम्हारा हर्ष अपूर्व है । किस कारण से इतने प्रसन्न हो ॥३४॥

भट—अविश्वसनीय प्रिय प्राप्त हो गया है । वह यह कि अभिमन्यु युद्ध में बन्दी बना लिये गये हैं ।

बृहन्नला—क्या पकड़ लिया गया ? (स्वगत)

आज मैंने सेना के बल की तुलना की थी और उसकी गणना भी की थी युद्ध करते समय अभिमन्यु को देखी भी थी । इस सेना में तो उसके जोड़ का कोई भी नहीं है । कीचकों के मारे जाने के बाद उसकी बराबरी का हो भी कौन सकता है ? ॥ ३५ ॥

भगवान्—बृहन्नले ! किमेतत् ।

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने तस्य जेतारं बलवाञ्छिक्षितस्तु सः ।
पितॄणां भाग्यदोषेण प्राप्नुयादपि धर्षणम् ॥ ३६ ॥

राजा—कथमिदानीं गृहीतः ।

तुलितमिति—अद्य मया इदम्=विराटसम्बन्धिसैन्यम् ; तुलितबलम्=परीक्षितशक्तिकम् । परिगणितम्=संख्यातम् ; स च=अभिमन्युः ; अद्य रणे । मे=अर्जुनेन दृष्टः=पराक्रमप्रदर्शनपरायणः साक्षात्कृतः ; तु इह=विराटसेनायाम् ; तेन सदृशः=अभिमन्युना तुल्यबलः ; कश्चिन् नास्ति ; कीचकेषु निहतेषु इह तादृशः कः भवेत् सत्सु कीचकेषु कदाचित्स्यादपि तत्तुलना एवं च तत्तुल्यवीरान्तराभावे कथमसौ गृहीत इत्यर्जुनपरितापविषयः ; पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३५ ॥

इदानीमभिमन्युजेतरि विराटेन परिपृष्टे बृहन्नला उत्तरयति—

अन्वयः—तु सः बलवान् शिक्षितश्च । तस्य जेतारं न जाने किन्तु पितॄणां भाग्यदोषेण धर्षणम् प्राप्नुयाद् अपि ॥ ३६ ॥

सः=अभिमन्युः ; बलवान्=महाबलः । शिक्षितः=रणकौशले प्राप्तगुरूपदेशश्च ; तस्य=अभिमन्योः ; जेतारम्=परिभवकर्त्तारं पुरुषं न जाने=नावगच्छामि । पितॄणाम्=अस्माकं पाण्डवानाम् ; भाग्यदोषेण=दैवप्रातिकूल्येन ; धर्षणम्=पराजयम् ; प्राप्नुयात्=लभेत ; अपि=एतत्संभाव्यते अपि संभाव्यते यदसौ सर्वथा बलशाली अपि पैतृकदोषादापदं प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ ३६ ॥

भगवान्—यह क्या बात है ?

बृहन्नला—भगवन् ! मैं अभिमन्यु के विजेता को नहीं जानती । अभिमन्यु बलवान् और सुशिक्षित तो है ही । हो सकता है कि अपने पिता के भाग्य दोष से अपमान प्राप्त कर लिया हो ॥ ३६ ॥

राजा—किस प्रकार वह पकड़ लिया गया ?

भटः—

रथमासाद्य निःशङ्कं बाहुभ्यामवतारितः।

राजा—केन ?

भटः—

यः किलैष नरेन्द्रेण विनियुक्तो महानसे ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—(अपवार्य) एवम् आर्यभीमेन परिष्वक्तः, न गृहीतः।

दूरस्था दर्शनादेव वयं सन्तोषमागताः।

इदानीं 'कथं गृहीत' इति राज्ञा पृष्टे भटः उत्तरयति—

अन्वयः—निःशङ्कम् रथम् आसाद्य बाहुभ्याम् अवतारितः।

निःशङ्कम्=निर्भयभावेन ; रथम्=अभिमन्युरथम् ; आसाद्य=संप्राप्य ; बाहुभ्याम्=भुजाभ्याम् ; अवतारितः=रथादधोनीतः ॥ ३७ ॥

केनावतारित इति पृष्टे भटः कथयति—

अन्वयः—यः किल एष नरेन्द्रेण महानसे विनियुक्तः।

यः किल एषः नरेन्द्रेण=भवता राज्ञा ; महानसे=पाकशालायाम् ; विनियुक्तः=अधिकृतः ; तेनैव बाहुभ्यामभिमन्युः गृहीतः ॥ ३७ ॥

एवम्=रथावतारणव्याजेन ; परिष्वक्तः=आलिङ्गितोऽभिमन्युः।

इदानीं भीमद्वारालिङ्गितेऽभिमन्यौ तं कृतार्थमभिमन्यमाना बृहन्नलाह—

अन्वयः—वयं सर्वे दूरस्था दर्शनादेव संतोषम् आगताः। तु सुव्यक्तकारिणा तेन पुत्रस्नेहः निर्विष्टः ॥ ३८ ॥

दूरस्था इति - वयं सर्वे=युद्धगताः भीमातिरिक्ताः पाण्डवा दूरस्थाः=विप्रकृष्टदेशे स्थिताः सन्तः तस्य दर्शनात् संतोषम्=तृप्तिम् आगताः ;

भट—किसी के द्वारा निःशङ्क भाव से रथ पर चढ़ कर वह उतार लिया गया ॥ ३७ ॥

राजा—किसके द्वारा ?

भट—वही जिसे आप ने अपनी पाकशाला में नियुक्त किया है ?

बृहन्नला—(संकेत से)—तो इस प्रकार आर्य भीमसेन ने उसे आलिङ्गित किया है। पकड़ा नहीं है।

दूर रह कर हम लोगों ने अभिमन्यु के दर्शनमात्र से सन्तोष कर

पुत्रस्नेहस्तु निर्विष्टस्तेन सुव्यक्तकारिणा ॥ ३८ ॥

राजा—तेन हि सत्कृत्य प्रवेश्यतामभिमन्युः ।

भगवान्—भो राजन् ! वृष्णिपाण्डवनाथस्याभिमन्योः पूजा भयादिति लोको ज्ञास्यति । तदवधीरणमस्य न्याय्यम् ।

राजा—नावधीरणमर्हति यादवीपुत्रः ।

कुतः—

पुत्रो ह्येष युधिष्ठिरस्य तु वयस्तुल्यं हि नः सूनुना
सम्बन्धो द्रुपदेन नः कुलगतो नप्ता हि तस्माद् भवेत् ।

सुव्यक्तकारिणा=सर्वजनसमक्षं बाहुभ्यां रथादवतारयता तेन=भीमेन । पुत्रस्नेहः निर्विष्टः=सुखेनानुभूतः ॥ ३८ ॥

सत्कृत्य=सादरम् ; प्रवेश्यताम्=मत्पुरः आनीयताम् ; वृष्णिपाण्डवनाथस्य=वृष्णयः=यादवाः पाण्डवाश्च ते नाथाः यस्य तादृशस्य ; अवधीरणम्=अनादरः । न्याय्यम्=युक्तम् ; एवमनादृतेऽभिमन्यौ भवान् वीतभयः प्रतीतो भवदिति भावः ; अवधीरयम्=अनादरम् ; न अर्हति=न युज्यते ; यादवीपुत्रः=सुभद्रानन्दनः ।

इदानीं अभिमन्योः सादरमानयने विराटः हेतुं प्रदर्शयति—

अन्वयः—हि एषः युधिष्ठिरस्य पुत्रः । तु (अस्य) वयः नः सूनुना तुल्यः । द्रुपदेन नः कुलगतः संबन्धः हि तस्मात् नः नप्ता भवेत् । हि नः

लिया—परन्तु सभी लोगों के सामने आर्य भीम ने अपने पुत्र स्नेह को कृतार्थ कर लिया ॥ ३८ ॥

राजा—इस कारण सत्कार पूर्वक अभिमन्यु को यहाँ बुलाओ ।

भगवान्—यदि आप यादव और पाण्डवों से सुरक्षित अभिमन्यु का सत्कार करेंगे तो लोग यही समझेंगे कि विराट डर कर सत्कार कर रहे हैं, अतः उनका तिरस्कार ही उचित जान पड़ता है ।

राजा—सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु तिरस्कार के योग्य नहीं है क्योंकि—

एक तो वह युधिष्ठिर का पुत्र है, दूसरे हमारे पुत्र की अवस्था का है । क्योंकि दूर से द्रुपद के साथ हमारा कुलक्रमागत सम्बन्ध है अतः वह हमारा

जामातृत्वमदूरतोऽपि च भवेत् कन्यापितृत्वं हि नः
पूजार्होऽप्यतिथिर्भवेत् स्वविभवैरिष्टा हि नः पाण्डवाः ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेतत् । वक्तव्यं परिहर्तव्यं च ।

राजा—अथ केनायं प्रवेशयितव्यः ?

अदूरतः जामातृत्वं अपि भवेत् यतः नः कन्यापितृत्वम् । अतिथिः पूजार्हः अपि भवेत् हि पाण्डवाः नः स्वविभवैः इष्टाः ॥ ३९ ॥

पुत्र इति—हि एषः=अयमभिमन्युः ; युधिष्ठिरस्य पुत्रः ; तु=पुनः ; अस्य=अभिमन्योः ; वयः=आयुः ; नः=अस्माकम् ; सूनुना=पुत्रेण ; उत्तरेण तुल्यम्=समानम् ; द्रुपदेन राज्ञा सह नः=अस्माकम् ; कुलगतः=वंशक्रमागतः संबन्धः=सख्यरूपः ; तस्मात्=द्रुपदसम्बन्धात् हि नः नप्ता=दौहित्रः भवेत् ; अदूरतः=अनतिचिरकालेन जामातृत्वम्=दुहितृपतित्वं चापि भवेत् ; यतः नः कन्यापितृत्वम् कन्याजनकत्वम् । अस्तीति शेषः ; अतिथिः=आगन्तुकः पूजार्हः=सर्वथा सत्कारयोग्यः भवेत् । पाण्डवाः नः=अस्माकम् स्वविभवैः जात्यधनैः इष्टाः ; एवमभिमन्योरादरणीयतायां वहुवः हेतवः सन्ति ; प्रथममयं युधिष्ठिरस्य पुत्रः ततो मम पुत्रस्य वयसा तुल्यः सखा ; द्रुपदसंबन्धेन दौहित्रः ; भावि जामाता, तत्रापि अतिथिः तत्रापि पाण्डवानां पुत्रः सर्वैरेभिः कारणैर्व्यस्तैरप्यभिमन्युरादरार्हः इति भावः ; शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३९ ॥

एवमेतत्=त्वदुक्तं युक्तमेव ; वक्तव्यं परिहर्तव्यम्=निन्दाप्रसङ्गो दूरीकरणीयाः ; येन निन्दा न भवेत्तथा करणीय इत्यर्थः ; चिरस्य खल्वाकांक्षितं=बहुकालात्प्रतीक्षमाणः ; नियोगः=आदेशः ।

नाती होता है । इतना ही नहीं मैं कन्या का पिता हूं, हो सकता है निकट भविष्य में हमारा दामाद बने ; इसके अतिरिक्त अतिथि का सत्कार करना चाहिये । पाण्डव अपनी समृद्धि के कारण हमारे इष्ट भी हैं ॥ ३९ ॥

भगवान्—आप का कहना ठीक है । मेरी बात "नहीं" मानी जा सकती है ।

राजा—अच्छा ! तो अभिमन्यु को कौन बुला कर लायेगा ।

भगवान्—बृहन्नलया प्रवेशयितव्यः ।

राजा—बृहन्नले ! प्रवेश्यतामभिमन्युः ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराजः । (आत्मगतम्) चिरस्य खल्वाकाङ्क्षितोऽयं नियोगो लब्धः । (निष्क्रान्ता ।)

भगवान्—(आत्मगतम्)

अद्येदानीं यातु सन्दर्शनं वा शून्ये दृष्ट्वा गाढमालिङ्गनं वा ।
स्वैरं तावद् यातु मुद्बाष्पतां वा मत्प्रत्यक्षं लज्जते ह्येष पुत्रम् ॥४०॥

युधिष्ठिरः स्वमनसि अभिमन्युगतमभिप्रायं विचारयति—

अन्वयः—अद्य इदानीं संदर्शनं यातु शून्ये दृष्ट्वा गाढम् आलिङ्गनं वा यातु वा तावद् स्वैरं मुद्बाष्पतां यातु वा हि एषः मत्समक्षं पुत्रं लज्जते ॥ ४० ॥

अद्येदानीमिति—अद्य इदानीम्=अस्मिन्प्रवेशकाले ; संदर्शनम्=पुत्रसाक्षात्कारं यातु ; शून्ये—एकान्तस्थाने ; दृष्ट्वा=पुत्रमालोक्य ; गाढमालिङ्गनं वा=गाढं पुत्राश्लेषं वा यातु=प्राप्नोतु ; वा तावद् स्वैरं=यथेच्छं ; मुद्बाष्पताम्=आनन्दजन्याश्रुपातत्वम् ; वा यातु ; एषः=अर्जुनः ; हि निश्चयेन ; मत्प्रत्यक्षम्=मम समक्षम् ; लज्जते=पुत्रालिङ्गनादौ जिह्रेतीत्यर्थः ; अयं भावः अस्मिन्नभिमन्युप्रवेशावसरे नियुक्तो अर्जुनः यथेच्छं पुत्रसुखमनुभवतु ; यतोऽयं मम समक्षं तथाकर्त्तुं शालीनतया लज्जते इति भावः ॥ ४० ॥

कुमारस्य=उत्तरस्य ; कर्म=लोकोत्तरं रणकौशलम् ।

भगवान्—यह बृहन्नला अभिमन्यु को बुला लायेगी ।

बृहन्नला—महाराज की जो आज्ञा (स्वगत) बहुत दिनों के बाद यह अभीष्ट आदेश मिला है । (जाता है)

भगवान्—(स्वगत) अब आज अर्जुन अपने पुत्र का दर्शन पावेगा अथवा एकान्त में देख कर गले लगावेगा अथवा यथेच्छ आनन्दाश्रु निसर्जित करेगा क्योंकि मेरे सामने वह पुत्र के प्रेम प्रति लज्जित रहता है ॥ ४० ॥

राजा—पश्यतु भवान् कुमारस्य कर्म ।

नृपा भीष्मादयो भग्नाः सौभद्रो ग्रहणं गतः ।
उत्तरेणाद्य संक्षेपादर्थतः पृथिवी जिता ॥ ४१ ॥

(ततः प्रविशति भीमसेनः ।)

भीमसेनः—

आदीपिते जतुगृहे स्वभुजावसक्ता
मद्भ्रातरश्च जननी च मयोपनीताः
सौभद्रमेकमवतार्य रथात्तु बालं
तं च श्रमं प्रथममद्य समं हि मन्ये ॥ ४२ ॥

इदानीं स्वपुत्रस्य रणकौशलं वर्णयन् विराट आह—

अन्वयः - भीष्मादयः नृपाः भग्नाः सौभद्रः ग्रहणं गतः अद्य उत्तरेण संक्षेपात् अर्थतः पृथ्वी जिता ॥ ४१ ॥

नृपा इति—भीष्मादयः नृपाः=राजानः ; भग्नाः=पराजिताः ; सौभद्रः=अभिमन्युः ; ग्रहणं गतः=गृहीतः बन्दीकृतो वा ; अद्य उत्तरेण=मम कुमारेण ; संक्षेपात्=समासेन ; अर्थतः=वस्तुतः पृथ्वी जिता ; भीष्मादीनां पराजयेन जगदेव जितमिति संक्षेपः ॥ ४१ ॥

अभिमन्युग्रहणेन तुष्टो भीमसेनः पूर्वकृतं पुरुषार्थं स्मरति—

अन्वयः—जतुगृहे आदीपिते स्वभुजावसक्ताः मद्भ्रातरः जननी च मया उपनीताः । अद्य एवं सौभद्रं बालम् रथात् अवतार्यः तं च प्रथमं च श्रमं हि समं मन्ये ॥ ४२ ॥

राजा—आप कुमार का कर्त्तव्य देखिये ।

उसने भीष्मादि समस्त राजाओं को पराजित किया । सौभद्र को बन्दी बनाया । संक्षेप में आज उत्तर ने पृथ्वी को जीत लिया ॥ ४१ ॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—लाक्षागृह में आग लगने पर मैंने अपने हाथों से उठा कर अपने भाइयों एवं माता को अन्यत्र ले गया । आज अभिमन्यु को रथ से उतार कर ले आया हूँ । उस समय के परिश्रम तथा आज के परिश्रम को तुल्य ही समझता हूँ ॥ ४२ ॥

इत इतः कुमारः ।

(ततः प्रविशत्यभिमन्युर्बृहन्नला च ।)

अभिमन्युः—भोः ! को नु खल्वेषः,

विशालवक्षास्तनिमार्जितोदरः स्थिरोन्नतांसोरुमहान् कटीकृशः ।
इहाहृतो येन भुजैकयन्त्रितो बलाधिकेनापि न चास्मि पीडितः ॥४३॥

आदीपिते इति—जतुगृहे=दुर्योधनकारिते लाक्षाभवने ; आदीपिते अग्निना प्रज्वालिते सति स्वभुजावसक्ता=आत्मनः भुजयोः स्थापिताः ; मद्भ्रातरः=युधिष्ठिरादयः; जननी=कुन्ती च नः माता; मया=भीमेन ; उपनीताः=स्थानान्तरं प्रापिताः ; हि=निश्चयेन अद्य तु एवं सौभद्रम्=अभिमन्युनामानम् ; बालम् रथादवतार्य=अवरोप्य ; तं च=अद्यतनम् ; प्रथमम्=प्राक्तनं च श्रमम् ; हि=निश्चयेन ; समम्=तुल्यं ; मन्ये=अवैमि ; पञ्चानां भ्रातॄणां मातुश्च वहने यादृशभारोऽनुभूतस्तदानीं इदानीं केवलस्याभिमन्योः रथादवतार्य भारोद्वहने तादृशः परिश्रमोऽनुभूयते इत्यहो सारवत्तास्य वपुषः इति भावः ; वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४२ ॥

अभिमन्युः तथा रथादवतारयन्तं तादृशं पुरुषं प्रति क एष इति विचारयति —

अन्वयः—विशालवक्षाः तनिमार्जितोदरः स्थिरोन्नतांसोरुमहान् कटीकृशः कः एव येन भुजैकयन्त्रितः इहाहृतः बलाधिकेन अपि पीडितः न चास्मि ॥ ४३ ॥

विशालेति विशालवक्षाः-विस्तृतोरस्कः ; तनिमार्जितोदरः तनिमा=कृशता युक्तः ; ऊर्जितः=मनोहरः उदरः यस्य सः कृशतायुक्तरमणीयोदरः ; स्थिरोन्नतांसः=दृढविपुलस्कन्धः ; ऊरुमहांश्च=सक्थिविपुलश्चेति भावः ।

(अभिमन्यु तथा बृहन्नला का प्रवेश)

अभिमन्यु—अरे ! यह कौन ?

इसका वक्षःस्थल विशाल है एवं कटि कृशता से युक्त है । ऊरु महान् है स्कन्ध ऊँचा तथा लम्बा हैं । यह मुझे एक ही हाथ से उठाकर यहाँ लाया किन्तु बलशाली होकर भी पीडित नहीं किया ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इत इतः कुमारः।

अभिमन्युः—अये अयमपरः कः,

अयुज्यमानैः प्रमदाविभूषणैः करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः।
लघुश्च वेषेण महानिवौजसा विभात्युमावेषमिवाश्रितो हरः ॥४४॥

अत्र द्वयोः विशेषणयोः कर्मधारयः; नीलपीतवत्; कटीकृशः = कृशमध्यः; कः एषः इति पूर्वेणान्वयः येन भुजैकयन्त्रितः = एकेन बाहुना संयतः; सन् इहाहृतः अत्रापहृतः; अहमस्मीति शेषः; बलाधिकेन = अधिकसामर्थ्यशालिनापि सता येन पीडितः न चास्मि। विपुलोरस्को मध्ये कृशश्चायं जनः कः यो मामेकेन बाहुनाऽत्र समानीतवान्; किन्तु बलाधिकः सन्नपि पीडां न दत्तवान्। वंशस्थवृत्तम् ॥ ४३ ॥

इदानीं विराटसन्निधौ नेतुमागतां बृहन्नलां दृष्ट्वा वितर्कयति अभिमन्युः—

अन्वयः—प्रमदाविभूषणैः अयुज्यमानैः करेणुशोभाभिः अर्पित गजइव वेषेण लघुः ओजसा महान् अयं कः यः उमावेषम् आश्रितः हर इव विभाति ॥ ४४ ॥

अयुज्यमानैः इति—प्रमदाविभूषणैः = स्त्रीविभूषणैः; अयुज्यमानैः = अनर्हैः; करेणुशोभाभिः = हस्तिनीशोभाभिः; अर्पितः = समर्पितः; गजः = हस्ती; इव = यथा; वेषेण = रूपवस्त्रालङ्कारादिना; लघुः = क्षुद्रः; ओजसा = तेजसा; महान् इव = श्रेष्ठ जन इव; उमावेषम् = पार्वतीस्वरूपम्; आश्रितः = संश्रितः हरः = महेश्वरः इव; अयं विभाति = प्रतिभाति ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—कुमार। इधर चलो।

अभिमन्यु—और यह दूसरा कौन है?

जिसे स्त्री के आभूषण भले नहीं प्रतीत होते जिस प्रकार किसी हाथी को हथिनी की शोभा वाले आभूषण अच्छे नहीं लगते। वेष इसका साधारण है किन्तु अपने ओज से यह महान् प्रतीत हो रहा है। ऐसा लगता है मानो महादेव ने उमा का वेष धारण किया हो ॥ ४४ ॥

बृहन्नला (अपवार्य) इममिहानयता किमिदानीमार्येण कृतम् ।

अवजित इति तावद् दूषितः पूर्वयुद्धे
दयितसुतवियुक्ता शोचनीया सुभद्रा ।
जित इति पुनरेनं रुष्यते वासुभद्रो
भवतु बहु किमुक्त्वा दूषितो हस्तसारः ।। ४५ ।।

(अपवार्य=पृथङ्निर्दिश्य यथान्ये न शृणुयुः) इममिति -अत्रास्यानयनं युक्तं नासीत् तत्कथं भवतात्रानीत इति जिज्ञासा ।

इदानीमस्यात्रानयने दोषं दर्शयति बृहन्नला --

अन्वयः---पूर्वयुद्धे अवजितः इति तावद् दूषितः दयितसुतवियुक्ता सुभद्रा शोचनीया पुनः जित इति एनं प्रति वासुभद्रः रुष्यते भवतु-बहु उक्त्वा किम् हस्तसारः दूषितः ।। ४५ ।।

अवजित इति—पूर्वंयुद्धे=प्रथमे जायमाने संग्रामे ; अवजितः पराजयं गत इति तावद् दूषितः=अभिमन्युः कलङ्कितः ; दयितसुतवियुक्ता=दयितेन=मया पत्या ; सुतेन-पुत्रेण अभिमन्युना वियुक्ता=विरहं गता ; सुभद्रा=अभिमन्युजननी ; शोचनीया=चिन्तनीया जातेति शेषः ; जितः=प्रथमे युद्धे पराजित इति हेतोः एनं प्रति=अभिमन्युं प्रति ; वासुभद्रः=श्रीकृष्णः ; रुष्यते=कुप्यति ; भवतु=दूरे तिष्ठतु ; तावदिह दोषत्रयमिति शेषः ; बहु उक्त्वा किम् अभिमन्युं निगृह्णता भवता बाहुसारः=आत्मभुजबलम् ; दूषितः दोषं गमितः ; अयंभावः अभिमन्युपराजये प्रथमे युद्धे तस्य पराजयकलङ्कः इत्येकः दोषः ; पतिपुत्रवियुक्ता सुभद्रा शोच्यत्वं नीतेति द्वितीयो दोषः ; अभिमन्युग्रहणेन कृष्णस्य कोपः इति तृतीयो दोषः ; अस्तु

बृहन्नला—(एकान्त में) आप ने अभिमन्यु को यहाँ ला कर क्या किया। जो प्रथम युद्ध में पराजित होने का इसे कलङ्क लगा, इतना ही नहीं पति और पुत्र से वियुक्ता सुभद्रा शोचनीय अवस्था से पड़ी होगी, इसके जीते जाने से वासुदेव रुष्ट होंगे । बहुत क्या कहें आप ने अपने हाथ के बल को भी कलंकित किया तात्पर्य यह कि इस प्रकार के अभिमन्यु के हरण से कलंक के अतिरिक्त आप को कुछ उपलब्ध नहीं हुआ ।। ५४ ।।

बृहन्नला—इत इतः कुमारः ।

अभिमन्युः—अये अयमपरः कः,

अयुज्यमानैः प्रमदाविभूषणैः करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः ।
लघुश्च वेषेण महानिवौजसा विभात्युमावेषमिवाश्रितो हरः ॥४४॥

अत्र द्वयोः विशेषणयोः कर्मधारयः ; नीलपीतवत् ; कटीकृशः = कृशमध्यः ; कः एषः इति पूर्वेणान्वयः येन भुजैकयन्त्रितः = एकेन बाहुना संयतः ; सन् इहाहृतः अत्रापहृतः ; अहमस्मीति शेषः ; बलाधिकेन = अधिकसामर्थ्यशालिनापि सता येन पीडितः न चास्मि । विपुलोरस्को मध्ये कृशश्चायं जनः कः यो मामेकेन बाहुनाऽत्र समानीतवान् ; किन्तु बलाधिकः सन्नपि पीडां न दत्तवान् । वंशस्थवृत्तम् ॥ ४३ ॥

इदानीं विराटसन्निधौ नेतुमागतां बृहन्नलां दृष्ट्वा वितर्कयति अभिमन्युः—

अन्वयः—प्रमदाविभूषणैः अयुज्यमानैः करेणुशोभाभिः अर्पित गजइव वेषेण लघुः ओजसा महान् अयं कः यः उमावेषम् आश्रितः हर इव विभाति ॥ ४४ ॥

अयुज्यमानैः इति—प्रमदाविभूषणैः = स्त्रीविभूषणैः ; अयुज्यमानैः = अनर्हैः ; करेणुशोभाभिः = हस्तिनीशोभाभिः ; अर्पितः = समर्पितः ; गजः = हस्ती ; इव = यथा ; वेषेण = रूपवस्त्रालङ्कारादिना ; लघुः = क्षुद्रः ; ओजसा = तेजसा ; महान् इव = श्रेष्ठ जन इव ; उमावेषम् = पार्वतीस्वरूपम् ; आश्रितः = संश्रितः हरः = महेश्वरः इव ; अयं विभाति = प्रतिभाति ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—कुमार । इधर चलो ।

अभिमन्यु—और यह दूसरा कौन है ?

जिसे स्त्री के आभूषण भले नहीं प्रतीत होते जिस प्रकार किसी हाथी को हथिनी की शोभा वाले आभूषण अच्छे नहीं लगते । वेष इसका साधारण है किन्तु अपने ओज से यह महान् प्रतीत हो रहा है । ऐसा लगता है मानो महादेव ने उमा का वेष धारण किया हो ॥ ४४ ॥

बृहन्नला (अपवार्य) इममिहानयता किमिदानीमार्येण कृतम् ।

अवजित इति तावद् दूषितः पूर्वयुद्धे
दयितसुतवियुक्ता शोचनीया सुभद्रा ।
जित इति पुनरेनं रुष्यते वासुभद्रो
भवतु बहु किमुक्त्वा दूषितो हस्तसारः ॥ ४५ ॥

(अपवार्य=पृथङ्निर्दिश्य यथान्ये न शृणुयुः) इममिति --अत्रास्यानयनं युक्तं नासीत् तत्कथं भवतात्रानीत इति जिज्ञासा ।

इदानीमस्यात्रानयने दोषं दर्शयति बृहन्नला --

अन्वयः---पूर्वयुद्धे अवजितः इति तावद् दूषितः दयितसुतवियुक्ता सुभद्रा शोचनीया पुनः जित इति एनं प्रति वासुभद्रः रुष्यते भवतु-बहु उक्त्वा किम् हस्तसारः दूषितः ॥ ४५ ॥

अवजित इति—पूर्वयुद्धे=प्रथमे जायमाने संग्रामे ; अवजितः पराजयं गत इति तावद् दूषितः=अभिमन्युः कलङ्कितः ; दयितसुतवियुक्ता=दयितेन=मया पत्या ; सुतेन-पुत्रेण अभिमन्युना वियुक्ता=विरहं गता ; सुभद्रा=अभिमन्युजननी ; शोचनीया=चिन्तनीया जातेति शेषः ; जितः=प्रथमे युद्धे पराजित इति हेतोः एनं प्रति=अभिमन्युं प्रति ; वासुभद्रः=श्रीकृष्णः ; रुष्यते=कुप्यति ; भवतु=दूरे तिष्ठतु ; तावदिह दोषत्रयमिति शेषः ; बहु उक्त्वा किम् अभिमन्युं निगृह्णता भवता बाहुसारः=आत्मभृणबलम् ; दूषितः दोषं गमितः ; अयंभावः अभिमन्युपराजये प्रथमे युद्धे तस्य पराजयकलङ्कः इत्येकः दोषः ; पतिपुत्रवियुक्ता सुभद्रा शोच्यत्वं नीतेति द्वितीयो दोषः ; अभिमन्युग्रहणेन कृष्णस्य कोपः इति तृतीयो दोषः ; अस्तु

बृहन्नला—(एकान्त में) आप ने अभिमन्यु को यहाँ ला कर क्या किया। जो प्रथम युद्ध में पराजित होने का इसे कलङ्क लगा, इतना ही नहीं पति और पुत्र से वियुक्ता सुभद्रा शोचनोय अवस्था में पड़ी होगी, इसके जीते जाने से वासुदेव रुष्ट होंगे । बहुत क्या कहें आप ने अपने हाथ के बल को भी कलंकित किया तात्पर्य यह कि इस प्रकार के अभिमन्यु के हरण से कलंक के अतिरिक्त आप को कुछ उपलब्ध नहीं हुआ ॥ ५४ ॥

भीमसेनः—अर्जुन ।

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्, अर्जुनपुत्रोऽयम् ।

भीमसेनः—(अपवार्य)

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान्
को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।
इष्टापत्या किन्तु दुःखे हि मग्ना
पश्यत्वेनं द्रौपदीत्याहृतोऽयम् ।। ४६ ।।

तावद्दोषत्रयं दूरे ; सर्वतो महानयं दोषः यत्स्वकीयपुत्रस्य पराजयो भवता घोषित इति प्रमुख दोषः इति भावः ।। ४५ ।।

अर्जुनपुत्रोऽयमिति कथनेन पराभवं प्रति तत्पित्रा रोषो व्यञ्जितः । भीमसेनः अभिमन्युनिग्रहे कारणं वदति—

अन्वयः अस्य निग्रहात् एतान् दोषान् जानामि । कः वा शत्रुहस्ते स्वपुत्रं मर्षयेत् किन्तु इदम् इष्टापत्या दुःखे मग्ना द्रौपदी एनं पश्यतु इति मया अयम् आहृतः ।। ४६ ।।

जानामीति—अस्याभिमन्योः निग्रहात्=अपमानाद् ; एतान्=त्वदुक्तान् ; दोषान् जानामि ; कः=पिता ; वा ; शत्रुहस्ते स्वपुत्रं मर्षयेत् ; तान् तान् दोषान् जानन्नपि कः पिता स्वपुत्रं शत्रुगतमभिनन्देत् । किन्तु इदम् इष्टापत्या=पुत्रवत्सला ; दुःखे मग्ना द्रौपदी इमं=अभिमन्युं ; पश्यतु इति हेतोः मयायमत्रानीत इत्याशयः ।। ४६ ।।

अभिभाषणकौतूहलम्=अभिमन्यु अभिभाषणकुतूहलम् ; वाचालयतु=वक्तुं प्रेरयतु ।

भीमसेन—अर्जुन !

बृहन्नला—और क्या और क्या ! यह अर्जुन का बेटा है ।

भीमसेन—(एकान्त में) अभिमन्यु के पकड़े जाने से उत्पन्न दोषों को मैं जानता हूं, कौन ऐसा होगा जो अपने पुत्र का शत्रु के हाथ में पकड़ा जाना पसन्द करे । परन्तु जान कर ही मैंने ऐसा किया कि दुःख में पड़ी पुत्रवत्सला द्रौपदी इसे देख सके ।। ४६ ।।

बृहन्नला-(अपवार्य) आर्य अभिभाषणकौतूहलं मे महत् । वाचालयत्वेनमार्यः ।

भीमसेनः—(अपवार्य) बाढम् ! अभिमन्यो !

अभिमन्युः—अभिमन्युर्नाम ।

भीमसेनः—कुप्यत्येष मया । त्वमेवैनमभिभाषय ।

बृहन्नला—अभिमन्यो !

अभिमन्युः—कथं कथम् । अभिमन्युर्नामाहम् । भोः—

नीचैरप्यभिभाष्यते नामभिः क्षत्रियान्वयाः ।
इहायं समुदाचारो ग्रहणं परिभूयते ।। ४७ ।।

इदानीम् अभिमन्युनाम्ना संबोधयन्तीं बृहन्नलामधिकृत्य तद्देशस्य समुदाचारं भर्त्सयति—अभिमन्युः—

अन्वयः—नीचैः अपि क्षत्रियान्वयाः नामभिः अभिभाष्यन्ते इह अयं समुदाचारः । नूनं ग्रहणं परिभूयते ।। ४७ ।।

नीचैरिति—नीचैः=स्त्रीप्रसाधनपाकादिसेवाकार्येषु लग्नैः । त्वादृशीभिः ; क्षत्रियान्वयाः=क्षत्रियकुलोद्भूताः मादृशाः नामभिः अभिभाष्यन्ते=नामग्राहं संबोध्यन्ते ; इह=विराटनगरे ; अयम्=एतादृशः ; समुदाचारः=व्यवहारः ; अत्र राज्ये नीचजना अपि राजकुमारान्नामग्राहं संबोधयन्तीति व्यवहारो विद्यते किमिति प्रश्नः उपहासाय ; पुनः स्वयमुत्त-

---

बृहन्नला—(एकान्त में अलग से) आर्य ! मुझे इससे बातें करने की बहुत उत्कण्ठा हो रही है तो आप इसे बोलने के लिये प्रेरित करें ।

भीमसेन—(एकान्त में अलग से) अच्छा अभिमन्यु ।

अभिमन्यु—क्या अभिमन्यु नाम लेते हैं ?

भीमसेन—यह मुझसे चिढ़ता है तुम्हीं इसे बातें करने को प्रेरित करो ।

बृहन्नला—अभिमन्यु !

अभिमन्यु—क्या क्या मेरा नाम अभिमन्यु (लेते हो) ।

नीच लोग क्षत्रिय कुमारों का नाम लेकर पुकारें क्या यहाँ का ऐसा शिष्टाचार है अथवा बंदी होने के कारण मुझे अपमानित किया जा रहा है ।। ४७ ।।

बृहन्नला—अभिमन्यो ! सुखमास्ते ते जननी ।

अभिमन्युः—कथं कथम् । जननी नाम ।

किं भवान् धर्मराजो मे भीमसेनो धनञ्जयः ।
यन्मां पितृवदाक्रम्य स्त्रीगतां पृच्छसे कथाम् ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! अपि कुशली देवकीपुत्रः केशवः ?

अभिमन्युः—कथं तत्रभवन्तमपि नाम्ना । अथ किम्, अथ किम् । कुशली भवतः संसृष्टः ।

रयति नूनं ग्रहणं = शत्रुवशप्राप्तिः परिभूयते = तिरस्क्रियते ; शत्रुवशवर्त्तित्वादहमेवं तिरस्कारमनुभवामीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

कथमिति—अयं मम मातुः कुशलं पृच्छतीति कोपावेशेन द्विरुक्तिः ।

इदानीं सुभद्राकुशलं पृच्छन्तीं बृहन्नलां सकोपं वदति अभिमन्युः —

अन्वयः—यत् मां पितृवद् आक्रम्य स्त्रीगतां कथां पृच्छसे अतः किं भवान् मे धर्मराजः । किं भीमसेनः किं वा धनञ्जयः अस्तीति ॥ ४८ ॥

किमिति—यत् = यस्मात्कारणात् ; माम् = अभिमन्युम् ; पितृवत् पिता इव ; आक्रम्य = लघूकृत्य ; स्त्रीगताम् = स्त्रीविषयाम् ; कथाम् = कुशलादिकम् ; पृच्छसे = जिज्ञाससे ; किं भवान् ; मे = मम; धर्मराजः = ज्येष्ठपाण्डवः युधिष्ठिरः ; किं वा भीमसेनः ; अथवा किं धनञ्जयः = अर्जुनोऽस्ति । ते एव तादृशं प्रश्नं कर्त्तुमर्हन्ति न च त्वादृशाः नीचाः अतो धिग्युष्मानिति अभिमन्योराशयः ॥ ४८ ॥

तत्र भवन्तम् = पूज्यं मम मातुलम् । नाम्ना व्याहरति = भगवदादि

बृहन्नला—अभिमन्यु ! तेरी माता सुखी तो है ?

अभिमन्यु—आप क्या हमारे धर्मराज, भीमसेन या धनञ्जय हैं, जो मुझ पर पिता जैसा अधिकार दिखा कर माता के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहे हैं ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या देवकीपुत्र केशव सकुशल हैं ।

अभिमन्यु—अरे यह तो पूज्य भगवान् का भी नाम ले कर पूछ रहा है और क्या ! और क्या ! आप के वह सम्बन्धी सकुशल है ।

(उभौ परस्परमवलोकयतः ।)

अभिमन्युः—कथमिदानीं सावज्ञमिव मां हस्यते ।

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् ।

पार्थं पितरमुद्दिश्य मातुलं च जनार्दनम् ।
तरुणस्य कृतास्त्रस्य युक्तो युद्धपराजयः ॥ ४६ ॥

अभिमन्युः—अलं स्वच्छन्दप्रलापेन ।

अलमात्मस्तवं कर्तुं नास्माकमुचितं कुले ।

आदरसूचकपदं विनैव ; संसृष्टः = सम्बन्धो ; सावज्ञम् = सतिरस्कारम् मामुद्दिश्येति शेषः ।

बृहन्नला इदानीं युद्धपराजितमभिमन्युं पृच्छति—

अन्वयः—पार्थम् पितरम् जनार्दनं मातुलं च उद्दिश्य तरुणस्य कृतास्त्रस्य युद्धपराजयः युक्तः किमिति शेषः ॥ ४९ ॥

पार्थमिति—पार्थम् = अर्जुनम् ; पितरम् = स्वजनकम् ; जनार्दनम् = वासुदेवम् ; मातुलं च उद्दिश्य = लक्षीकृत्य ज्ञात्वा वा ; तरुणस्य = युवावस्थासम्पन्नस्य ; कृतास्त्रस्य = अस्त्रविद्यायां निपुणस्य ; तव युद्धपराजयः = युद्धे पराभवः ; युक्तः = योग्यः किमिति ; रणे तव पराजयो न युक्त इति भावः ॥ ४६ ॥

स्वच्छन्दप्रलापेन = स्वेच्छया निरर्थकव्याहरणेन ।

आत्मस्तवमस्मत्कुलोचितन्नास्ति तथापि प्रसङ्गात्तथ्यमुद्घाटयानि—

अन्वयः—आत्मस्तवं कर्त्तुं अस्मत्कुलोचितं न । हि हतेषु शराम्

(दोनों परस्पर एक दूसरे को देखते हैं)

अभिमन्यु क्यों यह मेरी ओर देखकर तिरस्कार पूर्वक हंस रहे हैं ?

बृहन्नला—कुछ नहीं । क्या पिता पार्थ तथा मामा श्रीकृष्ण को याद करके नव युवक तथा युद्ध विशारद आप को पराजित होना चाहिये ? ॥ ४६ ॥

अभिमन्यु—बस स्वच्छन्द प्रलाप करना बन्द करो ।

अपनी प्रशंसा की रीति हमारे कुल में नहीं है फिर भी मारे गये

हतेषु हि शरान् पश्य नाम नान्यद् भविष्यति ॥ ५० ॥

बृहन्नला—(आत्मगतम्) सम्यगाह कुमारः ।

सरथतुरगदृप्तनागयोधे शरनिपुणेन न कश्चिदप्यविद्धः ।
अहमपि च परिक्षतो भवेयं यदि न मया परिवर्तितो रथः स्यात् ॥५१॥

पश्य । तत्र अन्यद् नाम न भविष्यति ॥ ५० ॥

अलमिति—आत्मस्तवम्=स्वकीयां प्रशंसाम् ; कर्त्तुमलम्=व्यर्थैव एतच्चास्माकं कुले न उचितम् । न कोऽपि मम कुले आत्मप्रशंसनं करोतीत्यर्थः । नन्वेवं त्वया युद्धे शौर्यं प्रकाशितमिति कथं जावे इत्यत्राह—हतेष्विति हतेषु=बाणपातनिहतेषु स्वसैन्येषु ; शरान्=शरीरसंलग्नबाणान् ; पश्य=निपुणमवलोकय ; तत्र अन्यद्=मम नामातिरिक्तं नामः ; न भविष्यति । युद्धे तव यावन्तः सैनिकाः मृताः तावन्तो मयैव मारितास्तत्र प्रमाणं तदङ्गसंलग्नबाणेषु ममैवाङ्कितं नाम दृश्यसे ; एतावतैव ज्ञायतामित्यर्थः ॥ ५० ॥

वृहन्नलाभिमन्युवचनं श्रुत्वा प्रशंसति—

अन्वयः—सरथतुरगदृप्तनागयोधे शरनिपुणेन कश्चिद् अपि अविद्धः न । अहमपि परिक्षतो भवेयम् यदि मया रथः परिवर्तितः न स्यात् ॥५१॥

सरथेति—सरथतुरगदृप्तनागयोधे रथाः=स्यन्दनाः तुरगाः=अश्वाः दृप्ताः=मदोन्मत्ताः नागाः=करिणः योधाः=निपुणवीराः तैः सहिते सैन्यसमुदाये इति शेषः ; शरनिपुणेन=बाणप्रयोगदक्षेण ; कुमारेणेति शेषः ; कश्चिद् अपि अविद्धः=अक्षतः न किन्तु विद्ध एवेत्यर्थः ; अहमपि परिक्षतः=विद्धः ; भवेयम्=जायेयं ; यदि मया रथः=स्वयानम् । परिव-

---

योद्धाओं के शरीर को देखिये बाणों पर दूसरे का नाम नहीं पाइयेगा ॥५०॥

बृहन्नला—(अपने मन में) कुमार ठीक कहते हैं।

रथ, तुरग, मदमत्त हस्ती तथा शूरों से युक्त सैन्य में कोई ऐसा नहीं रहा जिसे इस तीरन्दाज ने अपने बाणों से विद्ध नहीं किया हो। मैं भी घायल ही हो जाता यदि अपना रथ घुमा न लेता (प्रगट रूप में) तुम बोलने में बहुत दक्ष हो फिर पैदल के द्वारा ही किस प्रकार पकड़ लिये गये ॥ ५१ ॥

(प्रकाशम्) एवं वाक्यशौण्डीर्यम् । किमर्थं तेन पदातिना गृहीतः ।

अभिमन्युः—

अशस्त्रो मामभिगतस्ततोऽस्मि ग्रहणं गतः ।
न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यादर्जुनं पितरं स्मरन् ॥ ५२ ॥

भीमसेनः—(आत्मगतम्)

धन्यः खल्वर्जुनो येन प्रत्यक्षमुभयं श्रुतम् ।

तितः=पराङ्मुखः कृतः न स्यात् । अयं कुमारः बहुविक्रमशालीति सत्यमेवेति भावः ॥ ५१ ॥

वाक्यशौण्डीर्यम्=वाचनिकपराक्रमपरव्यापनपरत्वम् । पदातिना=पादचारिण । यदीदृशं तव युद्धकौशलं तदा पदातिनानेन कथं त्वं गृहीतः बृहन्नलाकृतोपहासोऽयम् ।

इदानीमभिमन्युः स्वग्रहणे हेतुं प्रदर्शयन्नाह—

अन्वयः—अशस्त्रः माम् अधिगतः ततः ग्रहणं गतः अस्मि । हि पितरम् अर्जुनं स्मरन् न्यस्तशस्त्रं कः हन्यात् ॥ ५२ ॥

अशस्त्र इति—अशस्त्रः=प्रहरणशून्यः अयम् ; माम् अभिगतः=मदभिमुखं प्राप्तस्ततः अहम् ग्रहणं गतोऽस्मि ; अर्जुनम्=एतन्नामकम् ; पितरं=जनकम् स्मरन् ; मादृशः कः न्यस्तशस्त्रम्=शस्त्ररहितम् ; हन्यात्=ताडयेत् ॥ ५२ ॥

अशस्त्रेषु हि मादृशः वीरपुत्राः न प्रहर्त्तुमिच्छन्तीति भावः ; वञ्चनेन गृहीतोऽहं न तु न्यायत इत्यर्थः ।

इदानीमर्जुनस्य प्रश्नपरिपाटीं श्रुत्वा भीमसेनः तं प्रशंसति—

अन्वयः—येन पुत्रस्य संग्रामेषु पराक्रमः पितुः च श्लाघ्यं इत्युभयं प्रत्यक्षं श्रुतम् सः अर्जुनः धन्यः खलु ॥ ५३ ॥

अभिमन्यु—शस्त्र रहित होकर मेरे सामने गये इस लिये मैं पकड़ा गया । पिता अर्जुन का ध्यान रख कर शस्त्र रहित पर प्रहार कौन करे ॥ ५२ ॥

भीमसेन—(स्वगत) अर्जुन धन्य हैं जिसने पुत्र का पराक्रम और

पुत्रस्य च पितुः श्लाघ्यं संग्रामेषु पराक्रमः ॥ ५३ ॥

राजा - त्वर्यतां त्वर्यतामभिमन्युः ।

बृहन्नला—इत इतः कुमारः । एष महाराजः । उपसर्पतु कुमारः ।

अभिमन्युः—आः कस्य महाराजः ।

बृहन्नला—न, न, ब्राह्मणेन सहास्ते ।

अभिमन्युः—ब्राह्मणेनेति । (उपगम्य) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—एह्येहि वत्स !

धन्य इति—येन=अर्जुनेन ; पुत्रस्य = अभिमन्योः पराक्रमः ; पितुः= स्वस्य च ; श्लाघ्यम्=प्रशंसाम् ; इत्युभयं प्रत्यक्षम् श्रुतम्=स्वयमाकर्णितम् ; स अर्जुनः धन्यः खलु निश्चयार्थकबोधकमव्ययपदम् ; त्वर्यताम्—त्वरया राजसमीपमानीयताम् । संभ्रमे द्विरुक्तिः ॥ ५३ ॥

आः—क्रोधाभिव्यञ्जकपदमिदम् । कस्य महाराज इत्युक्त्या स्वस्य तदाज्ञानुवर्तित्वनिषेधः व्यज्यते ।

अभिवादये—प्रणामोऽयं ब्राह्मणं प्रति न तु राजानं प्रति । तेनाभिमन्योः गर्वातिशयः व्यज्यते ।

उसके पिता की प्रशंसा दोनों प्रत्यक्ष सुन ली ॥ ५३ ॥

राजा—तो अभिमन्यु को बुला लाइये ।

बृहन्नला-कुमार ! इधर चलिये । यही महाराज हैं, आप उसके पास चलें ।

अभिमन्यु—आः किसके महाराज !

बृहन्नला—नहीं नहीं ब्राह्मण के साथ हैं ।

अभिमन्यु—ब्राह्मण के साथ । (समीप जा कर) भगवान् ! प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—आओ वत्स आओ ।

शौण्डीर्यं धृतिविनयं दयां स्वपक्षे
माधुर्यं धनुषि जयं पराक्रमं च ।
एकस्मिन् पितरि गुणानवाप्नुहि
त्वं शेषाणां यदपि च रोचते चतुर्णाम् ॥ ५४ ॥

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! कथं न मामभिवादयसि । अहो उत्सिक्तः खल्वयं क्षत्रियकुमारः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि । अथ केनायं गृहीतः ।

इदानीं युधिष्ठिरः अभिमन्युं आशीर्भिरभिवर्द्धयति—

अन्वयः—शौण्डीर्यं धृतिविनयं दयां स्वपक्षे माधुर्यं धनुर्विजयं पराक्रमं च त्वम् एतान् गुणान् एकस्मिन् स्वपितरि अवाप्नुहि शेषाणां चतुर्णां च यद् रोचते तदपि अवाप्नुहि ॥ ५४ ॥

शौण्डीर्यमिति—शौण्डीर्यम्=विक्रमशालिताम् शूरत्वं वा धृतिविनयम्=धैर्यविनयम्; समाहारे नपुंसकम्; स्वपक्षे=आत्मीये जने । दयाम्=कृपाम् । माधुर्यम्=मिष्टभाषित्वम्; च धनुषि जयं पराक्रमं च इति त्वम् एतान् गुणान् एकस्मिन् स्वपितरि संस्थिताम् । अवाप्नुहि=अधिगच्छ; शेषाणाम्=धनञ्जयातिरिक्तानां; चतुर्णां पितृणां गुणेषु यत्ते रोचते=स्वदते; तदपि अवाप्नुहि; प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ५४ ॥

उत्सिक्तः=गर्वोद्धतः; दर्पशमनं करोमि=मिष्टभाषणैरिति शेषः ।

शूरता—धीरता, नम्रता, कृपालुता, बन्धुओं के प्रति मिष्ट भाषणता आदि जितने भी गुण हैं उन्हें तुम अपने पिता से प्राप्त करो । शेष चारों पिताओं के वर्त्तमान गुणों में जो तुम्हें रुचिकर प्रतीत हो उसे प्राप्त करो ॥ ५४ ॥

अभिमन्यु—अनुगृहीत हुआ !

राजा—आओ बेटा ! आओ । तुम मुझे प्रणाम क्यों नहीं करते । अहो यह क्षत्रियकुमार बड़ा अभिमानी है तो मैं इसका अहङ्कार दूर करता हूँ अच्छा, इसे पकड़ा किसने ।

भीमसेनः—महाराज ! मया ।

अभिमन्युः—अशस्त्रेणेत्यभिधीयताम् ।

भीमसेनः—शान्तं शान्तं पापम् ।

सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ ।
तावाश्रित्य प्रयुध्येयं दुर्बलैर्गृह्यते धनुः ॥ ५५ ॥

अभिमन्युः मा तावद् भोः,

बाहुरक्षौहिणी यस्य निर्व्याजो यस्य विक्रमः ।

भीमः स्वभुजावेव प्रहरणं मन्यमानोऽन्यत्प्रहरणं निन्दयन् आह—

अन्वयः - पीनांसकोमलौ भुजौ मे सहजौ प्रहरणम् । तौ आश्रित्य प्रयुध्येयम् । दुर्बलैः धनुः गृह्यते ॥ ५५ ॥

सहज इति—पीनांसकोमलौ=स्थूलांसयुक्तौ कोमलौ च; इमौ=प्रदृश्यमाणौ । भुजौ=बाहू ; एव मे=मम ; सहजौ=सहजातौ ; प्रहरणम्=प्रकृष्टं शस्त्रम् ; तौ=भुजौ एव ; आश्रित्य=साधनीकृत्य ; प्रायुध्येयम्=युद्धं कुर्याम् ; धनुः दुर्बलैः गृह्यते=आश्रीयते ॥ ५५ ॥

येषां स्वाभाविकं बाहुबलं न भवति, ते कृत्रिमसाधनभूतमायुधमाश्रित्य युध्यन्ते । अहं तु बाहुभ्यामेव युध्ये । तेनाशस्त्रेणेति कथनं मद्विषये नोपयुक्तमित्यर्थः ।

इदानीं तादृशलक्षणयुक्तं तं भीमसेनं मत्वा चकितचकितः अभिमन्युः जिज्ञासते—

अन्वयः—यस्य बाहुः अक्षौहिणी, यस्य विक्रमः निर्व्याजः किं भवान्

भीमसेन—महाराज मैंने ।

अभिमन्यु—शस्त्र रहित हो कर पकड़ा ऐसा कहिये ।

भीमसेन—बस बस ! आप शान्त हो ।

मोटे कंधों वाले ये मेरे कोमल हाथ ही मेरे स्वाभाविक अस्त्र हैं । इन्हीं हाथों से मैं लड़ने में सशक्त हूँ धनुष तो दुर्बलों का अस्त्र है ॥ ५५ ॥

अभिमन्यु—ऐसा मत कहो ।

जिनकी भुजायें अक्षौहिणी सेना के बराबर हैं और जिनका पराक्रम

किं भवान् मध्यमस्तातस्तस्यैतत् सदृशं वचः ॥ ५६ ॥

भगवान्— पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ।

अभिमन्युः—श्रूयताम् । अथवा, नन्वनुत्तरा वयं ब्राह्मणेषु, साध्वन्यो ब्रूयात् ।

राजा— भवतु भवतु । मद्वचनात् पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् । येन,

योक्त्रयित्वा जरासन्धं कण्ठश्लिष्टेन बाहुना ।

मध्यमः तातः । एतद् वचः तत्सदृशम् ॥ ५६ ॥

बाहुरिति—यस्य बाहुरेव ; अक्षौहिणी=अक्षौहिणीप्रमाणा सेना ; यस्य विक्रमः=पराक्रमः ; निर्व्याजाः=निष्कपटाः ; एतादृशः किं भवान् मध्यमस्तातः=भीमसेनः ; एतद्=पूर्वोक्तम् ; वचः=वचनम् ; तस्य सदृशम्=तस्योपयुक्तम् । न तु अन्यस्य । स एव हि बाहुभ्याम् योद्धुं क्षमः । न भवानिति भावः ॥ ५६ ॥

अनुत्तरा=अप्रतिवचना । ब्राह्मणवचनं वयं न निरुन्ध्मः । पूज्यत्वेन हेतुना ब्राह्मणवचनं नाक्षिपाम इत्यर्थः । यदिदं ब्राह्मणादन्यः कोप्यन्यो ब्रूयात्तदा वयमुत्तरदाने लब्धावसराः भवेम इत्यर्थः ।

अभिमन्युर्मध्यमतातस्य परिचयं ददान आह—

अन्वयः—(येन) कण्ठश्लिष्टेन बाहुना जरासन्धं योक्त्रयित्वा तत् असह्यं कर्म कृत्वा कृष्णः अतदर्हताम् नीतः ॥ ५७ ॥

योक्त्रयित्वेति—(येन भीमसेनेन) कण्ठश्लिष्टेन=उत्कण्ठासक्तेन ; बाहुना=भुजेन ; जरासन्धम्=एतन्नामकं वृहद्रथपुत्रं मगधेशम् ; योक्त्रयित्वा=बद्धं विधाय ; तत्=अनिर्वचनीयं ; असह्यम्=अनितरसंपाद्यम् ; कर्म=जरासन्धबन्धवधात्मकम् कार्यम् ; कृत्वा कृष्णः अतदर्हताम्=तादृश-

---

सर्वथा निष्कपट हैं क्या आप वही हमारे मध्यम पिता भीमसेन हैं । ऐसा कहना तो उन्हीं को शोभा देता है ॥ ५६ ॥

भगवान्—पुत्र ! तुम्हारे यह मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिये—जिन्होंने अपनी भुजा से जरासन्ध को कण्ठ में बाँध

असह्यं कर्म तत् कृत्वा नीतः कृष्णोऽतदर्हताम् ॥ ५७ ॥

राजा—

न ते क्षेपेण रुष्यामि रुष्यता भवता रमे ।
किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठति यात्विति ॥ ५८ ॥

अभिमन्युः—यद्यहमनुग्राह्यः,

पादयोः समुदाचारः क्रियतां निग्रहोचितः ।
बाहुभ्यामाहृतं भीमो बाहुभ्यामेव नेष्यति ॥ ५९ ॥

कार्याक्षमताम् ; नीतः प्रापितः । अमितबलशालिना येन जरासन्धं कण्ठे प्रवध्य कृष्णोऽपि निम्नतां नीतः स मे मध्यमस्तात इत्यर्थः ॥ ५७ ॥

विराटोऽभिमन्युवचनं श्रुत्वा तत्र स्वसम्मतिदानपुरःसरं कथयति—

अन्वयः—ते क्षेपेण न रुष्यामि रुष्यता भवता रमे कथं तिष्ठतु यातु इत्युक्त्वा अहम् न अपराद्धः किम् ॥ ५८ ॥

न ते इति—ते=तव अभिमन्योः ; क्षेपेण=निन्दावचनेन ; न रुष्यामि=न कुपितो भवामि, किंतु रुष्यता=कुप्यता भवता ; रमे=प्रीतो भवामि ; कथमत्र वर्त्तताम् । किमर्थं तिष्ठतु यथेच्छं यातु=गच्छतु ; इत्युक्त्वा अहम् न अपराद्धः किम्=अपराधी न स्याम् किम् । त्वद्गमनानुज्ञां दत्वाप्यहमपराधी भवेयमतस्तथा नाचरामीत्यर्थः । आदेशकरणेऽसमर्थोऽस्मीति भावः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—निग्रहोचितः पादयोः समुदाचारः क्रियतां । भीमः बाहुभ्याम् आहृतं मां बाहुभ्याम् एव नेष्यति ॥ ५९ ॥

पादयोरिति—निग्रहोचितः=बन्दिजनोपयुक्तः ; पादयोः=चरणयोः ;

कर वह असाध्य कार्य (जरासंध वध) कर कृष्ण की तद्विषयक असमर्थता सिद्ध कर दी ॥ ५७ ॥

राजा—तुम्हारे निन्दा वचनों से मैं चिढ़ता नहीं हूँ । तुम्हारे चिढ़ने से मुझे आनन्द मिलता है—'तुम क्यों खड़े हो जाओ' यदि मैं ऐसा कहूँ तो क्या मैं तुम्हारे विषय में अपराधी न बनूँगा ? ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—आप यदि मुझ पर कृपा ही करना चाहते हैं तो बन्दीजन के योग्य बेडियाँ हमारे पैरों में पहनवा दीजिये । मुझे कोई हाथों से पकड़ लाया है । मेरे मध्यम तात भीम मुझे अपने हाथों से छुड़ा ले जायेंगे ॥५९॥

(ततः प्रविशत्युत्तरः)

उत्तरः—

मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्तिः ।
अहं हि युद्धाश्रयमुच्यमानो वाचानुवर्ती हृदयेन लज्जे ॥ ६० ॥

(उपसृत्य) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

समुदाचारः=व्यवहारः निगडप्रापणरूपो ; क्रियतां=विधीयताम् ; भीमः= मम मध्यमः पिता, बाहुभ्यां ; आहृतं=नीतं ; माम्=अभिमन्युं बाहुभ्यामेव ; नेष्यति=निगडमुक्तं कृत्वा अतो नेष्यति, स्वगृहं प्रापयिष्यते ॥५९॥

इदानीं राज्ञः सन्निधौ प्रविशन्नुत्तरः मिथ्याप्रशंसां निन्दति—

अन्वयः—तु येषां मिथ्यावचनेषु भक्तिः तेषां मिथ्याप्रशंसा कष्टा नाम खलु । अहं हि युद्धाश्रयम् उच्यमानः वाचानुवर्त्ती हृदयेन लज्जे ॥ ६० ॥

मिथ्येति—येषाम्=बन्दिचारणादीनाम् । मिथ्यावचनेषु=असत्यप्रशंसाभिधानेषु; भक्तिः तेषाम् मिथ्याप्रशंसा=असत्यास्तुतिः ; कष्टा=दुःखदा ; नाम खलु । अहं हि युद्धाश्रयम्=उत्तरेण कौरवा जिता इत्यादि युद्धगतं प्रशंसावचनम् अभिधीयमानः सन् वाचानुवर्त्ती=मुखेनाभिनन्दयामि ; किन्तु हृदयेन लज्जे=जिह्रेमि ; नास्ति ममासत्यप्रशंसावचनेषु प्रीतिरित्यर्थः ॥ ६० ॥

कृतकर्माणः=प्रदर्शितपराक्रमाः ; योधपुरुषाः=योद्धारः । पूज्यतमस्य=सातिशयपूजार्हस्य ।

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—मिथ्या प्रशंसा बहुत कष्टप्रद होती है । इन वन्दियों को भाषण का अभ्यास रहता है । वे युद्ध के संबंध में मेरी बड़ाई करते हैं । मैं भी वाणी से उनका अनुमोदन करता हूँ, किन्तु हृदय से लज्जित हो जाता हूँ ॥ ६० ॥

(समीप जाकर) भगवन् ! प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—कल्याण हो ।

उत्तरः—तात ! अभिवादये ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! आयुष्मान् भव । पुत्र ! पूजिताः कृतकर्माणो योधपुरुषाः ?

उत्तरः—पूजिताः । पूज्यतमस्य क्रियतां पूजा ।

राजा—पुत्र ! कस्मै ?

उत्तरः—इहात्रभवते धनञ्जयाय ।

राजा—कथं धनञ्जयायेति ।

उत्तरः—अथ किम् । अत्रभवता,

श्मशानाद्धनुरादाय तूणी चाक्षयसायके ।
नृपा भीष्मादयो भग्ना वयं च परिरक्षिताः ॥ ६१ ॥

उत्तरः धनञ्जयस्य प्रकृष्टपूजार्हतां सूचयन् राजानं प्रत्याह—

अन्वय:—अत्र भवता श्मशानात् धनुः अक्षयसायके तूणी च आदाय भीष्मादयः नृपा भग्नाः वयं परिरक्षिताः च ॥ ६१ ॥

श्मशानादिति—अत्र भवता=पूज्येन धनञ्जयेन ; श्मशानात् धनुः=गाण्डीवनामकम् ; अक्षयसायके=अक्षीणबाणे ; तूणी=तूणीरयुगलं च ; आदाय=गृहीत्वा, भीष्मादयः नृपा भग्नाः=पराजिताः ; वयं च परिरक्षिताः=गोपिताः ; अतोऽयं धनञ्जयः प्रकृष्टपूजां लभतामित्यर्थः ॥६१॥

उत्तर—पिता जी मैं प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ बेटा ! आओ । चिरंजीवी होओ । बेटा ! क्या युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करने वाले वीरों का सत्कार सम्पन्न हो गया ।

उत्तर—सम्पन्न हो गया । अब सर्वाधिक पूज्य की पूजा कीजिये ।

राजा - किसकी पूजा करने को कहते हो ?

उत्तर - इन पूज्य धनञ्जय की ।

राजा—क्या धनञ्जय की ।

उत्तर—और क्या इन पूज्य धनञ्जय ने ।

श्मशान से अपना धनुष तथा दोनों अक्षय तरकस लाकर भीष्म आदि नृपतियों को परास्त कर दिया, तथा हम लोगों की रक्षा की ॥ ६१ ॥

राजा—एवमेतत् ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ।

अयं बाल्यात्तु सम्भ्रान्तो न वेति प्रहरन्नपि ।
कृत्स्नं कर्म स्वयं कृत्वा परस्येत्यवगच्छति ।। ६२ ।।

उत्तरः—व्यपनयतु भवाञ्छङ्काम् । इदमाख्यास्यते,

प्रकोष्ठान्तरसंगूढं गाण्डीवज्याहतं किणम् ।

बृहन्नला स्वयं कृतं शत्रुपराभवं निगूहितुं राजानमाह—

अन्वयः—अयं तु बाल्यात् संभ्रान्तः प्रहरन् अपि न वेत्ति स्वयं कृत्स्नं कर्म कृत्वा परस्य इति अवगच्छति ।। ६२ ।।

अयमिति—अयम्=उत्तरः ; बाल्यात् = शिशुत्वात् ; संभ्रान्तः= अतिव्यग्रः ; तेन स्वयं प्रहरन् अपि = शत्रुषु प्रहारं कुर्वन् अपि ; न वेत्ति = आत्मकृतान् प्रहारान् न जानाति ; कृत्स्नम्=सकलं ; कर्म=युद्धविजयरूपं कर्म ; स्वयम् कृत्वा परस्य इति अवगच्छति=परेणैव विजयः कृतः इति मन्यते ।। ६२ ।।

अनेन स्वयं परान् प्रहृत्य विजयोऽवाप्त इति भावः ।

उत्तरः साभिज्ञानं तत्करस्थ व्रणचिह्नेन बृहन्नलां धनञ्जयत्वेन प्रख्यापयति—

अन्वयः—इदम् प्रकोष्ठान्तरसंगूढं गाण्डीवज्याहतं किणम् यद् (दृश्यते) तद् द्वादशवर्षान्ते अपि सवर्णताम् नैव याति ।। ६३ ।।

प्रकोष्ठेति—इदम् प्रकोष्ठान्तरसंगूढम्=मणिबन्धेऽन्तर्हितम् ; गाण्डीव-

---

राजा– ऐसी बात है ।

वृहन्नला— दया करें महाराज ? दया करें ।

यह लड़कपन के कारण घबड़ा गये हैं, स्वयं अपने द्वारा शत्रुओं पर प्रहार करके भी भूल रहे हैं, सारी लड़ाई अपने लड़े फिर भी समझते हैं कि कोई दूसरा लड़ा है ।। ६२ ।।

उत्तर—आप शङ्का दूर करें ।

इनके कलाई पर गाण्डीव की प्रत्यञ्चा से उत्पन्न यह किण (गांठ) बता

तत्तद् द्वादशवर्षान्ते नैव याति सवर्णताम् ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—

एतन्मे पारिहार्याणां व्यावर्तनकृतं किणम् ।
सन्निरोधविवर्णत्वाद् गोधास्थानमिहागतम् ॥ ६४ ॥

राजा—पश्यामस्तावत् ।

ज्याहतम् = गाण्डीवप्रत्यञ्चाघातेनजातम् ; किणम् = रूढव्रणम् । यद् दृश्यते तद् द्वादशवर्षान्ते अपि सवर्णताम् = प्रकोष्ठतुल्यरूपताम् नैव याति = नैव गच्छति ; प्रकोष्ठस्थ गाण्डीवज्याघातव्रणं बहुकाले व्यतीतेऽपि स्वं रूपं न मुञ्चतीत्याशयः ॥ ६३ ॥

बृहन्नला ज्याघातकिणं निगूहितुं प्रकारान्तरेण तदुत्पत्ति सूचयति—

अन्वयः—इह एतद् मे (हस्ते) परिहार्याणां सन्निरोधविवर्णत्वात् गोधास्थानम् आगतम् व्यावर्त्तनकृतं किणं विद्यते ॥ ६४ ॥

एतदिति—इह = ममहस्ते ; परिहार्याणाम् = वलयानाम् ; सन्निरोधविवर्णत्वात् = सम्यग्बन्धनकृतवर्णभेदात् ; गोधास्थानम् = ज्याघातवारणस्थलम् । प्रकोष्ठदेशे आगतम् ; व्यावर्त्तनकृतं = विविधपरिवर्त्तनजन्यम् ; किणम् = व्रणचिह्नं ; विद्यते ; न तु धनुश्चालनसमुत्पन्नम् । इदं हि धारितवलयानां विवर्त्तनजं किणं विद्यते न तु गाण्डीवज्याघातजं चिह्नमिति ज्ञायताम् ; परिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रिया'मित्यमरः ॥ ६४ ॥

पश्यामः = निपुणं निरीक्ष्य कीदृशमिदं व्रणमिति निर्धारयामः ।

रहा है कि ये धनञ्जय हैं । यह चिह्न बारह वर्ष बीत जाने पर भी शरीर के त्वचा से भिन्न वर्ण का है, अभी भी एक वर्ण का नहीं है ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—यह मेरे वलयों के घिसने से उत्पन्न हुआ है, वलयों के बारम्बार हिलते-डुलते रहने के कारण प्रकोष्ठ स्थान तक आ गये हैं ॥ ६४ ॥

राजा—अच्छा तो हम देखें ।

बृहन्नला—

रुद्रबाणावलीढाङ्गो यद्यहं भारतोऽर्जुनः ।
सुव्यक्तं भीमसेनोऽयमयं राजा युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥

राजा—भो धर्मराज ! वृकोदर ! धनञ्जय ! कथं न मां विश्वसिथ । भवतु प्राप्तकाले । बृहन्नले ! प्रविश त्वमभ्यन्तरम् ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराजः ।

भगवान्—अर्जुन ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । तीर्णप्रतिज्ञा वयम् ।

बृहन्नलेदानीं सर्वात्मना स्वस्य भ्रातृणां च परिचयं ददन्नाह—

अन्वयः—यदि अहं रुद्रबाणावलीढाङ्गः भारतः अर्जुनः तदा सुव्यक्तं अयं भीमसेनः अयं च राजा युधिष्ठिरः (इत्यवगच्छ) ॥ ६५ ॥

रुद्रबाणेति—यदि अहम्=बृहन्नला ; रुद्रबाणावलीढाङ्गः=महादेवशरक्षतगात्रः ; भारतः=भरतवंशीयः ; अर्जुनः=पार्थः ; तदा सुव्यक्तम्=संस्फुटम् । अयं भीमसेनः तथा अयं राजा युधिष्ठिरः इत्यवगच्छ ॥ ६५ ॥

अयं भावः यदि मां शिवबाणक्षतवपुषं भरतवंशीयं पार्थमवगच्छसि तदा अमुम् भीमसेनं, अमुं च युधिष्ठिरं निश्चितरूपेणावगच्छेति भावः । कथं न मां विश्वसिथ आत्मगोपनं कृत्वा मयि अविश्वासं प्रकटयथ । व्यवहारेण भवद्भिर्मयि विश्वासो न व्यज्यते इत्याशयः । तीर्णप्रतिज्ञाः समाप्ताज्ञातवासकालाः अतोऽवसरोऽयमात्मप्रकाशनस्य तदधुना न युक्तो अभ्यन्तरप्रवेश इत्यर्थः ।

बृहन्नला—महादेव के बाणों से क्षताङ्ग मैं यदि भरतवंशी अर्जुन हूँ तो निश्चय रूप से ये भीमसेन हैं और यह राजा युधिष्ठिर हैं ॥ ६५ ॥

राजा—अरे भाई ! धर्मराज, वृकोदर और धनञ्जय मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करते ? अच्छी बात है । अब समय हो गया है बृहन्नले ! तुम अन्दर जाओ ।

बृहन्नला—महाराज की जो आज्ञा ।

भगवान्—अर्जुन ! अन्दर मत जाओ हम लोग जो अज्ञातवास पूर्ण कर चुके ।

अर्जुनः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

राजा—

शूराणां सत्यसन्धानां प्रतिज्ञां परिरक्षताम् ।
पाण्डवानां निवासेन कुलं मे नष्टकल्मषम् ॥ ६६ ॥

अभिमन्युः—इहात्रभवन्तो मे पितरः । तेन खलु,

न रुष्यन्ति मया क्षिप्ता हसन्तश्च क्षिपन्ति माम् ।
दिष्टया गोग्रहणं स्वन्तं पितरो येन दर्शिताः ॥ ६७ ॥

(भीमसेनमुद्दिश्य) भोस्तात !

इदानीं राजा पाण्डवानां निवासेनात्मानं कृतकृत्यं मन्यमान आह—

अन्वयः—शूराणां सत्यसंधानां प्रतिज्ञां परिरक्षताम् पाण्डवानां निवासेन मे कुलं नष्टकल्मषम् ॥ ६६ ॥

शूराणामिति—शूराणाम्=वीर्यशालिनाम् ; सत्यसन्धानाम्=सत्यपरायणानाम् ; प्रतिज्ञाम्=शपथम् ; अज्ञातवासरूपमित्यर्थः ; परिरक्षताम्=प्राणपरेण पालयताम् ; पाण्डवानाम्=भवतां निवासेन ; मे=मम विराटस्य कुलम् ; नष्टकल्मषम्=पापरहितं पवित्रमित्यर्थः ; जातमिति शेषः ॥ ६६ ॥

अभिमन्युरपि तान् स्वपितॄन् ज्ञात्वा गोग्रहणं वरदानं मन्यते इत्याह—

अन्वयः—मया क्षिप्ताः न रुष्यन्ति, हसन्तश्च मां क्षिपन्ति दिष्टया गोग्रहणम् स्वन्तम् येन पितरः दर्शिताः ॥ ६७ ॥

नेति—मया क्षिप्ताः=आक्षिप्यमाणाः ; अपि न रुष्यन्ति=न कुप्यन्ति ; हसन्तः मां क्षिपन्ति=निन्दन्ति ; दिष्टया=भाग्येन ; मे गोग्रह-

अर्जुन—आप की जैसी आज्ञा ।

राजा—वीर, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रतिज्ञा की रक्षा में लगे इन पाण्डवों के निवास से मेरे कुल का पाप नष्ट हो गया ॥ ६६ ॥

अभिमन्यु—यहाँ तो हमारे पूज्य पितृ गण हैं ।

मेरे द्वारा निन्दा वचनों को सुन कर भी ये कुपित नहीं होते, और हँसते हुये मुझे चिढ़ाते हैं, सौभाग्य से यह गोग्रहण परिणाम में भला हुआ जिससे मुझे इन पितृगणों के दर्शन प्राप्त हुये ॥ ६७ ॥

(भीमसेन की ओर देख कर ।)

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यत् भवान् नाभिवादितः ।
तस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

(इति प्रणमति)

भीमसेनः—एह्येहि पुत्र ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।

अभिमन्युः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

भीमसेनः—पुत्र ! अभिवादयस्व पितरम् ।

णम्=विराटसम्बन्धिगोहरणम् ; स्वन्तम्=शुभावसानम् ; जातमिति शेषः येन=गोग्रहणेन ; पितरः दर्शिताः=प्रत्यक्षं ज्ञापिताः ; एते मम तातपादा इति निश्चितम् यन्मयाऽक्षिप्ता अपि न कुप्यन्ति ; हासपूर्वकं लालनपरा इव मां कोपयन्ति, तदिदं गोग्रहणं मद्भाग्योदयेन शुभावसानं जातम् येन तातपादानां दर्शनावसरोयं मया लब्ध इत्यर्थः । भीमसेनमुद्दिश्य वदत्यभिमन्युः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—तु मया भवान् अज्ञानात् पूर्वं न अभिवादितः तस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

अज्ञानादिति मया=अभिमन्युना । भवान्=भीमः ; अज्ञानात् तातोऽयमिति परिचयाभावात् ; पूर्वम्=प्राक् ; न अभिवादितः=प्रणामादिना न सत्कृतः ; तस्य पुत्रापराधस्य=पुत्रकृतागसः ; प्रसादम्=अनुग्रहम् ; कर्तुमर्हसि ; क्षाम्यतु मम पुत्रस्येममपराधमिति ॥ ६८ ॥

पितृसदृशपराक्रमः=पित्रा तुल्यवीर्यः ।

अज्ञानवश मैंने जो पहले आपका अभिवादन नहीं किया मुझ पुत्र के इस अपराध को क्षमा करें ॥ ६८ ॥

(ऐसा कह कर प्रणाम करता है)

भीमसेन—आओ बेटा आओ । पिता के समान पराक्रमी बनो ।

अभिमन्यु—मैं अनुगृहीत हुआ ।

भीमसेन—बेटा ! पिता को प्रणाम करो ।

अभिमन्युः—भोस्तात ! अभिवादये ।

अर्जुनः—एह्येहि वत्स ! (आलिङ्ग्य)

अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः ।
यस्त्रयोदशवर्षान्ते प्रोषितः पुनरागतः ॥ ६९ ॥

पुत्र ! अभिवाद्यतां विराटेश्वरः

अभिमन्युः—अभिवादये ।

राजा—एह्येहि वत्स !

यौधिष्ठिरं धैर्यमवाप्नुहि त्वं भैमं बलं नैपुणमर्जुनस्य ।

इदानीं पुत्रगात्रस्पर्शमनुभूयमानोऽर्जुनः ब्रवीति—

अन्वयः—अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः यः प्रोषितः त्रयोदशवर्षान्ते सन् पुनः आगतः । ६९ ॥

अयमिति—अयम् = मयानुभूयमानः ; सः=पूर्वानुभूतः ; हृदयाह्लादी=मनःप्रहर्षकारकः ; पुत्रगात्रसमागमः=पुत्रगात्रस्पर्शः अस्ति यः प्रोषितः=दूरंगतोऽलभ्यः पुत्रस्पर्शः ; मयेति शेषः ; त्रयोदशवर्षान्ते पुनः आगतः=प्राप्तः । स एवायं पूर्वानुभूतः पुत्रस्पर्शः यमहं बहुकालान्तरं प्राप्तवानस्मीति भावः ॥ ६९ ॥

अभिमन्युनाभिवादितो विराटस्तमाशीर्भिरभियोजयति—

अन्वयः--त्वम् यौधिष्ठिरं धैर्यम् भैमं बलम् अर्जुनस्य नैपुणम्

अभिमन्यु—हे ! पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूं ।

अर्जुन—आओ बेटा आओ (गले लगा कर)

यह वही हृदय को आनन्दित कर देने वाला पुत्र गात्र का संस्पर्श है जो तेरह वर्षों प्रवास के पश्चात् पुनः प्राप्त हुआ है ॥ ६९ ॥

बेटा—इन विराटेश्वर को प्रणाम करो ।

अभिमन्यु -प्रणाम करता हूं ।

राजा—आओ बेटा ! आओ ।

तुम युधिष्ठिर का धैर्य, भीम का बल, अर्जुन का रणकौशल एवं

माद्रीजयोः कान्तिमथाभिरूप्यं कीर्त्ति च कृष्णस्य जगत्प्रियस्य ।।७०।।
(आत्मगतम्) उत्तरासन्निकर्षस्तु मां बाधते । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । कोऽत्र । (प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः ।

माद्रीजयोः कान्तिम् आभिरूप्यं जगत्प्रियस्य कृष्णस्य कीर्त्ति च अवाप्नुहि ।। ७० ।।

यौधिष्ठिरमिति– त्वम् = अभिमन्युः ; यौधिष्ठिरम् = युधिष्ठिरे वर्त्तमानम् ; धैर्यम् = गम्भीरताम् ; भैमम् = भीमसम्बन्धि ; बलम् = कायिकसामर्थ्यम् ; अर्जुनस्य = स्वपितुः ; नैपुणम् = युद्धकौशलम् ; माद्रीजयोः = नकुलसहदेवयोः ; कान्तिम् = लावण्यम् ; आभिरूप्यम् = बुद्धिसौन्दर्यं ; जगत्प्रियस्य = विश्वमनोहरस्य ; कृष्णस्य कीर्त्ति = यशः; अवाप्नुहि = प्राप्नुहि ; अयं भावः त्वं युधिष्ठिर इव धैर्यशाली, भीम इव बलवान्, अर्जुन इव युद्धदक्षः नकुल इव रूपवान् सहदेव इव बुद्धिमान् तथा कृष्ण इव यशस्वी भव ।। ७० ।।

भवतु दृष्टम् = यातु उपायः परिज्ञातः ; आपस्तावद्=जलमानयेत्यर्थः ; गोग्रहणविजयशुल्कार्थम् = गोग्रहणे लब्धेन विजयेन शुल्कार्थम् = क्रीतधनरूपम् । यथा मूल्यमादाय वस्तुप्रदानं क्रियते, तथा त्वद्द्वारा विजयं संप्राप्य तम्मूल्येनेयं कन्या गृह्यतामिति—अवनतम् = संकोचेन लज्जया वा मस्तकोऽधः जातः इत्यर्थः । कथं चरित्रं मे तुलयति = मम चरित्रम् दूषितं मत्वा मां दूषयति । लोकः अन्तःपुरस्थितस्य ममोत्तरायां आसक्तिरिति मां तुलयति = परीक्षयति ।

माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव की सुन्दरता तथा बुद्धिमत्ता तथा जगत्प्रिय भगवान् वासुदेव की कीर्त्ति प्राप्त करो ।। ७० ।।

(अपने मन में) इस उत्तरा के साथ अर्जुन का सम्बन्ध मुझे बाधित कर रहा है - ऐसी दशा में क्या करूँ ? अच्छी बात है निर्णय कर लिया । अरे कोई है ?

(भट प्रवेश करके).

भट—जय हो महाराज की ।

राजा—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

राजा –(प्रतिगृह्य) अर्जुन ! गोग्रहणविजयशुल्कार्थं प्रतिगृह्यतामुत्तरा ।

युधिष्ठिरः—एतदवनतं शिरः ।

अर्जुनः—(आत्मगतम्) कथं चारित्रं मे तुलयति । (प्रकाशम्) भो राजन् !

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया ।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ ७१ ॥

इदानीमर्जुनः अन्तःपुरे स्थितोऽपि स्वचरित्रशुद्धिं प्रकटयन् अभिमन्युकृते उत्तरादानमनुमोदयन्नाह —

अन्वयः—इष्टम् सर्वम् अन्तःपुरं मया मातृवत् पूजितम् त्वया दत्ता एषा उत्तरा पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ ७१ ॥

इष्टमिति—इष्टम्=प्रियतरम् ; सर्वम्=निखिलम् ; अन्तःपुरम्=अवरोधकुलम् ; मया=अर्जुनेन ; मातृवत् पूजितम् ; सर्वा अपि अवरोधगतानार्यः मातर इव मयाराधिता इत्यर्थः ; अतो न शक्यते मयोत्तराग्रहणं

राजा—पानी लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (बाहर जाकर प्रवेश कर) यह है जल ।

राजा—(हाथ में जल लेकर) अर्जुन ! गोहरण के विजय शुल्क के रूप में आप उत्तरा को स्वीकार करें ।

युधिष्ठिर—अरे यह तो महान् लज्जा की बात हुई ।

अर्जुन—(स्वगत) क्यों यह हमारे चरित्र की परीक्षा कर रहे हैं (प्रकट) ।

राजन् ! मैंने प्रिय इस अन्तःपुर की माता के समान पूजा की है अतः आपके द्वारा दी गई उत्तरा को मैं पुत्र अभिमन्यु की स्त्री के रूप में ग्रहण करता हूँ ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिरः—एतदुन्नतं शिरः।

राजा— इदानीं युद्धशूराणां चारित्रेषु व्यवस्थितः।
अन्तःपुरनिवासस्य सदृशीं कृतवान् क्रियाम् ॥ ७२ ॥

अद्यैव खलु गुणवन्नक्षत्रम्। अद्यैव विवाहोऽस्य प्रवर्तताम्।

युधिष्ठिरः—भवतु। पितामहसकाशमुत्तरं प्रेषयामः।

राजा—यदभिरुचितं भवद्भ्यः। धर्मराज-वृकोदर-धनञ्जयाः! इत इतो भवन्तः। अनेनैव प्रहर्षेणाभ्यन्तरं प्रविशामः।

कर्त्तुमिति भावः; ननु तर्हि उपेक्ष्यते मदीयं वचनमित्याह उत्तरैषेति एषा त्वया दत्ता उत्तरा; मया पुत्रार्थे=अभिमन्योः कृते; प्रतिगृह्यते=स्वीक्रियते ॥ ७१ ॥

उन्नतम्=चरित्रोत्कर्षसूचनया ऊर्ध्वं नीतम् शिर इति यावत्।

अन्वयः—इदानीं युद्धशूराणां चारित्रेषु व्यवस्थितः (अयम्) अन्तःपुरनिवासस्य सदृशीं क्रियां कृतवान् ॥ ७२ ॥

इदानीमिति—इदानीम्=अधुना; युद्धशूराणाम्=संग्रामवीराणाम्; चारित्रेषु=सदाचारपरेषु; व्यवस्थितः=नियमपालनपरः अयम् अन्तःपुरनिवासस्य=अवरोधस्थितेः; सदृशीम्=तुल्याम्; क्रियां कृतवान्; सर्वथा वीरोचितनियमपालनपरोऽयम् स्वोपयुक्तसदाचारपद्धतिं निर्वाहितवानित्यर्थः ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर—अब शिर ऊँचा हो गया।

राजा—इस समय इन्होंने अन्तःपुर में निवास के सदृश उचित कार्य किया, अतः युद्ध वीरों के चरित्र में प्रख्यात हुये ॥ ७२ ॥

आज सभी गुणों से युक्त नक्षत्र है, अत. आज ही विवाह सम्पन्न करें।

युधिष्ठिर—अच्छी बात है। पितामह भीष्म के पास कुमार उत्तर को भेज रहा हूँ।

राजा—जैसी आपकी इच्छा। धर्मराज, वृकोदर, धनञ्जय आप लोग आइये इसी आनन्द के साथ भीतर चलें।

सर्वे—बाढम् । (निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

* * *

गुणवत् = प्रशस्तगुणोपपन्नम् ; पितामहसकाशम् = भीष्मस्य पार्श्वे ; उत्तरम्—विराटपुत्रम् ; प्रेषयामः—कुलश्रेष्ठं भीष्मपितामहं निमन्त्रयितुम् कुमारमुत्तरं प्रेषयाम इत्यर्थः ; अनेन प्रहर्षेण = कन्यादानसंकल्पजन्यानन्देन ।

पञ्चरात्रे द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

सभी—अच्छी बात है ।

(सबका प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

* * *

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सूतः)

सूतः—भो भोः। निवेद्यतां सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणां क्षत्रियाणाम्।

एष हि,

अपास्य नारायणचक्रजं भयं चिरप्रनष्टान् परिभूय पाण्डवान्।
धनुस्सहायैः कुरुभिर्न रक्षितो हृतोऽभिमन्युः क्रियतां व्यपत्रपा ॥ १ ॥

इति।

द्वितीयाङ्के गोग्रहणे बृहन्नला श्मशानाद्धनुः अक्षयशायके तूणीरे चादाय यथा कौरवाम् पराजितवती यथा च पाकशालानियुक्तेन पाककर्त्राऽभिमन्युर्गृहीतः यथा च क्रमशः तेषां पाण्डवानां विराटसमक्षे तत्तद्रूपेण परिचयो जातः यथा च तेषामज्ञातवासावधिः समाप्तेत्यादि सर्वं वृत्तमुपवर्ण्य अन्ते स्वचारित्ररक्षणपरेणार्जुनेन यथा उत्तरया सहाभिमन्योर्विवाहप्रस्तावः कृतः सूतप्रवेइत्यादि सर्वमुदन्तजातं वर्णितम्। अथेदानीं तृतीयाङ्कस्य कथामुद्घाटयितुं शेनोपक्रमते—

सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणाम् = सर्वेषाम् क्षत्राणाम् आचार्यः गुरुर्द्रोणः पुरोगः = अग्रगण्यः येषां तेषाम्।

गोग्रहणे सर्वसमक्षमभिमन्यौ गृहीते कौरवाणां त्रपां जनयन् सूतः उद्घोषयति —

अन्वयः अभिमन्युः धनुःसहायैः कुरुभिः न रक्षितः। किन्तु नारायणचक्रजं भयमपास्य चिरप्रनष्टान् पाण्डवान् अभिभूयं हृतः (अतः) व्यपत्रपा क्रियताम् ॥ १ ॥

(सूत का प्रवेश)

सूत—अरे ! सूचित करो सूचित करो। सम्पूर्ण क्षत्रियाचार्य प्रधान सभी क्षत्रियों को, जो यह—

भगवान् नारायण के चक्र का भय त्याग कर, बहुत दिनों से लापता पाण्डवों का तिरस्कार कर शत्रुओं ने अभिमन्यु का हरण कर लिया। कौरव उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहे। ऐसी घटना पर लज्जा आनी चाहिये ॥ १ ॥

(ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ)

द्रोणः—सूत ! कथय कथय ।

रणपटुरपनीतः केन मे शिष्यपुत्रः
क इह मम शरैस्तैर्दैवतैर्योद्धुकामः ।
कथय पुरुषसारं यावदस्त्रं जलं वा
बलवत इषुदूतांस्तत्र सम्प्रेषयामि ॥ २ ॥

अपास्येति एष हि अभिमन्युः धनुःसहायैः=धनुर्धारिभिः अपि कुरुभिः=कौरवैः ; न रक्षितः=रक्षितुमपारितः ; किन्तु नारायणचक्रजं=भगवतो महाविष्णोः श्रीकृष्णस्य चक्राज्जातम् ; भयम् अपास्य = विहाय चिरप्रनष्टान् = बहोः कालात् अज्ञातवृत्तान् ; पाण्डवान् ; अभिभूय=अनादृत्य हृत एव विराटपक्षीयेन केनचिद् भटेन बन्दीकृतः ; अतः व्यपत्रपा=लज्जा ; क्रियताम् = विधीयताम् ; धनुर्धारिणां भवतां कौरवाणां समक्षमेव यद् विराटभटेनाभिमन्युर्गृहीतस्तेन भवन्तो दुर्योधनवीराः लज्जन्तामित्यर्थः । वंशस्थवृत्तम् ॥ १ ॥

सूतकृतां घोषणां श्रुत्वासहमानो द्रोणाचार्यः उद्घोषयति—

अन्वयः—रणपटुः मे शिष्यपुत्रः केन अपनीतः इह तैः दैवतैः मम शरैः कः योद्धुकामः यावद् अस्त्रं बलं वा तं पुरुषसारं कथय । तत्र बलवतः इषुदूतान् संप्रेषयामि ॥ २ ॥

रणपटुरिति— रणपटुः=युद्धविद्याविशारदः ; मे=मम ; शिष्यपुत्रः=अभिमन्युः ; केन अपनीतः=अपहृतः ; इह=रणक्षेत्रे तैः मम दैवतैः=दिव्यैः ; शरैः कः योद्धुकामः=युद्धाभिलाषी वर्तते इति शेषः ; यावद-

---

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—सूत । कहो कहो ।

मेरे शिष्य अर्जुन के रणकुशल पुत्र का किसने अपहरण कर लिया, वह कौन है ? जो मेरे इन दिव्य बाणों से लड़ना चाहता है । उस पुरुष में कितना बाहुबल है, कितना अस्त्रबल है जिसके समीप अपने बलवान् बाण-दूतों को अभी प्रेषित करूँ ॥ २ ॥

भीष्मः—सूत ! कथय कथय ।

भग्नापयानेष्वनभिज्ञदोषस्तारुण्यभावेन विलम्बमानः ।
केनैष हस्तिग्रहणोद्यतेन यूथेऽपयाते कलभो गृहीतः ॥ ३ ॥

स्त्रम्=प्रहरणम् ; बलम्=कायिकसामर्थ्यं पुरुषसारं च=पुरुषार्थं च तस्य=अभिमन्युहर्त्तुः ; कथय=आख्याहि ; तत्र=तस्मिन्नभिमन्युहर्त्तरि शत्रौ ; इषुदूतान्=बाणदूतान्, प्रेषयामि=प्रेरयामि । एतादृशाकः यो मम प्रियशिष्यस्यार्जुनस्य पुत्रमभिमन्युं हृतवान् । स हि मम दिव्यैः बाणैः योद्धुमिच्छति किम् ; तस्यास्त्रं बलं पौरुषं च कथय तस्मिन्नहं बाणान् प्रेष्य तं निपातयामीत्यर्थः । मालिनीवृत्तम् ॥ २ ॥

इदानीं भीष्मः अभिमन्युहर्त्तारं पृच्छति—

अन्वयः—भग्नापयानेषु अनभिज्ञदोषः तारुण्यभावेन विलम्बमानः एषः कलभः हस्तिग्रहणोद्यतेन केन यूथे अपयाते गृहीतः ।

भग्नेति भग्नापयानेषु भग्नानां=युद्धपराङ्मुखानाम् ; अपानेषु=पलायनपरेषु ; अनभिज्ञदोषः=अज्ञानरूपदोषयुक्तः ; तारुण्यभावेन=यौवनदर्पेण ; विलम्बमानः=पलायनं विस्मृत्य ; एषः कलभः=हस्तिशावक इव अभिमन्युः स्थिरीभूतः ; हस्तिग्रहणोद्यतेन=करिग्रहणसमुद्यतेन केन ; यूथे=गजवृन्दे; अपयाते=प्रस्थिते ; सति ; गृहीतः=स्वायत्तीकृतः । बन्दीकृत इति यावत् । अयमभिमन्युः युद्धे पलायनं न जानाति यौवनगर्वेण उद्धत एवास्ति पुनः केन गजग्रहणोद्यतेन पुंसा यूथेऽपपयाते कलभः इव तस्य ग्रहणं कृतमिति भावः । अप्रस्तुतप्रशंसा-रूपकालङ्कारौ । इन्द्रावज्रावृत्तम् ॥ ३ ॥

अपनीतः=अपहृतः ; मोक्षयामि=उन्मुक्तं करोमि ।

भीष्म सूत । कहो कहो ।

'जिसे युद्ध से भागना आता नहीं' जिसमें दोष यह है, जो जवानी के कारण अड़ा ही रहता है उस अभिमन्यु रूप गज बालक को यूथपतियों के भाग जावे पर किसने पकड़ लिया ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्च ।)

दुर्योधनः—सूत ! कथय कथय । केनापनीतोऽभिमन्युः । अहमेवैनं मोक्षयामि । कुतः,

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः ।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्
सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ॥ ४ ॥

इदानीमभिमन्युं मोचयितुकामो दुर्योधनस्तस्य विमोक्षणे कारणमुपपादयति—

अन्वयः—हि अस्य पितृभिः सह मम ज्ञातिभेदः प्रस्तुतः तद् इह वक्तृभिः मयि दोषः पातनीयः अथ च सः मम पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात् कुलविरोधे च सति बालाः नापराध्यन्ति ॥ ४ ॥

ममेति—अस्य=अभिमन्योः ; पितृभिः=युधिष्ठिरादिभिः सह मम=दुर्योधनस्य ; ज्ञातिभेदः=दायादभावकृतं वैरम् प्रस्तुतः ; तत्=तस्मात् ; इह=अभिमन्युग्रहणविषये ; वक्तृभिः=स्पष्टतरवादिभिः ; लोकैरिति शेषः ; मयि दोषः=पितृवैरादेव दुर्योधनेनाभिमन्युर्गृहीतः शक्तिसत्वेऽपि न मोचित इत्येवं रूपः ; पातनीयः=वर्णनीयः ; अथ च सोऽभिमन्युः प्रथमं मम=दुर्योधनस्य पुत्रः ; पाण्डवानां तु पश्चात् ; पाण्डवापेक्षयाऽपि मयि सविशेषस्नेहशीलत्वात् ; किञ्च कुलविरोधे=वंशे वैरजातेऽपि ; बालाः=शिशवः ; नापराध्यन्ति । मालिनीवृत्तम् ॥ ४ ॥

(दुर्योधन कर्ण एवं शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन सूत कहो कहो ! किसने अभिमन्यु का अपहरण किया ? मैं स्वयं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि —

उसके पिता के साथ मेरा जन्मजात बैर है, उसके पकड़े जाने पर लोग मुझे ही दोषी कहेंगे । इसके अतिरिक्त पहले वह मेरा लड़का है बाद में पाण्डवों का । कुल क्रमागत विरोध होने पर भी बालक अपराधी नहीं होते ॥ ४ ॥

कर्णः—अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं भवता । गान्धारीमातः !

मा तावत् स्वजनभयात् तु बालभावाद्
व्यापन्नः समरमुखे तव प्रियार्थम् ।
अस्माभिर्न च परिरक्षितोऽभिमन्यु-
र्गृह्यन्तां धनुरपनीय वल्कलानि ॥ ५ ॥

अतिस्निग्धम्=अतिशयप्रीतिपूर्णम् । अनुरूपम्=स्वयोग्यम् ।

इदानी लोकापवादः दूरेऽस्तु स तु भवत्कार्यार्थं गृहीतः अतस्तस्य मोचनमावश्यकमित्युपपादयति —

अन्वयः—स्वजनभयाद् मा तावद् । तु बालभावात् । सः समरमुखे तव प्रियार्थम् व्यापन्नः । अतः अस्माभिः यदि अभिमन्युः न परिरक्षितः तदा धनुः अपनीय वल्कलानि गृह्यन्ताम् ॥ ५ ॥

मा ताबदिति— स्वजनभयात्=आत्मीयजनकृतलोकापवादभीतेः मा । तावद्=अभिमन्युर्मोच्यताम् ; बालभावात्=अप्राप्तयौवनावस्थत्वाद् स=समरमुखे—रणक्षेत्रे ; तव=दुर्योधनस्य ; प्रियार्थम्=हितसाधनार्थम् आपन्नः—बन्दी जातः । अतः यदि अभिमन्युः अस्माभिः न परिरक्षितस्तदा धनुः अपनीय=दूरीकृत्य । वल्कलानि=मुनिधार्यवृक्षत्वचः गृह्यन्ताम्=धार्यन्ताम्=लोकापवादभीत्या नाभिमन्योर्मोचनीयता किन्तु त्वदर्थे विपन्नः अथ यदि एवंविधं बालमभिमन्युं मोचयितुं वयं न समर्थाः तदा धनुरपहाय-तपश्चरामहे इति कर्णोक्ताभिप्रायः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

बहुनाथः तस्य बहवः रक्षकाः ; संप्रधार्यताम्=निश्चीयताम् ।

कर्ण—आपने अत्यन्त प्रेमपूर्ण तथा उचित वचन कहा है । गान्धारीनन्दन !

अपने जनों द्वारा दिये जाने वाले अपवाद के भय से नहीं, स्नेह के कारण नहीं किन्तु उसे तो इसलिये छुड़ाना है कि वह आपके प्रिय कार्य को सम्पन्न करने में पकड़ा गया है और हम उसे छुड़ा नहीं सके हैं, ऐसी स्थिति में हमें धनुष छोड़ वल्कल धारण कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाथः खलु सौभद्रः। मुक्त एवेति सम्प्रधार्यताम् । कुतः,

मुञ्चेदर्जुनपुत्र इत्यवगतो राजा विराटः स्वयं
स्मृत्वा चाद्य रणाजिरादवजितं मुञ्चेत् स दामोदरम् ।
क्रोधोद्धूतहलात् प्रलम्बमथनाद् भीतेन मुच्येत वा
भीमस्त्वेनमिहानयेद् बलमहान् हत्वा रिपूनूर्जितात् ॥ ६ ॥

बहुनाथत्वादभिमन्योर्मोचनं भविष्यत्येवातो तस्य मोचनेऽस्माभिर्न चिन्ता कार्या इत्युपपादयति शकुनिः -

अन्वयः—अयम् अर्जुनपुत्रः इति अवगतः राजा विराटः स्वयं मुञ्चेत् अद्य रणाजिरात् अवजितं तं स दामोदरं स्मृत्वा मुञ्चेत् । वा क्रोधोद्धूतहलात् प्रलम्बमथनात् भीतेन स्वयं मुच्येत् । यद्वा बलमहान् भीमः ऊर्जितान् रिपून् हत्वा एनम् इह आनयेत् ॥ ६ ॥

मुञ्चेदिति अयम् अर्जुनपुत्रः। इति अवगतः—प्रतीतः सन् राजा विराटः स्वयं—आत्मना। मुञ्चेत्=अभिमन्युं बन्धनमुक्तं कुर्यादित्यर्थः। अद्य रणाजिरात्=युद्धक्षेत्रात्; अविजितम्=पराजित्य गृहीतम् अभिमन्युं। दामोदरं=वासुदेवं श्रीकृष्णम्; स्मृत्वा=ध्यात्वा मुञ्चेत् त्यजेत्; वा=अथवा क्रोधोद्धूतहलात् कोपकम्पितहलप्रहरणात्; प्रलम्बमथनात्=बलभद्रात् भीतेन=भयं प्राप्तेन विराटेन सः=अभिमन्युः स्वयम्=आत्मनैव मुच्येत=मुक्तो भवेत ; अथवा बलमहान्=महाबलः भीमः। ऊर्जितान्=बलदर्पितान्; रिपून्=विराटादीन् शत्रून्; हत्वा एनम्=अभिमन्युम्; इह आनयेत्। अतस्तन्मोचनार्थं चिन्ता वृथेति शकुनेरभिप्रायः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

शकुनि—अभिमन्यु के बहुत से रक्षक हैं, उसे छूटा ही समझिये। क्योंकि —

'यह अर्जुन का पुत्र है' ऐसा समझकर विराट उसे स्वयं छोड़ देंगे। दामोदर को याद कर युद्धस्थल से हराकर लाये गये अभिमन्यु को वे स्वयं छोड़ देंगे अथवा कोप से हल घुमाने वाले बलभद्र के डर से वे उसे छोड़ देंगे, अथवा महाबली भीमसेन गर्वित शत्रुओं को मार कर उसे यहाँ ले आवेंगे ॥ ६ ॥

द्रोणः—सूत ! कथय । कथमिदानीं गृहीतः ।

पर्यस्तोऽस्य रथो हया नु चपलाश्चक्राक्षमा मेदिनी
तूणी क्षीणशरे त्वमस्य विगुणो ज्याच्छेदवन्ध्यं धनुः ।
एता दैवकृता भवन्ति रथिनां युद्धाश्रया व्यापदो
बाणैरप्यवकृष्यते खलु परैः स्वाधीनशिक्षस्तु सः ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्यः रथिनां ग्रहणे तत्तत्कारणान्युपपाद्य एतेषु कारणेषु किं कारणं येनाभिमन्युर्गृहीत इति सूतं पृच्छति—

अन्वयः—हयाः चपलाः तेन—अस्य रथः पर्यस्तः नु । मेदिनी चक्राक्षमा नु । तूणी क्षीणशरे नु । किं त्वं सूतः विगुणः असि । किं धनुः ज्याच्छेदवन्ध्यम् । एताः (पूर्वोक्ताः) रथिनां युद्धाश्रयाः दैवकृताः व्यापदः । परैः बाणैः अपि अवकृष्यते (किन्तु) स्वाधीनशिक्षः सः ॥ ७ ॥

पर्यस्त इति—हयाः—अश्वाः; चपलाः—चञ्चलाः; तेन अस्य=अभिमन्योः; रथः=स्यन्दनः; पर्यस्तः=पतितः; नु=किम्; मेदिनी=तत्रत्या भूमिः; चक्राक्षमा=रथचक्रभ्रमणानर्हा; नु=किम्! तूणी=तूणीरे; क्षीणशरे=बाणशून्ये; नु=किम्! किं त्वं=सूतः विगुणः=रथसञ्चारणानर्हः जातः; किं धनुः ज्याच्छेदवन्ध्यम्=मौर्वीत्रुटनात् विफलम्; जातमिति शेषः; एताः=पूर्वोक्ताः; रथिनाम्=योधानाम्; युद्धाश्रयाः=रणकृताः; दैवकृताः=भाग्यप्रापिताः; व्यापदः=विपत्तयः; भवन्ति; स्वाधीनशिक्षः=यथेच्छाचरणक्षमयुद्धाभ्यासशीलः; सः=अभिमन्युः; परैः बाणैः अपि अव-

---

द्रोण—सूत ! कहो कहो । वह पकड़ा कैसे गया ?

क्या उसका रथ उलट गया ? या घोड़े भड़क उठे ? अथवा पृथ्वी रथ सञ्चार के योग्य नहीं थी ? अथवा तरकस के बाण समाप्त हो गये ? अथवा तुमने प्रतिकूलता प्रकट की । अथवा प्रत्यञ्चा के टूट जाने से धनुष बेकार हो गया । युद्धक्षेत्र में रथियों के निग्रह में इतने ही दैवकृत कारण होते हैं । हाँ शत्रु लोग बाणों से खींच कर भी किसी-किसी को पकड़ लेते हैं परन्तु अभिमन्यु तो धनुर्विद्या में बहुत निपुण है ॥ ७ ॥

सूत:— आयुष्मन् ! पुरुषमयो धनुर्वेदः । किमायुष्मता न ज्ञायते ।

न चापि दोषा भवताभिभाषिताः
स चापि बाणौघमयो महारथः ।
अलातचक्रप्रतिमस्तु मे रथो
गृहीत एवाऽऽपतता पदातिना ॥ ८ ॥

कृष्यते—गृह्यते; यदि पूर्वोक्तासु व्यापत्तिषु कापि व्यापत्तिर्न घटिता स्यात्तदायुद्धे तं परैः बाणैरपि ग्रहीतुमीशीरन् किम् इति भावः ॥ ७ ॥

पुरुषमयः — पुरुषमूर्त्तिः ; आयुष्मता—अभिमन्युना ; अभिमन्यु: सर्वमपि जानातीत्यर्थः ।

भवत्कथितेषु दोषेषु अविद्यमानेष्वपि । तत्कृतबाणवृष्टिषु सत्स्वपि । मयि चालातचक्रवद्रथचालनपरेऽपि केनचित्पदातिना स गृहीत इत्याह सूतः—

अन्वयः- भवताभिभाषिता दोषा च न । स च महारथः बाणौघमयः अपि अलातचक्रप्रतिमः मे रथः अपि आपतता पदातिना स गृहीत ॥ ८ ॥

न चापीति—भवता=द्रोणेन ; अभिभाषिताः=उक्ताः ; दोषाः रथपतनादयः ; च न आसन्निति शेषः ; स च महारथः=युद्धवीरो अभिमन्युः बाणौघमयः=सततबाणराशिवर्षी ; अपि ; अलातचक्रप्रतिमः—भ्रमदग्निपिण्डतुल्यः ; मे=मम ; रथः ; अपि आपतता—तत्काले सम्मुखमागच्छता; पदातिना=पादचारेण केनापि स गृहीतः । वंशस्थवृत्तम् ।

कथं पदातिना तादृशवीराध्युषितरथावस्कन्दनं पदातिना केनचित् कथं कृतमिति सर्वेषामाशयः ।

सूत—आयुष्मन् ! अभिमन्यु तो साक्षात् पुरुषरूपधारी धनुर्वेद ही है क्या आप यह नहीं जानते ।

उसके पकड़े जाने में आपके द्वारा बताये गये दोषों में कोई दोष नहीं था उस समय अभिमन्यु महारथ पर चढ़ कर बाण की वृष्टि भी कर रहा था मेरा रथ अलातचक्र की तरह अप्रतिहत घूम भी रहा था फिर भी किसी वीर ने पदल ही आकर उस रथ को पकड़ लिया ॥ ८ ॥

सर्वे – कथं पदातिनेति ?

द्रोणः– अथ कीदृशः पदातिः ।

सूतः—किमभिधास्यामि रूपं वा पराक्रमं वा ?

भीष्मः -रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते । पराक्रमेण तु पुरुषाः । तत् पराक्रमोऽस्याभिधीयताम् ।

सूतः—आयुष्मन् !

दुर्योधनः—

किमर्थं स्तूयते कोऽपि भवता गर्विताक्षरैः ।
कथ्यतां नास्ति मे त्रासो यद्येष पवनो जवे ॥ ९ ॥

कथमिति गृहीतुः पदातिनस्तस्य रूपं कथयामि पराक्रमं वा कथयामीति भावः स्त्रियः कथ्यन्ते—स्त्रीणां रूपं वर्ण्यते पुरुषाणां पराक्रमो वर्ण्यते तत्तस्य पराक्रम एव प्रकाश्यतां येन तथा पराक्रान्तमिति भावः ॥ ८ ॥

इदानीं दुर्योधनस्तस्य पदातिनः पराक्रमं सोढुमशक्तः सारथिं प्रत्याह—

अन्वयः—भवता गर्विताक्षरैः कोऽपि किमर्थं स्तूयते । यदि एषः जवे पवनः सः अपि कथ्यतां । मे त्रासः नास्ति ॥ ९ ॥

किमर्थमिति—भवता = सूतेन ; गर्विताक्षरैः = प्रौढवचनैः कोऽपि किम-

सभी—क्या पैदल ने ?

द्रोण—अच्छा बताओ वह पैदल योद्धा कैसा था ?

सूत -मैं उसका रूप बताऊँ या पराक्रम ?

भीष्म—स्त्रियों के रूप का वर्णन किया जाता है और पुरुषों के पराक्रम का वर्णन किया जाता है, इसलिये उसका पराक्रम कहिये ।

सूत—आयुष्मन् !

दुर्योधन—साभिमान पूर्ण शब्दों में किसी की स्तुति क्यों करते हैं ? मुझे किसी का भय तो है नहीं अतः यदि वेग में वे पवन ही क्यों न हों उसे भी साफ-साफ शब्दों में कहिये ॥ ९ ॥

सूतः—श्रोतुमर्हति महाराजः । तेन खलु,

लङ्घयित्वा जवेनाश्वान् न्यस्तश्चापस्करे करः ।
प्रसारितहयग्रीवो निष्कम्पश्च रथः स्थितः ॥ १० ॥

भीष्मः—तेन हि न्यस्यन्तामायुधानि ।

सर्वे—किमर्थम् ?

र्थम्=किं प्रयोजनमभिप्रेत्य ; स्तूयते=प्रशस्यते ; मां भीषयितुं स्तौति केवलं तथा कृत्वा यदि एष=भवता कथ्यमानः ; जवे=वेगे ; पवनः=वायुः अपि स्यात्तथापि मे=मम ; त्रासो नास्ति ॥ ९ ॥

इदानीमभिमन्युहरणप्रकारमाह सूतः—

अन्वयः—तेन जवेन अश्वान् लङ्घयित्वा अपस्करे करः न्यस्तः प्रसारितहयग्रीवः रथः निष्कम्पः स्थितः ॥ १० ॥

लङ्घयित्वेति—(तेन=पदातिना) जवेन=वेगेन ; अश्वान्=रथ्यान् ; लंघयित्वा=अतिक्रम्य ; अपस्करे=योधासनस्थाने रथावयवे करः=निजहस्तः ; न्यस्तः=स्थापितः ; प्रसारितहयग्रीवः=स्वभारेणाश्वानां ग्रीवां प्रसारयन् च रथः ; निष्कम्पः=अचलः ; स्थितः ; रथारूढे तस्मिन्पदातौ तद्भाराक्रान्तरथवहने अश्वैः स्वग्रीवा प्रसारिता रथश्चाचलो जात इत्यर्थः ॥ १० ॥

सूत—सुनिये महाराज ! उस पदाति ने बड़ी तेजी के साथ घोड़ों का अतिक्रमण कर रथ को पकड़ लिया । घोड़ों ने अपनी गर्दन लम्बी कर पूरा जोर लगाया भी पर रथ टस से मस न हुआ । जहाँ का तहाँ खड़ा रहा ॥ १० ॥

भीष्म—तब अस्त्र रख दिया जाय ।

सभी—क्यों रख दिया जाय ?

भीष्मः—

हृतप्रवेगो यदि बाहुना रथो
वृकोदरस्याङ्कगतः स चिन्त्यताम् ।
पुरा हि तेन द्रुपदात्मजां हरन्
पदातिनैवावजितो जयद्रथः ॥ ११ ॥

द्रोणः—सम्यगाह गाङ्गेयः । बाल्योपदेशात् प्रभृत्यहं तस्य जवमवगच्छामि । इष्वस्त्रशालायां हि,

---

इदानीमभिमन्युहर्तारं भीममनुमाय तं जेतुं नास्ति कोऽपि समर्थः अतः आयुधानि न्यस्यन्तामिति भीष्मः आदिशति—

अन्वयः—यदि बाहुना रथः हृतप्रवेगः (तदा) सः वृकोदरस्य अङ्कगत इति चिन्त्यताम् । हि तेन पुरा द्रुपदात्मजां हरन् जयद्रथः पदातिना एव अवजितः ॥ ११ ॥

हृतप्रवेग इति—यदि बाहुना=एकेन भुजेन । रथः हृतप्रवेगः=निरुद्धवेगप्रकर्षः ; कृतः तर्हि सः=अभिमन्युः ; भीमस्य अङ्कगतः=क्रोडस्थित इति चिन्त्यताम्=विभाव्यताम् ; यदि एकभुजास्तम्भितोऽचलो रथो जातस्तदा भीमादपरोऽभिमन्युहरो जनो न भवितुमर्हति तस्यैतादृशं कर्मास्माभिः पूर्वमपि दृष्टमित्याह—पुरा हीति हि तेन=पदातिना पुरा; द्रुपदात्मजां=द्रौपदीमाहरन्=रथमारोप्य नयन् जयद्रथः ; अवजितः=रथादुत्थाप्यानीतः ; तदलं तस्य मोक्षणचिन्तयेति भीष्माभिप्रायः ॥ ११ ॥

गाङ्गेयः=भीष्मः ; बाल्योपदेशात्=बाल्यावस्थायां शिक्षणात् ; इष्वस्त्रशालायाम्=बाणाभ्यासशालायाम् ।

भीष्म—यदि हाथ के द्वारा रथ रोक दिया गया तो समझिये कि अभिमन्यु भीम के अङ्क में पड़ गया है । पूर्वकाल में द्रौपदीहरण करते समय उसी भीम ने जयद्रथ को पैदल ही जीत लिया था ॥ ११ ॥

द्रोण—भीष्म ठीक कह रहे हैं । पढ़ने के समय से ही मैं उसके वेग को जानता हूँ । जब बाणशिक्षा वाले विद्यालय में उसने—

कर्णायते तेन शरे विमुक्ते
विकम्पितं तस्य शिरो मयोक्तम् ।
गत्वा तदा तेन च बाणतुल्य-
मप्राप्तलक्षः स शरो गृहीतः ।। १२ ।।

शकुनिः— अहो हास्यमभिधानम् । भोः ! पृच्छामि तावद् भवन्तम् ।

नास्त्यन्यो बलवाँल्लोके सर्वमिष्टेषु कथ्यते ।
जगद्व्याप्तान् भवन्तः किं सर्वे पश्यन्ति पाण्डवान् ।। १३ ।।

इदानीं भीष्मवाक्यं समर्थयन्नाचार्यः भीमवेगं वर्णयन्नाह—

अन्वयः—तेन कर्णायते शरे विमुक्ते, मया तस्य शिरः विकम्पितं इति उक्तम् तदा तेन वाणतुल्यं गत्वा अप्राप्तलक्षः स शरः गृहीतः ।। १२ ।।

कर्णायते इति—तेन = भीमसेनेन; कर्णायते=आकर्णकृष्टे ; शरे=वाणे ; विमुक्ते सति मया तस्य शिरः विकम्पितम् इत्युक्तम् ; शिरःप्रकम्पो हि धानुष्के महान् दोषः ; तदा = तस्मिन्नेव क्षणे मम वाक्यसमकालमेव; तेन = भीमेन ; वाणतुल्यम्=वाणवेगवच्छीघ्रम् गत्वा ; अप्राप्तलक्षः=लक्षदेशमप्राप्तः ; सः शरः गृहीतः ; मध्ये मार्ग एव वाणग्रहणात्तस्य वाणापेक्षया शीघ्रगतित्वमुक्तमिति भावः । उपजातिवृत्तम् ।। १२ ।।

भीमप्रशंसामसहमानः शकुनिराह —

अन्वयः—लोके अन्यः बलवान् नास्ति इष्टेषु सर्वं कथ्यते किं सर्वे भवन्तः जगद्व्याप्तान् पाण्डवान् पश्यन्ति ।। १३ ।।

कान तक खींच कर बाण छोड़ा मैंने कहा कि तुम्हारा शिर हिल उठा है जो बाण चलाने का एक दोष है । फिर तो वह बाण की तरह झट से दौड़ उठा और लक्ष्य स्थान तक पहुंचने के पहले अपने छोड़े गये बाणों को बीच में ही पकड़ लिया ।। १२ ।।

शकुनि—अहो यह कैसी उपहास की बात है । मैं आपसे पूछता हूं ।

क्या इस संसार में कोई दूसरा बलवान् नहीं है, जो अपना इष्ट होता है उसके विषय में इसी प्रकार बातें चढ़ा-बढ़ा कर की जाती हैं । क्या आप सभी पाण्डवों को सारे जगत् में व्याप्त समझते हैं ।। १३ ।।

भीष्मः--गान्धारराज ! सर्वमनुमानात् कथ्यते ।

वयं व्यपाश्रित्य रणं प्रयामः
शस्त्राणि चापानि रथाधिरूढाः ।
द्वावेव दोर्भ्यां समरे प्रयातौ
हलायुधश्चैव वृकोदरश्च ।। १४ ।।

नास्तीति—लोके = संसारे ; अन्यः = पाण्डवेभ्यो भिन्नः ; बलवान् नास्ति अपितु अस्त्येव । न केवलं पाण्डवाः बलशालिनः परमन्येऽपि सन्तीति भावः । तथापि परान् विहाय पाण्डवप्रशंसनम् भवतामिष्टमित्याह— इष्टेषु = प्रियजनेषु सर्वम् ; कथ्यते = आत्मीयजनेषु सर्वविधप्रशंसावचनं प्रयुज्यते ; किं सर्वे भवन्तः = द्रोणादयः ; पाण्डवान् ; जगद्व्याप्तान् पश्यन्ति ; सर्वत्र जगति पाण्डवा एव व्याप्ता किमिति; येनाभिमन्युर्भीमसेन-गृहीतत्वेन संभाव्यते इत्यहो भवतां पाण्डवजनपक्षपातता इत्यर्थः ।। १३ ।।

भीष्मः शकुनेराक्षेपं श्रुत्वा उत्तरयति—

अन्वयः—वयं रथाधिरूढाः चापानि शस्त्राणि व्यपाश्रित्य रणं प्रयामः । किन्तु हलायुधश्च वृकोदरश्च एतौ द्वौ दोर्भ्यामेव प्रयातः ।। १४ ।।

वयमिति—वयं भवन्तश्च सर्वे इति शेषः ; रथाधिरूढाः = रणसज्जायुक्तेषु रथेष्वधिष्ठाय ; चापानि = धनूंषि ; शस्त्राणि = आयुधानि च ; व्यपाश्रित्य = अवलम्ब्य ; रणं = युद्धस्थलं ; प्रयामः = गच्छामः ; किन्तु हलायुधः = बलभद्रः, वृकोदरः = भीमश्च इति एतौ द्वौ एव दोर्भ्याम् = बाहुभ्यामेव प्रयातः = गच्छतः ; केवलमेतौ द्वावेव बाहुमात्रप्रहरणौ युद्धक्षेत्रे गच्छतः इति शक्यतेऽनुमातुमिदं यद् भीमसेनेनैवाभिमन्युर्गृहीत इति ।। १४ ।।

भीष्म—गान्धारराज ! सब बातें अनुमान से कही जाती हैं ।

हम लोग तो शस्त्र, धनुष आदि लेकर तथा रथ में बैठकर युद्ध करने वाले हैं, किन्तु दो ही आदमी ऐसे हैं एक बलराम दूसरे भीम जो केवल बाहुबल से लड़ने जाते हैं ।। १४ ।।

शकुनिः—

एकेनैव वयं भग्नाः सहसा साहसप्रियाः ।
उत्तरं च तमप्येके कथयिष्यन्ति फल्गुनम् ।। १५ ।।

द्रोणः—भो गान्धारराज ! अत्रापि तावद् भवतः सन्देहः ।

किमुत्तरेणापि रणे विकृष्यते निसृष्टशुष्काशनिगर्जितं धनुः ।

उत्तरेणास्मानं जितं मत्वा शकुनिरर्जुनं प्रक्षिपति—

अन्वयः—एकेन एव साहसप्रियाः वयं सहसा भग्नाः । तमुत्तरम् अपि एके फल्गुनम् कथयिष्यन्ति ।। १५ ।।

एकेनैवेति—एकेन = सहायान्तररहितेन अशस्त्रेण चैव ; साहसप्रियाः = बलवन्तः ; वयं = सर्वे ; सहसा = हठात् ; भग्नाः = पराजिताः तमुत्तरम् अपि ! एके = त्वादृशाः पाण्डवपक्षपातपराः ; फल्गुनम् = अर्जुनं ; कथयिष्यन्ति ; यद्यभिमन्युगृहीतो भीमो मन्यते तदास्माकं जेतोत्तरोऽपि अर्जुनः मन्यतामिति शकुनेरभिप्रायः ।। १५ ।।

गान्धारराज = शकुने ; अत्रापि = अस्माकं पराजयकर्त्तुरर्जुनस्य-सत्वेऽपि !

अर्जुन एवास्माकं पराजयकर्त्तेति दृढं विश्वस्य द्रोणाचार्योऽर्जुनोत्तरयोः वैशिष्ट्यं प्रतिपादयति—

अन्वयः—उत्तरेण अपि रणे निसृष्टशुष्काशनिगर्जितं धनुः विकृष्यते

शकुनि—हमलोगों जैसे साहसी वीरों को जिसने अकेले पराजित किया उस उत्तर को भी कुछ लोग अर्जुन ही कहेंगे ।। १५ ।।

द्रोण—अरे गान्धारराज ! इस विषय में आपको सन्देह क्यों है ? क्या उत्तर भी सूखे वज्रपात की गर्जना के सदृश धनुष चढ़ाते समय

किमुत्तरस्यापि शरैर्हृतातपः कृतो मुहूर्तास्तमितो दिवाकरः ॥ १६ ॥

भीष्मः—गान्धारीमातः ! विस्पष्टं खलु कथ्यते । ननु जानीते भवान् ।

बाणपुङ्खाक्षरैर्वाक्यैर्ज्याजिह्वापरिवर्तिभिः ।
विकृष्टं खलु पार्थेन न च श्रोत्रं प्रयच्छति ॥ १७ ॥

किम् उत्तरस्य अपि शरैः हृतातपः मुहूर्तास्तमितः दिवाकरः कृतः किम् ॥ १६ ॥

किमिति—उत्तरेण=विराटपुत्रेण अपि ; रणे=युद्धे ; निसृष्टशुष्काशनिगर्जितं=कृतशुष्कवज्रध्वनिः ; धनुः=कार्मुकम् ; विकृष्यते किम् ; नहि उत्तरस्तावत्कदाचिदपि तादृशमवृष्टिवज्रध्वनिकरं धनुराक्रष्टुम् समर्थ इत्यर्थः । उत्तरस्यापि शरैः=बाणैः; हृतातपः=वारितातपः; मुहूर्तास्तमितः=कियतः कालस्य कृते अस्तंगतः ; दिवाकरः=सूर्यः ; कृतः किम् ; किमुत्तरोऽपि स्वनिसृष्टबाणैः भास्करमाच्छाद्यास्तंगतमिव कर्त्तुमर्हति ? अतएव तादृशलक्षणयुक्तोऽर्जुनः एव भवितुमर्हतीति भावः ॥ १६ ॥

इदानीं भीष्मः अपि तत्तल्लक्षणैः अर्जुनं ख्यापयति—

अन्वयः—बाणपुङ्खाक्षरैः ज्याजिह्वापरिवर्त्तिभिः वाक्यैः विकृष्टं खलु पार्थेन इति न च श्रोत्रं प्रयच्छति किम् ॥ १७ ॥

बाणेति—बाणपुङ्खाक्षरैः=बाणमूलाङ्कितशब्दैः ; ज्याजिह्वापरि-

उसे शब्दायमान कर सकता है ? क्या उत्तर के बाणों द्वारा क्षण भर के लिये सूर्य का आतप छिप सकता है और सूर्य अस्तंगत जैसा दिखाई पड़ सकता है ? ॥ १६ ॥

भीष्म—दुर्योधन ! मैं तो बहुत साफ-साफ कहता हूं, आप इसे जानते भी हैं ।

बाणपुङ्ख पर लिखे अक्षरों को अपनी जिह्वा से दुहराने वाले धनुष से यह स्पष्ट कह दिया कि पार्थ धनुष चढ़ा रहे हैं, मालूम होता है कि आप का ध्यान उधर नहीं था जिससे आप नहीं सुन सके ॥ १७ ॥

(प्रविश्य)

सूतः—जयत्वायुष्मान् । शान्तिकर्मानुष्ठीयताम् ।

भीष्मः— किमर्थम् ?

सूतः—

उचितं ते पुरा कर्तुं ध्वजे बाणप्रधर्षिते ।
अयं हि बाणः कस्यापि पुङ्खे नामाभिधीयते ॥ १८ ॥

वर्तिभिः ज्या=मौर्वी सा एव जिह्वा रसना तया परिवर्तिभिः ; ज्याजिह्वाप्रत्यावर्तिभिः वाक्यैः=धनुर्ध्वनिभिः स्पष्टं कथ्यते यत् विकृष्टम् खलु पार्थेन इति न च श्रोत्रं प्रयच्छसि ? भवांस्तत्र कर्णं न दत्तवान् । बाणमूललिखितानि नामाक्षराणि ज्यापरिवर्तीनि । धनुर्ध्वनिवाक्यमापन्नानि पार्थेनैवेदं धनुराकृष्यते इति स्पष्टमुद्घोषितानि तत्र भवतः श्रुतिर्न सावधानासीदिति भावः ॥ १७ ॥

शान्तिकर्म=युद्धे पराजयहेतुभूतस्य दुरदृष्टस्य शान्तये दानपूजादिमङ्गलकृत्यम् । अनुष्ठीयताम्=विधीयताम् ।

सूतः शान्तिकर्मणः आवश्यकत्वं प्रतिपादयति—

अन्वयः—ध्वजे बाणप्रधर्षिते सति पुरा ते कर्तुमुचितम् । हि अयं बाणपुङ्खे कस्य अपि नाम अभिधीयते ॥ १८ ॥

उचितमिति—ध्वजे=रथकेतौ ; बाणप्रधर्षिते=परकीयशरविद्धे सति पुरा=प्रागेव ; ते=तव ; कर्तुमुचितं शान्तिकर्मेति शेषः ; हि=यतः अयं बाणः=येन ध्वजः=प्रधर्षितः अस्य बाणस्य पुङ्खे=मूले ; कस्यापि नाम अभिधीयते=उच्यते वाचयितृभिरिति शेषः ॥ १८ ॥

(सूत प्रवेश कर)

सूत—जय हो महाराज की शान्ति कर्म कीजिये ।

भीष्म—क्यों ?

सूत—दूसरे के बाण से जब आप की ध्वजा विद्ध हो गई उसी समय आप को शान्ति कर्म कर लेना चाहिये यह बाण अपने पुङ्ख पर किसी का नाम अङ्कित है ऐसा बता रहा है ॥ १८ ॥

भीष्मः आनय ।

(सूत उपनयति ।)

भीष्मः—(गृहीत्वा निरीक्ष्य) वत्स ! गान्धारराज ! जराशिथिलं मे चक्षुः । वाच्यतामयं शरः ।

शकुनिः—(गृहीत्वानुवाच्य च) अर्जुनस्य । (इति क्षिपति । द्रोणस्य पादयोः पतति ।)

द्रोणः—(शरं गृहीत्वा) एह्येहि वत्स !

एष शिष्येण मे क्षिप्तो गाङ्गेयं वन्दितुं शरः ।
पादयोः पतितो भूमौ मां क्रमेणाभिवन्दितुम् ॥ १९ ॥

जराशिथिलम् मे चक्षुः = वार्धक्येनाक्षरग्रहणाक्षमम् । वाच्यताम् = पठ्यताम् । इति क्षिपति शरम् इति शेषः ; तेन अर्जुनः शरं क्षिपति इति पूर्णं वाक्यम् । द्रोणस्य पादयोः पततीत्यत्र शर इति शेषः ; तेन अयं 'शरः द्रोणस्य पादयोः पतति' इति पूर्णवाक्यम् ।

अयं बाणोऽर्जुनस्यैवेति तस्य शिष्टाचारप्रदर्शनपूर्वकं द्रोणः शकुनिं सबोधयति—

अन्वयः—एषः शरः मे शिष्येण गाङ्गेयं वन्दितुम् क्षिप्तः क्रमेण मां अभिवन्दितुं भूमौ पादयोः पतितः ॥ १९ ॥

भीष्म—बाण तो लाओ ।

(सूत ले जाता है)

भीष्म—(लेकर और देख कर) वत्स गान्धार राजः ! वृद्धावस्था के कारण मेरी आँखें मन्द पड़ गई हैं । पढ़िये तो इस बाण पर क्या लिखा है ?

शकुनि—(लेकर और पढ़ कर) अर्जुन का यह बाण है (देखता है द्रोण के पैरों पर गिरता है) अर्थात् अर्जुन बाण चला रहे हैं और (द्रोण को प्रणाम करते हैं)

द्रोण—(बाण लेकर) वत्स ! इस बाण को मेरे शिष्य अर्जुन ने भीष्म को प्रणाम करने के लिये चलाया था फिर क्रमशः मुझे प्रणाम करने के लिये मेरे पैरों पर आ गिरा है ।। १९ ।।

शकुनिः—मा तावद् भोः । शरप्रत्यय इदानीं श्रद्धातव्यम् ।

योधः स्यादर्जुनो नाम तेनायं चोज्झितः शरः ।
लिखितं चोत्तरेणापि प्रकाशमुपनीयताम् ॥ २० ॥

एष इति—एषः=शरः ; मे=मम ; शिष्येण=अर्जुनेन । गाङ्गेयं=भीष्मं स्वपितामहम् ; वन्दितुम्=अभिवादयितुं ; क्षिप्तः=प्रेरितः ; यः क्रमेण=भीष्मप्रणामानन्तरम् ; माम् अभिवन्दितुम्=च भूमो मम पादयोः पतितः ; शरोऽयं स्वपितामहं प्रणन्तुमर्जुनेन क्षिप्तः यः तं प्रणम्य क्रमप्राप्तं मत्प्रणाममाचरितुमिव मत्पादमूलं प्राप्त इति ॥ १९ ॥

शरप्रत्यये=वाणाक्षराङ्किते अर्जुननाम्न्यनुमाने ; श्रद्धातव्यम्=असंशयरूपेण विश्वासः ; मा तावद्=न कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

इदानीं वाणाङ्कितेर्जुनाक्षरनाम्नि कश्चन पाण्डवातिरिक्तोऽन्योऽर्जुनो नामेति साधयति शकुनिः—

अन्वयः—अर्जुनो नाम योधः स्यात् तेन अयं शरः उज्झितः । अपि उत्तरेण लिखितं (प्रमाणं) प्रकाशम् उपनीयताम् ॥ २० ॥

योध इति कश्चन अर्जुनः=पाण्डवार्जुनातिरिक्तोऽर्जुनः नाम । योधः=वीरः स्यात् ; तेन चायम्=अस्माभिर्दृश्यमानः अयं शरः उज्झितः=विसृष्टः स्यात् । तथा च उत्तरेण लिखितं प्रमाणम् प्रकाशमुपनीयताम्=उपन्यस्यताम् । तथा च वाणाक्षरनामदर्शनेन पाण्डवार्जुनप्रत्ययो संदिग्ध इति । यदि पाण्डवार्जुन एव एतस्य वाणस्य प्रहर्त्तेति उच्यते तदा उत्तरेण लिखितं प्रमाणमुपन्यस्यताम् ततः शक्यते पाण्डवार्जुनत्वं विश्वसितुमिति ॥ २० ॥

शकुनि—नहीं भाई ! वाण पर विश्वास नहीं करना चाहिये ।

कोई अर्जुन नाम का दूसरा योद्धा होगा, जिसने यह वाण चलाया होगा । उत्तर द्वारा कोई लिखित प्रमाण प्रस्तुत कीजिये कि वह पाण्डव अर्जुन है ॥ २० ॥

दुर्योधनः—

तेषां राज्यप्रदानार्थमनृतं कथ्यते यदि ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि यावद् दृष्टे युधिष्ठिरे ॥ २१ ॥

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । विराटनगराद् दूतः प्राप्तः ।

दुर्योधनः—प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः) ।

(ततः प्रविशत्युत्तरः ।)

इदानीं दुर्योधनः वितर्कयति—

अन्वयः—यदि तेषां राज्यप्रदानार्थं अनृतं कथ्यते तदा युधिष्ठिरे दृष्टे यावत् राज्यस्यार्द्धं प्रदास्यामि ॥ २१ ॥

तेषामिति—तेषाम् = पाण्डवानाम् ; राज्यप्रदानार्थम् = राज्यं प्रदापयितुम् ; यदि उत्तरेण अनृतं = मिथ्या ; कथ्यते = उच्यते ; इदमपि संभवति यदुत्तरः पाण्डवेभ्यो मदीयं राज्यं दापयितुं मिथ्या अभिवध्यादतो न तदुक्तिरस्माभिः प्रमाणनीयेति भावः ; अत्र स्वकीयं निश्चयमाह—राज्यमस्येति—यावत्=कालपर्यन्तं युधिष्ठिरे साक्षात्कृते एव राज्यस्यार्द्धं प्रदास्यामि न तु केनापि प्रमाणान्तरेण तत्प्राप्ताविति ॥ २१ ॥

प्रवेश्यताम् = विराटनगरादागतो संदेश वाहको मत्समीपमानीयताद ।

दुर्योधन—यदि उत्तर ने पाण्डवों को राज्य दिलाने के लिये मिथ्या कह भी दिया हो मैं पाण्डवों को आधा राज्य तभी दूंगा जब युधिष्ठिर को साक्षात् अपनी आँखों से देख लूंगा ॥ २१ ॥

(भट प्रवेश कर)

भट—जय हो महाराज की जय हो । विराट नगर से दूत आया है ।

दुर्योधन—बुला लाओ ।

भट—महाराज की जैसी आज्ञा (जाता है)

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तरः—

अध्वानमल्पमतिमुक्तजवैस्तुरङ्गै-
रागच्छता पथि रथेन विलम्बितं मे ।
कौन्तेयवाणनिहतैर्द्विरदैः समन्ताद्
दुःखेन यान्ति तुरगा विषमा हि भूमिः ॥ २२ ॥

(प्रविश्य कृताञ्जलिः) भो भोः ! आचार्यपितामहपुरोगं सर्वराजमभिवादये ।

उत्तरः दुर्योधनसन्निधौ आगमने स्वविलम्बकारणमुपस्थापयति –

अन्वयः—अतिमुक्तजवैः तुरङ्गैः अल्पमध्वानमागच्छता मे रथेन पथि विलम्बितम् हि कौन्तेयबाणनिहतैः द्विरदैः भूमिः समन्ततः विषमा तेन तुरगाः दुःखेन यान्ति ॥ २२ ॥

अध्वानमिति—अतिमुक्तजवैः=वेगातिशययुक्तैः ; अपि तुरङ्गैः=अश्वैः ; अल्पम्=अदूरम् ; अध्वानम्=मार्गम् आगच्छता मे रथेन पथि=मार्गे ; विलम्बितम्=विलम्बः कृतः ; यद्यपि वेगवन्तो मे हयाः मार्गोऽपि नातिदूरस्तथापि ममाश्वाः पथि व्यलम्बन्त तत्र विलम्बे कारणमुपपादयति ; कौन्तेयबाणनिहतैः=अर्जुनशरनिर्भिन्नैः ; द्विरदैः=गजैः ; भूमिः समन्ततः=सर्वतः विषमा=निम्नोच्चास्ति तेन तुरगाः=रथाश्वाः । दुःखेन=कष्टेन ; यान्ति=चलन्ति ; अर्जुनबाणैर्हतानां हस्तिनां शरीरैः भूमिः विषमतां गता तेन रथसंचारो दुष्करं जातोऽतोत्रागमने विलम्बोऽभवदित्यर्थः ॥ २२ ॥

उत्तर—मार्ग बहुत लम्बा नहीं था, घोड़ों को वेग से चलाया भी गया फिर भी हमारे आने में विलम्ब हो गया क्योंकि अर्जुन द्वारा मारे गये हाथियों के शवों से रास्ते की भूमि विषम (ऊँची-नीची हो) गई थी ॥२२॥

(प्रवेश कर हाथ जोड़ कर)

हे हे आचार्य ! पितामह प्रभृति राजगण मैं उत्तर आप सभी को प्रणाम करता हूं ।

सर्वे—आयुष्मान् भव ।
द्रोणः—किमाह तत्रभवान् विराटेश्वरः ?
उत्तरः—नाहं तत्रभवता प्रेषितः ।
द्रोणः—अथ केन त्वं प्रेषितः ?
उत्तरः—तत्रभवता युधिष्ठिरेण ।
द्रोणः—किमाह धर्मराजः ?
उत्तरः—श्रूयताम्,

उत्तरा मे स्नुषा लब्धा प्रतीक्षे राजमण्डलम् ।
तत्रैव किमिहैवास्तु विवाहः क्व प्रवर्तताम् ॥ २३ ॥

इदानीमुत्तरः स्वागमनकारणं धर्मराजामन्त्रणं सर्वेभ्यो निवेदयति—

अन्वयः—मे स्नुषा उत्तरा नाम लब्धा । तद्राजमण्डलं प्रतीक्षे तत्र एव विवाह, अस्तु इहैवास्तु । क्व विवाहः प्रवर्त्तताम् ॥ २३ ॥

उत्तरेति—मे=मम युधिष्ठिरस्य ; स्नुषा=पुत्रवधूः = उत्तरा नाम=विराटपुत्री; लब्धा=प्राप्ता ; राजमण्डलम् प्रतीक्षे=तद्विवाहोत्सवार्थे प्रतीक्षे ; तत्रैव=कौरवाणां निवासस्थाने हस्तिनापुरे विवाहः अस्तु इह वा=विराटपुरे एव वा विवाहः अस्तु ; एवं क्व विवाहः प्रवर्त्तताम्=ज्ञायताम् ; विवाहस्थानं भवद्भिरेव निश्चित्य सनाथीक्रियताम् विवाहोत्सवं इति भावः ॥ २३ ॥

सब—आयुष्मान् होओ ।
द्रोण—विराटेश्वर ने क्या कहा है ?
उत्तर—उन्होंने मुझे नहीं भेजा है ।
द्रोण—फिर आपको किसने भेजा ?
उत्तर—पूज्य युधिष्ठिर ने ।
द्रोण—धर्मराज ने क्या कहा है ?
उत्तर—सुनिये ।

मुझे पुत्रवधू के रूप में उत्तरा प्राप्त हुई है । मैं आपलोगों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । विवाह यहाँ हो या वहाँ आपलोग इसका निर्णय करें ॥२३॥

शकुनिः—तत्रैव तत्रैव ।

द्रोणः—

इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते ।
धर्मेणावर्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

दुर्योधनः—

बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ २५ ॥

इदानीमाचार्यः पञ्चरात्रान्तरमेव पाण्डवोपलब्धिजाताशो तेभ्यो राज्यं प्रदीयतामिति प्रेरयति दुर्योधनम्—

अन्वयः—इति (सर्वेऽपि) अर्थम् आनीताः पञ्चरात्रः अपि वर्तते । धर्मेण आवर्जिता भिक्षा धर्मेण एव प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

इत्यर्थमिति—इति=एवम् ; वयम् सर्वेऽपि ; अर्थम्=पाण्डवोपलब्धिरूपमर्थम् ; आनीताः=प्रापिताः ; अत्रागत्यास्माभिः पाण्डवानां स्थितिर्ज्ञाता; पञ्चरात्रः=पञ्चरात्रात्मकोऽवधित्वेन विहितः कालोऽपि वर्तते न तु अतिक्रान्त इति भावः ; धर्मेण गुरवे दक्षिणा दीयते इति सत्यसंकल्परूपेण ; आवर्जिता=स्वीकृता भिक्षा=मया याचितम् पाण्डवार्धराज्यम् ; धर्मेण=स्वप्रतिज्ञापालनात्मना सदाचारेण ; दीयताम् ॥ २४ ॥

इदानीं पाण्डवार्धराज्यं दातुं प्रतिज्ञाय सत्यं प्रशस्यमानो दुर्योधन आह—

अन्वयः—बाढम् । मया यथापुरम् राज्यं पाण्डवेभ्यो दत्तम् । हि सर्वे नराः मृतेऽपि सत्ये तिष्ठन्ति ॥ २५ ॥

शकुनि—वहीं वहीं ।

द्रोण—इस प्रकार हम लोगों ने पाण्डवों का पता पा लिया । पञ्चरात्र भी अभी विद्यमान है व्यतीत नहीं हुआ है । इसलिये धर्मपूर्वक स्वीकार की गई दक्षिणा धर्मपूर्वक ही दे दी जाय ॥ २४ ॥

दुर्योधन—ठीक है । हमने पाण्डवों को पूर्ववत् आधा राज्य दिया । यदि सत्य विद्यमान रहता है तो लोग मरने के बाद भी अपने यशः शरीर से जीवित रहते हैं ॥ २५ ॥

द्रोणः—

हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धकुलसंग्रहाः ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

बाढमिति—बाढम्=भवदुक्तं स्वीकृतम्; मया यथापुरम्=पूर्वमिव प्रतिज्ञातम्; राज्यं पाण्डवेभ्यः दत्तम्; प्राक् पाण्डवानां यावद्राज्यमासीत्तावद्दीयते इति भावः; सर्वे नराः मृतेऽपि—मरणान्तरमपि; सत्ये तिष्ठन्ति; सत्याचरणाद् यशःकायेन मरणानन्तरं सर्वे नराः लोके तिष्ठन्ति अतो मयापि पूर्वंप्रतिज्ञातं पाण्डवानां राज्यार्द्धं दीयते इति भावः ॥ २५ ॥

इदानीं ग्रन्थसमाप्तौ द्रोणमुखेन मङ्गलमुपस्थापयन् ग्रन्थकार आह—मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते इति शिष्टाचारविषयत्वात्—

अन्वयः—हन्त प्रवृद्धकुलसंग्रहाः सर्वे प्रसन्नाः स्मः । इमां कृत्स्नां महीम् अपि नः राजसिंहः प्रशास्तु ॥ २६ ॥

हन्तेति—हन्त इति हर्षे; प्रवृद्धकुलसंग्रहाः=समृद्धकुलद्वयसंगमाः वयं सर्वे प्रसन्नाः स्म=मोदामहे; इमाम् कृत्स्नाम्=अखण्डाम्; महीं च नः=अस्माकम्; राजसिंहः=एतन्नामा नृपतिः; प्रशास्तु=पालयतु ॥ २६ ॥

भासकृते पञ्चरात्रे तृतीयाङ्के व्याख्या समाप्ता ।

गाजीपुरजनपदान्तर्गतशेरपुर ग्रामवास्तव्येन रामवरणशर्मणः आत्मजेन रायोपाह्वेन सांकृत्यायनेन डा० गङ्गासागरशर्मणा विरचिता गङ्गा नाम्नी व्याख्या समाप्ता ।

॥ शुभं भूयात् ॥

द्रोण—अहो! आज ये दोनों वंश पारस्परिक विरोध के शान्त हो जाने से समुन्नत हो रहे हैं। इससे हम सभी प्रसन्न हैं। इस समूची पृथ्वी का हमारे राजसिंह पालन करे।

तृतीय अङ्क समाप्त ।

पञ्चरात्र समाप्त ।

परिशिष्टम्

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ताः स्तुतियस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देव-द्विजनृपादि की स्तुति होती है । यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है ।

२. प्रस्तावना-आमुख —

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

सूत्रधार के साथ नट-नटी, पारिपार्श्विक नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है । उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं ।

३, सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

तथा —

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु-नेता तथा रस-ये सूत्र कहे जाते हैं । दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने - पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है ।

४. प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है ।

५. नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं ।

६ः विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है । यह कथांश को संक्षिप्त करने के लिए प्रयुक्त होता है । मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता हैं और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर संकीर्णं होता है ।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषः विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृत भाषा प्रयुक्त होती है । यह दो अङ्कों के बीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती है ।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं ।

९. प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सुने उसे प्रकाश कहा जाता है ।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि के हास्योत्पादक, कलह प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता हैं। उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं।

११. नायक—

वेत्ता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान-युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारण, के भेद से तीन प्रकार की होती है। यथा संभव यह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च वीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानविन्दुः सोङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नानाविधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

* * *

पञ्चरात्रागतसुभाषितानि

१. शुष्केणैकेन वृक्षेण वनं पुष्पितपादयम् ।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणैव दह्यते ॥ १।१२

२. लतया सक्तया स्कन्धे शुष्कयावेष्टितस्तरुः ।
निविष्टो दुष्कले साधुः स्त्रीदोषेणैव दह्यते ॥ १।१४

३. दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् (नष्टं) ॥ १।१७

४. व्यसनित्वान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः (उपभुंक्ते) ॥ १।१८

५. अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः ॥ १।२१

६. रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो ।
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ॥ २।५

७. ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा ।
अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २।२८

८. अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते । २।३३

९. सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ॥ ३।४

१०. सर्वमिष्टेषु कथ्यते । ३।१३

११. मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ ३।२५

१२. सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् ।

१३. अकाण्डे स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति । अङ्क २

१४. अर्थित्वादपरिश्रान्तः पृच्छत्येष हि कार्यवान् ।

१५. अच्छलो धर्मः

१६. एकोदकत्वं खलु लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ।

१७. को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।

१८. न च दहति न कश्चित् सन्निकृष्टो रणाग्निः ।

१९. नोत्सहन्ते महात्मानो ह्यात्मानमपस्तोतुम् ।

२०. मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा

२१. रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते पराक्रमेण खलु पुरुषाः ।

पञ्चरात्रस्थश्लोकानामनुक्रमणिका

	अंक. श्लो.
अकारणं रूपम्	२-३३
अगणितगुण	२-१५
अग्निरग्निमया	१-७
अज्ञानात्तु मया	२-६८
अतीत्य बन्धू	१-२१
अद्य मे कार्यलोभेन	१-५०
अद्येदानीम्	२-१०
अध्वानमल्पमति	३-२८
अनेन वेषेण	२-३०
अपास्य नारायण	३-२२
अपूर्व इव ते	२-३४
अयं बाल्यात्तु	२-६२
अयं स हृदया	२-६९
अयुज्यमानै:	२-४४
अलमात्मस्तवं	२-५०
अवजित इति	२-४५
अवनत विट	१-१९
अवाप्य रूप्यग्र	१-२२
अशस्त्रो मामभि	२-५२
अहं हि मात्रा	१-२७
आचार्यस्य वदा	१-५४
आदीपिते जतुगृहे	२-४२
आलम्बितो	२-२७
इक्ष्वाकुशर्याति	१-२४
इत्यर्थं वयमा	३-२४
इदानीं युद्ध	२-७२
इष्टमन्त:पुरं	२-७१
उचितं ते पुरा	३-१८

	अंक. श्लो.
उत्तरा मे स्नुषा	३-२३
उद्योगः प्रस्तुतः	२-८
उपप्लवस्तस्य	१-३४
एकवर्णेषु	२-४
एकेनैव वयं	३ १५
एकोदकत्वं	२-९
एतदक्षयतूणी	२-२३
एतदग्नेर्बलं	१-१७
एतन्मे पारि	३-६४
एतां चक्रधरस्य	१-९
एते वातोद्धता	१-१३
एभिरेव रथै	१-५६
एवमेव क्रतून्	१-२८
एष शिष्यस्य	१-४४
एष शिष्यस्य मे	३-१९
एषामोदीप्त	१-६
कथं पण्डित	१-५१
कर्णायिते तेन	३-१८
कामं दुर्योधन	२-६
किं भवान् धर्मं	२-४८
किन्नु तत्परिहा	२-१७
किमर्थं खलु स	२-१२
किमर्थं स्तूयते	३-९
किमुत्तरेणापि	३-११
कृतश्रद्धो ह्यात्मा	१-२३
कृता नीला नागाः	३-२१
कोनु खल्वेष	२-२१
क्रतुव्रतैस्ते	१-२९

क्रोधप्रायं वयो १-४३
गजेन्द्राः कल्प्यन्ते २-७
गतो वृक्षाद् १-१९
गाण्डीवेन मुहूर्त्तं २-२९
गुरुकरतल १-४७
जानाम्येतान् २-४६
जित्वापि गां २-३१
तस्मान्मे रथ १५-७
ताडितस्य हि यो २-२८
तुलितबलमि २-३५
तृप्तोऽग्निर्हविषा १-४
तेषां राज्यप्रदा ३-२७
त्वं वञ्चयसे यदि १-४१
त्वमिदानीं कुमार २-१६
दह्यमानस्य १-११
दूरस्था दर्शना २-३८
दैवतं मानुषी १-२९
द्रुतैश्च वत्सै २-१
द्रोणः पृथि १-१
द्रोणश्च भीष्मश्च २-११
द्विजोच्छिष्टैरग्नै १-३
धनुरुपनय २-५
धनुर्घोषं द्रोण २-२४
धन्यः खल्वर्जुनो २-५३
धर्षिता रथ १-५५
न चापि दोषा ३-८
न जाने तस्य २-३९
न ते क्षेपेण २-५८
न रुष्यन्ति मया २-६७
नास्त्यन्यो बल ३-१३
निमित्तं किञ्चि २-२०
नीचैरप्यभिभाष्य २-४७
नृपा भीष्मादयो २-४१
पर्यस्तोऽस्य रथो ३-७
पादयोः समुदा २-५९
पार्थं पितर २-४९
पीतः सोमो बाल्य १-३०
पुत्रो ह्येष युधि २-३९
प्रकोष्ठान्तर २-६३
प्राणाधिकोऽस्मि १-३१
बहुभिः समराभि २-१९
बाढं दत्तं मया ३-२५
बाणपुङ्खाक्षरै ३-१७
बाणाधीना १-२४
बाहुरक्षौहिणी २-५९
भग्नावयानिष्व ३-१
भीमसेनस्य १-५२
भीष्मेण कर्णेन १-४२
भीष्मं रामशरै २-२६
भ्रातॄणां पैतृकं १-३५
मम हि पितृभि ३-४
मा तावद् व्यथित २-३
मा तावत् स्वजन ३-५
मिथ्या प्रशंसा २-६०
मुञ्चेदर्जुनपुत्र ३-९
यज्ञेन भोजय १-२०
यत् पाण्डवा १-३९
यत् पुरा ते सभा १-३७

यदि विमृशसि १–३२
यदि स्वचक्रो २–१८
युध्यते यदि २–२५
ये दुर्बलाश्च १–३६
येनभीमः सभा १–३८
येषां गतिः क्वापि १–३३
यैः कर्त्तुं कामैश्छलनं १–४८
योक्त्रयित्वा जरा २–५७
योद्धः स्यादर्जुन ३–२०
यौधिष्ठिरं २–७०
रणपट्टुरपनीतः ३–२
रथमानय २–१३
रथमासाद्य निः २–३७
राज्ञा वेष्टनपट्ट १–५
रात्री छन्नेन १–५१
रामेण भुक्तां १–४५
रिपूणां सैन्य २–१४
रुद्रबाणावली २–६५
लङ्घयित्वा ३–१०
लतया सक्तया १–१४
वनं सवृक्षक्षुप १–१५
वयं व्यपाश्रित्य ३–१४
वर्षेण वा वर्षशतेन १–४९
वल्मीकमूलात् १–१०
विशालवक्षा २–४३
शकटी च घृता १–८
शुष्केर्णकेन १–१२
शून्यमित्यभिधास्यामि १–४६
शूराणां सत्यसन्धानां २–६१
शौण्डीर्यं धृति २–५४
श्मशानाद्धनु २–६१
सज्जैश्चापैर्बद्ध २–२
स यौवनः श्रेष्ठ २–३२
सरथतुरग २–५१
सर्वैरन्तःपुरैः १–२
सहजो मे प्रहरणं २–५५
स्रुग्भाण्डमरणी १–१८
हन्त सर्वे प्रसन्नाः ३–२६
हितमपि परुष १–४०
हृतप्रवेगो यदि ३–११

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
२७६

महाकविभासविरचितम्

प्रतिमानाटकम्

'गङ्गा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च

डा० गङ्गासागररायः

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक
पोस्ट बाक्स नं० ११३९
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन, (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी—२२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारू प्रिन्टर्स, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०५६
मूल्य : रु. ६०.००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ का परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल पाठ एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ३३३४४५

शाखाएं :

चौखम्भा संस्कृत भवन
पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)
☎ : ३२०४१४

चौखम्भा पब्लिकेशन्स
४२६२/३ अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२
☎ : ३२६८६३९

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
276

PRATIMANATAKA

OF

BHASA

[With 'Gangā' Sanskrit and Hindi Commentaries]

Edited and Commented by

Dr. GANGA SAGAR RAI, M. A., Ph. D.
All India Kashiraj Trwst
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar Near Madag n)
VARANASI-221 001 (INDIA)

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*

Phone : 333445

Second Edition : 2000

Branches :-

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
Post Box No. 1160
CHOWK (The Benaras State Bank Bldg.)
VARANASI - 221001
✆ : 320414

CHAUKHAMBHA PUBLICATIONS
4262/3, Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi-110002
✆ : 3268639

निवेदन

भासनाटक चक्र की टीका और भाषानुवाद शृङ्खला में प्रतिमानाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम संतोष का अनुभव कर रहे हैं। आशा है कि भास के अन्य नाटकों की टीकायें भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेंगे और तदुपरान्त भास के विषय में एक साङ्गोपाङ्ग पूर्ण परिचयात्मक अध्ययन भी दे सकेंगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थों तथा कवियों की कृतियों में बहुचर्चित थे परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता कि वे प्रकाशन के साथ ही संपूर्ण देश में पठित और व्याख्यात होनें लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम में यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य में हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणिमिश्र नें सहायता की है और मुद्रण संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा नें सहायता की है। एतदर्थ इनका मैं अधमर्ण हूँ। इस संस्करण में अज्ञान या प्रमादवश, जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उनके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। इसके प्रकाशन में चौखम्भा संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरंजीवि राजेन्द्र जो नें जो तत्परता दिखाई और अनुपम प्रेस के स्वामी नें जो धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमारराय के प्रतिधन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी
विजयदशमी २०४९

गङ्गासागर राय

प्रतिमानाटकम्

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यो के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन हैं। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक लहराई हैं। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता हैं जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व का चरम परिषाक होता हैं—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता हैं। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया हैं। भास ने तेरह नाटकों की रचना की हैं एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई हैं। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार; सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों एवं विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ हैं। संस्कृत-साहित्य के नाट्य-जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियाँ—

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास मणि के समान नाट्य-जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा हुआ एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में पड़े थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थीं। सबसे पहले १९१२ ई० में महामंहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावन्नकोर राज्य में तञ्जोर पुस्तकालय से करल लिपि में १३ नाटकों की जों पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं। उसको उन्होंने प्रकाश में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोंगान किया था।

इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाट्य-साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे। महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ निम्नलिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्नि मित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट प्रश्न कहलवाया है कि प्रसिद्ध यशवाले भास, सोमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक सम्मान क्यों हो रहा है—

'प्रथितयशसाँ भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्त्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः'।

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभापण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले, तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास को संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि-परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्यपति राज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलन मित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैलाकर भास ने नाटकीय

कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्राप्त किया है ।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्दे अ आणन्दो ॥ —गउडवहो ।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविताकामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

—प्रसन्नराघव १.२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में भास के काव्यगुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

दण्डी—अवन्तिसुन्दरी ।

(७) नाट्यदर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है ।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः……।"

(८) शारदातनय (१२ वीं सदी) ने 'भावप्रकाश' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है ।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः ।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है ।

'क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।'

—नाटयशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका ।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराजविजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का 'विष्णुधर्म' नाटक अभी अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के गाल में समाविष्ट होती हुई केवल सूक्ति मात्र ही रह गई और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे ।

भास का जीवनवृत्त—

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करनेवाले महाकवि भास का जीवन-वृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है । अपने देश में आत्मकथा लिखने की परम्परा नहीं थी । भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के एवं अनुयायी एवं वैष्णव मतावलम्बी, सशक्त नाटककार हैं । भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान बताया है । महाकवि भास वर्णाश्रम धर्म को माननेवाले, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र के पिता, पतिचरणानुगामी पत्नी के पति एवं संतानप्रिय पिता थे । देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' ।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपको में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

'शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

'चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥'

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा हैं । भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे ।

इमां सागरपर्य्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्का राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है कि—

हमारे राजा ससागरा उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्णकुण्डलों के समान अलंकृत हो रहे हैं । भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्षस्थानीय हैं । यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी ।

भास के नाटकों की खोज—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत को आलोकित करनेवाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये ? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके । भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुलपरम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरंजक इन नाटकों का क्या ? सुमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त है । विद्वानों नें नाटकों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य-विस्तार के साथ हो साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों कों विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था, फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकछत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था । उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने देवनागरी लिपि में उद्धृत सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग विदेशी आक्रमणकारियों को दिया । जिसके परिणामस्वरूप

उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियां काल के गाल में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयीं। प्रो० वी० राघवन् ने जो हस्त लेखों की खोज की है वह देवनागरीलिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए हैं उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्था तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म कौ ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय प० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासदवत्तम्, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा उरुभङ्ग के हस्तलेख मिले, इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पर लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ अभिषेक तथा प्रतिमानाटक की हस्तप्रतियाँ प्राप्त कीं। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति नहीं प्राप्त हो सकी। यह भी संभव हो सकता है कि यह कर्णभारम् का अग्रिम अंश हो।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स्लाइब्रेरी मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय के हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भी एक प्रति की नकल को।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित

किया, वे निम्नलिखित हैं—

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण
(२) अविमारक
(३) स्वप्नवासवदत्त
(४) प्रतिमा नाटक
(५) मध्यमव्यायोग
(६) पाञ्चरात्र
(७) अभिषेक
(८) दूतवाक्य
(९) दूतघटोत्कच
(१०) कर्णभार
(११) उरुभङ्ग
(१२) बालचरित
(१३) चारुदत्त

गोण्डलनिवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया। बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करनेवाले सज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रामाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले सज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एक-कर्तृकत्व—

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रतिपाद्य भास के १३ नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्न चिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पाई जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगलपाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—उदयनवन्दुसवर्णा…'
—स्वप्नवासवदत्त ।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो ……प्रतिज्ञायौ० । इत्यादि ।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त

सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह राजा के एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गई है जिसका शासन हिमालय से विन्ध्य एवं पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक है।

> इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्।
> महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६-१९, तथा अन्य नाटकों में भरतवाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा के नियमों का भास के नाटकों में उल्लंघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नामसाम्य पाया जाता है।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभासित वाक्यों (पाठों) का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाट्य में अविहित कुछ शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्य-निर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य, यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताकास्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन राजा उपयुक्त होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्सराज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जब कि कञ्चुकी यह सूचना देने आता हैं कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एव लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता हैं कि 'राम'। जब कि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ हैं। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये श्रीमानो !) का प्रयोग कई स्थानों पर है।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों को खण्डित किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्रनामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पाई जाती है। जैसे—अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पाञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिलायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां'

महाराजाय' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पाई जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।'

—अविमारक ४।२

(ख) तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।

—बाल० १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यश रूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई। 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' (पञ्चरात्र १, २५)

'हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' (कर्ण० १७)

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह संतोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पाञ्चरात्र और स्वप्नवासदवत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

इन नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटक के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करनेवाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे, सभी नाटकों को भासकृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटी, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज, डा० बार्नेट ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भासकृत नहीं मानते।

तृतीय वर्ग—डा० सुकथनकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड़ दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल के रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है कि—

(क) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल में प्राप्त होना।

(ख) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(ग) रीति ग्रन्थों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नहीं है।

(घ) महामहोपाध्याय कुप्पु स्वामी शास्त्री का विचार है कि स्वप्नवासवदत्ता एवं प्रतिज्ञा नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है यो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इस आधार पर चाक्यारों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

चाक्यारों के रचना की अप्रामाणिकता—

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि कों देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजनशक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया ? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई ? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(क) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होनें से प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल भी उसके अभाव का कारण हो सकता हैं। इसके साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश-विदेश में प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार-प्रसार न हो।

(ख) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन है एवं यह भी सम्भव हो सकता हैं कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ ही यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(ग) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हों एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर इन अंशों को उसमें समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(घ) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति में आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई—

पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन् या तेन मारन के किसी सभापण्डित ने इन नाटकों की रचना की है क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि रखा था अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में हैं या दाक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राजसभाओं में रहता तो अपनी कृतियों में अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, आदि, औदीच्य, एवं शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन, आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई। भास के नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटकों की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में साक्ष्य लिया जा सकता है—

> 'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
> स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिलकुल अप्रामाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक चाक्यार, पल्लवनरेश का सभापण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रामाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भासरचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामवतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य हैं परन्तु सभी नाटकों की रचना भासकृत नहीं है।

विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय—

संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करनेवाले महाकवि भास के समय-निर्धारण में विद्वानों में मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हे ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। भास को दसवीं शती में मानने वाले विद्वान भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते हैं।

अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ईस्वी सन् चतुर्थ शतक के बीच का स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश—

दक्षिण के विद्वान महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं इसके सम्बन्ध में उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में ही प्राप्त हुए हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण

भास ने अपने नाटक प्रतिमा में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अतः इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया हैं, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मतों की अप्रामाणिकता—

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसकी उस देश का निवासी नहीं कहां जा सकता, क्योंकि यह भी संभव है कि किसी कवि की रचनाओं की ख्याति दूसरे देशों में हो तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नतंन तथा राजनीनिक उथल-पुथल का समय था, इसलिए भास के नाटक-चक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक-संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गई है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित हैं।

वस्तुतः भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया हैं। उनमें प्रमुख हैं अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन; कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, वंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामों के आधार पर कहा जा सकता है भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होंने जो लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है। भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र, मलय, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन किया है।

भास का धर्म—

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक-कर्म-काण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

भास की शैली—

महाकवि भास के नाटकों की शैली संस्कृत नाटयजगत् में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। भास ने अपनी शैली के माध्यम से 'गागर में सागर' भरने वाली उक्ति चरितार्थ की है। इनकी छोटी से छोटी उक्तियों में भावगाम्भीर्य एवं रसपेशल भावों की व्यञ्जना अपना विशेष महत्त्व रखती है।

इनके लम्बे एवं क्लिष्ट पद काव्य की दृष्टि से भले ही उपयोगी हों परन्तु इनके सरल एवं छोटे पदों के महत्त्व का नकारा नहीं जा सकता। भास के नाटक में प्रयुक्त भाषा एवं शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय संस्कृत लोक-व्यवहार की भाषा रही होगी।

भास के नाटकों में आलङ्कारिक शैली का नितान्त अभाव है, भास ने अपने नाटकों में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे सरस और सरल अलङ्कारों का प्रयोग किया है। भास के नाटकों के पात्रों की भाषा एवं शैली इतनी प्रभावात्मक तथा अर्थगाम्भीर्य से युक्त है कि सहज ही दर्शकों के हृदय (मन) को अपनी ओर खींच लेती है। संक्षिप्त शब्दों के द्वारा ही भास ने भावों की अभिव्यक्ति अच्छे ढंग से की है। जैसे—'अनुक्त्वैव वनं गताः'। —प्रतिमा २।९६

इस प्रकार की संक्षिप्त शैली के द्वारा भास ने राम-लक्ष्मण-सीता के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति की है। भास के नाटकों में प्रभावशाली शैली के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—प्रतिज्ञा नाटक में महासेन अपनी पत्नी अङ्गारवती से वासवदत्ता के वर के सम्बन्ध में बातचीत कर रहा है। उसी समय कञ्चुकी आकर उदयन का नाम लेता है।

---

[1] ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास', पृ० ७; यही मत डा० पुसालकर का भी है।

इसी प्रकार अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह सूचित करता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम-लक्ष्मण का वध हो गया, अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा ? उसी समय एक राक्षस आकर कहता है कि 'राम'। इस प्रकार की उक्तियों के प्रयोग द्वारा लेखक दर्शक एवं पाठक के हृदय में आलोड़न पैदा कर देता हे।

भास की शैली प्रसादगुण युक्त है, परन्तु वीररस के वर्णन में वह ओज का भी प्रदर्शन करती है। भास शृङ्गार एवं वीररस की व्यञ्जना में सफल हैं। जैसे—

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते,
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः॥

—स्वप्न० ४।१।

उस समय उज्जयिनी में जाने पर और अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता की इच्छा के अनुसार देखकर मेरे अनिर्वचनीय अवस्था में पड़ने पर कामदेव ने अपने पाँचों बाणों से मेरे ऊपर प्रहार किया। आज भी उन बाणों से मेरा चित्त विद्ध ही है। फिर भी (पद्मावती से विवाह होने पर मैं विद्ध हो गया हूँ। कामदेवों पाँच बाणों से ही युक्त है तो फिर उसने छठाँ बाण कहाँ से मारा है ?

चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षीं,
भ्रमरमुखविदष्टां किञ्चिदुत्कृष्य मालाम्।
असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी,
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः॥

—उरुभंग २६।

जिनका मुकुट चंचल और कंपित हो रहा हो, जिनके नेत्र क्रोध के कारण लाल और विशाल हो गये हैं भ्रमरों के द्वारा जिसका रस चूस लिया गया है ऐसी माला को कुछ खींच कर और शरीर पर लटकते हुए नीले और ढोले वस्त्र कों संभालते हुए बलदेव जी ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे कि परिवेष (मण्डल) से युक्त चन्द्रमा ही पृथ्वी पर अवतीर्ण हो गया हो।

भास के पदों में साध्य की सफलता के लिए साधन की कठोर सहनता पर भी जोर दिया गया है। इस प्रकार का यह वर्णन द्रष्टव्य है—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्,
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां,
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥

—प्रतिज्ञा १.१८

काष्ठ में घर्षण करने के पश्चात् ही अग्नि उत्पन्न होती हैं, पृथ्वी के खोदने के पश्चात् जल प्राप्त होता हैं, उत्साही व्यक्तियों के लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है, कार्य को उचित मार्ग से शुरू कर वे सफल हो जाते हैं।

भास यदि किसी प्राकृतिक छटा एवं दृश्य का वर्णन करते हैं तो इतनी स्पष्टता पूर्वक करते हैं कि पाठक एवं दर्शक को सहज ही भावबोध हो जाय।

जैसे—संध्यावर्णन—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम्॥

—अवि० २।१२।

पूर्व दिशा अन्धकार से पूर्ण तथा पश्चिम दिशा सन्ध्यारुणा हो रही है, दो रूपों में बँटा हुआ यह आकाश अर्धनारीश्वर के समान शोभायमान हो रहा है। एवं—

खगा वासापेताः सलिलमवगाढो मुनिजनाः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥

—स्वप्न० १।१६।

चिड़ियाँ घोसलों में चली गईं। तपस्वी लोग स्नान करने लगे। प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है, धूआँ तपस्वियों के वन में फैल रहा है, दूर से गिरे हुए ये

सूर्य भी अपने किरणों को इकट्ठा कर रथ को मोड़कर धीरे-धीरे अस्त पर्वत की चोटी में प्रवेश कर रहे हैं।

भास के नाटकों में रात्रि का वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

—चारुदत्त १।१९।

यह गाढ़ा अन्धकार है। इस समय अन्धकार मानों अङ्गों का विलेपन कर रहा हो, आकाश मानो काले अञ्जन की वर्षा कर रहा हो, अतएव असत् पुरुष की सेवा की भाँति मेरी दृष्टि निष्फल हो गई है।

एवं—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः, पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमार्गाः।
तमसि दशदिशो निमग्नरूपाः प्लवतरणीय इवायमन्धकारः॥

—अविमारक३।४।

मार्ग रूपी नदियों में अन्धकार प्रवाहित हो रहा है, मकान नदी-तट के समान प्रतीत हो रहे हैं, दसो दिशाएँ अन्धकार में निमग्न हो रही हैं और अन्धकार इतना गाढ़ा हैं जैसे इसे नाव से पार करना पड़ेगा।

भास ने अपनी शैली के द्वारा वन, रात्रि, मध्याह्न, प्रकृति, आदि सभी को मनोरंजक एवं हृदयहारी स्वरूप प्रदान किया है।

महाकवि भास ने अपने नाटकों में इस प्रकार की शैली का प्रयोग किया है जो सरस, सरल, समास-दुरूहता से दूर पाठकों एवं दर्शकों को आह्लादित करती है, भास की भाषा एवं शैली दोनों आपस में इस प्रकार अनुस्यूत हैं कि एक दूसरे को अलग करने पर उसका अर्थसौन्दर्य ही समाप्त हो जाता है। भास की शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा है परन्तु वे अपने शैलीगत वैशिष्ट्य के कारण अन्य कवियों से अलग पहचान बनाये हुए है।

भास की नाट्यकला—

भास के नाटकों में भरत द्वारा निर्देशित नाट्य नियमों का उल्लंघन होने पर भी उनके नाटक नाटकीय कला के प्रदर्शन में सर्वोत्तम हैं। भास ने अपने नाट्य-

कथाओं का आधार पुराण, इतिहास, महाभारत, रामायण आदि को बनाया है। एवं इसके साथ ही अपनी मौलिक सृजनक्षमता के द्वारा उसके कथानक में परिवर्तन एंवं रोचकता प्रदान की है। इनके प्रायः सभी नाटक अभिनेय हैं।

भास ने अपने नाटकों में अधिक पात्रों का प्रयोग किया है इसका मुख्य कारण यह है कि इनके कथानक विस्तृत हैं। महाकवि भास पात्रों के चरित्र-चित्रण में निपुण हैं, अपने वर्णन-चातुर्य एवं नाट्य-नैपुण्य द्वारा भास ने नाटकोय पात्रों का चरित्राङ्कन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। भास के नाटकों की मुख्य विशेषता है पात्रों के सम्वाद शैली में रोचकता दे कर पाठक एवं दर्शक को आह्लादित करना, इनके संवाद लघु विस्तार वाले होते हैं, इनके पात्र आवश्यकता अनुसार ही बोलते हैं एवं कहीं पर ऐसा संवाद नहीं आया है जिसे वाग्विस्तार की संज्ञा दी जाय या जिससे पाठक एवं दर्शक ऊब जायँ। भास ने अपने नाटकों में मानव जीवन के सभी पहलुओं का विवेचन किया हैं। भास नाट्यकला के अङ्कन में सफल हुए हैं।

भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव—

महाकवि भास संस्कृत-नाट्य जगत् में दृश्यकाव्य लिखनेवाले सबसे प्राचीन लेखक हैं, इनकी कृतियों का प्रभाव परवर्ती नाटककारों पर किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ अवश्य पड़ा है।

भास के नाटकों का प्रभाव महाकवि कालिदास, शूद्रक के मृच्छकटिक, भवभूति के मालती माधव एवं विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में देखा जा सकता है।

भास एवं कालिदास की रचनाओं में सादृश्य स्थलों की अवतारणा में देखा जा सकता है, परन्तु ध्यातव्य यह है कि कालिदास प्रतिभासम्पन्न कवि थे अतः दूसरे भावों को परिवर्तित करने या परिष्कार करने की उनके अन्दर क्षमता थी, अतः स्पष्ट साम्य देखना असम्भव है, परन्तु परिस्थितियों, घटनाओं, विचारों के मूलतत्व में साम्य देखा जा सकता हैं—

भास ने यौगन्धरायण से कहलवाया है—

पूर्वं त्वयाऽप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥
—स्वप्नवास० १—४।

कालिदास मेघदूत में यक्ष से कहलवाते हैं—
नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावऽलम्बे
तत्कल्याणि ! त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्याऽत्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥'
—मेघ० उत्तर० ४६। ।

भास के अभिषेक नाटक में—
यस्यां न प्रियमण्डनाऽपि महिषी देवस्य मण्डोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।
वीजन्तो मलयाऽनिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥'
—अभिषेक ३।१।

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में—
'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति पयो युष्मास्वपीतेषु या,
नाऽऽदत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्' ॥
—अभिज्ञानशाकुन्तल ४।८।

भास के स्वप्नवासवदत्ता में तपोवन का वर्णन—
'विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षा पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥
—स्वप्नवासवदत्ता १।१२।

महाकवि कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तल में—

“नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्पन्दरेखाऽङ्किताः ॥’

—अभि० १-१३।

भास के बालचरित में—

“हृदयेनेह तत्राऽङ्गैर्द्विधा भूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता” ॥

—बाल० १।१३।

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में—

‘गच्छति पुरः शरीरं, धावति पश्चादसंस्थितं चेतः।
चीनांऽशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥’

—अभिज्ञानशा० १।३०।

भास ने कञ्चुकी के द्वारा स्वप्नवासवदत्ता में कहलाया है—

‘संभषक। न खलु न खलूत्सारणा कार्या, पश्य—”
परिहरतु भवान्नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।
नगरपरिभवान्विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥’

—स्वप्न वा० १।५।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त के द्वारा सेनापति से कहलवाया है—
‘तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति,’ तथा निषेद्धव्याः। पश्य—

‘शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ॥’

—अभिज्ञान शा० २।७।

प्रतिमा नाटक का संक्षिप्त कथानक

महाकवि भास के द्वारा बिरचित प्रतिमा नाटक सात अङ्कों में बिभक्त है। इसमें राम के राज्याभिषेक की तैयारी से प्रारम्भ होकर राम के चौदह वर्ष वनवास एवं पुनः राज्याभिषेक के साथ नाटक समाप्त होता है।

प्रथम अङ्क—इसमें प्रतीहारी कञ्चुकी से कहती है कि देवासुर-संग्राम में विजयी महाराज दशरथ की आज्ञा है कि यथाशीघ्र राम के राज्याभिषेक की तैयारी पूरी कर ली जाय। कञ्चुकी कहता है कि उनके आज्ञानुसार सभी मांगलिक वस्तुएँ, तीर्थों का जल एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित कर दी गयी हैं। इसके पश्चात् प्रतिहारी महामान्य राजपुरोहित को बुलाने एवं अभिनेताओं को सामयिक अभिनय के लिए सूचित करने का निर्देश देता है। इसी समय अवदातिका नामक परिचारिका प्रवेश करती है जो परिहास में नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा के यहाँ से वल्कल ले आयी है। सीता की दृष्टि उसके ऊपर पड़ती है। वह उसे वल्कल लौटाने का निर्देश देती हैं परन्तु फिर कुतूहलवश उस वल्कल को धारण करती है। इसी समय सीता को चेटी बताती हैं कि आज युवराज राम का राज्याभिषेक होगा। इस खबर के पारितोषिक रूप में सीता अपना आभूषण उतार कर उसे दे देती हैं। इसी समय मंगलध्वनि सुनाई पड़ती है परन्तु वह एकाएक बन्द हो जाती है।

उसी समय वहाँ पर श्री रामचन्द्रजी उपस्थित होते हैं और सीता को अभिषेक के सम्बन्ध में बताते हैं कि अभिषेक कार्य ज्यों ही प्रारम्भ हुआ त्यों ही मंथरा ने आकरकै केयी के कानों में कुछ कहा और अभिषेक कार्य रुक गया। श्री रामचन्द्र जी सीता को वल्कल वस्त्र में देखकर कारण जानने का प्रयास करते हैं एवं स्वयं वल्कल धारण करना चाहते हैं, इसी समय जनकोलाहल होता है एवं कञ्चुकी राम से कहता है कि महाराज की रक्षा करें? राम पूछते हैं कि किससे रक्षा करें। तो वह कहता है कि आत्मीयजनों से। तब राम कहते हैं कि आत्मीयजन से रक्षा करना कठिन है क्योंकि शत्रु तो शरीर पर आघात करता है परन्तु आत्मीयजन तो मर्मस्थान पर प्रहार करते हैं। कञ्चुकी बताता है कि कैकेयी ने आपका अभिषेक रोक दिया एवं राज्य भरत के लिए माँगा है, महाराज

इस बात को सुनकर मूर्च्छित हो गये। इसी समय क्रोधित लक्ष्मण आते हैं और वे कहते हैं कि मैंने इस धरती को युवती-शून्य करने का निश्चय कर लिया है क्योंकि युवती के कारण ही इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई हैं। राम को लक्ष्मण राज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते हैं, परन्तु राम उन्हें समझाते हैं। तब लक्ष्मण कहते हैं कि मुझे आपके वनवास के लिए ज्यादा कष्ट है। फिर राम उन्हें शान्त करते हैं। ईसके बाद राम वन को जाने के लिए तैयार होते हैं। उनके साथ सीता भी चलने को कहती हैं। राम लक्ष्मण से सीता को रुकने हेतु समझाने को कहते हैं, परन्तु लक्ष्मण सीता के विचारों का अनुमोदन करते हैं एवं लक्ष्मण के वन-गमन प्रस्ताव का सीता समर्थन करती हैं। इसके पश्चात् राम, सीता, लक्ष्मण वन के लिए प्रस्थान करते हैं। राम, सीता को घूंघट हटाने का निर्देश देते हैं और कहते हैं कि यज्ञ, विवाह, वन, संकट के अवसर पर स्त्रियों को देखना निर्दोष है।

द्वितीय अङ्क—इसमें कञ्चुकी द्वारा यह ज्ञात होता है कि राम के विरह में महाराज दुःखित होकर समुद्रगृह में जाकर सो गये हैं एवं पुत्रविरहाग्नि में उनका हृदय जल रहा है। राम के वनगमन से सारे नगरवासी दुःखित हैं। महाराज पुत्रवियोग में प्रलाप कर रहे हैं और रानियाँ उन्हें ढाढस बँधा रही हैं। उसी समय सुमन्त्र के अकेले लौटने की सूचना मिलती है जो राम, लक्ष्मण एवं सीता को पहुँचाने गये थे। इस समाचार को सुनकर महाराज मूर्च्छित हो जाते हैं। पुनः चेतना आने पर सुमन्त्र महाराज के पास आते हैं। सुमन्त्र से महाराज बार-बार राम, सीता एवं लक्ष्मण के नाम को ठीक क्रम में बताने को कहते हैं एवं अपने लिये सन्देश पूछते हैं, एवं पुत्रवियोग के इस विरहाग्नि में तड़पते हुए अपने प्राण त्याग देते हैं।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क में भट से मालूम होता है कि इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। महाराज दशरथ की प्रतिमा स्थापित की गई है जिसके दर्शनार्थ अन्तःपुर के लोग आने वाले हैं। इसके बाद रथारूढ़ भरत सारथि के साथ दिखाई पड़ते हैं जो अपने पिता के बीमारी के बारे में सारथि से पूछते हैं और रथ के वेग को बढ़ाने के लिए कहते हैं। सारथि भरत

को महाराज की मृत्यु का समाचार नहीं बताता । रथ अयोध्या के पास आता है और नगर से एक भट आकर सूचित करता है कि उपाध्यायों का विचार है कि कृत्तिका नक्षत्र अब एक घड़ी शेष है। इसके बीत जाने पर आप रोहिणी नक्षत्र में नगर में प्रवेश करें । भरत गुरुओं की आज्ञा मानकर रुक जाते हैं । भरत बिश्राम करने के लिए पास के देवमन्दिर में जाते हैं जहाँ पर उसका संरक्षक देव कुलिक मिलता है जो भरत को उस मन्दिर में इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रतिमाओं के बारे में बताता है एवं यह भी बताता है कि यहाँ केवल मृत नृपतियों की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं । देवकुलिक स्थापित प्रतिमाओं का परिचय देता है कि ये प्रतिमाएँ दिलीप, रघु, अज की हैं । दशरथ की प्रतिमा को पहचान कर भरत मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं, एवं देवकुलिक के द्वारा ही भरत राम, सीता, लक्ष्मण के वनवास की घटना भी जान जाते हैं और पुनः मूर्छित हो जाते है । उसी समय कौशल्या आदि देवियाँ सुमन्त्र के साथ वहाँ प्रतिमादर्शन के लिए आती हैं । भरत कौशल्या एवं सुमित्रा से अपनी अनपराधता को बताते हैं और अपनी माता कैकेयी को कोसते हुए कहते हैं कि कौशल्या एवं सुमित्रा के बीच तुम उस प्रकार लग रही हो जैसे गंगा और यमुना के बीच कोई कुनदी प्रविष्ट हो । इसके पश्चात् सुमन्त्र भरत को सूचित करते हैं कि वशिष्ठ एवं वामदेव आपका अभिषेक करना चाहते हैं क्योंकि जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें विनष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा विनष्ट हो जाती हैं । परन्तु भरत प्रजा को अपना अनुसरण करने को कहतें हैं एवं राम-लक्ष्मण के पास वन के लिए प्रस्थान करते हैं ।

चतुर्थ अङ्क—इस अङ्क में नन्दिनिका नामक दासी विजया को वताती है कि कुमार भरत राज्याभिषेक के प्रस्ताव कों ठुकराकर राम से मिलने वन को चले गये । इसके पश्चात् रथ पर बैठे हुए भरत सुमन्त्र के साथ तपोवन पहुँचते हैं एवं भरत सुमन्त्र से राम के आश्रम के बारे मेंपूछते हैं । उनके वार्तालाप की ध्वनि राम, लक्ष्मण और सीता को सुनाई पड़ती है । राम कहते हैं कि यह ध्वनि किसी आत्मीय जन की है और लक्ष्मण को देखने के लिए कहते हैं । इसके बाद सभी लोग आपस में मिलते हैं । भरत राम से लौटने एवं राज्यभार संभालने का आग्रह करते हैं परन्तु राम भरत को पिता के सत्य की शपथ और अपनी शपथ देकर भरत को राज्यसंचालन के लिए कहते हैं । भरत एक शर्त पर राज्य-

संचालन के लिए तैयार होते हैं कि आप चौदह वर्षों के बाद अपना राज्य वापस लें लें। तबतक उस राज्य का मैं केवल रक्षक रहूँगा। भरत राम से उनकी खड़ाऊँ भी माँग लेते हैं कि मैं उसी पादुका के अधीन राज्यभार का संचालन करूँगा। इसके बाद राम भरत को उसी दिन अयोध्या लौटने को कहते हैं। सीता के द्वारा आश्चर्य व्यक्त करने पर राम कहते है कि राज्य की रक्षा के लिए कुमार को आज ही लौटना उचित होगा। राम सुमन्त्र से कहते हैं कि आप पिता के समान ही भरत का भी संरक्षण कीजियेगा। इसके बाद भरत अयोध्या को लौट आते हैं।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में सीता आश्रम के छोटे-छोटे वृक्षों को सींच रही है। उसी समय दुःखित हृदय राम वहाँ पहुँचते हैं और सीता को देखकर कहते हैं कि जो हाथ कभी दर्पण उठाने में थक जाता था वही हाथ अब घड़ा उठाने में भी नहीं थकता। इसके बाद राम सीता के समीप जाते हैं और पिता दशरथ के श्राद्ध-दिवस के बारे में बताते हैं कि कल पिताजी का वार्षिक श्राद्ध-दिवस है एवं मैं पिताजी की प्रतिष्ठा और अपने सामर्थ्य के अनुसार श्राद्ध करना चाहता हूँ। सीता राम से कहती हैं कि वैभव के साथ पिताजी का श्राद्ध तो कुमार भरत करेंगे ही, आप फल-जल से श्राद्ध करें, राम कहते हैं कि कुश पर फलों को देखकर पिता को वनवास की घटना याद आयेगी और वे दुःखित होंगे।

इसी समय सन्यासी के भेष में रावण वहाँ पहुँचता है। राम उसे अतिथि समझकर उसका सत्कार करते हैं। रावण अपने को काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण एवं साङ्गोपाङ्ग वेद, मनु का धर्मशास्त्र, महेश्वर का योगशास्त्र, मेघातिथि का न्याय-शास्त्र एवं प्राचेतस के श्राद्धकल्प का ज्ञाता बताता है। श्राद्धकल्प का जानकार होने के कारण राम उससे पिता के श्राद्ध के बारे में पूछते हैं कि किन किन वस्तुओं से पितरों को सन्तुष्ट किया जा सकता है। रावण बताता है कि कुश, तिल, बार्ध्रीणस, गाय एवं गैंडा ये सभी सामान्य जन के लिए हैं। विशिष्ट व्यक्तियों के लिए रावण बताता है कि हिमालय की सातवीं चोटी पर काञ्चन पार्श्व नामक मृग रहता है। उससे पितृगण अधिक सन्तुष्ट होते हैं। उसी समय वह मृग वहाँ दिखाई देता है। राम मृग की प्राप्ति के लिए दृढ़ता दिखाते हैं। राम उसे लेने के लिए जाते हैं एवं सीता को निर्देश देते हैं कि वह सन्यासी की सेवा

करें, लक्ष्मण उस समय तीर्थयात्रा से लौटते हुए कुलपति की अगवानी करने चले गये हैं। एकाकी सीता कुटिया में प्रवेश करना चाहती हैं उसी समय रावण अपना स्वरूप बदलकर परिचय देता है एवं सीता का हरण करता है। सीता बचाओ राम, बचाओ लक्ष्मण का आर्तनाद करती हैं, जटायु सीता का हरण कर ले जा रहे रावण पर आक्रमण करता है।

षष्ठ अङ्क में दो तपस्वी सीता को हरण कर ले जा रहे रावण को देखकर कहते हैं कि वनवासियों रक्षा करो, रक्षा करो। दोनों रावण एवं जटायु का युद्ध देखते हैं एवं जटायु के घायल होकर गिरने पर कहते हैं कि इसे स्वर्ग मिले। दृश्य परिवर्तन होता है।

कञ्चुकी प्रतिहारी से कहता है कि भरत को सूचित कर दो कि सुमन्त्र राम से वन में मिल कर लौट आये हैं। सुमन्त्र दुःखित मन से भरत से मिलते हैं और भरत को बताते हैं कि जब मैं गया उस समय तपोवन राम से शून्य था, और वे वानरराज सुग्रीव से मिलने गये हैं जहाँ उसके बड़े भाई ने उसकी पत्नी एवं उसके राज्य का हरण कर लिया है। दोनों समानधर्मी हैं। भरत समानधर्मी का अर्थ नहीं समझ पाते है और सुमन्त्र को महाराज की सौगन्ध देकर पूछते हैं। सुमन्त्र उन्हें बताते हैं कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। भरत इस खबर को सुनकर मूर्छित हो जाते हैं और चेतना आने पर सीधे अन्तःपुर में कैकयी के पास जाते हैं एवं सीताहरण की घटना से कैकेयी को उलाहना देते हैं। कैकेयी भरत को पिता के शापग्रस्त होने की बात बताती हैं और सुमन्त्र को निर्देश देती है कि वह महाराज के शापग्रस्त होने की घटना का वर्णन भरत से करें। सुमन्त्र भरत को बताते हैं कि बहुत पहले महाराज शिकार करने गये थे, उसी समय एक अन्ध दम्पति का लड़का तालाब में पानी का घड़ा भर रहा था, घड़े की आवाज सुनकर महाराज ने उसे हाथी समझकर शब्दवेधी बाण द्वारा उस मुनिपुत्र को मार दिया, इस घटना से दुःखित अन्ध तपस्वी ने महाराज को शाप दिया कि तुम भी पुत्रशोक में तड़प-तड़प कर मरोगे। कैकेयी भरत को यह भी बताती है कि तुम्हारे ननिहाल में रहने से तुम्हारा वियोग महाराज को सह्य हो गया था एवं यह भी बताती है कि मैं केवल चौदह दिन

का वनवास कहने वाली थी। परन्तु मानसिक असंतुलन के कारण चौदह साल कहा गया। सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर भरत माता केकेयी से क्षमा मांगते हैं। एवं भरत राम की सहायता के लिए जाने को उद्यत होते हैं। सहसा कोलाहल होता है एवं प्रतिहारी के द्वारा ज्ञात होता है कि बड़ी रानी सीताहरण की खबर सुनकर मूर्च्छित हो गयी हैं। कैकेयी एवं भरत बड़ी माता को ढाढस बंधाने जाते हैं।

सप्तम अङ्क—इसमें तपस्वी से ज्ञात होता है कि राम ने सीता के हरणकर्त्ता रावण का वध कर दिया। विभीषण को लंका का राज्य दे दिया, एवं प्रमुख वानरों तथा वानरराज के साथ वे पधार रहे हैं। सीता एवं राम तपस्वियों के बीच में आकर उन्हें आनन्दित कर रहे हैं। राम सीता को वनवास-स्थलों को दिखाकर उनकी स्मृति दिला रहे हैं, राम सीता से काञ्चनपार्श्व मृग की चर्चा करते हैं एवं सीता मना करती हैं। इसी समय एकाएक शंखध्वनि, नगाड़े की आवाज सुनाई पड़ती है। लक्ष्मण राम को आकर बताते हैं कि ससैन्य भरत आपके दर्शनार्थ आ रहे हैं। यह जानकर राम एवं सीता का कुतूहल बढ़ता है। माताओं के साथ भरत प्रवेश करते हैं। और सभी आश्रम में प्रेमपूर्वक मिलते हैं। कैकेयी राम को राज्याभिषेक स्वीकार करने के लिए कहती हैं, सभी लोग मुनिजन, अमात्य एवं प्रजा राम का अभिषेक करते हैं। राम इसे स्वीकार करते हैं। राम आकाश की ओर देखकर कहते हैं—पिताजी, आप चिन्तामुक्त हो जाइयें। आपकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। सभी लोग राम को बधाई देते हैं। कैकेयी कहती है कि मै राज्याभिषेक को अब अयोध्या में देखना चाहती हूँ। राम उसका अनुमोदन करते हैं। उसी समय रावण का पुष्पक विमान आता है और सभी लोग उस विमान पर सवार होकर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटकीय पात्रों का चरित्र-चित्रण

राम—

महाकवि भास पात्रों के चरित्रांकन में सिद्धहस्त हैं। इनके नाटक के पात्र नाटक में भारस्वरूप न होकर उसे जीवंतता प्रदान करते हैं और नाटकीय प्रवाह को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। राम प्रतिमा नाटक के नायक हैं। भास ने राम के

चरित्र को त्याग एवं तपोनिष्ठा की प्रतिमूर्ति, मातृ-पितृभक्त, भ्रातृवत्सल, प्रजावत्सल, सत्यनिष्ठ, शौर्य एवं वीरता गुणों से युक्त, दृढ़ सर्कल्पवाला, राज्यलोभ से निःस्पृह, अनासक्त आदि गुणों से युक्त चित्रित किया है ।

राम के राज्याभिषेक का कार्य प्रारम्भ हो चुका है कि सहसा महाराज राज्याभिषेक के कार्य को रोक देते हैं । राम कहते हैं कि इससे लोगों को आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए; क्योंकि यदि पुत्र ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया तो इसमें आश्चर्य क्या है ?—

राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः ।
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? —१।५।

राम सोचते हैं कि अच्छा हुआ, राज्यभार टल गया । मैं वही राम का राम बना रह गया एवं महाराज महाराज ही रह गये ।

'दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः' ।

कञ्चुकी के द्वारा कैकेयी को विपत्ति उपस्थित करनेवाली कहने पर राम कहते हैं कि जिसका इन्द्र के समान पति एवं मेरे समान पुत्र हो वह अपकर्म नहीं कर सकती—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ —१।१३ ।

राम कहते हैं कि मेरा राज्याभिषेक न होने से अच्छा हुआ क्योंकि महाराज का वन जाना रुक गया, मैं पिताजी के सान्निध्य में रह गया, नये राजा के चरित्र के प्रति प्रजा को जों आशंका उत्पन्न होती वह नहीं हुई एवं मेरे भाई भी राज्य-सुखभोग से वञ्चित नहीं हुए ।

रामायण में राम कैकेयी पर क्रुद्ध होकर कहते है—

मम प्रव्रजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा ।
सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयताम् ततः ॥
—वा० रा० अ० का० २२।१२

परन्तु प्रतिमानाटक के पात्र राम कैकेयी के कथन को उचित मानते हैं और कहते हैं विवाह-शुल्क में पुत्र के लिए प्रतिज्ञात राज्य अगर वे माँग रही हैं तो

इसमें उनका लोभ नहीं है एवं मैं ही इस दृष्टि से राज्यलोभी हूँ, क्योंकि भाई के राज्य का हरण करने वाला हूँ ।

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥
—१।१५।

राम अपने एवं भरत में अन्तर ही नहीं समझते हैं । वे लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम्हारे लिए हम दोनों समान हैं ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥
—१।२० ।

राम माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना पाप समझते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं कि पूज्य पिता, माता कैकेयो एवं निर्दोष भाई भरत के प्रति आक्रोश करना पाप है ।

ताते धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ —१।२२ ।

राम सत्य व्रत के पालक हैं । भरत को राम यह बताते हैं कि किसी अन्य कारण से मैं वन नहीं आया हूँ बल्कि पिता के सत्य वचन का पालन करने के लिए आया हूँ ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं
नि वत्स दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥ —४।२० ।

राम के गुणों का वर्णन उनके शत्रु भी करते हैं । रावण उनके शौर्य, पराक्रम एवं आतिथ्य-सत्कार में प्रवीणता गुणों को देखकर कहता है कि 'राम' इस शब्द में ही मानों सम्पूर्ण संसार समाहित हो गया है ।

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥—५।१४।

राज्याभिषेक हो जाने पर राम आकाश की तरफ देखकर कहते हैं कि पितृदेव ! आप चिन्तारहित होकर स्वर्ग का आनन्द लीजिए। मैं न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करूँगा।

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम्॥ —७।११

राम के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि उनका चरित्र समस्त वैयक्तिक एवं नैतिक गुणों से सर्वथा परिपूर्ण है।

सीता—

नाटककार ने सीता को नाटक की नायिका एवं राम की सहधर्मिणी के रूप चित्रित किया है। कवि ने उनके चरित्र को आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है। सीता राम के राज्याभिषेक होने पर न तो अधिक प्रसन्न होती हैं और न राज्याभिषेक न होने पर अतिदुःखित होती हैं। वे राम से कहती हैं कि अच्छा हुआ—महाराज महाराज रहे एवं आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे।

"प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।"

राम के वनगमन के समय सीता केवल राम से यही कहती हैं कि मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ।

"ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्"

राम जब सीता को वन की कठिनाइयों के सम्बन्ध में भय उत्पन्न करते हैं तो वह कहती हैं कि वन मेरे लिए राजमहल के समान है।

"तत् खलु मे प्रासादः"

राम के द्वारा सास-ससुर की सेवा करने के लिए कहने पर सीता कहती हैं कि मैं इसके लिए देवताओं को सिर झुकाकर प्रणाम करती हूँ—

"एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते"

प्रतिमा नाटक की कथा का मूल रामायण पर आधारित है परन्तु प्रतिमा नाटक एवं रामायण के पात्रों के चरित्रों में अन्तर दिखलाई पड़ता है। रामायण की सीता राम के वनगमन के समय दृढ़तापूर्वक कहती है कि—

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघवः।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ।।

—वा० राम० अयो० ।

नाटक में राम के साथ सीता के वन गमन प्रस्ताव का समर्थन करते हुए लक्ष्मण कहते हैं—स्त्रियों के लिए पति ही सर्वस्व हैं।

अनुचरति शशाऽङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ।।

—१।२५ ।

भरत सीता को दीप्तिपूर्ण नारी, रूप, तेज एवं राजर्षि जनक के तप के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में मानते हैं।

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ।।

—४।१४।

सीता राजमहल में रहने की अभ्यस्त होने पर भी वन में आश्रमवासियों के समान सारे कार्यों को करती हैं। आश्रमसुलभ फल-पुष्पों से देवपूजा एवं छोटे छोटे पौधों को जल से सींचती है। साथ ही आश्रम पर उपस्थित अतिथियों का सत्कार भी करती हैं। आश्रम पर अतिथि वेष में रावण के उपस्थित होने पर उसके पैरों को धोने के लिए जल लाती हैं। सीता राम की सहधर्मिणी पत्नी होने के कारण आवश्यकतानुसार उन्हें परामर्श देती हैं। पिता के श्राद्धकर्म के विषय में वे राम से कहती हैं कि वैभव के अनुसार भरत पिताजी का श्राद्ध करेंगे, आप अपनी स्थिति के अनुकूल फल-जल से श्राद्ध कर लें।

आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरतः श्रद्धया, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्र'।

सीता के सम्बन्ध में रावण कहता है कि यह सीता पृथ्वी पर स्त्रियों के बीच अकेली अरुन्धती है।

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ।। —५।८ ।

सीता के हृदय में आत्मबल है। रावण द्वारा अपहृत होने पर वह कहती हैं कि मैं तुम्हें शाप देती हूँ—"शप्तोऽसि"

रावण सीता के पतिव्रत तेज के बारे में कहता है कि जो मैं आकाश में उड़ते समय सूर्य की किरणों से नहीं जला, वही मैं सीता के शाप देती हूँ इन शब्दों के प्रभाव से झुलस गया।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः॥ —५।२०

भास ने सीताहरण के समय सीता के चरित्रोत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए लक्ष्मण को वहाँ से हटा दिया है जिससे लक्ष्मण के प्रति क्रोधयुक्त वचन कहने का अवसर ही नहीं रह जाता। इस प्रकार सीता का चरित्र नितान्त उज्ज्वल चित्रित किया गया है।

लक्ष्मण—

लक्ष्मण के चरित्र में त्याग, भ्रातृप्रेम, आत्मविश्वास, वीरता एवं उत्साह का सम्मिलित रूप देखा जा सकता है। लक्ष्मण भ्रातृ-प्रेम की बलिवेदी पर सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। लक्ष्मण को जब यह ज्ञात होता है कि राम के राज्याभिषेक को रोककर उन्हें वन भेजने में कैकेयी का हाथ है, तो वे क्रोधित हो जाते हैं एवं क्रोधावेश में कहते हैं कि इस पृथ्वी को युवतीशून्य बना दूंगा, क्योंकि स्त्री के ही कारण आज यह स्थिति उत्पन्न हुई है।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया,
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्॥ १।१८॥

लक्ष्मण वीर हैं। उनकी ओजपूर्ण एवं क्रोधयुक्त वाणी सुनकर सीता राम से कहती हैं कि रोने के समय कुमार लक्ष्मण ने धनुष उठाया हैं। राम के पूछने पर लक्ष्मण और अधिक उग्र हो जाते हैं और कहते हैं कि आपका राज्य छिन गया, पिता की दशा शोचनीय है और आप पूछते हैं।

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता॥ —१।१९।

लक्ष्मण का क्रोध इतना अधिक है कि उसे देखकर राम कहते हैं तीनों लोक को जलाकर भस्म कर डालने के लिए उद्यत वक्र भ्रूरेखा विधि की इच्छा की तरह अटल मालूम पड़ रही है।

त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥ १।२१

राम के द्वारा समझाने पर लक्ष्मण कहते हैं कि आपने बिना जाने ही मुझे उलाहना देना शुरू कर दिया। मुझे आपके राज्य प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि चौदह वर्ष के वनवास का दुःख है।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया १।२३॥

लक्ष्मण भ्रातृप्रेम के सच्चे भक्त हैं। वे राम के बिना अकेले एक क्षण भी नहीं रहना चाहते हैं। राम के साथ वन जाने के लिए लक्ष्मण उद्यत हैं एवं राम से कहते हैं कि आज तक तो आपने हमेशा आधा हिस्सा दिया, परन्तु इस वल्कल को क्यों अकेले धारण कर रहे हैं।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी॥ १।२६

सीता के द्वारा लक्ष्मण को मना करने पर कहते हैं कि पूज्य राम के एक पैर की सेवा आप करें एवं एक पैर की सेवा मैं करूँगा।

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ?।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ १।२७

लक्ष्मण समुद्र के समान घोर एवं गम्भीर हैं परन्तु क्रोध की अवस्था में वे अपना विवेक खो देते हैं। लक्ष्मण के क्रोधित होने पर राम कहते हैं कि समुद्र को समान गम्भीर इस लक्ष्मण को किसने उभाड़ दिया—

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १।१७॥

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लक्ष्मण भ्रातृ-प्रेम की बलिवेदी पर सर्वस्व न्योछावर करनेवाले तथा अपने अग्रज राम के परम भक्त हैं।

भरत—

प्रतिमा नाटक में त्याग एवं तप की प्रतिमूर्ति राम के समान ही उदात्त गुणों से

युक्त भरत के चरित्र का चित्रण किया गया है। भरत के चरित्र में कहीं लोभ एवं स्वार्थ नहीं दिखलायी पड़ता। भरत के ननिहाल में रहने पर ही अयोध्या में सम्पूर्ण घटनायें घटित हो जाती हैं। दूत उन्हें लाने के लिए जाता है एवं नगर के बाहर प्रतिमा गृह में ही उनको सम्पूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी मिल जाती है। भरत कहते हैं कि यदि स्त्री-शुल्क में याचित वाक्य का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँगा तब तो मुझे अपनी देह की शुद्धि करनी होगी।

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द—
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ।। ३।९।।

भरत को जब यह ज्ञात होता है कि अयोध्या पिता एवं भाई से शून्य है तब उन्हें अयोध्या में जाना व्यर्थ लगता है। जैसे कोई व्यक्ति जलविहीन नदी की ओर जाता है।

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुजानामि क्षीणतोयां नदीमिव।। ३।१०

भरत इस दुःखद घटना के सम्बन्ध में कहते हैं कि पहले कैकेयी ने कहा होगा कि 'मेरा बेटा राज्याधिरूढ़ हो।' इस प्रार्थना के सफल हो जाने पर राम को वन भेजने का वरदान माँगा होगा। फिर राम को वल्कल वेष में वन जाते देख महाराज के प्राण पखेरू उड़ गये होगें।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः।३।११।

भरत माता कैकेयी के ऊपर इतने क्रुद्ध हैं कि कैकेयी की तुलना गंगा एवं यमुना के बीच प्रविष्ट कुनदी से करते हैं।

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमनुयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता।। ३।१६

इतना कहने के पश्चात् भी भरत को आत्मसंतोष नहीं मिलता है। जब कैकेयी कहती हैं कि मैंने क्या किया है? इस पर भरत और अधिक क्रोधित होते

हैं और कहते हैं कि तुमने क्या नहीं किया ? राम, सीता एवं लक्ष्मण को वल्कल वेष में जंगल भेज दिया। इस शोकसागर में निमग्न कर महाराज को मरने के लिए विवश किया। सम्पूर्ण अयोध्या को रुलाया एवं पुत्र-प्रणयिनी माताओं को शोकसागर में डुबाया।

वयमयशसा, चीरेणार्या, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः॥ ३।१७।

भरत अपनी माता कैकेयी पर इतने अधिक क्रुद्ध हैं कि नये धर्म की स्थापना की घोषणा करते हुए कहते हैं कि—जो स्त्री अपने स्वामी से विद्रोह करे वह पुत्रवती होने पर भी माँ कहलाने की अधिकारिणी नहीं है।

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः
पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं
भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता॥ ३।१८॥

भरत कैकेयी से पूछते हैं कि तुम्हें यदि अपयश ही प्रिय था तो बीच में मेरा नाम क्यों जोड़ दिया। यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की अभिलापा थी, तो क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ?

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात्।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः॥ ३।२१॥

भरत कहते हैं कि महाराज के जीवन की चिन्ता किये बिना तुमने राम को वन भेज दिया। सीता को वल्कल वेष में देखकर तुम्हारा हृदय नहीं फटा। ऐसा मालुम पड़ता है कि विधि ने तुम्हारे हृदय को वज्र से भी कठोर बनाया है।

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-
महो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्॥ ३।२२

भरत अयोध्या में घटित समस्त घटनाओं के निमित्त होने के कारण अपने को पापी समझते हैं। इसीलिए सुमन्त्र को रोकते हुए वे कहते हैं कि केवल नाम लेने मे ही प्रायश्चित्त नहीं होता। क्या ब्रह्मघातियों की सूचना दूसरे देते हैं? मैं स्वयं सूचित करूंगा कि एक कृतघ्न, अधम एवं उद्दण्ड व्यक्ति आया है। क्या वह दर्शन की प्रतीक्षा करे या लौट जाय।

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ४।५॥

भरत राम से निवेदन करते हैं कि मैं शरीर से आपके साथ वन में रहना चाहता हूँ। राज्य की रक्षा तो आपके नाम मात्र से हो जायेगी।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ ४।१९

राम भरत के गुणों के बारे में कहते हैं कि मैं उस पिताजी के सम्बन्ध में सोचता हूँ कि जिन्होंने इस भरत जैसे अपने पुत्र को न पहचान कर प्राण त्याग दिये।

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ ४।२२

भरत से राम कहते हैं कि तुम्हारे प्रख्यात गुणों ने मुझे जीत लिया। तुम्हारी अन्तरात्मा अति पवित्र है।

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातै गुंणैर्निर्जितः ॥ ४।२३

भरत जब राम की खड़ाऊँ माँग लेते हैं तब राम कहते हैं कि मैंने बहुत समय में जितना यश अर्जित किया था, भरत ने उतना यश थोड़े समय में ही अर्जित कर लिया है।

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ ४।२६

भरत सीता हरण की घटना सुनकर दुःखित होते हैं एवं कैकेयी को उलाहना देते कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ ?

य: स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सोता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥ ६।१३

भरत एक वीर योद्धा भी हैं। वे कहते कि इस सागर को अपने मतवाले हाथियों से अन्धकाराच्छन कर दूंगा। तथा अपनी सेना, से रावण के साथ इस सागर को भी म्लान कर दूंगा।

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ।। ६।१६

सम्पूर्ण नाटक में भरत का चरित्र निखरता गया है और उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है।

दशरथ—

महाराज दशरथ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के पिता हैं। महाराज अपने पुत्रों को बहुत अधिक प्यार करते हैं। पुत्र-प्रेम ही महाराज दशरथ के जीवन का आधार है। अधिक सन्तति प्रेम ही महाराज दशरथ के मृत्यु का कारण हुआ। राम के वनगमन को देखकर वे विचलित हो जाते हैं। पुत्र-वियोग में महाराज उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाय-हाय की रट लगाकर उधर ही देख रहे हैं जिधर राम-लक्ष्मण गये हैं।

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ।। २।३।

महाराज दशरथ हाय-हाय की रट लगाते हुए कहते हैं कि क्या सचमुच राम, लक्ष्मण और सीता बन को चले गये।

हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि। मैथिलि। पतिस्थितचित्तवृत्ते।
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ।। २/४।।

दशरथ को आश्चर्य होता है कि भ्रातृ-प्रेम के आगे लक्ष्मण ने भी मुझे त्याग दिया। महाराज शोक की वेदना में संतप्त प्रलाप करते हुए कहते हैं कि वैदेही

राम एवं लक्ष्मण के साथ तुम भी मुझे छोड़कर चली गयी ।

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः ।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ।। २।५।।

दशरथ कहते हैं कि सूर्य के समान राम, सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण एवं दिन की समाप्ति पर छाया के समान सीता भी चली गयी ।

सूर्य इव गतो रामः, सूर्यदिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ।। २।७।।

महाराज दशरथ पुत्र के वियोग में इतने व्याकुल हैं कि पुत्र वियोग की अपेक्षा निःसंतान होना श्रेयष्कर समझते हैं ।

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
बने व्याघ्री च कैकेयो त्वया किं न कृतं त्रयम् ।। २!८।।

महाराज दशरथ कौशल्या से कहते हैं कि तुम सौभाग्यशालिनी हों क्योंकि तुमने अपने गर्भ में राम को धारण किया था, अभागा तो मैं हूँ जो अग्नि की तरह अत्यन्त असह्य दुःख कों न सह सकता हूँ न दूर कर सकता हूँ ।

अयं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ।। २।९।।

राम को वन तक पहुँचाने सुमंत्र गये थे । महाराज दशरथ के हृदय में आशा का दीप जल रहा था कि सम्भवतः सुमंत्र के साथ राम एवं लक्ष्मण लौट आयें । परन्तु रथ के साथ अकेले सुमंत्र के लौटने की खबर से महाराज के आशा के तन्तु टूट जाते हैं एवं महाराज कहते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यमराज ने दशरथ को लेने के लिए रथ भेजा है ।

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ।। २।११

दशरथ कहते हैं कि राम वन गये । मेंरे प्राण भी मुझे छोड़ चले, कैकेयी अब तुम अपना मनोरथ पूर्ण कर लो ।

गतो रामः, प्रियं तेऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ।। २।२०

राम के वियोग में महाराज दशरथ के प्राण निकल गये।

"अये ! रामकथा श्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः कोऽत्र ?"

कौशल्या—रामजननी कौशल्या का हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण दिखलाई पड़ता है। वह एक तरफ पतिपरायणा पत्नी हैं तो दूसरी ओर आदर्श जननी हैं। प्रतिमा नाटक का मूल कथानक रामायण पर आधारित है, परन्तु रामायण की कौशल्या एवं प्रतिमा नाटक की कौशल्या के चरित्र में अन्तर दिखलाई पड़ता हैं। रामायण में कैकेयी के व्यवहार से क्षुब्ध कौशल्या भरत से कठोर शब्दों में कहती हैं—

भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्॥
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी।"

परन्तु प्रतिमा नाटक की कौशल्या भरत को कहती है कि बेटा तुम्हारा संताप शान्त हों।

'जात ! निः सन्तापो भव।'

कौशल्या भरत को कैकेयी को प्रणाम करने के लिए प्रेरित करती हैं एवं कहती हैं कि बेटा ! तुमने सब तरह के शिष्टाचार को जानते हुए भी अपनी माँ को प्रणाम क्यों नहीं किया ?

"जात। सर्वसमुदाचारमध्यस्थ किं न वन्दसे मातरम् ?

कौशल्या का चरित्र एवं गुण महान् हैं। महाराज दशरथ का पुत्रवियोग की विरहाग्नि में उद्वेग बढ़ जाने पर कौशल्या पतिपरायणा पत्नी के समान महाराज को सान्त्वना देती हुई कहती हैं कि महाराज ! अधिक रोकर अपने को अधिक अधीर न करें। वनवास की अवधि पूर्ण होने पर राम, लक्ष्मण एवं जानकी को आप देखगे।

'अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम्। ननु सा तौ कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति।"

महाराज दशरथ कौशल्या से कहते हैं कि तुम सौभाग्यशालिनी हो, क्योंकि राम को तुमने अपने गर्भ में धारण किया है।

'कौशल्ये ! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः'।

कौशल्या के चरित्र में दया, ममता, करुणा, त्याग, सेवा, परोपकार, वात्सल्य आदि सभी गुणों का मंजुल समन्वय है। तभी तो पुत्र वियोग की विरहाग्नि में दग्ध मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए महाराज दशरथ कहते हैं कि कौशल्ये ! मेरी देह का स्पर्श करो, मैं आँखों से तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ। राम की ओर लगा मन अब तक लौट नहीं रहा है।

अङ्गं मे स्पृश कौशल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते॥ २।१८॥

कैकेयी—

नाटकीय कथावस्तु के विन्यास के विस्तार में कैकेयी का महत्त्व बहुत अधिक है। इसी के वचनों के आधार पर नाटक में महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित होती हैं। राम का वनवास एवं महाराज की मृत्यु का कारण यहीं बनती है। भरत कैकेयी से कहते हैं तुमने राम को जंगल भेजने, महाराज को मरने, सीता को जंगल में भटकने, अयोध्यावासियों को रोने सबको एक साथ विवश किया।

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः॥ ३।१७॥

भरत कैकेयी को धिक्कारते हुए कहते हैं कि तुम महाराज के जीवन की चिन्ता न कर राम को वन भेज दिया। सीता को वल्कल वेष में देखकर तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। मालुम पड़ता है कि ब्रह्मा ने तुम्हारा हृदय वज्र से भी कठोर बना दिया है।

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम्॥ ३।२२॥

कैकेयी को चारों ओर से अपयश ही मिलता है। महाराज दशरथ कहते हैं— राम जंगल गये। मेरे प्राण भी मुझे छोड़ चले। अब तुम अपना मनोरथ पूरा कर लो।

गतो रामः प्रियं तेऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २।२०।!

भास ने नाटक में कैकेयी के चरित्र में एक नयी उद्‌भावना की है। भरत जब कैकेयी से मिलने जाते हैं, कैकेयी के कुछ कहने से पूर्व ही वह कहते हैं कि राम तुम्हारी आज्ञा से जंगल गये थे, वहाँ पर उनकी पत्नी सीता का हरण हो गया, अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। हा शोक, तुम्हारी तरह बहू को पाकर महापराक्रमी इक्ष्वाकुवंश को वधू हरण के दिन भी देखने पड़े।

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥ ६।१३॥
हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥ ६।१४

इस कटु वचन को सुनकर कैकेयी की मानवीय दुर्बलताएँ कुछ क्षण के लिए उबल पड़ती हैं। परन्तु कैकेयी अपने हृदय के उद्वेग को रोकते हुए भरत से कहती हैं कि बेटा ! तुम महाराज के शापग्रस्त होने के सम्बन्ध में नहीं जानते हो। सुमन्त्र से कहती हैं कि आप महाराज के शापग्रस्त होने के सम्बन्ध में बता दें। सुमन्त्र कहते हैं—

"श्रूयताम्—पूरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः।"

यह सुनकर भरत स्तब्ध हो जाते हैं। उनके मुख से केवल 'शान्तं पापम्' शब्द निकलता है। आगे सुमन्त्र बताते हैं—

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥ ६।१५॥

महाराज के शापग्रस्त होने की इस घटना को सुनकर भरत कहते हैं। त्रैलोक्य

साक्षी है कि मेरी मां निर्दोष है, एवं भ्रातृ स्नेह के कारण मैंने जो तुम्हारा अपमान किया उसके लिए मुझे क्षमा कर दो। कैकेयी का हृदय वात्सल्यप्रेम से हिलोरें लेने लगता है। और वह कहती हैं कि कौन ऐमी माता होगी जो अपने पुत्र के अपराध कों क्षमा न कर देगी।

"जात। का नाम माता पुत्रस्यापराधं न मर्षयति ? उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। कोऽत्र दोषः ।।"

इसके विपरीत रामायण में कैकेयी को सारे अनर्थों की जड़ बतलाया गया है—

कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ।।
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनी।
मुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसुनि ।।
वा० रा० अयो० का० ७३–४५

महाकवि भास ने कैकेयी के चरित्र में एक नवीन घटना का उन्मेष किया है। एवं राम के राज्यभार का उत्सव जंगल में ही सम्पन्न कराया हैं। कैकेयी प्रस्ताव का अनुमोदन करती हुई कहती हैं कि बेटा राम! बहुत दिनों से यही इच्छा है कि तुम राज्य भार ग्रहण करो।

"जात! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः।"

कैकेयी राम से कहती हैं जाओ पुत्र राज्याभिषेक स्वीकार करो।

"गच्छ जात! अभिलषाभिषेकम्"

कैकेयी राम की जयघोषणा से अत्यन्त प्रसन्न होती हैं।

"अम्महे! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते।"

इस प्रकार नाटककार ने कैकेयी के चरित्र में पर्याप्त परिमार्जन करने का प्रयास किया है।

सुमन्त्र—

वृद्ध सचिव सुमन्त्र महाराज दशरथ के परम हितैषी तथा सुख-दुःख में साथ रहने वाले हैं। सुमन्त्र इक्ष्वाकुवंश के परम हितैषी हैं। राम को वन में छोड़-

कर लौटने पर सुमन्त्र महाराज दशरथ को ढाढस बंधाते हैं कि राम चौदह वर्ष बाद अवश्य लौट कर आयेगें। सुमन्त्र अयोध्या में घटित घटनाओं को देखकर अपनी लम्बी आयु को कोसते हुए कहते हैं कि लम्बी आयु ने मुझमें अनेक बुराइयाँ ला दी हैं। राजा की मृत्यु के बाद मैं उनके सूने रथ का सारथि हूँ।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥
३।१५॥

सुमन्त्र निरन्तर इक्ष्वाकुवंश को सुरक्षित देखना चाहते हैं। वे भरत से कहते कि आप राज्यभार ग्रहण करें, क्योंकि जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें विनष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा विनष्ट हो जाती है।

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ ३।२३

सुमन्त्र सौम्य प्रकृति के साधु पुरुष हैं। वह सभी के विश्वासभाजन हैं। तभी तो राम सुमन्त्र से कहते हैं कि आप महाराज दशरथ की भाँति ही कुमार भरत का संरक्षण करें।

तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः" ।

सुमन्त्र जब पुनः राम का पता लगाने जाते हैं तो वही लौट कर भरत को सीताहरण की खबर देते हैं। एवं सुमन्त्र ही कैकयी के संकेत पर भरत को महाराज दशरथ के शापग्रस्त होने की घटना से अवगत कराते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटकीय घटनाओं को सुमन्त्र गति प्रदान करते हैं।

प्रतिमा नाटक नाम की अन्वर्थकता

महाकवि भास के द्वारा विरचित तेरह नाटकों में से प्रतिमा नाटक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह नाटक सात अंकों में विभक्त है। इस नाटक का नामकरण नाटक के तृतीय अङ्क में घटित घटना के आधार पर रखा गया है। इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं की मूर्तियों को रखने के लिए देवकुल होते थे। भरत ननिहाल से लौटते समय नगर के बाहर रुक कर विश्राम के लिए गृह में जाते हैं। इस प्रकार जहाँ पर वे महाराज दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके मृत्यु का अनुमान

लगा लेते हैं। उसी घटना को आधार बनाकर महाकवि भास ने इस नाटक का नामकरण 'प्रतिमा' किया हैं। इस घटना की उद्भावना भी भास ने रामायणी कथा के आधार पर न कर स्वतः की हैं।

समीक्षण—

प्रतिमा नाटक महाकवि भास के तेरह नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह नाटक सात अङ्कों में विभक्त है। इस नाटक के सृजन में नाटककार ने अपनी नाट्यकला लेखन की क्षमता एवं अपूर्व कलासौष्ठव का परिचय दिया है। इस नाटक में भास ने नाटकीय पात्रों के चरित्रोत्कर्ष में अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए सम्पूर्ण नाटक को एक नया कलेवर प्रदान किया है। नाटक के पात्र परिस्थिति के अनुसार भाव एवं भाषा का प्रयोग करते हैं। इनके पात्र नाटक में भारस्वरुप न होकर बल्कि नाटक को जीवंतता एवं गति प्रदान करते हैं।

वाक् विस्तार की जगह भास ने संक्षिप्त एवं परिमित प्रयोग द्वारा ही अपने भावों की मार्मिक व्यंजना की है। जैसे—"अनुक्त्वैव वनं गताः" प्रतिमा २।१७। इनके नाटकीय पात्र संवाद शैली में कुशल तथा लघु विस्तारी वाक्यों का प्रयोग करते हैं। पात्रों के कथन लम्वे और निरर्थक नहीं होते हैं।

प्रतिमा नाटक का प्रधानरस करुण है। अन्य रस इसके सहायक हैं। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री इसमें 'धर्म वीररस' का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। वनवास का प्रसंग उपस्थित होने पर लक्ष्मण के वचनों में वीररस दिखलायी पड़ता है। परन्तु नाटक में करुण रस ही प्रधान है।

काव्यकला की दृष्टि से यह नाटक पर्याप्त सफल है। महाकवि भास प्रकृति के चित्रण में सफल हैं। मानवीय तथा वाह्य प्रकृति का चित्रण तथा अपनी अनुभूतियों को सरल ढंग से चित्रित करना इनकी विशेषता है। रात के घोर अंधकार का चित्रण इन्होंने कितने सरस ढंग से चित्रित किया है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

ऐसा प्रतीत होता है कि अंधेरा शरीर को लेप रहा है। आकाश से काजल की वर्षा हो रहीं है। जिस प्रकार दुष्टों की सेवा निष्फल होती हैं उसी तरह अन्धेरे के कारण लोगों की दृष्टि निष्फल हो गयी।

आश्रम के वृक्षों को जल से सीचने का वर्णन भास ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतितानेते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटा विले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ ५।२

पेड़ों के थालों में पड़े फेनिल जल अभी घूम रहे हैं और प्यासे पक्षी पास आकर भी इस मैले पानी को नहीं पी रहे हैं। जल से भींगे कीड़े विलों से बाहर भागे आ रहे हैं। और पेड़ों की जड़ों में कई वलयाकार रेखायें पड़ गयी हैं।

ननिहाल से लौटते समय रथ पर आरूढ भरत द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्य कितने सुन्दर ढंग से नाटककार ने चित्रित किये हैं।

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्वृताम्बुर्निपतति महीनेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रथश्वाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ ३।२

रथ की तेज चाल से वृक्ष छोंटे से दिखाई दे रहे हैं और दौड़ते हुए मालूम पड़ते हैं। उछलते हुए जलवाली नदी की तरह पृथ्वी पहिए की धुरी में गिरती मालूम पड़ती है। तेजी से घूमने के कारण रथ चक्र के अरे दिखाई नहीं पड़ते। घोड़ों के टापों से उठने वाली धूलि पीछे नहीं, आगें गिर रही है।

प्रकृति को चेतन रूप में चित्रित करते हुए महाकवि भास ने प्रतिमा नाटक में जानकी की हँसी में सूर्यकिरण का बोध कराया है—

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ॥ १।९

महाकवि भास अलङ्कारप्रिय हैं। इनकी अलङ्कारयोजना सर्वत्र मनोहारिणी है। इन्होंने अलङ्कारों का प्रयोग कही भी प्रदर्शन मात्र के लिए नहीं किया है। भरत की यह उक्ति उपमा का सुन्दर उदाहरण है—

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुजानामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ ३।१०

पिता और भाई से शून्य अयोध्या में मैं उसी भांति प्रवेश कर रहा हूँ, जैसे कोई तृषित व्यक्ति जलहीन नदी में जल पीने जाता है ।

उपमा की स्वभाविकता लक्ष्मण के इस कथन में देखी जा सकती है—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ।। १।२५

राहु से ग्रसित होने पर रोहिणी चन्द्रमा का साथ देती है । वृक्षों के गिरने पर लताएं उससे लिपटी रहती हैं, गजराज के कीचड़ में फँसने पर हथिनी उसका साथ नहीं छोड़ती । अतः इन्हें भी अपने साथ जाने दें क्योंकि स्त्रियों के पति ही सर्वस्व है ।

वृक्षों एवं लताओं को अपने हाथों से सींच रही सीता का का वर्णन कितना मनोरम एवं सुन्दर है—

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ।। ५।३

जिसका हाथ कभी दर्पण उठाने में थक जाता था, वही हाथ अब घड़ा उठाने में भी नहीं थकता । वनवास ने लताओं के साथ नारी की कोमलता को कठोरता में बदल दिया ।

राम के द्वारा लक्ष्मण को वल्कल वस्त्र देते समय रूपक का सुन्दर उदाहरण है—

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः ।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ।। १।२८

राम ने कहा कि इस वल्कल को ग्रहण करो । यह तपरूपी संग्राम का कवच है । व्रतरूपी हाथी के लिए अंकुश है । इन्द्रिय रूपी घोड़े की लगाम है । और धर्म रूपी रथ का सारथी है ।

निम्नलिखित पद्य में अलङ्कारयोजना के साथ वर्ण्य विषय का चित्रांकन दर्शनीय है—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।

सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः,
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ २१

युगान्त समीप आने पर डगमगाते हुए सुमेरु के समान या सूखते हुए अप्रमेय सागर के समान, या तेजहीन सूर्य के समान अपार शोक सागर में निमग्न, होते हुए दुर्बल महाराज दशरथ चेतना शून्य हो रहे हैं ।

●

नाटकस्य पात्राणि

पुरुषपात्राणि

सूत्रधारः	प्रयोगप्रबन्धकः
राजा	दशरथः अयोध्यानरेशः
रामः	नायकः,दशरथस्य ज्येष्ठपुत्रः
लक्ष्मणः	रामस्य भ्राता, सुमित्रानन्दनः
भरतः	कैकेयीनन्दनः
शत्रुघ्नः	सुमित्राद्वितीयसुतः
सुमन्त्रः	दशरथस्य मन्त्री
रावणः	लङ्कापतिः, प्रतिनायकः
काञ्चुकीयः	अन्तःपुरचरो वृद्धः
सूतः	भरतस्य सारथिः
देवकुलिकः	प्रतिमागृहप्रबन्धकः
सुधाकारः	भवनमार्जनाधिकारी
वृद्धतापसौ	रावणजटायुयुद्धदर्शकौ
तापसः	
नन्दिलकः	तापससेवकः
भटः	अधिकारी

स्त्रीपात्राणि

नटी	सूत्रधार पत्नी
सीता	नायिका, जनकतनया रामभार्या
कौशल्या	राममाता
सुमित्रा	लक्ष्मणशत्रुघ्नमाता
कैकेयी	भरतमाता
अवदातिका	सीतासखी
चेटी	सीतायाः परिचारिका
प्रतिहारी	दौवारिकी
विजया	कैकेयी परिचारिकाः
नन्दिनी	
तापसी	

॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

गङ्गानाम्न्या संस्कृतटीकया हिन्दी भाषानुवादेन
च संवलितम् ।

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभोषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥१॥

प्रथमः अङ्कः ॥

प्रणम्य भारतीं भक्त्या गौरीपुत्रं विनायकम् ।
विश्वेशं माधवं चैव भैरवं पापमर्द्दकम् ॥ १ ॥
वाग्देवीहासभूतस्य भासनाम्नो महाकवेः ।
प्रतिमानाटकस्यास्य सुसंक्षिप्तपदाक्षराम् ॥ २ ॥
गङ्गानाम्नीमिमां टीकां छात्रतुष्ट्येकहेतवे ।
गङ्गासागरशर्माऽहं कुर्वे वुधमनोरमाम् ॥ ३ ॥

अथ तत्रभवान् भासकविर्लोकानुरञ्जनाय प्रतिमानाटकं चिकीर्षुरादौ भूमिकारचयति—'नान्द्यन्ते सूत्रधार' इत्यादिना तत्र तावन्नाटकलक्षणम्—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।

इत्यादि साहित्यदर्पणोक्तलक्षणलक्षितं ज्ञेयम् ।

प्रारम्भे प्रारिप्सितप्रयोगविघ्नविघातैकप्रयोजनं मङ्गलं नितरामावश्यकं नाटकीयरचनानियमप्राप्तं च कर्त्तव्यमिति प्रथममुद्दिशन् कवि'र्नान्दीति' समारब्धवान् । नान्दी नन्दयति हर्पयति देवानिति नान्दी सा च स्तुतिरूपा तत्र नान्दीलक्षणं साहित्यदर्पणे—

'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।

एवंभूताया नान्द्या अन्ते यद्वा नान्दी पटहादिध्वनिस्तस्यान्ते परिसमाप्तावित्यर्थः । नान्दीविधानानन्तरमित्यर्थः । तत इति नान्द्यव्यवहितोत्तरकाले इति तसिल् प्रत्ययस्य सार्वविभक्तिकत्वात् सप्तम्याश्रयणम् । प्रविशति = रङ्गमञ्चं समागच्छति ।

कस्यात्र प्रवेश इत्याकाङ्क्षायामाह—सूत्रधार इति । सूत्रम् नाटकबीजम् तद्धारयति वहतीति सूत्रधारः । तल्लक्षणं यथा—

'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात्सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इहोदितः ।।

सूत्रधारेण स्थापकेन वा वस्त्वादिनिर्देशः कार्यः इति नाटकनियमस्यावश्यकताभ्युपगम्यत्वेन ।

सूचयेद् वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ।

इत्युक्तदिशा प्रधानपात्रनामधेयसूचनापुरःसरम् मङ्गलं निबध्नन् परिसमाप्तिकामः कविः पदविन्यासकौशलेन सूत्रधारद्वारा प्रधानपात्रोपक्षेपरूपं वस्त्वंशनिर्देशात्मकम् मङ्गलं समाचरति सीताभव इत्यादि ।

अन्वयः—यः देव्या रावणार्यप्रतिमः विभीषणात्मा च स सीताभवः सुमन्त्रतुष्टः सहलक्ष्मणः भरतः च सुग्रीवरामः अनुसर्गं पातु ।। १ ।।

व्याख्या—सीताभव इति—यः देव्या दीव्यतीति देवी तया, सीतया हेतुभूतया रावणारिः=रावयति रोदयति साधुजनान् कष्टदानकारणेनेति रावणः तदाख्यराक्षसविशेषः तस्य अरिः=शत्रुः सीताहरणकारणेनैव रावणः श्रीभगवतः रामचन्द्रस्य शत्रुरभूदिति रावणारिः—रावणशत्रुः अप्रतिमः नास्ति प्रतिमा उपमानं यस्य सः अप्रतिमः=अद्वितीयवीर इत्यर्थः । विभीषणात्मा विभीषणः रावणानुजः स आत्मा आत्मीयो यस्य सः विभीषणात्मा । विभीषणो हि समदुःखसुखः रामस्य आत्मीयः

सखा । स सीताभवः सीता = जनकदुहिता तस्या भवः क्षेमः क्षेमकारणम् । कार्यकारणयोरभेदादीदृक्प्रयोगः संभवति यद्वा सीताभवः क्षेमः यस्मादिति वहुव्रीहिः—सुमन्त्रतुष्टः-सुमन्त्रः = शोभनो मन्त्रः तेन तुष्टः = मुदितः नीत्याचरणेन संतुष्टः यद्वा सुमन्त्रनामकेन पितृसारथिभूतेन मन्त्रिणा वा तुष्टः = प्रीतः । सहलक्ष्मणः लक्ष्मणेन सहितः वर्त्तमानः लक्ष्मणसन्निधानः इति यावद् यद्वा सहः भ्रातुरर्थे वनवास—तत्र स्थित्यर्यानत्प्रेयसीहरणादिनानाक्लेशानां सोढा लक्ष्मणः तदभिधानो भ्राता यस्य सः । भरतः भरतीति भरस्तं तनोतीति भरतः = जगद्रक्षक इत्यर्थः । यद्वा लोकस्य भरणात् रक्षणाद् धारणात् पालनाच्च भरतः । सुग्रीवरामः सुष्ठु ग्रीवा यस्य स-सुग्रीवः कम्वुकण्ठ इत्यर्थः स चासौ रामः सर्वत्र रमणाद्रामः अनुसर्गम् सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः । वीप्मायामव्ययीभावः । पातु रक्षतु युष्मान् अस्मानिति शेषः । अथ चात्र सीता-राम-सुमन्त्र-सुग्रीव-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताभिधानानि नाटकीयानि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कारद्वारोपनिवद्धानि । अप्रतिमघटकप्रतिम-शव्दश्च एकदेशविकृतन्यायमहिम्ना प्रतिमा शव्दं स्मारयन् प्रतिमानाटकस्य नामधेयम् तद् वीजभूतं दशरथप्रतिमावृत्तं चावेदयति अत्र द्वादशपदा नान्दी सामान्यमङ्गलरूपेणोक्ता । यथोक्तम्—पदैर्दशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत । अत्र पदपदम् न श्लोकपादरूपम् किन्तु सुवन्ततिङन्तरूपपदभाजम् । तच्च श्लोके सीताभवः इत्यादि पृथक्पदानि कृत्वा गणनया द्वादशसंख्यानि भवन्ति । मुद्रालङ्कारः । सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थं परैः पदैः' इति तल्लक्षणम् । सीताभव इत्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेत्वलङ्कारः—हेतोर्हेतुमता साधर्ममभेदो यत्र वर्ण्यते' इति तल्लक्षणम् । विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि । 'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' इति तल्लक्षणम्—उपजातिश्छन्दः—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गयौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः इति लक्षणात् ॥ १ ॥

(नान्दी के अव्यवहितोत्तरकाल में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—जो देवी सीता के हरण किये जाने के कारण समस्त जगत् को रुलाने वाले रावण के शत्रु हैं, पराक्रम में अप्रमेय, रावणानुज विभीषण जिनका आत्मीय है अथवा सीता के साथ जिन्होंने रावण को मार कर लोक को आनन्दित किया । सीता का क्षेम संपादन करने वाले जो सुमन्त्र नामक अपने

आर्ये ! इतस्तावत् ।

नटी—अय्य ! इअम्हि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा] (गायति)

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनो सुसंहृष्टा ।

नेपथ्यमिति—नाटकीयपात्राणां तत्तद्वेषभूमिकाग्रहणसाधनभूतं स्थानम् । एतच्च यवनिकान्तर्गतं भवति ।

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते । इति तल्लक्षणम् । तदभिमुखं सम्मुखं दृष्ट्वा कथयतीत्यर्थः । प्रविश्य यवनिकान्तरतो वही रङ्गमञ्चं समागत्येत्यर्थः । आर्ये इति नटीं प्रति सूत्रधारप्रयुक्तं संबोधनवाक्यम् तथा च भरतः—पत्नी चार्येति संभाष्या । साहित्यदर्पणेऽपि—वाच्यौ नटीसूत्रधारौ आर्यआर्ये परस्परम् । इममिति-अचिरप्रवृत्तम् । गीयताम्=गानं क्रियताम् । तथा इति त्वदुक्तिः स्वीकृता । गायामीत्यर्थः । गातुमुद्यतायां तस्यां सूत्रधारः मध्ये स्वयमेव शरदः वर्णनं करोति । चरतीत्यादिना । अस्मिन् काले शरत्काले ।

अन्वयः—काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति ।

पिता के सारथी से अथवा सुन्दर मन्त्रणा से संतुष्ट हैं । लक्ष्मण जिनके सन्निधान में हैं अथवा जो उत्तम लक्षण से युक्त हैं ! जो इस संसार के भरण-पोषण करने से भरतस्वरूप हैं ऐसे वानरराज सुग्रीव से युक्त अथवा मनोहर ग्रीवा वाले सर्वत्र रमणकर्त्ता भगवान् श्री राम हम सभी नटों की एवम् आप सभी सामाजिकों की जन्म-जन्म में रक्षा करें ।

(नेपथ्य की ओर देख कर) आर्ये । इधर आओ ।

(प्रवेश कर)

नटी—आर्य ! यह लो मैं आ गई ।

सूत्रधार—आर्ये ! इस शरद् ऋतु के संबन्ध में कुछ गान सुनाओ ।

नटी—आर्य ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है अभी गाती हूँ ।

(वहाँ से जाती है)

सूत्रधार—इस समय पुष्पित काशसमूहों वाले नदी के बालुकामय तट पर

(नेपथ्ये)

अय्य ! अय्य ! [आर्य ! आर्य !]

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तौ)

व्याख्या—काशांशुकवासिनी-काशांशुः = काशपुष्पप्रकाशा के जले वसतीति काशांशुकवासिनी सुसंदृष्टा = नितरां मुदिता सती हंसी = वरटा पुलिनेषु नदीसैकतेषु चरति = यथेच्छमितस्ततो विहरति ॥ २ ॥

एवं सूत्रधारवर्णनप्रवृत्ते मध्ये एव नेपथ्यात् शब्दो भवति=आर्ये आर्ये इति । त्वरया द्विरुक्तिः । भवतु विज्ञातम्—कस्य पात्रस्येदं वचनमिति मया विदितमित्यर्थः । सूत्रधारोऽर्द्धविच्छिन्नं शरद्वर्णनं पुनः प्रारभमाणः नाटकाङ्गभूतं प्रस्तावनामुपक्षिपति मुदितेति—

अन्वयः—मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षी इव नरेन्द्रभवने (चरति)।

व्याख्या—मुदिता = मोदमाना रामराज्याभिषेकप्रसङ्गेन त्वरिता = स्वकार्ये ससंभ्रमम् संलग्ना, प्रतिहाररक्षी—प्रतिहारं = द्वारं रक्षति सा या । नरेन्द्रभवने—नरेन्द्रस्य = नृपतेः दशरथस्य भवने = प्रासादे यथा चरति तथा हंसी अपि चरतीति पूर्वेणान्वयः । अत्र पूर्णोपमालङ्कारः । उपमानः सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिविम्बनम् इति तल्लक्षणम् । अनुष्टुप् छन्दः । श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोरिति लक्षणात् । निष्क्रान्ताविति = रङ्गस्थलाद् गतावित्यर्थः ।

हंसिनी परम प्रसन्न हो इस प्रकार विहार कर रही है ।

(नेपथ्य में)

आर्य ! आर्य !

सूत्रधार—(सुनकर) अच्छा जान लिया । जिस प्रकार दशरथ के राजमहल में रामराज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न हुई द्वारपालिका श्वेत वस्त्र धारण कर शीघ्रता से इतस्ततः संचरण कर रही हैं ।

(तदनन्तर दोनों का रङ्गस्थान से प्रस्थान)

स्थापना ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! को इह कञ्चुईआणं सण्णिहिदो । [आर्य, क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो

स्थापनेति—सूत्रधारकृतः प्रस्तावोऽयम् । प्रारप्स्यमाणकथावस्तुनः स्थापनात् प्रस्तावनापरपर्याया स्थापनेत्यभिधीयते—नाटयशास्त्रकारैः । आमुखमपि एतस्या एव नामान्तरम् । यथा साहित्यदर्पणे-'नटीविदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा। सूत्रधारेण सहितः संलापं यत्र कुर्वते । चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः । आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावना तु सा । अन्यत्रापि—'विधेर्यथैव संकल्पो मुखतां प्रतिपद्यते । प्रधानस्य प्रबन्धस्य तथा प्रस्तावना मता' । पञ्चविधासु प्रस्तावनासु प्रवर्त्तकाभिधात्र प्रस्तावना । 'कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग् यत्र वर्णयेत् । तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्त्तकम्' इति ।

अथ प्रतीहार्याः प्रासादे संचरणे सूचिते तस्या एव प्रवेशं तावदाह प्रविश्येति । कञ्चुकी एव कञ्चुकीयस्तेषाम् कञ्चुकीयानां = अन्तःपुरचराणां वृद्धानाम् । कञ्चुकिर्हि राज्ञो भृत्यविशेषस्तस्य लक्षणं यथा 'ये नित्यं सत्यसंपन्ना कामदोषविवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते मता ।' एष च राज्ञः सन्निधावन्तःपुरे वा वर्त्तमानो वेत्रधरः । वृद्धप्रायो नाटकेषु यत्र तत्रोपवर्ण्यते । सन्निहितः = समीपस्थितः । महाराजः =महांश्चासौ राजा महाराजः 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति टच् तेन टिलोपः ।

देवासुरसंग्रामेषु—देवाश्चासुराश्च देवासुरास्तेषां संग्रामास्तेषु देवासुरसंग्रा-

---

स्थापना (प्रस्तावना या आमुख) समाप्त ॥

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य ! कञ्चुकियों में यहाँ कौन है ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—पूज्ये ! यहाँ पर मैं हूँ । क्या आज्ञा है ? कहिये क्या करना है

आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति । [आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयतामिति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य—

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।

मेषु = देवदानवयुद्धेषु अत्र संग्रामशब्दस्य बहुवचनान्तत्वेन नैकस्मिन् संग्रामे अपि तु बहुषु संग्रामेषु राज्ञो दशरथस्याप्रतिहतरथता सूच्यते । अप्रतिमहारथः—न प्रतिहतः अप्रतिहतः = अबाधप्रसारः महारथो रथमुख्यो यस्य सः । तथाभूतो दशरथः दशसु दिक्षु रथो यस्य सः दशरथस्तदाख्यो नृपविशेषः । आज्ञापयति = आदिशति । शीघ्रम्=अविलम्बम् = रामस्य, भर्तृदारकस्य युवराजश्रीरामचन्द्रस्य, राज्यप्रभावसंयोगकारका—राज्यस्य प्रभावः प्रभुत्वशक्तिस्तस्य संयोगस्य = सम्बन्धस्य कारकाः = संपादकाः राज्यप्रभावोत्पादकानि = छत्रचामरादिचिह्नानि अभिषेकसंभाराः = अभिषेकस्य संभाराः अभिषेकसंभाराः, पुण्यतीर्थसलिलम् = समुद्रसलिलं च सर्वा ओषधयः सुवर्णसिंहासनादीनि च आनीयन्ताम्=उपस्थाप्यन्ताम् एतच्चाग्रिमे श्लोके वक्ष्यते यत्रास्यभिषेकसंस्कारसमारोहो भविता तस्मिन् प्रासादे सर्वोऽपि सामग्रीसंभारः सज्जीक्रियतामित्यर्थः । भवति पूज्ये सङ्कल्पितम् उपस्थापितमेकत्रीकृतमिति यावत् । सकलानि अभिषेकोपकरणानि समानीतानीत्यर्थः । एतदेव सूचयति—

अन्वयः—सव्यजनम् छत्रम् सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितम् । सदर्भकुसुमाः तीर्थाम्बुपूर्णा हेममया घटा न्यस्ताः । पुष्परथश्च युक्तः । मन्त्रिसहिताः पौराः

प्रतीहारी—आर्य ! देवासुरसंग्राम में भी जिनके रथ का वेग किसी के द्वारा अवरुद्ध नहीं किया गया उन महाराज दशरथ की आज्ञा है कि शीघ्र ही श्रीराम के युवराजपद के प्रभुत्वशक्ति को प्रत्यक्षरूप से प्रकट करने वाले छत्र-चामरादि विशेष राजचिह्न एवम् अभिषेक के लिये सरित्समुद्रादि तीर्थों के जल तथा सर्वौषधियाँ इत्यादि सम्भार एकत्रित किये जाने चाहिये।

कञ्चुकी—पूज्ये ! श्रीमान् महाराज के आज्ञानुकूल अभिषेक की सारी

युक्तः पुष्परथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥ ३ ॥

समभ्यागताः अस्य सर्वस्य हि मङ्गलं स भगवान् वसिष्ठः वेद्यां स्थितः (अस्ति) ॥ ३ ॥

व्याख्या—छत्रमिति—सव्यजनम् = व्यजनेन सहितम् सव्यजनम् = चामरसहितम्, छत्रम् = राज्ञाम् शिरसि धारणीयम् श्वेतातपत्रम् । सनन्दिपटहम्—नन्दयतीति = नन्दी तदर्थं यत् = पटहः = आनकः तेन सहितम्, भद्रासनम्—भद्रं = कल्याणकारकम्, मणिखचितम् च तदासनं चेति भद्रासनम् कल्पितम्=उपस्थापितम् । सदर्भकुसुमाः—दर्भाश्च कुसुमानि च दर्भकुसुमानि ताभ्यां सहिताः कुशकुसुमयुताः, तीर्थाम्बुपूर्णाः—तीर्थानाम् = समुद्रसरिताम् अम्बुभिः = जलैः पूर्णाः = भरिताः हेममयाः = सुवर्णरचिताः घटाः = माङ्गलिकस्नानार्थं कलशाः न्यस्ताः = स्थापिताः । पुष्परथश्च—यच्च रथं समराय न भवति असौ पुष्परथः - क्रीडाविहाररथः, युक्तः = सज्जीकृतः । मन्त्रिसहिताः—मन्त्रिभिः—सचिवैः सहिताः, पौराः = पुरेभवाः = नगरनिवासिनः, संभ्रान्तजनाः = समभ्यागताः एकत्रीभूय अभिषेकभूमौ समागताः । अस्य शीघ्रभाविनोऽभिषेकसंस्कारस्य, सर्वस्य कार्यकलापस्य हि निश्चयेन मङ्गलम् = मङ्गलानुष्ठापकः मङ्गलस्वरूपो वा भगवान् वसिष्ठमहर्षिः वेद्याम् = अभिषेकार्थमुपकल्पितायां भूमौ, स्थितः = समागतः । अत्र यथावद् वस्तुवर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेर्यथावद्वस्तुवर्णनम्' इति तल्लक्षणात् । मङ्गलमित्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेतुरलङ्कारोऽपि । 'हेतोर्हेतुमता साधर्मंमभेदो यत्र वर्ण्यंते' इति तल्लक्षणम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३ ॥

सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी हैं । देखिये चँवर के सहित छत्र, पटह से युक्त स्वर्णमय सिंहासन, कुश एवम् कुसुमों से युक्त नाना तीर्थों के जल से परिपूर्ण सुवर्णमय अभिषेक कलश, तथा घोड़ों से जुता हुआ क्रीड़ा-विहारवाला सुसज्जित यह पुष्परथ है । मन्त्रिगणों के साथ नगरनिवासी सम्भ्रान्त सज्जन लोग आये हुए हैं । इतना ही नहीं, इन समस्त मङ्गलकृत्यों के विधाता स्वयम् माङ्गलिक स्वरूपधारण किये ये भगवान् वसिष्ठ अभिषेक की वेदी पर बैठे हुए हैं ॥ ३ ॥

प्रतिहारी—जइ एव्वं, सोहणं किदं । [यद्येवं, शोभनं कृतम् ।]

काञ्चुकीयः—हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः ।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ ४ ॥

प्रतीहारी—तुरवदु तुरवदु दाणि अय्यो [त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! इदं त्वर्यते । (निष्क्रान्तः)

अन्वयः—इदानीं भूमिपालेन रामाभिधानं शशाङ्कम् मेदिन्याम् अभिषिञ्चता प्रजाः कृतकृत्याः कृताः ॥ ४ ॥

व्याख्या—इदानीमिति—इदानीम् = अधुना, भूमिपालेन = राज्ञा दशरथेन, रामाभिधानम् = रामनामकम्, शशाङ्कम् = शीतलशीलसौन्दर्यप्रियदर्शनत्वादिगुणविशिष्टं भूचन्द्रमसम्, मेदिन्याम् = 'पृथिव्याम्, यौवराज्यपदे अभिषिञ्चता = अभिषेकं कुर्वता, प्रजाः = प्रकृतयः, कृतकृत्याः=सफलमनोरथाः, कृताः । क्रियमाणेनानेन रामराज्याभिषेकेण प्रजानामभिलषितं सिद्ध्यतीति भावः । अत्र अभिषिञ्चता इत्यत्र शतृप्रत्ययेनानुपदमेव भवन्नभिषेकः सूचितः । अत्र रामे चन्द्रारोपात् रूपकालङ्कारः । 'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे' इति तल्लक्षणात् । किञ्च प्रजानां कृतकृत्यताकरणे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमपि 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' इति तल्लक्षणात् । भूमिपालेनेति विशेष्यस्य साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

आर्य इति—संभवक तन्नामा कञ्चुकी । तत्संबुद्धौ आर्यपुरोहितम्—आर्यश्चासौ पुरोहितश्चेति तम् = श्रेष्ठपुरोहितम् आर्यनामानं वा । महर्षेर्वसिष्ठस्य तत्रोपस्थितत्वाद् वामदेवाभिप्रायेणेयमुक्तिः । यथोपचारेण = उपचारमनतिक्रम्येति यथोपचारम्

प्रतीहारी—यदि ऐसा है तब तो प्रसन्नता की बात है ।

कञ्चुकी—यह बड़े हर्ष का विषय है—कि महाराज ने शैत्य आह्लादकत्वादि गुणविशिष्ट इस पृथ्वी के चन्द्रस्वरूप श्रीराम का राज्याभिषेक करते हुए अपनी समस्त प्रजाओं का अभिलषित मनोरथ परिपूर्ण किया है ।

प्रतिहारी—आर्य ! अभी अभी इसी समय शीघ्रता करो ।

कन्चुकी—पूज्ये ! यह लो अभी अभी शीघ्र ही किया (ऐसा कहकर प्रस्थान करता है) ।

प्रतीहारी—(परिक्रम्यावलोक्य) अय्य ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअवअणेण अय्य पुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि। सारसिए ! सारसिए सङ्गीद सालं गच्छिअ नाडईआणं विण्णहिवे—कालसंवादिणा णाडएण सज्जा होइ त्ति। जाव अहं पि सव्वं किदं त्तिमहाराअस्सणिवेदेमि। [आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय (अन्यतो गत्वा) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयेभ्यो विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।] (निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कल गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो ! अच्चाहिदं परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसीत्, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं विअइच्छामि ण।

तेन = सत्कारपूर्वकमिति यावत्। त्वरय = शीघ्रं प्रेरय। सारसिके एतन्नाम्नी चेटी तत्सम्बुद्धौ। सङ्गीतशालाम् = नाट्यशालाम्, नाटकीयानाम् अभिनयकर्तृणां नटानाम् पार्श्वं गत्वेति शेषः। विज्ञापय = संसूचय। कालसंवादिना कालम् = अभिषेकसमयम् तत् संवदतीति तेन अभिषेकसमयोचितेन नाटकेन अभिनयार्थं सज्जाः = समुद्यता भवत। सर्वम् = सकलमपि अभिषेकोचितमुपकरणम्। कृतम् = समुद्यतमिति, निवेदयामि = निष्क्रान्ता = विज्ञापनार्थं प्रस्थिता।

अहो अत्याहितमिति—अहो कष्टम्। अत्याहितम् = महाननर्थः संवृत्तः परिहासेनेत्यादिना तमेव विवृणोति परिहासेन = विनोदार्थम्, अन्यदीयस्वल्पमूल्याम् वृक्षत्वचम् = तरुवल्कलम् उपनयन्त्याः = अनापृच्छ्य गृह्णन्त्या मम एतावत् स्वानुभवगोच-

---

प्रतिहारी—(घूमकर, इधर उधर देख कर) आर्य संभवक ! संभवक ! जाओ तुम भी महाराज की आज्ञा के अनुसार पूज्य पुरोहित जी को ससम्मान शीघ्र लेकर यहाँ आओ। (पुनः दूसरी ओर जाकर) सारसिके ! सारसिके ! तुम भी सङ्गीतशाला में जाकर अभिनय करने वाले नटों को सूचित करो कि वे भी इस अभिषेक समयोचित नाटक के लिये समुद्यत हो जाँय। अच्छा ! अब मैं 'सारी तैयारी पूर्ण हो चुकी है' इसकी सूचना महाराज को जाकर दे दूं।

(इतना कहकर वहाँ से चला जाता है)

अवदातिका—ओह महान् अनर्थ हो गया जो परिहास में भी दूसरे का

एआइणीए हसिदव्वं । [अहो अत्यहितम् । परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः । हसितुमिवेच्छामि । न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम् ।]

रप्रमाणम् भयं=साध्वसं, जातम्=प्रादुर्भूतं यदि तदा लोभेन परधनं हरतः=परकीय सम्पदं हरतश्चौरस्य कीदृग्भयं भवेदिति अनुमातुमशक्यम् । मया महदकार्यं कृतमिति विषीदति अवदातिका । अवदातिका सीतायाः वयस्या सखी दासी च । अत्र कविना तस्या गुणानुसारि नाम प्रयुक्तम् । तस्याश्चरितमप्यवदातमेतच्चाग्रे स्फुटीभविष्यति । अनेन संघट्टनेन कविना राज्याधिकारिणि रामे संस्थिते भरतार्थं राज्यप्रार्थनां विदधत्याः कैकय्याः अपि वृत्तं सूच्यते । हसितुम् = परिहासं कर्त्तुम् इच्छामि= अभिलषामि । किन्तु एकाकिना न परिहसितव्यम् यतश्चेटीपरिवारेण सहितः परिहासोऽधिकम् स्वदते । हञ्जे ! इति चेटीं प्रति संबोधनपदम् । परेङ्गितज्ञा सीता स्वसम्मुखमात्रेण तदाशङ्कामनुमीयाह—हञ्जे ! इति । परिशङ्कितवर्णेव—परिशङ्किताया: = शङ्काकुलिताया इव वर्णः = आकारो यस्यान्नु सा तथाभूता । किन्नु इति प्रश्ने । खलु इति वाक्यालङ्कारे । सीता अवदातिकाभयकारणमजानाना 'पृच्छति किं कारणमवदातिकाकारपरिवर्त्तने' इति । भट्टिनि इति—राजपत्नि ! अनेन संबोधनेन 'देवी कृताभिषेकायामितरासु च भट्टिनी इत्यमरकोशोक्त्याभिषेकसंभावना सत्त्वेऽपि तद्विघातः सूच्यते । सुलभापराधः परिजन इति–सुलभः = सुकरः, अपराधः = आगः येन सः । तथाभूतः परिजनः, भृत्यवर्गः । अपराद्धा भविष्यति–अपराद्धा = कृतागसा भविष्यति संभावनायाम् लृट् । अवदातिकास्वभावपरिचितासीतापराधविषयेऽविश्वस्ता सती ब्रवीति नहि नहि हसितुमिवेच्छतीति–अवदातिकया कश्चनापराधो न विहितः । अस्याकारे या विवर्णता दृश्यते सा तु परिहासपरा भवेदिति सीताभिप्रायः । अवदातिकाऽपि उपसृत्य 'जयतु भट्टिनि' इत्यादिवाक्येन सीतावाक्यमेव समर्थयते । सीता हि अवदातिकाविषयेऽपराधमसंभवं मन्यमाना वदति—का त्वां पृच्छतीति –

वल्कल उठा लेने से मुझे इतना भयभीत होना पड़ा । (जब परिहास में दूसरे का वल्कल लेने मात्र से मेरी यह दशा है तो) जो लोग दूसरे की वस्तु का अपहरण कर लेते हैं तो उनकी दशा कैसी होगी ? अच्छा ! अब मेरी हँसने जैसी इच्छा हो रही है; किन्तु अकेले नहीं हँसना चाहिये । (क्योंकि हँसी का आनन्द तो अपने परिवार के मध्य में आता है)

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता— हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सई । किं णु हु विअ एदं । [हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते । किन्नु खल्विवैतत् ?]

चेटी—भट्टिनि ! सुलहावराहो परिअणो णाम अवतज्झा भविस्सदि । [भट्टिणि ! सुलभापराधः परिजनो नाम । अपराद्धा भविष्यति ।]

सीता—णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि । [नहि नहि, हसितुमिवेच्छति ।]

अवदातिका—(उपसृत्य) जेदु भट्टिणी । जेदु भट्टिणि ! ण खु अह अवरज्झा । [जयतु भट्टिनी ! भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।]

सीता—का तुमं पुच्छदि ओदादिए ! ओदादिए ! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं । [का त्वां पृच्छति अवदातिके ! अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ।]

अवदातिका—भट्टिणि ! वक्कलं । [भट्टिनि इदं वल्कलम् ।]

सीता—वल्कलं किस्स आणीदं । [वल्कलं कस्मादानीतम् ।]

अवदातिका—सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिब्बुत्तरङ्गप्प-

---

शृणोत्विति—नेपथ्यपालिनी—नेपथ्यं पालयति या सा रङ्गशालास्थंवस्त्राल-

---

(परिचारिका सहित सीता का प्रवेश)

सीता—हञ्जे चेटी ! आज अवदातिका अपनी आकृति से सशङ्कित जैसी दिखाई पड़ती है यह क्या बात है ?

चेटी—महारानी जी ! भृत्यवर्गों से कुछ न कुछ अपराध होते ही रहते हैं इससे भी कुछ अपराध हुआ होगा ।

सीता—नहीं नहीं । यह तो हँसना चाहती है ।

अवदातिका—सीता के समीप जाकर 'जय हो महारानी जी ! मैंने कोई भी अपराध नहीं किया ।

सीता—तुझसे अपराध के विषय में कौन पूछता है ? अवदातिके ! बता यह बायें हाथ में क्या ले रखी है ?

अवदातिका—महारानी जी यह वल्कल है ।

सीता—तू वल्कल कहाँ से ले आई ?

अवदातिका—भट्टिनी सुनिये । नेपथ्यरक्षिका आर्यरेवा से हम लोगों ने

ओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अह्मेहि जाइदा आसि। ण अ ताए दिण्णं। तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं। [शृणोतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत्। न च तया दत्तम्। ततो अर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम्।

सीता—पावदं किदं। गच्छ, णिय्यादेहि। [पापकं कृतम्। गच्छ, निर्यातय।

अवदातिका—भट्टिणि? परिहासणिमिद्दं खु मए एदं आणीदं। [भट्टिनि! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम्।

ङ्काररक्षणे नियुक्ता। आर्यरेवा—आर्या चासौ रेवा चेत्यार्यरेवा, आर्येति समादरार्थम् रेवेति रक्षिकानामधेयम्। निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनम्—निर्वृत्तम् = सुसंपन्नम्, रङ्गप्रयोजनम् = रङ्गभूमिप्रसाधनरूपं प्रयोजनम् यस्य तद् रङ्गोपयुक्तवेषमित्यर्थः। किसलयम् = पल्लवः, अस्माभिः न=मयैकाकिन्या अपि तु बहुभिरस्माभिरिति भावः, याचिता = प्रार्थिता आसीत्। अत्र हि गौणे कर्मणि दुह्यादेरिति वचनात् याचनस्य गौणकर्मणि प्रथमा। एवं प्रकारेण रक्षिकयास्माकमपराधो विहितः इति तद् दण्डविधानार्थमनिच्छयाप्युचितमेवास्माभिस्तद्वल्कलाहरणमित्यवदातिकाभिप्रायः। सीता तस्या एवमपि वल्कलापहरणं पापं मन्यमानाह पापकं कृतमिति। महत्पापमिति पापकम्, कृतम्=विहितम्। निर्यातय तत्पार्श्वे परावर्त्तय! परिहासार्थमपि यदधिकारस्थवस्तु त्वयानापृच्छ्य गृहीतम् तस्मै तद् वस्तुसमर्पणेन त्वं न पापभाग् भविष्यसि' इति सीताभिप्रायः। प्रस्थातुम् = किसलयसमर्पणार्थं गन्तुम्। प्रस्थातुं प्रवर्त्तमानां तां सीता पुनः स्वपार्श्वे आह्वयति—हला एहीत्यादिना। तस्या आह्वानम्—अनेन वल्कलधारणेनाहं कीदृशीति विलोकये इत्यपेक्षया न तु स्वपार्श्वे स्वायत्तीक-

---

रङ्गशाला का कार्य संपन्न हो जाने पर उससे बचा हुआ एक अशोक का पत्ता माँगा था किन्तु उसने हमें दिया नहीं। यह उसका अपराध था। इसी अपराध के उचित दण्डस्वरूप हमने उसके वल्कल का अपहरण किया है।

सीता—तो तुमने यह महान् पापकर्म किया। अच्छा अभी जाओ उसे लौटा दो।

अवदातिका—भट्टिनि! मैंने चोरी की दृष्टि से नहीं, अपितु परिहास करने के लिये वह वल्कल लिया है। फिर पाप कैसे?

सीता—उन्मत्तिए ! एव्वं दोसो वड्ढइ। गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि। [उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय, निर्यातय।]

अवदातिका—जं भट्टिणी आणवेदि। [यत् भट्टिन्याज्ञापयति।] (प्रस्थातुमिच्छति)।

सीता—हला एहि दाव। [हला एहि तावत्।]

अवदातिका—भट्टिणि ! इहम्हि। [भट्टिनि ! इयमस्मि।]

सीता—हला ! किणु हु मम वि दाव सोहदि। [हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते।]

अवदातिका—भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम। अलङ्करोदु भट्टिणी। [भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। अलङ्करोतु भट्टिनी।]

र्त्तुमिच्छया तदाह्वानम्। एतेन प्रघट्टकेन कविना भाविनो रामवनवासस्य वल्कलधारणस्य च सूचनं क्रियते।

उन्मत्तिके इति—उन्मत्तिके = उन्मत्ततायुक्ते भ्रान्तचित्ते परिहासार्थमप्यन्यदीयवस्तुग्रहणं नोचितम्, किन्तु त्वया साधु मत्वा तद् गृहीतम्, अतस्ते भ्रान्तचित्तत्तैव प्रतिभाति। किञ्च परिहासार्थमपि कृतं चौर्यम् लोभकारणात् पापप्रवर्त्तकमिति सीताभिप्रायः।

मम हि इति—मया धार्यमाणमिदं वल्कलं शोभामाधत्ते न वेति प्रश्नाशयः। भट्टिनि ! सर्वशोभनीयमिति—सर्वेण वस्तुना सुन्दरेणासुन्दरेण वा शोभते यत् तादृशं त्वदीयम् सुरूपं = सौन्दर्यम्। अत्र सामान्ये नपुंसकम्। नामेति प्रसिद्धार्थे। सुन्दरं हि स्वरूपम् सुन्दरेणासुन्दरेण वा येन केनचित्पदार्थेनालङ्कर्तुं शक्यते।

सीता—पगली ! पाप तो इसी प्रकार से बढ़ते हैं, जल्दी जाकर उसको वल्कल लौटा दो, अवश्य लौटा दो।

अवदातिका—जैसी महारानी जी की आज्ञा। (इतना कह कर जाना चाहती है।)

सीता—सखि ! जरा इधर तो आ।

अवदातिका—महारानी जी यह आई।

सीता—सखि, क्या यह मुझे अच्छा लगेगा ?

अवदातिका—महारानी जी ! सौन्दर्य तो उसी को कहते हीं हैं जिस पर

सीता—आणेहि दाव। हला! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि? [आनय तावत्। (गृहीत्वाऽलङ्कृत्य) हला! पश्य, किमिदानीं शोभते?]

अवदातिका—तव खु सोहादि णाम। सौवण्णिअं विअ वक्कलं संवुद्दम्। [तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।]

सीता—हञ्जे! तुवं किञ्चि ण भणासि। [हञ्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि।]

चेटी—णत्थि वाआए पओअणं। इमे पहरिसिदा तणुरुहा मन्तेति। [नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते।] (पुलकं दर्शयति।)

सीता—हञ्जे! आदंसअं दाव आणेहि। [हञ्जे! आदर्शं तावदानय।]

तव इति--सौर्वणिकम्=सुवर्णेन निर्मितम् सुवर्णमयमित्यर्थः। संवृत्तम्=जातम्। त्वया धृतमिदं वल्कलं त्वद्देहकान्त्या प्रकर्षोज्ज्वलं देदीप्यमानसुवर्णमिव संवृत्तमिति। आनयेति--वल्कलधारणेन मदीयं सौन्दर्यमधिकमभून्न वेति सीताशयः। न भणसीति-वल्कलधारणप्रसङ्गे शोभनमशोभनं वा ममेदमनुष्ठानमित्यत्र मौनमालम्ब्य त्वं किञ्चिन्न भणसि। अतस्तवाभिप्रायं न विद्म इति सीताशयः। नास्तीति--अनेन वल्कलधारणेन वागगोचरं ते सौन्दर्यम्। यद् दृष्ट्वा मे हृषितानि=उद्गतानि, तनूरुहाणि=रोमाणि। मम रोमाञ्चोद्गमो किमप्यनिर्वचनीयानन्दाधायकः स च कथं वाचां विषयो भवेदिति चेटीतात्पर्यम्।

सब कुछ (चाहे वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर हो) अच्छा लगे। आप इसे पहन कर देखें तो सही।

सीता—अच्छा ले आओ। (चेटी के हाथ से वल्कल लेकर तथा पहन कर) अच्छा देखो यह मुझे शोभा दे रहा है क्या?

अवदातिका—आपको तो वह बहुत अच्छा लग रहा है। अरे! यह वल्कल तो (आपकी शरीर की कान्ति से) सुवर्णमय प्रतीत हो रहा है।

सीता—(दूसरी चेटी से) सखि! तुम इस विषय में मौन क्यों हो?

चेटी—महारानी जी! तुम्हारा रूप वर्णन से परे हैं। ऐसा हमारे शरीर के रोमोद्गम से प्रतीत हो रहा है। (इतना कहकर अपने पुलकित शरीर को दिखाती है।)

सीता—सखि! दर्पण तो ला।

चेटी—जं भट्टिणि आणवेदि । भट्टिणि ! अअं आदंसओ । [यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः ।]

सीता—चिट्ठदु दाव आदंसओ । तुवं किं वि वत्तुकामो विअ । (चेटीमुखं विलोक्य) [तिष्ठतु तावदादर्शः । त्वं किमपि वक्तुकामेव ।]

चेटी—भट्टिणी ! एवा मए सुदं । अय्यबालाई कञ्चूई भणादि अहिसेओ अहिसेओ त्ति । [भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम् । आर्यबालाकिः कञ्चुकि भणति अभिषेकोऽभिषेक इति ।

सीता–(को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि ।) कोऽपि भर्ता राज्ये वविष्यति ।

(प्रविश्य अपरा)

चेटी—(भट्टिणि ! पिअख्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।) भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।

तिष्ठतु तावदिति—आनीतेऽपि दर्पणे तस्योपयोगों तावन्मया न क्रियते यावत्किमपि वक्तुकामा त्वं स्वाभिप्रायं न ब्रवीषि । वक्तुकामा—वक्तुं कामः अभिलाषा यस्या सा वक्तुकामा । तद्वचनमाकर्ण्यैव तदाधारेण किमपि निर्धारणीयम् दर्पणस्य दर्शनादर्शनविषये इति सीताशयः ।

आर्यबालाकिः—आर्यश्चासौ बालाकिश्चेति । अत्र आर्य इति आदरार्थम्, बालाकिरिति कञ्चुकिनो नामधेयम् । अभिषेकोऽभिषेक इति द्विरुक्तिरानन्दोद्रेकात् । कोऽपि भर्त्तेति—सीता हि राज्ञि दशरथे जीवति रामराज्यविषये उदासीना,

---

चेटी—(वहाँ से हट कर पुनः सीता के पास जाकर) महारानी जी ! लीजिये । यह रहा आपके लिये दर्पण ।

सीता—(चेटी मुंह की ओर निहारते हुए) दर्पण रहने दो । मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहती हों ।

चेटी—महारानी जी ! मैंने ऐसा आज सुना है—आर्य बालाकि कह रहे थे कि अभिषेक हैं अभिषेक ।

सीता—होगा किसी का राज्याभिषेक ।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

दूसरी चेटी—महारानी जी ! महान् शुभ समाचार है, महान् शुभ समाचार हैं ।

सीता—किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि [किं किं प्रतीक्ष्य मन्त्रयसे ।]

चेटी—भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि । [भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते]

सीता—अवि तादो कुसली ? [अपि तातः कुशली ?]

चेटी—महाराएण एव्व अहिसिञ्चीअदि । [महाराजेनैवाभिषिच्यते ।]

सीता—जइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं । विसालदरं उच्छङ्गं करेहि । [यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् । विशालतरमुत्सङ्गं कुरु ।]

चेटी—भट्टिणि ! तह । [भट्टिनि ! तथा ।] (तथा करोति)

सीता—(आभरणान्यवमुच्य ददाति)

रामस्य तत्र निःस्पृहत्वं विचार्यैतद् ब्रवीति । प्रियाख्यानिकम्—प्रियं च तदाख्यानम् प्रियाख्यानम् तत्र भवः । चेटी सीतां प्रति हर्षजनकमेतदाख्यानं निवेदयितुं संभ्रमात् द्विरुक्ति करोति । किं प्रतीक्ष्य = किं विचार्य मन्त्रयसे=कथयसि । स्वमनसि किमपि विचार्यैव त्वयाऽयं हर्षः प्रकाश्यते इति सीताशयः । भर्तृदारकः=राजकुमारो रामः । अपि तातेति—पितरि जीवति कथं रामस्याभिषेक इति दशरथस्यानिष्टमाशङ्कमाना सीता तस्य कुशलं पृच्छति । अपि तातेत्यादिना । महाराजेनैवेत्यादि—महाराजो दशरथ एव तं राज्येऽभिषेक्ष्यति—न तत्रानिष्टशङ्का कार्या इति चेटी उत्तरयति । द्वितीयं मे इति—दशरथस्य कुशलं विज्ञाय सीता परमप्रसन्ना—ततश्च रामराज्याभिषेकं श्रुत्वा हर्षं प्रकाशयति । दशरथः कुशलीति एवम् प्रियम् । रामराज्याभिषेक इति द्वितीयं प्रियम् । विशालतरमुत्सङ्गम्—अतिशयेन विशालं विशालतरम् परिणाहिनम् लक्षणया अञ्चलम् प्रियाख्यानद्वयनिवेदनोचितं द्विगुणपारितोषिक-

---

सीता—क्या मन में छिपाये बोल रही हैं ।

चेटी—राजकुमार श्रीराम राज्य पर अभिषिक्त होनेवाले हैं ।

सीता—अरी बता । पिता जी तो सकुशल हैं ।

चेटी—महाराज ही तो स्वयम् अभिषेक करने जा रहे हैं ।

सीता—यदि ऐसी बात है तब तो अभिषेक के अतिरिक्त यह दूसरा प्रिय समाचार सुनायी पड़ा । अच्छा अपना आँचल अच्छी तरह फैला ।

चेटी—महारानी की जो आज्ञा । (आँचल पसारती है ।)

सीता—(अपने शरीर का आभूषण उतार कर प्रदान करती हैं)

चेटी—भट्टिणी ! पटहसद्दो विअ । [भट्टिनि ! पटहशब्द इव ।]

सीता—सों एव्व । [स एव]

चेटी—एक्कपदे ओघटिओ तुह्णीओ पटहसद्दो संवुत्तो । [एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः ।]

सीता—को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम । [को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।]

चेटी—भट्टिणि ! एव मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति । [भट्टिनि ! एवं मया श्रुतं । भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति ।]

ग्रहणार्थमिति भावः । अवमुच्य = स्वकीयाङ्गादवतार्य । पटह इवेति—अभिषेकमङ्गलोचितः पटहशब्दसदृशः कोऽपि वाद्यशब्दः श्रूयते इति शेषः । एकपदे इति एकपदे=सद्यः वारमेकमिति यावत् । अवघट्टिततूष्णीकः प्रारब्धविरतः पटहशब्दः =पटहप्रणादः । उद्घातः = विघ्नः । बहुवृत्तान्तानि—बहवः = अनेकप्रकाराः वृत्तान्ताः प्रवृत्तयः येषु तानि । निश्चितमपि कार्यं कार्यान्तरोपस्थित्या विघ्नसंभावनया वान्यथा क्रियते । भट्टिनीति—चेटी पूर्वश्रुतवृत्तान्तं पुनः सीतामावेदयति । यद्येतमिति—रामाभिषेकानन्तरं दशरथो वनं गमिष्यतीति श्रुत्वा शोकेन दूयमाना सीता ब्रवीति । अभिषेकोदकम् = अभिषेकार्थमुदकम् । न सुखोदकम् न सुखावहमुदकम् भविष्यति पितृवियोगादिति भावः ।

चेटी—महारानी जी पटह के शब्द जैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है ।

सीता—मालूम तो ऐसा ही पड़ता है ।

चेटी—किन्तु अभी एक ही बार बज कर बन्द भी हो गया ।

सीता—अभिषेक में कौन-सा विघ्न आ पड़ा । अथवा अनेक प्रकार की संभावनायें राजकुलों में होती रहती हैं ।

चेटी—महारानी जी ! मैंने ऐसा भी सुना है कि महाराज राजकुमार का अभिषेक कर सद्यः वन चले जायँगे ।

सीता—जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदअं, मुहोदअं णाम। [यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम !]

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतिततोये घटे ।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो! विस्मयः ? ॥ ५ ॥

हन्त भोः—हन्तेति हर्षे। 'वाक्यारम्भेऽनुकम्पायां हन्त हर्षविषादयोः' इति वैजयन्ती कोशः। भो इति जनामन्त्रणार्थं प्रयोगः। (रामस्येयमुक्तिः स्वगता प्रकटरूपा वेति किमपि नाटके न निर्दिष्टम् ।)

अन्वयः—गुरुजने स्थिते पटहे स्थिते भद्रासने लङ्घिते घटे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतिततोये राज्ञा आहूय मयि विसर्जिते जनः मे धैर्येण विस्मितः। भोः यदि स्वः पुत्रः पितुः वचः कुरुते तत्र कः विस्मयः ॥ ५ ॥

व्याख्या—आरब्धे इति—गुरुजने वसिष्ठवामदेवादिपुरोहितगणे अभिषेकमङ्गलावलोकनोत्सुकतया स्थिते = उपस्थिते भद्रासने = सिंहाकारमणिखचितस्वर्णमयपीठे लङ्घिते = आरूढे मयेति शेषः। घटे = नानातीर्थजलपरिपूर्णकलशे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतिततोये—स्कन्धे यत् उच्चारणं = उन्नयनम् उत्थापनं वा तेन नम्यमानं = सौकर्यसंपादनाय नम्रीक्रियमाणं यद् वदनम् =

सीता—यदि ऐसी बात है तो यह अभिषेकार्थ आया हुआ जल दुःख के जल में परिणत हो जायगा।

(राम का प्रवेश)

राम—कैसे हर्ष की बात है कि—पूज्य गुरुजनों की उपस्थिति में जब पटह बाजा रूप बाजा बजने लगा मैं सिंहासन पर आरूढ हो गया, कन्धे पर उठाये गये नीचे मुख किये तीर्थजलपूर्ण कलशों से जल उडेलकर जब मेरा अभिषेक-कार्य संपन्न कर रहे थे उसी समय महाराज ने मुझे उस सिंहासन से उतार कर वन जाने की आज्ञा देकर मेरा परित्याग कर दिया। उस समय हर्षविषादरहित मुझे देख कर

विश्राम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वासितमिव मे मनः। दिष्ट्या एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

गलोर्ध्वदेशः तस्मात् प्रच्योतिततोये = पातोन्मुखसलिले, एवंभूते अभिषेके प्रवृत्ते राज्ञा = महाराजेन आहूय आकार्य विसर्जिते भद्रासनादवतार्य वनं गच्छेत्यादिष्टे मयि = रामे हर्षविषादरहिते सति जनः = तदानीमुपस्थितजनसमूहः मे धैर्येण आपद्यपि स्वनिष्ठातोऽविचलनं धैर्यं तेन गाम्भीर्येण-यदुक्तम्, 'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। मया न लक्षितस्तस्य वदने स्वल्पविक्रिया ॥' विस्मितः आश्चर्यचकितोऽभूत्। भोः स्वः = आत्मीयः पुत्रः यदि पितुः वचनम् = आदेशम् कुरुते = अनुतिष्ठति तत्र विषये कः विस्मयः = कीदृगाश्चर्यम्। पितुराज्ञापालनमेव पुत्रकर्त्तव्यम् एतदेव कृत्वा मया किमप्यपूर्वं नाचरितमतस्तत्र किमाश्चर्यमिति भावः। एतच्च पितुराज्ञाकरणम् पुत्रस्य श्रेयसे भवति। यदुक्तमभियुक्तैः—'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः' इति। अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः। तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम्। को विस्मयः इति काक्वा वक्रोक्तिरपि। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। लक्षणमुक्तम् ॥ ५ ॥

विश्रम्यताम् = अभिषेकेण अलम् अभिषेकाद् विरम्यतामित्यर्थः। विसर्जितस्य वने इति शेषः। अपनीतभारोच्छ्वसितम्—अपनीतेन = दूरीकृतेन भारेण = राज्यभारेण राज्यरक्षणावेक्षणादिजन्यक्लेशेन उच्छ्वसितम् = प्राणितमिव मे मनः= चित्तम्। तदेव स्पष्टयति—दिष्ट्येति—दिष्ट्या आनन्दस्य विषय इति। दिष्ट्या 'समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः। स एवास्मि रामः अभिषेकाभावराज्यभारचिन्तारहितः न तु महाराजः युवराजो वा। महाराजदशरथ एव यथापूर्वं राज्यं शासिष्यतीत्यपि हर्षः। मैथिलीं—मिथिलादेशस्य राज्ञः तनयाम् सीताम्। पश्यामि =

वहाँ उपस्थित दर्शक लोग आश्चर्यचकित से रह गये। भला इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अपने पुत्र को पिता की आज्ञा माननी ही चाहिये यह तो उसका कर्त्तव्य ही है। अतः मैंने कौन-सा अपूर्व कार्य कर दिखाया जिससे लोगों को अचम्भित होना पड़ा।

उस समय महाराज ने स्वयं ही 'पुत्र! अभिषेक कार्य से विरत रहो' ऐसा कहकर मुझे विदा कर दिया। अस्तु बड़े आनन्द की बात है कि राज्य के रक्षणावेक्षणादि भार से मुक्त हो जाने के कारण मेरा मन उन्मुक्त वायुमण्डल में अनुप्रा-

अवदातिका—भट्टिणि ! भट्टिदारओ खु आगच्छइ । णावणीदं वक्कलं ? [भट्टिनि ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति । नापनीतं वल्कलम् ?]

रामः—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हं अय्यउत्तो । जेदु अय्यउत्तो । [हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः]

रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति) [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

अवदातिका—भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे । [भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः । अलीकमिवैतद् भवेत् ।]

अवलोकयामि । भट्टिनि—नापनीतं वल्कलम्=वल्कलं स्वाङ्गान्नावतारितम् । जयत्विति-सीता आगतं रामं दृष्ट्वोत्थाय स्वागतेनाभिनन्दयति । आर्य ! सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । आर्यपुत्रेति संबोधनपदम् । अलीकमेवैतदिति—अभिषेकात्पूर्वं यादृशं वेषं तादृशं वेषं रामस्य दृष्ट्वा अवदातिकया तद्विषये न किमपि निश्चयं कर्त्तुं पार्यते अतस्तत्र स्वकीयमनिश्चयं प्रकटयति । अलीकम् = असत्यरामाभिषेकवृत्तान्तः । वेषस्यापरिवर्तनात् । भवेत् संभावानयां लिङ् । अभिषेकसमाचारोऽलीक इति अवदाति-

---

णित हो रहा है । अब मैं वही राम हूँ जो अभिषेक के पूर्व था और महाराज भी वही महाराज हैं जैसा कि अभिषेक के पहले इस राज्य के शासक थे । अच्छा, मिथिलाधिराजतनया को देखना चाहता हूँ ।

अवदातिका—महारानी जी, राजकुमार आ रहे हैं । आपने अभी तक शरीर से इस वल्कल को नहीं उतारा ।

राम—मैथिलि ! क्या बैठी हो ?

सीता—अरे । यह तो आर्यपुत्र हैं । (सीता आसन से उठकर स्वागत करते हुए) आर्यपुत्र, सर्वोत्कर्षेण निवास करें ।

राम—मैथिलि । बैठो । (स्वयं भी बैठ जाते हैं)

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा (बैठ जाती हैं)

अवदातिका—महारानी जी ! राजकुमार का पहले जैसा ही वेष है कोई परिवर्त्तन नहीं दिखाई पड़ता । ज्ञात होता है कि वह बात झूठी ही है ।

सीता—तादिसो जणो अलिअं ण मन्तेदि । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम । [तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—ण खु किञ्चि । इअं दारिआ भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति । [न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति ।]

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः ।

काभिप्रायः । सीता तु अभिषेकसमाचारविषये विश्वस्ता ब्रवीति--तादृश इति-तादृशो जनः विश्वस्तः मान्यः वृद्धः विश्वासपात्रतया राजकुले समाह्रियमाणश्च । कञ्चुकिजनः अलीकं न मन्त्रयति = असत्यं न निवेदयति । अथवाभिषेकाविरोधे भवेन्नाम किञ्चित् कारणमित्याह अथवेति । कथ्यते ब्रुवाभ्यामिति शेषः दारिका चेटी । अवगच्छामि ते कुतूहलम्--अवगच्छामि = जानामि, कुतूहलम् = उत्कण्ठाम् अभिषेकवृत्तान्तश्रवणविषयमिति शेषः ।

उपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षम्=उपाध्यायाः वसिष्ठादयः, अमात्या अमा=सह राज्ञा सहेत्यर्थः वर्त्तन्ते इति अमात्याः सुमन्त्रादयः, प्रकृतयः=प्रजावर्गाः जनाः=पौरास्तेषां समक्षम् पुरतः । तेषां शृण्वतामित्यर्थः । 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च' इत्यमरः । एकप्रकार·

सीता—वैसे पुरुष कभी झूठ नहीं बोल सकते । अथवा कौन जाने राजकुलों में ऐसी बहुत सी बातें होती ही रहती हैं ।

राम—मैथिलि ! तुम दोनों क्या-क्या बात कर रही हो ।

सीता—कुछ नहीं । यह लड़की 'अभिषेक है अभिषेक है' ऐसा कह रही है ।

राम—तुम्हारे मन में जिस अभिषेक वृत्तान्त को सुनने के के लिये कुतूहल हैं उसे मैंने समझ लिया । हाँ; आज अभिषेक था परन्तु सुनो ।

सीता—तदाणि अय्यउत्तेण किं भणिदं? [तदानीम् आर्यपुत्रेण किं भणितम्?]

रामः—मैथिलि! त्वं तावत् किं तर्कयसि?

सीता—तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराजस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति। [तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति।]

संक्षिप्तम्—एकेन प्रकारेण संक्षिप्तम्=मेलितम्। न तु भेदभावेन। कोशलराज्यम्=स्वाधिकारवर्त्ति समस्तं कोशलराज्यम्। बाल्यादभ्यस्तम् = शैशवादभ्यस्तम् परिचितम्। अङ्कम्=उत्सङ्गम् आरोप्य=संस्थाप्य। अनेन राज्ञः रामविषये स्नेहातिशयः प्रतीयते। मातृगोत्रम् मातृनामपूर्वकम्। कौशल्यामातः कौशल्यानन्दन इत्यादिरूपेण संबोध्येत्यर्थः। स्निग्धं = स्नेहातिशयेन। आभाष्य = समुच्चार्य। आर्यपुत्रेण किं भणितमिति—भवता राज्यं स्वीकृतम्। अथवा स्वकीयानिच्छाम् प्रदर्शितवान् इति जिज्ञासमाना जानकी तं परिपृच्छति।

किं तर्कयसीति। मया किं भणितं भवेदितिविषये किमूहसे। राज्यभारमगृहीत्वैव यथेच्छं पितृचरणपरिचर्यापरोऽहं तादृशानन्दविच्छेदपरे एतादृशे प्रजारक्षणक्लेशे भवता न नियोज्य इत्याशयो भवतः भवेदिति जानकी वदति। सुष्ठु = सम्यक्। मयापि तादृशं त्वदूहितमेवोत्तरितमिति रामाभिप्रायः। अल्पमित्यादि—सीतायाः स्वसमानशीलतां निरूपयन् रामः तां स्तौति—तुल्यशीलानि—तुल्यं = समानं शीलं= स्वभावो येषां तानि। द्वन्द्वानि = स्त्रीपुरुषमिथुनानि। अल्पम् = अनधिकम् न्यूनरूपेणैव सृज्यन्ते = उत्पाद्यन्ते विधात्रा इति शेषः। तत्र हीत्यादि—राज्यभारादात्मानमुन्मोचयितुं। पादयोः = पितृचरणयोः पतितः = संलग्नः।

आज महाराज ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित तथा पुरवासियों की उपस्थिति में एक छोटा सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से परिचित अपनी गोद में बिठा कर बहुत ममत्व प्रदर्शित करते हुए मातृगोत्र—कौशल्यानन्दन कौशल्यामातः आदि—नामों से सम्बोधित करते हुए कहा—बेटा एकछत्र इस राज्य को स्वीकार करो।

सीता—उस समय आर्यपुत्र ने क्या कहा?

राम—मैथिलि! तुम क्या सोचती हो कि मैंने क्या कहा होगा?

सीता—मैं सोचती हूँ आर्यपुत्र इस विषय में कुछ न कहकर लम्बी श्वास

रामः—सुष्ठु तर्कितम् । अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते । तत्र हि पादयोरस्मि पतितः ।

समं वाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः ।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥ ६ ॥

सीता—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः ।

सीता—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

ततः किमभूदित्याह सममिति—

अन्वयः—समं तस्य वाष्पेण ममोपरि पतिता मम (वाष्पेण) अधः (पितृपादयोः) पतता मम शिरः क्लेदितम् । मे पितुः पादौ च क्लेदितौ ॥ ६ ॥

व्याख्या—सममिति । समम् = एककालावच्छेदेन । तस्य = पितुः वाष्पेण = अश्रुणा ममोपरि = मम शिरस उपरि । तस्य = मम पितुः अधःप्रदेशे = चरणयोरिति यावत् पतता मम च वाष्पेणाश्रुजलेन मम शिरः क्लेदितम् = संसिक्तम् मे पितुः पादौ च क्लेदितौ = संसिक्तौ । अत्र प्रक्रमदोषः श्लोके मे शिर इति क्रमानुसारेण पूर्वं वाच्यमासीत् । अत्र दशरथस्याश्रूणि वात्सल्यतया, पितुः स्नेहातिशयं विलोक्य मम पितृस्नेहृतयेति यथावद् वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । लक्षणं प्रागुक्तमेव । अनुष्टुप् छन्दः । एतस्यापि लक्षणं प्रागुक्तमेव ॥ ६ ॥

लेते हुए महाराज के श्रीचरणों में गिर गये होंगे ।

राम—तुमने ठीक ही सोचा । विधाता तुल्यस्वभाववाले जोड़े संसार में कम ही पैदा करते हैं । अवश्य ही मैं पितृपादों में गिर गया ।

उस समय ऊपर से मेरे पिता के आँसू मुझ पर तथा नीचे पितृचरणों में गिरते हुए मेरे आँसू साथ-साथ गिर रहे थे जिससे मेरा शिर तथा पिताजी के चरण एक साथ ही क्लिन्न (आर्द्र) हो गये ।

सीता—इसके बाद तब फिर क्या हुआ ?

राम—फिर तो जब मैंने उनका प्रत्येक बार का अनुनय अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने अपने जराजीर्ण प्राणों की मुझे शपथ दिलाई ।

सीता—तब फिर

रामः—ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा॥ ७॥

ततस्तत इति—शेषवृत्तश्रवणोत्कण्ठयेयं द्विरुक्तिः सीताकृता। तत इति—वाष्पाकुलितनयनयोरावयोः संजातयोरनुनयेषु राज्यं ग्राहयितुं महाराजैः विहितेषु अनुरोधेषु मया चाप्रतिगृह्यमाणेषु = अनङ्गीक्रियमाणेषु सत्सु आसन्नजरादोषैः = आसादितवार्द्धक्यावगुणैः स्वैः प्राणैः अहं शापितः = शपनं कारितः अस्मि। यदि जराग्रस्तस्य मम पितुः प्राणान् रिरक्षिषसि तदा राज्यं गृहाणेत्येवंरूपेण शपथेन मया राज्योऽङ्गीकृतः मम तु तत्र स्पृहा नाभवत्। तत इति—अनुनयेनाङ्गीकारान्तरम्। तदानीम् = अभिषेककाले।

अन्वयः—शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे अभिषेके रुदता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते संभ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे शनैः किमप्यभिहितं च। न च राजा अस्मि। ७।

व्याख्या—शत्रुघ्नेति। शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे—शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्यां गृहीतः घटः यस्मिन् तथाभूते अभिषेके = अभिषेचनकार्ये समारब्धे यद्यपि रामायणे शत्रुघ्नस्य तदानीं भरतेन सह मातुलगृहे निवास उक्तस्तथापि कविनात्र तदनुसरणे प्रयासो न विहितः। निरङ्कुशा हि कवयः रुदता आनन्दजाश्रूणि मुञ्चता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते सति संभ्रान्तया = त्वरितागतया मन्थरया तन्नाम्न्या कुब्जया कैकेयोदास्या राज्ञः दशरथस्य कर्णे = श्रवणपुटे शनैः = मन्दं मन्दं यथान्ये न शृणुयुस्तथा किमपि अभिहितम् = उक्तम्। तदा प्रभृति अहं राजा नास्मि राजा न भवामि च। श्लोके द्वौ चकारौ क्रियायौगपद्यं द्योतयतः। मन्थराकथनसमकालमेव ममाभिषेको निरस्त इति भावः। वसन्ततिलकावृत्ताम्। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणम्॥ ७॥

राम—फिर तो उस समय ज्यों ही अभिषेक के लिये लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने तीर्थजलपूर्ण घट उठाया तथा महाराज ने आनन्दाश्रु परिपूर्ण नेत्रों से छत्र लगाने के लिये संभाला ही था कि इतने में ही शीघ्रता से मन्थरा ने आकर महाराज के कानों में धीरे से कुछ कह दिया। इसलिये समस्त अभिषेकसामग्री के एकत्रित

सीता–पिंयं मे महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो। [प्रियं मे महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।]

रामः—मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि ?

सीता—ण खुदाव आवज्झामि। [न खलु तावदाबध्नामि।]

रामः—न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथाहि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।

प्रियं मे इति–महाराज एव महाराजः न तु राज्यादपेतः। आर्यपुत्र एव आर्यपुत्रः न तु राज्यग्रहणेन महाराजपदलाञ्छितः। सरलहृदयायाः सीतायाः हर्षकारणमित्येव यद्रामाभिषेकनिवृत्तौ दशरथ इव पूर्ववत् महाराजपदे स्थितः। अत्र कविना भङ्ग्या अनया सीतोक्त्या 'तुल्यशीलानी'त्यादि पूर्वोक्तं रामवचनं समर्थितम्, रामेणापीदं वचनं पूर्वमुक्तम् यथा दिष्ट्या स एवास्मि रामः महाराज एव महाराज इति। अनेन सीतारामयोरेकहृदयत्वं संसूचितः। विमुक्तालङ्करणा—विमुक्तानि अलङ्करणानि यया सा = अवतारितालङ्कारा। न आबध्नामि = न विमुञ्चामि अयं ममालङ्कारत्यागो किञ्चित्कालार्थं नियमनिर्वाहाय न तु सर्वदाकृते धारयामि इति सीताशयः। कविनात्र स्ववाक्कौशलेन रामेण सह वनगमनार्थं सीताभरणापनयनं प्रागेव संसूच्यते। न खलु इति–रामस्तदुक्तं निराकरोति। सर्वथा त्वमाभरणानि न धारयसीत्यलीकम् प्रतीयते, यत्सद्य एव त्वयाभरणान्यपनीतानीत्याह–प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यमिति—प्रत्यग्रं = संप्रत्येव अवतारितैः इतः पूर्वमाबद्धैः पश्चादपनीतैः भूषणैस्त्वया भवितव्यमित्यग्रिमेण श्लोकेन समर्थ्यते।

किये जाने पर तथा उसका उपयोग प्रारम्भ होने पर भी फिर अभिषेक कार्य रुक गया और मैं राजा नहीं हुआ ॥ ७ ॥

सीता—यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ क्योंकि महाराज महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे। (अन्यथा राज्याभिषेक के अनन्तर महाराज के वन जाने से तथा आप पर राज्यभार आ पड़ने से मुझे क्लेश होता)

राम—मैथिलि! तुमने ये भूषण क्यों उतार डाले ?

सीता—मैं तो इन्हें पहनती ही नहीं (फिर उतारने की बात तो दूर है)

राम—नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। तुम इन्हें पहनती तो हो क्योंकि ये गहने

एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥ ८॥

सीता—पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं। [पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।]

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ।

अन्वयः—कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ हस्तौ संस्रंसिताभरणगौरतलौ च गात्रे आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि तावत् समतां नैव उपयान्ति च ॥ ८ ॥

व्याख्या—कर्णाविति। कर्णौ=श्रवणपुटौ, त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ–त्वरया=शीघ्रताकारणेन अपहृतानि = अपसारितानि भूषणानि ययोस्तौ त्वरापहृतालङ्कारावत एव भुग्नपाशौ—भुग्नः =वक्रतां गतः पाशः = ग्रन्थितुल्यो भूषणाधारभागो ययोस्तौ शीघ्रतयापनीतेन भूषणे श्रवणे तत्कृतं भुग्नत्वमधुनाऽपि प्रतीयते इति भावः। हस्तौ च बाहू च संस्रंसितागौरतलौ–संस्रंसितानि = बलादपनयनकारणेन प्रच्यावितानि आभरणानि तैर्गौरं तलं ययोस्तौ तथाभूतौ स्तः बलादपनीतं कटकाद्याभूषणास्रंसनसंभवं बाहुभागगौरत्वमधुनापि विद्यमानं सत् भूषणापगमस्याचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति । गात्रे=वपुषि, आभरणभारनतानि = भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि स्थानानि समतां स्वां स्वाभाविकीं स्थितिं नैव उपयान्ति=नैव प्राप्नुवन्ति। त्वं स्वगात्रशोभीनि भूषणानि अधुनैवापसारितवत्यसि यतः भूषणापसारणनम्रीभूतानि तानि तानि स्थानानि अद्यापि स्वस्वप्रकृतिभावं भजन्ते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। प्रत्यग्रैरित्यादि गद्यवाक्यपदार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गालङ्कारमपि। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

अलीकमिति–अलीकम् आर्यपुत्रोऽसत्यमपि वस्तु सत्यमिव मन्त्रयितुं = साध-

---

तुम्हारे शरीर से अभी अभी उतारे जान पड़ते हैं। क्योंकि कर्णफूल के उतारने से कानों के छेद की ग्रन्थि नीचे की ओर झुक जाने से टेढ़े ज्ञात हों रहे हैं। कङ्कणादि आभूषण के वलात् उतारे जाने के कारण हाथ के ये तलवे गौर वर्ण के प्रतीत हो रहे हैं। अधिक क्या कहें, तुम्हारे शरीर के वे भाग जहाँ पर भूषण उतारे जाने के कारण कुछ गड्ढे से पड़ गये हैं अभी अपने स्वरूप में प्राप्त हुए नहीं दिखाई पड़ते।

सीता—आप असत्य को भी सत्य सिद्ध कर सकते हैं।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ॥ ९ ॥

अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भट्टा ! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आवज्झा ।

यितुं पारयति = शक्नोति । मया तु नाभरणानि धारयामीत्युक्तम् भवता तु तदवास्तविकं मत्वा धारयसीति सत्यत्वेन प्रतिपादितम् इति सीताशयः । अतःपरं रामः सीतामलङ्कारधारणाय प्रार्थयते तेन हि तर्हि अलङ्क्रियताम् भूषणैरात्मेति शेषः । आदर्शं = दर्पणं धारयिष्ये हस्ताभ्यां धृत्वा दर्शयामि तथा कृत्वा दर्पणं धारयित्वा निर्वर्ण्य सीताप्रतिबिम्बं निरीक्ष्य ।

अन्वयः—आदर्शे वल्कलानि इव एते सूर्यरश्मयः किम् । हसितेन परिज्ञातम् इयं क्रीडा नियमस्पृहा ॥ ९ ॥

व्याख्या—आदर्शे इति–आदर्शे = दर्पणे वल्कलानि इव त्वया धृतानि इव प्रतीयन्ते । किन्तु पूर्वोक्तसौवर्णत्वसाम्यात् संदेहो रामस्य अतः पृच्छति एते सूर्यरश्मयः किम्, वल्कलेभ्यो निःसृताः सूर्यांशवः किम् । निर्णीय आह—भवतु हसितेन= हासेन परिज्ञातम् नैते सूर्यरश्मयः किन्तु वल्कलान्येव । तदनन्तरं तद्विषये विजिज्ञासते इयं क्रीडा आहोस्वित् नियमस्पृहा—नियमस्य = तपश्चरणस्य स्पृहा = समीहा यन्निमित्तमिदं वल्कलधारणमित्यर्थः । संदेहालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ९ ॥

किमेतदिति–सीता यदा नोत्तरयति तदावदातिकां पृच्छति, किं निमित्तं वास्याः वल्कलधारणमित्यर्थः । अवदातिका तस्या वल्कलधारणे कौतूहलं निदिशति–भत्तं

राम—अच्छा ! तुम इन आभूषणों को पहनो मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर अच्छी तरह उसमें कुछ देखकर) ठहरो–

दर्पण में तुम वल्कल धारण करने जैसी प्रतीत हो रही हो । ये सूर्य की किरणें तो नहीं ? अच्छा तुम्हारी हँसी से मुझे मालूम पड़ गया कि ये सूर्यरश्मियाँ नहीं हैं अपितु वल्कल ही हैं । अच्छा बताओ ये वल्कल क्रीड़ा में धारण की हो या तपस्या करने की तुम्हारी इच्छा हो रही है जिसके लिये इनको धारण की हो ।९।

अवदातिके ! यह क्या बात है ?

अवदातिका—स्वामिन् ! ये वल्कल मुझे अच्छे लगते हैं या नहीं यह जानन

[भर्त्तः! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेनाबद्धानि ।]

रामः—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते । अस्त्यस्माकं प्रीतिः । आनय ।

सीता—मा खु मा खु अय्यउत्तोअमङ्गलं भणादु । [मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु ।]

रामः—मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता—उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तास्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि । [उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति ।]

इत्यादिना । वल्कलधारणे मयीदं शोभते न वेति कौतूहलमेव कारणम् । मैथिलि इति–इक्ष्वाकूणां=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानाम्, वृद्धालङ्कारः=वृद्धावस्थायां धार्यमाणः तपोर्थमाभरणविशेषः । इक्ष्वाकुकुलोत्पन्ना हि वृद्धावस्थायां तपोऽर्थं वल्कलानि धारयन्ति । त्वया युवत्या तन्न धारणीयमित्यर्थः । अस्माकं प्रीतिरिति–किन्तु तव वल्कलधारणं दृष्ट्वा ममापि तत्र प्रीतिरभवदिति । अमङ्गलमिति–अकल्याणकरं वचनं मा भवान् भणतु । यतोऽमङ्गलमेतद् वल्कलधारणम् उज्झिताभिषेकस्य=त्यक्तराज्याभिषेकस्य तव अमङ्गल इव प्रतिभाति । अधुनैवारब्धे अभिषेके विघ्नः संजात इति प्रथममङ्गलम् । इदं च वनवासोचितं ते वल्कलधारणं द्वितीयममङ्गलकारणं माभूदिति सीता प्रतिषेधति ।

के लिये स्वामिनी ने खेल में इसे धारण कर लिया है ।

राम—मैथिली ! ऐसा क्यों ? जो इक्ष्वाकुवंशियों का वृद्धालङ्कार तुमने पहन लिया । अब तो मेरी भी रुचि इन्हें पहनने की हो रही है । अतः यह वल्कल दो ।

सीता—नहीं नहीं ! आर्यपुत्र को ऐसे अमङ्गल शब्द नहीं बोलना चाहिये ।

राम—मैथिलि ! मुझे क्यों मना करती हो ?

सीता—अभी अभी आर्यपुत्र ने (विघ्न के कारण) राज्याभिषेक का त्याग किया है । इसलिये मुझे आप द्वारा इस वल्कल धारण में भी अमङ्गल जैसी प्रतीति हो रही है ।

रामः—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

सीता—अय्यउत्त! किं एदं ? [आर्यपुत्र किमेतत् ?]

रामः—(आकर्ण्य)

अन्वयः—परिहासे स्वयं मन्युं मा उत्पाद्य विशेषतः हि यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया पूर्वम् आबद्धा ॥ १० ॥

व्याख्या—मेति । परिहासे = त्वदुपभुक्तवल्कलयाचनरूपे मम परिहासे स्वयम् आत्मनैव मन्युं = दुःखं खेदं वा मा उत्पाद्य अलं विधाय । विनोदार्थं त्वया धारितस्य वल्कलस्य याचनेऽमङ्गलया शङ्कया व्यथां मा विधेहीत्यर्थः । तत्र कारणमुपन्यस्यति—विशेषतः = विशेषेण हि यतः = यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया वल्कला पूर्वमाबद्धा । 'अर्धो वा एष आत्मनो पत्नी' इति श्रुत्या मद्देहार्धभूतया त्वया स्वदेहे प्रागेव वल्कला आबद्धा । यदि त्वं वल्कलं परिधृतवती तदाऽहमपि धृतवानेव । अत एवार्द्धदेहभूतया त्वया पिनद्धं वल्कलं मया याचते । तत्रामङ्गलस्य शङ्कावसर एव नास्तीत्यर्थः । पूर्ववाक्यार्थे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः । अत्र 'मा उत्पाद्य' इति चिन्त्यप्रयोगः ॥ १० ॥

हा हा इति । हा इति खेदे । त्वरया द्विरुक्तिः । महाराजः दशरथः शोच्यां दशामनुप्राप्त इति खेदस्य विषय इति शेषः । किमेतदिति—संविग्ना सीता परिपृच्छति । महाराजस्य शोकसूचकः समयः अकाण्डे एव समापतितः अत्र किं कारणं भवेदिति । आकर्ण्य = सावधानतया श्रुत्वा ।

राम—तुम्हें अपने आप दुःखी नहीं होना चाहिये मैं तो परिहास के लिये ही ऐसा (तुम्हारे द्वारा धारण किये गये इस वल्कल की याचना) कर रहा हूँ विशेष कर मेरे अर्धाङ्गस्वरूप तुमने जब पहले ही इस वल्कल को धारण कर लिया तो मैंने भी धारण कर ही लिया । फिर इसको याचना में दुःख या आशङ्का किस बात की ?

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज !

सीता—आर्यपुत्र यह क्या हो गया ।

राम—(सुनकर) जो यह स्त्री-पुरुषों का जोर-जोर से भयंकर कोलाहल

नारीणां पुरुषाणां वा निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

अन्वयः—नारीणां पुरुषाणां च यदा निर्मर्यादः ध्वनिः ततः प्रभवामीति दैवेन मूले ताडितम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—नारीणामिति—नारीणां = वनितानां पुरुषाणां = नराणां च यदा = यतः निर्मर्यादः—मर्यादाया निष्क्रान्त इति निर्मर्यादः स्थितेः बहिः यावदयं ध्वनिः= खेदसूचकः शब्दः यतः अतः सुखानुमेयं कारणमस्य शब्दस्य भवेदिति शेषः। ततः प्रभवामि कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् वा सर्वथा मे शक्तिः इति कृत्वा दैवेन = विधात्रा मूले = मुख्यस्थाने एव न तु शाखायामित्यर्थः। ताडितम् = प्रहृतः मूलस्थानं प्रहृत्य सर्वथा विनाशो विहित इत्यर्थः। रघुवंशमूलभूते पुरुषे दशरथे प्रहरता दैवेन समस्तो रघुवंशः विनाशित इति दैवस्याप्रतिमं सामर्थ्यं सुव्यक्तम्, दैवी विपत्तिः दशरथस्योपरि आपतिता न पुरुषकृता इति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत्। इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ११ ॥

तूर्णं = सत्वरम्, ज्ञायताम् = बुध्यताम्, शब्दः = कोलाहलकारणम्। प्रविश्येति—कञ्चुकिहि विपन्नं दशरथं ज्ञात्वा रामाय निवेदयितुमुपसर्पति। परित्रायतामित्यत्र द्विरुक्तिः संभ्रमावेशेन। परित्रातव्यः = रक्षणीयः। ननु वक्तव्यमिति—यः सर्वथा

सुनाई पड़ रहा है इसमें ज्ञात होता है कि काल ने कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं रूप अपना सामर्थ्यं प्रगट करने के लिये एवम् समस्त रघुवंश के विनाश के लिये उसके मूल पर ही इस प्रकार प्रहार किया है ॥ ११ ॥

जल्दी यह पता लगाओ यह कैसा कोलाहल है। (कञ्चुकी का प्रवेश)

(कञ्चुकी प्रवेश कर)

कञ्चुकी—कुमार, बचाइये बचाइये।

राम—आर्य, किसे बचाने के लिये कहते हो ?

काञ्चुकीयः—महाराजः।

रामः—महाराज इति। आर्य! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथ्वी रक्षितव्येति। अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ?

काञ्चुकीयः—स्वजनात्।

रामः—स्वजनादिति। हन्त! नास्ति प्रतिकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ? ॥ १२ ॥

समस्तभूमण्डलरक्षणे समर्थः कृत्स्नां महीं पालयति तस्य परित्राणं परिसूचयता त्वयैवं वक्तव्यमित्यर्थः। एकशरीरसंक्षिप्तेति = एकस्मिन् शरीरे दशरथरूपराजनि संक्षिप्ता पाल्यत्वेन संक्षिप्य तदन्तर्भूतत्वेन समाविष्टा भूमिः रक्षितव्या। दोषः महाराजस्योपरि प्राप्ता विपत्तिः। स्वजनात् = आत्मीयात् पुरुषात्। तस्यात्मीयेन = स्वजनेनैवेयं पातिता विपत्तिः। हन्तेति—खेदे। नास्ति प्रतीकारः आत्मीयजनाचरिते दोषे प्रतीकारस्य नास्ति कश्चिदुपायः। परजनाचरिते तु मारणेन वारणेन वा उपायः सुखसाध्यः स्यात्। स्वजने तु ते तेऽभ्युपायाः विफला इति रामः खेदं प्रकाशयति। तदेवाग्रिमेण श्लोकेन स्पष्टयति।

अन्वयः—यथा अरिः शरीरे प्रहरति। स्वजनः तथा हृदये प्रहरति कस्य स्वजनशब्दः इति मे लज्जां उत्पादयति ॥ १२ ॥.

व्याख्या—शरीरे इति। अरिः = शत्रुः शरीरे = वपुषि प्रहरति = घातयति। स्वजनं = आत्मीयो जनः हृदये = मनसि तथा प्रहरति। शरीरप्रहारः सोढुं शक्यते किन्तु हृदयाघात सर्वथा दुःसहः यतः सोऽनर्थाय कल्पते। यदि स्वजनान्महाराजस्य विपदुपस्थिता तदा दुःशकः तस्य निराकरणोपाय इति तात्पर्यम्। तत्र स्वजनं नामतो

कञ्चुकी—महाराज को।

राम—क्या कहते हो महाराज को ? आर्य! तब यह क्यों नहीं कहते कि समस्त भूमण्डल संक्षिप्तरूप से जिसमें समाविष्ट है उस शरीरधारी पृथ्वी की रक्षा कीजिये। अच्छा यह बताओ महाराज पर यह आपत्ति आई कहाँ से ?

कञ्चुकी—स्वजन से।

राम—क्या कहते हो आत्मीयजन से ? तब तो इसका कोई प्रतीकार नहीं।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

कञ्चुकीयः—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ १३ ॥

ज्ञातुं जिज्ञासते कस्येति—स्वजनशब्दः कस्य विषये प्रयुज्यमानस्तव स्वजनशब्दः यः मां लज्जामुत्पादयति । येन स्वजनेनेदमाचरितं तत्र स्वजनशब्दप्रयोगः मां लज्जयति । कतमोऽयं स्वजनः येनेदं जघन्यमाचरितमिति भावः ॥ १२ ॥

भवत्याः पूज्यायाः सा एव स्वजनः कैकेयी एव नान्य इत्यर्थः । किमम्बाया इति किमत्र स्वजनशब्दः अम्बां मातरं कैकेयीं विषयीकरोति ? यद्येवं तर्हि अलीकमेतद् तस्याः एतादृशे जघन्यकार्ये प्रवृत्तेरसंभवात् । उदर्केण इति—केनापि कारणेन तया तथाऽनुष्ठानेऽपि यद्यपि संप्रति दोषः प्रतीयते तथापि उदर्केण उत्तरफलेन गुणेन भाव्यमिति भावः । कथमिति—त्वयोच्यमानमुदर्के गुणत्वेन भाव्यमिति, केन प्रकारेण शक्योपपादनमिति कञ्चुकी पृच्छति । पूर्वोक्तां शङ्कां परिहरति श्रूयतामित्यादिना । श्रूयताम् मयोक्तौ कारणमाकर्ण्यताम् ।

अन्वयः—यस्याः शक्रसमः भर्त्ता या च मया पुत्रवती । अतः तस्या कस्मिन् फले स्पृहा येन एतादृशं अकार्यं करिष्यति ॥ १३ ॥

जिस प्रकार बाहरी शत्रु शरीर पर आघात करता है उसी प्रकार स्वजन हृदय पर आघात करते हैं । शरीर के आघात की प्रतिक्रिया है पर हृदयाघात का कोई उपचार नहीं । अच्छा यह स्वजन शब्द तुम किसके लिये कहते हो जिसे सुन कर हमें लाज आ रही है ।

कञ्चुकी—पूज्य कैकेयी के द्वारा यह आपत्ति आयी है ।

राम—क्या कहते हो, अम्बा के द्वारा यह आपत्ति आई है ? तब तो यह आपत्ति परिणाम में गुणवती सिद्ध होगी ।

कञ्चुकी—भद्र ! सो कैसे ?

राम—आर्य ! सुनिये । जिसका पति इन्द्र के समान पराक्रमी तथा मेरे जैसे

काञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुं । तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः]

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

काञ्चुकीयः—कथमिव ?

व्याख्या—यस्या इति । यस्याः = कैकेय्याः भर्ता = स्वामी शक्रसमः = इन्द्रतुल्यः यः मानुषसामर्थ्यासाध्यमपि कार्यं संपादयितुमलम् । न केवलं तादृशभर्तृमती अपि पुत्रवत्यपि । तदाह—या मया पुत्रवती = पुत्रयुक्ता यं यं कामयेत् सा तत्सर्वं तस्याज्ञया साधयितुमहं सक्षम इत्यर्थः । एतादृश्या अम्बायाः कस्मिन् फले = साध्यरूपे स्पृहा=इच्छा भविष्यति येन फलेन हेतुना एतादृसम् जघन्यमकार्यं भर्तृव्यसनरूपं करिष्यति=उत्पादयिष्यति । जगति नास्ति किमपि एतादृशं फलं यदहं महाराजो वा साधयितुमसमर्थः । अत्रासन्नं पितृव्यसनं श्रुत्वापि रामः कैकेय्यामचलां श्रद्धां व्यनक्ति । तेनास्य धीरोदात्तता सिद्धयति । अनुष्टुप् छन्दः ।। १३ ।।

कुमारेति—उपहृतासु = विनष्टासु कौटिल्यतयेति शेषः । स्त्रीबुद्धिषु=वनिताजनचित्तेषु स्व-स्वबुद्धिगतम् आर्जवम् = सारल्यं न उपक्षेप्तुम् = आरोपयितुमलम् मा तर्कयेत्यर्थः । यथा तव मतिः ऋज्वी तथा कैकय्या मतिः भवेदित्यपि मा मंस्थाः । कैकय्याः दुष्टबुद्धित्वं प्रदर्शयति कञ्चुकी तस्या एवेत्यादि—तवाभिषेकविघ्नसंपाते सैव कारणम् । तद्वचनेनैव तवाभिषेको निवृत्तः । आर्य ! गुणाः खल्वत्रेति—अत्र मदभिषेकनिवृत्तौ खलु निश्चयेन गुणाः भाविनो हितसाधनानि । कथमिव—कञ्चुकी अविज्ञाततत्त्वः सन् गुणान् पृच्छति । अस्मिन् शुभकर्मणि विघ्नोत्पादने कीदृशी हितसाधनेति ।

पुत्र के कारण जो पुत्रवती है । भला उसकी किस फल की आकाङ्क्षा होगी जिसके लिये वह इतना बड़ा जघन्य कार्य करेगी ।। १३ ।।

कञ्चुकी—राजकुमार ! आप अपनी सरलता के कारण विनष्ट बुद्धिवाली कैकेयी में इस प्रकार का विचार न करें । अभी-अभी उसीके कहने से तो आपका अभिषेक रुक गया ।

राम—आर्य ! उसके इस निश्चय में भी बहुत गुण हैं ।

कञ्चुकी—सो कैसे ?

रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ १४ ॥

काञ्चुकीयः—अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य

रामस्तान् गुणान् प्रकाशयति श्रूयताम् वनगमननिवृत्तिरित्यादिना—

अन्वयः—तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः । मम पितृपरवत्ता । स एव बालभावः नवनृपतिविमर्शे प्रजानां शङ्का नास्ति अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ॥ १४ ॥

व्याख्या—वनगमनेति । तावद्=आदौ पार्थिवस्य=राज्ञो दशरथस्य वनगमननिवृत्तिः=वनगमनान्निवृत्तिः=अवरोधः बभूवेत्येको गुणः । मम पितृपरवत्ता=पितृपारतन्त्र्यम् स एव तादृश एव इति द्वितीयो गुणः । मे बालभावः=पितरि स्थिते मम पुत्रभावोऽपि तादृगेवेति तृतीयो गुणः । नवनृपतिविमर्शे—नवो यः नृपतिस्तस्य विमर्शे=विचारे कीदृगयं नवीनो राजा इति चिन्ताविषये प्रजानां प्रकृतीनां शङ्का=संभ्रमः नास्ति =न बभूवेति चतुर्थो गुणः । अथ चापि मे भ्रातरः भरतादयः परिभोगैः = राज्यसुखादिभोगैः न वञ्चिताः=न पृथक्भूताः पितृराज्यशासने सर्वेषां भ्रातृणां राज्यसुखावाप्तौ समानाधिकार इति भावः । अयं पञ्चमो गुणः । अभिषेकनिवृत्तौ तद्गुणोदर्कतायामेकस्यैव गुणस्य कथने पर्याप्तेऽनेकेषामुल्लेखात् समुच्चयालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् । ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणम् ।१४।

राम—आर्य सुनिये ।

सर्वप्रथम तो उसके ऐसा करने से महाराज का वन जाना रुक गया । दूसरा यह कि मैं पिता के अधीनस्थ रह गया एवं बालभाव बना रहा । अब नवीन राजा के विषय में मेरा यह राजा कैसा होगा इस प्रकार की चिन्ता प्रजामण्डल को नहीं करनी पड़ेगी और मेरे भाईलोग राज्यसुख के उपभोग से वञ्चित नहीं हुए ।

कञ्चुकी—परन्तु उसने बिना बुलाये ही जो राजा से यह कहा कि राज्य

इत्युक्तम् । अत्राप्यलोभः ?

रामः—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते । कुतः,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

काञ्चुकीयः—अथ ।

अथ चेति—कैकेया हि भरताय राज्याभिषेकः प्रार्थितस्तत्र भवान् कं गुणं पश्यतीति जिज्ञासमानो कञ्चुकी पृच्छति । अनाहूतोपसृतया—अनाहूता = अनाकृता चासौ उपसृता = स्वयमुपस्थिता तया । अत्राप्यलोभः भरताय राज्याभिषेकप्रार्थनम् स्वार्थमूलकम् लोभपरं चेति कञ्चुकी सोपालम्भं पृच्छति—आर्य इति । धीरोदात्तविशिष्टो रामः कञ्चुकिनं पक्षपातदोषग्रस्तं निर्दिशन्नाह—पक्षपातादेव—पक्षे पातः पक्षपातस्तस्मात् । अर्थं = प्रयोजनम् । न अवेक्षते = न पश्यति । तदेव स्पष्टयति ।

अन्वयः—शुल्के पुत्रार्थे विपणितं राज्यं यदि याच्यते अत्र तस्या लोभः (किम्) भ्रातृराज्यापहारिणाम् अस्माकं (लोभः) न ? ॥ १५ ॥

व्याख्या—शुल्के = विवाहकालिककन्याग्रहणनेतव्यमूल्ये पुत्रार्थे = भाविपुत्रकृते विपणितं = पूर्वं प्रतिश्रुतं राज्यं यदि तया याच्यते = प्रार्थ्यते तर्हि तस्याः = अम्बायाः कैकेय्याः अत्र विषये = राज्यप्रार्थनरूपे लोभः किम् ? न कोऽपि लोभ इत्यर्थः । अत्र काकुः । भ्रातृराज्यापहारिणाम्—भ्रातुः=भरतस्य राज्यापहारिणाम्= राज्यमपहरन्तीति तच्छीलानां अस्माकं न लोभः । किमिति शेषः । कैकेय्याः विवाहकाले हि अस्याम् संजनिष्यमाणः पुत्र एव राज्यभाग् भविष्यतीति महाराजेन शुल्क-

---

पर भरत का अभिषेक कीजिये क्या उसका यह अलोभ है ?

राम—आर्य ! आप हमारे प्रति पक्षपात के कारण ही वास्तविक बात ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं ।

यदि विवाह-शुल्क में अपने पुत्र के लिये वह राज्य माँगती है तो इसमें उसका क्या लोभ है । यदि इसे लोभ कहा जाय तो भाई के लिये प्रतिज्ञात राज्य को अपहरण करनेवाले हमलोगों का भी लोभ क्यों नहीं ।

कञ्चुकी—और ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः॥ १६॥

रूपेण प्रतिश्रुतम्। इति हेतोः न्यायतः भरतस्य राज्ये जन्मसिद्धोऽधिकार इति। एवं राज्यप्रार्थने तस्या लोभलवोऽपि नास्ति, प्रत्युत भरतस्य राज्यमधितिष्ठन्तो वयमेव दोषभाज इति भावः। काक्वा वक्रोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः॥ १५॥

अथेति—काञ्चुकीयः कैकेय्या दोषान्तरमभिधातुमुपक्रमते अथेत्यादिना। अतःपरमिति अलं मातुः परिवादकथनेन। नाहं तत्परिवादं श्रोतुमिच्छामीति कञ्चुकिनं वारयति रामभद्रः। गुरुपरिवादश्रवणेष्वधर्मत्वस्य स्मृतौ प्रतिपादनादिति भावः। ततस्तदानीमिति काञ्चुकीयः राज्ञो वृत्तान्तं निवेदयति। ततः = भरताभिषेकप्रार्थनानन्तरम्। तदानीम् = तस्मिन् काले। इदं वक्ष्यमाणश्लोकोक्तम् वचनम्।

अन्वयः—राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः। नृपतिः किमपि अभिमतं मोहं च उपगतः। इति मन्ये॥ १६॥

व्याख्या—राज्ञा = महाराजदशरथेन शोकात् = कैकेयीयाचनजनिताद् दुःखात् अवचनात् = वचनमनुक्त्वैव शोकातिशयेन किमप्यनुक्त्वेति भावः। हस्तेन = करचेष्टया अहं विसर्जितः। 'गच्छ कैकेयीचरितं रामभद्राय निवेदय' इति वक्तुं अहं विसर्जितः = भवत्समीपं प्रेषितः। न तस्य तदा केवलं वाक्शक्तिर्विलुप्ता किन्तु सर्वेन्द्रियचेष्टाशून्यकारणभूतः मोहोऽप्यभूदित्याह—किमपीति। नृपतिः = दशरथः किमपि अभिमतम् कष्टतरात् प्रबोधात् किञ्चिदिष्टत्वेन मोहनं मूर्च्छनं च गतः = संप्राप्तः। चेतनदशायां हि दुःखमधिकं पीडयति नाचेतनावस्थायामिति तस्य तदानीं मोहमेवा-

राम—आर्य! इससे अधिक मैं माँ की निन्दा नहीं सुनना चाहता अतः आप महाराज का समाचार सुनाइये।

कञ्चुकी—तब उसी समय—

शोक के कारण सर्वथा बोलने में असमर्थ महाराज ने हाथ के संकेत से कैकयी के इसप्रकार के विचार से अवगत कराने के लिये मुझे आपके पास भेज दिया और

रामः—कथं मोहमुपगतः ?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति ?

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया,

रामः—(आकर्ण्य पुरस्तो विलोक्य)

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १७ ॥

भिमतमिति भावः । अत्र मोहस्य दुःखावेदकहेतोरिष्टत्वेन वर्णनात् अनुज्ञालङ्कारः । उत्कटगुणविशेषलालसया दोषत्वेन प्रसिद्धस्यापि वस्तुनः प्रार्थनामनुज्ञेति तल्लक्षणम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १६ ॥

कथं=केन प्रकारेण, मोहम् = मूर्च्छाम्, उपगतः = संप्राप्तः । अयं भावः– मदभिषेककारणप्रतिघातजन्यदुःखे काममनुभवतु नाम । किं तु अतिधीरः स एतावतैव मोहमुपगतः इति महदाश्चर्यम् । अत्र निपुणं कारणं विमृशन्नपि न पश्यामीति भावः । मोहविषये रामस्यानुशोचनमसहमानो लक्ष्मणः प्रविश्य नेपथ्यावस्थितो ब्रवीति कथं मोहमुपगतः इति यद् वचनम् भवतोच्यते तत् सर्वथानुचितमित्याह— मोहं न सहसे इत्यदि ।

यदि राज्ञो मोहं न सहसे तर्हि मोहकारणभूतजने प्रतीकारेच्छया धनुर्गृहाण तस्योपरि दयां मा कुर्वित्यर्थः ।

अन्वयः—अक्षोभ्यः धैर्यसागरः लक्ष्मणः केन क्षोभितः । रुष्टेन येन अग्रतः शताकीर्णम् इव पश्यामि ॥ १७ ॥

व्याख्या—अक्षोभ्य इति—अक्षोभ्य—क्षोभयितुं योग्यः क्षोभ्यः न क्षोभ्यः

स्वयम् मूर्च्छित हो गये जो उस समय उनके लिये कुछ अभीष्ट बन गया ।

राम—क्या मूर्च्छित हो गये ।

(नेपथ्य के भीतर से)

क्या-क्या मूर्च्छित हो गये । यदि राजा का इस प्रकार मूर्च्छित होना तुम्हारी सहनशक्ति के बाहर है तो जिस कारण से इन्हें मूर्च्छा हुई है उसके प्रतीकार के लिये धनुष उठाओ- दया मत करो ।

राम—(सुनकर और सामने देखकर) धैर्य में अगाध, समुद्र के समान

लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ १८ ॥

अक्षोभ्यः=सर्वथा विकाररहितः शान्त इत्यर्थः धैर्यसागरः—धैर्यस्य=धीरतायाः सागरः=समुद्रः अतिगम्भीरस्वभावो लक्ष्मणः, केन क्षोभितः=केन कोपितः । रुष्टेन=क्रुद्धेन येन तिष्ठता, अग्रतः=अग्रदेशे शताकीर्णम्—शतेन आकीर्णम्=व्याप्तम् इव पश्यामि । रुष्ट एक एव लक्ष्मणः गर्जन् जनशतस्य गर्जनमिव गर्जनं करोतीत्यर्थः । धैर्यसागर इत्यत्र रूपकालङ्कारः । 'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे' इति तल्लक्षणम् । शताकीर्णमिवेत्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः 'संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्' इति तल्लक्षणम् । अक्षोभ्यः क्षोभित इति विरोधाभासोऽपि । 'आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते' इति तल्लक्षणम् । अनुष्टुप् छन्दः । १७ ।

मोहहेतुं पृच्छति 'यन्मोहमुपगतो राजा केन कारणेनेति, मोहं गतस्य राज्ञः मोहकारणे दण्ड उचितः न तु तत्र विषादकरणम् अत्र यद्विधेयं तदेवाह—यदि नेति ।

अन्वयः—यदि राज्ञः मोहम् न सहसे चेत् तदा तन्मोहकारणे धनुः स्पृश । तत्र दया मा अस्तु । स्वजननिभृतः सर्वः अपि मृदुः एवं परिभूयते अथ न रुचितम् तर्हि त्वं मां मुञ्च । अहं युवतिरहितं लोकं कर्त्तुं कृतनिश्चयः अस्मि । यतः वयम् छलिताः ।

व्याख्या—यदीति । यदि राज्ञः=तातस्य, मोहम्=विसंज्ञतां, न सहसे=

गम्भीर इन लक्ष्मण को किसने क्षुब्ध किया है, पर इनके अकेले क्रुद्ध होने पर मैं इन्हें अपने आगे सौ वीरों के समान देख रहा हूँ ॥ १७ ॥

(धनुष-बाण हाथ में लिये लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—(क्रोधपूर्वक) क्या ? क्या ? आप पूछते हैं कि अचेत कैसे हो गये ? यदि राजा का इस प्रकार मूर्च्छित होना आपकी सहनशीलता के बाहर है तो मूर्च्छित होने के कारण का प्रतीकार करने के लिये धनुष उठाइये, उस पर दया किसलिये ? स्वजनों के विषय में चुप रह कर सहन करने वाला तथा कोमल

सीता—अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपुव्वो क्खु से आआसो । [आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः खल्वस्यायासः ।]

न मर्षयसि चेत्, धनुः स्पृश = चापास्फालनं कुरु । मोंहहेतुजने चापं व्यापारय न तु मोहिते इत्यर्थः । एतेन मोहप्रतीकाराय धनुर्गृहीत्वा सन्निधौ भवेति व्यज्यते । तत्र दया मा अस्त्विति शेषः । त्वया मोहकारणभूते जने दया न कर्त्तव्येति भावः । स्वजने निभृतः = मौनीभूतः स्वजनकृतं सर्वं सहमानः सर्वोऽपि भवादृशः मृदुः = दयालुः, क्षमावान् एवं = अनेन प्रकारेण, परिभूयते = तिरस्क्रियते । पक्षान्तरे आह— यदि न रुचितम् स्वजनविषये चापग्रहणं भवते न रुचितम् = नाभिलषितम् तर्हि मां मुञ्च = आज्ञापय । अहं, लोकम्, युवतिरहितं = युवतिजनशून्यम्, कर्त्तुम् = संपादयितुम्, कृतनिश्चयः अस्मि । युवतिजने प्रद्वेषकारणं निरूपयन्नाह— यत् इति । यतः यस्मात् कारणात् वयं छलिताः = वञ्चिताः स्म । अत्र धनुर्ग्रहणे दयापरित्यागरूपे वाक्यार्थे यतश्छलिता वयम् इति वाक्यार्थो हेतुः तेन काव्यलिङ्गनामालङ्कारः । 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' इति तल्लक्षणम् । हरिणीवृत्तम् । 'रसयुगहयैन्सौं म्रौ म्लौ गो यदा हरिणी तदा इति तल्लक्षणम्' १८

युवतिजनरहितं लोकं कर्त्तुम् मनसः लक्ष्मणस्यायं प्रयासो शोच्य इति मन्यमाना सीता रामम् निवेदयति—आर्यपुत्रेति । रोदितव्ये = रोदनयोग्ये, काले = समये अपूर्वः = विस्मयकरः । इदानीं राजा शोच्यतां गतः तन्मोहापनोदकाले युवतिजनोच्छेदप्रयासः लक्ष्मणस्य अकाण्डताण्डव इवेत्यपूर्वः । यद्वा एतादृशः प्रचण्डः कोपः लक्ष्मणस्य मया पूर्वं न दृष्टः इत्यपूर्वः । सुमित्रामातः—सुमित्रा माता यस्य सस्तत्संबुद्धौ । किमिदम् अकारणोऽयं संरम्भः किमर्थमिति । लक्ष्मणः पुनः क्रुद्धः सन्नाह—कथं कथं किमिदं नाम । द्विरुक्तिः कोपातिशयसूचनार्थम् ॥ १८ ॥

स्वभाववाला पुरुष इसी प्रकार तिरस्कृत होता है । किन्तु यदि आप स्वयं प्रतीकार नहीं करना चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिये । मैंने इस लोक को युवतिजनों से शून्य करने का निश्चय कर लिया हैं क्योंकि युवती के कारण ही हमलोग आज छले जा रहे हैं ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! लक्ष्मण ने इस रोने के अवसर पर अपना धनुष उठाया है । इनका इस प्रकार का क्षोभ तो इससे पहले कभी नहीं देखा गया।

रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

लक्ष्मणः—कथं कथं किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ? ॥ १९ ॥

रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति । आः, अपण्डितः खलु भवान् ।

अन्वयः—क्रमप्राप्ते राज्ये हृते नृपे भुवि शोच्यासने इदानीम् अपि संदेहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥ १९ ॥

व्याख्या—क्रमप्राप्ते–'क्रमेण पितुरनन्तरम् ज्येष्ठजातेन राज्यम् प्राप्तव्यम्' इत्येवं रूपेण प्राप्ते राज्ये हृते = संछिन्ने सति । नृपे = राज्ञि भुवि = भूतले शोच्यासने—शोच्यम् = शोकार्हम् आसनम् = स्थितिर्यस्य तस्मिन् तथाभूते न तु सुखासने इदानीमपि = अस्यामपि स्थितौ, संदेहः प्रतीकारनिश्चयाभावः । किं क्षमा नाम निर्मनस्विता आत्माभिमानशून्या । नैवेत्यर्थः । वीरा हि क्षमाकृते स्वाभिमानं न त्यजन्ति । भवतापि स्वाभिमानशून्या क्षमा नालम्बनीया वीरजनस्यानुचितत्वात् । अतः तत्र प्रतीकारपरो भव । संदेहो न कर्त्तव्य इति भावः । यद्वा एतादृश्याम् स्पष्टापकारितायां प्रकटं प्रतीतायामपि तव कर्त्तव्यानवधारणरूपः संदेहः क्षमया गौरवभावशून्यतया वा प्रसूतः इति न ज्ञातुं शक्नोमीति तात्पर्यम् । समुच्चयालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

आः इति कोपे । उद्योगम् = युद्धसन्नाहम् मयि राज्यात् भ्रंशिते यत्तव युद्धाय उद्योगः । स तवाविवेक इत्यर्थः । अपण्डितः = विचारशून्यः ।

राम—सुमित्रानन्दन यह क्या ?

लक्ष्मण—क्यों क्या अब भी पूछ रहे हैं कि यह क्या ? वंशपरम्परा के क्रम से प्राप्त राज्य छीन लिया गया । महाराज भी शोचनीय अवस्था में पृथ्वी पर पड़े हुए हैं तब भी आप किमिदम् कहकर संदेह कर रहे हैं । इस प्रकार का संदेह क्या क्षमा का फल है अथवा स्वाभिमानशून्यता का फल है ॥ १९ ॥

राम—सुमित्रानन्दन ! हमारे राज्य से विभ्रष्ट हो जाने के कारण तुम इस प्रकार उत्तेजित होकर प्रयत्नशील हो । आप बुद्धिमान् नहीं हैं ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छामस्तावत् । (प्रस्थितः)

रामः—त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

विचारशून्यता चाग्रे वर्ण्यते–भरत इति—

अन्वयः—भरतो वा राजा भवेत् वयं वा । ननु तत् समम् । यदि ते धनुः श्लाघा अस्ति तदा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

व्याख्या—भरतो वा राजा भवेत् वयं वा राजानो भवेम । तदन्यतराभिषेचनम् समम् = तुल्यम् ननु निश्चये । यदि ते धनुः श्लाघा=धनुषो गर्वः अस्ति तदा स राजा नवाभिषिक्तः भरतः परिपाल्यताम् तस्य सहायको भूत्वान्तरेभ्यो बाह्येभ्यश्च विघ्नेभ्यः रक्ष्यतामित्यर्थः किञ्च मद्विषये त्वया चिन्ता न कार्या ।

रोषम्=कोपावेगम् । धारयितुम् = नियन्तुम् । न शक्नोमि तदत्र स्थित्वालमन्यत्राऽवस्थितेन किमप्यन्यदवाच्यमुच्येत । अकार्यं वा क्रियते तदन्यतो प्रस्थीयते इत्यर्थः ॥ २० ॥

अन्वयः—त्रैलोक्यं दग्धुकामा इव ललाटपुटसंस्थिता एषा लक्ष्मणस्य भ्रकुटिः नियती इव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

व्याख्या—त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम् = भुवनत्रयम् दग्धुकामेव दग्धुं कामो यस्या सा दग्धुकामा दिधक्षन्ती इव ललाटपुटसंस्थिता = कपालमध्यसंस्थिता एषा

चाहे भरत को राज्य मिले अथवा मुझ राम को दोनों बातें एक समान ही है यदि तुम्हें अपने धनुष पर अभिमान है तो इस धनुष से राजा भरत की रक्षा करो ॥ २० ॥

लक्ष्मण—मैं इस समय अपना क्रोध रोकने में असमर्थ हूँ । तो ठीक है, इस समय अन्यत्र जाता हूँ । (ऐसा कहकर प्रस्थान करना चाहते हैं ।)

राम—समस्त त्रिलोकी को भस्म करने की इच्छा करती हुई ललाट तक

सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ? अयमस्मि ।

रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम् ।

ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ २२ ॥

प्रत्यक्षदृश्या लक्ष्मणस्य भ्रुकुटिः नियतो इव विधिरेखा इव व्यवस्थिता समुद्यता । ललाटपुटसंस्थिता इति नियत्यामपि विशेषणत्वेन योज्यम्

नियत्यपि ललाटपुटमध्ये एवं संतिष्ठते । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः । २१ ।

मातृगुणानुस्मरणद्वारा रोषापकर्षणार्थम् लक्ष्मणं मातृनाम्ना संबोधयन्नाह रामः—सुमित्रामातः इतस्तावदागम्यतामिति शेषः । स्थैर्यम् स्थिरता शान्तिः तदुत्पादयता संपादयता मया 'भरतो वा भवेद्राजा' इति वचनम् प्रागुक्तम् इदानीं शान्तस्त्वम् मत्प्रश्नस्योत्तरं विधेहि—तवास्मिन् धनुर्व्यापारे किमर्थमयं महान् संरम्भ इति रामः पृच्छति उच्यतामिदानीमिति—

अन्वयः—सत्यमवेक्षमाणे ताते धनुः नमयि । वा स्वधनं हरन्त्याम् मातरि शरं मुञ्चानि । वा दोषेषु दाह्ययम् अनुजं भरतं हनानि । एषु त्रिषु पातकेषु रोषणाय तव किं रुचिरम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—सत्यम् पूर्वं प्रतिज्ञातवचनम् अवेक्षमाणे द्रष्टरि पालयतीत्यर्थः । ताते पितरि दशरथे धनुः चापम् नमयि नमयानि अत्र 'नमयि' इत्यपपाठः । यद्वा ताते धनुः मयि न इत्येवं विगृह्यान्वयः कार्यः । स्वधनम् विवाहकाले प्रतिज्ञातकारणेन समस्तमेतद्राज्यं तदीयमेवेति तादृशं राज्यम् अपहरन्त्याम् = आददन्त्याम् मातरि=

चढ़ी हुई लक्ष्मण की ये टेढी भौंहे भाग्यरेखा के समान अपने निश्चय पर दृढ हैं । अच्छा लक्ष्मण, इधर तो आओ ॥ २१ ॥

लक्ष्मण—आर्य ! यह आया ।

राम—तुम्हारे क्रोध को शान्त करने के लिये ही मैंने ऐसा कहा है । अब तुम्ही बताओ कि क्या पिताजी पर धनुष उठाया जाय जो अपनी प्रतिज्ञा का

लक्ष्मणः—(सवाष्पम्) हा धिक् ! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ २३ ॥

कैकेय्याम् शरं मुञ्चानि प्रश्नकाकुः वा दोषेषु दोषेभ्यः वाह्यम् वहिर्भूतम् निर्दोषमिति यावत् भरतं हनानि किम् हन्याम् किम् इत्यत्रापि काकुः । एषु पूर्वोक्तेषु त्रिषु पातकेषु पितृमातृभ्रातृवधेषु किं कतमद् तव रोषणाय कोपनाय रुचिरम् अभीष्टम् मनःप्रसादकारकमिति भावः । पापमूलकोऽयं तव रोषः निर्दोषेष्वेषु त्रिषु कमप्येकं हत्वा पापमेवार्जयेदित्यर्थः । तथा हि तातः प्रतिश्रुतमेव राज्यमर्पयति तेन स्वप्रतिज्ञापालनं करोति । माता च शुल्करूपेण स्वस्यै प्रतिज्ञातमत एव स्वकीयमेव धनं हरति । भरतस्तु राज्यापहारविषये न किमपि जानाति अतः एषु निरपराधस्य कस्यापि वधः गर्हित एव भवेदित्यर्थः । अत्र विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

हा धिगित्यादि अस्मानविज्ञाय मदीयाभिप्रायं सम्यगज्ञात्वा । उपलभसे उपालम्भं ददासि ।

लक्ष्मणः स्वकोपकारणं प्रकटयति—

अन्वयः—यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथः न । चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यं किल ।

व्याख्या—यत्कृते—यत्कृते येन कारणेन कृते आर्येण समुत्पादिते महति दुरन्ते क्लेशे खेदे पितृमोहप्राप्तिरूपे दुःखे राज्ये राज्यविषये मे मम मनोरथः नास्ति । नेदं राज्यापहरणं मद्रोषकारणम् किन्तु पितृपादानां मोहप्राप्तिरेव । पितृमोहप्राप्तौ

पालन करना चाहते हैं, या माता पर बाण चलाया जाय जो (विवाहशुल्क में पूर्व प्रतिज्ञात) अपना धन राजा से चाह रही है । अथवा अनुज भरत को ही मारा जाय जो सभी प्रकार के दोषों से रहित है, इस प्रकार पितृ, मातृ एवं भ्रातृवध रूप इन तीनों पापों में कौन सा पाप तुम्हारे रोष को शान्त करने के लिये अभिमत हो सकता है ॥ २२ ॥

लक्ष्मण—(रुंधे कण्ठ से) हाय ! मेरा अभिप्राय न जानकर उलाहना दे रहे हैं—जिसके लिये आपको अथवा पिताजी को इतना बड़ा क्लेश हो रहा है उस

रामः—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान्? हन्त! निवेदितमप्रभुत्वम्। मैथिलि!

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्॥ २४॥

हेतुमाह चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यं किल। इयं कैकेयी भरताय राज्यं याचमाना तावन्मात्रेर्णव न संतुष्टा किन्तु भवत्कृते चतुर्दशवर्षपर्यन्तम् वनवासमपि प्रार्थितवती, यदर्थे पितृपादानां मोहप्राप्तिरित्यस्मद्दुःखकारणमित्यर्थः। लक्ष्मणेन स्वकोपकारणे निवेदिते रामोऽपि राज्ञो मोहकारणं चतुर्दशवर्षपर्यन्तं स्वकीयवनवासं मत्वाह—अत्रेत्यादि। अत्र अस्मिन्नेवार्थे चतुर्दशवर्षवनवासविषये न तु मदभिषेकविघातविषये। तत्र भवान् पूज्यः पिता। हन्त इति खेदे। निवेदितम् प्रकटितम्। अप्रभुत्वम् अधीरत्वम्। राज्ञोऽधीरतैव रामस्य खेदविपय इत्यर्थः॥ २३॥

अन्वयः—अनया दत्तान् वल्कलान् चीराणि मङ्गलार्थे आनय तावद् अन्यैः नृपैः नैवाप्तम् नैवोपपादितं धर्मं करोमि॥ २४॥

व्याख्या—मङ्गलार्थे इति—अनया अवदातिकया चेट्या दत्ताम् समाहृताम् वल्कलान् चीराणि मङ्गलार्थे वनवासानुष्ठाननिर्विघ्नसमाप्त्यर्थ यद् मङ्गलं तदर्थे, आनय तावत् मह्यं देहि। वने वसन्नहम् तपः आचरिष्यामि तत्रायं वल्कलो मे मङ्गलं करोतु नामेत्यर्थः। अन्यैः पूर्वजैः नृपैः राजभिः नैवाप्तम् नावसरो लब्धः। नोपपादितम् न चाचरितम् एवम् भूतं धर्मम् आचरामि। अयं भावः—मत्पूर्वजाः 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीना'मिति कालिदाससूक्तरीत्या वृद्धावस्थायां वल्कलं परिधाय मुनिवृत्तयः भवन्ति मया तु किशोरावस्थायामेवायमवसरो लब्धः। किञ्चैतादृशम्

राज्य के प्रति हमारी अभिलाषा नहीं है, किन्तु मुझे दुःख इस बात का है कि आपको चौदह वर्ष पर्यन्त वन में रहना पड़ेगा (जो विवाह-शुल्क की परिधि से बाहर है)॥ २३॥

राम—क्या मेरे वनवास के कारण महाराज मूर्च्छित हो गये। तब तो बड़ा शोक है। उन्होंने अपनी अधीरता ही प्रकट कर दी।

अच्छा मैथिलि!

इस समय उपस्थित हुए इस मङ्गल कार्य के लिये अवदातिका द्वारा लाये

सीता—गृह्णदु अय्यउत्तो । [गृह्णात्वार्यपुत्रः]

रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

सीता—णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं । [ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्]

रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

सीता—अदो णु क्खु अनुगच्छामि । [अतो न खल्वनुगच्छामि ?]

चतुर्दशवर्षपर्यन्तं वनवासरूपपित्राज्ञापालनव्रतमपि न केनचिदनुष्ठितम् । मया तु प्राप्तमेवेति सर्वापेक्षया स्वोत्कर्षः सूच्यते । व्यतिरेकालङ्कारो व्यङ्ग्यः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

वनवासकृतनिश्चयो रामः सीतां पृच्छति—मैथिलीति । व्यवसितम् = निश्चितम् मयि वनं गते भवत्या किं निश्चितमित्यर्थः । मैथिली उत्तरति—ननु इत्यादि । सहधर्मचारिणी—सह धर्मं चरितुं शीलमस्या भवता सदैव मयापि धर्माचरणार्थे वनमनुगन्तव्यमित्यर्थः । एकाकिना असहायेन = अद्वितीयेन पित्राज्ञा केवलम् मदर्थे अतो भवती नार्हति वनानुगमनमिति रामाभिप्रायः । एकाकी भवान् वनं गच्छति अतः परिचर्यार्थं मयावश्यमनुगन्तव्यमिति सीता आह—अतो नु इत्यादि । रामः कष्टतरं वनवासदुःखमिति सीतां भीषयति—वने खल्वित्यादि । रामोक्तवनवासे सीता सहवासेन वनम् प्रासादं मन्यते इत्याह—तत् खलु मे प्रासाद इति । श्वश्रूश्वशुरसेवापि भवत्याः कर्त्तव्यमतो भवती गृह एव तिष्ठतु इति विचार्य राम आह—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषेत्यादि । शुश्रूषा = सेवा, निर्वर्तितव्या = अनुष्ठेया । तन्निशम्य सीता ब्रवीति—

गये वल्कल मुझे दो । इसे धारण कर मैं ऐसे धर्म का आचरण करूंगा जिसे किसी अन्य राजा ने आज तक न तो प्राप्त किया है, और न आचरण करके दिखाया ही है ॥ २४ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! यह है वल्कल, लीजिये ।

राम—मैथिलि ! अब तुमने क्या निश्चय किया है ।

सीता—मैं तो आपके साथ ही धर्माचरण करूँगी ।

राम—परन्तु मुझे तो अकेले ही वन जाने को कहा गया है ।

सीता— इसीलिये तो मुझे आपके साथ चलना है ।

रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।

सीता—तं क्खु मे पासादो । [तत् खलु मे प्रासादः]

रामः—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या ?

सीता—णं उद्दिसअ देवदानं पणामो करीअदि । [एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते ।]

रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।

एनामिति । श्वशुरयोर्मङ्गलार्थे देवान् प्रार्थये प्रार्थिता हि देवाः तयोर्योगक्षेमौ वहन्ति यद्वा गुरुशुश्रूषास्थाने देवान् प्रणम्य चेतः सान्त्वयिष्यामि । अथवा पतिपरतन्त्रतया गृहेऽवस्थाय नाहं गुरुशुश्रूषां कर्त्तुम् शक्नोमीति विवशा सती अपराधमिमं मर्षयितुं देवताः प्रणंस्यामीति सीताशयः स्वयं वारितुमक्षमः । रामो लक्ष्मणमादिशति—वार्यतामियमित्यादि । श्लाघनीये काले प्रशस्तानुगमनाध्यवसायसमये ।

अन्वयः—तारा शशाङ्कम् राहुदोषेऽपि अनुचरति । किञ्च वनवृक्षे पतति लता भूमिं याति । करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं च न त्यजति । व्रजतु धर्मं चरतु हि नार्यः भर्त्तुनाथा भवन्ति ॥ २५ ॥

व्याख्या—अनुचरत्विति—तारा चन्द्रपत्नी । रोहिणी शशाङ्कम् = चन्द्रम् राहुदोषेऽपि राहुकृतोपरागदोषेऽपि आपत्तिकालेऽपीत्यर्थः । अनुचरति = अनुगच्छति, न तु स्वामिनं विपद्ग्रस्तं दृष्ट्वा तं त्यजति । वनवृक्षे = वन्ये तरौ, पतति सति,

---

राम—किन्तु वन में निवास करना होगा ।

सीता—वह तो मुझे प्रासाद जैसा सुखदायी होगा ।

राम—सास और ससुर की सेवा करना भी तो तुम्हारा धर्म हैं ।

सीता—इस सेवा के लिये तो मैं देवताओं को ही प्रणाम करूँगी ।

राम—लक्ष्मण ! इन सीता को ऐसा करने से रोको ।

लक्ष्मण—ऐसे शुभ अवसर के प्राप्त होने पर तत्र भवती आर्या को रोकने का साहस नहीं होता क्योंकि रोहिणी राहुग्रहणजन्य विपत्ति से ग्रस्त होने पर भी

त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ २५ ॥

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—ओदादिआए सङ्गीदसालादों आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा । इमा अवरा अणणुहदा वक्कला । णिवत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति । [जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपा-

---

लता = वल्लरी च तेन सहैव भूमिं याति = निपतति । करेणुः = हस्तिनी पङ्कलग्नं पङ्के लग्नम् पङ्कलग्नम् = कर्दमनिमग्नं गजेन्द्रम् न त्यजति=नैव मुञ्चति । विपन्नावस्थायामपि तमनुसरत्येव । अतः इयं वनम् व्रजतु स्वपतिना सह गच्छतु । धर्मम् पत्यनुसरणरूपं पातिव्रत्यरूपं च चरतु = विदवातु । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयति–हि नार्यः = स्त्रियः भर्तृनाथाः = स्वामिपरतन्त्राः तदनुवृत्तिता समदुःखसुखता च तासाम् सदोचितैवेति भावः । अत्र सामान्येन विशेपस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासः । हि शब्दः अस्यार्थस्य प्रसिद्धतां व्यनक्ति । ‘सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते । यत्तु सोऽर्थान्तिरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।’ इति तल्लक्षणम् । किञ्च ‘दृष्टान्तस्तु सघर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनमिति’ लक्षणात् दृष्टान्तोऽपि ॥ २५ ॥

आच्छिद्य=बलात्संगृह्य । अननुभूताः = नवाः न केनापि पूर्वं धारिताः प्रयोजनं= स्वकार्यम् निर्वत्यताम् = संसाध्यताम् । एषा जानकी संतुष्टा धारणेन पूर्णमनोरथा । अर्थिनः = वल्कलेप्सवः । इयं सीता वल्कलधारणेन पूर्णमनोरथा, केवलमहमेव वल्कलमभिलषामीत्यर्थः । रामकृतं वल्कलधारणं दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽपि सहैव वनगमनार्थम् स्वाभिप्रायं भङ्ग्या प्रकटयति प्रसीदत्वार्य इत्यादि ।

चन्द्रमा का अनुसरण करती है, लता पेड़ के गिरने पर उसके साथ ही पृथ्वी पर स्वयं भी गिर जाती है, हथिनी अपने हाथी को कीचड़ में फँसा देख कर कभी उसका परित्याग नहीं करती । इसलिये इन्हें भी अपने साथ चलने दीजिये और पातिव्रत्य-धर्म का पालन करने दीजिये । क्योंकि स्त्री का पति ही सर्वस्व है ॥२५॥

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—जय हों महारानी जी की । नेपथ्य की रक्षिका आर्यरेखा प्रणामपूर्वक निवेदन कर रही है कि अवदातिका संगीतशाला से वल्कल चुराकर लाई

लिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः । इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति ।]

रामः—भद्रे ! आनय, सन्तुष्टैषा । वयमर्थिनः ।

चेटी—गृह्णादु भट्टा । [गृह्णातु भर्ता] (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः ।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्घं प्रदाय मे ।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥ २६ ॥

अन्वयः—निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्यः अर्घं मे प्रदाय एकाकिना चीरं बद्धम् । चीरे खलु मत्सरी असि ॥ २६ ॥

व्याख्या—निर्योगात् = वस्त्रकञ्चुकाद्याच्छादनोपयोगिवसनात् भूषणात् = कटककुण्डलादेरलङ्कारात्, माल्यात् = पुष्पस्रजः एभ्यः सर्वेभ्यः मे = मह्यम् अर्घं प्रदाय = दत्वा भवतैतानि परिगृह्यन्ते किन्तु एकाकिना केवलेन मह्यमप्रदायैव चीरम् = वल्कलं बद्धम् = परिहितम् । बहुमूल्यवस्त्राभरणादीनि संविभज्य भवता धार्यंते इति दृष्टपूर्वः स्वभावः किन्तु अतिहीनमूल्यस्य वल्कलस्य संविभागमकृत्वा रत् केवलमेकाकी एव धारयसीति स्वार्थबुद्धित्वात् मे महान् खेद इत्याह—चीरे = वल्कले । खलु विषादार्थकमव्ययपदम् । मत्सरी = मत्सरेण युक्तः इदमपि मह्यं प्रदाय मया सहैव वनं गच्छेति लक्ष्मणाभिप्रायः । पर्यायोक्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २६ ॥

हैं । ये दूसरे वल्कल हैं जो सर्वथा नवीन है । अतः इसीसे अपनी आवश्यकता पूरी कीजिये ।

राम—भद्रे, तो लाओ यह तो वल्कल पहनकर अपना मनोरथ पूर्ण कर चुकी है किन्तु इसकी हमें ही आवश्यकता है ।

चेटी—लीजिये प्रभु ।

(वल्कल देकर प्रस्थान करती है)

(राम लेकर वल्कल धारण करते हैं)

लक्ष्मण—आर्य मुझपर प्रसन्न हों ।

रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम् ।

सीता—सौमित्रे ! णिवत्तीअदु किल । [सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल ।]

लक्ष्मणः—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ? ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

सीता—दीअदु क्खु अय्यउत्तो । सन्तप्पदि सोमित्ती । [दीयतां खल्वार्यपुत्रः । संतप्यते सौमित्रिः ।]

लक्ष्मणाभिप्रायं ज्ञात्वा रामः यन्निवारणाय मैथिली प्रेरयतीत्याह—मैथिलीति । निवर्त्यताम् = वार्यताम् । वनगमनाध्यवसायादिति शेषः ।

अन्वयः—त्वम् एका मे गुरोः पादशुश्रूषां कर्त्तुम् इच्छसि । तव दक्षिणः पादः एषः सव्यः मम भविष्यति ॥ २७ ॥

व्याख्या—त्वम् एका = एकाकिनी = केवला मे = मम गुरोः = पूज्यस्य ज्येष्ठभ्रातुः पादशुश्रूषाम् = चरणसंवाहनादिपरिचर्याम् कर्त्तुम् = विधातुम् इच्छसि = अभिलषसि, एकाकिनी त्वमेव मे पूज्यस्य चरणसेवितुकामा, मामुक्तकार्यावसरतो वञ्चयसीति नोचितमित्यर्थः । अत अत्रापि संविभागः कर्तव्य इत्याह—तव दक्षिणः पादः मम च एषः सव्यः = वामो भविष्यति । अतो मत्परिचर्यार्थं वामपादं विसृज । भवत्या हि गौणरूपेणापि मह्यम् सेवावसरः प्रदातव्य इति लक्ष्मणाभिप्रायः ॥ २७ ॥

नाना प्रकार के वस्त्राभूषण माला आदि समस्त भोग्य वस्तुओं को मुझे आधा देकर तब आप धारण करते थे किन्तु इस वल्कल को मुझे दिये बिना ही आपने अकेले पहन लिया अतः इस प्रकार की मत्सरता क्यों ? ॥ २६ ॥

राम—मैथिलि, इन्हें ऐसा करने से रोको ।

सीता—लक्ष्मण ऐसा आग्रह क्यों करते हो ?

लक्ष्मण—क्या तुम अकेले आर्य के चरणों की सेवा करना चाहती हो। ऐसा कर मुझे इस सेवा से क्यों वञ्चित करना चाहती हो । अस्तु, दाहिने पैर की सेवा तुम करो और बायें पैर की सेवा मुझे प्रदान करो ॥ २७ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! लक्ष्मण दुःखी हो रहे हैं । अतः इन पर भी कृपा कीजियो

रामः—सौमित्रे ! श्रूयताम् । वल्कलानि नाम— [redacted]

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः । [redacted]
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ॥ २८ ॥

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि । (गृहीत्वा परिधत्ते) [redacted]

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः । उत्सार्यतामुत्सार्यतां [redacted] तावत् ।

सीता लक्ष्मणस्य वनगमनं समर्थयति—दीयतामिति । दीयतां = प्रदीयताम् दयताम् इति पाठे = कृपा करोतु संतप्यते = दुःखमनुभूयते । एवं लक्ष्मणस्य वनगमनमादिश्य वल्कलधारणार्थमाज्ञापयति सौमित्रे इत्यादि ।

अन्वयः—वल्कलानि—तपःसङ्ग्रामकवचम् नियमद्विरदाङ्कुशः इन्द्रियाश्वानां खलीनम् धर्मसारथिः गृह्यताम् ॥ २८ ॥

व्याख्या—तपःसंग्रामकवचम्—तप एव संग्रामः युद्धम् तत्र कवचम् वर्म युद्धे शरीररक्षणार्थमाच्छादकरूपेण धारणीयकर्त्तव्यताकम् । नियमद्विरदाङ्कुशः नियमः व्रतमेव द्विरदः हस्ती तस्य अङ्कुशः गजवशीकरणार्थमस्त्रविशेषः इन्द्रियाश्वानां खलीनम् इन्द्रियाणि एव अश्वा तेषां खलीनम् = मुखसंलग्ननियन्त्रणप्रग्रहः धर्मसारथिः धर्मरूपो यः रथस्तस्य सारथि सञ्चालकः एवं भूतं वल्कलं गृह्यतामित्याशयः । अत्र वल्कलेषु कवचारोपे तपसि संग्रामारोपः कारणम् एवम् वल्कलेषु अङ्कुशारोपे नियमे द्विरदारोपः कारणम् । किञ्च तत्रैव खलीनतारोपे इन्द्रियेषु अश्वारोपः कारणम् तेन परम्परितरूपकमलङ्कारः । 'नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यत् परम्परितमिति तल्लक्षणम् । किञ्च धर्मसारथिरित्यत्र वल्कलेषु सारथेरारोपः वाच्यः । धर्मे रथस्यारोपो व्यङ्ग्यः । एवमत्रापि परम्परितमेव । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २८ ॥

राम—तो लक्ष्मण सुनो ये तुम्हारे लिये वल्कल है जो

तपरूपी संग्राम के कवच हैं, नियमरूपी हाथी को वश में करने के लिये अंकुश हैं, इन्द्रियरूपी घोड़ों के लिये लगाम, किंबहुना धर्मरूपी रथ के ये सारथी हैं । अतः इन्हें पहनो ॥ २८ ॥

लक्ष्मण—आर्य मैं अनुगृहीत हुआ । (लक्ष्मण लेकर वल्कल पहनते हैं)

राम—मेरे वन जाने का समाचार सुनकर लोग राजमार्ग को घेरकर एकचित्त हो गये जिससे वह अवरुद्ध हो गया हैं अतः इन्हे हटाओ; हटाओ ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि । उत्सार्यतामुत्सार्यताम् ।

रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेति । (अपनयति) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति]

रामः—भोः भोः पौराः । शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः—

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।२९।

वनगमनोद्यतो रामः मार्गं जनसंकुलं दृष्ट्वा वदति 'श्रुतवृत्तान्तैरिति—श्रुतम् साक्षात्परम्परया वा ज्ञातम् वृत्तान्तम् वनगमनरूपं यैस्तैः । पौरैः पुरवासिभिर्जनैः । सन्निरुद्धः अवरुद्धः । अवगुण्ठनम् परदर्शनपरिहारार्थम् मुखाच्छादकवस्त्रम् । अपनीयताम् दूरीक्रियताम् ।

सीतादर्शनार्थं समुत्सुका नगरनिवासिनो जनाः सीतां दृष्ट्वा निवर्त्तेरन्—इत्यभिप्रेत्याह भो भोः पौराः इति—

अन्वयः—भवन्तः वाष्पाकुलाक्षैः वदनैः एतत् कलत्रं स्वैरं हि पश्यन्तु नार्यः यज्ञे विवाहे व्यसने वने च हि निर्दोषदृश्या भवन्ति ॥ २९ ॥

व्याख्या—भवन्तः पुरवासिनो जनाः वाष्पाकुलाक्षैः—वाष्पैः अश्रुभिः आकुले पर्याकुले अक्षिणी नेत्रे येषां तैः वाष्पपरिप्लुतलोचनैः वदनैः मुखैरुपलक्षिता भवन्त इति एतत् पुरोदृश्यमानम् मम रामस्य कलत्रम् भार्यां सीतां स्वैरं स्वच्छन्दं हि पश्यन्तु विलोकयन्तु नार्यः स्त्रियः यज्ञे अश्वमेधादौ विवाहे पाणिग्रहणावसरे व्यसने विपत्काले श्मशानाद्युपगमनकाले वने च स्थिता निर्दोषदृश्याः—निर्दोषा दृश्याश्च

लक्ष्मण—आर्य मैं आगे चलता हूँ । अरे भाई इन लोगों को हटाओ ।

राम—मैथिलि ! अपना घूँघट हटा लो ।

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा ।

राम—नगर के रहनेवाले लोगो ! सुनिये, सुनिये ।

यह मेरी पत्नी सीता है इन्हें आप लोग अपने मुखों पर अश्रुधारा बहाने वालों नेत्रों से स्वच्छन्द रूप से देख लें । क्योंकि यज्ञ, विवाह, आपत्ति एवं वन में स्त्रियों का दर्शन निर्दोष कहा जाता है ॥ २९ ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥ ३० ॥

निर्दोषदृश्याः अथवा निर्दोषं यथा स्यात्तथा दृश्या भवन्ति । अत्रार्थान्तरन्यासः । सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । समर्थ्यते सोऽर्थान्तरन्यास इति तल्लक्षणात् । सीतादर्शनरूपम् विशेषम् यज्ञे विवाहे व्यसने वने च निर्दोषदृश्याः भवन्तीति सामान्येन समर्थनात् । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोस्साङ्कर्यादुपजातिश्छन्दः । २९ ।

रामगमनवृत्तान्तं श्रुत्वा तद्दुःखेन दुःखितस्य महाराजदशरथस्य शोचनीयामवस्थां विलोक्य रामं वनगमनान्निवारयितुमिच्छन् कञ्चुक्याह—कुमार इति । इदानीं महाराजस्य दुरवस्थां वर्णयति कञ्चुकिः—

अन्वयः—वधूसहायम् सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ते वनगमनं श्रुत्वा जीर्णः (एष महाराजः) उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः सन् कान्तारद्विरद इव उपयाति ॥ ३० ॥

व्याख्या—वधूसहायमिति—वधूसहायम् वधू भार्या सीता सहाया सङ्गिनी यस्मिन् कर्मणि तत्तथा । सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् सौभ्रात्रेण भ्रातृस्नेहमहिम्ना अध्यवसिता संचेष्टिता यात्रा यस्मिन् कर्मणि तत्तथा ते तव वनगमनं वनाय प्रस्थानं श्रुत्वा आकर्ण्य एष शिथिलः महाराजः उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः सन् क्षितितलरेणुभिः धरास्थधूलिभिः रूषिताङ्गः धूसरिताङ्गः जीर्णः जरया ग्रस्तः कान्तारद्विरदः गहनवनसंस्थितः करी इव यथा उपयाति भवन्तमनुगच्छति । अतस्तस्मिन् दयस्व । क्षणं प्रतीक्षस्व येन स वनगमनावसरे युष्मान् पश्येदित्यर्थः । तमुपेक्ष्य त्वद्वनगमनम् नोचितम् । अस्मिन् पद्ये वधूसहायमित्यनेन रामवनगमनस्य

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी—राजकुमार ! मत जाइये, मत जाइये । इधर देखिये ।

ये महाराज यह सुनकर कि आप वन को जा रहे हैं एवम् आपके साथ केवल सुकुमारी सीता जा रही है और भ्रातृप्रेम से आकृष्ट हुए केवल लक्ष्मण ही आपका

लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ?

रामः—

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

दुःसहता सौभ्रात्रेत्यनेन लक्ष्मणस्यात्मीयता उत्थायेत्यनेन राज्ञो भृशमस्थिरता रेणुरूषिताङ्गः इत्यनेन राज्ञो दीनावस्था कान्तारद्विरद इवेत्यनयोपमया तस्य नितान्तकष्टमयजीवनं च वर्णितम् । उपमालङ्कारः । विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि । प्रहर्षिणीवृत्तम् । म्नौ ज्रौगास्त्रिदशयतिम् प्रहर्षिणीयमिति तल्लक्षणात् ।

लक्ष्मणः राज्ञः प्रतीक्षयावस्थानमनावश्यकं मन्यमान आह—चीरमात्रेत्यादि ।

अन्वयः—चीरमात्रोत्तरीयाणाम् वनवासिनां किं दृश्यम् । एतच्छ्रुत्वा रामो वदति । अस्मासु गतेषु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

व्याख्या—चीरमात्रोत्तरीयाणाम्–चीरमात्रम् = वल्कलमात्रम् न तु पीताम्बरादि उत्तरीयं येषां ते तथाभूतानामस्माकम् वनवासाय प्रस्थानोन्मुखानाम् किं दृश्यम् न किमपीत्यर्थः । एतेनानुगच्छतः राज्ञः प्रतीक्षार्थं स्वकीयावस्थानमनावश्यकमिति सूचितम् रामोऽपि तदेव समर्थयन्नाह—गतेष्विति । अस्मासु गतेषु राजानमप्रतीक्ष्यैव गतेषु वनं प्रस्थितेषु राजा नः शिरःस्थानानि प्रधानावासगृहादीनि पश्यतु अवलोकयतु । अस्मदीयप्रधानावासदर्शनेनात्मानं सान्त्वयत्वित्यर्थः ।

इति निष्क्रान्ताः सर्वे इत्यनेनाङ्कसमाप्ति सूचयति । अङ्कसमाप्तिलक्षणं साहित्यदर्पणे उक्तम् ।

प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्वलः ।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ।

अनुगमन कर रहे हैं' शोकविह्वल हो पृथ्वी पर से उठकर धूलि से लिपटे हुए बनैले वृद्ध हाथी के समान इधर ही आपलोगों को देखने के लिये आ रहे है ।३०।

लक्ष्मण—आर्य, मात्र वल्कलधारी एवं वन के लिये प्रस्थान करने वाले हम लोगों के पास क्या रखा है जिसे वे देखना चाहते हैं ।

राम—हम लोगों के चले जाने पर अब राजा हमारे निवासभूत स्थानों को देखा करें ॥ ३१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

◆

प्रत्यक्षनेतृचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः ।
अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोंङ्क इति कीर्तितः ।

इति प्रतिमानाटके व्याख्यायाः प्रथमोङ्कः ॥

◆

(सबका प्रस्थान)

प्रतिमानाटक के प्रथम अङ्क की टीका समाप्त ॥

◆

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भोः भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य । किं एदं ? [आर्य ! किमेतत् ?]

अथास्मिन्नङ्के पुत्रविरहजन्यां दशरथस्य शोकावस्थां विवर्णयिषन् मिश्रविष्कम्भकमुखेन सूचयति । तत्र विष्कम्भकलक्षणं यथा—

वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्येन मध्यमाभ्यां च पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

तत्रादौ कञ्चुकिना प्रवेशं तावदाह—ततः प्रविशतीति । प्रतीहारव्यापृताः—प्रतीहारे=द्वारदेशे व्यापृताः=सन्नियुक्ताः द्वाररक्षिण इत्यर्थः । अप्रमत्ताः=प्रमादरहिताः सावधाना इत्यर्थः । सावधानतया स्थितेरादेशस्य किं प्रयोजनमिति प्रतीहारी पृच्छति आर्य किमेतदिति । कञ्चुकी सावधानस्थितेरादेशकारणं राज्ञो दशरथस्य दुरवस्थामेव प्रतिपादयति एष हीत्यादि । सत्यवचनरक्षणपरः = सत्यवाक्पालनपरः । उपवर्त्तयितुम् = निवर्त्तयितुम् । पुत्रविरहशोकाग्निना—पुत्रविरहस्य शोकः स एवाग्निस्तेन । दग्धहृदयः—दग्धम् = भस्मीभूतम् हृदयम् = अन्तःकरणप्रदेशो यस्य सः । उन्मत्त इव = विक्षिप्त इव । प्रलपन्=निरर्थकं वहुभाषणं कुर्वन् । समुद्रगृहके समुद्र-

(कञ्चुकी प्रवेश करता है)

कञ्चुकी—हे हे द्वारपालो ! आप सभी लोग अपने अपने स्थानों पर सावधान होकर स्थित रहो ।

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य ! ऐसा क्यों ?

काञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्य गच्छन्तमुपावर्त्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्तं इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद्भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ १ ॥

इव गृहम् समुद्रगृहकम् तस्मिन्, निदाघोष्मनिवारणाय प्रासादारामेषु जलयन्त्र (फुहारा) सनाथं गृहम् समुद्रगृहमुच्यते । शयानः वर्त्तते इति शेषः ।

अन्वयः—युगक्षयसन्निकर्षे चलन् मेरु इव शोषं व्रजन् अप्रमेयः महोदधिः इव मण्डलमात्रलक्ष्यः पतन् सूर्य इव नरेन्द्रः शोकाद् भृशम् शिथिलदेहमतिः वर्त्तते, इति शेषः ॥ १ ॥

व्याख्या—युगक्षयसन्निकर्षे—युगस्य क्षयः युगक्षयः तस्य युगान्तस्य सन्निकर्षे समीपे न तु उपस्थितौ इत्यर्थः । एतेन राज्ञो मृत्युसान्निध्यम् सूचितम् । चलन् = कम्पायमानः मेरुः = सुमेरुरिव । शोषम् व्रजन् = शुष्यन् अप्रमेयः = परिच्छेदरहितः महानित्यर्थः । महोदधिः = सागर इव मण्डलमात्रलक्ष्यः = मण्डलमेव मण्डलमात्रम् तेन लक्ष्यः दर्शनीयः उपसंहृतकिरणजालः पतन् = स्रंसमानः सूर्य इव । नरेन्द्रः = राजा दशरथः शोकात् = पुत्रपवियोगजन्यदुःखात् भृशम् = अत्यन्तम् शिथिलदेहमतिः—शिथिले = शक्तिरहिते देहमती = कायबुद्धी यस्य स तथाभूतः । देहशैथिल्येन = अङ्गावयवानां सन्धिशैथिल्येन कार्याकार्यविवेकशून्यता च लक्ष्यते । मेरुरिव स्थिरोऽपि महोदधिरिव गाम्भीर्ययुक्तोऽपि सूर्य इव

कञ्चुकी—अपने सत्य वचनों का पालन करते हुए ये महाराज राम को वन जाने से रोक नहीं सके । अब पुत्र के वियोगजन्य दुःख की अग्नि से उनका हृदय भस्म-सा हो रहा है तथा पागलों जैसे प्रलाप भी कर रहे हैं । इस समय समुद्रगृह में (फौवारे वाले उद्यान प्रासाद) में लेटे हुए हैं ।

प्रलयकाल के समीप होने पर डगमगाते हुए सुमेरु के समान, सूखते हुए अप्रमेयमहोदधि के समान, अस्तायमान मण्डलमात्र दिखाई पड़ने वाले सूर्य के समान अब वे शोकसागर में निमग्न हो अपना धैर्य, गाम्भीर्य तथा ओज खोते जा

प्रतीहारी—हा हा एव्वंगओ महाराओ ? [हा हा एवंगतो महाराजः ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—अय्य ! तहा । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता)

काञ्चुकीयः—(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते । कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
ह्लेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ।। २ ।।

सातिशयतेजस्वितायुक्तोऽपि राजा शोकातिशयात् म्रियमाणावस्थायां वर्त्तते इत्यहो विधुरकालस्य महिमा । अत्रैकस्य दशरथस्योपमेयभूतस्योपमानत्रयेणोल्लेखान्मालोपमा । विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि । 'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' इति तल्लक्षणम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। १ ।।

अन्वयः—नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखा वाजिनः सास्रेक्षणा ह्लेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाः पौरा जनाश्च त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः उच्चैः क्रन्दन्तश्च अमी तामेव दिशं पश्यन्ति यया दिशा सदारसहजः रामः याति ।

व्याख्या—पूर्वं रामविरहजन्यां दशरथावस्थामुपवर्ण्येदानीमयोध्यावस्थां वर्ण-

---

रहे हैं । उनके शरीर की सारी सन्धियाँ शिथिल हो गई हैं तथा बुद्धि किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई है ।

प्रतीहारी—हाय ! हाय, महाराज की ऐसी दशा ।

कञ्चुकी—आर्ये जाओ ।

प्रतीहारी—आर्य, जाती हूँ । (ऐसा कहकर चली जाती है ।)

कञ्चुकी—(चारों ओर देखकर) अहो ! यह अयोध्या जब से राम वन गये तभी से सूनी जैसी मालूम पड़ती है क्योंकि—

हाथियों ने घास खाना तो दूर उसकी अभिलाषा भी त्याग दी । घोड़ों की आँखें आँसू से डबडबा रही हैं, उन्होंने हिनहिनाना भी छोड़ दिया है । नगर के रहनेवाले वृद्ध, स्त्रियाँ तथा बालकों ने भोजन की चर्चा भी छोड़ दी है । उनके मुखमण्डल पर ग्लानि भरी हुई है और वे जोर जोर से चिल्ला कर विलाप कर

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अये ! अयं महाराजो महादेव्या कौशल्यया सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति । कष्टा खल्ववस्था वर्तते । एष एव महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥ ३ ॥

यति नागेन्द्रा इति—नागेन्द्राः = गजमुख्याः, यवसाभिलाषविमुखाः = घासग्रासाभिलाषरहिताः वाजिनः = अश्वाः सास्रेक्षणाः—अस्रैः = अश्रुभिः सहिते ईक्षणे = नयने येषां ते तथाभूताः रुदन्त इत्यर्थः । ह्रेषाशून्यमुखाः—ह्रेषाभिः शून्यानि मुखानि येषां ते तथाभूताः हर्षसूचकशब्दहीनाः, सवृद्धवनिताबालाः = वृद्धैः वनिताभिः बालैश्च सहिताः, पौरा जनाः—पुरे भवा पौराश्च ते जनाश्चेति नगरवासिनो जनाः त्यक्ताहारकथाः = विसृष्टभोजनवार्त्ताः सुदीनवदनाः = अतिदैन्ययुक्ताः उच्चैः क्रन्दतश्च = विलपन्तश्च । अमी एते सर्वेऽपि तामेव दिशम् पश्यन्ति यया दिशा सदारसहजः = सीतालक्ष्मणयुतो रामः याति = गच्छति । रामवनगमनवियोगशोकात् पशवो भृशमार्त्ताः रुदन्ति नगरवासिनो जनाश्च आवश्यकाहारादिक्रियामपि विहाय विलपन्तीति शोकाभिपन्नानां स्वभाववर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

यावदिति—समीपवर्त्ती भवामि = समीपं गच्छामि । पुत्रविरहसमुद्भवम्—पुत्रविरहात् = पुत्रवियोगात् समुद्भवो यस्य तम् पुत्रवियोगजन्यम् । निगृह्य = संनिरुद्ध्य संस्थापयन्तीभ्याम् = धारयन्तीभ्याम् अन्वास्यमानः = संसेव्यमानः । कष्टा = दुःखदायिनी । खलु इति निश्चये । अवस्था दशा ।

अन्वयः—हा हा इति मुहुः उच्चैः लपन् उत्थाय उत्थाय पतति तामेव

रहे हैं । किंबहुना ये सभी लक्ष्मण और सीता के साथ राम जिस ओर गये हैं उसी दिशा की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं ।

तो मैं भी महाराज के सन्निकट चलूं (घूमकर और देखकर) अरे महाराज तो यही हैं । कौशल्या और सुमित्रा ये दोनों ही महारानियां पुत्र के वियोग की असह्य वेदना रोक कर अपने आपको किसी तरह धीरज बँधाती हुई इनकी सेवा कर रही हैं । ओह ! यह तो बहुत दुःखमयी अवस्था है ।

(निष्क्रान्तः)

मिश्रविष्कम्भकः

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च)

राजा—हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम
हा वत्स ! लक्ष्मण । सलक्षणसर्वंगात्र ।
हा साध्वि । मैथिलि । पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥ ४ ॥

---

६ दिशं च पश्यति यया रघूद्वहः यातः ॥ ३ ॥

व्याख्या—एष महाराजः हा हा इति दैन्यसूचकम् शब्दम् मुहुः = क्षणे क्षणे उच्चैः = तारस्वरेण प्रलपन् = उच्चारयन् उत्थाय उत्थाय पतति उत्तिष्ठति तामेव दिशं च पश्यति यया दिशा रघुवंशश्रेष्ठः यातः = गतः । अत्रोत्थायोत्थाय पततीति द्विरुक्तिः उत्थानपतनक्रिययोः नैरन्तर्यसूचनार्थम् ॥ ३ ॥

यथानिर्दिष्टः—निर्दिष्टमनतिक्रम्येति यथानिर्दिष्टः पूर्वोक्तलक्षणः उत्थायोत्थाय पततीत्येवं रूपः । देव्यौ = कौशल्यासुमित्रे च ।

अन्वयः—हा वत्स ! जगताम् नयनाभिराम राम ! हा वत्स सलक्षणसर्वंगात्र लक्ष्मण ! हा साध्वि पतिस्थितचित्तवृत्ते मैथिलि ! हा हा बत किल मे तनूजाः वनम् गताः ।

व्याख्या—राजा विलपति—हा वत्स इति—हा इति विषादे । अतिशयद्योतनाय द्विरुक्तिः । जगताम् नयनाभिराम = नेत्राह्लादकर हा वत्स, सलक्षणसर्वंगात्र—सलक्षणानि = सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणयुक्तानि सर्वंगात्राणि = अङ्गानि

अरे ये महाराज तो हाय हाय कर उच्च स्वर में विलाप करते हुए बारम्बार उठ-उठकर भी गिर पड़ते हैं और जिस ओर राम गये हैं उधर ही देख रहे हैं ।

(प्रस्थान करता है ।

मिश्रविष्कम्भक समाप्त ॥

(पूर्वोक्त रूप में राजा तथा दोनों देवियों का प्रवेश)

राजा—हाय समस्त जगत् के नयनाभिराम राम ! हाय मनोहर शुभ लक्षणों युक्त वत्स लक्ष्मण ! हाय पति में अपनी चित्तवृत्ति रखने वाली पतिदेवते ! वत्से मैथिलि ! ओह ! अत्यन्त कष्ट है जो मेरे सभी बच्चे वन चले गये ।

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि। वधु ! वैदेहि !

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ॥ ५ ॥

यस्य तत्सम्बुद्धौ। हा साध्वि = पतिव्रते पतिस्थितचित्तवृत्ते—पत्यौ = स्वामिनि स्थिता चित्तवृत्तिः = अन्तःकरणव्यापारो यस्याः सा, हा हा वतेति कष्टातिशये। किल तनूजाः = रामलक्ष्मणसीताः सर्वे वनं गताः = प्राप्ताः। विशेषणानि साभिप्रायाणि तेन परिकरालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—रामेण अपि परित्यक्तः लक्ष्मणेन च गर्हितः लोके अयशोभाजनमहम् त्वयापि परित्यक्तः ॥ ५ ॥

व्याख्या—राजा इदानीम् वैदेहीमुपालभते—विदेहतनया कुलीना सापि पितृतुल्यम् मां परित्यज्य वनं गतवतीत्याशयेनाह रामेणापीति—रामेण = प्रख्यातपितृभक्तिपरेण तन्नामकेनापि—परित्यक्तः। लक्ष्मणेन च गर्हितः = निन्दितः अनादृतः पितरमुपेक्ष्य भ्रातुरनुवर्त्तनादिति भावः। एवमुभाभ्यां स्वपुत्राभ्यां परित्यागकारणेन लोके अयशोभाजनम् = अपकीर्त्तिपात्रम् अहम् श्वसुरे—असाधारणभक्तियुतया त्वया वैदेह्या यः मत्परित्यागः क्रियते स मह्यमसह्यवेदनाजनक इति भावः ॥ ५ ॥ पुत्रका इति पुत्रौ च पुत्री चेत्येकशेषे कृतेऽनुकम्पायां कन्। अत्र पुत्री पदेन सीताभिप्रेता रामसीतालक्ष्मणाः इत्यर्थः।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि मैं उसी लक्ष्मण को देखने के लिये उत्कण्ठित हो रहा हूँ जिससे भ्रातृप्रेम के कारण पितृस्नेह का निरादर किया। वधू वैदेहि !

राम के द्वारा मैं छोड़ा गया। लक्ष्मण ने भी मुझे तिरस्कृत किया। इस प्रकार लोक में कलङ्क का पात्र होने पर भी मैं तुम्हारे भरोसे जीना चाहता था किंतु तू भी मुझे त्याग कर चल दी। बेटा राम ! प्रिय लक्ष्मण ! बहू वैदेहि ! तुम लोगों ने इस असहाय अवस्था में मेरा परित्याग क्यों किया ? मुझे इसका उत्तर दो। अरे यहाँ तो सब सूना है, कोई भी मेरी बात सुनने वाला नहीं है। हाय कौशल्या के लाड़ले कहाँ हो ?

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्रकाः ! शून्यमिदं भोः। न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति। कौशल्यामातः ! क्वासि ?

सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! ।
गुरुशुश्रूषणे युक्त ! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ ६ ॥

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः ? क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ? क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा ? क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः ?

अन्वयः——सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर जगत्प्रिय ! गुरुशुश्रूषणे युक्त ! मे प्रतिवाक्यम् प्रयच्छ ॥ ६ ॥

व्याख्या——अथ राजा ध्याने रामं सम्बोधयन् ब्रवीति सत्यसन्धेति——सत्यसन्ध—सत्या = यथार्था सन्धा = प्रतिज्ञा यस्य स तत्संबुद्धौ। यथार्थप्रतिश्रुतप्रतिज्ञापालक इत्यर्थः। जितक्रोध——जितः = वशीकृतः क्रोधः = कोपः येन तत्सम्बुद्धौ वशीकृतक्रोधवेग। निरपराधवनत्रासदानेन कैकेय्यामुचितस्यापि कोपावेगस्यात्मनि निरोधादिति भावः। विमत्सर——विगतः = विनष्टः मत्सरो = द्वेषः ईर्ष्या वा यस्य तत्संबुद्धौ, मात्सर्यरहित, जगत्प्रिय—जगतां प्रियः जगत्प्रियस्तत्संबुद्धौ जगदानन्दहेतुभूत ! गुरुशुश्रूषणे—गुरूणां = पूज्यानाम् पित्रादीनाम् शुश्रूषणे = सेवायाम् युक्त = तत्पर। अयमेव मे सेवाकालः त्वं मां परित्यज्य क्व गतवानसीत्यस्य प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम् मे = मह्यम् प्रयच्छ = देहि। अत्र विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

सर्वजनहृदयनाभिरामः——सर्वेषां जनानां हृदयनयनयोश्चाभिरामः प्रीतिजनकः। गुर्वनुवृत्तिः——गुरौ = पित्रादौ अनुवृत्तिः = अनुवर्त्तनम् सेवाभावः। शोकार्त्तेषु शोकादार्त्तास्तेषु = शोकसंतप्तेषु अनुकम्पा = दयाभावः। मयि शोकार्त्ते

हे सत्यप्रतिज्ञ ! हे क्रोधरहित ! हे मात्सर्यशून्य ! हे जगत्प्रिय ! हे गुरुसेवा में निरत ! मुझे प्रतिवचन तो दो ॥ ६ ॥

हाय ! सभी लोगों के हृदय तथा नेत्र को आह्लादित करनेवाले राम ! कहाँ हो ? पूज्यजनों के प्रति तुम्हारी वह अनुरक्ति कहाँ चली गई ? शोक से संतप्त लोगों पर दयाशील तुम्हारा स्वभाव कहाँ चला गया ? ओह राज्य के ऐश्वर्य को

पुत्र ! राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम् ? हा धिक् । कष्टं भोः ?

सूर्य इव गतो रामः, सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ।। ७ ।।

(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !

त्वयानुकम्पा विधेया स्यात् सा क्व गतेत्यर्थः । तृणवद्गणितराज्यैश्वर्यः—तृणेन तुल्यम् तृणवद्, तृणवद् गणितम् राज्यैश्वर्यं येन तथाभूतः । असम्बद्धेन = संबन्धरहितेन धर्मेण ते किं कृत्यम् = को लाभः । अनुचिताज्ञापालनरूपो धर्मो न शास्त्रानुकूल इत्यर्थः ।

अन्वयः—रामः सूर्य इव गतः । सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणः (रामम्) अनुगतः । सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते ।। ७ ।।

व्याख्या—रामः सूर्य इव गतः = दृष्टिवर्त्मबहिर्भूतः अस्तंगत इत्यर्थः । तादृशम् = अस्तंगतं सूर्यमिव रामम् दिवस इव लक्ष्मणोनुगतः यथा अस्तमिते सूर्ये दिवसोऽपि तमेवानुगच्छति तथा राममनुसृतवान् लक्ष्मण इति भावः । किञ्च सूर्यश्च दिवसश्च तयोरवसाने उभयोरन्तर्हिते छाया इव सीता न दृश्यते । अत्रोपमात्रयम् । सूर्य इव रामः प्रथमोपमा, दिवस इव लक्ष्मण इति द्वितोयोपमा, छाया इव सीतेति तृतीयोपमा । तत्र रामस्य सूर्योपमया प्रतापातिशयत्वं सूचितम्, तददर्शनान्मोहः कार्यविरामश्च । लक्ष्मणस्य दिवसोपमया रामेण सह तत्प्रयाणस्य स्वभावसिद्धत्वम् सूचितम् । सीतायाश्छायोपमया तस्या अतिशयितपत्यनुवृत्तिलक्षणरूपचारित्रम् प्रकटीकृतम् ।

कृतान्तहतक इति निर्दयदैव इत्यर्थः ।

तृणवत् त्याग देने वाले बेटा राम ! तुमने मुझ वृद्ध पिता का परित्याग कर निरर्थक इस प्रकार का धर्म क्यों अपनाया । भला इससे तुझे क्या लाभ ! हा धिक्, कैसा दारुण दुःख हैं ।

सूर्य की भाँति राम नेत्रों से अदृश्य हो गये । उनके अदृश्य होने से सूर्यानुगामी दिन की तरह लक्ष्मण भी उन्हीं के साथ अदृश्य हो गये । इस प्रकार सूर्य तथा दिन के समान उन दोनों के अन्तर्हित होते ही छाया के समान सीता भी
दिखाई नहीं पड़ती

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ? ॥ ८ ॥

कौशल्या—(सरुदितम्) अलं दाणिं महाराओ अदिमत्तं सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराणस्स समआवसाणे पेक्खिदव्वा भविस्सन्ति । [अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम् ।

अन्वयः—वयम् अनपत्याः, रामः अन्यस्य महीपतेः पुत्रः, कैकेयी च वने व्याघ्री च त्वया (एतत्) त्रयम् किं न कृतम् ॥ ८ ॥

व्याख्याः—अनपत्या इति—वयम् अनपत्याः = नास्ति अपत्यम् = संततिर्येषां ते अनपत्याः=संतानरहिताः न कृतेति शेषः । रामः अन्यस्य मदतिरिक्तस्य महीपतेः = राज्ञः पुत्रः न कृतः, कैकेयी वने व्याघ्री च न कृता । त्वया कृतान्तहतकेन एतत् त्रयम् किं = कस्मात्कारणात् न कृतम् = न विहितम् । त्वया कृतान्तहतक एतत्त्रयमवश्यं करणीयं स्यात्, यदि न कृतं तदा त्वं निन्द्य इति भावः । अयमत्राशयः यदि पुत्रवियोग एव त्वया करणीय आसीत् तदा वयम् अनपत्याः कथन्न विहिताः । अनपत्यापेक्षयाधिकमिमं दुःखमिति भावः । किञ्च यदि राम उत्पाद्य एवासीत्तदान्यस्य नृपतेः सः पुत्रः कर्त्तव्य आसीत् । येन रामो वनं न गच्छेत् । किञ्च कैकेयीजन्म एव निरर्थकम्, यदि तज्जन्म कर्त्तव्यमासीत्तदा वने सा व्याघ्री कथं न कृता यया रामो वने वासार्थं नियोजितः । अतः हे कृतान्तहतक त्वं नितान्तं निर्दयोसीति भावः । पर्यायोक्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

व्याख्या—कौशल्या राजानं सान्त्वयति अलमिति । अतिमात्रम् = अत्यधिकम् । परवशम् = पराधीनम् । समयस्य = चतुर्दशवर्षात्मकस्य वनवासावधेः अवसाने = समाप्तौ, प्रेक्षितव्याः = आलोकनीयाः । जरयोपात्तमन्द दृष्ट्या राजा समीपस्थामपि कौशल्यामपरिचिन्वन् पृच्छति का त्वमिति । अस्निग्धपुत्रत्रसविनी—अस्निग्धः = स्नेहशून्यः तच्च रामे वृद्धौ विपद्ग्रस्तौ पितरौ परित्यज्य

(ऊपर की ओर देख कर) अरे निर्दयी दैव ! तूने हम लोगों को बाँझ क्यों न रखा । यदि तुम्हें राम को जन्म देना ही था तो उन्हें अन्य राजा का पुत्र क्यों नहीं बनाया । अथवा यदि मेरा पुत्र बनाना ही था तो कैकेयी को मेरी रानी क्यों बनाया । उसे तो वन में बाघिन बनाना चाहिये था ।

ननु सा तौ कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति ।]

राजा—का त्वं भोः ?

कौशल्या—असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं । [अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।]

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौशल्या ?

कौशल्या—महाराअ ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं । [महाराज ! सैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।]

राजा—कौशल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

व्रनगमनादुपपद्यते, एतादृशो यः पुत्रस्तस्य प्रसविनी=जन्मदात्री । मन्दभागिगी = हतभाग्या । पुत्रप्रसवरूपक्लेशकारणादित्यर्थः । दशरथः मन्दभागिनी खल्वहमिति कौशल्योक्तिं निरस्यन् ब्रवीति सारवतीति—सारो= बलं धैर्यं च सारः अस्ति अस्यामिति सारवती, सारवती रामस्य जननात् यद्वा धैर्यवती असि यत् त्वयैतादृशमपि दुःखं सोढुं शक्यते । खलु इति निश्चये ।

अन्वयः—अहं हि ज्वलनोपमम् अत्यन्तम् असह्यं दुःखं नैव सोढुं शक्नोमि न संहर्त्तुम् शक्नोमि । यतः मुषितेन्द्रियः अस्मि ॥ ९ ॥

कौशल्या—(रोती हुई) महाराज ! अब इस प्रकार से संतप्त होकर अपने को परवश बनाने से विरत हो जाइये । वनवास की अवधि समाप्त हो जाने पर सीता तथा दोनों राजकुमारों को आप पुनः देखेंगे ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौशल्या—महाराज ! स्नेहरहित पुत्र की जन्मदात्री मैं कौशल्या हूँ ।

राजा—क्या कहा, क्या कहा, समस्त लोगों के हृदय तथा नेत्रों को आनन्द देनेवाले श्रीराम की माता कौशल्या तुम्हीं हो ।

कौशल्या—हाँ महाराज ! मैं वही मन्दभागिनी कौशल्या हूँ ।

राजा—कौशल्ये ! तुम निश्चय ही महान् हो, तथा धैर्य धारण करनेवाली हो ।

(सुमित्रां विलोक्य) इयमपरा का ?

कौशल्या—महाराअ ! वच्छ लक्खण— [महाराज ! वत्स लक्ष्मण—
(इत्यर्धोक्ते)

राजा—(सहसोत्थाय) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् । (देव्यौ ससंभ्रममुत्थाय राजानमवलम्बते)

कौशल्या–महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तेत्ति वत्तुं मए उवक्कन्दं । [महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयोपक्रान्तम् ।]

व्याख्याः—अहं हि ज्वलनोपमम् = अग्नितुल्यम् संतापप्रदायित्वेन दुःखस्य अग्निना साम्यम् । अत्यन्तमसह्यम् = नितान्तं सोढुमशक्यम् दुःखम् = क्लेशम् नैव सोढुम् = मर्षयितुं शक्नोमि न च संहर्त्तुम् प्रतिक्रियया दूरीकर्त्तुम् शक्नोमि तत्र कारणमाह—यतः मुषितेन्द्रियः—मुषितानि = उपहतसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि = ज्ञान-कर्मोभयानि यस्य सः तथाभूतः । इन्द्रियाणामशक्तत्वात्तेषां सहनप्रतिकारयोरशक्यत्वादिति भावः । एतेन स्वकीयकिंकर्त्तव्यमूढता व्यज्यते । अनुष्टुप् छन्दः ।। ९ ।।

अथ तत्रोपस्थितां सुमित्रां विलोक्य मुषितेन्द्रियकारणेन अपरिचिन्वन् दशरथः पृच्छति—इयमपरा का इति । पुनः अर्धवाक्ये लक्ष्मणनामश्रवणेन प्रलपति—क्वासौ लक्ष्मण इति । एवम् लक्ष्मणस्य नाम गृह्णन् राजा उत्थातुमिच्छति किंतु अशक्यत्वात् पुनः तं पतमानं विलोक्य कौशल्यासुमित्रे ससंभ्रममुत्थाय अवलम्बेते तदाह देव्यौ इति । कौशल्या पुनः स्ववाक्यं पूरयति सुमित्रेत्यादि ।

तभी तो तुमने राम को गर्भ में धारण किया । किंतु मैं अग्नि के समान इस अत्यन्त असह्य दुःख कों न तों सहन कर सकता हूँ और न तो इसका प्रतीकार कर दूर करने में ही समर्थ हूँ । क्योंकि मेरी इन ज्ञानेन्द्रियों की एवं कर्मेन्द्रियों की शक्ति सर्वथा विलुप्त हो गई है । (सुमित्रा को देखकर) यह दूसरी स्त्री कौन हैं ?

कौशल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मण (इस आधे वाक्य को ही सुनकर)

राजा—(सहसा उठकर) कहाँ है वह लक्ष्मण । मुझे दिखाई नहीं पड़ता । हाय । बड़ा कष्ट है ।

(दोनों देवियाँ सहसा उठकर राजा को संभालती हुई)

कौशल्या—महाराज ! मैं यह कहना चाहती थी कि ये लक्ष्मण की माता सुमित्रा हैं ।

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः।

राजा—(सहसोत्थाय सहर्षम्) अपि रामेण ?

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्च्छितः पतति)।

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि। [महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि (गात्राणि परामृशतः)

अन्वयः—(हे सुमित्रे) तव पुत्रः एव सत्पुत्रः येन नक्तन्दिवं वने रघुकुलश्रेष्ठः छायया इव अनुगम्यते ॥ १० ॥

व्याख्या—दशरथः सुमित्रां प्रशंसति तवैवेति—तव = सुमित्रायाः पुत्रः = लक्ष्मण एव सत्पुत्रः प्रशंसाभाक् तनयः। प्रशंसाकारणं वर्णयति येनेति=येन = लक्ष्मणेन वने रघुकुलश्रेष्ठः = रघुवंशतिलकः रामः नक्तन्दिवम्=दिवानिशम् छायया इव अनुगम्यते=अनुगमनं क्रियते। छाययेवेत्यत्रोपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।१०।

कञ्चुकिना सुमन्त्रागमने सूचिते दशरथः पृच्छति अपि रामेणेति—अपि शब्दः संभावनायाम्। रामेण सहेति शेषः। अत्र सह शब्दस्य प्रयोगाभावेऽपि तृतीया 'वृद्धो यूनेति' निर्देशात्। रथेन केवलेन रामरहितेनेत्यर्थः। हा इति खेदे। ईदृ-

---

राजा—प्रिये सुमित्रे ! तुम्हारा ही पुत्र सुपुत्र है जो वन में छाया की तरह रात-दिन रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम की सेवा कर रहा है।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की। आर्य सुमन्त्र आये हैं।

राजा—(सहसा उठकर सहर्ष) क्या राम को साथ लेकर।

कञ्चुकी—नहीं। रथ के साथ।

राजा—क्या क्या ? केवल रथ लेकर (इतना कहकर मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं)

दोनों देवियाँ—महाराज ! धीरज धरें। (राजा की देह सहलाती हैं)

काञ्चुकीयः–भोः! कष्टम्। ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः। महाराज! समाश्वसिहि समाश्वसिहि!

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) बालाके! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः?

काञ्चुकीयः—महाराज! अथ किम्।

राजा:—कष्टं भोः!

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः॥ ११॥

ग्विधाः एतत्सदृशाः। पुरुषविशेषाः महाबलशालिनः सम्राजोऽपीति भावः। ईदृशीम्=अनर्थयुक्ताम्। विधिः = अदृष्टम्। अनतिक्रमणीयः = अनुल्लङ्घनीयः। वालाकिरिति कञ्चुकिनो नाम।

अन्वयः—यदि रथः शून्यः प्राप्तः (तदा) मम मनोरथः भग्नः कालेन (इमम्) दशरथं नेतुम् अयम् रथः प्रेषितः इति नूनम्॥ ११॥

व्याख्या—यदीति—यदि रथः शून्यः = रामादिरहितः प्राप्तः = आगतः (तदा) मम=दशरथस्य मनोरथः = मनोऽभिलाषः भग्नः = विनष्टः। कालेन= दुर्दैवेन दशरथं नेतुम् यमलोके इति शेषः अयं रथः प्रेषितः इति नूनम् निश्चयः। रामरहितरथागमनान्मम जीविताशा प्रणष्टा अहम् मरिष्यामीति निश्चितः। 'मनोरथ' इत्यत्र श्लेषः। नूनमित्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।

कञ्चकी—अहो! कितना दारुण दुःख है जो इस प्रकार के महापुरुषों को भी इस प्रकार की विपत्ति सहनी पड़ती है। सचमुच भवितव्यता का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। महाराज, धीरज धरिये, धीरज धरिये।

राजा—(कुछ आश्वस्त से होकर) बालाके! क्या अकेले एकमात्र सुमन्त्र ही आये हैं?

कञ्चुकी—महाराज! हाँ।

राजा—हाय महान् दुःख है।

यदि राम को बिना लिये सूना रथ आया है तो मेरी सारी आशा मिट्टी में मिल गई। मुझे तो अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि क्रूर काल ने मुझ दशरथ को लेने के लिये ही यह रथ भेजा है। अच्छा, उन्हें शीघ्र भेजो।

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

राजा—धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम्॥ १२॥

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्रः—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)
एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा, स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाक्षाः।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः, विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति॥ १३॥

अन्वयः—वने तटाकपरिवर्तिनः वाताः धन्याः। ये वने विचरन्तं रामम् यथा सुखं स्पृशन्ति।

व्याख्या—धन्या इति। वने=कानने, तटाकपरिवर्त्तिनः—तटाकात् = पद्मफुल्लसरोवरात् परिवर्त्तन्ते = समागच्छन्तीति तटाकपरिवर्त्तिनः = सरोवरतटाकात् प्रतिनिवृत्ताः वाताः = वायवः, धन्याः = कृतार्थाः। कृतार्थत्वे हेतुमुपन्यस्यति—ये वने विचरन्तम्=विहरन्तम् रामम् यथासुखम् = यथेच्छम् स्पृशन्ति समालिङ्गन्ति। रामदेहस्पर्शकारणेन अचेतना अपि वायवः कृतार्थाः तद्विरहाद्वयमधन्या इति भावः। रामस्पर्शनं वायोर्धन्यत्वे हेतुः। तेन काव्यलिङ्गालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः॥ १२॥

अन्वयः—एते भृत्याः रामे स्नेहात् जातवाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसंदग्धदेहाः स्वानि कर्माणि हित्वा विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति।

व्याख्या=एते इति। एते भृत्याः=सेवकाः रामे स्नेहात् = अनुरागाति—

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा (प्रस्थान करता है)।

राजा—खिले हुए कमलों वाले सरोवरों से आनेवाली वे अचेतन हवायें भी धन्य हैं जो वन में विचरण करते हुए श्रीराम का यथेच्छ आलिङ्गन करती हैं।

(सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—(चारों ओर देखते हुए शोक से) राम में अनुरागातिशय के कारण आँखों में आँसू भरे हुए चिन्ता से मलिन एवं शोकाग्नि से संतप्त शरीर वाले ये सेवकगण अपना अपना कार्य छोड़ कर विलाप करते हुए महाराज को

(उपेत्य) जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क्व मे ज्येष्ठो रामः ?

नहि नहि युक्तमभिहितं मया ।

क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता—
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ १४ ॥

शयात्; जातवाष्पाकुलाक्षाः = अश्रुपूर्णनेत्राः चिन्तादीनाः—चिन्तया = शोकेन दीनाः = कृशा मलिना वा शोकसंदग्धदेहाः = शोकज्वलितशरीराः स्वानि = स्वकीयानि कार्याणि = कर्त्तव्यानि हित्वा = परित्यज्य विक्रोशन्तम् = विलपन्तम् पार्थिवम् = राजानम् गर्हयन्ति = निन्दन्ति । शालिनीवृत्तम् । 'शालिन्युक्ता मतौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति तल्लक्षणम् । विशेषणानां सांभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे प्रियसुत ! ते ज्येष्ठः सुतः रामः क्व । गुरुजने निरतिशयभक्तिः विदेहानां भर्त्तुः दुहिता क्व । सौमित्रिः वा क्व । ते सकलजनशोकार्णवकरम् आसन्नमरणम् हतपितृकम् मां किमपि आहुः ।

व्याख्या—हे प्रियतुत इत्यादि हे प्रियसुत—प्रियः सुतोः यस्य तत्संवुद्धौ पुत्रवत्सल ! ते = तव दशरथस्य, ज्येष्ठः = प्रथमः सुतः = तनयः क्व = कस्मिन्नु-

---

बार-बार कोस रहे हैं ।

(पास जाकर) जय हो महाराज की ।

राजा—भाई सुमन्त्र ! मेरा जेठा बेटा राम कहाँ हैं ? नहीं नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा ।

हे प्रियसुत । कहाँ है तुम्हारा तुम्हारा जेठा पुत्र राम । गुरुजनों में अतिशय भक्ति रखनेवाली विदेहराजपुत्री सीता कहाँ है । कहाँ हैं सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण । सुमन्त्र ! सभी को शोकसागर में निमग्न करनेवाले स्वयं भी मृत्युशय्या पर पड़े हुए मुझ हतभाग्य पिता को क्या उन लोगों ने कुछ संदेश भेजा है ?

सुमन्त्रः—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः। अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया। नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः। तत् कथ्यताम्। अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त ! बहुववकलालङ्किदसरीरा वालावि अवालचरित्ता भत्तुणो सहधम्मआरिणीअम्हे महाराअ च किञ्चि णालवादि। [सुमन्त्र ! वहुवल्कला-

---

द्देशे तिष्ठति इति जिज्ञासा। गुरुजने = पूज्यश्वश्रूश्वशुरादौ निरतिशयभक्तिः—निरतिशया अत्यधिका भक्तिर्यस्या सा, विदेहानाम् भर्त्तुः = स्वामिनो जनकस्य दुहिता = पुत्री क्व। सौमित्रिः = सुमित्रायाः अपत्यः पुमान् सौमित्रिः = लक्ष्मणः क्व वा। ते रामादयः सकलजनशोकार्णवकरम्—सकलानां जनानां शोकार्णवं करोतीति तम् = अखिललोकखेदसमुद्रजनकम्, आसन्नमरणम्—आसन्नम् मरणं यस्य तम् = सन्निहितमृत्युम् हतपितृकम् = अभाग्यभाजनं निजं जनकं माम् किमप्याहुः किमपि संदिदिशुः। इति त्वरितमभिधीयतामिति शेषः। शिखरिणीवृत्तम्। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणीति तल्लक्षणम्।

अमङ्गलवचनानि = अशुभसूचकानि पूर्वमुक्तानि 'हतपितृकम्' आसन्नमरणमित्यादीनि। मा मा भाषिष्ठाः = मा मा भाषस्व। तपस्विनाम् राजैश्वर्यादि भोगं परिहृत्य तापसव्रतगृहीतवतां रामादीनाम् तपो वर्धते नियमाद्यनुष्ठानम् निर्विघ्नतया संपाद्यते। स्वाधीनानि—स्वायत्तानि = आत्मवशे संस्थितानि। विचरन्ती = विहरन्ती। बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा = वहुविधम्—नानाप्रकारम्

सुमन्त्र—महाराज। ऐसी अमङ्गल की बातें मुंह से न कहें। आप बहुत थोड़े ही काल में पुनः उन्हें देखेंगे।

राजा—सुमन्त्र। मैंने सचमुच ठीक नहीं कहा—तपस्वियों से इस प्रकार का प्रश्न अनुचित है। अच्छा कहिये उन तपस्वियों का तप निर्विघ्न तो चल रहा है। अपने अधीनस्थ अरण्यों में विचरण करने वाली सीता को कोई कष्ट तो नहीं होता।

सुमित्रा—सुमन्त्र। नाना प्रकार के वल्कलों से अपने शरीर को अनेक प्रकार से अलङ्कृत करने वाली बालिका होते हुए भी प्रौढों जैसा व्यवहार

लङ्कृतशरीरा बालाऽप्यबालचारित्रा सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ?]

सुमन्त्रः—सर्व एव महाराजम्—

राजा—न न। श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय !

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

राजा—राम इति। अयं रामः। तन्नामश्रवणात् स्पष्ट इव मे प्रतिभाति। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

यथा स्यात्तथा वल्कलैः अलङ्कृतं शरीरम् यस्या सा। अबालचारित्रा—अबालाया प्रौढाया इव चारित्रं व्यवहारो यस्या सा प्रौढवद्व्यवहारा भर्त्रा सार्द्धं वनगमने न बालायाः साहसम् प्रौढायास्तु यथाकथंचित्स्यादपि। सुमन्त्रः 'ते मां किं संदिष्टवन्त' इति राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं समादधति सर्वं एवं महाराजमिति। सर्वे इति पदेन सुमन्त्रः सर्वान् रामादीन् समुदायान्परामृशति। राजा—पुथक् पृथक् तेषां संदेशजिज्ञासया तन्निषेधति न न इति। श्रोत्ररसायनैः = कर्णसुखकरैः। हृदयातुरौषधैः—हृदयेन आतुरः = रुग्णः हृदयातुरः तस्य = औषधैः = मानसिक व्यथाप्रशमन-

---

करने वाली एवं अपने पति के साथ पातिव्रत्य धर्माचरण में संलग्न वह सीता हम रानियों को अथवा महाराज को कुछ कह तो नहीं रही थी।

सुमन्त्र—सभी महाराज को……

राजा—सुमन्त्र। नहीं नहीं। कानों के लिये रसायन के समान गुणकारी तथा मुझ जैसे हृदय के रोगी के लिये औषधि के समान अलग-अलग नाम लेकर (किसने किसने क्या क्या कहा) उनका संदेश सुनाओ।

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा। चिरजीवी राम।

राजा—राम ऐसा यह राम। अरे इनका नाम सुनते ही मुझे मालूम पड़ रहा है कि वे मेरे सामने खड़े हैं। अच्छा फिर।

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण।

राजा—ये लक्ष्मण। अच्छा आगे।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही । रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्यपमक्रमः ।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः ?

राजा—रामो, वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम् ।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली ।
बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥ १५ ॥

पटुभिः । नामग्रहणैः । आयुष्मान् = चिरजीवी । अक्रमः = क्रमविपर्ययः । सीतायाः मध्यनिर्देशस्येष्यमाणत्वेनैवमुक्तिः । रामः सीता लक्ष्मण इत्ययं दशरथाभिलषित क्रमः तदेव युक्त्योपपादयति राजा—

अन्वयः—अत्रापि मैथिली रामलक्ष्मणयोः मध्ये तिष्ठतु । अरण्यानि बहुदोषाणि सन्ति । एषा सीता सनाथा भविष्यति ॥ १५ ॥

व्याख्या—(यथा वने सीता रामलक्ष्मणयोरन्तराले स्थिता सुरक्षिता च गच्छति तथा) अत्रापि नामनिर्देशेऽपि मैथिली = सीता रामलक्ष्मणयोः मध्ये = अन्तराले तिष्ठतु । आदौ रामस्य नाम अन्ते लक्ष्मणस्य नाम एवमुभयोर्मध्येऽभिधीयमानं सीतानाम तिष्ठत्वित्यर्थः । सीताया सर्वदैव रामलक्ष्मणयोरन्तरालवर्णित्वादिति भावः । तत्र कारणमाह—बहुदोषाणीति—अरण्यानि = वनानि बहुदोषाणि=नानाविधभययुक्तानि भवन्ति अतएव रक्षकसन्निधानसंस्थिता एवं स्थिता एषा सीता सनाथा = निर्भयावस्थाना सुरक्षिता च भविष्यति । 'अनिष्टशङ्कीनि खलु बन्धुजनहृदयानीति' मनसि कृत्वा दशरथो तेषां नामनिर्देशेऽपि सीतां तयोर्नाममध्यगतामेवेच्छतीति भावः । एतदेवाग्रे स्वयमपि स्पष्टीकरिष्यति । अनेन स्ववात्सल्यातिशयः सूचितः ॥ १५ ॥

सुमन्त्र—जनक राजपुत्री आयुष्मती सीता ।

राजा—यह वैदेही का क्रम तुमने ठीक नहीं कहा क्योंकि राम, लक्ष्मण तथा वैदेही इस प्रकार से नामोच्चारण का क्रम ठीक नहीं ।

सुमन्त्र—तो फिर किस क्रम से इनके नामोच्चारण का क्रम ठीक होगा ।

राजा—पहले राम फिर, वैदेही तदनन्तर लक्ष्मण इस प्रकार से नामोच्चारण का क्रम होना चाहिये । (जिस प्रकार वन में राम-लक्ष्मण के अन्तराल में सीता चलती हैं उसी प्रकार) इस नाम के क्रम में भी सीता यह नाम राम और लक्ष्मण

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्यान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः ।

सकृत् स्पृशामि वा रामं, सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ १६ ॥

सुमन्त्रो दशरथाभिमतेन क्रमेण वक्तुं पुनः प्रक्रमते यदाज्ञापयतीति—परिष्वजध्वम् = आलिङ्गत, पुत्रकाः = तनयाः ।

अन्वयः—(अहम्) रामम् सकृत् स्पृशामि वा पुनः सकृत् पश्यामि तदा अमृतेन गतायुरिव जीवामि इति मम मतिः ॥ १६ ॥

व्याख्या—दशरथः तेषां नामान्यनुस्मृत्य आकृतीः ध्यात्वा ब्रवीति—सकृत् = एकवारं पश्यामि=अवलोकयामि वा स्पृशामि तदा अमृतेन = सुधया गतायुः = मुमूर्षुः इव=यथा जीवामि = जीवेयम् यथा अमृतास्वादनेन केवलं मृतः अपितु मरणासन्नः अपि जीवति तथाहमपि सकृत् पुनः रामस्पर्शनदर्शनयोर्लाभेन जीवेयम् इति मम मति

के नाम के मध्य में उच्चरित होना चाहिये । क्योंकि वन में अनेक प्रकार के भय होने से जिस प्रकार सीता राम-लक्ष्मण के मध्य मे सुरक्षित होकर चल रही होगी उसी प्रकार नामोच्चारण के क्रम में भी यह मध्य में रहने से सनाथ होगी ।

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा । (क्रमपूर्वक उच्चारण करता है ।) यह आयुष्मान् राम ।

राजा—यह राम ।

सुमन्त्र—आयुष्मती सीता ।

राजा—यह सीता ।

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण ।

राजा—यह लक्ष्मण । हे राम ! हे वैदेही ! हे लक्ष्मण । हे मेरे पुत्रो । मेरा आलिङ्गन करो । यदि एक बार पुनः राम का आलिङ्गन करूँ या देखूँ तो मैं

सुमन्त्रः—शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः—

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
वाष्पास्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ १७ ॥

निश्चयात्मको विचारः । अनेन वात्सल्यातिशयो व्यञ्जितः । अमृतेनेत्यत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १६ ॥

विज्ञापयितुम् = निवेदयितुम्, आरब्धाः = आरब्धवन्तः ।

अन्वयः—चिरं कमपि अर्थम् ध्यात्वा वक्तुम् प्रस्फुरिताधराः वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वाद् अनुक्त्वा एव वनं गताः ॥ १७ ॥

व्याख्या—कमपीति—चिरम् = बहुकालम् कमपि अनिर्वचनीयम् अर्थम् संदेष्टव्यार्थं वाग्जातम् ध्यात्वा = विचार्य इदं = संदेष्टव्यमिदं वा संदेष्टव्यमिति विचार्येत्यर्थः किमपि वक्तुं प्रस्फुरिताधराः — प्रस्फुरिते अधरे येषां ते तादृशाः वक्तुमिच्छया संचालितौष्ठपुटाः जाताः किंतु वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात्—वाष्पेण पित्रादिप्रियवियोगसमुद्भवेनेति शेषः । स्तम्भितो = निरुद्धव्यापारो यः कण्ठः तस्य भावस्तस्मात् किमपि अनुक्त्वैव वक्तुमपारयन्तः सन्तः वनं गताः प्रस्थिताः । अवचने वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वस्य हेतुतया समर्थनात् काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः । 'अनुक्त्वैव वनं गताः' इति सुमन्त्रोक्तं निशम्य तेषां स्वस्मिन् स्नेहातिशयं ज्ञात्वा द्विगुणं मोहमुपगतः इत्याह—कथमिति । अप्रतीकारायाम्—नास्ति प्रतीकारो दूरीकर्त्तुमुपायः यस्याः सा तस्याम् ।

मृतप्राय होते हुए भी पुनः इस प्रकार जीवित हो जाऊँ जिस प्रकार गतायु अमृत प्राप्त कर लेने से जीवित हो जाता है ।

सुमन्त्र—ये सभी शृङ्गवेरपुर में रथ से उतर कर अयोध्या की ओर मुख कर खड़े हो महाराज को शिर से प्रणाम कर निवेदन करने के लिये उद्यत हुए ।

किन्तु बड़ी देर तक किसी बात को मन में सोच कर उसे कहने के लिये ज्यों ही अपना मुंह खोलना ही चाहते थे कि इतने में उनका गला रुँध गया । वे कुछ कह न सके और बिना कहे ही वन चले गये ।

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? (इति द्विगुणं मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—(ससम्भ्रमम्) वालाके ! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति।

काञ्चुकीयः—तथा। (निष्क्रान्तः)

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि। [महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।]

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य)

अङ्गं मे स्पृश कौशल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ १८ ॥

अन्वयः—कौशल्ये मे अङ्गं स्पृश। त्वां चक्षुषा न पश्यामि। रामं प्रति गता बुद्धिः अद्यापि न निवर्त्तते ॥ १८ ॥

व्याख्या—अङ्गमिति—हे कौशल्ये ! मे = मम, अङ्गं = गात्रम् स्पृश। तेन त्वां सन्निहितां प्रतीत्याश्वस्तो भवामीति शेषः। त्वां चक्षुषा न पश्यामि विपदुपनिपातेन मदीया दर्शनशक्तिरुपलुप्तेति भावः। अत्र चक्षुःपदेनोपहतशक्तिरूपोऽर्थो लक्ष्यते। रामं प्रति रामविषये गता न तु प्रेषिता अनेन स्वविवशत्वमुच्यते = बुद्धिः मतिः अद्यापि = अधुनापि न निवर्त्तते = न परावर्त्तते चक्षुषः बुद्धेः पराधीनत्वात्। अत्र चक्षुषा न पश्यामीति वाक्यस्य रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि त निवर्त्तते। इति हेतुना समर्थनात् काव्यलिङ्गालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १८ ॥

राजा—क्या कहा। बिना कुछ कहे ही वन चले गये (इतना कह कर पहले की अपेक्षा द्विगुणित मूच्छित हो जाते हैं)

सुमन्त्र—(शीघ्रता से) वालाके। मन्त्रियों से जाकर कहो कि महाराज अब ऐसी दशा मे हैं जिसका कोई प्रतीकार नहीं।

कञ्चुकीय—बहुत अच्छा (ऐसा कहकर वहाँ से चल पड़ता है।)

दोनों देवियाँ—महाराज, धैर्य धारण कीजिये धैर्य धारण कीजिये।

राजा—(कुछ आश्वस्त होकर) हे कौशल्ये। मेरा स्पर्श करो। मैं तुम्हें अपनी आँखों से देख नहीं पा रहा हूँ। क्योंकि मेरी बुद्धि जहाँ राम हैं वहाँ से अब तक नहीं लौट रही है। पुत्र राम ! मैंने जैसा निरन्तर विचार किया था कि—

पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्—

राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः
कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम् ।
इत्यादिश्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया
कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ १९ ॥

सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

अन्वयः—त्वां राज्ये अभिषिच्य सन्नरपतेः लाभात् प्रजाः कृतार्थाः कृत्वा त्वत्सहजान् सन्ततम् आत्मसमानविभवान् कुरु इति च ते आदिश्य इतः तपोवनं गन्तव्यम् इति । एतया हि कैकेय्या अहो एकक्षणे तत् निःशेषम् कृतम् ॥ १९ ॥

व्याख्या—राजा स्वचिन्तितमनोरथे विनाशे कैकेयीं कारणत्वेनोपन्यस्यति राज्ये इति—त्वां राज्ये अभिषिच्य = व्यवस्थाप्य सन्नरपतेः = प्रशंसास्पदस्य त्वादृशस्य राज्ञः लाभात् = प्राप्तेः प्रजाः = प्रकृतीः कृतार्थाः = कृतकृत्याः कृत्वा = विधाय, त्वत्सहजान् = तव सहोदरान् भरतादीन् संततम् = निरन्तरम् आत्मनसमानविभवान्—आत्मनः समानो विभवो = ऐश्वर्यं येषां तथाभूतान् कुरु = विधेहि इति तुभ्यम् आदिश्य = आज्ञाप्य इतः=अयोध्यायाः तपोवनम् तपश्चरितुमिच्छयेति शेषः । गन्तव्यम् इति चिन्तितमासीदिति शेषः । हि किन्तु एतया कैकेय्या अहो एकक्षणे तत् सर्वं चिन्तितम् निःशेषम् अन्यथा=पूर्णरूपेण विपरीतं कृतम् । मया स्वकीयवनगमने चिन्त्यमाने पुत्र एव वनं प्रेषित इत्यहो विधेर्विपरीतता । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥

उच्यतां कैकेय्याः इति । अत्र षष्ठी सम्बन्धसामान्ये । आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्येतिवत् ।

'तुम्हारा राज्याभिषेक कर प्रजाओं को उत्तम राजा देकर उसके लाभ से उन्हें कृतार्थ कर तथा अपने भाइयों को भी अपने समान ऐश्वर्य प्रदान कर उन्हें प्रसन्न रखना' इस प्रकार का तुम्हें आदेश देकर मैं तपोवन जाऊँगा किन्तु यह सारा मेरा सोचा हुआ कार्य इस कैकेयी ने एक क्षण में चौपट कर दिया । यह बड़े खेद की बात है ॥ १९॥

अच्छा सुमन्त्र ! कैकेयी से जाकर कहो कि तुमने राम को वन में भेज दिया।

गतो रामः, प्रियं तेऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य)—अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

अन्वयः—रामो गतः ते प्रियम् अस्तु । जीवितैः अहमपि त्यक्तः । पुत्रः क्षिप्रम् आनीयताम् । पापम् सफलम् अस्तु इति ॥ २० ॥

व्याख्या—रामः गतः = प्रेषितः अन्तर्भाविण्यण् वनमिति शेषः । प्रियं तेऽस्तु रामवनगमनेन प्रसन्ना भव । जीवितैः = प्राणैः अहमपि त्यक्तः अहं मरिष्यामीति भावः । अभिषेकाय स्वपुत्रः भरतः क्षिप्रम् आनीयताम् = आकार्यताम् । पापं रामनिर्वासनस्वरूपम् सफलम् फलेन = भरताभिषेकरूपेण सहितं यथा स्यात् तथाऽस्तु = जायताम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

अये इति विषादार्थकमव्ययपदम् । रामकथाश्रवणसंदग्धहृदयम्—रामकथाश्रवणेन संदग्धं भस्मीभूतम् हृदयं यस्य तं तथाभूतमं, मामाश्वासयितुम् रामकथाश्रवणसंदग्धहृदयम् सान्त्वयितुम् पितरः पितृभूता पितृपितामहप्रपितामहाः त्रिपुरुषाः= मत्पूर्वजाः आगताः विलोक्यन्ते मयेति शेषः । मृतानां दर्शनं प्रायशोऽनिष्टकरम् ।

अब प्रसन्नतापूर्वक निवास करो । मेरी भी जीवन-लीला समाप्त होने जा रही है। अतः शीघ्र अपने पुत्र भरत को बुलाओ जिससे तुम्हारा पापी मनोरथ सफल हो ।

सुमन्त्र—महाराज की जैसी आज्ञा ।

राजा—(ऊपर की ओर देखते हुए) अरे । यह बड़े आश्चर्य की बात है जो राम की कथा सुनने से शोकसंतप्त हुए मुझे धीरज बँधाने के लिये पितर लोग यहाँ आ पहुँचे । कौन है यहाँ ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की ।

राजा—आपस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

राजा—(आचम्यावलोक्य)

अयममरपतेः सखा दिलीपो, रघुरयमत्रभवानजः पिता मे ।
किमभिगमनकारणं. भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ॥ २१ ॥

अन्वयः—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः । अयम् रघुः । अत्र भवान् मे पिता अजः (एतेषां) अभिगमनकारणं किम् ? तत्र भवद्भिः सह वसने ममापि समयः (संजातः) ॥ २१ ॥

व्याख्या—दशरथः स्वाक्षिगोचरान् पितॄन् नामतो निर्दिशति अयमिति—अयम् = पुरो दृश्यमानः अमरपतेः = इन्द्रस्य सखा = मित्रम् दिलीपः = मत्प्रपितामहः, अयं रघुः = तन्नामको मत्पितामहः । अत्र भवान् पूज्यः मे पिता अजः । किमभिगमनकारणं = भवताम् अत्र मृत्युलोके समागमनस्य प्रयोजनं किम् एतच्च तान् प्रति प्रश्नः । भबद्भिः सह वसने = निवासे तत्र = तस्मिन् पितृलोके ममापि समयः = अवसरः संजातः । अहमपि मरिष्यामीत्यर्थः । अत्र पर्यायोक्तिरलङ्कारः । 'पर्यायोक्तिर्यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते' इति तल्लक्षणम् । पुष्पिताग्रावृत्तम् । अयुजिनगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ॥ २१ ॥

राजा—जल तो लाओ ।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (बाहर जाकर पुनः जल लाकर) जय हो महाराज की । यह जल आ गया ।

राजा—(आचमन कर पुनः आकाश की ओर देखते हुए) ये हैं देवराज इन्द्र के सखा महाराज दिलीप । ये हैं महाराज रघु और ये हैं परम पूजनीय अज जो मेरे पिता हैं । भला आप लोग यहाँ कैसे पधारे ? क्योंकि अब तो मेरे लिये भी आपके साथ ही निवास करने का समय आ पहुँचा है । राम ! जानकी ! लक्ष्मण ! अब मैं पितृलोक को प्रस्थान कर रहा हूँ । हे पितृगणो ! लो यह मैं भी आ पहुँचा । (मूर्च्छित हो जाते हैं) ।

राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि । हे पितरः ! अयमहमागच्छामि ! (मूर्च्छया परामृष्टः)

(काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति)

सर्वे—हा हा महराओ । हा हा महाराओ । [हा हा महाराजः । हा हा महाराजः ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

●

परामृष्टः = समाक्रान्तः । यवनिकास्तरणम्—यवनिकया = वस्त्रविशेषेण आस्तरणम् = आच्छादनम् । राज्ञः शरीरोपरि आवरणदानमित्यर्थः ।

●

(कञ्चुकी महाराज के शरीर षर पर्दा करता है)

सभी—हाय महाराज, हाय महाराज ! (ऐसा कहते हुए सभी चले जाते हैं)

द्वितीयाङ्क की हिन्दी भाषा टीका समाप्त

●

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः—भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य सम्भवअस्स आणत्तं। जाव मुहुत्तं सुविस्सं। (सम्मार्जनादीनि कृत्वा) [भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि।) स्वपिति)]

(प्रविश्य)

भटः—अङ्ञो दासीएपुत्त ! किं दाणिं कम्म ण करेसि ? (चेटमुपगम्य ताड-

---

द्वितीयाङ्के दशरथस्य स्वर्गप्रयाणमभिहितम्। अथ तृतीयाङ्के मातुलगृहादागच्छतो भरतस्य यथा तन्मरणज्ञानम् यथा रामादिवनगमनश्रवणं चेत्यादि वृत्तान्तज्ञानम् उपनिबध्नन् कविः प्रथमं कौशल्यादीनां प्रतिमागृहगमनं सूचयितुं प्रवेशकद्वारा सुधाकारस्य प्रवेशं संसूचयन्नाह—ततः प्रविशतीत्यादि।

प्रवेशकलक्षणं यथा—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥ १॥
एकानेकगतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्ययोः।
तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः॥ २॥

सुधाकारः—सुधां चूर्णम् तां करोतीति सुधाकारः भवनभित्तिधवलीकरणार्थम् सुधालेपकारकः। स चात्र प्रतिमागृहमार्जनार्थमधिकृतः पुरुषविशेषः। आर्यसंभवकस्य पूज्यस्य संभवकनाम्नः कञ्चुकीयस्य। आज्ञप्तम् = आदिष्टम्। अङ्गो इति—

[सुधाकार (चूना पोतनेवाला कारीगर) का प्रवेश]

सुधाकार—(झाड़ू-बहारू लगाकर एवं अन्य समस्त कार्य पूर्ण करने के उपरान्त) अच्छा मैंने आर्य संभवक के द्वारा कहे गये सारे काम पूरे कर लिये। अब थोड़ी देर आराम से सो लूं। (सो जाता हैं)।

(भट (सिपाही) का प्रवेश)

भट—(भृत्य के पास जाकर तथा उसे पीटते हुए) अरे दासीपुत्र ! तू काम

यित्वा) [अङ्घो दास्याः पुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि ? (ताडयति)]

सुधाकारः—तालेहि मं तालेहि मं। (बुद्ध्वा) [ताडय मां, ताडय माम् !]

भटः—ताडिदे तुवं कि करिस्ससि ?] [ताडिते त्वं किं करिष्यसि] ?

सुधाकारः—अनण्णस्य मम कत्तबीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि। [अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।]

भटः—बाहुसहस्सेण किं कय्यं ? [बाहुसहस्रेण कि कार्यम् ?]

सुधाकारः—तुवं हणिस्सं । [त्वां हनिष्यामि ।]

निपातोऽयम् सकोपामन्त्रणे । दास्याः पुत्रः जारजातः 'दोगला' इति भाषायाम्। अयं शब्दः निन्दार्थे प्रयुज्यते। कर्म स्वनियोगम् = आदिष्टकर्त्तव्यताकम् । मया तु त्वदादिष्टम् समस्तं कर्त्तव्यमनुष्ठितम् एवम् स्वकर्त्तव्यस्य समापितत्वेन गर्वितो सुधाकार आह–ताडय माम् ताडय मामिति । सति ताडने कृते त्वं मे किं करिष्यसीति साभिमानो भट आह—ताडिते त्वं किं करिष्यसीति । कार्त्तवीर्यस्य—कृतवीर्यस्यापत्यं पुमान् कार्त्तवीर्यः तस्य । हैहयवंशीयः सहस्रबाहुरर्जुन एव कार्त्तवीर्यःशब्देनोच्यते । अयं दत्तात्रेयप्रसादेन बाहुसहस्रं, युद्धे विशिष्टात् पुरुषान्मरणं च लब्धवान् । एतस्य नामग्रहणमाहात्म्यमेवं स्मर्यते–=

कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् ।
तस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते ।। इति ।

बाहुसहस्रफलं पृच्छति भटः—बाहुसहस्रेण किं कार्यमिति । तत्फलम् सुधाकार आह—त्वां हनिष्यामीति । उद्दण्डतापूर्णमुत्तरं श्रुत्वा कोपाविष्टो भट आह—

क्यों नहीं करता (ऐसा कहकर पीटने लगता है)

सुधाकार—(जाग कर) मार लो मुझे, मार लो ।

भट—मैं तुम्हें मारता हूँ, देखता हूँ कि तुम मेरा क्या कर लेते हो ।

सुधाकार—क्या कहूँ, मुझ अभागे को भगवान् ने राजा कार्त्तवीर्य अर्जुन के समान हजार हाथ नहीं दिये !

भट—कार्त्तवीर्य के समान हजार हाथ होते तो तुम मेरा क्या कर लेते ।

सुधाकार—मैं तुम्हें मार डालता ।

भटः—एहि दासिएपुत्त ! मिदे मुञ्चिस्सं। [एहि दास्याः पुत्र ! मृते मोक्ष्यामि ।]

सुधाकारः—(रुदित्वा) शक्कं दाणिं भट्टा ! मे अवराहं जाणिदुम् । [शक्यमिदानीं भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम् !]

भटः—णत्थि किल अवराहो णत्थि । ण मम सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जबिब्भट्ठकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स पडिमागेहं देट्ठुं अज्ज कौसल्लापुरोएहि सब्बेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति। एत्थ दाणि तुए किं किदं ? [नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?]

मृते मोक्ष्यामीति--ताडनेन यदा त्वं मृतो भविष्यसि तदा त्वां मोक्ष्यामि । जीवन्तं त्वां न परित्यजामीत्यर्थः । सुधाकारः ताड्यमान सन् नम्रीभूय काक्वा स्वापराधं पृच्छति--शक्यमिदानीं भर्ता इत्यादि । मयापराद्धं किमित्यहं ज्ञातुमिच्छामि । भटः काक्वैवोत्तरं ददाति--नास्ति किलापराध इति । अस्त्येव तवापराध इत्यर्थः । तस्यापराधं सविस्तरं कथयति । ननु मयेति--

संदिष्टः = समाज्ञप्तः । भर्तृदारकस्य = राजकुमारस्य । राज्यविभ्रष्टकृतसंतापेन—राज्याद् विभ्रष्टम् = विभ्रंशः राज्यविभ्रष्टः तस्मात् कृतसंतापेन = राज्यविभ्रंशजनितदुःखेन । प्रतिमागेहम् = मृतानां राज्ञाम् स्मारकरूपेण प्रतिमा यत्र स्थाप्यन्ते तादृशम् गेहम् । कौशल्यापुरोगैः = कौशल्या पुरोगामिनी येषां तैः कौश-

---

भट—अरे दासीपुत्र ! अब तो मैं तुम्हें मार कर तभी छोड़ूंगा ।

(फिर पीटने लगता है)

सुधाकार—(रोते हुए) स्वामिन् क्या मैं अपना अपराध जान सकता हूँ ।

भट—क्या तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है ? भला मैंने तुम्हें आज्ञा दी थी कि राजकुमार श्रीराम के राज्यविच्युत होकर वन चले जाने से उनके शोक से संतप्त हुए महाराज दशरथ ने अपना प्राण दे दिया । इस समय उन मृत महाराज की प्रतिमा जहाँ स्थापित है उस गृह को देखने के लिये कौशल्यादि समस्त रानियाँ आने वाली हैं तो बताओ तुमने यहाँ आकर क्या काम किया ?

सुधाकारः—पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगेहं । सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ । ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि । पइण्णा वालुआ । एत्थ दाणि मए किंण किदं ? [पश्यतु भर्ता । अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः । अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि । प्रकीर्णा बालुकाः । अत्रेदानीं मया किं न कृतम् ?]

भटः—जइ एवं विस्सत्थो गच्छ । जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि । [यद्येवं विश्वस्तो गच्छ । यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि ।]

ल्याप्रभृतिभिः । अन्तःपुरैः = राज्ञीभिः । अत्र अस्मिन् प्रतिमागेहे । मदाज्ञाविषये वा । भटेन तदपराधे कथिते सुधाकारः स्वस्य निरपराधतां सूचयितुं भवदाज्ञप्तं सर्वं सुष्ठु मया संपादितमिति कथयति—पश्यतु भर्त्ता इति । अपनीतकपोतसंदानकम्—अपनीतं = दूरीकृतं कपोतसंदानकम् = कपोतनीडम् यस्मात् तत् । गर्भगृहम् = प्रतिमागृहमध्यभागम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः—सौधे= सुधामये वर्णके लेपे दत्तं = निवेशितं चन्दनपञ्चाङ्गुलम् = चन्दनमयपञ्चाङ्गुलन्यासो यासु ताः । अवसक्तमाल्यदामशोभीनि—अवसक्तैः = समायोजितैः माल्यदामभिः = पुष्पस्रग्गुणैः शोभितुम् शीलम् येषां तथाभूतानि द्वाराणि । प्रकीर्णाः = समाच्छादिताः, बालुकाः=मृदुसूक्ष्माः सिकताः पादस्पर्शसौकर्यार्थमिति शेषः एवं

सुधाकार—स्वामिन् आप ही देख लीजिये ! जिस गर्भगृह में झाड़ू बहारू के न लगने से कबूतरों ने अपने घोंसले बना रखे थे । उन घोंसलों को नष्ट कर मैंने गर्भगृह को सर्वथा स्वच्छ बना दिया है । दीवालों पर चूना पोत कर उन्हें स्वच्छ कर दिया है इतना ही नहीं, उन पर पाँचों अङ्गुलियों से चन्दन के छाप लगा दिये हैं । दरवाजों को पुष्पमालाओं से सुसज्जित कर दिया है । मार्ग में आनेवालों की सुविधा के लिये कोमल तथा महीन बालू बिछा दी है । अब आप ही कहिये मैंने क्या नहीं किया ?

भट—अच्छा, यदि ऐसी बात है तो तुम निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार जहाँ जो चाहे जाओ । मैं भी मन्त्री जी के पास जाकर सूचित करूँ कि सब ठीक-ठाक है ।

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः—(सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्

सर्वम् भवदादिष्टं कार्यजातं संपादितवानेवास्मि तदा किमर्थं ताड्यते ? इति साधिक्षिपन्नाह सुधाकारः अत्रेदानीमिति—एवं स्वकीयकार्यसंपादनेन संतुष्टो भटः कथयति यद्येवमिति । विश्वस्तः = ताडनभयरहितः यथासुखम् गच्छ विश्रामार्थमिति शेषः ।

पूर्वाङ्के मुमूर्षो राज्ञः 'क्षिप्रमानीयतां पुत्रः' इत्येवंरूपया आज्ञया भरतस्यागमनं सूचितमिदानीं तत्प्रवेशमाह—ततः प्रविशतीत्यादि । सूतः = सारथिः । सावेगम् = उद्वेगयुक्तम् । मातुलपरिचयात् मातुलस्य = युधाजितः, = परिचयात् तद् गृहे चिरकालनिवासात् । दृढम् = नितान्तम् । अकल्यशरीरः—अकल्यं अस्वस्थम् शरीरं यस्य सः । तत् = तस्मात् कारणात् पितुः सकाशादेव त्वं मां नेतुं समागतोऽसि अतः सर्वं जानासीति हेतोः उच्यताम् राज्ञोऽस्वस्थतायाः सामान्येन ज्ञातत्वेऽपि मम विशेषजिज्ञासाशान्तये त्वया विविच्यप्रतिपाद्यतामित्यर्थः । भरतकृतप्रश्नान् सूतदत्तानि तदुत्तराणि चैकपद्येन प्राह—पितुरिति ।

व्याख्या—भरतः सूतम् पृच्छति—मे पितुः दशरथस्य कः व्याधिः = रोगः ।

(दोनों का प्रस्थान)

॥ प्रवेशक ॥

(रथ में बैठे भरत एवं सारथि का प्रवेश)

भरत—(कुछ उद्विग्न से होकर) सारथे ! चिरकाल पर्यन्त मामा जी के यहाँ रहने से मुझे घर का समाचार नहीं मिला । सुना है कि महाराज शरीर से अत्यन्त अस्वस्थ हैं तो बताओ मेरे पिता को कौन-सी व्याधि है ?

सूत—महाराज ! उन्हें कोई शारीरिक रोग नहीं है । किन्तु दारुण मानसिक संताप है ।

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः
सूतः— न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।
भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि
सूतः— भूमौ निरशनः
भरतः— किमाशा स्याद्
सूतः— दैवं
भरतः— स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ १ ॥

सूतः उत्तरति—तस्य शारीरिकः रोगो नास्ति अपितु मानसिको रोगोऽस्ति तदेवाह—हृदयस्य परितापः = संतापः इति । पुनः भरतः पृच्छति—तं वैद्याः किं प्राहुः चिकित्सकास्तस्य रोगस्य साध्यत्वासाध्यत्वे वा किं निर्णीतवन्त इत्यर्थः । सूतः उत्तरति—भिषजः तत्र न खलु निपुणाः = योग्या अपि वैद्याः तस्य रोगापनयने निश्चयेन असमर्था इति भावः । पुनः भरतः पृच्छति—किमाहारं शयनमपि भुङ्क्ते शयनं करोति वा न वा । यः भोजनं न करोति निद्रितो वा न भवति स स्वस्थो न भवति आहारं भुङ्क्ते स्वास्थ्ये भोजनस्य शयनस्य विशेषहेतुत्वादित्यर्थः । सूतः निषेधमुखेन उत्तरति—भूमौ निरशनः वर्त्तते स्थण्डिले स्थित्वा जागर्ति निराहारश्च वर्त्तते । पुनः भरतः पृच्छति—किमाशा स्यादिति—जीवनाशा संभाव्यते किम्? सूतस्तं प्रत्युत्तरमाह दैवमिति—दैवम् = भाग्यमेव राजानमुपजीवयितुमीशः यतो हि निपुणा अपि बैद्याः तस्योद्धरणे अकिञ्चित्करा इति । भरतः एतच्छ्रुत्वापितुरन्तिकगमनाय हृदयं मे स्फुरति=कम्पितो भवति अतः रथं वाहय नयेत्यादिशति सूतम् । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १ ॥

भरत—तो वैद्यों ने इस विषय में क्या कहा ?

सूत—वैद्य लोग उस रोग के निदान में सर्वथा असमर्थ हैं ।

भरत—अच्छा, महाराज क्या खाते हैं और किस प्रकार सोते हैं ?

सूत—महाराज वे पृथ्वी पर निराहार शयन कर पड़े हुए हैं ।

भरत—उनके जीने के विषय में कैसी आशा है ?

सूत—दैव जाने । इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

भरत—सूत, तब तो मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ को शीघ्र हाँको ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं वाहयति)

भरतः—(रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं--
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

अन्वयः—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव । मही उद्वृताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति । अरव्यक्तिः नष्टा चक्रवलयम् जवाद्, स्थितमिव (भाति) अश्वोद्भूतं रजः च पुरतः पतति न अनुपतति ।ः २ ॥

व्यास्या--रथवेगं निरूपयति—द्रुतरथगतिक्षीणविषया—द्रुतया = शीघ्रया रथगत्या = रथसंचलनेन क्षीणविषयाः = क्षीणः स्वल्पः विषयो दृग्गोचरावयवः येषां ते तादृशा द्रुमा = वृक्षाः धावन्तिइव प्रतीयन्ते । रथवेगमहिम्ना त्वरया दृश्यमाना अपि वृक्षा स्वल्पावयवत्वेनेव दृग्गोचरतां यान्ति अतोल्पधावन्त इव दृश्यन्ते । मही = भूमिः उद्वृत्ताम्वुः = उद्भ्रान्तजला नदी इव नेमिविवरे = प्रधिरन्ध्रे निपतति इव ज्ञायते । अरव्यक्तिः—अराणाम् = नेमिनाभिमध्यवर्त्तिदण्डाकारभागानाम् व्यक्तिः स्फुटावभासमाना या पूर्वं पृथक् प्रतीयमानाऽसीत् सा नष्टा = तिरोहिता । जवात् = वेगातिशयात् चक्रवलयम् = रथचक्रमण्डलम् स्थितमिव = निश्चलमिव प्रतीयते । वेगाधिक्येन रथचक्रभ्रमणं भूमौ न संलक्ष्यते इत्यर्थः । अश्वोद्भूतम् = अश्वैः उद्भूतम् = खुराघातसमुद्भवं रजः = धूलिश्च पुरतः = अग्रे पतति न अनुपतति अनु = रथस्य पृष्ठभागे न पतति रथस्य दूरं निर्गमनादिति भावः । अत्र रथवेगस्य स्वाभाविकरूपेण वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः ! धावन्तीवेत्यादौ उत्प्रेक्षापि । शिखरिणीवृत्तम् ॥ २ ॥

सूत--जैसी आज्ञा (कहकर रथ चलाता है ।)

भरत--(रथ का वेग भली भाँति देखकर) अहो 'कितना अच्छा रथ का वेग है । द्रुततर रथ के वेग के कारण वृक्षों के कुछ ही भाग दृष्टि से दिखाई पड़ रहे हैं और वे दौड़ते से प्रतीत हो रहे हैं । यह सारी पृथ्वी भँवर से युक्त जलवाली नदी के समान धुरी के छिद्रों में सिमटतीं हुई जैसी प्रतीत हो रही है । बड़ी

सूतः—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः । सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।

अभितः = समन्तात् वृक्षाणाम् सोपस्नेहतया = सिञ्चनादिना वृक्षाणां सोपस्नेहत्वं शोभनत्वं च संभवति । तेन हेतुना खलु = निश्चयेन अयोध्यया भवितव्यम् । अत्र अभित इत्यस्य वृक्षाणाम् इत्यत्र नान्वयः तथात्वे द्वितीयासंभवात्तस्मात् सोपस्नेहतयेत्यत्रैव अन्वयः कार्यः । स्वजनदर्शनोत्सुकस्य—स्वजनानाम् = पितृभ्रात्रादिबान्धवानाम् दर्शने उत्सुकः = समुत्कण्ठितः तस्य मे मनसः त्वरता । त्वरते इति त्वरस्तस्य भावस्त्वरता = सत्वरता ।

अन्वयः—पितुः पादयोः (मम) शिरः पतितमिव, स्निह्यता राज्ञा समुपस्थापित इव अस्मि । भ्रातरः त्वरितम् उपगता इव, मातरः माम् अश्रुभिः क्लेदयन्ति इव, सदृश इति महान् इति व्यायतश्च इति भृत्यैः सेवया स्तुत इव अहम् तत्र आत्मनः वेषं भाषां च सौमित्रिणा परिहसितम् इव पश्यामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—इदानीं = अयोध्यागमनान्तरं स्वाभीष्टकल्पनम् मनसा अनुभवन्नाह—पितुः = दशरथस्य पादयोः = चरणयोः = शिरः = मम मस्तकम् पतित-

---

तेजी के घूमने के कारण रथ के अरे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं । रथ के पहिये ऐसे मालूम पड़ रहे हैं मानो वे निश्चल हो गये हैं । बहुत क्या, घोड़ों के टापों से उड़ी हुई धूलि रथ के आगे के भाग पर गिर रही है । उसके पीछे के भाग पर नहीं पड़ती क्योंकि इतनी देर में रथ बहुत आगे बढकर चला जाता हे ।

सारथी—श्रीमन् ! वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अब अयोध्या यहीं कहीं समीप में ही है ।

भरत—अहो ! यह हमारा मन आत्मीय जनों के दर्शनार्थ कितना उतावला हो रहा हैं । क्योंकि इस समय—

मुझे मालूम पड़ रहा है कि मैंने पिताजी के चरणों में अपना सिर नवा दिया हैं, राजा ने भी वत्सलता से मुझे चरणों पर से उठा कर अपनी गोद में ले लिया

सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥३॥

सूतः—(आत्मगतम्) भोः कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न

मिव प्रत्येमीति शेषः। स्निह्यता = सुतवात्सल्यादतिशयस्नेहं दर्शयता राज्ञा समुत्थापितः = पादतलादुत्थाप्य स्वाङ्कमारोपित इव, अस्मि। भ्रातरः = रामादयः त्वरितम् = शीघ्रम् उपगता = सन्निकटं प्राप्ता इव मामिति शेषः मातुलकुलादागतं मां संश्रुत्य सत्वरं परिवार्य स्थिता इत्यर्थः। मातरः = जनन्यः माम् अश्रुभिः = प्रहर्षजन्यनेत्रजलविन्दुभिः क्लेदयन्ति = आर्द्रयन्ति इव। सदृशः = यथा इतो मातुलकुलं गतस्तदवस्थ एव परावृत्तः इति महान् इति, यावदाकारो गतस्ततो अपचितावयवः सन् परावृत्त इति। व्यायतः = विशाल इति कथयद्भिः भृत्यैः = परिचारकैः सेवया अहं स्तुतः = गुणवर्णने प्रसक्त इव तत्र स्वगृहे आत्मनः वेषम् = केकयदेशोचितपरिधानीयम् भाषाम् = तद्देशीयभाषाप्रभाविताम् भाषाम् सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन परिहसितम् इव = परिहास्यमानमिव पश्यामि = अनुभवामि। लक्ष्मणो हि कैकेयदेशजन्यां मदीयां भाषां वेषं च श्रुत्वा दृष्ट्वा च परिहसिष्यतीति भावः। अत्र भाविवृत्तस्य भरतेन प्रत्यक्षीकरणात् भाविकनामालङ्कारः। 'प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविन' इति तल्लक्षणात्। उपजातिश्छन्दः।

उदर्के = परिणामे, निष्फलाम् = व्यर्थाम्।

है। मेरे आने का समाचार पाते ही मेरे सभी भाइयों ने शीघ्रता से पास आकर मुझे घेर सा लिया है, माताओं के आनन्दाश्रुओं से मेरा शरीर आर्द्र हो रहा है। कोई सेवक कहता है राजकुमार जैसे जाने के समय थे अब भी वैसे ही हैं। कोई कहता है नहीं नहीं, अब वे बढ़ गये हैं और पहले की अपेक्षा इनका शरीर भी सुपुष्ट दिखाई पड़ता है, इस प्रकार भृत्यगण मेरे विषय में स्तुतिपरक वचन कह रहे हैं। लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेशभूषा को देखकर तथा भिन्न प्रकार की भाषा सुनकर मेरा परिहास करते जैसे प्रतीत हो रहे हैं।

सारथी—(स्वगत) ओह ! कितने दुःख की बात है कि कुमार महाराज

निवेद्यते । कुतः,

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ? ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

भटः—जयतु कुमारः ।

भरतः—भद्र, किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ?

भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

भरतः—किमिति किमिति ?

अन्वयः—पितुः प्राणपरित्यागम् मातुः ऐश्वर्यलुब्धताम् 'ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च इति त्रीन् दोषान् कः अभिधास्यति ॥ ४ ॥

व्याख्या—पितुः प्राणपरित्यागम् = दशरथमरणम् मातुः = कैकेय्याः भरतजनन्या ऐश्वर्यलुब्धताम्—ऐश्वर्ये = राज्यैश्वर्ये लुब्धताम्—लुब्धाया भावः ताम् = लोभयुक्तताम् ज्येष्ठभ्रातुः = श्रीरामस्य प्रवासम् = वनगमनं चेति त्रीन् दोषान् = हृदयखेदजनकान् दुःसंवादान् कः अभिधास्यति न कोऽपीत्यर्थः । एकोऽपि दुःसंवादः मर्मव्यथाकरत्वाद् खेदजनकः । किं पुनः त्रयः अतः अहं नैवेतान् कथयिष्यामीति सूताभिप्रायः ॥ ४ ॥

की मृत्यु से अवगत न होने के कारण झूठी आशा लिये अयोध्या में प्रवेश करने जा रहे हैं । हम जानते हुए भी इन्हें कुछ बता नहीं पा रहे हैं । बताऊँ भी कैसे ? क्योंकि—

पिता का स्वर्गवास, [माता का राज्यैश्वर्य के प्रति लोभ और बड़े भाई का वनवास ये एक से एक बढ़ कर ऐसे उद्वेगजनक संवाद हैं कि एक का भी कहना कठिन है, फिर इन तीनों को एक साथ ही किस प्रकार कहा जा सकता है ?

(प्रवेश कर)

भट—(प्रवेश कर) राजकुमार की जय हो ।

भरत—भद्र । क्या शत्रुघ्न मेरे स्वागत के लिये आ गये ।

भट—शत्रुघ्न तो आ ही रहे हैं, उपाध्यायों ने आपके लिये कहा है—

भरत—उन लोगों ने मेरे लिये क्या कहा है ?

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।

भरतः—बाढमेवम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छ त्वम्।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः)

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये। भवतु, दृष्टम्। एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये। तदुभयं भविष्यति–दैवतपूजा विश्रमश्च। अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः तस्मात् स्थाप्यतां रथः।

किं मम स्वागतार्थं शत्रुघ्नः समायातीत्याशयेनाह—भद्र शत्रुघ्नो मामभिगतः इति। उपाध्यायाः = वसिष्ठवामदेवादयः। एकनाडिकावशेषः—एका नाडिका = एकः दण्डो अवशेषः यस्य तथा कृत्तिकाविषयः = कृत्तिकाया तदाख्यनक्षत्रस्य विषयः = कालः इदानीम् = एकदण्डावशिष्टो कृत्तिकानक्षत्रभोगकालः। प्रतिपन्नायाम् = प्राप्तायाम् कृत्तिकायाम् गृहप्रवेशो निषिद्ध अतः रोहिणीप्राप्तायां भवान् नगरे प्रवेक्ष्यतीति भावः। वाढमित्यङ्गीकारे। अवश्यं गुरुवचनं प्रतिपालयामीत्यर्थः। न अतिक्रान्तपूर्वम् = पूर्वं कदापि नैवोल्लङ्घितमित्यर्थः। त्वं गत्वा गुरूभ्यो निवेदय यद् भरतो भवदादिष्टमेव करिष्यतीत्यभिप्रायेणाह—गच्छ त्वमिति। विश्रमिष्ये =

भट—उन लोगों ने कहा है कि अभी कृत्तिका का भोगकाल एक दण्ड बाकी है उसके बीत जाने पर रोहिणी में कुमार अयोध्या में प्रवेश करें।

भरत—बहुत अच्छा। मैंने आज तक गुरुजनों की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया है। अतः तुम जाओ।

भट—कुमार की जैसी आज्ञा (जाता है)।

भरत—तो अब किसी जगह विश्राम करूँ! अच्छा दिखाई पड़ा। पेड़ों के बीच में दिखाई पड़ने वाले इस देवमन्दिर में कुछ क्षण तक विश्राम करूँगा। इससे दोनों बातें होंगी! प्रथम देवगणों की पूजा तदनन्तर विश्राम। और ऐसा करने से एक विशिष्ट शिष्टाचार का पालन भी हो जायगा कि नगर में प्रवेश करते समय पहले कुछ देर तक उस नगर के निकट में किसी स्थान पर विश्राम कर लेना चाहिये। तो सूत, रथ को इसी जगह ठहरा लो।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं स्थापयति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

भरतः—(किञ्चिद् गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृताः वलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः भित्तयः अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः । किन्तु खलु पार्वणोऽयं विशेषः ? अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ?

मार्गलङ्घनजन्यखेदमपनेष्ये । दृष्टम् = अवलोकितम् । वृक्षान्तराविष्कृते वृक्षान्तरेण = वृक्षावकाशेन आविष्कृते = स्फुटतया दृश्यमाने । देवकुले=देवतायतने । उभयम्=खेदापनयनम् देवदर्शनं च नगरे हि शीघ्रं न प्रवेष्टव्यम् किं तु तत्समीपे खेदमपनीय प्रहर्षतरेण मनसा नगरप्रवेशो विधेय इत्याह—उपोपविश्येत्यादि । सत्समुदाचारः—सताम् = सज्जनानाम् समुदाचारः = सम्यक् शिष्टाचारः । अत्र शिष्टाचारपरिपालनमिति तृतीयमपि प्रयोजनन् दर्शितम् । साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता—साधु सम्यक् श्रद्धया मुक्तैः अवकीर्णैः पुष्पैः लाजैश्च आविष्कृताः = संपादिताः वलयः = देवपूजोपहाराः । 'दत्तपञ्चाङ्गुला' इत्यारभ्य 'बालुकाः' पर्यन्तम् ग्रन्थो व्याख्यातपूर्वः । एवं पूजोपहारादिना देवमन्दिरमनुमाय तत्रस्थ समाराधनविषये संदिहानो भरतः स्वमनसि विकल्पते । किन्तु इति । पार्वणः—

सारथी—जैसी कुमार की आज्ञा । (रथ खड़ा करता है)

भरत—(रथ से उतर कर) सारथी, एकान्त में घोड़ों को आराम कराओ

सारथी—जैसी आज्ञा । (प्रस्थान करता है) !

भरत—(कुछ दूर जाकर पुनः देखकर) भली प्रकार से बिखेरे गये फूल तथा लाजा से मालूम पड़ता है कि ये देवताओं के पूजा के उपहार हैं । इनकी दीवालों पर पाँचों अङ्गुलियों के द्वारा चन्दन के छाप पाँच-पाँच पड़े हैं । मन्दिर के दरवाजे फूलों एवं मालाओं से सुसज्जित किये गये हैं । मार्ग में कोमल तथा महीन रेत बिछी हुई है । क्या यह सब किसी विशेष पर्व के उपलक्ष में किया गया है अथवा आस्तिक बुद्धि के कारण ऐसा प्रतिदिन होता है । पता नहीं, यह किसी देवता का स्थान है अथवा अन्य कुछ ! परन्तु यहाँ कोई मन्दिर के बाहरी भाग पर ध्वज अथवा शस्त्र का चिह्न तो नहीं दिखाई पड़ता जिससे जाना जाय कि यह किसी

कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति ? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा वहिश्चिह्नं दृश्यते। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्। दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासताऽऽसां प्रतिमानाम्। किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः ! अथवा

पर्वणि भवः पार्वणः = कालविशेषकृतो वल्युपहारादिविधिः। आहोस्विदहन्यहनि विधीयमानमाह्निकम् आस्तिक्यम्। अस्ति परलोकइत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिक तस्य कर्म आस्तिक्यम्। अथवा गुरुदेवताशास्त्रवचनेषु श्रद्धास्तिक्यम्। इदं वल्युपहारादिकं विशेषविशेषदिने विधीयते। आहोस्विन्नैत्यकविधिरयमिति भरतस्य संदेहः। पुनः मन्दिराधिष्ठातृदेवताविषये जिज्ञासते। अत्र कस्य देवस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता वर्त्तते—तदेवाह कस्य त्विति—अत्र जिज्ञासाकारणमुपस्थापयति नेह किञ्चित् ध्वजं प्रहरणं वा अयं भावः मन्दिरे यस्य देवस्य प्रतिष्ठा भवति, तस्य देवस्य ध्वजम् पताका प्रहरणं शस्त्रं च मन्दिरबहिर्भागे अङ्कितव्यं भवति। यथा शङ्करमन्दिरे परिचयार्थम् शङ्करस्य त्रिशूलभूतं प्रहरणात्मकम् चिह्नम् वृषस्य ध्वजत्वं च। यथा वा विष्णुमन्दिरे गरुडाङ्कितं ध्वजम् चक्रं तत्प्रहरणं च व्यवस्थाप्यते। अत्र तु उभयोरभावः। किं तु यदि बहिर्भागे नास्ति किमपि देवतापरिचायकं चिह्नम् तदाभ्यन्तरे प्रविश्य ज्ञास्यामि इति विचार्य आह—भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये इति। पुनः अभ्यन्तरं प्रविश्य पाषाणोपरि शिल्पकलासौष्ठवं दृष्ट्वा विमुह्यन्नाह—अहो इति। अहो इति विस्मये। क्रियामाधुर्यम् = विरचनसूक्ष्मता। भावगतिः—भावानाम् = हृदयस्थसूक्ष्मविचाराणाम् गतिः = भावप्रकाशनरूपा। आकृतीनाम् = आकाराणां भावाभिव्यक्तिराश्चर्यंकरीति भावः। देवतोद्दिष्टानामपि = देवप्रतिमात्वेन संकल्पितानामपि मानुषविश्वासता = मनुष्यप्रतिमाविश्वासयोग्यता। पुनः प्रतिमानां गणनं कृत्वा कथयति—किन्नु खलु इत्यादि। चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः

देवता का मन्दिर है। अच्छा, भीतर प्रवेश करने पर जैसा होगा मालूम पड़ेगा। (भीतर जाकर और देखकर) अहो ! इन पत्थरों पर कितनी महीन एवं सफाई से शिल्पकारी हुई हैं। इन मूर्त्तियों से कितनी स्पष्ट भावाभिव्यक्ति हो रही है कि देखकर आश्चर्य होता है। देवताओं की होती हुई भी ये मूर्त्तियाँ मनुष्य के जैसे होने का विश्वास उत्पन्न करा रही हैं। क्या यहाँ चार देवताओं के समुदाय की

यानि कानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः ।
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥ ५ ॥

चत्वारि देवतानि अवयवा यस्य तादृश, स्तोमः = सङ्घः । पुनः चतुर्दैवतस्तोमशङ्कामपि प्रतिक्षिप्याह—अथवा यानि कानीति तानि दैवतानि भवन्तु अथवा अन्यथा अस्ति । मे मम मनसि प्रहर्षः = हर्षातिरेकश्च जायते आसां दर्शनादिति शेषः ।

अन्वयः—दैवतमित्येव शिरः नमयितुं कामम् युक्तम् । तु अमन्त्रार्चितदैवतः प्रणामः वार्षलः स्यात् ॥ ५ ॥

व्याख्या—दैवतमित्येव—अत्र कोऽपि देवता इति बुद्धचैव शिरः नमयितुम्= नम्रीकर्त्तुं कामम् युक्तम् । तु = किन्तु अमन्त्रार्चितम् दैवतं न मन्त्रार्चितम् न पूजितं दैवतं यत्र तथाभूतः प्रणामः वार्षलः = वृषलस्यायं वार्षलः = शूद्रवत् स्यात् । शूद्रो हि मन्त्रोच्चारणं विना देवतापूजनं करोति तथा च देवताज्ञाने सति कस्य देवस्य उच्चारयितव्यः निश्चयाभावात् अमन्त्रात्मकः प्रणामः कर्त्तव्यो भवेत् स च शूद्रवत् स्यात् तस्मात् प्रणामः शूद्रवत् करिष्यते । तत्र न काचिद्धानिरित्यर्थः । देवकुलिकः = देवकुले तिष्ठतीति देवकुलिकः = देवार्चने नियुक्तः । नैत्यकावसाने—नित्ये भवः नैत्यकस्तस्य = नित्यकर्मणः अवसाने = अन्ते । प्राणिधर्मम् =जीवनार्थम् भोजनग्रहणम् । अल्पान्तराकृतिः—अल्पम् = ईषत् अन्तरः = भेदो यस्या सा अल्पान्तरा, अल्पान्तरा आकृतिर्यस्य सः अल्पान्तराकृतिः = अत्यन्तसदृशाकारवान् ! नमोऽस्तु इति शब्देन भरतः प्रतिमामुद्दिश्य प्रणमति । ब्राह्मणभ्रमेण प्रणमन्तं भरतं देवकुलिकः वारयति—न खलु इति । भरतः निषेधन्तं देवकुलिकम् दृष्ट्वा वारणे कारणं जिज्ञासते—मा तावद् इत्यादि ।

प्रतिष्ठापना हुई है ? जिससे चतुरायतन को प्रतीति हो रही है । अथवा जो हो मुझे तो इन्हें देखकर अपार आनन्द हो रहा है ।

ये कोई देवता है ऐसा समझकर इन्हें प्रणाम करना उचित जान पड़ता है किन्तु इस प्रकार का प्रणाम प्रतिमा में देवता के निश्चय के अभाव से अमन्त्रकार्चा रहित शूद्र के समान होगा ।

देवकुलिकः—भोः ! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि कोनु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये । (प्रविशति)

भरतः—नमोऽस्तु !

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः ।

भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ ६ ॥

अन्वयः—अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यम् (अथवा) विशिष्टः प्रतिपाल्यते । अयं प्रतिषेधः किं कृतः । अथवा नियमप्रभविष्णुता (कारणम्) ॥ ६ ॥

व्याख्या—अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यम् दोषः अस्तीति शेषः । येन त्वम् मां निषेधसीत्यर्थः । अथवा विशिष्टः = मदपेक्षया वरिष्ठः प्रतिपाल्यते = प्रतीक्ष्यते । अयम् मम प्रतिषेधः = वारणरूपः प्रतिषेधः किं कृतः=केन कारणेनेति यावत् । अथवा नियमप्रभविष्णुता—नियमे प्रणामरूपे प्रभविष्णुता = स्वातन्त्र्यं तवेति शेषः । अयं प्रणमन्तुं प्रभवति अयं नेति विषये तव स्वतन्त्रः सामर्थ्यं किमति भावः । एतैः= भवदुक्तैः कारणैः हेतुभिः । देवताशङ्कया प्रतिमासु देवतात्वभ्रमेण । ब्राह्मण

(पुजारी का प्रवेश)

पुजारी—अरे यह मूर्त्तियों के समान मिलते जुलते रूप वाला कौन पुरुष है जो नित्यक्रिया कर लेने के पश्चात् मेरे भोजन के समय ही इस प्रतिमागृह में विना पूछे घुस आया है । अच्छा । स्वयम् प्रतिमागृह में जाकर इसका पता लगाता हूँ (भीतर जाता है) ।

भरत—(मूर्त्तियों को प्रणाम करते हैं) ।

पुजारी—नहीं नहीं, इन्हें प्रणाम करो ।

भरत—क्यों मुझे प्रणाम करने से रोक रहे हो ? क्या हम मे कोई दोष है अथवा हमारी अपेक्षा किन्हीं विशिष्ट व्यक्ति की प्रणाम के लिये प्रतीक्षा करते हो ।

देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु देवशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्र भवन्तः ।

भरतः—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्र भवन्तः । अथ के नामात्र भवन्तः ?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः ।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति । एते तेऽयोध्याभर्तारः ।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।

जनस्य कदाचिद् भवान् ब्राह्मणो भवेदित्याशङ्कया । ब्राह्मणमात्रस्य । परिहरामि= वारयामि । अयोध्याभर्त्तार := अयोध्याराजानः ।

अन्वयः—एते ते (ये) असुरपुरवधे दैवतानाम् अभिसरीम् गच्छन्ति । एते ते स्वसुकृतैः सपुरजनपदाः शक्रलोके यान्ति । एते ते (ये) स्वजनबलजितां कृत्स्नां वसुमतीं प्राप्नुवन्तः । एते ये छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अन्ववसिताः ॥ ७ ॥

व्याख्या—एते ते (ये) असुरपुरवधे—असुरपुराणाम् = देवारिनगराणाम् वधे = विनाशे दैवतानाम् = देवसमूहानाम् अभिसरीम्—अभितः = परितः चरतीति साहाय्यार्थमभिगमनं कृत्वा गच्छन्तीति भावः । एते ते ये स्वसुकृतैः =

अथवा इस प्रतिमागृह के अधिकारी होने के नाते तुम अपने आप नियम बनाने में स्वतन्त्र हो जिसे चाहे जाने दो जिसे चाहे न जाने दो ।

पुजारी—नहीं, मेरे रोकने में ये कारण नहीं हैं जिससे आपको रोक रहा हूँ । किन्तु इसलिये रोक रहा हूँ कि कहीं ब्राह्मण होकर इन राजाओं की मूर्त्ति के भ्रम से प्रणानन कर लो । क्योंकि में क्षत्रियों की प्रतिमायें हैं, देवताओं की नहीं ।

भरत—क्या कहा ? ये क्षत्रिय महातुभाव हैं? तो इन महानुभागों का क्या नाम है ?

पुजारी—ये इक्ष्वाकुवंशीय लोग है ।

भरत—(प्रसन्नतापूर्वक) क्या यं वही इक्ष्वाकुवंशीय जो अयोध्या के नरेश होते आये हैं ।

वे यही लोग हैं जो असुरों की पुरियों का विनाश करवे के लिये देवताओं के साथ चारों ओर स्थित आगे रहकर उनकी सहायता करने के लिये इस मृत्युलोक

एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते, मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥ ७ ॥

भोः! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम्! अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः।

स्वपुण्यैः सपुरजनपदाः—पुरैः जनपदैश्च सहिताः सपुरजनपदाः = पुरजनपदजनैः सहिताः शक्रलोके = स्वर्गं गच्छन्ति। एते ते ये स्वभुजबलजिताम् = स्वभुजयोः बलेन = पराक्रमेण, जिताम् = स्वायत्तीकृताम् कृत्स्नाम् = संपूर्णाम् वसुमतीम् = रत्नगर्भाम् मेदिनीम्, प्राप्नुवन्तः = स्वायत्तीकृतवन्तः। एते ते ये छन्दसः स्वाभिलाषं = स्वाभिप्रायं वा मृगयता = अन्विष्यता मृत्युना = कालेन चिरम् = चिरकालपर्यन्तम् अनवसिताः = असमापिता अभक्षिता इत्यर्थः यतस्ते स्वच्छन्दमृत्यव आसन् अतएव मृत्युः प्रतीक्षते यत्कदा इमे स्वकीयम् मरणमभिलषन्तीत्यर्थः। सुवदना वृत्तम्। 'ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरम नवयुता म्लौनः सुवदना' इति तल्लक्षणणम् ॥ ७ ॥

यदृच्छया = अनायासेन निःप्रयत्नेनेत्यर्थः। महत् = उत्कृष्टम्। फलं=लाभः। आसादितम् = संप्राप्तम्। प्रथमां प्रतिमां पृच्छति—कस्तावदिति। देवकुलिकः क्रमेण निर्दिशति—अयं खल्विति। सन्निहितसर्वरत्नस्य—सन्निहितानि सत्सु निहितानि = प्रदत्तानि = सर्वप्रकाराणि रत्नानि यस्मिस्तस्य तथाभूतस्य विश्वजितः =

से देवलोक जाते थे। ये वही लोग हैं जो अपने पुण्य बल से समस्त पुरवासियों एवं जनपदवासियों के साथ इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में जाते थे। ये वही लोग हैं जो अपनी भुजाओं के बल से जीती गई संपूर्ण रत्नगर्भा पृथ्वी पर शासन करते थे, किंवहुना ये वही लोग है जो मृत्यु के द्वारा चाहे जाने पर भी अपनी इच्छानुसार मृत्यु के कारण देर तक कालकवलित नहीं हुए। अहा! अकस्मात् मुझे इस फल का महान् लाभ मिला। अच्छा बताइये ये कौन से महानुभाव हैं ?

पुजारी—ये हैं महाराज दिलीप। जो सज्जनों में पृथ्वी के सारे रत्नों को दान में दिये जाने वाले विश्वजित् यज्ञ के प्रवर्त्तक एवं धर्मप्रदीप के प्रकाशक हैं।

भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः-अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः।

भरतः—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्।

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो

तदाख्यस्य यज्ञस्य प्रवर्त्तयिता=आहर्त्ता। प्रज्वलितधर्मप्रदीपः—प्रज्वलितः=प्रकाशीकृतः धर्मप्रदीपः=धर्मरूपः प्रदीपो येन सः परमधार्मिक इत्यर्थः। धर्मपरायणाय=धर्मानुष्ठानकर्त्रे। भरतःद्वितीयां प्रतिमां प्रति पृच्छति—अभिधीयतामिति। देवकुलिकः निर्दिशति—अयंः खल्विति। संवेशनोत्थापनयोः-संवेशनम् = शयनम् उत्थापनम् = जागरणं मागधैः सूतैश्च कृतप्रबोधः तयोः। अनेक ब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवः—अनेकैः = बहुसंख्याकैः ब्राह्मणजनसहस्रैः प्रयुक्तः पुण्याहशब्दरवः 'पुण्याहम्' इति मन्त्रपाठः यस्य स तथाभूतः। एतामपि रक्षाम् पुण्याहशब्दात्मिकां रक्षाम् अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः। ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय—ब्राह्मणजनेषु = ब्राह्मणसमूहेषु आवेदितम् = प्रदत्तम् राज्यफलम् = राज्यलाभम् = येन सः तस्मै। पुनः तृतीयां प्रतिमां प्रति पृच्छति भरतः—

भरत—ऐसे धर्मपरायण को मेरा नमस्कार। (ऐसा कहकर प्रणाम करता है) अच्छा आगे कहिये ये कौन से महानुभाव हैं ?

पुजारी—ये हैं महाराज रघु जिनके शयन एवं प्रबोधकाल में अनेक ब्राह्मणों के द्वारा सहस्रों बार किये जानेवाले पुण्याहवाचन के शब्द उनके कानों कों पूर्ण किया करते थे।

भरत-अहो यह मृत्यु कितनी बलवान् है जो पुण्याहवाचन के शब्दों से रक्षित इन महानुभाव का भी अतिक्रमण कर गई। ब्राह्मणों की सेवा में अपनी समग्र संपत्ति अर्पित करनेवाले इन महाराज रघु को मेरा प्रणाम। ये आगे कौन है ?

पुजारी—अपनी प्रियतमा महारानी के वियोग से विरक्त हो जाने पर अपने राज्यभार को त्याग देने वाले, एवं नित्य प्रति किये जाने वाले यज्ञों के अन्त में अवभृथ स्नान से समस्त पापों को प्रक्षालित करनेवाले ये हैं महाराज अज।

नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः ।

भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय । (दशरथस्य प्रतिमामवलोकयन् पर्याकुलो भूत्वा) भोः ! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

देवकुलिकः—अयं दिलोपः ।

भरतः—पितृपितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्र भवान् रघुः ।

भरतः—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

अभिधीयतामित्यादि । देवकुलिक उत्तरति—अयमिति । प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारः—प्रियावियोगेन यः निर्वेदः वैराग्यम् तेन कारणेन परित्यक्तः = समुज्झितःराज्यभारः = प्रजापालनरूपः येन सः । नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजाः—नित्यं यदवभृथस्नानम् = यज्ञान्तावगाहनं तेन प्रशान्तं = विनष्टम् रजः = पापम् यस्य तथाभूतः । श्लाघनीयपश्चात्तापाय—श्लाघनीयः = प्रशंसनीयः पश्चात्ताप := प्रियात्यासक्तिरूपः अनुतापः यस्य तस्मै । चतुर्थी दशरथस्य प्रतिमां विलोक्य पर्याकुलो भूत्वा पृच्छति—भो इत्यादि । बहुमानव्याक्षिप्तेन = बहुमानः—श्रेष्ठपुरुषेषु अत्यधिकदर्शितादरः तेन व्याक्षिप्तम् = अन्यत्र नीतम् तादृशेन मनसा । सुव्यक्तम्= सुस्पष्टम् नावधारितम् = न निश्चितम् । कस्य कस्य प्रतिमेयमिति मया सम्यङ् न ज्ञायते अतः अभिधीयताम् = पुनरुच्यताम् । तातस्य पिता मत्पितुः दशरथस्य पिता इत्यर्थः । भरतः साशङ्कमानो देवकुलिकं पृच्छति—भवन्तमित्यादि । घर-

---

भरत—इस प्रकार के श्लाघनीय पश्चात्ताप करने वाले आपको नमस्कार । (दशरथ की प्रतिमा को देखते हुए घबड़ाकर) अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखने में लगे रहने पर भी बीच में कुछ ऐसी बात आ जाने के कारण मेरा मन उधर चला गया था इसलिये इन्हें ठीक से समझ न सका । अच्छा, पुनः कहिये कि ये कौन हैं ?

पुजारी—यह हैं दिलीप ।

भरत—महाराज के प्रपितामह । अच्छा, आगे चलिये ।

पुजारी—ये हैं रघु ।

भरत—महाराज के पितामह । इसके आगे ।

देवकुलिकः—अत्र भवानजः।

भरतः—पिता तातस्य। किमिति किमिति।

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः।

भरतः—भवन्तं किञ्चित्पृच्छामि। धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते!

देवकुलिकः—न खलु अतिक्रान्तानामेव।

भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

देवकुलिकः—तिष्ठ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे ॥ ८॥

माणानामपि = प्राणान् धरताम् जीवतामित्यर्थः। किं जीवतामपि मूर्त्तयोऽत्र प्रतिमागृहे स्थाप्यन्ते इति भरतस्य प्रश्नाशय इत्यर्थः। देवकुलिकः प्रतिषेधन्नाह—न खल्विति। अतिक्रान्तानाम् = इमं लोकं परित्यज्यान्यत्र परलोके गतानामित्यर्थः। मृतानामेवात्र मूर्त्तयः स्थापिताः सन्तीत्याशयः। भरतः देवकुलिकवचनमनुनिशम्य पितृमरणमाशङ्कमानः ततोऽपक्रान्तुमिच्छन् शोकाकुलतया ब्रवीति—तेनेत्यादि। आपृच्छे=गमनार्थमनुमतिं प्रार्थये। देवकुलिको भरतमपरिच्छिन्दन्नब्रवीति—तिष्ठ इति।

अन्वयः—येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः त्वं दशरथस्य इमां प्रतिमां किं न पृच्छसे? ॥ ८॥

व्याख्या—येनेति—येन = राज्ञा दशरथेन स्त्रीशुल्कार्थे = पूर्वविवाहावसरे स्त्रियै देयतया प्रतिज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कम्। तदर्थे प्राणाः = जीवनम् राज्यम् च विसर्जिताः = परित्यक्ताः तस्य दशरथस्य इमां पुरोवर्त्तिनीं प्रतिमाः प्रति त्वं

पुजारी—ये हैं अज।

भरत—महाराज के पिता। क्या कहा, क्या कहा।

पुजारी—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं और ये अज हैं।

भरत—अब आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ। क्या जीवितों की भी प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं।

पुजारी—नहीं, जो लोग मर चुके हैं केवल उन्हीं की।

भरत—तो अब आप मुझे जाने की अनुमति दीजिये।

पुजारी—ठहरिये।

भरतः—हा तात ! (मूर्च्छितः । पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
श्रृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ ९ ॥

किंनु = कस्मात् कारणात् न पृच्छसे = न ज्ञातुमिच्छसि । अत्र प्राणाः विसर्जिता राज्यं च विसर्जितम् इति लिङ्कपरिणामेन अर्थः सुकरः । पृच्छसे इत्यत्रात्मनेपदं चिन्त्यम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

पितृमरणनिश्चयेन भरतः शोकाविष्टः रुदन् हा तात ! इत्युक्त्वा मूर्च्छित इत्याह—प्रत्यागत्य = संज्ञां लब्ध्वा ।

अन्वयः—हे हृदय ! सकामं भव । यत्कृते त्वं शङ्कसे तत् पितृनिधनं श्रृणु । तावद् धैर्यं च गच्छ यदि अयम् नीचः शुल्कशब्दः माम् स्पृशति अथ च सत्यं भवति तदा तत्र देहः विशोध्यः भवेत् ।

व्याख्या—हृदय इति—हे हृदय = हे चित्त सकामं = सफलमनोरथं भव । त्वं यत्कृते = यस्मिन् विषये शङ्कसे = संदिहानः आसीः तत् स्वाशङ्कितं पितृमरणरूपं विषयं श्रृणु निःशङ्कमाकर्णय । त्वया मध्ये मार्गं जायमानैरपशकुनैरन्यैर्विकृतलक्षणैश्च यत्पितृमरणं संभावितम् तदेवाधुना संश्रृण्वन्नात्मनः मनोऽभिलाषं पूरय इति स्पष्टार्थः । तावद् धैर्यं = धीरतां च गच्छ = अवलम्बस्व । तु = किन्तु अयं नीचः = अधमः शुल्कशब्दः यदि मां स्पृशति = मामुद्दिश्य कथितो भवेत् यदि स्त्रीशुल्कतया मद्राज्याभिषेक एवैतस्य कथनाभिप्रायः अथ चैतत् सत्यं भवेत्तदा तत्र तादृशायामवस्थायां देहः = शरीरम् विशोध्यः = प्रायश्चित्तादिना संशोध्य इत्यर्थः । मालिनी वृत्तम् । 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' । इति तल्लक्षणम् ।

जिन्होंने स्त्री-शुल्क के लिये अपने राज्य एवं प्राण दोनों दे दिये उन महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं जानना चाहते ।

भरत—हाय पिताजी ! (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो गिर जाते हैं पुनः होश के आकर)

हृदय ! अब तुम्हारी वह अभिलाषा पूर्ण हुई जिसकी तुम आशङ्का करते थे, इस पितृमरण के वृत्तान्त को सुनो और धीरज धरो । किन्तु हाय ! यदि इस

आर्य !

देवकुलिकः—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम्। कच्चित् कैकेयो-पुत्रो भरतो भवान् ननु।

भरतः—अथ किम्, अथ किम्। दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

भरतः—तिष्ठ। शेषमभिधीयताम्।

देवकुलिकः—का गतिः। श्रूयताम्। उपरतस्तत्रभवान् दशरथः। सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने।

इक्ष्वाकुकुलालापः = इक्ष्वाकुकुलस्य = इक्ष्वाकुवंशस्य आलापः = भाषणशैली। इक्षाकुवंशीया एव सामान्येऽपि जने आर्य इत्येवं रूपम् सबहुमानं जल्पन्ति। अतः आर्यपदेन भाषणशैली इक्ष्वाकुवंशीयानां चिह्नमिति मनसि निधाय देवकुलिकः पृच्छति—क्वचिदिति। भरतेन इक्ष्वाकुकुलत्वमात्रे स्वस्वीकृतिः प्रदत्ता न सर्वांशे तदाह—न कैकेय्या इति। आपृच्छे = गन्तुमनुज्ञां याचे। भरतः शेषं वृत्तं जिज्ञासमान आह—शेष इति। परिहर्त्तुकामोऽपि देवकुलिको—विवशः ब्रवीति—का गतिरिति। गतिः = उपायः। अधुना वृत्तगोपने कोप्युपायो न दृश्यते इत्याह श्रूयताम्। उपरतः मृतः।

नीच शुल्क शब्द का उद्देश्य मुझसे है और यदि यह सत्य है, तब तो इस देह की शुद्धि करनी पड़ेगी। आर्य !

पुजारी—आर्य इस शब्द का प्रयोग तो वार्त्तालाप के प्रसङ्ग में इक्ष्वाकुवंशियों की परम्परा है तो आप कैकेयी के पुत्र भरत हैं क्या ?

भरत—और क्या और क्या ! मैं वही दशरथपुत्र भरत हूँ किंतु कैकेयी का पुत्र भरत नहीं।

पुजारी—तो अब जाने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूँ।

भरत—ठहरो। अभी शेष भी कहो।

पुजारी—अब तो बचने का कोई उपाय नहीं रहा। अच्छा सुनिये। पूज्य महाराज दशरथ तो मर गये। किन्तु सीता और लक्ष्मण के साथ राम क्यों वन चले गये इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं।

भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः। (द्विगुणं मोहमुपगतः)

देवकुलिकः—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ १० ॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम्।

अन्वयः—पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्याम् पिपासार्त्तः क्षीणतोयाम् नदीम् इव अनुधावामि ॥ १० ॥

व्याख्या—परलोकगतेन पित्रा दशरथेन, वनवासगतेन भ्रात्रा रामेण च वर्जिताम् = रहिताम् अतएव अटवीभूताम्=अरण्यसदृशीम् अयोध्याम् = = स्वजन्मस्थलीम् पिपासार्त्तः—पिपासया = तृषया आर्त्तः = आतुरः =पीडितः अहम् क्षीणतोयाम्—क्षीणम्=शुष्कम्, तोयं = जलम् यस्यास्तथाभूतां नदीम्= सरितमिव अनुधावामि = शीघ्रतया गन्तुं प्रवृत्तोऽस्मि। अयं भावः—यथा कोऽपि तृषितः निर्जलां नदीमनुगच्छन् विफलप्रयासो भवति तथाहमपि पितृभ्रातृरहितां सर्वथारण्यसदृशीम् स्नेहशून्याम् अयोध्याम् प्रविशामि। तत्राभिलाषपूर्त्तेरसंभवादित्यर्थः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

स्थैर्यम् स्थिरतां शान्तिमित्यर्थः। अनवशेषम् साकल्येनेत्यर्थः।

भरत—क्या कहते हो ! आर्य भी बन चले गये (द्विगुणित मूर्च्छित हो जाते हैं)।

पुजारी—कुमार ! धीरज धरिये, धीरज धरिये।

भरत—(होश में आकर)। पिता और भाई से शून्य अरण्य के समान उस अयोध्या में मैं व्यर्थ का दौड़ता हुआ जा रहा हूँ। जिस प्रकार कोई प्यासा मरुस्थल में सूखी नदी की ओर दौड़ता हुआ जाता है।

आर्य ! इस विषय में विस्तृत विवरण सुनने से मेरा मन स्थिर हो सकेगा। अतः आप सारी बातें पूर्ण रूप से मुझसे कहिये।

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल ।

भरतः—तिष्ठ ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः ।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥११॥

अन्वयः—तं शुल्कदोषं स्मृत्वा मम सुतो राजा भवतु इति (तया) अभिहितम् । तद् धैर्येण आश्वसन्त्या तया हे सुत वनं व्रज इति आर्यः अभिहितः (भवेत्) । तं बद्धचीरं दृष्ट्वा राजा असदृशम् निधनम् गतः ननु । प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक्प्रलापाः मयि पात्यन्ते ननु ॥ ११ ॥

व्याख्या—तं स्मृत्वेति—तं = पूर्वोक्तम् शुल्कदोषम्—शुल्कस्य दोषम् = अनर्थकारकम् वैवाहिकपणम् स्मृत्वा = मनसि निधाय 'मम सुतो भरतः राजा भवतु' इति कैकेय्या राज्ञेऽभिहितम् उक्तम् । तद्धैर्येण स्वोक्तार्थस्य राज्ञा स्वीकृतत्वेन पुत्रकर्तृकराज्यत्वप्राप्तेरित्यर्थः । आश्वसन्त्या 'ससन्तोषम्' विश्वसन्त्या तया हे सुत वनं व्रज' इति आर्यः अपि = रामः अपि अभिहितः = आज्ञप्तः । तम् आर्यं = रामम् बद्धचीरम्—बद्धानि वने वासार्थम् परिहितानि चीराणि = वल्कलवसनानि येन तम् । दृष्ट्वा = विलोक्य राजा = पिता दशरथः असदृशम् = अयोग्यम् स्वरूपविरुद्धम् निधनम् = मृत्युं गतः । ननु = निश्चये । पुत्रशोकात्स्वप्राणान् जहौ इत्यर्थः । अधुना प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः पुरोगैः = पुरोवासिभिः शेषाः = अवशिष्टाः धिक्प्रलापाः = धिक्कारयुक्तानि वचनानि सदृशा उचिताः मयि = भरते पात्यन्ते = निधीयन्ते निक्षिप्यन्ते वा ननु इति संभवनार्थे । सुवदनावृत्तम् । लक्षणं प्रागुक्तम् ॥ ११ ॥

पुजारी—अच्छा सुनिये । जब पूज्य राम का तत्रभवान् महाराज अभिषेक कर रहे थे उस समय आपकी माता ने कहा—

भरत—अच्छा ठहरो । विवाहकालीन शुल्क (शर्त्त) जो सर्वथा दोषपूर्ण थी उसका स्मरण कर इस कैकेयी ने कहा होगा कि मेरा पुत्र राजा होवे । जब

(मोहमुपगतः)

(नेपथ्ये)

उस्सरह अय्या ! उस्सरह ! [उत्सरतार्याः उत्सरत ।]

देवकुलिकः—(विलोक्य) अये,

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

दशरथप्रतिमां साक्षात्कर्त्तुं तत्रागच्छन्तीनां कौशल्यादीनाम् अवस्थानुरूपं समुदाचारपरिपालनार्थमाह परिजनः उत्सरतेत्यादि ।

अन्वयः—पुत्रे मोहम् उपागते देव्यः काले आगताः खलु । मातृणां हस्तस्पर्शः अजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

व्याख्या—काले इति । पुत्रे = भरते, मोहम् = मूर्च्छितावस्थाम्, उपागते = सम्प्राप्ते, देव्यः = कौशल्यादयः मातरः, काले = उचितावसरे, आगताः = संप्राप्ताः, खलु = निश्चयार्थे, मातृणाम् = कौशल्यादिजननीनाम्, हस्तस्पर्शः = पाणिस्पर्शः, अजलस्य = जलरहितस्य, जलार्थिनः कृते = जलाञ्जलिः जलदानेनोज्जीवनम् इव भवति । यथा कश्चन तृषार्त्तः जलप्राप्त्या पुनः प्राणिति तथा मोह मुपगतो भरतः मातृणां हस्तस्पर्शेन स्वां प्रकृतिमुपयास्यतीत्यर्थः । पूर्ववाक्यार्थस्योत्तरवाक्यार्थेन समर्थनात् काव्यलिङ्गनामालङ्कारः अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

महाराज ने अपने धैर्य से इस प्रकार का वरदान देकर उसे आश्वस्त किया होगा तो उसने 'हे सुत तुम वन जाओ' ऐसा राम से कहा होगा । तदनन्तर वनवासोचित चीर परिधान से युक्त देखकर राजा भी उसी असमय में मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे । फिर तो सारी प्रजायें मुझे ही सभी अनर्थों का मूल मानकर धिक्कार रही होगी जो उनके लिए उचित भी है ।

(अचेत हो जाते हैं)

(नेपथ्य में हटो, सज्जनो हट जाओ ।)

पुजारी—(देखकर) अरे !

अपने पुत्र भरत के अचेत होते ही ये देवियाँ ठीक समय पर यहाँ आ पहुँचीं । क्योंकि पुत्र के लिये माताओं के हाथ का स्पर्श प्यासे को जलाञ्जलि के समान उज्जीवनकारक होता है ।

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः ।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥ १३ ॥

[प्रविश्यावलोक्य] भवत्यः न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः ।

अन्वयः—यस्य स समुच्छ्रयः हर्म्यदुर्लभः तदिदं नः प्रतिमानृपस्य गृहम् । यदिदम् अप्रतिहारिकागतैः अयन्त्रितैः पथिकैः विनैव प्रणामं उपास्यते ॥ १३ ॥

व्याख्या—इदमिति । यस्य स समुच्छ्रयः = औन्नत्यम् हर्म्यदुर्लभः = प्रासादापेक्षयापि दुरापः तदिदं प्रसिद्धम्, नः = अस्माकम् प्रतिमानृपस्य = प्रतिमा रूपेणावस्थितस्य राज्ञः गृहम् अस्तीति शेषः । यदिदं प्रतिमागृहम् अप्रतिहारिकागतैः = प्रतिहारिका = द्वारे नियुक्ता स्त्री तन्नैरपेक्ष्येण प्रविष्टैः एवम् अयन्त्रितैः = कपाटादिनियन्त्रणरहितःकारणादवारितैः पथिकैः = अध्वगैः विना प्रणामम् = अन्तरेण नमस्कारम्, मार्गश्रमापनोदनाय = निशातिवाहनाय वा उपास्यते = अध्युष्यते । साक्षान्नृपस्य भवनं तु प्रतीहारद्वारागतैः पदे पदे नियन्त्रितैः प्रणामादिसमुचितशिष्टाचारपूर्वकमेव प्रवेश्यते = सेव्यते च । इदं प्रतिमागृहं तु निरवरोधं पथिकैः प्रविश्यते प्रमाणादिकमन्तरेणैव अध्युष्यते चेति प्रतिमागृहस्य न्यूनतावर्णनात् व्यतिरेकालङ्कारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ १३ ॥

(देवियों एवं सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—तत्र भवती देवियों, इधर इधर।

जिसकी ऊँचाई राजप्रासादों से भी अधिक है यह वही महाराज दशरथ का प्रतिमागृह है । जिसमें प्रतीहारी के बिना ही पथिक लोग बे-रोकटोक बिना प्रणाम किये ही निवास करते हैं ।

(भीतर जाकर तथा देखकर)

पुजारी—देवियो! इस मन्दिर के भीतर मत आइये, मत आइये । यहाँ पर तरुणावस्था से संपन्न कोई राजा जैसा पुरुष मूर्च्छित होकर पड़ा हुआ है—

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तः)

देव्यः—(सहसोपगम्य) हा ज़ाद ! भरद ! [हा जात ! भरत !]

भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

देवकुलिकेन प्रतिमागृहे प्रविशन्त्यो देव्यः निषिध्यन्ते । न खलु न खलु इति । संप्रति निषेधकारणमुच्यते—अयमिति—

अन्वयः—हि अयम् कोऽपि वयस्थः पार्थिव इव भूमौ पतितः । परशङ्काम् कर्त्तुम् अलम् । अयम् भरतः गृह्यताम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—अयमिति । हि=यतः अयम् पुरो दृश्यमानः कोऽपि वयस्थः = तरुणः पार्थिवः दशरथ इव भूमौ पतितः अस्ति । परस्य=अनात्मीयस्य शङ्काम् = वितर्कं कर्त्तुमलं मा कृथाः । परोऽयमिति मा शङ्किष्ठाः अयं भरतः, अतः गृह्यताम् वीजनादिकोपचारेण अङ्के आरोप्य प्रकृतावानेतुं प्रयत्यतामित्यर्थः । सुमन्त्रो आर्य इति वचनेन दशरथभ्रान्त्या ब्रवीति जयत्विति । अहो = इत्याश्चर्ये स्वरसादृश्यम् = आश्चर्यकारिणी स्वरसमानता । येन भरते = ब्रुवाणेऽपि प्रतिमातो महाराजो वदतीति मादृशोऽपि भ्राम्यति । अवगुण्ठनम् = मुखावरणम् 'घूंघट' इति भाषा अपनयन्ति = अपसारयन्ति । अत्र सौभाग्यचिह्नरहितं स्वशिरः दर्शयित्वाऽक्षरोच्चारणं विनैव क्लेशावहाम् स्वकीयामवस्थां प्रकटयन्त्यो देव्यः एषा नोऽवस्था इति सूचयन्ति । निगृह्यताम्= आत्मनि नियम्यताम् । उत्कण्ठा= आवेगः । सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः सर्वो यः समुदाचारः = शिष्टता संपादितः— व्यवहारस्तस्य सन्निकर्षः = उपस्थितिः । सूचयति = प्रकटयति कच्चित् इति प्रश्ने । ननु इति तर्के ।

पुजारी—किन्तु यह कोई दूसरा है ऐसी शङ्का आप लोग मत कीजिये । इन्हें उठाइये ओर होश-हवास से दुरुस्त कीजिये । ये हैं भरत ।

(पुजारी का प्रस्थान)

देवियाँ—(शीघ्रतापूर्वक पास में जाकर) हाय ! बेटा ! भरत !

भरत—(कुछ होश में आकर) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा (इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अहो स्वरसादृश्यम् । मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्यावहरतीति ।

भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

देव्यः—जाद ! एसा णो अवस्था । [जात ! एषा नोऽवस्था] (अवगुण्ठनमपनयन्ति)

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति । कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

सुमन्त्रः—कुमार, अथ किम् । सुमन्त्रोऽस्मि ।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥

अन्वयः—चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः (लोकैः) कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने शून्यस्य रथस्य सूतः जीवामि ॥ १५ ॥

व्याख्या—अन्वास्येति । चिरजीवदोषैः = बहुकालपर्यन्तं यज्जीवनम् तस्य दोषैः राजनि राजपुत्रे राजमातरि राज्ये चोपनिपतितैर्दुःखैः अन्वास्यमानः=अनुगम्यमानः कृतघ्नभावेन कृतघ्नतया च विडम्ब्यमानः = उपहस्यमानः लोकैः कृतघ्नोऽयम् स्वस्वामिनि मृतेऽद्यापि जीवतीत्येवं रूपेणेति शेषः अहं = सुमन्त्रः हि निश्चयेन

सुमन्त्र—जय हो (इसप्रकार आधा ही वाक्य कहने पर दुःख से) आश्चर्य ! आश्चर्य ! कितना स्वर सादृश्य है । मैंने समझा कि मूत्ति में से महाराज ही बोल रहे है ।

भरत—इस समय माताओं की क्या दशा है ?

देवियाँ—(घूंघट हटाती हैं) यही है हमारी अवस्था ।

सुमन्त्र—आप लोग अपने शोक का आवेग रोकिये ।

भरत—(सुमन्त्र को देखकर) समस्त शिष्टोचित आचरणों एवं रानियों के सन्निधान में रहने से मालूम पड़ता है कि आप ही सुमन्त्र हैं ।

सुमन्त्र—कुमार ! और क्या, मैं ही सुमन्त्र हूँ ।

मै अपने लम्बे जीवन में होने वाले नाना प्रकार के कष्टों से ग्रस्त होने के

भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातृणाम् ।

सुमन्त्रः—बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौशल्या ।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धाऽहमभिवादये ।

कौशल्या—जाद ! णिस्सन्दावो होहि । [जात ! निःसन्तापो भव]

भरतः—(आत्मगतम्) आकृष्ट इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।

तस्मिन् प्रसिद्धे नृपतौ = राज्ञि दशरथे विपन्ने = मृते शून्यस्य = तेन रहितस्य रथस्य सूतः = चालकः सन् जीवामि = प्राणान् धारयामि । अनेन महान् शोको व्यज्यते । उपजातिश्छन्दः ॥ १५ ॥

अभिवादनक्रमम्—अभिवादनं क्रमम् = ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठादिरूपम् । उपदेष्टुम् = त्वया निर्देष्टुम् । बाढम् = अङ्गीकारार्थकमव्ययपदम् । अनपराद्धः = निर्दोषः रामादिवनवासविषये मदीया सम्मतिर्नास्तीत्यहम् निर्दोषः इति भावः । निःसंतापः = शोकरहितः एतेन कौशल्यायाः औदार्यं प्रदर्शितम् भरतस्तु निःसंतापो भवेति कौशल्यावचनस्यार्थमन्यथा मन्यमानः स्वगतमाह—आकृष्ट इति ।

कारण कुण्ठित हो रहा हूँ । 'यह कृतघ्न है' ऐसा कहकर लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं । हाय मैं राजा के मर जाने पर भी उनसे रहित इस शून्य रथ का संचालक होकर अभी भी जी रहा हुँ ।

भरत—हा पितः । अच्छा सुमन्त्र ! मैं अपनी पूज्य माताओं को प्रणाम करने के लिये उनकी ज्येष्ठता मध्यमता एवं कनिष्ठता का क्रम जानना चाहता हूँ ।

सुमन्त्र—अच्छा ठीक है । यह हैं तत्र भवती राममाता कौशल्या ।

भरत—माँ, मैं निर्दोष हूँ । आपका अभिवादन करता हूँ ।

कौशल्या—पुत्र ! तुम संतापरहिन होओ ।

भरत—(अपने आप) इन शब्दों से तो मैं उपालम्भित सा हो रहा हूँ । (प्रकट रूप में) अनुगृहीत हुआ । अच्छा आगे ।

सुमन्त्र—ये हैं तत्र भवती लक्ष्मण की माता सुमित्रा ।

भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये ।

सुमित्रा— जाद!जसोभाई होहि । [जात ! यशोभागी भव ।]

भरतः—अम्ब ! इदं प्रयतिष्ये । अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—इयं ते जननी ।

भरतः—(सरोषोत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥ १६ ॥

आक्रुष्टः = तर्जितः भर्त्सित; उपालब्ध इति वा। अतिसन्धितः = लक्ष्मणेन स्वयं रामेण सह गत्वा मह्यम् तस्य सेवावसरो न प्रदत्तः इत्यहं तेन वञ्चित इति भावः ।

कैकेयीं भर्त्संयति भरतः—आः पापे इति—

अन्वयः—मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं गङ्गायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे ।

व्याख्या—मम मातुः =कौशल्यायाः, मातुः = सुमित्रायाश्च एवमुभयोर्मध्यस्था = मध्ये वर्त्तमाना त्वं गङ्गायमुनयोः—गङ्गा च यमुना च तयोः मध्ये = अन्तराले प्रवेशिता कुनदी = क्षुद्रा सरित् इव यथा न शोभसे न शोभामात्रहसीति भावः । अयं भावः—यथा गङ्गापेक्षया यमुनापेक्षया च क्षुद्रासरिद् गौरवतारतम्येनाधमा भवति तथा त्वमपि आभ्याम् मातृभ्याम् अपेक्षयाधमातोऽनयोर्मध्ये तव शोभा नास्ति । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १६ ॥

भरत—अम्ब ! मै लक्ष्मण से सेवा के विषय में ठगा गया । तुम्हें प्रणाम ।

सुमित्रा—पुत्र यशस्वी बनो ।

भरत—इसी यशःप्राप्ति के लिये प्रयत्न करूँगा । अनुगृहीत हुआ । आगे ।

सुमन्त्र—यह तुम्हारी माता हैं ।

भरत—(क्रोधपूर्वक उत्तेजित से होकर) आह पापिनि !

मेरी माता (कौशल्या) एवं अन्य माता (सुमित्रा) के बीच में बैठी हुई तुम उसी भाँति अच्छी नहीं लगती जिस प्रकार गङ्गा और यमुना के बीच में आ जाने वाली कोई क्षुद्र नदी अच्छी नहीं मालूम पड़ती ।

कैकेयी—जाद ! कि मए किदं ? [जात ! कि मया कृतम् ?]

भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥१७॥

अन्वयः—त्वया वयम् अयशसा योजिताः । आर्यः चीरेण योजितः । नृपः गृहमृत्युना योजितः । कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः योजिता । लक्ष्मणः मृगैः सह योजितः। दयिततनयाः अम्बाः शोकेन योजिताः । स्नुषा अध्वपरिश्रमैः योजिता । आत्मा च धिगिति उग्रेण वचसा च योजितः ।

व्याख्या—भरतः सर्वानर्थकारिणीं मातरं त्वया किं किमनार्थं न कृतमिति भर्त्संयति–वयमित्यादि । त्वयां वयम् अयशसा = अपकीर्त्या योजिताः । भरत एव राज्यलोभेन स्वामातरं संप्रेर्य एवं कृतवानित्येवंरूपेणायशसेत्यर्थः । आर्यः = रामः चीरेण = वल्कलेन योजितः, एवमग्रेऽपि यथा लिङ्गवचनं विपरिणम्य योजिता पदस्यान्वयो विधेयः । नृपः = राजा दशरथः गृहमृत्युना = गृहमरणेन । तव कारणात् 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्' इत्येवं कर्त्तुमुचितो दशरथः गृहे एव मरणं प्राप्तवानित्यर्थः । कृत्स्ना = पशुपक्षिप्रकृत्यादियुक्ता अयोध्या प्रतररुदितैः = अविरताश्रुपातैः योजिता । लक्ष्मणः मृगैः = वनवासिभिः सह योजितः । दयिततनयाः—दयिताः = प्रियाः तनयाः यासां ताः अम्बा = मातरः शोकेन = पतिपुत्रजन्येन शुचा योजिताः । स्नुषा = पुत्रवधूः सीता अध्वपरिश्रमैः = मार्गसञ्चरणखेदैः योजिता । आत्मा = स्वयं च उग्रेण = मर्मभेदिना भयङ्करेण धिगिति वचसा धिक् कैकेयीमिति निन्दार्थकेन वचनेन योजितः । हरिणीवृत्तम् । तुल्ययोगितालङ्कारः ।

कैकेयी—बेटा मैंने क्या किया ?

भरत—क्या कहती हो कि मैंने क्या किया ?

हमें अपकीर्त्ति से युक्त किया । राम को वल्कल पहनाया । बेचारे राजा जिन्हें योगयुक्त हो वन में प्राण देना चाहिये था वे घर में ही मृत्यु के शिकार हुए । षशुपक्षियों समेत सारी अयोध्या रुला दी । लक्ष्मण को वन में मृगों का सहचारी बनाया । पुत्रों को प्यार करनेवाली माताओं को पति एवं पुत्र के शोक से युक्त

कौशल्या—जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं । [जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ?]

भरतः—मातरमिति । अम्ब ! त्वमेव मे माता । अम्ब ! अभिवादये ।

कौशल्या—णहि णहि ! इअं दे जणणी । [नहि, नहि इयं ते जननी ।]

भरतः—आसीत् पुरा । न त्विदानीम् । पश्यतु भवती—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ॥ १८ ॥

'प्रस्तुतानां पदार्थानामन्येषां वा यदा भवेत् । एकधर्माभिसम्बन्धस्तदा स्यात्तुल्ययोगिते'ति तल्लक्षणम् ॥ १७ ॥

सर्वसमुदाचारमध्यस्थः = सर्वः=निखिलः यः सताम्=शिष्टानाम् आचारः = व्यवहारः तस्यु मध्ये अन्तराले तिष्ठतीति शिष्टाचारान्तरस्थः ।

अन्वयः—शीलसङ्क्रान्तदोषैः तावत् पुत्राः स्नेहं त्यक्त्वा अपुत्राः क्रियन्ते । एष अहम् लोके अपूर्वं धर्मं स्थापयामि । भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु ॥ १८ ॥

व्याख्या—शीलसङ्क्रान्तदोषैः—शीलेन = स्वभावेन संक्रान्तैः = सम्मिश्रितैः दोषैः = दुर्गुणैः मन्थरादिपरिजनगतदुष्टस्वभावसंक्रमणरूपदुर्गुणैः, तावत् प्रथमम्

किया । पतोहू को वन में पैदल चलाकर खेदयुक्त किया । और बहुत क्या कहें तूने स्वयं अपने को मर्म को भेदन करनेवाले महाभयङ्कर धिक्कार के शब्दों का भाजन बनाया ।

कौशल्या—प्रिय पुत्र ! तुम शिष्टों के आचरण को जानते हुए भी अपनी माता को प्रणाम क्यों नहीं करते ।

भरत—क्या कहती हो, ये हमारी माताजी ! आप ही मेरी माता हैं । अतः अब तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।

कौशल्या—नहीं नहीं । तुम्हारी माता तो यही हैं ।

भरत—पहले थीं, पर अब नहीं । आप देखें ।

संसर्गजन्य स्वभाव के दोष से आक्रान्त होकर जब इन्होंने स्नेह कर अपने

कैकेयी—जाद ! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मया तह उत्तम् । [जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम् ।]

भरतः—किमिति किमिति ?

कैकेयी—पुत्तओ मे राजा होदु त्ति । [पुत्रको मे राजा भवत्विति ।]

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ?

> **पितुर्मे औरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते ।**
> **दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ? ॥ १९ ॥**

पुत्रा अपि स्नेहम् = सौहार्दं त्यक्त्वा = परित्यज्य-अपुत्राः क्रियन्ते = अपुत्रवद् गण्यन्ते । अनया = दुष्टया मन्थराकुमंगेन पुत्रोचितव्यवहारमकृत्वा मयि पुत्रवत्सलता विनाशिना । एषोऽहं लोके = जगति किमप्यपूर्वम् = अन्यैरनाचरितम् धर्मम् = धर्ममर्यादां स्थापयामि = प्रवर्त्तयामि । भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्त्विति । पुत्रद्रोहद्वारेण स्वभर्तृमरणरूपद्रोहाचरणान्माता अपि तिरस्कारभाजनेन स्वमातृत्वं परित्यजत्वित्यर्थः । शालिनीवृत्तम् । 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलौकैः' इति तल्लक्षणम् । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ॥ १८ ॥

सत्यवचनम् रक्षन्ती शुल्कवचनं स्थापयन्त्यहं यदि वरं न वृणीय तर्हि महाराजस्य सत्यप्रतिज्ञत्वं परिहीयेत ।

अन्वयः—(आर्यः रामः) मे पितुः औरसः पुत्रो न भवति किम् । क्रमेण नाभिषिच्यते किम् । मे भ्रातरः दयिताः न स्युः किम् वा प्रकृतीनां न रोचते किम् ॥ १९ ॥

पुत्र को पुत्र नहीं समझा तो मैं भी आज से एक धर्ममर्यादा स्थापित करता हूँ कि अपने पति से द्रोह करनेवाली माता भी अमाता नहीं कही जायगी ।

कैकेयी—पुत्र ! मैंने तो महाराज की सत्यप्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये वैसा किया ।

भरत—क्या कही थी, क्या कही थी ।

कैकेयी—यही कही थी कि मेरा पुत्र राजा बने ।

भरत—अच्छा तो यह बताओ कि ये आर्य राम आपके क्या हैं। क्या वे पिताजी के औरसपुत्र नहीं हैं । क्या अभिषेक के क्रम में राम जेठे नहीं थे । क्या

कैकेयी—जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पच्छिदव्वा ! [जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ?]

भरतः—**वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।**
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥ २० ॥

कैकेयी—जाद ! देशकाले णिवेदेमि । [जात ! देशकाले निवेदयामि ।]

भरतः—**अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्**
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।

व्याख्या—(आर्यः = रामः) मे पितुः औरसः = स्ववीर्योत्पन्नः पुत्रो न किम् काक्वा रामोऽपि मत्पितुः दशरथस्यौरसः पुत्रोऽस्त्येव । क्रमेण = ज्येष्ठताक्रमेण नाभिषिच्यते किम् ? अस्मत्कुले ज्येष्ठ एव राजा भवतीति ज्येष्ठत्वात्तदभिषेकोऽपि न्याय्य एवेति भावः । भ्रातरः दयिताः =प्रियाः न किम् ? रामः अस्मान् न प्रियान् मन्यते किम् ? अथवा वय भ्रातरः रामे राज्येऽभिषिच्यमाने न प्रसीदामः किम् ? अथवा रामराज्याभिषेकः प्रकृतीनां प्रजानां न रोचते किम् ? अत्र 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इत्यनेन प्रकृतिपदे चतुर्थीविभक्तिर्न्याय्या। संबन्धसामान्ये षष्ठी तु अगतिगतिका । त्वयैतत्सवं गर्हणीयमाचरितमिति भात्रः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

शुल्के प्रतिज्ञातमेवार्थमहं याचितवती अतोहम् त्वया न भर्त्सनीयेत्याह—जात इति । यद्येवं तदस्तु राज्यप्रार्थना न्याय्या किं तु रामनिर्वासने को हेतुः ? किं तदपि शुल्के प्रतिज्ञातमासीदिति भरतः समाक्षिपन्पृच्छति—वल्कलैरिति—

उनका अभिषेक भाइयों की प्रसन्नता का कारण नहीं था। अथवा वे अपने भाइयों से प्यार नहीं करते थे । अथवा वे प्रजाजनों के लिये उपयुक्त राजा नहीं थे ।

कैकेयी—प्रिय पुत्र ! तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह सब शुल्क में की गई प्रतिज्ञा के कारण हुआ ।

भरत—राम को वल्कल पहनाया । उनकी राज्यश्री लूट ली । उन्हें पैदल उसमें भी भार्या के साथ वन भेजा गया क्या शुल्क के शर्त्त में यह सब बातें थीं ।

कैकेयी–प्रिय पुत्र ! यह तों उचित देश-काल प्राप्त होने पर कभी बताऊंगी ।

भरत—यदि तुम्हें अपकीर्त्ति की अभिलाषा थी तो तुमने हमारा नाम उसमें

अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ? ॥ २१ ॥

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती ।

अन्वयः—वल्कलैः हृतराज्यश्रीः य तत्रापि पदातिः तत्रापि भार्यया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तम् । एतदपि शुल्के उदाहृतम् किमिति शेषः ॥ २० ॥

व्याख्या—वल्कलैः = चीरैः हृतराज्तश्रीः वल्कलपरिधानार्थं विवशीकृत्य हृता स्वायत्तीकृता राज्यश्रीः = राज्यैश्वर्यं तत्रापि पदातिः = पादचारः तत्रापि भार्यया = देव्या सीतया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तम् = निर्दिष्टम् । भार्यया सह आर्थं रामो त्वया वनवासार्थमनुशिष्टः एतदपि शुल्के निर्दिष्टमासीत् किम् । त्वया अत्यन्तं गर्हणीयमाचरितमिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

देशकाले—देशस्य कालस्य च समाहारः देशकालम् तस्मिन् प्राप्तावसरे इत्यर्थः । निवेदयामि = निवेदयिष्यामीत्यर्थः ।

अन्वयः—यदि अयशसि लोभः तर्हि अस्मान् कीर्त्तयित्वा किम् । किम् नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् तु अथ नृपतिमाता इत्येव शब्दः तव इष्टः तदा भवति किम् आर्यो तव पुत्रः न । सत्यं वदतु ॥ २१ ॥

व्याख्या—अयशसीति—यदि तव अयशसि लोभः =अपकीर्त्तिवाञ्छा तदा अस्मान् कीर्त्तयित्वा किम् । अस्मन्नामसंकीर्त्तनेन किम् । विनाप्रयोजनमेवायशसः सुलभत्वादिति भावः । किमु नृपफलतर्षः = राज्यतृष्णा, किं नरेन्द्रः = राजा न

क्यों लगाया । तुम्हें राज्य की ही अभिलाषा थी तो क्या राजा उसे नहीं दे सकते थे ? और यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की अभिलाषा थी तो क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं हैं । यह सच-सच कहो ।

तुमने राज्य के लोभ के कारण महाराज के प्राणों की परवाह नहीं की और 'तुम वन को जाओ' ऐसा कहकर उनके जेष्ठ पुत्र राम को वन में भेज दिया । इतना ही नहीं, अत्यन्त सुकुमारी जानकी को वल्कल पहने देख तुम्हारा कलेजा नहीं

न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती-
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥ २२ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ ! वशिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः—

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ २३ ॥

दद्यात् अपि तु दद्यादेव । तु पक्षान्तरे । अथ प्रश्ने नृपतिमाता = राजमाता इति एष शब्द तवेष्टः तवाभिलषितः । तदा हे भवतिसंवोधननम् आर्यः = रामः तव पुत्रः न किम् इति मत्यं वदतु । अथवा भवति क्रियापदं तेन रामः तव पुत्रो न भवति किम्—इत्येवम् रूपेण सत्यपि रामे त्वं राजमाता भवेः इत्यर्थः । मालिनीवृत्तम् ॥

अन्वयः—राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः (वियुज्यमान इति शेषः) न गणितः । ज्येष्ठं सुतं त्वं व्रज इति वनं प्रेपितवती । जनकतनयां वल्कलवतीं दृष्ट्वा यत् तव हृदयं न शीर्णम् । तत् हे भवति भवत्या हृदयम् धात्रा वज्रकठिनम् सृष्टम्' इत्यहो ॥ २२ ॥

व्याख्या—त्वयेति–राज्यैषिण्या=पुत्रार्थं राज्यकामुक्या त्वया नृपतिः राजा असुभिः=प्राणैः परित्यज्यमानः न गणितः=नापेक्षितः । भर्तृद्रोहः कृत इत्यर्थः । ज्येष्ठं सुतं पुत्रं च त्वं व्रज इत्युक्त्वा वनं प्रेषितवती मदभिषेकदर्शनार्थं त्वं रामं नगरान्निष्कासितवती पुत्रद्रोहः कृत इत्यर्थः । जनकतनयां सीतां वल्कलवतीं चीरवासं वसानां दृष्ट्वा यत् तव हृदयम् न शीर्णम् = न तत् = तस्मात् कारणात् हे भवति भवत्या हृदयम् धात्रा वज्रकठिनम्=वज्रवत् कठोरम् सृष्टम्=निर्मितम् । अत्र हेतुनानुमानकरणेनानुमित्यङ्कारः । शिखरिणीवृत्तं च ॥ २२ ॥

सुमन्त्रः प्रकृतिभिः राज्याभिषेकसामग्रीं समानीतां दृष्ट्वा तामभिसूचयन्नाह—कुमारेति—

फटा । निश्चय ही विधाता ने तुम्हारा हृदय वज्र से भी कठोर बनाया है ॥ २२ ॥

सुमन्त्र—कुमार ! ये भगवान् वशिष्ठ और वामदेव प्रजावर्ग तथा अमात्यों के साथ आपके अभिषेक की सामग्री लिये हुए आपकी अगवानी में खड़े हैं और निवेदन करते हैं कि—

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरतः—तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ २४ ॥

अन्वयः—यथा गोपहीना गावः अरक्षिताःविलयं यान्ति एवं हि नृपतिहीनाः प्रजाः विलयं यान्ति वै ॥ २३ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण गोपहीनाः गावः अरक्षिताः = रक्षणरहिताः विलयं = विनाशं यान्ति । एवं नृपतिहीनाः = राजरहिताः प्रजा अपि शासनाभावेन विलयं यान्ति वै इति = निश्चये । वाक्योपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥२३॥

भरतोऽभिषेकमनिच्छन् प्रकृतीराह—अनुगच्छन्तु इति । यदि भवद्भी राजा अपेक्ष्यते तर्हि मया सह रामसमीपे गमनं विधेयमित्यर्थः । सुमन्त्रो भरतस्याभिप्रायमजानन् पृच्छति—अभिपेकमिति । अभिषेकद्रव्यजातं परित्यज्यान्यत्रगमनमनुचितमिति । भरतः अभिपेके अनिच्छां प्रदर्शयन्नाह—अत्र भवत्यै कैकेय्यै इति । सुमन्त्रः पुनः भरतस्याशयमजानन् पृच्छति क्वेति । भरतः उत्तरति तत्रेति—

अन्वयः—यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्त्तते तत्र यास्यामि । तं विना अयोध्या नायोध्या । यत्र राघव सा अयोध्या ।

व्याख्या—तत्रेति । यत्र यस्मिन् स्थाने लक्ष्मणप्रियः—लक्ष्मणः प्रियो यस्य सः । यं च स वनं सहैव नीतवान् । असौ यत्र तिष्ठति तत्र यास्यामि । तम् आर्यं रामं विना अयोध्या नायोध्या । किंतु यत्र राभवः आर्यः रामो वर्त्तते सा अयोध्या । रामशून्यायामयोध्यायामगमनं निष्फलमिति भावः । अपह्नुतिरलङ्कारः ॥ २४ ॥

जिस प्रकार गोप के बिना गायें अरक्षित होने से नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के बिना रक्षा के अभाव में प्रजा भी विनष्ट हो जाती है ।

भरत—सभी प्रकृतिमण्डल हमारे साथ चलें ।

सुमन्त्र—अभिपेक को छोड़ कर आप कहाँ जायँगे ?

भरत—कैसा अभिपेक ? यह अभिपेक तो तत्रभवती को दीजिये ।

सुमन्त्र—अच्छा आप जायँगे कहाँ ?

भरत—मैं वहीं जाऊँगा जहाँ लक्ष्मण को प्यार करने वाले आर्य राम हैं ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः ॥

◆

'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुति'रिति तल्लक्षणम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

इति तृतीयोऽङ्कः ॥

◆

राम के बिना अयोध्या अयोध्या कहाँ । अयोध्या तो वही है जहाँ राम का निवास है ॥ २४ ॥

सब का प्रस्थान ॥

प्रतिमानाटक के तीसरे अङ्क की टीका समाप्त ॥

◆

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेट्यौ)

विजया—हला णन्दिणिए ! भणेहि । अज्ज कोसल्लापुरोगेहि सव्वेहि अन्तेपुरेहि पडिमागेहं दट्ठुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्टो ? अहं च मन्दभाआ दुवारे दिट्ठिदा । [हला नन्दिनिके ! भण भण ! अद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तपुरैः प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरती दृष्टः ? अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता ।]

नन्दिनिका—हला ! दिट्ठो अम्हेहि कोदूहलेण भट्टिदारओ भरदो । [हला ! दृष्टोऽस्माभिः कौतूहलेन भर्तृदारको भरतः ।]

तृतीयाङ्के 'तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्त्तते लक्ष्मणप्रियः' इत्यनेन भरतेन रामसन्निधौ वनगमनं प्रतिज्ञातम् । अथास्मिन्नङ्के वने रामं विलोक्य तत्पादुके गृहीत्वायोध्यां प्रति तस्य निवर्त्तनमिति वृत्तजातं वर्णयितुमुपक्रमते । तत्रादौ चेट्योः प्रवेशं दर्शयते तत इति उभे अपि चेट्यौ कैकेय्याः परिचारिक इति ज्ञायते । 'हला' इति संबोधनपदम् । 'भण भण' इति द्विरुक्तिरौत्सुक्यप्रदर्शनार्थम् । कौशल्या पुरोगा येषां तैः = कौशल्याप्रभृतिभिः । अन्तःपुरैः =अ वरोधैः भर्त्तृदारकः = स्वामिपुत्रः । मन्दभागा = भरतदर्शनसौभाग्यरहिता । तत्र कारणमाह=द्वारे स्थिता = द्वाररक्षणकार्येऽधिकृता द्वारं परित्यज्य भरतदर्शनार्थम् प्रतिमागेहाभ्यन्तरे प्रवेशं न लब्धवतीत्यर्थः । कौतूहलेन = चिरादर्शनसञ्जातौत्सुक्येन । भट्टिनी = राज्ञी कैकेयीत्यर्थः 'देवी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी' इत्यमरोक्तेः । यद्यपि

(दो परिचारिकाओं का प्रवेश)

विजया—सखि नन्दनिके ! कहो कहो । सुना है कि आज कौशल्यादि सारा रनिवास प्रतिमा-गृह को देखने के लिये गया था और वहीं उन लोगों ने भरत को भी देखा । मैं अभागिनी तो द्वार के रक्षण कार्य में द्वार पर खड़ी रही (वहाँ न जा सकी)

नन्दिनिका—अरी सखि ! हमने तो बड़ी उत्सुकता के साथ राजकुमार भरत के दर्शन किये ।

विजया—भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा ? [भट्टिनी कुमारेण किं भणिता ?]

नन्दिनिका—किं भणिदं ? आलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो । [किं भणितम् ? अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः ।]

विजया—अहो अच्चाहिदम् रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जविब्भट्टं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं । लोओ वि विणासं गमिओ । णिग्घिणा हु भट्टिणी । पावअं किदं । [अहो अत्याहितम् । राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम् । लोकोऽपि विनाशं गमितः । निर्घृणा खलु भट्टिनी ! पापकं कृतम् ।]

नन्दिनिका—हला ! सुणाहि । पइदीहि आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ

भरतद्वारा राज्यप्रत्याख्याथवृत्तम्' सर्वैरेव ज्ञायते तथापि तदजानन्ती, प्रथमा चेटी पृच्छति—किं भणितमिति । अथ नन्दनिका उत्तरयति—किं भणितमिति । इदं साक्षेपवचनम् । अवलोकितुं = द्रष्टुमपि । नेच्छति = नाभिलषति । कुमारः = भरतः । विजया भरतस्याभिप्रायं विज्ञाय कैकेयीं स्वस्वामिनीं निन्दति—अहो अत्याहितमित्यादिना । अत्याहितम् = महाननर्थः । राज्यलुब्धया—राज्ये लुब्धा तया । राज्यविभ्रष्टम् = राज्यविच्युतिम् । वैधव्यम् । अमङ्गलसूचकं सौभाग्यराहित्यम् । आदिष्टम् = उपस्थापितम् । महाराजस्य मरणेन तथा लोकः = प्रजामण्डलः विनाशम् गमितः = संप्रापितः निर्घृणा = निष्करुणा खलु भट्टिनी कैकेयी । नन्दिनिका तदन्तरजातं वृत्तं वक्तुमारभते = हला श्रृणु इत्यादि । प्रकृतिभिः =

विजया—अच्छा सखि ! कुमार भरत ने महारानी से क्या बात की ?

नन्दिनिका—बात करना तो दूर रहा । कुमार तो उन्हें देखना भी नहीं चाहते थे ।

विजया—ओह ! महान् अनर्थ हो गया । राज्य के लोभ से उसने राम को राज्य से विच्युत तो किया ही । अपने आप को विधवा भी बना लिया । इतना ही नहीं समस्त प्रजाओं का अनाथ भी कर दिया । सचमुच यह रानी बड़ी निर्दयी है जिसने इतना बड़ा पाप किया ।

नन्दिनिका—अरी सखि ! सुन । राजकुमार भरत अमात्य मण्डल द्वारा लाये

रामतवोवणं गदो कुमारो ।] [हला ! शृणु । प्रकृतिभिरानीतमभिषेकं विसृज्य, रामतपोवनं गतः कुमारः ।]

विजया—[हम् ! एवं गदो कुमारो । णन्दिणिए ! एहि, अम्हे भट्टिणिं पेक्खामो । (सविषादम्) [हम् ! एवं गतः कुमारः । नन्दिनिके । एह्यावां भट्टिनी पश्यावः] । (निष्क्रान्ते) ।

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च)

भरतः—स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।

अमात्यादिभिः आनीतम् = स्वयमुपहृतम् । रामतपोवनम्—तपसः वनम् तपोवनम् रामेणाधिष्ठितं यत्तपोवनमित्यर्थः । विजया भरतवनगमने विषीदन्ती ब्रवीति हमित्यादि । हमित्याश्चर्यसूचकम् । एवम् = अनेन प्रकारेण वनमिति गतः संप्राप्तः । अथवा एवम् इमाम् = एतादृशीं वा दशां गतः = संप्राप्तः । दशा चात्र स्वमातुः कुत्सनमित्येका प्रकृत्यानीताभिषेकसंभारोपेक्षा द्वितीया, वनगमनमिति तृतीया । एवमवस्थात्रयमनुभूयमानम् भरतं प्रति सखेदमाह चेटी अहो अत्याहितमित्यादि ।

अन्वयः—सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गं गते पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमाना (अहम्) अकृपणेषु तपोवनेषु रामाभिधानम् जगतः अपरं शशाङ्कम् द्रष्टुं प्रयामि ॥ १ ॥

व्याख्या--स्वर्गमिति—सुकृतानुयात्रे—सुकृतम् = पुण्यम् अनुयात्रः =अनु-

---

गये समस्त अभिषेक संभार को ठुकरा कर जिस तपोवन में राम रहते हैं वहाँ चले गये ।

विजया—ओह ! बड़े शोक की बात है जो राजकुमार इस दशा को प्राप्त कर वन चले गये । अच्छा नन्दिनिके ! मेरे साथ आ । हम दोनों महारानी के पास चल कर उनका दर्शन करें । (दोनों का प्रस्थान)

प्रवेशक

(तदनन्तर रथ में बैठे हुए भरत, सुमन्त्र एवं सारथी का प्रवेश)

भरत—महाराज दशरथ तो अपने पुण्य के साथ स्वर्ग चले गये । किन्तु मैं

द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्यमान् भरतः—
दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।

गामि सहचरं वा यस्य तस्मिन् पुण्यानुगामिनि; नरपतौ = राजनि दशरथे, स्वर्गं गते = दिवमुपयाते सति, पौराश्रुपातसलिलैः—गौराणाम् = पुरवासिनाम् अश्रुपात सलिलैः = अश्रुजन्यवारिभिः सह अनुगम्यमानः = अनुवर्त्यमानः अहम् भरतः राजा हि सुकृतानुवर्त्ती अहं तु पौरजनाश्रुपातानुवर्त्तीत्यर्थः । अकृपणेषु = सर्वसंपत्समृद्धेषु, तपोवनेषु, विद्यमानम् रामाभिधानम् = रामनामकम् जगतः = संसारस्य अपरम् = अन्यम् शशाङ्कम् = चन्द्रम् । रूपेण चरित्रेण च सकललोकाह्लादजनकत्वादिति भावः द्रष्टुं प्रयामि = प्रकर्षेण गच्छामि । अत्र रामे चन्द्रारोपात् रूपकालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—‘रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे’ इति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रः, यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य रामस्य भ्राता राम सदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

व्याख्या—दैत्येन्द्रेति—दैत्येन्द्राणां = दैत्यमुख्यानां मानं = गर्वं मथ्नाति = ध्वंसयतीति तस्य, नृपस्य = राज्ञो दशरथस्य, पुत्रः = आत्मजः, पुनः यज्ञोपयुक्तविभवस्य—यज्ञेषु = विश्वजिदादिषु उपयुक्तः = परोपकारार्थं प्रयुक्तः विभवः = संपत्तिर्येन स तस्य अजस्य नृपस्य पौत्रः, किञ्च पितुः = स्वजनकस्य दक्षरथस्य प्रियकरस्य = प्रीणनपरस्य अतएव जगत्प्रियस्य = जगदाह्लादकस्य रामस्य भ्राता

अब इन रोते हुए नगर निवासियों के अश्रुपात युक्त जल के साथ सर्व संपत्समृद्ध परमरमणीय तपोवन में रामनाम वाले जगत् के एक दूसरे चन्द्रमा का दर्शन करने के लिये चल रहा हूँ ।

सुमन्त्र—यही हैं यही हैं, चिरायु भरत ।

जो बड़े बड़े दैत्यों दैत्यों के गर्व को चूर चूर करने वाले महाराज दशरथ के पुत्र हैं यज्ञार्थ अपनी समस्त संपत्ति समर्पित करनेवाले महाराज अज के पौत्र हैं ।

भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः ? क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व सन्निदर्शनं सारवताम् ? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः ? क्व तत् पात्रं यशसः ?

रामसदृशेन = रामानुरूपेण पथा = न्यायवर्त्मना प्रयाति = गच्छति । यथा रामः पितृवचनमनुपालयन् राज्यं परित्यज्य वनं गतवान् तथायमपि राज्यं परित्यज्य भ्रातृस्नेहयन्त्रितः वनं गच्छतीति भावः । तादृश महात्पुरुषस्य भ्रातृत्वेनास्यापि न्यायानुसरणं युक्तमेवेति भावः । विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः । 'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मत' इति तल्लक्षणम् । वसन्ततिलका-वृत्तम् ॥ २ ॥

व्याख्या—तत्र भवान् पूज्यः । ममार्यो = मम ज्येष्ठो भ्राता । महाराजस्य= राजाधिराजस्य, पितुः=दशरथस्य, प्रतिनिधिः प्रतिनिधीयते = तुल्यरूपतया स्थाप्यते इति प्रतिनिधिः पितृस्थानीयस्तत्स्वरूपो वा सारवताम् = धैर्यधनानाम् सन्निदर्शनम्—सत् = साधु यथा स्यात्तथा निदर्शनम् = उदाहरणम् । धैर्यधनेषु = आदर्शरूप इत्यर्थः । प्रत्यादेशः = निराकर्त्ता तिरस्कर्त्ता वा । राज्यलुब्धायाः— राज्ये तस्याः राज्यलोलुपायाः । यशसः = कीर्त्तेः पात्रम् = भाजनम्; नरपतेः = लुब्धा प्रजापालकस्य दशरथस्य, पुत्रः = योग्यतनयः । सत्यमनुव्रतः—व्रतमनुगतः इत्यनुव्रतः सत्यमनुव्रतः = सत्यव्रतानुष्ठानपरः ।

किं बहुना सर्वथा अपने पिता के प्रियकारी जगत् को आनन्दित करने वाले महाराज रामचन्द्र के भाई हैं । इसीलिये तो राम के सदृश ही धर्ममार्ग का अनुसरण करने जा रहे हैं !

भरत—हे तात ।

सुमन्त्र—कुमार ! मैं यह मैं हूँ ।

भरत—कहाँ हैं मेरे पूज्य भाई ? कहाँ है महाराज के स्थानापन्न ? कहाँ हैं धैर्यवानों के श्रेष्ठ आदर्श ?कहाँ है राज्यगृद्धिनी कैकेयी के निराकर्त्ता ? कहाँ हैं यश

द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्यमान् भरतः—
दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।

गामि सहचरं वा यस्य तस्मिन् पुण्यानुगामिनि; नरपतौ = राजनि दशरथे, स्वर्गं गते = दिवमुपयाते सति, पौराश्रुपातसलिलैः—पौराणाम् = पुरवासिनाम् अश्रुपात सलिलैः = अश्रुजन्यवारिभिः सह अनुगम्यमानः = अनुवर्त्यमानः अहम् भरतः राजा हि सुकृतानुवर्त्ती अहं तु पौरजनाश्रुपातानुवर्त्तीत्यर्थः । अकृपणेषु = सर्वसंपत्समृद्धेषु, तपोवनेषु, विद्यमानम् रामाभिधानम् = रामनामकम् जगतः = संसारस्य अपरम् = अन्यम् शशाङ्कम् = चन्द्रम् । रूपेण चरित्रेण च सकललोकाह्लादजनकत्वादिति भावः द्रष्टुं प्रयामि = प्रकर्षेण गच्छामि । अत्र रामे चन्द्रारोपात् रूपकालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे' इति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रः, यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य रामस्य भ्राता राम सदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

व्याख्या—दैत्येन्द्रेति—दैत्येन्द्राणां = दैत्यमुख्यानां मानं = गर्वं मथ्नाति = ध्वंसयतीति तस्य, नृपस्य = राज्ञो दशरथस्य, पुत्रः = आत्मजः, पुनः यज्ञोपयुक्तविभवस्य—यज्ञेषु = विश्वजिदादिषु उपयुक्तः = परोपकारार्थं प्रयुक्तः विभवः = संपत्तिर्येन स तस्य अजस्य नृपस्य पौत्रः, किञ्च पितुः = स्वजनकस्य दशरथस्य प्रियकरस्य=प्रीणनपरस्य अतएव जगत्प्रियस्य = जगदाह्लादकस्य रामस्य भ्राता

अब इन रोते हुए नगर निवासियों के अश्रुपात युक्त जल के साथ सर्व संपत्समृद्ध परमरमणीय तपोवन में रामनाम वाले जगत् के एक दूसरे चन्द्रमा का दर्शन करने के लिये चल रहा हूँ ।

सुमन्त्र—यही हैं यही हैं, चिरायु भरत ।

जो बड़े बड़े दैत्यों दैत्यों के गर्व को चूर चूर करने वाले महाराज दशरथ के पुत्र हैं यज्ञार्थ अपनी समस्त संपत्ति समर्पित करनेवाले महाराज अज के पौत्र हैं ।

भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः ? क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व सन्निदर्शनं सारवताम् ? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः ? क्व तत् पात्रं यशसः ?

रामसदृशेन = रामानुरूपेण पथा = न्यायवर्त्मना प्रयाति = गच्छति । यथा रामः पितृवचनमनुपालयन् राज्यं परित्यज्य वनं गतवान् तथायमपि राज्यं परित्यज्य भ्रातृस्नेहयन्त्रितः वनं गच्छतीति भावः । तादृश महात्पुरुषस्य भ्रातृत्वेनास्यापि न्यायानुसरणं युक्तमेवेति भावः । विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः । 'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मत' इति तल्लक्षणम् । वसन्ततिलका-वृत्तम् ॥ २ ॥

व्याख्या—तत्र भवान् पूज्यः । ममार्यो = मम ज्येष्ठो भ्राता । महाराजस्य= राजाधिराजस्य, पितुः=दशरथस्य, प्रतिनिधिः प्रतिनिधीयते = तुल्यरूपतया स्थाप्यते इति प्रतिनिधिः पितृस्थानीयस्तत्वरूपो वा सारवताम् = धैर्यधनानाम् सन्निदर्शनम्—सत् = साधु यथा स्यात्तथा निदर्शनम् = उदाहरणम् । धैर्यधनेषु = आदर्शरूप इत्यर्थः । प्रत्यादेशः = निराकर्त्ता तिरस्कर्त्ता वा । राज्यलुब्धायाः—राज्ये तस्याः राज्यलोलुपायाः । यशसः = कीर्त्तेः पात्रम् = भाजनम्; नरपतेः = लुब्धा प्रजापालकस्य दशरथस्य, पुत्रः = योग्यतनयः । सत्यमनुव्रतः—व्रतमनुगतः इत्यनुव्रतः सत्यमनुव्रतः = सत्यव्रतानुष्ठानपरः ।

किं बहुना सर्वथा अपने पिता के प्रियकारी जगत् को आनन्दित करने वाले महाराज रामचन्द्र के भाई हैं । इसीलिये तो राम के सदृश ही धर्ममार्ग का अनुसरण करते जा रहे हैं !

भरत—हे तात ।

सुमन्त्र—कुमार ! मैं यह मैं हूँ ।

भरत—कहाँ हैं मेरे पूज्य भाई ? कहाँ है महाराज के स्थानापन्न ? कहाँ हैं धैर्यवानों के श्रेष्ठ आदर्श ?कहाँ है राज्यगृद्धिनी कैकेयी के निराकर्त्ता ? कहाँ हैं यश

क्वासौ नरपतेः पुत्रः ? क्वासौ सत्यमनुव्रतः ?

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ ३ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥ ४ ॥

अन्वयः—मम मातुः प्रियं कर्त्तुं येन लक्ष्मीः विसर्जिता । मम परमं दैवतं तम् अहं द्रष्टुम् इच्छामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—ममेति—मम मातुः = कैकेय्याः, प्रियम् = अभिलषितम्, कर्त्तुं = विधातुं येन = रामेण, लक्ष्मीः च राज्यसंपदम्, विसर्जिता = परित्यक्ता मम = भरतस्य, परमम् = सर्वोत्कृष्टम्, दैवतम् = देवतास्वरूपम्, तं = रामचन्द्र नामकं देवमहं द्रष्टुम् = अवलोकितुम् इच्छामि = अभिलषामि । अस्मिन् श्लोके उत्तरवाक्ये पूर्ववाक्यार्थस्य हेतुत्वेन काव्यलिङ्गालङ्कारः । तदुक्तं 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते ।' अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥

एतस्मिन् पुरो वर्त्तिनि आश्रमपदे = आश्रमस्थले ।

अन्वयः—अत्र महायशाः रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च (तिष्ठन्तीति) शेषः येषु सत्यं शीलं भक्तिश्चेति (त्रयम्) विग्रहवत् स्थिताः ॥ ४ ॥

व्याख्या—अत्रेति—अत्र = अस्मिन्नाश्रमप्रदेशे, महायशाः—महान् यशो यस्य सः महायशाः = प्रशस्तकीर्त्तियुक्तः, रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति

के एकमात्र अधिकारी—? कहाँ हैं महाराज के सुयोग्य पुत्र ? कहाँ हैं वे सत्यव्रत के पालनकर्त्ता ?

मेरी माता का अभीष्ट सिद्ध करने के लिये जिन्होंने प्राप्त राज्यलक्ष्मी तक का त्याग कर दिया उन अपने उत्कृष्ट दैवतस्वरूप पूज्य रामचन्द्र का दर्शन करना चाहता हूँ । (वे कहाँ है)

सुमन्त्र—कुमार ! इसी आश्रम में महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण निवास करते हैं ऐसा मालूम पड़ता है कि इनमें क्रमशः सत्य राम में, पातिव्रत्यपालनरूप स्वभाव सीता में तथा स्वसुख परित्यागपूर्वक भ्रात्राज्ञानुवर्त्तित्व रूप भक्ति लक्ष्मण में मूर्त्तिमान् रूप धारण कर निवास करते हों ।

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (तथा करोति)।

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (निष्क्रान्तः)।

भरतः—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम्।

सुमन्त्रः—कुमार ! किमिति निवेद्यते ?

भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति।

सुमन्त्रः—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्।

शेषः, येषु = रामसीतालक्ष्मणेषु सत्यं शीलं भक्तिश्चेति क्रमशः त्रयम् रामे सत्यं पितुराज्ञानुवर्तनरूपम् सत्यानुसरणम्, सीतायाम् शीलम् शोभनः पातिव्रत्यपालनस्वभावः, लक्ष्मणे भक्तिश्च सुखपरित्यागपूर्वकम् भ्रातुराज्ञानुवर्त्तिता च विग्रहवत् = मूर्त्तिमानिव स्थितम्। अत्र भक्त्यनुरोधेन स्थितेति पदं युक्तं स्यात्, किन्तु क्रियाविशेषणत्वेन यथाकथञ्चित् स्थितमित्युपपादनीयम्। क्रमेणान्वयाद् यथासंख्यालङ्कारः। 'यथासंख्यं क्रमेणैवे'ति तल्लक्षणम् ॥ ४ ॥

स्थाप्यताम् = विरम्यताम्। एकान्ते = निर्जनप्रदेशे विश्रामय = मार्गश्रमापनोदनं कारय। निवेद्यताम् = संसूच्यताम् त्वरार्थं द्विरुक्तिः राज्यलुब्धायाः = राज्यगृद्धिन्याः। गुरुजनापवादम्—गुरुजनस्य महिषीत्वेन मम मान्यायाः राज्ञ्याः

भरत—अच्छा सारथि ! यहीं पर रथ खड़ा करो।

सूत—जो आज्ञा। (रथ रोक देता हैं)

भरत—(रथ से उतर कर) सारथि ! घोड़ों को किसी विविक्त (एकान्त) प्रदेश में ले जा कर इनकी हवाखोरी करा मार्ग की थकावट दूर करो।

सूत—जो आज्ञा। (ऐसा कहकर घोड़ों के साथ प्रस्थान करता है)

भरत—तात सुमन्त्र ! महाराज को शीघ्र सूचित कीजिये।

सुमन्त्र—कुमार ! किस प्रकार से निवेदन करूँ ?

भरत—यही कि राज्यलोभिनी कैकेयी का पुत्र भरत आया हुआ है।

सुमन्त्र—कुमार ! गुरुजनों की निन्दा जिसमें हो ऐसे वचनों से निवेदन करना अनुचित है।

भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि उच्यताम्—कुलन्यङ्गभूतो भरतो दर्शनमभिलषतीति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! नाहमेवं वक्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम् ?

भरतः—न न । नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति । किं व्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ? तस्माद् तिष्ठतु तातः । अहमेव निवेदयिष्ये । भोः भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

कैकेय्याः, अपवादम् = निन्दाम् अभिधातुं—अभिधानं कर्त्तुम् अलम्, निषेधार्थकमव्ययपदम् । गुरुजननिन्दाकरणम् अनुचितमिति भावः । सुष्ठु = सम्यगुच्यते यत् परदोषमभिधातुम् = अन्यदीयदोषप्रकाशनम्; न न्याय्यमिति = अनुचितमेव । इक्ष्वाकुकुलन्यङ्गभूतः नि = नीचम्, अङ्गम् न्यङ्गम् इक्ष्वाकुकुलस्य न्यङ्गो भूतः कलङ्क इति यावत् । केवलम् = दोषदर्शनविशेषणशून्यम् नाममात्रमित्यर्थः अकृतप्रायश्चित्तमिव—न कृतं प्रायश्चित्तं यथा स्यात्तथा । 'प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्य विशोधनमि'ति स्मृतेः । वस्तुतः स्वपापनिवेदनरूपविशेषणविशिष्टनामानुक्त्वा पापशोधनं न भवेदित्यर्थः । अतएव स्वस्य व्रह्महत्याकारित्वं प्रतिपादयति—किं व्रह्मघ्नानामित्यादिना । व्रह्म व्राह्मणं हतवन्त इति व्रह्मघ्नास्तेषां व्रह्मघ्नानामिति । धर्मशास्त्रकारैर्हि व्रह्मघ्नानां कृते तेषां प्रायश्चित्तार्थं वसतेर्बहिर्निवासः, केवलं भोजनार्थं वसतिं प्रविश्य 'व्रह्मघ्नोहम्' इति स्वं पापं संश्राव्य भिक्षां भिक्षेत इति निर्देशो विहितः तदेव भरतः स्पष्टयति 'किं व्रह्मघ्नानां कृते' इत्यादिना । तत्र भवते, पूज्याय = पितृवचनकराय, पितुर्वचनं करोतीति तस्मै पितुराज्ञापरिपालकायेत्यर्थः ।

भरत—आपने ठीक कहा—दूसरे का दोष कहना उचित नहीं । अच्छा तो जाकर कहिये कि इक्ष्वाकुकुल का कलङ्कभूत भरत आपका दर्शन करना चाहता है ।

सुमन्त्र—कुमार ! भला मैं ऐसा किस प्रकार कह सकता हूँ ? मैं तो मात्र इतना ही कह सकता हूँ कि भरत आये हुए हैं ।

भरत—नहीं नहीं । केवल नाम मात्र निवेदन करने से प्रायश्चित्त न होगा ।

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः ।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ५ ॥

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

रामः—सौमित्रे ! किं शृणोषि ? अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

अन्वयः—निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः भक्तिमान् कश्चित् आगतः स कथं तिष्ठतु यातु वा इति ॥ ५ ॥

व्याख्या—निर्घृणेति—निर्घृणः निर्गता=दूरंगता घृणा=दया यस्मात् सः । कृतघ्नः—कृतं पूर्वोपकारं हन्ति विनाशयतीति कृतघ्नः स्वकीयोपकारिणं प्रत्यनुपकारपरः । प्राकृतः=नीचः 'विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जन' इति कोशः । एतानि सर्वाणि विशेषणानि रामनिर्वासने स्वकारणतामङ्गीकृत्य भरतेनोक्तानि । प्रियसाहसः—प्रियम् साहसम् यस्य सः == अनुचितकार्यसंपादने दक्षः अत्र त्वां राज्याद् विभ्रश्य दर्शनाभिलाषप्रकटनं साहसम् अथवा स्वमातृमिषेण त्वद्राज्यापहरणं साहसम्, एतैर्दोषैर्दूषितः सन्नपि त्वयि भक्तिमान् त्वत्सेवापरः कश्चित् नामनिर्देशस्यानौचित्यं प्रकटयति कथमिति प्रश्ने । दर्शनाय तिष्ठतु = तव द्वारे प्रतीक्षापरो भवतु अथवा यातु त्वयि दर्शने अदीयमाने पुनः तेनैव पथापसरतु । भक्तिमहिम्ना दर्शनं प्रतीक्षताम् दोषाधिक्याद्वा परावर्त्ततामिति भावः । इति निवेद्यताम् । विशेषणानां साभिप्रायतया परिकरालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

ऐसा मेरा विचार है । अच्छा आप रुकिये । ब्रह्महत्यारों को सूचना दूसरों को नहीं देनी चाहिये । अतः मैं स्वयं ही निवेदन करता हूँ । अरे भाई—पितृ आज्ञा परिपालक रघुकुलोत्पन्न उन राघव से निवेदन कर दीजिये कि—

एक नृशंस, कृतघ्न अधम एवं उद्दण्ड किन्तु आप में सेवा भाव रखने वाला व्यक्ति आया है । क्या वह आपके दर्शन के लिये ठहरे अथवा चला जाय । ऐसा निवेदन करो ।

(तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के साथ राम का प्रवेश)

राम—(सुन कर हर्ष के साथ) लक्ष्मण ! कुछ सुन रहे हो । जनकपुत्रि जानकी ! क्या तुम भी सुन रही हो ।

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—आर्य । ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति । एष हि—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे दक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।

अन्वयः—असौ मे पितुः सदृशतरः स्वरः कस्य ? अयम् गाम्भीर्यात् मेचनादम् परिभवति इव । यः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां कुर्वन् सस्नेहः इष्टतः श्रुतिपथम् प्रविष्टः ॥ ६ ॥

व्याख्या—कस्यासाविति=असौ मे पितुः = दशरथस्य, सदृशतरः—अतिशयेन सदृशः सदृशतरः = अत्यन्तसदृशः स्वरः कस्य इति प्रश्नो वितर्को वा । अयं हि स्वरः = ध्वनिः गाम्भीर्यात् कारणात् मेघनादम् = मेघगर्जनम् परिभवति = तिरस्करोति । मेघगर्जनादपि उच्चतरोऽयं ध्वनिरिति भावः । यः स्वरः मम हृदयस्य बन्धुशङ्काम् = भ्रातृसंदेहं कुर्वन् = जनयन्, सस्नेहः = स्नेहयुक्तः इष्टतः = इष्टत्वकारणेन श्रुतिपथम्—श्रुत्योः कर्णयोः पन्थानम् = मार्गम् प्रविष्टः = आभ्यन्तरस्थः । मम पितृसदृशात्यन्तगम्भीरस्वरत्वेन हेतुना अयम् मम बन्धोः स्वरः इति मे हृदि, शङ्का उत्पादयतीति' भावः । प्रहर्षिणीवृत्तम् म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयति–प्रहर्षिणीयम्' इति तल्लक्षणम् ॥ ६ ॥

तादृशस्वरस्य = बन्धुस्वरसादृश्यं लक्ष्मणोऽपि समर्थयति—आर्य इत्यादिना । स्वरसंयोगः = स्वरसम्बन्धः बन्धुजनबहुमानम् बन्धुजनोचितं यद् बहुमानम्,

---

मेरे पिता के स्वर से अत्यन्त मिलता जुलता यह किसका स्वर सुनाई पड़ रहा है जो गम्भीरता में मेघ की गर्जना को भी तिरस्कृत कर रहा है । अरे ! यह स्वर तो मेरे हृदय में मेरे भाई के जैसा होने का सन्देह उत्पन्न कर रहा है । इतना ही नहीं स्नेहपूर्ण होने के कारण यह अभीष्ट मधुर शब्द मेरे कानों में अबाध गति से प्रवेश कर रहा है ।

लक्ष्मण—आर्य ! यह स्वर संयोग तो मेरे भी हृदय में किसी बन्धुजन का होने के कारण आदरास्पद प्रतीत हो रहा है । क्योंकि—

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ ७ ॥

रामः—सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः क्लेदयतीव मे हृदयम्। वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत्।

बन्धुजनोचितमादरास्पदम् आवहति =उत्पादयति।

अन्वयः—एष स्वरसंयोगः हि घनः स्पष्टः धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः कलः स्फुटकरणनानाक्षरतया कण्ठे वक्षसि च यथा स्थानं प्राप्य अनुपहतसपारभसः चतुर्णां वर्णानाम् अभयम् दातुम् इव व्यवसितः ॥ ७ ॥

व्याख्याः—घन इति—घनः = निविडः, सान्द्रः = मांसलो वा, स्पष्टः = व्यक्ताक्षरः धीरः =गम्भीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः—समदो यो वृषभः = बलशालिबलीवर्दः तद्वत् स्निग्धमधुरः = सरसरमणीयः कलः = कोमलध्वनिः, स्फुटकरणनानाक्षरतया—स्फुटं प्रकटं सौष्ठवयुक्तं वा करणं बाह्याभ्यन्तरलक्षणः प्रयत्नो येषां तानि स्फुटकरणानि, स्फुटकरणानि नानाक्षराणि यस्मिन् स स्फुटकरणनानाक्षरस्तस्य भावस्तया, प्रयत्नकृताक्षरलभ्यस्फुटीभावेन कण्ठे=गले, वक्षसि = हृदयप्रदेशे च यथास्थानं यस्याक्षरस्य यत् यत् ताल्वादिस्थानं प्राप्य तत्तत्स्थानमनतिक्रम्येत्यर्थः। एवं च स्थानप्रयत्नकृतदोषविरहिततया, अनुपहतसंचाररभसः = अप्रतिबद्धसञ्चारवेगः सन् एष स्वरः चतुर्णां वर्णानां = ब्राह्मणादीनाम् अभयम् शरणं दातुम् = कर्तुम् व्यवसितः = उद्युक्तः इव प्रतिभातीति भावः। एतेन तत्तत्स्थानकरणादिगुणविशिष्टाक्षरोच्चारणेन तत्प्रयोक्तुः महापुरुषत्वं चातुर्वर्ण्यं रक्षाकरक्षसामर्थ्यशालित्वं च प्रतिपादितं भवति। शिखरिणीवृत्तम्। उत्प्रेक्षोपमालङ्कारौ च॥ ७ ॥

यह स्वर संयोग तो सान्द्र, स्पष्ट, गम्भीर एवं मदमत्त बलीवर्द (सांड) के शब्द के समान सरस, मधुर एवम् अभिराम हैं। किं बहुना बाह्याभ्यन्तर प्रयत्न विशिष्ट तथा अपने अप्रतिहतवेग से प्रभावोत्पादक भी है जिससे प्रतीत होता हैं कि प्रयोक्ता का यह स्वर चारों वर्णों को अभयदान देने के लिये उद्यत है॥ ७ ॥

राम—यह सर्वथा किसी बन्धुजन का स्वर है जो मेरे हृदय को सिक्त कर रहा है। वत्स लक्ष्मण ! देखो।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (परिक्रामति)

भरतः—अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति ? किन्नु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ?

लक्ष्मणः—अये अयमार्यो रामः ! न न। रूपसादृश्यम्।

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्।

परोक्षे हि स्वर एव बन्धोरबन्धो वा परिचयं ददातीति मनसि कृत्वा आह रामः—सर्वथेति। मम बन्धोर्भरतस्यैवायम् स्वरः नान्यस्य। क्लेदयति = आर्द्री करोति। स्वजनस्वरस्यैवं स्वभावो यत् स स्वजनान् आर्द्रीकरोति। अये इति खेदार्थकः। प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्। किन्नु खलु इति वितर्के। भरतस्य रामसदृशरूपम् विलोक्य रामभ्रान्त्या साश्चर्यो लक्ष्मण प्राह—अये इति। पुनरात्मनो भ्रान्ति विज्ञाय तन्निषेधति न नेति। रूपसादृश्यम् = रूपस्य समानता भ्रान्तेः कारणम्। तदेव सादृश्यं वर्णयति –

अन्वयः—आर्यस्य आभम् शशाङ्कमनोहरम् अनुपमम् मुखम् मम पितृसमं सुरारिशरक्षतम् पीनं वक्षः द्युतिपरिवृतः तेजोराशिः जगत्प्रियदर्शनः अयम् नरपतिः वा देवेन्द्रः वा स्वयम् मधुसूदनः भवेत् ॥ ८ ॥

व्याख्या—मुखमिति—आर्यस्य = श्रीरामचन्द्रस्य आभम् = मुखकान्तिर्यस्य तम्। शशाङ्कमनोहरम्—शशाङ्कश्चन्द्रस्तद्वन्मनोहरम् = रमणीयम् अनुपमम्—नास्ति उपमा यस्य, तदनुपमम् = सादृश्यरहितम् मुखम् = वदनम् पुनः चन्द्रसादृश्यकथनम् व्याहतत्वम् मम पितृसमम्—पित्रा = दशरथेन समं = तुल्यम् सुरारिशरक्षतम्—सुरारीणां = दैत्येन्द्राणां, शरैः = बाणैः क्षतम् = व्रणान्वितम् पीनम् =

लक्ष्मण—जेसी आर्य की आज्ञा।

भरत—अरे ! कोई प्रत्युत्तर क्यों नहीं देता। क्या मैं जान लिया गया कि कैकेयी का पुत्र भरत आ यहै ?

लक्ष्मण—अरे ! ये आर्य राम हैं, नहीं नहीं। रूपसादृश्य है।

आर्य राम के मुख के सदृश अनुपम चन्द्रमा के समान मनोहर इनका मुख है। पिताजी के वक्षःस्थल के समान विशाल एवम् राक्षसों के वाणों से व्रणाङ्कित

द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो-
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ ८ ॥

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अयं तातः ?

सुमन्त्रः—अये कुमारो लक्ष्मणः ?

भरतः—एवं, गुरुरयम्। आर्य ? अभिवादये।

लक्ष्मणः—एह्येहि। आयुष्मान् भव (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात ! कोऽत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार !

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः।

विशालम् अस्येति शेषः। वक्षः = उरःप्रदेशः द्युतिपरिवृतः—द्युतिभिः = प्रसर्पणशीलाभिः कान्तिभिः परिवृतम् = परिवेष्टितम्, तेजोराशिः—तेजसां राशिः = समूहः इव स्थितः। अयम् नरपतिः कोऽपि राजविशेषः साक्षाद्दशरथः वा देवेन्द्रः इन्द्रः वा स्वयम् मधुसूदनः विष्णुर्वा भवेदिति शेषः। अत्र नरपतौ देवेन्द्रे विष्णौ वा विशेषादर्शनात् सामान्यगुणयोगाच्च सन्देहदर्शनात् सन्देहालङ्कारः। 'सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः। शुद्धो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा। हरिणोवृत्तम् ॥ ८ ॥

इनका वक्षःस्थल है। अतः कान्तिमान् तेजस्विता युक्त देखने में अत्यन्त मनोहर क्या ये कोई नरेन्द्र अथवा स्वयम् महाराज दशरथ हैं अथवा इन्द्र हैं अथवा भगवान् विष्णु हैं।

(सुमन्त्र की ओर देशकर) अरे यह तो तात हैं।

सुमन्त्र—अरे ! यह तो राजकुमार लक्ष्मण हैं।

भरत—तब तो ये मेरे जेठे भाई है। आर्य ! प्रणाम करता हूँ।

लक्ष्मण—आओ। आओ। चिरजीवी होओ। (सुमन्त्र की ओर देखकर) तात ! यह कौन हैं।

सुमन्त्र—कुमार !

यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतोस्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥ ९ ॥

लक्ष्मणः—एह्येहीक्ष्वाकुकुमार ! वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापै-
रनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः ।

अन्वयः—अयम् रघोः चतुर्थः अजात् तृतीयः प्रकाशस्य तव पितुः द्वितीयः स्वकुलस्य केतोः यस्य त्वम् अनुजः तस्यैव अनुजः अयं कुमारः भरतः अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

व्याख्या—रघोरिति—अथेदानीं सुमन्त्रः भरतस्य परिचयं ददाति—अयम् पुरो दृश्यमानः रघोः चतुर्थः वंशक्रमगणनायां रघुमारभ्य चतुर्थत्वेन परिगणनीयः । अजात् तृतीयः तत्पौत्र इत्यर्थः । प्रकाशस्य तेजोरूपस्य तव पितुः दशरथस्य द्वितीयः गणनायामिति भावः । अत्र षष्ठीविभक्तिरनुपपन्ना । पञ्चम्याः वक्तव्यत्वात् । स्वकुलस्य = स्ववंशस्य केतोः = पताकाभूतस्य यस्य = रामस्य त्वम् अनुजः = अनु पश्चाज्जातः तस्यैवायमनुजः कुमारो भरत इत्यर्थः । अतस्त्वयायं भ्रातृवद् व्यवहरणीयः । न तु कैकेयीसंबन्धतया तिरस्करणीय इत्यपि सुमन्त्रेण सूचितम् । उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—असुरसमरदक्षैः वज्रसंघृष्टचापैः अनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैः तुल्यवीर्यः, स नरेन्द्रः रघुः इव यज्ञविश्रान्तकोशः जगति भ्राजितानां गुणानां भाजनं (त्वम्) भव ॥ १० ॥

व्याख्या—असुरेति—असुरसमरदक्षैः—असुरैः = राक्षसैः सह समरे = युद्धे दक्षैः = निपुणैः वज्रसंघृष्टचापैः—वज्रेण संघृष्टं = सञ्जातस्पर्शम् एक-

ये वंशक्रम की गणना के अनुसार महाराज रघु के चौथी पीढ़ी में, अज से तृतीय पीढ़ी में, जगत्प्रसिद्ध तुम्हारे पिता महाराज दशरथ के पुत्र होने से द्वितीय पीढ़ी में और क्या जिस कुलश्रेष्ठ के विजयवैजयन्तीभूत श्री राम के जैसे तुम अनुज हो उसी प्रकार उन्हीं के वे अनुज कुमार भरत हैं ॥ ९ ॥

लक्ष्मण—आओ ! आओ । इक्ष्वाकुवंशभूषण कुमार । वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरजीवी होओ !

असुरों के साथ संग्राम कर विजय प्राप्त करनेवाले असुरसंहारकारी वज्र से स्पर्धा करनेवाले, धनुष को धारण करनेवाले, महान् पराक्रमी एवं वीर्यसंपन्न पूर्वजों

रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो
भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥ १० ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

लक्ष्मणः—कुमार ! इह तिष्ठ। त्वदागमनमार्याय निवेदयामि।

भरतः—आर्य ! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि। शीघ्रं निवेद्यताम्।

लक्ष्मणः—बाढम्। (रामस्य समीपमुपसृत्य) जयत्वार्यः। आर्य !

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥ ११ ॥

पक्षतः युद्धकरणेनेति शेषः। चापं धनुर्येषां तैः तादृशैः, असुरैः सह क्रियमाणे युद्धे एतेषां चापानां वज्रापेक्षया स्वोत्कर्षं ज्ञापयितुं स्पर्धा जायते इत्यर्थः। अनुपमम् = अप्रतिमम् बलम् = वीर्यं येषां तैः स्वैः कुलैः = वंश्यैः तुल्यवीर्यं यस्य सः = सदृशपराक्रमः सन् स प्रसिद्धः यज्ञविश्रान्तकोशः—यज्ञे विश्रान्तः निःशेषदानविनियुक्तः कोशः वित्तसंचयो येन तादृशः। भ्राजितानाम् = शोभितानां गुणानां = शौर्योदारत्वादीनाम् भाजनम्=आश्रयः आधारीभूतो नरेन्द्रः भव। अस्मत्पूर्वजाः पुरुषाः दैत्येन्द्रान् पराभूयेन्द्रेण सहासनं संप्राप्य सर्वस्वदक्षिणाकैर्यज्ञैरिष्ट्वा महतीं कीर्त्तिमवापुस्तद्रक्षणे सर्वथावहितेन भवता भाव्यमिति भरताय लक्ष्मणोपदेशः। विशेषणानां साभिप्रायतया परिकरालङ्कारः। मालिनीछन्दः ॥ १० ॥

अन्वय—भ्रातृवत्सलः ते दयितः भ्राता अयं भरतः प्राप्तः। यत्र आदर्शे

के समान तुम पराक्रमी बनो और अपना समस्त कोश विश्वजित् नामक यज्ञ में दान कर देनेवाले महाराज रघु की भाँति समुन्नत गुणों के पात्र बनो ॥ १० ॥

भरत—आज मैं अनुगृहीत हुआ।'

लक्ष्मण—कुमार ! तुम यहीं ठहरो। जब तक तुम्हारे आने की सूचना आर्य से निवेदन करूँ।

भरत—आर्य ! मैं शीघ्र ही प्रणाम करना चाहता हूँ। अतः शीघ्र से शीघ्र निवेदन कीजिये।

लक्ष्मण—ठीक है (राम के पास जाकर) जय हो आर्य की। आर्य ! आर्य ! ये आपके प्रिय भ्रातृवत्सल भाई भरत जिनमें आपका रूप दर्पण के

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेव ! भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! भरतदर्शनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—अय्यउत्त ! किं भरदो आअदो ? [आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः ?]

रामः—मैथिलि ! अथ किम् ?

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम् ।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥ १२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः ?

रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि । गच्छ, सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

रूपम् इव ते संक्रान्तं रूपं तिष्ठति ॥ ११ ॥

व्याख्या—अयमिति—अयम् = पुरो वर्त्तमानः; भ्रातृवत्सलः—भ्रातरि वत्सलः भ्रातृवत्सलः त्वयि स्नेहवान् ते = भवतः दयितः=प्रियः भ्राता अयं भरतः प्राप्तः । त्रय यस्मिन् आदर्शे दर्पणे रूपमिव ते संक्रान्ताम् प्रतिबिम्बितं रूपं तिष्ठति प्रतिबिम्बितं सदवभासते । रूपेण तव सदृश इति भावः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुब्छन्दः । अत्र भ्रातृवत्सलः ते दयितः भ्राता इति च पदम् समानार्थकन् । तेन पुनरुक्तदोषः ।

समान संक्रमित है (द्वार पर) खड़े हैं ।

राम—वत्स ! लक्ष्मण ! क्या भरत सचमुच आये हुये हैं ।

लक्ष्मण—आर्य ! और क्या ?

राम—मैथिलि ! तब तो भरत को देखने के लिये अपनी आँखें फैला लो ।

सीता—आर्यपुत्र । क्या भरत आये हुये हैं ?

राम—मैथिलि ! और क्या ?

आज मुझे मालूम पड़ता है कि पिता ने (मेरा त्यागकर) कितना कठिन कार्य किया है । यदि भ्रातृप्रेम ऐसा है तो पुत्रप्रेम कैसा (प्रगाढ) होगा ?

लक्ष्मण—आर्य ! क्या कुमार भरत प्रवेश करें ?

राम—वत्स ! लक्ष्मण ! क्या तुम इसमें भी मेरी अनुमति की अपेक्षा करते हो । जाओ शीघ्र ही आदरपूर्वक कुमारभरत को लाओ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

रामः—अथवा तिष्ठ त्वम्।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥ १३ ॥

अन्वयः—अद्य खलु अवगच्छामि (यत्)। मे पित्रा दुष्करं कृतम्। यतः अयम् भ्रातृस्नेहः ईदृशः (अस्ति) ततः तनयस्नेहः कीदृशः भवेत् इति ॥ १२ ॥

व्याख्या—अद्येति = अद्यः = भरतागमनकाले खलु = निश्चयेन अवगच्छामि = जानामि अनुभवामि यत् मम पित्रा = दशरथेन दुष्करम् सर्वथा कर्तुमशक्यम्, पुत्रत्यागप्राणत्यागादिरूपं कार्यम् कृतम् = अनुष्ठितम्। तेन असामान्यकार्यं विहितमिति भावः। यतः अयम् भरतस्येति शेपः। भ्रातुः प्रेम ईदृशः मदनुगनमकार्यप्रयोजकः चेत् ततः तनयस्नेहः = पुत्रस्नेहः कीदृशः = कीदृशकार्यप्रयोजको भवेदिति वर्णनसंभावनापि नास्ति। अयं भावः—यदि भ्रातृस्नेहनियन्त्रितो भरतः प्राप्तं निःसपत्नं स्वराज्यं त्यजेत् तर्हि पिता स्वप्राणत्यागरूपमसंभवमपि कार्यं कर्त्तुं व्यवस्येदिति ॥ १२ ॥

इदमपि = भ्रातृप्रवेशनमपि आत्माभिप्रायम् = मदीयचित्तानुवर्त्तनम्, अनुवर्त्तयितुम् = अनुमन्तुं स्वीकारयितुम् इच्छसि = अभिलपसि। अयं भावः। भरतस्य प्रवेशार्थं मदीयानुमितिवाञ्छा न कदापि कर्त्तव्या त्वया मदनुमतिं विनैव भरतः प्रवेशनीय इति। पुनः रामः लक्ष्मणं प्रतिपेधति अथवेत्यादिना। त्वं तिष्ठ मा गच्छ। भरतप्रवेशायेति शेपः।

अन्वयः—तुपारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा आसारम् इव हर्षास्रम् उत्सृजन्ती इयं सीता तनये माता इव भावं निवेश्य मानहेतोः स्वयम् गच्छतु।

व्याख्या—इयमिति—तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा—तुषारपूर्णे हिमकणावृते उत्पलपत्रे कुवलयदले इव नेत्रे नयने यस्याः सा। आसारम् धारासंपातमिव हर्षास्रम्

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा।

राम—अच्छा तुम यहीं रुको।

ओसकणों से युक्त नीलकमल के समान नेत्र वाली यह सीता वर्षा की झड़ी के समान अपने अश्रुप्रवाहपूर्ण नेत्रों से पुत्र के प्रति माता जैसा वात्सल्य भाव प्रकट करती हुई स्वयम् ही भरत के सत्कारार्थ जावें ॥ १३ ॥

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य) हं ! तदो तं वेलं दाण णिक्कान्तो अय्यउत्तो । णहि णहि । रूवसादिस्सं । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । ततस्तां वेलामिदानीं निष्क्रान्त आर्यपुत्रः । नहि नहि । रूपसादृश्यम् ।]

सुमन्त्रः—अये वधूः ?

भरतः—अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री ?

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥ १४ ॥

आनन्दाश्रुजलप्रवाहम् उत्सृजन्ती परित्यजन्ती इयं सीता तनये स्वपुत्रे माता इव भावं निवेश्य कृत्वा भरतस्य मानहेतोः सत्कारार्थम् स्वयम् आत्मनैव गच्छतु । यथा माता पुत्रागमनं निशम्य वाष्पपूर्णलोचना सती स्वयमेव स्वागतेन तं संभावयति तथेयमपि सीता आगतस्य भरतस्य सत्कारार्थं स्वयं यायादित्यर्थः । एतेन भरतं प्रति स्वकीयं बहुमानं प्रदर्शितम् । उपजातिश्छन्दः ॥ १३ ॥

सीता रामसदृशं भरतं विलोक्य भ्रान्तचित्ता तं रामं मन्यमाना स्वकीयं विस्मयं प्रदर्शयति—हमित्यादिना । हमिति आश्चर्यार्थे । तां वेलाम् तस्मिन्नेव समये निष्क्रान्तः बहिर्निर्गतः । अस्मिन्नेव समये आर्यपुत्रोऽपि बहिरागत इत्याश्चर्यम् । पुनः भ्रान्त्यापगमे ब्रवीति—नहि नहीति । रूपसादृश्यम् समानाकारता एव भ्रमकारणम् वस्तुतः अयमार्यपुत्रो नास्ति । अयं तु भरत एव ।

अये इति हर्षे विषादेऽपि सीतादर्शनेनौत्सुक्यम् वनवासेन विषाद इति ।

अन्वयः—हलात् क्षेत्रोदरात् जातम् इदम् तत् प्रसिद्धम् स्त्रीमयम् तेजः यत्

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा ! (उठकर आगे बढ़कर तथा भरत को देखकर) हैं यह क्या मेरे साथ ही आर्य पुत्र भी बाहर चले आये । नहीं नहीं रूप की समानता है (यह आर्यपुत्र नहीं) ।

सुमन्त्र—अरे ! यह वधू है ?

भरत—अरे ! ये श्रीमती जनकराजपुत्री हैं ।

यह तो वही स्त्रीमय तेज है; जो हल चलाते समय खेत के मध्य से उत्पन्न हुआ था । इतना ही नहीं, यह तो महाराज जनक के उत्कृष्ट तप का उत्तम उदाहरण है ॥ १४ ॥

आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

सीता–(आत्मगतम्) णहि रूवं एव्व। सरजोओ वि सो एव्व ! (प्रकाशम्) वच्छ ! चिरं जीव । [नहि रूपमेव। स्वरयोगोऽपि स एव। वत्स ! चिरंजीव ।]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरहि । [एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।]

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः ।

भरतः—तात, इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्रः—अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ।। १५ ।।

नृपेन्द्रस्य जनकस्य तपसः सत् निदर्शनम्—

व्याख्या--इदमिति—हलात् सीरात् क्षेत्रोदरात् क्षेत्रं कर्षणयोग्यभूमिस्तस्य उदरात् मध्यभागात् जातम् समुत्पन्नम् इदं तत् प्रसिद्धम् स्त्रीमयम् स्त्रियः विकारम् स्त्रीमयम् स्त्रीरूपम् तेजः भाः यत् नृपेन्द्रस्य राजशिरोमणेः जनकस्य तपसः सत् उत्तमम् निदर्शनम् उदाहरणम्—जनकराजः क्षेत्रकर्षणकाले लाङ्गलादुत्थितां तेजःपुञ्जधारिणीं स्वतपःफलप्रसूतां यां कन्यां लब्धवान् सा सीतैवेति भावः ।

अभिवादये प्रणमामि । भ्रातृमनोरथम्—भ्रातुः रामचन्द्रस्य मनोरथम् अभिलाषम् पूरय सफलीकुरु रामस्त्वां द्रष्टुमिच्छत्यतस्तत्समीपं याहीति भावः । किं करिष्यसि मयैव सह प्रवेक्ष्यसि आहोस्वित् पश्चाद् प्रवेक्ष्यसीति भावः ।

अन्वयः—नराधिपे स्वर्गं याते विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् अतः

आर्ये । मैं भरत आपको प्रणाम करता हूँ ।

सीता--केवल रूप ही नहीं, स्वर भी आर्य के स्वर से मिलता जुलता है (प्रकाश) वत्स ! चिरञ्जीवी होओ ।

भरत--आपके द्वारा अनुगृहीत हुआ ।

सीता--आओ वत्स ! अपने भाई की अभिलाषा पूर्ण करो ।

सुमन्त्र--कुमार भीतर जाइये ।

भरत--तात ! तो आप यहाँ रहकर क्या करेंगे ।

भरतः—एवमस्तु। (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव !

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥१६॥

अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि ।

व्याख्या—अहमिति—(यतः) नराधिपे राज्ञि दशरथे स्वर्गं याते गते विदितार्थस्य परिज्ञातस्वर्गगतसमाचारस्य रामस्य मम सुमन्त्रस्य एतत् पूर्वदर्शनम् प्रथमं साक्षात्कारः अस्ति अतः अहं पश्चात् त्वयि प्रविष्टवति प्रवेक्ष्यामि । दशरथमरणानन्तरमद्यावधि मया न रामो विलोकितः अतस्त्वया सह गमने तस्य पितृशोकों देदीप्यमानो भवेत् । पश्चाद्गमने तु पूर्वं भ्रातृदर्शनानन्देन तस्य शोको नोदेतीति भावः ।। १५ ।।

अन्वयः—कपाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय । सुविपुलेन भुजद्वयेन मां आलिङ्ग । शरदिन्दुकल्पम् इदं आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरम् प्रह्लादय (च)।

व्याख्या—वक्ष इति—कपाटपुटप्रमाणम्—कपाटयोः पुटम् कपाटपुटम् कपाटपुटम् तत् प्रमाणं यस्य तत् कपाटोदरविस्तीर्णम् वक्षः उरःप्रदेशम् प्रसारय विस्तारय । सुविपुलेन महाविशालेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन आलिङ्गय परिष्वजस्व । इदम् शरदिन्दुकल्पम् शरच्चन्द्रसदृशम् आननम् मुखम् उन्नामय ऊर्ध्वं कुरु । एभिर्व्यापारैः व्यसनदग्धम् विविधदुःखोपहतम् इदं शरीरं प्रह्लादय आनन्दय । तव एभिर्व्यापारैः विविधदुःखोपहतमिदं शरीरम् कियतांशेन प्रसादमधिगच्छेदिति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सुमन्त्र—महाराज दशरथ के स्वर्ग जाने तक का समाचार श्री राम को मिल चुका है (उसके बाद मेरा यह प्रथम साक्षात्कार होगा मेरे प्रथम जाने से उनका महत् पितृशोक कहीं उमड़ न पड़े) अतः आपके जाने के पश्चात् ही मैं प्रवेश करूँगा (जिससे भ्रातृ सम्मिलन के आनन्द में उनका पितृशोक उद्दीप्त न हो ।)

भरत—अच्छा यही सही । (राम के समीप जाकर) मै भरत आपको प्रणाम करता हूँ ।

राम—(हर्ष के साथ) आओ । इक्ष्वाकुकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो ।
कपाट के समान विस्तीर्ण अपना विशाल बक्षःस्थल आगे बढ़ाओ । और

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान् ।

रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये खं समानैर्विमानै-
 र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ।
स श्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं
 स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥ १७ ॥

जयत्वायुष्मान् इति—सुमन्त्रस्य एकाकिनः प्रवेशेन जयत्वायुष्मानिति राजोचितेनाशिषाऽत्र पितृमरणस्य निश्चयमाशंसमानो रामः शोकसंतप्तहृदयो ब्रवीति हा तातेति—

अन्वयः—यः पूर्वं सासुराणां सुराणां विमर्दे अभिसरिसमये स्वसैन्यैः समानैः विमानैः खं गत्वा स स इति बहुशः विख्याताः (जातः) । स श्रीमान् त्यक्तदेहः नरेन्द्रः दयितं अपि स्नेहवन्तम् भवन्तं विना स्वर्गस्थः सन् साम्प्रतं स्वैः पितृभिः नरेन्द्रैः रमयति किम् ?

व्याख्या—गत्वेति—यः पूर्वम् पुराकाले सासुराणाम् असुरसहितानां सुराणां देवानाम् विमर्दे युद्धे देवासुरसंग्रामे इत्यर्थः । अभिसरिसमये—अभिसरेः समयस्तस्मिन् देवसहाय्यार्थमभिगमनकाले समानैः देवतुल्यैः विमानैः व्योमयानैः, करणे तृतीया । स्वसैन्यैः खम् आकाशं गत्वा स स सोऽयम् सोऽयम् इति बहुशः सोयं दश-

---

अपने दोनों विशाल भुजाओं से मेरा आलिङ्गन करो, इतना ही नहीं, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान अपना निर्मल मुख ऊपर करो । और चिरकाल के विविध व्यसनों से दग्ध हुए मेरे इस शरीर को शीतल करो ॥ १६ ॥

भरत—आपने मुझे अनुगृहीत किया ।

सुमन्त्र—(पास जाकर) जय हो आयुष्मान् की ।

राम—हा तात !

पूर्वकाल में होनेवाले देवासुर संग्राम में जब देवताओं की सहायता के लिये अपनी सेना के साथ देव सदृश विमान में बैठकर मेरे पिता दशरथ स्वर्ग जाते थे उस समय युद्ध में उनके रण कौशल से चकित हुये सभी दर्शक वही दशरथ हैं

सुमन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
वहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ १८ ॥

रथः सोऽयं दशरथ इति बहुशः बहुवारम् विख्यातो जनाः प्रसिद्धि लब्धवान् । तस्य अपूर्वम् किमपि युद्धकौशलं दृष्ट्वा विस्मिता जनास्तमेवाङ्गुल्या सोऽयम् सोऽयम् इति निर्दिशन्तीति भावः । स श्रीमान् श्रीसंपन्नस्त्यक्तदेहः परित्यक्तशरीरः नरेन्द्रः महाराजो दशरथः दयितम् अत्यन्तप्रियम् स्नेहवन्तं सानुरागम् भवन्तमपि विना स्वर्गस्थः सन् साम्प्रतम् स्वपितृभिः नरेन्द्रैः रमयति प्रमोदयति आत्मानमिति शेषः अथवा स्वार्थिकाणिच् रमते आनन्दमनुभवतीति किम् वितर्के न कथमपीति भावः । यः पुरा देवासुरसंग्रामे त्वया सह स्वर्गं गत्वा बहुशः प्रसिद्धि लब्धवान् स इदानीं त्यक्तदेहः सन् स्वीयैर्पितृभिर्वर्त्तमानोऽपि त्वया विना कथं मोदमानस्तिष्ठेदिति भावः । उदात्तालङ्कारः । 'उदात्तं वस्तुनः संपदिति' तल्लक्षणम् । स्रग्धराच्छन्दः । भ्रम्नैयानां त्रयेण त्रिमुनि यति युता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्' इति तल्लक्षणम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—नरपतिनिघनम् भवत्प्रवासम् भरतविपादम् कुलस्य अनाथतां बहुविघम् दुष्प्रसह्यं अनुभूय मे आयुषा गुणे बहु अपराद्धम् इव ।

व्याख्या–नरपतीति–नरपतिनिघनम् राज्ञो मरणम् भवत्प्रवासम् भवतां त्रयाणां वनवासम् वासार्थं वने कृतां यात्राम् भरतविषादम् ईदृग्विधमशक्यदुःखम् कुलस्य ईदृक्समुन्नतस्य कुलस्य इक्ष्वाकुवंशस्य अनाथतां अशरणतां इत्येवं रूपं बहुप्रकारकं दुष्प्रसह्यं दुःखेन सोढुं शक्यम् दुःखम् क्लेशम् अनुभूय मे मम आयुषा जीवितेन गुणे चिरजीवित्वलक्षणे इदं बह्वपराद्धम् अनल्पापराद्धः कृतः विहितः । यद्यहं

इस प्रकार से उनकी प्रसिद्धि करते थे; किन्तु वही श्रीमान् महाराज दशरथ आज अपना शरीर छोड़कर स्वर्ग में अपने पितरों के साथ निवास करते हुए भी अत्यन्त प्रिय एवं स्नेह करनेवाले आपके विना भला क्या आनन्द प्राप्त करते होंगे ॥ १७ ॥

सुमन्त्र—(शोक से) महाराज की मृत्यु, आप तीनों का वनवास, भरत पर इस प्रकार की विपत्तिः इक्ष्वाकुवंश को इस प्रकार का दैन्य आदि नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव करने वाले मेरे इस चिरायु रूप गुण ने मेरा महान् अपराध किया है ॥ १८ ॥

सीता—रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो । [रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।]

रामः—मैथलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण ! आपस्तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) इमा आपः ।

रामः—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

चिरजीवित्वं नाध्यगमिष्यम् तदैतानि दुःखानि नान्वभविष्यम् इति ममायुषा गुणभूते चिरजीवित्वविषयेऽनल्पापराधो विहितः इति भावः । यद्यप्यायुषो दीर्घत्वं हि गुणः किन्तु तत्र दुःखबाहुल्यानुभवो अपराधः । गुणे दोषत्वकल्पनाल्लेशालङ्कारः । 'लेशो गुणे दोषलेशादपि दोषकल्पना' इति तल्लक्षणात् । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

व्याख्या—व्यवस्थापयामि प्रकृति गतं संपादयामि । आपस्तावदानीयन्तामिति शेषः । न खलु न्याय्यम् नेदं समुचितम् । क्रमेण जन्मक्रमेण शुश्रूषयिष्ये सेवां संपादयिष्ये । कनिष्ठतया प्रथममहं सेवाकार्ये नियोक्तव्य इति भावः । अत्र सर्वत्र ण्यन्तप्रयोगोऽनावश्यकः । विशीर्यते विच्छिद्यते । वने लक्ष्मणेनैव जलानयनं विधेयमासीत् अधुना तत्र भरतो नियुज्यते इति लक्ष्मणसेवा विच्छिद्यते । इह वने । तत्र नगरे । शुश्रूसतु सेवाकर्म संपादयतु । एवं सेवाप्रविभागोऽतिरमणीय इति भावः ।

सीता—रोते हुए आर्यपुत्र को तात और रुला रहे हैं ।

राम—मैथिलि ! यह लो मै अपने को संभाले लेता हूँ । वत्स लक्ष्मण ! जल तो लाओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा ।

भरत—आर्य ! यह समुचित नहीं । क्रमपूर्वक (छोटे बड़े के क्रम का विचार करते हुए) शुश्रूषा होनी चाहिये । मैं ही जल लाने जा रहा हूँ । (कलश लेकर जल लाने भरत स्वयम् जाते हैं जल लेकर प्रवेश कर) यह लीजिये जल ।

राम—(आचमन करके) मैथिलि ! लक्ष्मण की सेवा छिनी जा रही है ।

सीता—अय्यउत्त ! णं एदिणा वि सुस्सूसइदव्वो। [आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः।]

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु। तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु।

भरतः—प्रसीदत्वार्य !

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति॥ १९॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम्।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते॥ २०॥

अन्वयः—इह देहेन स्थास्यामि। तत्र कर्मणा स्थास्यामि। भवतो नाम्नैव राज्यम् कृतरक्षं भविष्यति।

व्याख्या—इहेति—इह अस्मिन् त्वया सनाथीकृते वने देहेन शरीरेण सहितः स्थास्यामि त्वां सेवमानो वत्स्यामि। तत्र अयोध्यायाम् कर्मणा राज्यपालनात्मकेन कर्त्तव्येण स्थास्यामि वत्स्यामि। शरीरेण वने तिष्ठन्नपि सर्वं राजधानीकार्यमनायासं संचालयिष्यामि। नन्वत्र दूरदेशे वसता भवता नित्यावधानसाध्यम् दुष्करं राजधानीकार्यं कथं संचालयिष्यते इत्यत आह नाम्नैवेति रामस्य राज्यमिति भवतो नामधेयनिर्देशमात्रेण रामो राजा अस्य राज्यस्ये'त्येवं रूपेण वा राज्यम् कृतरक्षम् कृता रक्षा यस्य तत् तथाभूतं भविष्यति। अनुष्टुप् छन्दः।

भरतोक्तिमन्यथा मन्यमानो रामो ब्रवीति मा मैवमिति ब्रूहीति शेषः।

सीता—आर्यपुत्र ! इनके द्वारा भी आपको सेवा ग्रहण करनी चाहिये।

राम—अच्छा तो यहाँ लक्ष्मण हमारी सेवा करें। वहाँ भरत सेवा करें।

भरत—महाराज मुझ पर प्रसन्न हों।

मैं यहाँ इस वन में शरीर से निवास करूँगा। और वहाँ केवल राज्यप्रबन्ध रूप कार्य करते हुए निवास करूँगा। राज्य की रक्षा तो 'इस राज्य के राजा राम हैं अथवा यह राम का राज्य है' इस प्रकार आपके नाम मात्र से हो ही जायगी॥ १९॥

राम—कैकेयीपुत्र ! ऐसा मत कहो।

सुनन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

अन्वयः—वत्स अहम् पितुः नियोगात् वनम् आगतः । दर्पात् न । भयात् न । विभ्रमात् न । नः कुलं च सत्यधनम् अतः ते ब्रवीमि भवान् नीचपथे कथं प्रवर्त्तते इति ।

व्याख्या—पितुरिति—वत्स ! अहं रामः पितुर्नियोगात् पित्राज्ञा कारणात् वनम् अरण्यम् आगतः । दर्पात् अभिमानात् वनं नागतः भयाद्वा वनं नागतः । विभ्रमात् बुद्धिविभ्रंशनाद् वनं नागतः । नः अस्माकम् कुलम् वंशः सत्यधनम् सत्यपालनकर्मनिष्ठम् इति तु भवानपि जानाति तत् तस्मात् कारणात् ते ब्रवीमि राज्ये अवधानविशेषादानार्थं त्वां संबोधयामि । एवं स्थिते विचार्यमाणे भवान् नीचपथे कुत्सितमार्गे कथं केन प्रकारेण प्रवर्त्तते प्रवृत्तो भवति पित्रनुशासनकारणेन वने वसन्तं मां जानता भवता नात्र स्थातव्यम् पित्रा हि भवत्कृते राज्यपालनकर्मं प्रदत्तम् । अत उभाभ्यामपि तदनुशासने वर्त्तितव्यम् राज्यसंचालनपरित्यागरूपमार्गो हि भवता नानुसरणीयः इति भावः । अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः । वंशस्थं वृत्तम् ।। २० ।।

व्याख्या—राज्यमनिच्छन्तावुभौ भ्रातरौ विलोक्य कस्य अभिषेकः कार्य इति संदिहानस्सुमन्त्रः रामाभिषेकार्थमानीतमुदकं प्रतिचिन्तयन् कस्य शिरसि उदकाभिषेकः करणीय इति पृच्छति अथेदानीमित्यादि । मातृवचनमपि पालनीयम् अतः यथा मात्रोक्तं तथैव करणीयमिति विचिन्त्य रामो ब्रवीति—यत्रेति—भरत इत्यर्थः । भरतो

हे वत्स ! मैं पिता की आज्ञा के कारण वन में आया हूँ गर्व से नहीं, भय से नहीं, बुद्धि के व्यामोह से भी नहीं । हमारा कुल सत्यरूप धन के पालन के लिये प्रसिद्ध है यह तो तुम भी जानते हो किन्तु तुम्हें पुनः सावधान करता हूँ कि हम दोनों को ही अपने पूज्य पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिये । फिर तुम इस प्रकार के गर्हित मार्ग में क्यों उतरना चाहते हो ।

सुमन्त्र—अच्छा आप बतावें कि इस लाये गये अभिषेक के जल को क्या किया जाय ?

राम—मेरी माता ने जैसा कहा है उसी का अभिषेक किया जाना चाहिये ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥ २१ ॥

रामस्य सरलवचनमपि साक्षेपं मत्वा सकण्टं वदति = प्रसीदतु इति । अलमिदानी व्रणे प्रहर्त्तुम् । व्रणमत्र कैकेयीकुकृत्यम् । अलं योगे चतुर्थी प्रयोगस्य विहितत्वेन प्रहर्त्तुमिति तुमुनः प्रयोगोऽपाणिनीयः ।

अन्वयः—अपि सुगुण ! त्वत्प्रसूतिः ममापि प्रसूतिः निभृतधीमान् खलु ते पिता मे पिता च । हे सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषः दोषः न भवति । हे वरद ! तावद् आर्त्तम् भरतम् यथावत् पश्य ।। २१ ।।

व्याख्या—अपीति—अपि = यदि सुगुण = सुशोभना गुणा यस्य तत्संबुद्धौ हे सुगुण प्रशस्तगुणयुक्त ! त्वत्प्रसूतिः = त्वदुत्पत्तिवंशः ममापि प्रसूतिः = ममापि प्रभवस्थानम् । यस्मिन्वंशे भवान् समुत्पन्नस्तस्मिन्नेव वंशे अहमपीति भाव । निभृतधीमान्—नितरां भृता निभृता श्रेष्ठा स्थिरा वा धीरस्यास्तीति निभृतधीमान् = अचञ्चलचित्तः खलु निश्चयेन ते पिता मे पिता च, चकारो भिन्नक्रमः तेन ते पिता ममापि पितेत्यर्थः । हे सुपुरुष = हे सज्जन ! पुरुषाणां मातृदोषः = मातृकृतोऽपराधः दोषः = अपराधः न भवति । हे वरद—वरं ददातीति तत्संबुद्धौ हे वरद = हे ईप्सितार्थप्रदायक । आर्त्तम् = त्वत्परित्यागेन पीडितम् भरतम् यथावत् पूर्ववत् पश्य = अनुजानीहि । न चोपेक्षस्वेत्यर्थः । अत्र सर्वेषां संबोधनपदानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः । 'उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' इति तल्लक्षणात् । मालिनीवृत्तम् । लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।। २१ ।।

भरत—महाराज प्रसन्न हों । घाव पर प्रहार मत कीजिये । हे प्रशस्त गुणशील ! आप जिस कुल के हैं वही कुल मेरा भी है । जो लोकविख्यात अचञ्चल मति आपके पिता हैं वही मेरे भी पिता है । हे सज्जन पुरुष ! माता के द्वारा किया गया अपराध उसके पुत्र पर नहीं थोपना चाहिये । अतः हे वरदाता—इस अपने भाई भरत को पूर्व की भाँति ही कृपा दृष्टि से देखिये (दोष लगाकर इसकी इस प्रकार उपेक्षा मत कीजिये ।)

सीता—[अय्ययुत्त ! अग्निकरुणं मन्तेअइ भरदो। किं दाणिं अय्यउत्तेण चिन्तीअदि। [आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते।]

रामः—मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो ! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ २२ ॥

स्त्रीस्वभावसुलभदयार्द्रहृदया सीता भरतस्य करुणं वाक्यं निशम्य रामं वदति आर्यपुत्रेति। अनिकरुणम् = नितरां दीनम् चिन्त्यते = विचार्यते। भरतोक्तप्रकारेणानुष्ठानमनुमन्यताम्। भरतस्तादृशापराधयोग्यो नास्तीति भावः।

अन्वयः—सुरलोकयातं तं नृपतिं चिन्तयामि। येन अयम् आत्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः। लोके ईदृग्विधम् गुणनिधिं पुत्रं समवाप्य पुरुषोत्तमेषु यदि विधेर्बलं प्रभवेत् तदा भोः धिक् ?

व्याख्या:—तमिति भरतगुणविमुग्धो रामस्तं प्रशंसति—सुरलोकयातम् = स्वर्गगतम्, तं = नृपतिम् महाराजं दशरथं चिन्तयामि = अनुशोचामि। अस्यां भरत गुणचिन्तनवेलायां स्वपितरं स्मरामीत्यर्थः। येन अयम् आत्मजविशिष्टगुणः—आत्मजस्य = स्वकीयपुत्रभरतस्य विशिष्टः उदात्तः गुणः ज्येष्ठभ्रातृकृते प्राप्तराज्यपरित्यागो, मातृकृतान्याचरणपराङ्मुखतारूपो न दृष्टः न लक्षितः। लोके ईदृग्विधम् = एवंप्रकारं = भरतसदृशं गुणनिधिं = गुणाकरम् पुत्रं समवाप्यापि पुरुषोत्तमेषु = पुरुषश्रेष्ठेषु विधेर्बलं = भाग्यप्रभुत्वं यदि प्रभवेत् तदा भोः धिक् तर्हि किं वक्तव्यम्। एतादृशगुणविशिष्टं पुत्रं लब्ध्वापि यदि तातेन तद्गुणः परिपन्थिदैवपारवश्यान्न दृष्टस्तदा महान् खेद इति भावः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२१॥

सीता—आर्यपुत्र ! भरत की प्रार्थना अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण है। फिर इस समय आप सोंच क्या रहे हैं ?

राम—मैथिलि !

मैं स्वर्गगत अपने पिता के प्रति सोचता हूँ जिन्होंने अपने इस आत्मज के ऐसे

वत्स ! कैकेयीमातः !
यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः ।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥ २३ ॥

अन्वयः—भवता यत् सत्यं परितोपितः अस्मि भवान् निष्कल्मषात्मा (भवता) ख्यातैः गुणैः (अहं) निर्जितः (अतः) त्वद्वाक्यस्य वशानुगः अस्मि । किन्तु एतत् नृपतेः वचनं त्वया अनृतं कर्त्तुं न युक्तम् किञ्च भबद्विधं (पुत्रम्) उत्पाद्य ते पिता मिथ्याभिधायी भवतु (किम्) ॥ २३ ॥

व्याख्या—भरताशङ्कितमपराधं निरस्यन् तस्य कर्त्तव्यपथं चोपदिशन्नाह—रामः यत्सत्यमिति = भवता यत् सत्यम् = वास्तविकम् परि तोषितः अस्मीति हेतोः भवान् निष्कल्मषात्मा—कल्मषान्निष्क्रान्तः निष्कल्मषः स चासौ आत्मा चेति = निर्मलचित्तः न ते पापबुद्धिरिति भावः । भवतां ख्यातैः = सुप्रसिद्धैः गुणैः त्यागादिभिः अहं निर्जितः पराजितः अतः त्वद्वाक्यस्य वशानुगः अधीनस्थः अस्मि । तस्मात्ते वचनमहं करिष्ये इति भावः । अत्रैकस्यैव भरतस्य कृते भवद्युष्मदोः शब्दप्रयोगः प्रक्रमभङ्गं दोषं व्यनक्ति । किन्तु एतत् 'भरतो राजा भवेत् इत्येवं रूपो नृपतेः राज्ञः = दशरथस्य वचः = वचनम् अनृतम् = असत्यं कर्त्तुं न युक्तम् = न न्याय्यम् । किञ्च भवद्विधं योग्यतमम् पुत्रम् उत्पाद्य जनयित्वा ते पिता मिथ्याभिधायी, मिथ्या अभिधानं शीलमस्येति मिथ्याभिधायी अनृतवक्ता भवतु किमित्याक्षेपः त्वया पितृपाददत्तं राज्यमङ्गीकर्त्तव्यमिति यद्वा ते मिथ्याभिधायी इत्यत्र अमिथ्याभिधायी इति छेदः तेन सत्यवक्ता भवेत् इत्यर्थोऽपि लभ्यते । काक्वा प्रयोजनं नास्ति । भवन्तं सत्पुत्रमुत्पाद्य सत्यवक्ता स भवेदिति युक्तमेव ।

विशिष्ट गुणों को नहीं देखा । ऐसे गुणनिधि सत्पुरुषरत्न को पाकर भी पिताजी पर जिस प्रकार भाग्य का जो निष्ठुर प्रहार हुआ उस दैव को धिक्कार है ।

वत्स ! कैकेयीनन्दन ! तुमने मुझे वस्तुतः (अपने आचरण से) प्रसन्न कर लिया । आप सचमुच निर्मल चित्त हैं क्योंकि आपके मन में छल नहीं है । तुमने

भरतः—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।
रामः—मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धि
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—यावद् भवन्नियमावसानं भविष्यति हे नृप ! तावत् इह वने ते पादमूले भवेयम् ।

व्याख्या—यावदिति—यावत् यावन्तं कालमभिव्याप्य, भवन्नियमावसानम् भवतो नियमस्य वनवासव्रतस्य अवसानम् समाप्तिर्भविष्यति, हे नृप हे राजन् ! तावत् तावत्कालपर्यन्तम् इह वने इहारण्ये त्वत्पादमूले त्वत्सन्निधौ त्वदाश्रितः सन् भवेयम् तिष्ठेयम् । यावत्कालं भवान् इह वने स्थास्यति तावत्कालपर्यन्तं भवन्तं शुश्रूषमाणस्तिष्ठेयमिति भरतस्याभ्यर्थना । अस्यैवोत्तरं रामः उत्तरार्धेन वदति मैवमिति—

अन्वयः—मा एवम् । नृपः स्वसुकृतैः सिद्धिम् अनुयातु स्वराज्यम् न परिरक्षसि चेत् मे शापितः असि ।

व्याख्या—मैवमिति—एवम् मा वादीरिति शेषः । नृपः तातचरणः स्वसुकृतैः स्वसत्यपालनजनितसुकृतैः सिद्धिम् अनुयातु लभताम् । त्वत्कर्तृकराज्यानङ्गीकारे तु तस्य मिथ्याभिशस्तिर्भवेद् येन तस्य सिद्धिर्विनश्येदतोऽलं तथाभिधायेत्यर्थः । यद्येवमपि स्वराज्यं राज्यपालनरूपं स्वं कर्त्तव्यम् न पालयसि चेत् तदा मे शापितः असि मया शप्तो भविष्यसि । वर्त्तमानसामीप्ये लट् । स्वकर्त्तव्यानङ्गीकारे त्वामहं शप्स्यामीत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् । लक्षणं प्रागभिहितम् ।

मुझे जीत लिया है अतः मैं तुम्हारी बात मानने को सर्वथा समुद्यत हूँ । किन्तु पितृचरण के वचन को तुम्हें मिथ्या करना उचित नहीं । भला तुम्हारे जैसे योग्यतम पुत्र को उत्पन्न कर पिताजी अनृतवक्ता हों यह उचित होगा क्या ? (अथवा 'अमिथ्याभिधायी' इस प्रकार का पदच्छेद कर तुम्हारे जैसा सत्पुत्र उत्पन्न कर सत्यवक्ता बने रहें । यह भी अर्थ हो सकता है ।)

भरत—महाराज ! जब तक आप वनवास की अवधि पूर्ण करें तब तक मैं आपके सन्निधान में रहकर आपके चरणों की सेवा करता रहूँ यही प्रार्थना है ।

भरतः—हन्त अनुत्तरमभिहितम् भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुमिच्छामि।

रामः—एवमस्तु।

भरतः—आर्य ! श्रुतम्। आर्ये ! श्रुतम्। तात ! श्रुतम्।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः।

हन्त इति खेदे। अनुत्तरम् नास्ति उत्तरं प्रतिवचनम् यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषणपदमिदम्। भवतु स्वीकारार्थं वचनम्। निक्षिप्तम् निक्षेपत्वेन स्थापितम। राज्यं तु तवैव। अहं त्वद्वनवासपर्यन्तं प्रतिनिधिरूपेण पालयिष्यामीति समयः निर्बन्धः। प्रतिग्रहीतुमिति अपाणिनीयम् पदम् 'समानकर्तृकयोः चाकाले' इत्यनुशासनात्। यद्वान्तर्भावितण्यर्थोऽत्र ग्रहिः तेन प्रतिग्राहयितुमित्यर्थः। आर्य ! श्रुतमित्यादि। रामेण मत्कृतः समयः अङ्गीकृतः इति सीतालक्ष्मण-

---

राम—भरत ! ऐसा कदापि मत कहो। पिताजी अपने सुकृत के प्रभाव से स्वयम सिद्धि प्राप्त करें। यदि तुम राज्यपालन रूप अपने कर्त्तव्य को स्वीकार नहीं करोगे तो मेरे द्वारा शाप प्राप्त करोगे। अथवा यदि तुम राज्य की रक्षा नहीं करोगे तो तुम्हें मेरी शपथ है।

भरत—खेद है कि आपके द्वारा कहे गये वचनों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं। अच्छा इस शर्त्त पर मैं राज्य सञ्चालन के लिये तैयार हूँ।

राम—वत्स ! वह शर्त्त क्या है ?

भरत—मैं चाहता हूँ कि निक्षेप रूप से मेरे पास रखा हुआ राज्य आप चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर वापस ले लें।

राम—मुझे स्वीकार है।

भरत—आर्य लक्ष्मण ! आपने सुना। आर्ये ! आपने सुना एवं तात सुमन्त्र आपने सुना।

सभी—हाँ, हम सभी ने यह बात सुन ली।

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स ! किमिच्छसि किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

भरतः—पादोपभुक्ते तव पादुके मे एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद्भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥२५॥

रामः—(स्वगतम्) हन्त भोः !

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम् ।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ २६ ॥

सुमन्त्रान् साक्षित्वेन व्यवस्थापयितुमित्थमुच्यते किमहमिति । अहं किं प्रदाय किं वा कार्यमनुष्ठाय त्वां नोपयेयमित्यादि प्रश्नेन त्वत्कृते मम किमप्यदेयमनुष्ठेयं वा नास्ति तदर्हसि यथारुचि संप्रार्थयितुमिति रामकथनस्याशयः ।

अन्वयः—मूर्ध्ना प्रणताय मे एते पादोपभुक्ते पादुके प्रयच्छ । यावद् भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति तावद् अनयोः विधेयः भविष्यामि ।

व्याख्या—पादोपभुक्ते इत्यादि—मूर्ध्ना शिरसा प्रणताय प्रह्वाय मे मह्यम् एते पादाभ्यामुपभुक्ते इति पादोपभुक्ते चरणव्यवहृते पादुके काष्ठनिर्मिते पादत्राणे प्रयच्छ देहि किमर्थं पादुकायाचनं क्रियते इत्यत आह यावदिति—यावत् यावत्कालावधि भवान् कार्यसिद्धिम् कार्यसंसाधनम् एष्यति संपादयिष्यति स्वकालावधिं समापयिष्यति तावत् तावत्कालपर्यन्तम् अनयोः पादुकयोः विधेयः आज्ञाकरःसेवकः भविष्यामि । पश्चात् तव राज्यं तुभ्यं प्रत्यर्पयिष्यामीत्यर्थः । इन्द्रवज्रावृत्तम् । स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । इति लक्षणं पूर्वमभिहितम् ।

अन्वयः—मया सुचिरेण अपि कालेन किञ्चिदेव यशः अर्जितम्—(किन्तु)

भरत—आर्य ! एक प्रार्थना और करना चाहता हूँ ।

राम—वत्स भरत ! क्या चाहते हो ? मैं तुम्हें क्या दूं ? अथवा मुझे तुम्हारा कौन-सा कार्य करना है ?

भरत—बहुत दिनों से चरणों पर पड़े हुए मुझे आप अपने पैरों की दोनों पादुकायें प्रदान करें। आपकी कार्यसिद्धि पर्यन्त मै इन्हीं का आज्ञाकारी सेवक बनकर निवास करूँगा ।

राम—अहा । मैंने किञ्चिन्मात्र यश का अर्जन किया वह भी बहुत समय

सीता—अय्यवुत्त ! णं दीयदि खु पडमजाअणं भरदस्स। [आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरतस्य।]

रामः—तथास्तु। वत्स ! गृह्यताम्।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा) आर्य ! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि !

रामः—तात ! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम्।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

भरतेन अद्य अचिरेण कालेन महद् यशः सञ्चितम्।

व्याख्या—रामः भरतं प्रशंसति सुचिरेणेति—मया सुचिरेण दीर्घकालेन अपि किञ्चिदेव स्वल्पमेव यशः अर्जितम् संपादितम्। किन्तु भरतेन अद्य अचिरेण एव कालेन स्वल्पसमयेन प्राप्तं राज्यं परित्यजता भ्रातृभक्ति च कुर्वता महद् यशः सञ्चितम् एकत्रीकृतम्। मया हि पितृभक्तिस्वरूपस्य यशसोऽर्जनाय चिरकालपर्यन्तम् परिश्रान्तम्। किन्तु भरतेन भ्रातृभक्तित्वात्मकं यशः अल्पेन समयेन अर्जितम्। मया तु दीर्घकालेन अर्जितम् तदपि किञ्चिन्मात्रम्। तेन तु स्वल्पेन कालेन महद् यशः सञ्चितम्। व्यतिरेकालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।

प्रथमयाचनम् प्राथमिकाभीष्टपादुकारूपमित्यर्थः। आवर्जयितुम् अभिषेक्तुम्। हन्त ! इति हर्षे। रामानुग्रहसिद्धया कृतकृत्यतया च भरतस्यायम् शब्दः। तदेव विवृणोति—

लगाकर। किन्तु भाई भरत ने बहुत यश सञ्चित कर लिया। वह भी स्वल्प समय लगाकर।

सीता—आर्यपुत्र ! आप भरत की पहली माँगी हुई वस्तु प्रदान करते हैं न।

राम—वत्स ! मुझे स्वीकार है। यह पादुका लो।

भरत—बहुत बड़ी कृपा हुई। (पादुकायें लेकर) आर्य ! इसका अभिषेक करना चाहता हूँ

राम—तात सुमन्त्र ! भरत की जैसी इच्छा है वह सब संपादन करो।

सुमन्त्र—जैसी आयुष्मान् की आज्ञा।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ।

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः !
भ्रातृणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्त्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥ २७ ॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।

अन्वयः—अहं (संप्रति) स्वजनस्य श्रद्धेयः । पौररुचितः । लोकस्य दृष्टिक्षमः । स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितः सुतः । गुणशालिनां भ्रातृणां बहुमतः । कीर्त्तेः महद्भाजनम् । गुणवतां संवादेषु कथाश्रयः । लब्धप्रियाणां प्रियः जात इति शेषः ।

व्याख्या—श्रद्धेय इति—अहम् (संप्रति) वन्धुजनस्य श्रद्धेयः श्रद्धायोग्यः, जात इति शेषः । एवमग्रेऽपि जातशब्दो योजनीयः । पौररुचितः पुरे भवाः पौरास्तेषाम् रुचितः इष्टत्वेनाभिमतः । लोकस्य दृष्टौ दर्शने क्षमः । रामेणानुगृहीतस्य मे अद्य वन्धुजनकृता श्रद्धा, पौरप्रीतिपात्रता लोकलोचनसाक्षात्कारता चाभूदिति भावः । स्वर्गस्थस्य दिवंगतस्य नराधिपस्य राज्ञो दशरथस्य शीलान्वितः सत्स्वभाववृत्तः दयितः प्रियः सुतश्च पुत्रश्च अहं सञ्जातः । गुणशालिनां प्रशस्तगुणवतां भ्रातृणां बहुमतः बहुमानविषयः । कीर्त्तेः यशसः प्रशस्तं भाजनं च जातः । किञ्च गुणवताम् गुणिनां संवादेषु परस्परालापेषु कथाश्रयः कथनयोग्यः । लब्धप्रियाणाम् प्राप्तकामानां, प्रियः प्रीतिभाजनमित्यर्थः । एतत्सर्वं रामकृपयैव मया लब्धम् । अन्यथा कैकेयीवन्धुतया जना मामतिजघन्यं जानीयुरिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥

भरत—(अपने मन में) बड़ी प्रसन्नता की बात हुई ।

आज मैं अपने सगे सम्बन्धियों का श्रद्धापात्र, नगरवासियों का प्रेमभाजन, संसार में लोगों को मुख दिखाने के योग्य, स्वर्गीय महाराज का सच्चरित्र पुत्र भाइयों के द्वारा बहुमान प्राप्त करने योग्य कीर्त्ति का भाजन गुणवानों के वार्त्तालाप में चर्चा का विषय तथा पूर्णकाम जनों का स्नेही हो गया ?

राम—बत्स कैकेयीनन्दन ! राज्य की क्षणमात्र भी उपेक्षा नहीं करनी

तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्त्ततां कुमारः।

सीता—हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो। [हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः। ?]

रामः—अलमतिस्नेहेन। अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्त्ततां कुमारः।

भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि।

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

व्याख्या—रामो भरताय कर्त्तव्यमुपदिशति—वत्स इति। मुहूर्त्तमपि क्षणमात्रमपि नोपेक्षणीयम् राज्यसंचालने दत्तावधानेन भाव्यमित्यर्थः। विजयाय राज्यकार्यसंचालनाय राज्यस्थदस्यूनां विनाशाय च। सीता भरतस्य शीघ्रगमनकारणेन खिद्यन्ती ब्रवीति—हमित्यादि। हम् इति विषादार्थकः। रामः सीताखेदं परिहरन्नाह अलमिति अतिस्नेहेन अलमिति इदानीम् भरते हि स्नेहप्रदर्शनेन न कोऽपि लाभः ॥ २८ ॥

अन्वयः—पौराः त्वद्दिदृक्षया आशावन्तः स्थास्यन्ति। तेषां प्रीतिं त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् करिष्यामि।

व्याख्या—आशेति-पौराः पुरे भवाः पौराः नगरनिवासिनो जनाः। त्वद्दिदृक्षया द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा तया त्वदवलोकनोत्कण्ठया आशावन्तः त्वद्दर्शनविषयकाशाशालिनः स्थास्यन्ति स्थिता भविष्यन्ति। भरतोऽवश्यमेव राममनुनीयायोध्यां परावर्त्तिष्यतीति विश्वासं करिष्यमाणाः स्वचक्षुःसाफल्यार्थमाशावन्तो भवेयुरित्यर्थः। तेषां त्वां दिदृक्षमाणानां पौराणां प्रीतिम् प्रसन्नताम् त्वत्प्रसादस्य त्वया दीयमानस्य पादुकारूपस्य दर्शनात् करिष्यामि संपादयिष्यामि। त्वां दर्शयितुमशक्तोऽहम् त्वत्पादुकादर्शनमात्रेण पौरान् परितोषयिष्यामीत्यर्थः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २८ ॥

चाहिये। इसलिये कुमार को राज्य के परिपन्थियों (विरोधियों) पर विजय प्राप्त करने के लिये आज हीं लौट जाना चाहिये।

सीता—हैं ! क्या आज ही कुमार भरत चले जायँगे।

राम—बस करो। बहुत स्नेह का प्रदर्शन अच्छा नहीं। कुमार को आज ही लौट जाना चाहिये।

भरत—आर्य ! आज ही मैं जा रहा हूँ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(रथमारोहतः)

रामः—मैथिलि इतस्तावत् । वत्स । लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यावः । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

व्याख्या—तावत् जीवनपर्यन्तम् । रामः सीतां लक्ष्मणं च भरतानुगमनार्थमाह्वयति मैथिलीति । आश्रमपदद्वारमपि आश्रमसीमापर्यन्तम् आसीमान्तमुदकान्तं वानुव्रजेदिति स्मृतेः । अनुयात्रम् यात्रायाः पश्चादिति अनुयात्रम् । पश्चादर्थे अव्ययीभावः संभावनायामनुगमिष्याम इति भावः । इति निष्क्रान्ताः सर्वे । इत्यङ्कसमाप्तिः ।

नगर निबासी जन आशा लगाये आपके दर्शनों के लिये अपनी आँखें बिछाये अधीर हो राह देखते होंगे । मैं यद्यपि आपको अयोध्या में परावर्त्तित न कर सका फिर भी उन्हें यह चरणपादुका दिखाकर प्रसन्न करूँगा ।

सुमन्त्र—राजन् ! अब मुझे क्या करना चाहिये ?

राम—तात ! जैसे महाराज की सेवा करते थे वैसे ही कुमार भरत की भी सेवा कीजिये ।

सुमन्त्र—जब तक जीवित रहूँगा तब तक इसका प्रयत्न करता रहूँगा ।

राम—वत्स कैकेयी नन्दन ! मेरे सामने रथ पर बैठों ।

भरत—जैसी आपकी जाज्ञा ।

(रथ पर सुमन्त्र और भरत दोनों ही सवार होते हैं ।)

राम—सीता इधर आओ । बत्स लक्ष्मण । तुम भी आओ । हम सभी आश्रम के द्वार पर्यन्त चलकर भरत को बिदाकर आवें । (ऐसा कर सभी चले जाते हैं)

प्रतिमा नाटक के चौथे अङ्क की गङ्गा नाम्नी संस्कृत-टीका
एवम् हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो । अस्समपदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो । ता जाव अय्यउत्तो ण आअच्छदि, दाव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं । [आर्ये ! उपहारसुमन आकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः । आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।]

तापसी—अविग्घं से होदु । [अविघ्नं ते भवतु ।]

(ततः प्रविशति रामः)

अस्मिन् पञ्चमाङ्के सीताहरणं प्रतिपादयिष्यन् कविरादौ तापसीसहितायाः सीतायाः प्रवेशमाह—ततः प्रविशतीत्यादि । उपहारसुमन आकीर्णः उपहारार्थं देवपूजार्थं ये सुमनसः पुष्पाणि तैराकीर्णः व्याप्तः । सम्मार्जितः पुष्पाद्यपनयनेन संशोधितः । आश्रमपदविभवेन आश्रमस्थानसुलभपुष्पफलाद्युपकरणसंपदा देवसमुदाचारः देवपूजाकार्यम् अनुष्ठितः सुसंपादितः । नागच्छतीत्यत्र 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इत्यनेन भविष्यदर्थे लट् । अनुक्रोशयिष्यामि अनुक्रोशो दया तां करिष्यामि । अस्य अनुक्रोशस्य अविघ्नम् विघ्नराहित्यम् भवतु । अनेन भावी रावणकर्तृकसीताहरणरूपो विघ्नः संसूचितः ।

(सीता और तापसी का प्रवेश)

सीता—आर्ये ! निर्माल्य के पुष्पों से परिव्याप्त समस्त आश्रम झाड़ू लगा कर शुद्ध कर दिया है । इतना ही नही आश्रमसुलभ पुष्पफलादि उपकरणों से देवपूजन का कार्य भी संपादित कर दिया है । अच्छा अब इन छोटे-छोटे पौदों को, जो दया के पात्र हैं, ही सींचती हूँ जब तक आर्यपुत्र आ नहीं जाते ।

तापसी—तुम्हारा कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो ।

(राम का प्रवेश)

रामः—(सशोकम्)।

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः।
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भोः! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥ १ ॥

(विमृश्य) ईदृशमेवैतत्। यावदिदानीमीदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि। तत् क्व नु खलु गता वैदेही ? (परिक्रम्यावलोक्य)

अन्वयः—गुरुणा पित्रा, मया च रहिताम् तां रम्याम् अयोध्यापुरीं च त्यक्त्वा अखिलं ममाभिषेकम् उद्यम्य अपि मत्सन्निधौ आगतः गुणनिधिः स भरतः पुनः संप्रेषितः एकः सः सुमहतीम् नृपतेर्धुरं समुत्कर्षति इति कष्टम् भोः ॥ १ ॥

व्याख्या—गुरुणा तातेन मया च रहिताम् शून्यीकृताम् रम्याम् मनोहारिणीम् अयोध्यापुरीं अयोध्यानगरीं त्यक्त्वा अखिलमपि संपूर्णमपि मम वनवासिनो रामस्य अभिषेकम् राज्यारोहणार्थमभिषेकसंभारम् उद्यम्य एकत्रीकृत्य मत्सन्निधौ मम समीपे इह वने आगतः संप्राप्तः। गुणनिधिः गुणाकरः स भरतः पुनः तत्रैव अयोध्यायाम् संप्रेषितः यथागतस्तथा प्रत्यावर्त्तितः। एकः असहाय सः सुमहतीम् अतिशयगुरुतराम् नृपतेः धुरम् राज्यभारम् समुत्कर्षति समुद्वहति। कष्टम् भोः अतिशयकष्टकारकम्। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

व्याख्या—ईदृशमेवैतत् ईदृशम् कष्टमयम् एतत् राज्यधुरम्। अवस्थाकुटुम्बिनीम् सुखदुःखादिसर्वावस्थासु सहायभूताम्। प्रत्यग्राभिषिक्तानि प्रत्यग्रम् नूतनं

राम—(शोक पूर्वक) पूज्यपाद पिताजी और मुझसे रहित उस परम मनोहर अयोध्या नगरी को छोड़कर तथा मेरे राज्याभिषेक का सारा संभार लेकर कुमार भरत मेरे पास इस वन में आये। मैंने उस गुणागार भरत को पुनः वहीं भेज दिया। अब वह असहाय होकर राजा के उस गुरुतर भार को अकेले उठाये हुये है।

(विचार कर) यह राज्यभार ऐसा ही है। अच्छा तो इस शोक को भुलाने के लिये सुख दुःखादि सब प्रकार की अवस्थाओं में साथ रहने वाली

अये इमानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति तथाहि—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ २ ॥

यथा स्यात्तथाभिषिक्तानि । अदूरगताम् समीपवर्त्तिनीम् ।

अन्वयः—सलिलम् वृक्षावर्त्ते अवस्थितं सफेनम् भ्रमति । तृषितपतिताः एते खगाः क्लिष्टम् तत् जलं न पिबन्ति । बिले जलपूरिते आर्द्राः कीटाः स्थलम् अभिपतन्ति । वृक्षाः मूले जलक्षयरेखया नववलयिनः सन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—भ्रमतीति—सलिलम् जलम् वृक्षावर्त्ते–वृक्षाणाम् आवर्त्ते आलबाले अवस्थितम् संस्थितम् सफेनम् फेनेन सहितम् भ्रमति परिवहति । तृषितपतिताः तृषिताः पिपासिता अत एव पतिता उड्डीय संप्राप्ताः एते खगाः पक्षिणः क्लिष्टम् सकलुषमत एव मलिनम् तत् जलं न पिबन्ति । किञ्च बिले गर्ते जलेन पूरिते भरिते आर्द्राः क्लिन्नशरीराः सन्तः कीटाः स्थलम् शुष्कस्थानम् अभिपतन्ति । जलप्लावनपर्याकुलाः क्लिन्नाः कीटाः बिलान्निःसृत्य स्थलं प्रत्यागच्छन्ति । जलक्षयरेखया जलस्य यः क्षयः शोषः तज्जनितया रेखया वृक्षाः मूले नववलयिनः नवं यत् वलयं मण्डलम् नववलयम् तेन युक्ताः सन्ति । अत्र यथावद्वस्तुवर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । हरणीवृत्तम् ।

अपनी कुटुम्बिनी सीता से मिलूं ।

(पुनः घूम कर और देख कर) ये वृक्षों के थाले अभी अभी सींचे हुए जान पड़ते हैं इससे ज्ञात होता है कि सीता यहीं पास में ही कहीं हैं । क्योंकि—वृक्षों के थाले में भरा गया फेन सहित जल घूम रहा है । प्यासे हुए पक्षिगण दूर से उड़कर आने पर भी उस मलिन जल को पीना नहीं चाहते । बिल में जल भर जाने से भीगी हुई चीटियां स्थल की ओर भाग रही हैं । वृक्षों के मूल में जल सूख जाने पर उसमें पड़ी हुई रेखा से नवीन गोल मण्डल आकार से युक्त दिखाई पड़ रहे हैं । (पुनः जानकी को देखकर) अरे जानकी तोयहाँ हैं । ओह ! कितने दुःख की बात हैं ।

(विलोक्य) अये इयं वैदेही । भोः ! कष्टम् ।

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सः नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ३ ॥

(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता— हं अय्यउत्तो ! जेदु अय्यउत्तो । [हम्, आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्र ।]

अन्वयः—यः अस्याः करः दर्पणेऽपि श्राम्यति सः कलशं वहन्त्याः खेदं न एति । कष्टम् वनम् स्त्रीजनसौकुमार्यम् लताभिः समम् कठिनीकरोति ।

व्याख्या—योऽस्या इति—यः अस्या जानक्याः करः हस्तः दर्पणेऽपि दर्पणमात्रधारणेऽपि श्राम्यति ताम्यति खिद्यते वा (भूतार्थे लट्) सौकुमार्यातिशयेन दर्पणभारमपि न सेहे, सः करः कलशम् वृक्षसिञ्चनार्थं घटं वहन्त्या धारयन्त्याःखेदं श्रमं नैति न प्राप्नोति । कष्टम कष्टकरम् वनम् अरण्यजीवनम्, कर्तृ स्त्रीजनस्य अबलामात्रस्य स्वभावसुलभम् सौकुमार्यम् सुकुमारताम् (कर्म) लताभिः वनजाताभिः वल्लीभिः समम् समानम् कठिनीकरोति कष्टम् इति । दर्पणधारणेऽपि ताम्यन् करः कलश- भारवहने न श्राम्यतीति विरोधः । सौकुमार्यम् कठिनं भवतीति विरोधस्तेन विरोधाभासनामकोऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा 'आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते' इति' । सहोक्तिरपि—सा सहोक्तिः सहार्थश्च बलःदेकं द्विवाचकम्' इति लक्षणात् 'समं कठिनीकरोतीत्युपमापि । उपजातिछन्दः ।

व्याख्या-तपः कायक्लेशस्तपः तच्चात्र वृक्षसेचनजन्यायासरूपम् वर्धते निर्विघ्नतया एधमानमस्तीति किम् । अपीति प्रश्नार्थकः । वृक्षसेचनादिपुण्यकर्मनिर्वाहात्मको धर्मः एधमानो वर्त्तते किमित्याशयः । प्रतिवचनार्थिनीम् प्रष्टुकामामुत्तराभिलाषिणीं

इनका जो हाथ दर्पण के भार को भी सहन करने में असमर्थ था वही हाथ अब वृक्षों के सींचने वाले घडे को भी उठाने में खिन्न नहीं होता । ओह ! यह वन्य जीवन कितना कष्टकारक है जो स्त्रियों के स्वभावसुलभ सौकुमार्य को वन्य-लता के समान कठोर बना देता है (पास जाकर)

राम—मैथिली ! तपस्या तो बढ़ रही है ।

सीता—जय हो आर्यपुत्र की ।

रामः—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।] (उपविशति)

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि। किमिदम् ?

सीता—सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ किं एदं ? [शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः किमेतत् ?]

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ?

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तत्रैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तथैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥ ४ ॥

वा । इवेति संभावनार्थे। पश्यामि चिह्नैरिति शेषः । प्रत्येमि विश्वसिमि । शोकशून्यहृदयस्य शोकेन शून्यम् हृदयं यस्य, तथाभूतस्यार्यपुत्रस्य मुखरागः मुखाकृतिः ।

अन्वयः—कृतान्तशल्याभिहते शरीरे मे नत्रैव हृदयव्रणः तथैव नानाफलाः शोकशराभिघाताः तत्रैव पुनः पुनः पतन्ति ।

व्याख्या—कृतान्तेति कृतान्तशल्याभिहते कृतान्तस्य कालस्य शल्यैः वाणैः शरवत्पीडाकरैरुपतापैरित्यर्थः अभिहते साघाते तत्रैव हृदव्रवणः हृदयशोकलक्षणः व्रणः तथैव अद्यापि पूर्ववदेवास्ति, न तु स्वस्थः संपन्न इत्यर्थः । तथाहि नानाफलाः नाना भिन्नभिन्नप्रकारकाणि फलानि राज्यभ्रंशवनवासपितृवियोगादीनि येषान्ते अनेकविघोपतापदायिन इत्यर्थः। बाणपक्षे फलम् वाणाग्रमिति । शोकशराभिघाताः शोका एव शरास्तेषामभिघाताः पुनः पुनः तत्रैव हृदयव्रणे एव पतन्ति आघातं कुर्वन्ति ।

राम—यदि तुम्हारे धर्म में कोई बाधा न पहुँचे तो बैठो ।

सीता—जो आज्ञा । (बैठती है ।)

राम—सीते ! ज्ञात होता है कि तुम कुछ पूछना चाहती हो। क्या बात है ? कहो तो सही ।

सीता—आर्यपुत्र का हृदय शोकसंविग्न होने से मुखाकृति विवर्ण जैसी प्रतीत हो रही है। क्या बात है ।

राम—मैथिलि ! मेरी चिन्ता तो उचित ही है ।

काल के (कुचक्र रूप) बाणप्रहारों से अभी हृदय का घाव भरा भी नहीं कि अनेक फल वाले तीखे बाणों के समान नाना प्रकार के शोकों का आघात पुनः उसी पर प्रारम्भ हो गया ।

सीता—अय्यउत्तस्स को विअ सन्दावो ? [आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?]

रामः—श्वस्तत्र भवतस्तातस्यानु संवत्सरश्राद्धविधिः । कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः । तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते । अथवा—

गच्छन्ति तुष्टि खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥ ५ ॥

अत्र पुनः पुनरिति द्विरुक्तिः प्रहारस्य नितान्तं व्यथाकरत्वप्रतीतये । पितृवियोगरूपं शल्यमनुत्खातमेव यावत्तावन्नानाविधप्रयोजनोपनिपातचिन्ता मम मानसं व्यथयितुमुपतिष्ठन्ते इति । उपजातिश्छन्दः ।

श्वः आगामिनि दिवसे अनुसंवत्सरश्राद्धविविः वार्षिकं श्राद्धम्' कल्पविशेषेण घर्मप्रयोजकश्रेष्ठविधिना निर्वपनक्रियाम् पिण्डसंपादनविधिम् इच्छन्ति । कामयन्ते । तत् कथं केन प्रकारेण निर्वर्तयिष्यामि विधास्यामि । चिन्त्यते विचार्यंते । सीताप्रश्नस्यैतावदुत्तरम् । श्राद्धविषये निर्णेतुं न पारयामि खलु इति चिन्ताविषयः । श्राद्धे हि कल्पद्वयम् साधारणो विशेषश्च तमेवाग्रिमेण श्लोकेन विवृणोति—

अन्वयः—येन केन पितरः खलु तुष्टि गच्छन्ति । हि ते एव में तां दशां जानन्ति । तथापि तातस्य रामस्य च सानुरूपां पूजां कर्त्तुम् इच्छामि ॥ ५ ॥

व्याख्या—येन केन स्वपुत्रस्य दशानुसारेण विधिना पितरः तुष्टिम् तृप्तिम् गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति । हि यतः ते पितरः मे ताम् यस्याहमस्मि तादृशीं दशां जानन्त्येव अत्र एवंकारो भिन्नक्रमः । तथापि तातस्य पितुः दशरथस्य रामस्य च

सीता—तो आर्यपुत्र को कौन सा दुःख है ?

राम—कल पिताजी के वार्षिक श्राद्ध का दिन है । उस दिन पितृगण उत्तम विधि से किये गये पिण्डदान की इच्छा रखते हैं । इसे किस प्रकार पूर्ण करूँ यही सोच रहा हूँ । अथवा

पितृगण तो जिस किसी प्रकार से संतुष्ट हो सकते हैं क्योंकि उन्हें हमारी अवस्था का ज्ञान है । फिर भी मैं पिताजी तथा अपने राम के अनुरूप उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ ।

सीता—अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थानुरू फलोदएण वि अय्यउत्तो। एवं तादस्स बहुमबअरं भविस्सदि। [आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।

रामः—मैथिलि !

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

सानुरूपाम् योग्यतानुसारम् पूजाम् श्राद्धक्रियां कर्त्तुमिच्छामि चिकीर्षामि। स्वस्य तातस्य चानुरूपश्राद्धसंपादने मे दृढा मतिरिति भावः। अतो विशेषरूपेण श्राद्धं संपादयिष्यामीति निष्कर्षः। उपजातिश्छन्दः।

ऋद्ध्या स्वविभवानुसारेण महार्घपदार्थेन, फलानि च उदकं चेत्येतेषां समाहारः फलोदकम् तेन।

अन्वयः—दर्भेषु स्वहस्तरचितानि, फलानि दृष्ट्वा तातः तेन नः वनवासं च स्मारितः सन् तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

व्याख्या—फलानीति दर्भेषु कुशेषु स्वहस्तरचितानि न तु भृत्यद्वारा फलानि न तु राजोचितानि भक्ष्यभोज्यादीनि दृष्ट्वा अवलोक्य तातः मे पिता तेन फलेन वनवासं स्मारितः सन् तत्रापि स्वर्गेऽपि रोदिति रोदिष्यति ॥ ६ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! भरत तो अपनी समृद्धि के अनुसार धूमधाम से पिताजी का श्राद्ध करेंगे ही किन्तु आप अपनी अवस्था के अनुरूप उपलब्ध हुए फल एवं जल से ही कीजिये। यही पिताजी को बहुत पसन्द आयेगा।

राम—सीते ! कुशों पर अपने हाथ से दिये गये फलों को देखते ही उससे पिता जी को हम लोगों के वनवास का स्मरण हो जायगा, और ये उसे याद कर, स्वर्ग में भी रो पड़ेंगे।

(इसके अनन्तर सन्यासी के वेश में रावण प्रवेश करता है।)

रावणः—एष भोः !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा।
स्वरपदपरिहीनां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि॥ ७॥

(परिक्रम्याधो विलोक्य) इदं रामस्याश्रमपदद्वारम्। यावदवतरामि।

अन्वयः—अनियतात्मा अहम् एतत् रूपं गृहीत्वा नियतम् खरवधकृतवैरम् राघवम् वञ्चयित्वा तां जनकनृपसुताम् स्वरपदपरिहीनां हव्यधाराम् इव हर्त्तुकामः प्रयामि॥ ७॥

व्याख्या—रावणः स्वपरिव्राजकरूपधारणस्योद्देश्यं प्रकटयन्नाह—नियतमिति—अनियतात्मा अनियतः अवशः आत्मा मनो यस्य सः अजितेन्द्रियः अहम् एतद् रूपम् परिव्राजकवेषं गृहीत्वा नियतम् जितेन्द्रियम् खरकृतवैरम् खराख्यराक्षसस्य वधेन कृतं वैरं येन तादृशम् राघवम् श्रीरामम् वञ्चयित्वा छलेन प्रतार्य ताम् राघवहीनाम् जनकनृपसुताम् जानकीम् स्वरपदपरिहीनाम् स्वरं च पदं च स्वरपदे ताभ्यां परिहीनाम् यथोचितस्वरपदोच्चारणरहिताम् दीयमानाम् हव्यधाराम् इव हर्त्तुकामः चौर्यार्थम् प्रयामि गच्छामि॥ ७॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

इति स्मृत्या स्वरादिदुष्टमन्त्रोच्चारणे जायमाने हव्यधारा रक्षोभिरपह्रियते अनर्थं चापतति। अतो रामलक्ष्मणाभ्यां परिहीणा जानकीमपहरामि।

आश्रमपदद्वारम् आश्रमस्थानद्वारम्। अवतरामि अधोऽवतीर्णो भवामि।

रावण—अरे यह—

अजितेन्द्रिय मैं इस परिव्राजक वेष को धारण कर खर को मारने के कारण मुझसे वैर करनेवाले जितेन्द्रिय राम की वञ्चना कर शुद्ध स्वर और शुद्ध पद के उच्चारण के विना दी हुई हव्य धारा के समान रामलक्ष्मण से रहित जनक राजपुत्री जानकी को हरने के उद्देश्य से जा रहा हूँ॥ ७॥

(आगे बढ़कर नीचे की ओर देखते हुए) यही है राम के आश्रमस्थान का

(अवतरति) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ?

रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—(विलोक्य) अये भगवन् ! भगवन् ! अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् । एतदासनमास्यताम् ।

रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन । (प्रकाशम्) वाढम् (उपविशति) ।

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

अतिथिसमुदाचारम् आतिथ्यग्रहणोचितसदाचारम् । अहमतिथिः आगत इति शेषः । कोऽत्र भोः इहाश्रमे कः अस्ति यो मां सत्कुर्यादित्यर्थः । रामस्य स्वागतकथने तत्स्वरं श्रुत्वा रूपानुरूपम् तदिति प्रशंसति रावणः—साधु इति । विशेपितमिति अनेन स्वरेण रूपम् विशेषितम् । यद्वा रावणः स्वस्य तापसयोग्यः स्वर इति कृत्वा हर्षमनुभवति । सेवार्थमुद्यतां सीतां विलोक्य तत् स्पर्शे जाते मदीया माया कदाचिद्

द्वार । तो अब नीचे उतरना चाहिये । (नीचे उतरता है) तो अब मैं भी अतिथियों के आचरण योग्य अपने को बनाऊँ । मैं अतिथि हूँ । कहो कोई इस आश्रम में हैं ?

राम—(सुनकर) अतिथि का स्वागत है ।

रावण—इनके स्वर ने तो रूप में विशेषता भी प्रकट कर दी । अथवा मेरा स्वर भी बिल्कुल स्वरूप के अनुकूल बन गया ।

राम—(देखकर मन में) अरे यह तो भगवान् हैं (प्रकट) भगवन् ! आपको प्रणाम करता हूँ ।

रावण—आपका कल्याण हो ।

राम—भगवन् । यह है आसन । इस पर बैठिये ।

रावण—(अपने आप) यह तो मुझे आज्ञा-सी दे रहा है । ठीक है (बैठ जाता है ।

राम—मैथिलि ! चरण धोने के लिये जल तो लाओ ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि। इमा आवो। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति।] (निष्क्रम्य, प्रविश्य) इमा आपः।

रामः—शुश्रूषय भगवन्तम्।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति।]

रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु भवतु।

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥

विनश्येदिति शङ्कया तां निषेधति—भवतु भवतु इति द्विरुक्तिः त्वरया। अलं सेवया। तापसोऽहं कस्यचित्सेवां न वाञ्छामि। 'स्वयं दासास्तपस्विनः' इति न्यायात्। किञ्च 'कुचैलमसहायता' इति तपस्विनो लक्षणम्।

अन्वयः—पृथिव्याम् इयम् मानुषीणाम् एका अरुन्धती यस्याः भर्त्ता भवान् इति हेतोः नारीभिः सत्कृतः सन् कथ्यते ॥ ८ ॥

व्याख्या—इयमिति—पृथिव्यां भुवि इयम् मानुषीणाम् एका अद्वितीया अरुन्धती न रुन्धती पतिमित्यरुन्धती इव पतिव्रता—वसिष्ठपत्नी अरुन्धतीसप्तर्षिमध्ये स्वपातिव्रत्यप्रभावेण एकैव विराजते। इह तु सामान्यपातिव्रत्यबोधनार्थमरुन्धतीशब्दप्रयोगः न त्वन्यऋषिपत्न्यः। यस्याः भर्त्ता इति हेतोः भवान् नारीभिः सत्कृतः सत्कारं प्राप्तः सन् कथ्यते वर्ण्यते। पतिव्रतात्वकारणेन सीता लोकैर्नमस्क्रियते। तत्पतित्वेन भवानपि नारीभिः पूज्यते प्रशस्यते च। अहं परिव्राजकः। स्त्रिया विशेषेण पतिव्रतया पादस्पर्शो न कारयिष्ये इति भावः। 'न विश्वसेद्दारुमयीं योषाम्' इति स्मृतेः।

सीता—आर्यपुत्र की जो आज्ञा (जाकर पुनः लौटकर) यह है जल।

राम—श्रीमान् अतिथि की सेवा करो।

सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा।

रावण—(अपनी माया के प्रकट होने के भय से घबड़ा कर) रहने दो पृथ्वी में मात्र एक यही मानुषियों में अरुन्धती है जिसके पति होने का सौभाग्य प्राप्त करने के कारण स्त्रियाँ आपका सत्कार कर यशोगान करती हैं ॥ ८ ॥

रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये।

रावणः—अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि। वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः। पूजितोऽस्मि। आस्यताम्।

रामः—बाढम्। (उपविशति)

रावणः—(आत्मगतम्) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। (प्रकाशम्) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।

व्याख्या—छायाम् सततानुवृत्या छायावत्संस्थिताम् ते भार्यां सीताम्। शरीरम् त्वाम्। यदाहं त्वदनुवर्त्तिन्या सीतया स्वपादस्पर्शं न वाञ्छामि तत्कथम् शरीरवत्संस्थितेन भवता सेवां समीहे। वाचानुवृत्तिः वाचा वाण्या अनुवृत्तिः सेवा व्यवहारः खलु निश्चयेन अतिथिसत्कारः। अतिथिसत्कारोचितं भाषणमेव मदीयसेवार्थं पर्याप्तम्। वाढमित्यङ्गीकारे। साङ्गोपाङ्गमिति—अङ्गैः उपाङ्गैश्च सहितम् साङ्गोपाङ्गम्। तत्र शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषः अङ्गानि। पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि च उपाङ्गानि। मनुना प्रोक्तम् मानवीयम्। धर्मशास्त्रम् स्मृतिः। महेश्वरादागतम् माहेश्वरम्। बार्हस्पत्यम्—बृहस्पतिना प्रोक्तम् बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम् राजनीतिः। मेधातिथिः गौतमः। प्राचेतसम्—प्रचेतसा प्रोक्तम् प्राचेचेसम्। वारुणम् श्राद्धकल्पम् श्राद्धविधिः। श्राद्धकल्पमिति श्रवणेन

(इसीलिये मैं इन पतिव्रता से सेवाग्रहण नहीं करूँगा)

राम—अच्छा तो जल लाओ मैं ही इनकी सेवा करूँगा।

रावण—जब छाया के समान सीता की ही सेवा नहीं ग्रहण की तो शरीररूप (पुरुष) आपको किस प्रकार सेवा करने दूँ। वाणी से सूनृत भाषण ही मेरी पर्याप्त सेवा है। बैठिये !

राम—अच्छी बात है (बैठ जाते हैं)

रावण—(अपने आप) तो अब मैं भी ब्राह्मणों जैसा व्यवहार करूँ। (प्रकट) मै कश्यपगोत्रीय हूँ। मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मनुप्रणीत धर्मशास्त्र, महेश्वरप्रणीत योगशास्त्र, बृहस्पतिप्रणीत राजनीति, मेघातिथि का न्यायशास्त्र तथा वरुणप्रणीत श्राद्धकल्प का अध्ययन' किया है ?

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति ।

रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता । किमेतत् ?

रामः—भगवन् ! भ्रष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः ।

रावणः—अलं परिहृत्य । पृच्छतु भवान् ।

रामः—भगवन् ! निर्वपनक्रियाकाले केन पितॄँस्तर्पयामि ?

रावणः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

रामः—भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।

प्रासङ्गिकमौत्सुक्यं दर्शयन्नाह—कथं कथमिति । द्विरुक्तिस्तत्रौत्सुक्यप्रदर्शनार्थम् ।

श्रुतीः वेदान् । श्रुतिशब्दो वेदार्थकोऽपीह सर्वशास्त्रोपलक्षणम् । किमेतत् केन कारणेन भ्रष्टायाम् विनष्टायाम् पितृमत्तायाम् पितास्यास्तीति पितृमान् तस्य भावस्तत्ता तस्याम् पितरि मृते इत्यर्थः । एष आगमः श्राद्धकल्पशास्त्रम् प्रसङ्गात्तस्यैवापेक्षितत्वात् । अलं परिहृत्य सङ्कोचं परित्यज्य । निर्वपनक्रियाकाले निर्वपनार्थं पिण्डोदकादिदानार्थं या क्रिया कर्म तस्य काले समये श्राद्धकाले इत्यर्थः । केन द्रव्यविशेषेण । तर्पयामि प्रीणयामि । सर्वमिति श्रद्धया शास्त्रविहितेन येन केनापि दत्तेन पदार्थेन पितरस्तृप्यन्ति । अनादरतः अश्रद्धया यद् दत्तं तस्य परित्यागो नाम न तु तच्छ्राद्धमिति । विशेषार्थम् श्रद्धया दीयमानेषु पदार्थेषु विशेषेण कानि कानि द्रव्याणि पितृंस्तर्पयन्तीति मत्प्रश्नाशयः ।

राम—क्या क्या श्राद्धकल्प ?

रावण—सभी शास्त्रों को छोड़कर आपने श्राद्धकल्प में अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की है । यह क्या बात है ?

राम—भगवन् ! पिता के मर जाने के कारण मेरा श्राद्धकल्प ही विशेषरूपेण जिज्ञास्य विषय है ।

रावण—अच्छा तो सङ्कोच मत कीजिये । जो पूछना है उसे पूछिये ।

राम—भगवन् ! पिण्डदानकाल में किस वस्तु से पितरों को तृप्त करना चाहिये ।

रावण—जो कुछ भी (शास्त्रीय रीति से) श्रद्धापूर्वक दिया जाता है वह सब श्राद्ध है ।

राम—भगवन् ! अनादर (अश्रद्धा) से दिया गया तो त्याग मात्र है (वह

रावणः—श्रूयताम् । विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरी, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

रामः—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

रामः—भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ ९ ॥

विरूढेषु तृणजातिषु दर्भाः कुशाः । ओषधीषु 'ओषध्यः फलपाकान्ताः । इति तेषु कलायम् कालशाकः । वार्ध्रीणसः पक्षिभेदः । यथोक्तम्—

'नालग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः ।
वार्ध्रीणसः स्यात् पक्षीशः·······
मार्कण्डेयोऽपि—रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचक्षुर्विहङ्गमः ।
कृष्णवर्णेन च तथा पक्षी वार्ध्रीणसो मतः ।

खड्गः गण्डकः । 'वा' अनुक्तसमुच्चयार्थे । वा विकल्पोपमानयोः' प्रकृतवाक्ये ऽनुक्तसमुच्चयार्थं वा शब्दस्य प्रयोगस्तेन उक्तादन्योऽपि कश्चिच्छेषोऽस्तीति रामप्रश्नाभिप्रायः । प्रभावसंपाद्यम् प्रभावेण तेजोविशेषेण संपाद्यम् संपादनयोग्यम् । एष एव मे निश्चयः यत्प्रभावसंपादितेन द्रव्येण पितॄंस्तर्पयामीति ।

अन्वयः—(मे) उभयस्य सान्निध्यम् अस्ति । यदेतत् उभयं साधयिष्यति ।

श्राद्ध नहीं कहा जाता) किन्तु मेरा प्रश्न श्राद्धीय विशेष-विशेष वस्तु से है ।

रावण—अच्छा सुनिये । तृणों में कुश, ओषधियों में तिल, शाकों में कालशाक, मछलियों में महाशल्क, पक्षियों में वार्ध्रीण, पशुओं में गाय या गेंड़ा, ये मनुष्यों के लिये विहित श्राद्ध के द्रव्य कहे गये हैं ।

राम—भगवन् ! वा शब्द से मालूम पड़ता है कि कोई और भी वस्तु विहित है ।

रावण—है तो पर वह प्रभाव से प्राप्त की जा सकती है ।

राम—भगवन् ! तब तो मैंने निश्चय किया है कि प्रभाव से प्राप्त वस्तुओं के

रावणः––सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

रामः––हिमवतीति । ततस्ततः ।

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः यैर्वैखान-

---

तपसि श्रान्ते धनुः वा धनुषि श्रान्ते तपः ॥ ९ ॥

व्याख्या—उभयस्य तपसः धनुषश्च सान्निध्यम् सन्निधानम् अस्ति मयीति शेषः । यद् उभयम् कर्तृ एतत् प्रभावसंपाद्यम् कर्म साधयिष्यति पूरयिष्यति तपसि श्रान्ते कुण्ठिते धनुः धनुषि श्रान्ते कुण्ठिते च तपः वा साधयिष्यति । वेति विकल्पार्थे । उभयेन प्रभावसाध्यं तद् वस्तु संपादयिष्यामीति भावः ।

सन्ति प्रभावसंपाद्यानि द्रव्याणीति शेषः । क्वेति जिज्ञासायामाह हिमवति प्रतिवसन्तीति । प्रत्यक्षेति—प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनः प्रत्यक्षस्य अक्ष्णोर्विषयं प्राप्तस्य स्थाणोः शिवस्य शिरसः पतितम् स्खलितम्—यद् गङ्गाम्बु तत् पातुं शीलमेषामिति तथा । हिमवतः सप्तमे सानौ सततं शिवसान्निध्यात्तत्रस्था मृगा शिवशिरसः पतन्त्या गङ्गायाः अधःपतदम्बु यत् केनापि स्पृष्टं न वर्त्तते तदेव पिबन्तीति भावः । अथान्यलक्षणमाह—

वैदूर्यश्यामपृष्ठाः—वैदूर्यं रत्नभेदः तद्वत् श्यामम्=कृष्णवर्णम् पृष्ठं येषा ते तथा । काञ्चनपार्श्वाः स्वर्णवर्णपार्श्वतया तदाख्यया प्रसिद्धाः । यैः काञ्चनपार्श्वमृगैः वैखानसवालखिल्यनैमिषीयादयो महर्षयः । वैखानसाः वाणप्रस्थाः । बालखिल्यास्तन्नामानः । एते हि अङ्गुष्ठमात्रप्रमाणह्रस्वशरीराः ब्रह्मपुत्राः ऋषयः सन्ति । नैमिषीयाः नैमिषारण्यवासिनः तदादयः तत्प्रभृतयः महर्षयः । चिन्तितमा-

---

लिये मेरे पास दो साधन है एक है तप दूसरा है धनुष । ये दोनों ही उस प्रभावसंपाद्य कर्म को करने में समर्थ हैं । यदि तप से काम न चलेगा तो धनुष से पूरा किया जायगा । और यदि धनुष से काम न चलेगा तो तपस्या के द्वारा पूर्ण किया जायगा ।

रावण—काञ्चनपार्श्व मृग है तो, पर यहाँ नहीं । वे हिमालय पर रहते हैं ।

राम—हिमवान् पर । और

रावण—हिमालय की सातवीं चोटी पर जहाँ साक्षात् विराजमान महादेव

सवालखिल्यनैमिषीयादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते,
हित्वा जरां स्वमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानबास-
मार्वातभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥ १० ॥

त्रोपस्थितविपन्नैः चिन्तितमात्रेण उपस्थिताः पुनः विपन्नाश्च ध्यातमात्रोपस्थिता तदनन्तरं मृताश्च तैः । अभिवर्धयन्ति पितृश्राद्धानि महत्त्वपूर्णानि कुर्वन्ति । तदेवाहाग्रिमेण पद्येन—

अन्वयः—तैः तर्पिताः पितरः सुतफलं लभन्ते । ते हि दीप्यमानाः जरां हित्वा खम् उपयान्ति । सुरैः तुल्यं विमानवासं च समुपयान्ति । किञ्च आर्वात्तिभिः विषयैः बलात् न ध्रियन्ते ॥ १० ॥

व्याख्या—तैः काञ्चनमृगैः तर्पिताः तृप्ति प्राप्ताः पितरः पितृगणाः सुतफलम् पुत्रजननलाभम् लभन्ते प्राप्नुवन्ति । इत्याह हि यतः जरां शरीरस्य जीर्णतां हित्वा विमुच्य दीप्यमानाः तेजसा भ्राजमानाः सन्तः खम् स्वर्गम् उपयान्ति गच्छन्ति । वार्धक्यरहिताः देदीप्यमानदेवशरीरेण स्वर्गे निवसन्तीत्यर्थः । किञ्च सुरैस्तुल्यम् सदृशम् विमानवासम् व्योमयानवासं च लभन्ते । आर्वात्तिभिः जननमरणरूपभवभ्रमिप्रदैः विषयैः इन्द्रियार्थैश्च बलादाकृष्य नध्रियन्ते न आकृष्यन्ते संसारवासनातः सर्वथा प्रमुच्यन्ते । दिव्यानि च विषयाणि उपभुञ्जते । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

के मस्तक से गिरनेवाली गङ्गा का स्वच्छ जल पीने वाले वैदूर्यरत्न के समान श्याम पृष्ठ से युक्त वायु के वेग के समान शीघ्रगामी काञ्चनपार्श्व नामक मृग रहते हैं वैखानस, वालखिल्य एवं नैमिषनिवासी महर्षिगणों के ध्यान मात्र से वे उपस्थित होते हैं और सद्यः विपन्न (मर)भी हो जाते हैं। पुनः वे उन मृगों के मांस से पितरों का श्राद्ध कर अपना श्राद्ध पुण्य बढ़ाते हैं । उन काञ्चन मृगों के श्राद्ध से तृप्त हुए पितृगण पुत्र होने का लाभ इसप्रकार प्राप्त करते हैं कि वे वृद्धावस्था को त्यागकर सर्वथा युवा शरीर से देदीप्यमान रहकर स्वर्ग में एवम् देवताओं के तुल्य विमानों

रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
दिन्ध्यं वनं तव सखोर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु,
दोप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥ ११ ॥

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

रावणः—कौशल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन, न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

अन्वयः—(हे वैदेहि) पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमान् विन्ध्यं वनम् तव दयिताः सखीः लताश्च आपृच्छ । दीप्तैः इव औषधिवनैः उपरञ्जितेषु हिमवद्गिरिकाननेषु वत्स्यामि ॥ ११ ॥

व्याख्या—एवं काञ्चनपार्श्वमृगसंपाद्यश्राद्धप्रशंसामुपश्रुत्य तदुपलब्धुम् हिमवच्छिखरं गन्तुमनाः मैथिलीम् प्राह रामः—आपृच्छेति—पुत्रकृतकान् पुत्रभावेन लालितानत एव कृत्रिमपुत्रान् हरिणान् मृगान् द्रुमान् वृक्षान् विन्ध्यं वनम् काननम् तव दयिताः प्रियाः सखीः वयस्याः लताः वल्लीश्च आपृच्छ अनुमतिं गृहाण यतोऽहम् दीप्तैः ज्वलद्भिरिव ओषधिवनैः उपरञ्जितेषु ज्योतिष्मल्लताप्रकाशितेषु काञ्चनमृगशालिषु हिमवद्गिरिकाननेषु वत्स्यामि निवासं करिष्यामि । एतेन मे वनवासः उत्तमविधिना पितृतर्पणं च संपद्येतेति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ११ ॥

अतिमनोरथेन असाध्यसाधनसाध्यकाञ्चनपार्श्वमृगघटितश्राद्धरूपमनोरथेन । मनोमोदकास्वादनभूतेनेत्यर्थः । ते काञ्चनपार्श्वनामानः न मानुषैर्दृश्यन्ते । प्रतिवसन्ति

में निवास करते हैं । तथा संसार के जन्ममरणरूपभूमि से मुक्त हो जाते हैं । वे और विषयों के द्वारा आकृष्ट हो पुनः सांसारिक वासनाओं में नहीं पड़ते ।

राम–सीते ! अब तुम पुत्र तुल्य इन मृगों, वृक्षों, विन्ध्य के वन, यहाँ की प्रिय सखियों एवं लताओं से चलने की आज्ञा माँग लो, क्योंकि अब मैं देदीप्यमान औषधियों से प्रकाशित (काञ्चन पार्श्वमृगों से अधिष्ठित) हिमालय पहाड़ के काननों में निवास करूँगा ।

सीता–-आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

रावण—कौसल्यापुत्र ! वैसी मनोकामना न करो । उन्हें मनुष्य नहीं देखते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ?

रामः—तेन हि पश्यतु भवान् ।

सौवर्णान् मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो वा मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥ १२ ॥

तिष्ठन्ति । अथ यदि तत्र ते तिष्ठन्ति तर्हि तदुपलब्धये मया यत्कर्त्तुं व्यवसितं तदेवं जानीहि इत्याह रामः सौवर्णान् इत्यादि—

अन्वयः—हिमवान् तान् सौवर्णान् मृगाम् मे दर्शयिष्यति ञा मद्बाणवेगेन भिन्नः क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥ १२ ॥

व्याख्या—हिमालयः तान् मुनिजनकर्तृकपितृश्राद्धोपयुक्तान् सौवर्णान् काञ्चनपार्श्वमृगान् मे मह्यं दर्शयिष्यति प्रत्यक्षीकरिष्यति वा अथवा मद्बाणवेगेन मम वाणानां वेगेन रंहसा भिन्नः छिन्नः विदीर्णो वा क्रौञ्चपर्वततुल्यावस्थां गमिष्यति प्राप्स्यति अत्र श्लोके क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यतीत्यत्रेयमन्तर्कथा—क्रौञ्चोऽयं मैनाकस्य पुत्रः हिमालयस्य पौत्रः कार्त्तिकेयस्य मातुलेयश्चासीत्—पुरा देवासुरयुद्धे स्कन्दपराक्रमभीतः महिषः क्रौञ्चगुहायां निलीनोऽभवत् तद्वधार्थं शक्रेण स्कन्दः मुहुर्मुहुः प्रेरितः किन्तु स मातुलेयोऽयमिति तद्वचनम् नानुमेने । पुनः शक्र आह—मया तु नमुचिः योऽस्माकं भ्रातासीत् संधायापि निहतः । न च त्वं मत्तो वलवानसि—अतस्त्वयाऽस्य वधो विधातव्य एव । तद्वाक्यं श्रुत्वा कुपितः स्कन्दस्तमवोचत् मूढ़ न त्वं मत्तः शक्तिमान् असि एवमहमहमिकया कलहे जाते यः प्रथमं क्रौञ्चपर्वतस्य प्रदक्षिणां विधास्यति स एव शक्तिमत्तरः आवयोः इत्येवं समयं विधाय उभाभ्यां क्रौञ्चपर्वतस्य प्रदक्षिणा प्रारब्धा । ततः शक्रः प्रथमं क्रौञ्चपर्वतस्य प्रदक्षिणं विधायावोचत् मया हि त्वत्तः प्रथमं प्रदक्षिणा विहिताऽतोहम् त्वदपेक्षया

राम—क्या हिमालय पर रहते हैं ?

रावण—और क्या ?

राम—तो आप देखें—या तो हिमालय उन सुवर्णमय मृगों को मुझे दिखायेगा अथवा मेरे बाणों वेग से फूटकर क्रौञ्च की अवस्था को प्राप्त करेगा ।

रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः। (प्रकाशम्) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते। कौशल्यामातः! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा।

सीता—दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ। [दिष्ट्या आर्यपुत्रो वर्धते।]

रामः—न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि!॥ १३॥

शक्तिमत्तरः अथायं क्रौञ्चस्ते मातुलेयः साक्षी। तदनन्तरम् स्कन्देन पृष्टः क्रौञ्चोऽवोचत्—सत्यम् शक्रेण प्रथमं प्रदक्षिणा कृतात्राहमेतस्य कर्मणः साक्षीति। तच्छ्रुत्वा कुपितः स्कन्दः बाणेन महिषसहितं क्रौञ्चम् जघान। इयं कथा काशिराजसंस्करणे वामनपुराणे ३२ अध्याये विस्तरेण वर्णिता। एतद्धि क्रौञ्चस्य क्रौञ्चत्वं संस्मारयन् रामो रावणं ब्रवीति यदि हिमवान् काञ्चनपार्श्वमृगान् मां न दर्शयिष्यति तदाहम् क्रौञ्चवत् तमपि स्वबाणेन भेत्स्यामि।

व्याख्या—असह्यः = सोढुमशक्यः। अवलेपः = पराक्रमजन्यगर्वः। अये इति विस्मये। विद्युत्संपातः = अशनिवद्दीप्यमानः स्वमाययोत्पादितं सौवर्णमृगम् रामाद् भीतहिमालयप्रदर्शितं प्रख्यापयन् रावणः रामम् वञ्चयति—कौशल्यामातरित्यादि। इहस्थमेव इह स्थाने = स्थितमेव पूजयति कैलासजातकाञ्चनमृगोपस्थापनेनार्चयति। एषः = सन्निकटे संस्थितः। ऋजुस्वभावो रामः स्वयमुपस्थितौ रावणमेव कारणं मन्यमान आह—भगवतो वृद्धिरेषा।

अन्वयः—यदि एषः स्वयमागतः (तर्हि) तातस्य एतानि भाग्यानि पूजायाम् अर्हति। अतः हे मैथिलि लक्ष्मणं ब्रूहि॥ १३॥

रावण—(अपने मन में) अरे! इतना गर्व तो असहनीय है। (प्रकट) कौसल्यापुत्र। हिमालय इस दण्डकारण्य में ही आपका सत्कार कर रहा है। देखिये सन्निकट में यह काञ्चनमृग दिखाई पड़ रहा है।

राम—यह आपका प्रभाव है।

सीता—तब तो आर्यपुत्र का अहोभाग्य है।

राम—नहीं नहीं। यह जो स्वयं यहाँ इस वन में आ पहुँचा। वह पिताजी

सीता—अय्यउत्त ! णं तित्थअत्तादो उवाबत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्गच्छेहित्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती । [आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपति प्रत्युद्गच्छति सन्दिष्टः सौमित्रिः ।]

रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता—अय्यउत्त ! अहं किं करिस्सं ? [आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ?]

रामः—शुश्रूषस्व भगवन्तम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तो रामः)

व्याख्या—तातस्येति—यदि एषः = स्वयम् इह = वने आगतः तर्हि तातस्य=पूज्यस्य मम पितुः भाग्यानि = दिष्ट्या समागत इत्यर्थः । एषः मम पितुः श्राद्धे वार्षिकविधौ पूजायाम् अर्हति उपयुज्यते । हे मैथिलि ! त्वं अस्यानयनार्थम् लक्ष्मणं ब्रूहि कथय। लक्ष्मणः एनमानयत्विति ।' १३ ॥

उपावर्त्तमानम् = प्रत्यावर्त्तमानम् । कुलपतिम् = तपोबनस्य प्रधानमहर्षिम् तल्लक्षणं यथा 'मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात् । अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः' ॥ प्रत्युद्गच्छ = स्वागतं विधेहि । संदिष्टः = आज्ञप्तः । अनवेक्ष्य = अगृहीत्वैव ।

का सौभाग्य है । यह पिताजी के वार्षिक श्राद्ध में पूजा के लिये उपयुक्त है ऐसा लक्ष्मण से कहो ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! लक्ष्मण को तो आपने तीर्थयात्रा से लौटे हुये कुलपति के स्वागत के लिये आदेश दिया है ।

राम—तब तो मैं ही जाऊँगा ।

सीता—आर्यपुत्र मैं क्या करू ?

रामः—तत्रभवान् (अतिथि) की पूजा करो ।

सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

(राम का प्रस्थान)

रावणः—अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः। एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः।

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ १४ ॥

एष मृग एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः।

सीता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तविरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ। [आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते।]

रावणः—(आत्मगतम्)

माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात्।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥ १५ ॥

व्याख्या—अहो इति— बलम् शारीरिकी शक्तिः। वीर्यम् ओजः तेजः समुत्साहश्च। सत्त्वम् = मर्यादायामवस्थितिः आपद्यपि धैर्यादविच्युतिः। जवः = वेगः स चात्र धनुषि बाणसंधाने लाघवम् राम इत्येतैरल्पैर्वर्णद्वयैः जगद्व्याप्तमिति स्थाने खलु उचितमेवेत्यर्थः। एतादृशबलवीर्यसत्त्वादिगुणविशिष्टस्य रामस्य कीर्त्या जगद्व्याप्तं युक्तमेवेति भावः। एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयः एकेन = अद्वितीयेन. प्लुतेन कूर्दनेन अतिक्रान्तः = लङ्घितः शरस्य विषयो येन सः। वनगहनम् दुर्गमारण्यम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—मायया अपहृते रामे अहम् एकाम् रुदतीम् बालां सीताम् अमन्त्रोक्ताम् आहुतिम् इव तपोवनात् हरामि ॥ १५ ॥

रावण—अरे ! यह आश्चर्य की बात है कि अभी राम पूजा की सामग्री लिये इधर आ रहे थे। किन्तु अब पूजा की उपेक्षा कर भागते हुये मृग को देखकर धनुष पर बाण भी चढ़ा रहे हैं। अहो ! यह आश्चर्य की बात है कि इनमें इतना अद्भुत बल है, अभूतपूर्व उत्साह है, इतना ही नहीं, इनका धैर्य भी सराहनीय है। तभी तो 'राम' इस थोड़े अक्षरों से सारा जगत् व्याप्त है। किन्तु यह मृग तो अपने एक ही छलांग से बाण का विषय न होकर घनघोर वन में प्रविष्ट हो गया ॥ १४ ॥

सीता—आर्यपुत्र से रहित अतएव अकेली मुझको भय सा लग रहा है।

रावण—(अपने आप) इस समय मैंने अपनी माया से राम को आश्रम से

सीता—जाव उडजं पविसामि । [यावदुटजं प्रविशामि । (गन्तुमीहते) [

रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा) सीते ! तिष्ठ । तिष्ठ ।

सीता—(भयम्) हं को दाणि अअं ? [हं क इदानीमयम् ?]

रावणः—किं न जानीषे ?

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिताः
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्य च्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने ! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥ १६ ॥

व्याख्या—माययेति–मायया = काञ्चनमृगोपस्थानछलेन अपहृते दूरदेशं प्रापिते रामे एकाम्=असहायाम् रुदतीम् = आक्रोशन्तीम् बालाम् = मीनाम् अमन्त्रोक्ताम् = स्वाहादिरहिताम् आहुतिम् = हविष्यमिव हरामि = चोरयामि मन्त्रोच्चारणरहितामाहुतिं राक्षसा अपहरन्ति । एतेन रामाद् रावणस्य भयं प्रदर्शितम् । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विशालनयने ! येन युद्धे सदानवगणाः शक्रादयः सुराः निर्जिताः । शूर्पणखाविरूपकरणं दृष्ट्वा भ्रातरौ च हतौ श्रुत्वा दर्पात् दुर्मतिम् अप्रमेयबलिनं रामं छलैः विलोभ्य त्वां हर्त्तुमनाः स रावणः अहम् प्राप्तः अस्मि ॥ १६ ॥

व्याख्या—युद्धे इति = हे विशालनयने = विशाले अत्यायते नयने = लोचने यस्याः सा तत्संबुद्धौ । येन = रावणेन युद्धे = समरे सदानवगणाः दान-

---

दूर हटा दिया है । अब मैं असहाय अवस्था में पड़ी हुई रोती कलपती इस युवती सीता को मन्त्रोच्चारण के बिना दी गई आहुति की भाँति हरण करता हूँ ।

सीता—अब अपनी पर्णकुटी में बैठती हूँ (जाने को उद्यत होती है) ।

रावण—(अपना स्वरूप धारण कर) सीते ! ठहरो ठहरो ।

सीता—(भय से काँपती हुई ।) अरे यह कौन है ।

रावण—क्या नहीं जानती ? ।

हे विशालनयनों वाली सीते ! जिसने युद्ध में दानवों के सहित समस्त इन्द्रादि देवगणों को पराजित किया । जिसने शूर्पणखा का विरूपकरण अपनी आँखों से देखा तथा खरदूषण का वध अपने कानों से सुना—मैं वही रावण आज दर्प से

सीता—हं लावणो णाम। (प्रतिष्ठते) [हं रावणो नाम !]

रावणः—आः ! रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क्व यास्यसि ?

सीता— अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं। [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व। परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व। परित्रायस्व माम्।]

रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः, कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भोः स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं, धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥ १७ ॥

वानां गणैः = समूहैः सहिताः। शक्रादयः सुराः देवा निर्जिताः = पराभूताः। शूर्पणखाविरूपकरणम् शूर्पाणीव नखानि यस्या सा रावणस्वसा तस्याः विरूपकरणम् लक्ष्मणकृतम् कर्णनासिकाकर्त्तनम् दृष्ट्वा रामेण भ्रातरौ खरदूषणौ हतौ इति श्रुत्वा च दर्पात् = गर्वातिशयात् दुर्मतिम् = दुर्बुद्धिम् अप्रमेयबलिनम् = स्वल्पतया अगणितसैन्यम् रामम् छलैः = काञ्चनमृगदर्शनव्यपदेशैः विलोभ्य = प्रतार्य त्वां हर्त्तुमनाः=त्वदपहरणकामः इह = दण्डकाख्येऽरण्ये प्राप्तोऽस्मि = समागतोऽस्मि। शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥ १६ ॥

अन्वयः—शक्रः भग्नः। वित्तनाथः कम्पितः। सोमः कृष्टः। सूर्यपुत्रः मर्दितः। भोः भीतदेवैः निविष्टम् स्वर्गम् धिक्। भूमिरेव धन्या यत्र सीता वर्त्तते ॥ १७ ॥

व्याख्या—मया शक्र इन्द्रः। भग्नः = पराभूतः। वित्तनाथ; = कुवेरः

दुष्टबुद्धिवाले तथा इनी-गिनी सेनावाले उस राम को अपनी माया से काञ्चनपार्श्व मृग को दिखाने के बहाने प्रवञ्चित कर तुम्हें हरण करने की कामना से इस दण्डकारण्य में प्राप्त हुआ हुँ।

सीता—क्या कहा मेरा नाम रावण है ? (ऐसा कह कर वहाँ से भागती है)

रावण—ओह ! अब तू रावण के सामने से भागकर जायगी कहाँ ?

सीता—आर्यपुत्र ! बचाओ बचाओ। लक्ष्मण ! बचाओ बचाओ।

रावण—सीते ! मेरा जैसा पराक्रम है उसे सुनो।

मैंने इन्द्र को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कुवेर का कलेजा हिला दिया। चन्द्र को

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताअहि परित्ताअहि । सौमित्ती ! परित्ताअहि परित्ताअहि मं । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व । परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥१८॥

कम्पितः = संचालितः भयादिति शेषः । सामः = चन्द्रः कृष्टः = भूमौ घर्षितः सूर्यपुत्रः = यमः मर्द्दितः = चूर्णितः एतादृशपराक्रमशाल्यहमस्मि' इति रावणस्य गर्वः । ननु एतादृशपराक्रमसत्त्वे तुभ्यम् स्वर्गे वासः कथं न रोचते इत्याह—धिगिति—भीतदेवैर्निविष्टम् = भीतैः भीरुस्वभावै देवैः = सुरैः निविष्टम् अधिष्ठितम् स्वर्गं धिक् = धिक्कारम् । भूमिः = पृथ्वी एव धन्या = कृतार्था सफला यत्र सीता वर्त्तते निवसति । भूमिस्वर्गयोः संतोलनम् न रुचिकरम् । पद्यस्य प्रथमद्वितीयचरणयोः रावणस्य गर्वः, तृतीये स्वर्गगर्हणा । चतुर्थे च भूमिप्रशंसा कृता वर्त्तते । भीरुदेवनिवासः स्वर्गगर्हणायाम् सीतासत्ता च भूमिप्रशंसायां हेतुः । अतः काव्यलिङ्गालङ्कारः । शालिनीछन्दः ॥ १७ ॥

अन्वयः—रामम् वा लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं नरेन्द्रं दशरथं वा शरणम् उपेहि कुपुरुषसंश्रितैः वचोभिः किं वा स्यात् ? मृगशिशवः व्याघ्रं न प्रधर्षयन्ति ॥ १८ ॥

व्याख्या—रावणः रामादीनामकिञ्चित्करत्वं प्रतिपादयन्नाह—रामम् वेति । हे मैथिलि ! त्वम् रामम् शरणम् = त्रातारमुपेहि = याहि लक्ष्मणं वा त्रातारम् उपेहि किं बहुना स्वर्गस्थं नरेन्द्रम् = दशरथम् शरणम् उपेहि अधुना एतैस्तव रक्षणं साध्यं नास्ति । कुपुरुषसंश्रितैः = कुपुरुषेषु दुर्बलजनेषु—संश्रितैः मां त्रायस्वेति आश्रयार्थमाहूतैः वचनैः मे रावणस्य किमपि न स्यात् न च तेभ्योऽहं विभेमीत्यर्थः ।

घसीट कर रख दिया । किं बहुना, सूर्यपुत्र यम का भी युद्ध में मर्दन किया । अतः इस स्वर्ग को धिक्कार है जहाँ इस प्रकार के डरपोक देवता निवास करते हैं । धन्य तो यह पृथ्वी है जहाँ सीता जेसी सुन्दरी का निवास है ॥ १७ ॥

सीता—आर्यपुत्र रक्षा करो, रक्षा करो । लक्ष्मण ! मुझे बचाओ, बचाओ ।

रावण—सीते ! चाहे राम की शरण जाओ चाहे लक्ष्मण की शरण ग्रहण करो । चाहे स्वर्गस्थ महाराज दशरथ की । इन निर्बल पुरुषों का सहारा लेने के

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सौमित्ती ! सौमित्ती! परित्ताआहि परित्ताआहि मं । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्य । सौमित्रे ! सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

रावणः—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रै ! विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥ १९ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह व्याघ्रं = द्वीपिनम् मृगशिशवः = हरिणपोतकाः न प्रघर्षयन्ति = न विभीषयन्ति । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । 'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्, इति तल्लक्षणम् । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ १८ ॥

सीता पुनरपि रामं लक्ष्मणं च शरणार्थमाक्रन्दति—आर्यपुत्र इत्यादि ।

अन्वयः—हे विशालनेत्रे ! किमिदं विलपसि । किं च तवार्यपुत्रं यथा मां रावणं विगणय । यतः एष रामः विपुलबलयुतः ससुरगणोऽपि माम् योद्धुम् असमर्थं एव ॥ १९ ॥

व्याख्या—रावणः सीताकृतस्याक्रोशस्य वैयर्थ्यं प्रतिपादयन्नाह—विलपसि किमिदमिति—हे विशालनेत्रे = विशालाक्षि किमिदं विलपसि = वृथा तवायं बिलापः । मत्सकाशात् त्वां संत्रातुं कस्यापि शक्तिर्नास्तीति भावः । मां तवार्यपुत्रं यथा भर्तारं यथा इव विगणय जानीहि । अहं हि तव भर्त्तुरपेक्षया बलवानिति । एष रामः त्वया त्राणार्थं प्रार्थ्यमानो विपुलबलसंयुतः = बहुसैन्यसमावृतः ससुरगणोऽपि = सुरगणैं सहितः अपि मम = मया सह योद्धुम् = समरं विधातुम् असमर्थः = अशक्त एव । एतेन राबणावलेपो व्यज्यते । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ १९ ॥

लिये तुम्हारे पुकारने वाले इन वचनों से मुझ रावण का क्या बिगड़ता है । भला मृगपोतक कभी बाघ को डरा सकते हैं ॥ १८ ॥

सीता—(पुनः) आर्यपुत्र ! रक्षा करो ! रक्षा करो । लक्ष्मण ! मेरा परित्राण करो । परित्राण करो ।

रावण—हे विशालाक्षि । इस समय तुम्हारा विलखना व्यर्थ है । अब तुम अपने आर्यपुत्र के समान मुझे समझो । क्योंकि अपरिमित सेना एवं समस्त देवगणों के सहित भी तुम्हारा राम मुझसे युद्ध करने में समर्थ नहीं है ॥ १९ ॥

सीता—(सरोषम्) सत्तो सि । [शप्तोऽसि ।]

रावणः—अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥ २० ॥

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।]

रावणः—(सीतां गृहीत्वा) भोः भोः ! जनस्थानवासिनस्तपस्विनः श्रृण्वन्तु भवन्तः—

अन्वयः—वेगात् उत्पतितः यः अहम् सूर्यरश्मिभिः न दग्धः अस्याः परिमितैः शप्तः असि इति एभिः अक्षरै दग्धः (स्याम् किम्) ॥ २० ॥

व्याख्या—वेगात् उत्पतितः आकाशं गतः यः अहम् सूर्यस्य रश्मिभिः = भास्करस्य प्रखरकरैः न दग्धः == न भस्मीभूतः सः अहम् अस्याः = सीतायाः परिमितैः = स्वल्पैः कतिपयैः शप्तः असीति एभिः अक्षरैः = वर्णैः दग्धः = भस्मीभूतः स्याम् किम् । रावणस्येदं वचनम् सीतोपहासार्थम् वोध्यम् यथार्थत्वे यदि स्यात् तर्हि तु तस्य हरणप्रवृत्तिर्न स्यात् किञ्चाग्रे वक्ष्यमाणा 'बलादेष' इत्यादि गर्वोक्तिरपि न संगच्छेत् ॥ २० ॥

जनस्थानवासिनः जनस्थाने दण्डकारण्यवर्त्तिनि भूमार्गे तत्र वसन्तीति तत्सम्बुद्धौ ।

सीता—(क्रोधपूर्वक) मैं तुम्हें शाप देती हूँ ।

रावण—ह ह ह वाह रे पतिव्रता का तेज !

वेग से आकाश मार्ग से चलता हुआ मैं जब इन सूर्यकिरणों के द्वारा भस्म नहीं हुआ, तब 'मैं तुम्हें शाप देती हूँ' इसके इन स्वल्प अक्षरों से मैं जल जाऊंगा क्या ? ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! बचाओ, बचाओ ।

रावण—(सीता को पकड़कर) हे जनस्थान के रहने वाले तपस्विगण ! आप लोग सुन लें—

बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ २१ ॥

सीता—अय्यउत्त । परित्ताअहि परित्ताअहि । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व !]

रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचन्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम् ।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—एष दशग्रीवः वलात् सीताम् आदाय गच्छति । यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः (तदा) पराक्रमम् कुर्यात् ॥ २१ ॥

व्याख्या—एष दशग्रीवः = दश ग्रीवा यस्य सः रावणः बलात् प्रसभम् सीताम् आदाय == गृहीत्वा, गच्छति = प्रयाति । यदि रामः क्षात्रधर्मे क्षत्रियविहितैकयुद्धरूपकर्त्तव्ये स्निग्धः दृढव्रतः तर्हि पराक्रमं कुर्यात् स्वपराक्रमम् प्रकटयेदित्यर्थः । मया क्रियमाणस्यापराधस्य प्रतिशोधनं कुर्यादिति भावः ।

स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनषण्डः = स्वपक्षयोः पवनोत्क्षेपेण = वायुसञ्चालनेन क्षुभिताः = चञ्चलीभूताः वनषण्ढाः = वनसमूहा येन तादृशः । चण्डचञ्चुः—चण्डा = प्रचण्डप्रहारकरा चञ्चूः यस्य सः । अभिधावति = मां लक्ष्यीकृत्य इत एवागच्छति । आः इति कोपे ।

अन्वयः—मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां यमसादनम् नयामि ॥ २२ ॥

व्याख्या—मद्भुजेति मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः—मद्भुजेन = मम

यह रावण सीता को बलपूर्वक हरण कर जा रहा है यदि राम अपने क्षात्र घर्म में दृढव्रती हैं तो इस समय अपना पराक्रम प्रदर्शित करें ॥ २१ ॥

तीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो । रक्षा करो ।

रावण—(घूम कर पुनः देखकर)

अरे ! अपने पङ्खों के वायु के झोंके से समस्त वनसमूह को क्षुब्ध करता हुआ प्रचण्ड चोंच वाला यह जटायु इधर ही आ रहा हैं । अरे ! ठहर ।

(निष्क्रान्तौ)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

●

बाहुना आकृष्टः कोशादुद्धृतः यः निस्त्रिंशः = खड्गं तेन कृत्तयोः = संछिन्नयोः पक्षयोः यः क्षतः = प्रहारः तस्मात् च्युतैः = गलितैः रुधिरैः = शोणितैः आर्द्रगात्रम् = आर्द्राणि = संक्लिन्नानि गात्राणि = शरीराणि यस्य स तम् । त्वाम् = जटायुम् यमसादनम् = यमराजगृहम् । नयामि = नेष्यामि । प्रापयिष्यामि वा । पर्यायोक्तिरलङ्कारः ॥ २२ ॥

●

मैं अभी अपने हांथों से खींचे गये तलवार के द्वारा काटे गये पङ्खों से चूते हुए रक्त के द्वारा तुम्हारे शरीर को लथपथ कर तुम्हें यमराज के घर भेजता हूँ । २२ ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रतिमा नाटक के पाँचवें अङ्क की गङ्गा संस्कृत टीका
एवं हिन्दी भाषानुवाद समाप्त ॥

●

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ)

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः!

इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना।
निशाचरेन्द्रेण निशार्द्धचारिणा मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥ १ ॥

पञ्चमाङ्के सूचितम् रावणजटायुयुद्धम् वर्णयितुं द्वयोर्वृद्धतापसयोः प्रवेशकमिषेण विष्कम्भके आह—ततः प्रविशत इति। भवन्त इति सम्बोधनपदम्। परित्रायताम् इयं सीतेति शेषः।

अन्वयः—नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना निशार्द्धचारिणा निशाचरेन्द्रेण इयं सीता परिभूय मृगी इव नीयते ॥ १ ॥

व्याख्या—इयमिति—नीलोत्पलदामवर्चसा—नीलोत्पलानां = कुवलयानाम् यद् दाम = माला तद्वत् श्यामं वर्चस्तेजो यस्यासौ तेन कृष्णवर्णशरीरेण इत्यर्थः मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना—मृणालशुक्ला = विसतन्तुधवला उज्ज्वला दंष्ट्रा यस्मिन् कर्मणि तथा हासिना = स्मयमानेन, विसतन्तुधवलदशनरश्मिसुस्मितेन प्रकाशयतेत्यर्थः निशार्द्धचारिणा—निशार्द्धे = अर्द्धरात्रौ चरितुं शीलमस्य तेन चोरवद्रात्रिकाले पर्यटता निशाचरेन्द्रेण = रावणेन = इयं सीता= जनकपुत्री जानकी परिभूय=उत्पीड्य मृगी = हरिणी इव यथा नीयते = अपह्रियते। अत्रोपमालङ्कारः। वंशस्थवृत्तम् ॥ १ ॥

(दो वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश)

दानों—अरे देखो !

प्रथम—नीलकमलों की माला के समान श्याम वर्णवाला तथा हँसते समय मृणाल की तरह श्वेत दाँतों से दिखाई पड़नेवाला यह निशाचारी रावण सिंह के द्वारा मृगी की भाँति इस सीता को बलपूर्वक चुरा कर लिये जा रहा है।

द्वितीयः—एषा खलु तत्र भवती वैदेही,

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना विधूयमानेव च पुष्पिता लता।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ २ ॥

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः !

द्वितीयोऽपि वैदेहीहरणं भिन्नसादृश्येन बर्णयति—

अन्वयः—पापकारिणा दशानेन भुजङ्गमाङ्गना इव विचेष्टमाना पुष्पिता लता इव विधूयमाना सा सीता तपोवनात् सिद्धिः इव प्रसह्य अपनीयते ॥ २ ॥

व्याख्या—विचेष्टमानेति—पापेन = पापिना दशाननेन दशमुखेन, भुजङ्ग-
माङ्गना = सर्पिणीव विचेष्टमाना विविधां चेष्टामाचरन्ती इव पुष्पिता = पुष्पा-
न्विता लता वल्ली इव यथ ।विधूयमाना = कम्पमाना सा सीता = तत्रभवती
वैदेही तपोवनात् = आश्रमात् सिद्धिः प्राप्ताभीष्टमिव नीयते = स्थानान्तरं
प्राप्यते । प्रथमोपमया सीतायाः क्रोधः द्वितीयोपमया तस्या अस्तव्यस्तशरीर-
त्वम् पतदाभरणत्वमित्यादि, सिद्धिरिवेत्यादिना स्वरक्ष्यसर्वस्वता चेत्यादयोऽर्थाः
व्यञ्जिताः । प्रकृतपद्ये सीताया अनेकोपमानसंबन्धात् मालोपमालङ्कारः । मालो·
पमा यदेकस्योपमानं बहु दश्यंते' इति तल्लक्षणम् । वंशस्थवृत्तम् । जतौ तु वंशस्थ-
मुदीरितं जरौ' ।

अये ! त्वराबोधनार्थम् । वचनसमकाले = परित्रायतामित्युच्चारणसमये । आहूय
आनृण्यम्–अनृणस्य भावः आनृण्यम् = ऋणराहित्यम् मैत्रीनिष्क्रयमित्यर्थः । आहूय
= युद्धार्थमाकार्य । अन्तरिक्षम् = आकाशम् । उद्वृत्तनयनः—उद्भ्रान्ते मण्डल-
वर्त्तिते नयने नेत्रे यस्य सः । प्रतिनिवृत्तः = जटायोराह्वानेन तदभिमुखं परावृत्तः ।
क्रव्यादीश्वरस्य क्रव्यादाम् आममांसभक्षकाणाम् ईश्वरस्यः = प्रभोः जटायोः ।
सामर्थ्यम् = बलम् उद्यमं शक्तिरिति वा ॥ २ ॥

दूसरा—अरे यह तो पूजनीया सीता हैं जो छूटने की चेष्टा करती हुई छटपटाती हुई नागिन की तरह छूटने की चेष्टा करती हुई पुष्पित लता के समान कांपती जैसी दिखाई पड़ रही हैं । जिन्हें यह पापी रावण तपोवन से सिद्धि के समान बलपूर्वक लेकर भाग रहा है ॥ २ ॥

दोनों—वनवासियो ! रक्षा करो । रक्षा करो ।

प्रथमः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये .वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तुं 'मयि स्थिते क्व यास्यसी'ति रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः !

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः।

प्रथमः—एष रावणः।

द्वितीयः—एष जटायुः।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम्।

प्रथमः—काश्यप! काश्यप ! पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम्।

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाटचते ॥ ३ ॥

अन्वयः—(अयं जटायुः) पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते। अचलः सन् तुण्डाभ्याम्, सुनिघृष्टतीक्ष्णम् संवेष्टनं चेष्टते। आयसकण्टकैः इव तीक्ष्णैः नखैः वक्षसोः भीमान्तरम् वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला इव

पाट्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—पक्षाभ्यामिति। अयं = जटायुः पक्षाभ्यां (रावणम्) प्रहृत्य = परिभूय अभिभूय, वीर्यविषयम् = पराक्रमानुकूलम् द्वन्द्वं = युद्धम् प्रतिव्यूहते = प्रतियुध्यते, स्ववीर्यसदृशम् पराक्रमं प्रदर्श्य द्वन्द्वयुद्धे प्रवर्त्तते इत्यर्थः। अचलः =

पहला—(ऊपर की ओर दृष्टि कर) अरे ! पुकारते ही दशरथ से उऋण होने के लिये 'मेरे रहते तू कहाँ जा सकता है' इस प्रकार से ललकारते हुए पक्षिराज जटायु देखते-देखते आकाश में उड़ गये।

दूसरा—यह देखो क्रोध से आँखों की पुतरी बदले हुए यह रावण पीछे की ओर लौट रहा है।

पहला—यह रावण।

दूसरा—यह जटायु।

दोनों—देखो आकाश में दोनों ही लड़ रहे हैं।

पहला—काश्यप ! काश्यप ! गृध्रराज का यह पराक्रम देखो।

द्वितीयः—हन्त ! संक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणांसदेशे हतः ।

उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायुः ।

प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः—

कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥ ४ ॥

स्थिरः सन् तुण्डाभ्यां = चञ्चूभ्याम् सुनिघृष्टतीक्ष्णम् सु = सुष्ठु निघृष्टं च तत्तीक्ष्णम् = कठोरम् यथा स्यात्तथा संवेष्टनम् चेष्टते स्वतीक्ष्णतुण्डाग्रेण प्रतियोद्धारं निपात्य निघर्षति पुनः वलयाकारेण वेष्टते इत्यर्थः । आयसकण्टकैः = लोहमयैः कण्टकैः इव तीक्ष्णैः = निशिताग्रभागैः नखैः = नखरैः वक्षसः = रावणोरसः भीमान्तरम् = भीमम् अतिभयानकं यदन्तरम् = मांसादि, वज्राग्रैः = कुलिशाग्रैः, दार्यमाणविषमात्—दार्यमाणश्च विषमश्च तस्मात् शैलात् = पर्वतात् शिला इव पाट्यते = विदार्यते । पक्षचञ्चुनखैः जटायुर्युध्यते इति निष्कर्षः । अस्मिन्पद्ये पूर्वार्धे कर्तृवाच्यप्रयोगे उत्तरार्धे च कर्मवाच्यप्रयोग इति प्रक्रमताभङ्गः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—स्ववीर्यसदृशम् परमं प्रयत्नं कृत्वा शत्रुम् क्रीडामयूरम् इव अचिन्तयित्वा निशाचरपतेः दीप्तं तेजः अवधूय नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव अवसन्नः ॥ ४ ॥

यह किस प्रकार अपने पङ्खों से रावण पर प्रहार करता हुआ अपने पराक्रम के अनुकूल रावण के साथ युद्ध कर रहा है। किस प्रकार डटकर अपने दोनों चञ्चुओं से रावण पर प्रहार करता हुआ उसे पृथ्वी पर घसीटकर वेष्टित करने की चेष्टा कर रहा है। लोहे के काँटों के समान अपने कठोर नखों से रावण की भयङ्कर छाती में प्रहार कर उसके अन्तरस्थ माँसादि भाग को इस प्रकार विदीर्ण कर रहा हैं जैसे कुलिश का अग्रभाग बड़े-बड़े पहाड़ों से चट्टानों को फोड़ देता है ॥३॥

दूसरा तापस—अरे—यह बड़े शोक का विषय हो गया कि रावण ने क्रोध में भरकर गृध्रराज जटायु के दाहिने कन्धे पर अपनी तलवार से प्रहार कर दिया।

दोनों ही—हाय धिक्कार है। महाभाग जटायु रणस्थल में गिर गये।

पहला—तब तो बड़े दुःख की बात है। जो इन महाभाग जटायु ने युद्ध में

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्तौ)

(विष्कम्भः)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

व्याख्या—कृत्वेति—स्ववीर्यसदृशम् = स्वस्य वीर्यम् स्ववीर्यं तेन सदृशम् = स्वपराक्रमानुरूपम्, परमम् = उत्तमम्, प्रयत्नं = प्रयासं, सीतापरित्राणरूपम्, कृत्वा = संपाद्य, शत्रुं = रावणम्, क्रीडामयूरम् इव अचिन्तयित्वा = अविगणय्य अकिञ्चित्करम् मत्वेत्यर्थः, निशाचरपतेः = राक्षसराजस्य दीप्तं = जाज्वल्यमानं तेजः = प्रतापम् अवधूय = तिरस्कृत्य नागेन्द्रभग्नवनवृक्षः = गजोत्पाटितारण्यतरुः इव यथा अवसन्नः = मौनीभूतः अनेन नास्ति सीतोद्धारस्य प्रत्याशा इति खेदो व्यज्यते । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

स्वर्ग्यः = स्वर्गमर्हतीति स्वर्गं लभतामित्यर्थः । प्रथमः कल्पः = प्रथमं कर्त्तव्यम् सर्वं = कार्यजातं परित्यज्य प्रथममिदमेव अनुष्ठातव्यमिति भावः । विष्कम्भः= वृत्तवर्त्तिष्यमाणकथांशनिदर्शकः ।

अपनी शक्ति के अनुसार महान् प्रयत्न कर शत्रु रावण की मोर के खिलौने के के समान कुछ भी परवाह न कर तथा रावण के प्रचण्ड तेज को भी तिरस्कृत कर अन्त में हाथी के द्वारा उखाड़े गये वनवृक्ष के समान दम तोड़ दिया ।

दोनों—इसे स्वर्ग की प्राप्ति हो ।

पहला—काश्यप ! अब इधर आओ । हम दोनों ही चलकर अब आर्य राम से यह समाचार निवेदन करें ।

दूसरा—ठीक कहते हो । यह हम लोगों का पहला कर्त्तव्य है ।

(ऐसा कह कर दोनों वहाँ से चले जाते हैं)

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—अरे यहाँ के सुवर्णनिर्मित द्वार पर कौन पहरा दे रहा है ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यतां भरतकुमाराय—'एष खलु रामदर्शनार्थं जनस्थानप्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र' इति ।

प्रतिहारी—अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ? [आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! न जाने ।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥ ५ ॥

काञ्चनतोरणद्वारम् कञ्चनेन = सुवर्णेन रचितम् काञ्चनम् तादृशम् तोरणद्वारं = बहिर्द्वारम् 'तोरणोऽस्त्रीबहिर्द्वार'मित्यमरः । अशून्यम् संतिष्ठन् जनस्थानम् = दण्डकारण्यम् प्रस्थितः = गतः । प्रतिनिवृत्तः = प्रत्यागतः । कृतार्थः = सफलमनोरथः । रामदर्शनेनेति शेषः ।

अन्वयः—हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम् अधुना आगतं सुमन्त्रं दृष्ट्वा एव मे मनः आकुलम् आसीत् ॥ ५ ॥

व्याख्या—हृदयेति—हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम्—हृदयस्थितेन = अन्तरात्मनि वर्त्तमानेन शोकाग्निना संशुष्कमुखम्, अधुना आगतम् सुमन्त्रं = तन्नामकं राजमन्त्रिणं, दृष्ट्वा = अवलोक्य एव मे मनः आकुलम् = व्याकुलम् आसीत् । एतेन संकेतेन स कृतार्थः नास्ति इति लक्ष्यते । तदेव विचिन्त्य ममापि मनः पर्याकुलमिति भावः ॥ ५ ॥

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं हूँ विजया । कहिये क्या आज्ञा है ?

कञ्चुकी—विजये ! शीघ्र ही कुमार भरत को सूचित करो कि आर्य सुमन्त्र जो राम के दर्शन के लिये जनस्थान गये थे, लौटकर आ गये हैं ।

प्रतीहारी—क्या आर्य सुमन्त्र अपना काम पूरा कर लौटे हैं ।

कञ्चुकी—आर्ये ! पता नहीं क्या हुआ ? किन्तु जनस्थान से लौटकर आये

प्रतिहारी—अय्य ! इदं सुणिअ पय्याउलं विअ में हिअअं । [आर्य एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम् ।]

काञ्चुकोयः—भवति ! किमिदानीं स्थिता ? शीघ्रं निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । [आर्य ! इयं निवेदयामि] (निष्क्रान्ता)

काञ्चुकोयः—(विलोक्य) अये ! अयमत्रभवान् भरतकुमारः सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गः इत एवाभिवर्तते । य एषः—

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकालस्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः ।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥ ६ ॥

व्याख्या—स्थिता=निश्चेष्टा । सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयः=सुमन्त्रस्यागमनेन जनितम्=समुत्पादितम् कुतूहलम् = उत्कण्ठातिशयो यत्र तत् तच्च तादृशं हृदयं यस्य सः । चीरवल्कलवसनः = चीरवल्कले वसने = परिधानीयोत्तरीये यस्य सः, चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गः—चित्राणाम् = नानाविधानाम् जटानाम्. पुञ्जेन = समूहेन पिञ्जरितम् =पीतरक्तवर्णतां नीतम् उत्तमाङ्गम् = शिरः यस्य सः ।

अन्वयः—(य एषः) प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकालतिग्मांशुतिलकः त्रिदशेन्द्रकल्पः आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमान् उदारकलभेभसमानयानः ॥ ६ ॥

व्याख्या—प्रख्यातेति = प्रख्यातसद्गुणगणः-प्रख्यातः = सुप्रसिद्धः सद्गुणा-

हुए सुमन्त्र के हृदयस्थित शोकाग्नि से सूखे हुए मुख को देखकर ही इस समय मेरा मन घबड़ा गया है ।

प्रतीहारी—आर्य ! यह बात सुन कर मेरा भी मन घबड़ा-सा रहा है ।

कञ्चुकी—आर्ये ! तुम खड़ी किसलिये हो । शीघ्र निवेदन करो ।

प्रतीहारी—आर्य ! अभी अभी निवेदन करती हूँ । (ऐसा कहकर चली जाती है) ।

कञ्चुकी—अरे ! यही हैं तत्रभवान् कुमार भरत । आर्य सुमन्त्र के लौटने के समाचार से जिनका हृदय कुतूहल से भरा हुआ है तथा जिनके शिर पर भूरे रङ्ग की जटायें हैं अरे ! वे तो इधर ही आ रहे हैं ।

(ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये ! एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

गत्वा तु पूर्वमयमार्यनिरीक्षणार्थं,
लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो,
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥ ७ ॥

नाम् = शौर्योदार्यादीनाम् गणः = समूहः यस्य तथाभूतः । प्रतिपक्षकालतिग्मांशुतिलकः प्रतिपक्षाणाम् = शत्रूणाम् कालः मृत्युस्वरूपः, स चासौ तिग्मांशुतिलकः = सूर्यवंशभूषणस्वरूपः; त्रिदशेन्द्रकल्पः = इन्द्रतुल्यः आज्ञावशात् = रामाज्ञाधीनस्थः सन् अखिलभूपरिरक्षणस्थः अखिलायाः = समस्तायाः भुवः = पृथिव्याः परिरक्षणे = पालने तिष्ठतीति तथाभूतः, श्रीमान् प्रशस्तश्रीसमायुक्तः, उदारकलभेभसमानः उदारः = परमरमणीयः, यः कलभेभः = त्रिंशद्वर्षीयो गजः तेन समानम् = सदृशम् यानम् = गमनम् यस्य सः । भरतोऽस्तीति शेषः । त्रिदशेन्द्रकल्पः कलभेभसमानयानः इत्यत्रोपमा । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते अयम् अत्रभवान् आर्यनिरीक्षणार्थं पूर्वं गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामं रामं दृष्ट्वा इह आगतः किम् ? ॥ ७ ॥

व्याख्या—लब्धप्रसादशपथे—लब्धः = प्राप्तः प्रसादः = पादुकाप्राप्तिरूपः चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिनिवृत्य राज्यं ग्रहीष्यामीत्येवं रूपो शपथश्च = प्रतिज्ञा च येन तथाभूते मयि = भरते सन्निवृत्ते = रामसकाशादागते अयमत्र भवान् आर्य-

जो लोक में विख्यात समस्त सद्गुणों के समूह से परिपूर्ण हैं, शत्रुओं के लिये साक्षात्काल हैं, इस सूर्यवंश के तो भूषण ही हैं । तुलना में देवराज इन्द्र के सदृश हैं, जो राम की आज्ञा के वशीभूत हो इस समस्त पृथ्वी के पालन में लगे हुए हैं, प्रशस्त श्रीसंयुक्त हैं, त्रिंशद् वर्षीय हाथी के बच्चे के समान मनोहर मस्ती से भरी हुई जिनकी गति है ।

(तदनन्तर भरत और प्रतिहारी का प्रवेश ।)

भरत—विजये ! क्या कहा सुमन्त्र लौट आये हैं ? पादुका लेकर तथा शपथ स्वीकार करा कर लौट आने के बाद मैंने पहली बार आर्य सुमन्त्र को राम के

काञ्चुकीयः—(उपगम्य) जयतु ।

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ?

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

सुमन्त्रः— (सशोकम्) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ ८ ॥

निरीक्षणार्थं—आर्यस्य = रामस्य निरीक्षणार्थं = दर्शनार्थं पूर्वम् गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिराम्—प्रजानाम् = प्रकृतीनां नयनानाम् = लोचनानाम् बुद्धीनां = मनसां च अभिरामम् = आनन्ददम् दृष्ट्वा इहागतः किम् ? पादुकां गृहीत्वा मयि सन्निवृत्ते सुमन्त्रम् रामदर्शनार्थं प्रेषितवानस्मि स च सफलं आगतो न वेति भरतस्य संदेहः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—मया नरपतेः निधनम् अनुभूतम् नृपतिसुतव्यसनम् मया एव दृष्टम् इह मैथिलीप्रणाशः च मया श्रुतः मे आयुषा गुणे बहु अपराद्धम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—नरपतिरिति—मया नरपतेः = राज्ञो दशरथस्य निधनम् =

दर्शन के लिये भेजा था । क्या वे समस्त प्रजाओं के नेत्र तथा मन को आनन्द देने वाले श्रीराम का दर्शन कर सफल हो लौटे हैं अथवा यों ही लौट आये ? ॥ ७ ॥

कञ्चुकी—(समीप जाकर) जय हो कुमार की ।

भरत—तत्रभवान् सुमन्त्र कहाँ पर हैं ?

कञ्चुकी—वे स्वर्णनिर्मित बाहरी द्वार पर खड़े हैं ।

भरत—उन्हें शीघ्र भीतर बुलाकर लाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा । (दोनों ही चले जाते हैं ।)

(तदनन्तर सुमन्त्र एवं प्रतिहारी का प्रवेश)

सुमन्त्र—(शोक के साथ) ओह ! महान् शोक महान् शोक ।

मैंने महाराज की मृत्यु का दुःख अनुभव किया । राजपुत्रों पर आई विविध

प्रतीहारी—एदु एदु अय्यो। एसो भट्टा। उपसप्पदु अय्यो। (सुमन्त्रमुद्दिश्य) [एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।]

सुमन्त्रः—(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणविहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

मरणम् अनुभूतम् । नृपतिसुतव्यसनम्—नृपतेः सुतानाम् = रामभरतलक्ष्मणानां, व्यसनम् = दुःखम् रामस्य वनगमनम् भरतस्य नन्दिग्रामे तपश्चरणम् लक्ष्मणस्य राममनुगमनम् तत्र तस्य सेवादिकरणम् च मयैव दृष्टम् । इह आयुषि सीताप्रणाशश्च श्रुतः । अतः मे आयुषा = जीवितेन गुणे = चिरजीवित्वलक्षणे बहु= अधिकम् अपराद्धम् = आगस्कृतम् । यद्यपि आयुषो दीर्घत्वं गुणस्तथापि राजकुलजानां विपत्तिदर्शनात् स एव दोषः संजात इति भावः । यद्यहं चिरजीवितां नाध्यगमिष्यम् तदैतानि दुःखानि नान्वभविष्यमिति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ८ ॥

लोकाविष्कृतपितृस्नेहः = लोके आत्रिष्कृतः=प्रकटीकृतः पितृस्नेहः=पितृभक्तिर्येन सः अत्र अर्थतः रामो विवक्षितः । द्विधाभूतम् = द्विः प्रकारेण संस्थितम् अरुन्धतीचारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम् अरुन्धत्याः चारित्रम् अरुन्धतीचारित्रम् । पूर्वमेकमेवारुन्धती पतिव्रतासीत् । इदानीं तु सीतापि स्वपातिव्रत्यं प्रख्यापयति स्म । तदेवोत्प्रेक्षते द्विधाभूतमरुन्धती अरुन्धतीरूपेण प्रथमम् सीतारूपेण च

विपत्तियाँ भी देखीं। इतना ही नहीं ! अब सीता का हरण भी सुन रहा हूँ । हाय मेरी इस लम्बी आयु ने गुण के स्थान पर अधिक अपराध ही किया ॥ ८ ॥

प्रतीहारी—(सुमन्त्र को उद्देश्य करते हुए) आइये आइये । यही हैं स्वामी । आप इनके पास जावें ।

सुमन्त्र—(पास जाकर) जय हो कुमार की ।

भरत—तात ! क्या आपने लोकविख्यात पितृभक्त राम का दर्शन किया । क्या पातिव्रत्य के मूर्त्तिमान दूसरे चरित्र सीता को देखने का अवसर मिला । क्या आपने अकारण वनवास स्वीकार करनेवाले भ्रातृस्नेह के मूर्त्तिमान् रूप लक्ष्मण का साक्षात्कार किया ?

(सुमन्त्रः सचिन्तस्तिष्ठति)

प्रतिहारी—भट्टिदारओ खु अय्यं पुच्छदि। [भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति।]

सुमन्त्रः—भवति! किं माम्?

भरतः—(स्वगतम्) अतिमहान् खल्वायासः। सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः! [प्रकाशम्] अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान्?

सुमन्त्रः—कुमार! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये।

द्वितीयम् इति द्विधा विभक्तमिति भावः। अर्थतः सीता। चारित्रमिति निष्कारणावहितवनवासम्—निष्कारणम् कारणं पित्राज्ञां विनैव लक्ष्मणेन वनवासः स्वीकृत इति भावः। विनैव अवहितः = समादृतः पित्राज्ञारूपो वनवासो येन तत् सौभ्रात्रम्—सुभ्रातुः भावः सौभ्रात्रम् भ्रातृप्रेम अत्र अर्थतः लक्ष्मणो विवक्षितः। सचिन्तः तिष्ठतीति—सीताहरणवृत्तान्तम् कथं विनिवेदयामीति चिन्ताकारणम् तेन मौनीभूत आस्ते। आयासः = कष्टम्। भ्रष्टहृदयम्—भ्रष्टम् = विवेकरहितम् हृदयं यस्य तथाभूतः। अपीति प्रश्ने। अन्तरा मध्येमार्गात्। प्रतिनिवर्त्तिष्ये = प्रत्यागमिष्ये। तवाज्ञां कथन्न पालयेयम् इत्यर्थः। किन्नु खलु इति सुमन्त्रोक्तेन तद्दशया च रामादीनां दर्शनं नाभूदित्यनुमायादर्शनकारणं विकल्पयति। ते तु मयि कुपिताः वनवासेन लज्जया वा आत्मानं न दर्शयन्ति इति भरतस्य अदर्शनकारणे बिकल्पः।

(सुमन्त्र चिन्ता की मुद्रा बनाये चुपचाप स्तब्ध रहता है)

प्रतीहारी—राजकुमार! आप से ही पूछ रहे हैं।

सुमन्त्र—आर्ये! क्या कहती हो? कि आपसे पूछ रहे हैं?

भरत—(मन में अपने आप) इन्हें बोलने में कष्ट हो रहा है। दुःख के कारण इनका हृदय शून्य-सा हो गया हैं (प्रकट) क्या तत्रभवान् मार्गं से ही लौट आये?

सुमन्त्र—कुमार जब आप की आज्ञा से रामसंदर्शनार्थं जनस्थान जाने के लिये प्रस्थान कर दिया तो फिर बीच मार्ग से कैसे लौट सकता हूँ?

भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ?

सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥ ९ ॥

भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः ।

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

अन्वयः—विनीतानां क्रोधः कुतः । कृतचेतसाम् लज्जा कुतः । मया तैः विहीनम् शून्यम् तत् तपोवनम् दृष्टम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—कुत इति । भरतसन्देहमपनुदति—विनीतानाम् = सुशिक्षितानाम् क्रोधः कुतः कस्मात् कारणात् । विनयान्वितास्ते कथं क्रोधं करिष्यन्ति । कृतचेतसाम्—कृतम् = सुसंस्कृतं चेतः = मनः येषां ते तेषाम् सुसंस्कृतानाम् = निष्कपटानां, लज्जा कुतः । अतस्तेषामदर्शने क्रोधो लज्जा वा न हेतुः किन्तु स्थानपरिवर्त्तनं तत्र हेतुरित्याह—मया तैः विहीनम् रहितम् अतएव शून्यम् तत्तपोवनम् दृष्टम् । ते जनस्थानं परित्यज्य अन्यत्र गताः इति भावः ॥ ९ ॥

क्व गता इति भरतप्रश्नस्य यथा श्रुतमुत्तरमाह—अस्ति किलेति किलेति वार्त्तार्थकमव्ययम् । किष्किन्धा किं किं न दधातीति । वनौकसाम् = वनमोकः = स्थानं येषां तेषाम् वानराणाम् । हन्त इति खेदार्थकमव्ययम् । अविज्ञातपुरुष-

---

भरत—तो क्या वे लोग क्रोध अथवा लज्जा के कारण अपने को छिपाना तो नहीं चाहते ।

सुमन्त्र—कुमार ! विनयशील उन लोगों को भला क्रोध कहाँ ? निर्मल चित्त होंने से लाज भी किस बात की । मैंने जब उस तपोवन को देखा तो उसमें वे लोग नहीं थे और वह सुनसान पड़ा था ।

भरत—तब वे लोग कहाँ गये आपने कुछ सुना ।

सुमन्त्र—किष्किधा नाम की एक नगरी है जहाँ वानर लोग रहा करते है, सुना है वहीं चले गये ।

भरतः—हन्त ! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः । दुःखिताः प्रतिवसन्ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

भरतः——तात ! कथमिव ?

सुमन्त्रः—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ १० ॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यःदुखेन नाम ?

विशेषाः—अविज्ञातः = अविदितः पुरुषाणां विशेषो वैशिष्ट्यं यैस्तथाभूताः । उपकृतमवगच्छन्ति = कृतज्ञा भवन्ति ।

अन्वयः—ज्येष्ठेन भ्रात्रा बालिना राज्यात् भ्रंशितः हृतदारः शैले वसन् सुग्रीवः तुल्यदुःखेन (रामेण) मोक्षितः ॥ १० ॥

व्याख्या—सुग्रीव इति—ज्येष्ठेन = अग्रजेन भ्रात्रा = बन्धुना बालिना = तन्नामकेन राज्यात् भ्रंशितः =च्यावितः हृतदारः—हृताः दाराः यस्य स अप हृत पत्नीकः शैले = ऋष्यमूकाख्ये वसन् = वासं कुर्वन् स = सुग्रीवः तुल्यदुःखेन = तुल्यं = समानम् दुःखं = क्लेशः यस्य तेन=रामेण मोक्षितः = मोक्षं प्रापितः । बालिनं हत्वा सुग्रीवो राज्ये प्रतिष्ठापित इत्यर्थः ॥ १० ॥

'हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः' इति सुमन्त्रवचनं श्रुत्वा आशङ्क-

---

भरत—वानरों को पुरुष के विशिष्ट व्यक्तित्व का ज्ञान तो होता नहीं अतः वहाँ वे कष्टपूर्वक रहते होंगे ।

सुमन्त्र—कुमार ! पशु भी उपकार माननेवाले होते हैं ।

भरत—वह किस प्रकार ?

सुमन्त्र—जेठे भाई बाली ने सुग्रीव को राज्य से निकाल दिया और उसकी स्त्री भी छीन ली, वह ऋष्यमूक पर निवास करने लगा तब अपने समान दुःख से उसे दुःखी जान कर राम ने बाली का वध कर उसे दुःख से मुक्त किया और पुनः राज्य पर प्रतिष्ठापित किया ।

भरत—तात, समदुःख से क्या अभिप्राय है ?

सुमन्त्रः--(स्वगतम्) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम्) कुमार ! न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता ।

भरतः—तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

सुमन्त्र,—का गतिः । श्रूयतां,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ ११ ॥

मानो भरतस्तं पृच्छति कथं तुल्यदुःखेन नाम भवता तुल्यदुःखेनेत्युक्तम् तस्य कोऽभिप्राय इत्यर्थः । सुमन्त्रः स्वगतमाह—अवक्तुकामोऽप्यहं सीताहरणवृत्तान्तमुक्तवानेव । तन्निगूहितुं प्रकाशमाह—कुमारेत्यादि । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता—ऐश्वर्यभ्रंशेन तुल्यता साम्यम् । पुनः साशङ्कमानो भरतः शपथेन पृच्छति--किं गूहसे इत्यादि । गूहसे = गोपायसि । स्वर्गंगतेन = मृतेन महाराजपादमूलेन = मत्पितृचरणेन शापितः असि = शपथं लम्भितः असि ।

अन्वयः--रामेण मुनिजनस्य अर्थे महता रक्षसा वैरम् कृतम् । ततः रावणेन मायाम् उपाश्रित्य सीता बलात् हृता ॥ ११ ॥

व्याख्या--रामेण मुनिजनस्य = ऋषिजनस्य अर्थे = कृते महता = बलिना रक्षसा = निशाचरेन्द्रेण रावणेन वैरम् = विरोधः कृतम् ततः = तस्मात्कारणात् रावणेन = दशाननेन मायां छद्म उपाश्रित्य = आधारीकृत्य सीता = राघवपत्नी-बलात् हृता = चोरिता ॥ ११ ॥

सुमन्त्र--(स्वगत) ओह ! बहुत बुरा हुआ जो मैंने सब कुछ कह दिया (प्रकट) कुमार ! कुछ नहीं, समदुःख का अभिप्राय यही है कि दोनों को राज्य से च्युत किया गया था ।

भरत—तात ! सच्ची बातें क्यों छिपा रहे हो । तुम्हें स्वर्गस्थ महाराज के चरणों की शपथ जो सच न कहो ।

सुमन्त्र—अब तो सत्य कहने के लिये विवश हो गया । अच्छा सुनिये । आर्य राम ने मुनियों की रक्षा के लिये बलवान् राक्षसों से वैर मोल लिया । इसी कारण माया से (साधु वेष बनाकर) रावण ने सीता को चुरा लिया ॥ ११ ॥

भरतः—कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः--समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य) भोः कष्टम् ।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥१२॥

भोः । किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, कष्टम् ! अनुगच्छतु मां तातः !

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

सीताहरणवृत्तान्तमुपश्रुत्य भरतो ब्रवीति कथं हृतेति ।

अन्वयः--मम आर्यः पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः वनप्रदेशे महत् दुःखम् अनुभूय भार्यावियोगम् उपलभ्य पुनः खे जीमूतचन्द्र इव प्रभया वियुक्तः ॥ १२ ॥

व्याख्या--मम आर्यः रामः पित्रा = दशरथेन बान्धवजनेन = सम्बन्धिजनेन च विप्रयुक्तः = दूरीकृतः (अस्मिन्) वनप्रदेशे = काननभागे महद् दुःखम् = दुःसहं क्लेशम् अनुभूय = लब्ध्वा भार्यावियोगम् = पत्नीविरहम् उपलभ्य = आसाद्य पुनः खे = आकाशे जीमूतचन्द्रः = मेघावृतशशीव प्रभया = चन्द्रिकया वियुक्तः = विरहितः । यथाकाशे स्थितस्य चन्द्रमसः मेघावरणे जाते तत्प्रभा वियुज्य तं संतापयति तथैव पित्रा बान्धवैश्च वियुक्तस्य खेदमनुभवतो रामस्य सीताविरहो भूयः दुःखदायको जात इति भावार्थः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १२ ॥

भरत—क्या सीता हरी गई (मूर्च्छित हो जाते हैं) ।

सुमन्त्र—धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये ।

भरत—(फिर संभल कर) हा शोक ! मेरे आर्य राम पिता तथा बान्धवों से वियुक्त हुए । वन्य प्रदेश में महान् दुःख उठाया और अब सीता का वियोग प्राप्त कर मेघावृत चन्द्रमा के समान प्रभा से हीन हो गये ।

ओह ! इस समय अब क्या करूँ । अच्छा सोच लिया । तात ! आप मेरे पीछे-पीछे आइये ।

सुमन्त्र—जैसी कुमार की आज्ञा ।

(उभौ परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार! न खलु न खलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शालमिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम् । भोः! क इह प्रतिहारे ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टिदारओ । विजआ खु अहं । [जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।]

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्रभवत्यै ।

प्रतिहारी—कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि ? [कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ?] .

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

प्रतिहारी—हं किणु खु भवे ? भट्टा ! तह । [(आत्मगतम्) [हं किन्नु खलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः! तथा !]

[निष्क्रान्ता]

[ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च]

(दोनों चलते हैं)

सुमन्त्र—कुमार! उधर मत जाइये, उधर मत जाइये । वह तो रानियों का चतुःशालात्मक निवास है ।

भरत—मेरा वहीं काम हैं । अरे यहाँ पर कौन हैं ?

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जय हो कुमार को । मैं हूँ विजया ।

भरत—विजये ! मेरे आने की सूचना तत्रभवती को दो ।

प्रतीहारी—कुमार ! किस महारानी को सूचना दूं ।

भरत—जो मुझे राजा बनाना चाहती थी ।

प्रतीहारी—(अपने आप) क्या बात हो सकती हैं (प्रकट) स्वामी की जैसी आज्ञा (ऐसा कहकर जाती हैं) ।

(कैकेयी तथा प्रतीहारी का प्रवेश)

कैकेयी— विजए ! मं पेक्खिदुं भरदो आअदो ? [विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ?]

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो तादसुमन्तो आअदो । तन सह भट्टिदारओ भरदो भट्टिणि पेक्खिदुं इच्छति किल । [भट्टिनि ! तथा भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् तातसुमन्त्र आगतः । तेन सहं भर्तृदारको भरतो भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल ।]

कैकेयी—(स्वगतम्) । केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो ? [केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ?] ।

प्रतिहारी—भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ [भट्टिणि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ।]

कैकेयी—गच्छ । पवेसेहि णं [गच्छ । प्रवेशयैनम् ।]

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह जेदु भट्टिदारओ । पविसदु किल । [भट्टिनि ! तथा (परिक्रम्योपसृत्य) । जयतु भर्तृदारकः । प्रविशतु किल ।]

भरतः—विजये किं निवेदितम् ?

प्रतिहारी—आम् ।

भरतः—तेन हि प्रविशावः । (प्रविशतः) ।

कैकेयी—विजये ! क्या कहती हो मुझसे मिलने के लिये भरत आये हैं ।

प्रतीहारी—महारानी ! हाँ यही बात है । कुमार राम के पास से तात सुमन्त्र आये हैं । उन्हीं के साथ कुमार भरत महारानी जी से मिलना चाहते हैं ।

कैकेयी—(अपने आप) न जाने किस बात को लेकर भरत मुझे उपालम्भ दें ।

प्रतीहारी—महारानी जी, क्या राजकुमार आवें ।

कैकेयी—जाओ उन्हें भीतर बुला लाओ ।

प्रतीहारी—महारानी की जो आज्ञा (चलकर तथा पास आकर) कुमार की जय हो । आप भीतर चलें ।

भरत—विजये ! क्या तुमने सूचना दे दी ।

प्रतीहारी—जी हाँ ।

भरत—अब तो हम दोनों भीतर चलें (दोनों प्रवेश करते हैं)

कैकेयी—जाद ! अपि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा ँ [जात ! अपि कौशल्या सुमित्रा च शब्दायितव्ये !]

भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

कैकेयी—हं किं णु हु भवे ? भणाहि जाद ! [(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेद् ? (प्रकाशम्) भण जात !]

भरतः—श्रूयतां,

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥ १३ ॥

कैकेयी—हं ।

अन्वयः——यः त्वन्नियोगात् स्वराज्यं परित्यज्य वनं गतः तस्य भार्या सीता हृता । ते मनोरथः पर्याप्तः इति ।

व्याख्या—यः रामः त्वन्नियोगात्—तव नियोगः = आदेशः त्वन्नियोगः तस्मात् स्वराज्यम् परित्यज्य = विहाय वनं गतः तस्य भार्या = सीता रावणेनेति शेषः । हृता स इदानीम् भार्या वियोगजनितदुःखमप्यनुभवति । अतः ते मनोरथः= = अभिलाषः पर्याप्तः = सर्वथा परिपूर्णः ॥ १३ ॥

कैकेयी—वत्स ! विजया कहती है कि राम के पास से सुमन्त्र आये हैं ।

भरत—इससे भी बढ़कर प्रिय समाचार आपको सुना रहा हूँ ।

कैकेयी—बेटा तब तो कौशल्या एवं सुमित्रा को भी बुला लेना चाहिये ।

भरत—वह समाचार उन दोनों के सुनने योग्य नहीं है ।

कैकेयी—(मन में) ऐसी कौन सी बात हो सकती है ? (प्रकट) अच्छा बेटा बताओ ।

भरत—सुनिये ।

जो तुम्हारी आज्ञा से अपना राज्य छोड़कर वन चला गया उसकी स्त्री चुरा ली गई । अब तो तुम्हारा मनोरथ सर्वतोभावेन पूर्ण हुआ ।

कैकेयी—हैं !

भरतः—हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥ १४ ॥

कैकेयी:—भोदु दाणि कालो कहेउं । जाद ! तुवं ण जाणासि महाराअस्स सावं । [(आत्मगतम्) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम् । (प्रकाशम्) जात ! त्वं जानासि महाराजस्य शापम् ।]

भरतः—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण । [सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।]

अन्वयः—हन्त भोः अत्रभवतीं वधूं प्राप्य सत्त्वयुक्तानाम् मनस्विनाम् इक्ष्वाकूणाम् वधूप्रधर्षणं प्राप्तम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—सीताहरणवृत्तं श्रुत्वाहमिति वदन्तीं कैकेयीं भरतः पुनरुपालभते—हन्त भो इत्यादि । हन्त इति खेदे । अत्र भवतीं पूजार्हाम् भवतीम् विपरीतलक्षणया नीचस्वभावाम् वधूं प्राप्य = वधूभावेन लब्ध्वा सत्त्वयुक्तानाम् = पराक्रमशालिनाम्, मनस्विनाम् = मानघनानाम्, इक्ष्वाकूणाम् = इक्ष्वाकुवंशोद्भवानाम् वधूप्रघर्षणम् = स्त्रीहरणम् प्राप्तम् = उपस्थितम् । त्वं ह्यस्मिन् कुले आगत्य रामं वनं प्रेषितवती तत्रासुरक्षिता सीता राक्षसैरपहृतेति । त्वमेव सर्वानर्थकारणभूता अतस्त्वां धिगिति व्यज्यते ।

भरतभर्त्सनावचनमाकर्ण्य दूयमाना कैकेयी तृतीयाङ्के 'देशकाले निवेदया'-मीति यदुक्त तत्स्मृत्वाह—भवतु इति कालः अवसरः । कथयितुम् = प्रकाशयितुम् । रामवनवासे कारणमाह—जात त्वं नेति । महाराजाय महर्षिदत्तश्शाप एव वनवासे निमित्तम् । तदेव सुमन्त्रः श्रावयति श्रूयतामिति । मृगयां गतेन = आखेटार्थं गतेन । वनगजवृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया—वनगजस्य =

भरत—ओह ! महान् कष्ट है जो महाबलशाली मानधनी इक्ष्वाकुओं की कुलवधू का तुम्हें वहू पाकर अपहरण हुआ ।

कैकेयी—(स्वगत) अच्छा । अब गुप्त शाप के कहने का उचित अवसर आ गया (प्रकट) पुत्रः तुम महाराज के शाप के बारे में नहीं जानते ।

भरत—क्या कहती हो महाराज को शाप था ।

कैकेयी—सुमन्त्र ! शाप की कथा इन्हें विस्तार के साथ सुनाओ ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती। कुमार! श्रूयताम्–पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजवृंहितानुकारिशब्द-समुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः।

भरतः—हिंसित इति। शान्तं शान्तं पापम्। ततस्ततः?

सुमन्त्रः—ततस्तमेवं गतं दृष्ट्वा—

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम!

सुमन्त्रः—तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥ १५ ॥ इति।

आरण्यकहस्तिनः यद् वृंहितम् = गर्जितम् तदनुकरोतीति स चासौ शब्दश्च तेन समुत्पन्ना वनगजविषयिणी शङ्का तया शब्दवेधिना = शब्दमनुश्रुत्य वेधिना शरेण = वाणेन। विपन्नचक्षुषः विपन्ने = विनष्टे चक्षुषी = नयने यस्य तस्य, अन्धस्येत्यर्थः महर्षेः चक्षुर्भूतः नेत्र इवोपकारकः मुनितनयः = मुनिसुतः। श्रवणकुमाराख्यः हिंसितः = मारितः। ततः = श्रवणकुमारमरणानन्तरम् एवम् = मृतावस्थां गतम् = प्राप्तम् दृष्ट्वा = अवलोक्य।

अन्वयः—सत्यभाषिणा तेन मुनिना रुदितस्यान्ते उक्तम् भोः यथा अहम् पुत्रशोकाद् विपद्ये तथा त्वमपि पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥ १५ ॥

व्याख्या—तेनोक्तमिति सत्यभाषिणा सत्यं भाषितुम् शीलमस्येति तेन =

सुमन्त्र—महारानी जी की जैसी आज्ञा। कुमार! सुनिये। पहले की बात है महाराज वन में शिकार खेलने के लिये गये हुए थे। वहाँ उन्होंने किसी तालाब में घड़ा डुबोते समय उसके वनैले हाथी की गर्जना के समान गड़गड़ाहटयुक्त शब्द सुनकर यह अरण्य हाथी है इस आशङ्का से उन अन्धे स्त्री-पुरुष के एक मात्र सहारे पुत्र पर शब्दवेधी वाण चला दिया जिसके कारण उसकी हत्या हो गयी।

भरत—क्या मारा गया? तब तो महान् अनर्थ हो गया।

सुमन्त्र—तब अपने पुत्र की ऐसी अवस्था देखकर—

भरत—तब तो बहुत शोक की बात है।

सुमन्त्र–सत्यवादी उन मुनि ने रो लेने के पश्चात् कहा–राजन्, जिस प्रकार पुत्रशोक से मैं मर रहा हूँ उसी प्रकार पुत्रशोक से तुम्हारी भी मृत्यु होगी।

कैकेयी—जाद ! एतण्णिमित्तं अवराहे मां णिक्खिविअ पुत्तओ रामो बणं पेसिदो, ण हु रज्जलोहेण। अपरिहरणीओ महरिसिसाओ पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ] जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, खलु न राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

अवितथभाषिणा तेन = मुनिना श्रवणकुमारपित्रा रुदितस्य = रोदनस्य अन्ते = अवसाने उक्तम्—शापरूपेण कथितम् 'भोः यथाहम् पुत्रशोकात् प्राणं त्यक्ष्ये तथा त्वमपि पुत्रशोकात् विपत्स्यसे = मरिष्यसि। यदुक्तं कालिदासेन दृष्टान्तमाप्यसि भवानपि पुत्रशोकादन्ते वयस्यहमिवेति तदुक्तवन्तमित्यादि। (रघु० ९/७९) कैकेयी एवम् शापकथायां श्रावितायाम् भरतमनसि निरूढमूलम्, स्वापराधत्वं निर्मूलयन्त्याह जात इति। एतन्निमित्तम् मुनिशापनिमित्तम् मुनिशापश्चरितार्थे यथा भवेत् अहम् माम् स्वात्मानम् अपराधे निक्षिप्य कलङ्किनो भूत्वा। अयं भावः रामवनगमने मुनिशाप एव मुख्यतया कारणम्—अहं च निमित्तमात्रम्। राज्यलोभेन मयैतन्न विहितम्। अपरिहरणीयः अनिवार्यः भरतस्तत्राशङ्कमान इवाह अथ तुल्येति पुत्रवियोग एव यदा राजमरणे कारणम् तदाहमेव किमिति वनं न प्रेषित इत्यत आह—प्रकृतीभूतस्ते प्रवास इति मोढ़तामापन्नः ते विप्रवासः वियोगः। मातुलकुले तत्र सार्वकालिकवासेन सोढुं शक्यस्त्वद्वियोगः राज्ञो मरणे हेतुर्न भवेदतः तुल्यताभावात् राम एव वनं प्रेषितस्तद्वियोगस्य सोढुमशक्यत्वादित्यर्थः। अल्पकालिकेनापि पुत्रप्रवासेन राज्ञो मरणे सिद्धे किमिति दीर्घकालिकचतुर्दशवर्षावधिवनवासक्लेशेन क्लेशितो राम इति भरतः पृच्छति अथेति। पर्याकुलहृदयया पर्याकुलम् भाविरामवियोगदुःखेन किंकर्त्तव्यविमूढं हृदयम् चित्तं यस्याः सा तया। अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य भरतप्रश्नस्य समाधानं करोति कैकेयी कुमार इति। न खलु विदितम् ज्ञातमात्रमपि तु अनुमतमपि, सम्मतमपीति भावः। एवम् स्वमातुः निरपराधतां विज्ञाय प्रसीदन् भरतो वृथादूषणं जातं स्वापराधम् क्षमयितुं ब्रवीति—हन्त

कैकेयी—बेटा ! इसीलिये मैंने अपने को कलङ्क के गड्ढे में डालकर भी पुत्र राम को वन में भेजा। मैंने राज्यलोभ से ऐसा नहीं किया। उन्हें यह महर्षि का अनिवार्य शाप था जो राम के वनविप्रवास के बिना चरितार्थ नहीं किया जा सकता था।

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकैयी—जाद ! मादुलकुले वत्तमाणस्स पइनीहूदो दे विप्पवासो । [जात ! मातुलकुले वर्त्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः ।]

भरतः—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि ?

कैकैयी—जाद ! चउद्दस दिअस त्ति वतुकामाए पय्याउलहिअआए चउद्दस वरिसाणि ति उत्तं] [जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणोत्युक्तम् ।)

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

इत्यादि त्रैलोक्यसाक्षिणः त्रैलोक्यद्रष्टारः । एते वामदेवादयः भवत्या अभिप्रायम् जानन्तु नाम एतेषां सम्मतौ भवत्या न कश्चिद्दोषः अतो भवती निरपराद्धा । स्वापराधं क्षमापयन्नाह अम्ब इति समुत्पन्नमन्युना समुत्पन्नो मन्युः क्रोधः यस्य तेन । दूषिता कलङ्किता । रामवनवासे त्वमेव कारणमिति मिथ्यैव दूषिता । अतः मर्षयितव्यम् क्षन्तव्यम् । मे माता त्वं सर्वथा निष्कलङ्केति हेतुना त्वां नमस्करोमीत्याह—अम्ब ! अभिवादये इति । अनेन तृतीयाङ्के कौशल्यया प्रेर्यमाणोऽपि भरतः कैकेयीं न प्रणनाम इति वृत्तम् स्मारितम् । मातृदृष्टौ हि पुत्रः सर्वथा निरपराध इत्याह जात इत्यादि । क्षमाप्राप्त्यनन्तरं भरतः कृतज्ञताप्रकाशनपूर्वकं स्वकर्त्तव्यं प्रति कैकेय्याः अनुज्ञां याचते—अनुगृहीतोऽस्मीत्यादि । उद्योजयामि—उत्साहेन योजयिष्यामि ।

भरत—मुझे वन भेजने से भी महाराज का पुत्रवियोग हो सकता था फिर मुझे वन में क्यों नहीं भेजी ।

कैकेयी—बेटा ! निरन्तर ननिहाल में रहने के कारण महाराज को तुम्हारा विप्रवास सह्य जो हो गया था (जो असह्य न होने के कारण मृत्यु का हेतु नहीं हो सकता था)

भरत—अच्छा, तो चौदह वर्ष का लम्बा समय विप्रवास के लिये क्यों चुनी ।

कैकेयी—बेटा ! मैं चौदह दिन ही कहना चाहेती थी । किन्तु घबड़ाहट के कारण चौदह वर्ष मुख से निकल गया ।

भरत—तुम में तर्क देने की अद्भुत पण्डिताई है । अच्छा तो क्या गुरुजनों को यह परिज्ञात है ?

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च ।

भरतः—हन्त त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते । दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती अम्ब ! मद्भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम् अम्ब ! अभिवादये ।

कैकेयी—जात ! का णाम माता पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि ? उट्ठेहि । उट्ठेहि । को एत्थ दोसो ।[जात ! का नाम माता पुत्रस्यापराधं न मर्षयति ? उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कोऽत्र दोषः ।]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आपृच्छाम्यत्र भवतीम् । अद्यैवाहमार्यस्य साहायार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि । अहमिदानीम्—

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरङ्गैश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥ १६ ॥

अन्वयः—इमां वेलाम् मत्तगजान्धकाराम् सैन्यौघनिवेशनद्धाम् करोमि । तरङ्गैः बलैश्च रावणेन सह ममुद्रं तुल्यं ग्लानिं नयामि ॥ १६ ॥

व्याख्या—वेलामिमामिति—इमाम् वेलाम् = समुद्रतटभूमिम् मत्तगजान्धकाराम्—मत्तैः = स्रवद्वारिभिः गजैः = करिभिः अन्धकाराम् = अप्रकाशाम् सैन्यौत्रनिवेशनद्धाम्—सैन्यौत्रस्य = बलसमूहस्य निवेशैः = शिविरैः नद्धाम् =

सुमन्त्र—कुमार ! वसिष्ठ एवं वामदेवादि को यह अभिमत भी था, केवल विदित ही नहीं ।

भरत—ये महर्षिगण तो तीनों लोकों की बात जानते हैं—यह हर्ष का विषय है कि आप निरपराध हैं । हे मातः ! भ्रातृप्रेम के आवेग से क्रुद्ध होने के कारण मैंने आप पर कलङ्क लगाया उसे क्षमा कीजिये । अम्ब । प्रणाम ।

कैकेयी—बेटा ! कौन ऐसी माता है जो पुत्र के अपराध को क्षमा न करेगी । उठो उठो । इसमें तुम्हारा क्या अपराध है ।

भरत—अब तो मैं अनुगृहीत हुआ । अब आर्या की अनुमति चाहता हूँ कि क्या आर्य राम की सहायता के लिये संपूर्ण राजमण्डल को उत्साहपूर्वक तैयार करूँ । यह इस समय—

मैं इस समस्त सागर तट को मतवाले हाथियों की घटा से अन्धकारमय बना दूं, तथा अपनी अनन्त सेना के शिविरों में संकुल कर दूं । समुद्र को पार

अये शब्द इव। तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु कुमारो इमं वुत्तन्तं सुणिअ जेट्टभट्टिणी मोहं गआ। { जयतु कुमारः। इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता।

कैकेयी—हम्।

भरत—कथं मोहमुपगताम्बा ?

कैकेयी—एहि ! जाद ! अय्यां अस्सासइस्सामो। [एहि ! जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः।]

भरतः—यदाज्ञापयत्यम्बा। (निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति षष्ठोऽङ्कः

व्याप्ताम् च करोमि। मदीयाः मत्तकरिघटाः समुद्रतटमुपरुन्धन्तु तत्र तत्र च बलानि शिविराणि निर्माय वसन्तु इत्यर्थः। तरद्भिः समुद्रमिति शेषः। प्लवमानैः बलैः सैन्यैः च रावणेन सह समम् समुद्रमपि तुल्यं यथा स्यात्तथा ग्लानिं = म्लाननतां नयामि = संपादयामि। एतेन रावणं प्रतिभरतस्य कोपातिशयो व्यज्यते। सहोक्तिरलङ्कारः। 'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्' इति तल्लक्षणम्।

करती हुई यह हमारी सेना रावण के साथ समुद्र को भी विध्वस्त करने में समर्थ है ॥ १६ ॥

अरे ! यह कोलाहल जैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है। पता लगाओ कैसा कोलाहल हो रहा है।

प्रतिहारी—जय हो कुमार की। इस समाचार को सुनते ही बड़ी रानी मूर्च्छित हो गई।

कैकेयी—हाय !

भरत—क्या कहती हो, माता जी बेहोश हो गई।

कैकेयी—आओ पुत्र, आर्या को धीरज दिलावें।

भरत—जैसी माताजी की आज्ञा। (सभी निकल जाते हैं।)

प्रतिमा नाटक के छठें अङ्क की गङ्गा नामक संस्कृत
एवं हिन्दी टीका समाप्त।

सप्तमोऽङ्क

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

नन्दिलकः—अय्य अअं हि। [आर्य अयमस्मि ।]

तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यनिद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं

इह सप्तमाङ्के रावणं विजित्य सीतया सह रामस्य तपोवनं प्रति निवर्त्तनम् तत्र मातृसहितस्य भरतस्य समागमः, रामस्याभिषेकः पुनः सम्मिलितानाम् तेषामयोध्यां प्रति निवर्त्तनमित्यादिकथावस्तुनिरूपयितुं प्रबन्धमुपसंहर्तुं चोपक्रमते। तत्रादौ रामस्य तपोवनागमनं मिश्रविष्कम्भकेन सूचयति—ततः प्रविशतीत्यादि। कुलपतिः = तपोवनाधिष्ठाता मुनिवरः। विज्ञापयति = समादिशति। स्वदारापहारिणम्—स्वस्य दाराणामपहारिणम् = स्वस्त्रीचौरम्। त्रैलोक्यविद्रावणम्—त्रिलोक्यां भवः त्रैलोक्यम् तद्विद्रावयति पलायनपरं करोतीति, रावणम्—रावयति लोकानिति तम्। राक्षसगणविरुद्धवृत्तम्—राक्षसगणैः = असुरसमूहैः विरुद्धं = विपरीतं वृत्तम् = चरित्रम् यस्य तम् सात्त्विकचरित्रयुक्तम् गुणगण—विभूषणम्—गुणानां = दयादाक्षिण्यविवेकानाम् गणाः = समूहास्ते विभूषणानि =

(तदनन्तर तपस्वी का प्रवेश)

तापस—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(नन्दिलक का प्रवेश)

नन्दिलक—आर्य यह हूँ।

तपस्वी—नन्दिलक ! कुलपति की आज्ञा है कि अपनी स्त्री को चुराने वाले तीनों लोकों को भयभीत करने वाले रावण को मारकर राक्षसी आचार से विरुद्ध रहने वाले तथा नाना प्रकार के गुणों के अलङ्कारभूत विभीषण का लङ्का में अभिषेक कर देवताओं तथा देवर्षियों के सामने अपने को सर्वथा निष्कलङ्क सिद्ध करने वाली पतिव्रता सीता को साथ लिये तथा प्रधान प्रधान ऋक्ष;

विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यम्, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति ।

नन्दिलकः—अय्य सव्वं सज्जीकिदं । किन्तु, [आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् । किन्तु,]

शोभाजनकानि यस्य तम् । अभिषिच्य = अभिषेकं कृत्वा देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्राम्—देवेषु = देवर्षिषु च सिद्धम् = प्रमाणीभूतम् विमलं = निर्मलम् चारित्रम् यस्याः सा ताम् यद्वा देवैः देवर्षिभिश्च सिद्धम् निश्चित्य प्रत्यायितम् विमलं चारित्रम् चरित्रसमूहम् यस्याः सा ताम् । ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः अत्र मुख्यशब्दो प्रत्येकान्वयी तेन ऋक्षमुख्याः = जाम्बवदादयः राक्षसमुख्याः = बिभीषणादयः वानरमुख्याः = सुग्रीवादयः तैः परिवृतः = समावृतः शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामः—शरदि विमलः = निर्मलः यः आकाशः तस्मिन् यः चन्द्रः तद्वदभिरामः मनःप्रहर्षकारकः । अस्मद्विभवेन = अस्मत्तपोरूपवित्तानुसारेण आरण्यवस्तु इति शेषः । संकल्पयितव्यम् = सज्जीकर्त्तव्यम् । 'किन्तु' इत्यस्याग्रे तव किं विवक्षितमित्याह किमेतदिति । राक्षसाः = मनुष्यभक्षिण इत्यर्थः । अतस्तेषाम् भक्षणनिमित्तम् भक्षणसामग्री 'सज्जीकरणविषये । कुलपतिः = आश्रममुनिमुख्यः प्रमाणम् राक्षसभक्ष्यवस्तुविषये निर्णायकत्वेनेति शेषः । राक्षसा मनुष्यान् खादन्ति अतस्तेषां भक्षणार्थम् तादृग्वस्तुनः सज्जीकरणमस्मत्कृतेऽसंभवमित्यादि तस्याशयं बुद्ध्वा शङ्कामपनुदति—अलमलमित्यादि । सम्भ्रमेण = वैक्लव्येन । विभीषणविधेयाः = विभीषणाधीनाः । विभीषणो हि मांसभक्षणविरोधी अतस्तदधीना राक्षसा अपि तादृशा एव तत्त्वया तेषामाहारार्थं चिन्ता न कर्त्तव्येति भावः । विभीषणचरित्रश्रवणेन समुत्पन्नश्रद्धस्तं प्रणमति नम इत्यादि । राक्षससज्जनाय—रक्षसश्चासौ सज्जनश्चेति तस्मै ।

राक्षस एवं वानरों के साथ शरच्चन्द्र के समान नयनाभिराम राम इधर आ रहे हैं इसलिये उनके स्वागत के लिये आश्रम में सुलभतया उत्पन्न वस्तुएँ एकत्रित की जानी चाहिये ।

नन्दिलक—आर्य, सब वस्तुएँ एकत्रित की जा चुकी हैं किन्तु ।

टी

तापसः—किमेतत् ?

नन्दिलकः—एत्थ विभीषणकेरआ रक्खसा । तेसां भक्खणणिमित्तं कूलवदी पमाणम् । (अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम् ।

तापसः—किमर्थम् ?

नन्दिलकः—ते खु खज्जन्ति । (ते खलु खादन्ति ।)

तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण । विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः ।

नन्दिलकः—णमो रक्खशसज्जणाअ । [नमो राक्षससज्जनाय ।]

(निष्क्रान्तः)

तापसः—(विलोक्य) अये अत्र भवान् राघवः । य एष—

जय नरवर ! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा ।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥ १ ॥

अन्वयः—नरवर जय । तव द्वितीयः अरिः जेयः स्यात् भूमिः एकातपत्रा तव विधेया भवतु इति प्रसन्नैः अनेकैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलम् अवतीर्णः ॥ १ ॥

व्याख्या—जयेति—हे नरवर = पुरुषोत्तम जय = सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व ।

तापस—किन्तु क्या ?

नन्दिलक—विभीषण के सम्बन्धी बहुत से राक्षस भी यहाँ आये हुए हैं उनके भोजन के विषय में कुलपति निर्णय करेंगे कि इस विषय में क्या करना है ।

तपस्वी—यह क्यों ?

नन्दिलक—बात यह है कि राक्षस मांस खाते हैं ।

तपस्वी—घबड़ाओ मत । वे सभी विभीषण के अधीनस्थ राक्षस हैं ।

नन्दिलक—तब तो राक्षस होकर भी सज्जन जैसे उन्हें प्रणाम है ।

(प्रस्थान)

तपस्वी—(देखकर) अरे ये हैं तत्रभवान् राघव !

हे पुरुषोत्तम ! आपकी जय हो । आप इसी प्रकार अपने अन्य शत्रुओं पर भी

जयतु भवान् जयतु। (निष्क्रान्तः)

(मिश्रविष्कम्भकः)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम्।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ २ ॥

द्वितीयः = रावणापेक्षया अन्यः अपि तव अरिः जेयः = जेतुमर्हः त्वया पराभवितुं योग्यः स्यादित्यर्थः। रावणस्तु जित एव, अन्येऽपि शत्रवः पराभवं यान्तु इति शुभाशंसनम्। भूमिः = पृथ्वी एकातपत्रा = एकछत्रस्थिता मात्रतवैकस्य शासने वशगा स्यात् इति एवं रूपेण प्रसन्नैः = रावणवधसंतुष्टैः अनेकैः = बहुभिः मुनिभिः = मौनव्रतधारिभिस्तपस्विभिः स्तूयमानः = अभिवन्द्यमानः मानवेन्द्रः = मनुजेश्वरो रामचन्द्रः विमानात् = पुष्पकविमानात् क्षितितलम् = पृथिव्याम् अवतीर्णः = अवातरत्। मालिनीवृत्तम्। नीचमध्यमपात्रप्रयोजितत्वान्मिश्र विष्कम्भकः ॥ १ ॥

अन्वयः—नमुदितवलवीर्यं रावणं नाशयित्वा जगति गुणसमग्रां विशुद्धाम् सीतां प्रांप्य गुरूणां वचनम् अन्तशः पूरयित्वा भूयःमुनिजनवनवासं प्राप्तवान् अस्मि।

अभ्यन्तरम् = उटजाभ्यन्तरम्। चिरायते = विलम्बते।

विजय प्राप्त करें। इस महीमण्डल पर एकमात्र आपका शासन रहे इस प्रकार रावण वध से सुसंतुष्ट मुनिजनों से अभिवन्द्यमान मनुजेश्वर राम पुष्पक विमान से पृथ्वी पर उतर रहे हैं ॥ १ ॥

आपकी जय हो जय हो।

मिश्रविष्कम्भक समाप्त ॥

(राम का प्रवेश)

राम—पराक्रमी एवं ओजस्वी रावण को मारकर सर्वगुणसंपन्ना एवम् विशुद्-

वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ २ ॥

तापसीनामभिवादनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली। (विलोक्य) अये ! इयं वैदेही।

सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

तापसी—हंला ! एसो दे कुटुम्बिओ। उपसप्प णं। ण सक्कं तुमं

अन्वयः—जनकेन्द्रपुत्री सीता यथावयः सखी इति सीता इति जानकी इति स्नुषा इति च तपस्विदारैः स्निग्धतरं संभाष्यमाणा मन्दम् समुपैति ॥ ३ ॥

व्याख्या—जनकेन्द्रपुत्री = जानकी सीता यथावयः—वयः अनतिक्रम्येति यथावयः = स्वसखीस्ववयोऽनुरूपेण तत्र सदृशवयोभिः = सीता = जानकीति च अधिक-वयोभिः = वृद्धाभिस्तापसीभिश्च स्नुषा इति च तपस्विदारैः = मुनिपत्नीभिः स्निग्धतरम् = माधुर्ययुक्तम् संभाष्यमाणा व्याहूयमाणा सीता मन्दम् = शनैः शनैः समुपैति=मत्समीपमागच्छति। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। उपजातिश्छन्दः ॥ ३ ॥

कुटुम्बिकः = भर्त्ता। एकाकिनीम् = असहायाम्—प्रेक्षितुम् त्वां न शक्यम् येन त्वमपह्रियसे तमुपसर्प स्वप्रियतममित्याशयेनाह—उपसर्प नमित्यादि।

चारित्रा सीता को प्राप्त कर पिताजी की आज्ञा का अक्षरशः पूर्णरूपेण पालन कर मैं पुनः उन्हीं मुनियों के तपोवन में लौटकर आ गया हूँ। मुनिपत्नियों के अभिनन्दन के लिये सीता पर्णशाला के भीतर गईं हुईं हैं। बड़ी देर हुई। (देख कर) अरे यही तो सीता हैं।

जिन्हें मुनिजनों की पत्नियाँ अपनी अपनी अवस्था के अनुसार मधुर वार्त्तालाप के प्रसङ्ग में कोई सखी, कोई कोई सीता, कोई जानकी एवं कोई स्नुषा कहकर पुकार रही हैं और जो धीरे-धीरे इधर ही आ रही हैं।

(सीता और तापसी का प्रवेश)

तापसी—सखि ! वही हैं तुम्हारे पतिदेव। उनके पास चली जाओ। मैं तुम्हें अकेली नहीं छोड़ सकती।

एआईणि पेक्खिदुं। [हला ! एष ते कुटुम्बिकः। उपसर्पैनम्। न शक्यं त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम्।]

सीता—हं अज्ज वि अविस्सहणीअ मं पडिभादि। जेदु अय्यउत्तो। [हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति। (उपसृत्य) जयत्वार्यपुत्रः।]

रामः—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत्। अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः।

सीता—जाणामि जाणामि। ओलोइअपत्तआ उल्लोअइदव्वा दाणिं संवुत्ता। [जानामि जानामि। अवलोकितपुत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं संवृत्ताः।]

रामः—एवमेतत्। निम्नस्थलोत्पादको हि कालः। मैथिलि ! अप्युप-

हमित्यङ्गीकारे। एवमेव करोमीत्यर्थः। अद्यापि रावणे निहतेऽपि। अविश्वसनीयम् इव मे प्रतिभाति भर्तृरहितामात्मानमरक्षितां मन्ये इत्याशयः।

ज्ञायन्ते = स्मर्यन्ते। पुत्रकृतकाः = कृत्रिमपुत्रभूताः, पुत्रवन्निर्विशेषं पालिता इत्यर्थः। जानामि = संस्मरामि। द्विरुक्तिः हर्षातिरेकेण। अवलोकितपत्रकाः—अवलोकितानि वृक्षाणां वालतया चक्षुषी अधःकृत्य दृष्टानि पत्राणि दलानि येषां ते। ते इदानीम् उल्लोकयितव्याः चक्षुषी उपरिकृत्य द्रष्टव्याः संवृत्ता जाताः ते तदानीम् वाला आसन् इदानीं संवृद्धावस्थायां प्राप्ता इत्यर्थः। निम्नस्थ-

---

सीता—ठीक कहती हो। मुझे आज भी विश्वास नहीं हो पा रहा है। (समीप जाकर) जय हो आर्यपुत्र की।

राम—मैथिलि ! क्या तुम्हें याद है उस जनस्थान का जहाँ हम लोगों का पूर्व में निवास था और जहाँ तुमने पुत्र के समान वृक्षों का पालन किया था उन वृक्षों को पहचानती हो ?

सीता—महाराज ! पहचानती हूँ। अच्छी तरह पहचानती हूँ। बाल्यावस्था में तो इनके छोटे-छोटे पत्ते नेत्र नीचे करने से दिखाई पड़ते थे किन्तु अब तो ये इतने बढ़ गये हैं कि आँखों को ऊपर कर ही उन्हें देखा जा सकता है।

राम—हाँ, बात तो ऐसी है। काल परिवर्तनशील है। वह नीचे की वस्तु को ऊपर उठा देता है और ऊपर की वस्तु को नीचे कर देता है। सीता, क्या

लभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत् ।

सीता—अय्यउत्त ! दिढं खु सुमरामि [आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि ।]

रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः । अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निर्वपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः ।

सीता—हं अय्यउत्त । मा खु मा खु एवं भणिदुं । (हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् ।) (भीता वेपते ।)

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण । अतिक्रान्तः खल्वेष कालः । (दिशो विलोक्य) अये कुतो नु,

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः ।

लोत्पादकः—निम्नम् निम्नप्रदेशस्थम् स्थलम् उच्चप्रदेशस्थम् च यथा उत्पादयति तथाभूतःकालः । निम्नमुच्चतां प्रापयति उच्चैःस्थं च निम्नतां करोतीति भावः कालः परिवर्त्तनशीलः इति शेषः अभ्युपलभ्यसे = क्वचित्स्मर्यसे । सप्तपर्णस्य तन्नामकवृक्षस्य अधस्तात् शुक्लवाससम् = शुक्लवस्त्रधारिणम् परित्रस्तम् परितः त्रस्तम् भीतिमापन्नम् अनारण्यकोऽयमस्मान् परिभूयादिति शङ्कयेत्यर्थः साक्षिभूतः द्रष्टा । रावणहरणसंस्मरणात् सीता तच्चर्चां निषेधति—मा खलु इति महाकच्छः महान् सरःप्रदेशः अतिक्रान्तः व्यतीतः ।

तुम्हें स्मरण है कि इस तमाल पेड़ के नीचे जब शुक्ल वस्त्रधारी भरत को देखकर हरिणों का समूह भयभीत हो गया था ।

सीता—आर्यपुत्र ! बहुत अच्छी तरह स्मरण है ।

रामः—और यह है हम लोगों की तपस्या का साक्षी वह महान् सरस्तट जहाँ हम लोगों ने पिता जी के श्राद्ध के विषय में सोचते हुए काञ्चनपार्श्व नामक मृग देखा था ।

सीता—आर्यपुत्र ठीक कहते हैं । लेकिन अब उन बातों को कहकर स्मरण मत दिलाइये । (वह डर कर कांपने लगती है)

राम—सीते ! घबड़ाओ मत । वह समय अब बीत गया (चारों ओर देखकर) अरे यह कहाँ से ।

शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः--जयत्वार्यः । आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥ ५ ॥

अन्वयः—लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति । स एव पवनाधूतः च दिशः संप्रावृणोति । पटहस्वनघीरनादैः समूर्च्छितः शङ्खध्वनिः इदं वनम् नगरीकरोति ॥

व्याख्या--रेणुरिति—लोध्रसमानगौरः = लोध्रपुष्पतुल्यगौरवर्णः रेणुः = धूलिः समुत्पतति = भुवः ऊर्ध्वंप्रदेशं प्रयाति । स एद पवनावधूतः—पवनेन = वायुना अवधूतः = उड्डीयमानः प्रसृत्य दिशः संप्रावृणोति = आच्छादयति । पटहस्वनघीरनादैः—पटहस्वनैः वाद्यविशेषशब्दैः घीरनादैः = वीरगर्जितैः च संमूर्च्छितः = सम्यग्वर्धितः शंङ्खध्वनिः = शङ्खशब्दः इदं वनम् नगरीकरोति = नगराकारतां नयति । पटहशब्दाः वीरनादाः शङ्खस्वनाश्च नगरे एव भवन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—अयम् भ्रातृवत्सलः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः भरतः महता सैन्येन मातृभिः सह (त्वत्समीपम्) प्राप्तः ॥ ५ ॥

व्याख्या--भरतागमनं ज्ञात्वा लक्ष्मणः रामं सूचयति--अयमिति । अयम् = पुरोदृश्यमानः भ्रातृवत्सलः = भ्रातृस्नेही त्वद्दर्शनसमुत्सुकः--तव दर्शनम्

यह लोध्र पुष्प के समान धवल धूलि उड़ती हुई इधर आ रही है । जो वायु के वेग से चारों ओर फैलकर समस्त दिशाओं को अन्धकार से आच्छादित कर रही है । नगाड़े के शब्द एवं वीरों की गर्जना से मिल कर बढ़ता हुआ यह शङ्ख का शब्द इस वन को नगर का रूप दे रहा है (जिससे इस वन की शान्ति नष्ट हो रही है) ॥ ४ ॥

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—जय हो आर्य की ।

आर्य ! यह भ्रातृवत्सल भरत आपके दर्शन की लालसा से बहुत बड़ी सेना लिये हुए माताओं के साथ यहाँ आये हैं ।

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—अय्यउत्त ! इच्छिदव्वे काले भरदो आअदो । [आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः ।]

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः)

भरतः— तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्तं
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् ।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥ ६ ॥

त्वद्दर्शनम् तदर्थं समुत्सुकः = समुत्कण्ठितः भरतः महता सैन्येन = बलेन, मातृभिः = कौशल्यादिभिः सह संप्राप्तः = समागतः त्वत्सकाशमिति शेषः ॥ ५ ॥ श्वश्रूजनपुरोगम्=–श्वश्रूजनस्य पुरोगम् पुरःसरम् । विशालीक्रियताम् = विशदीक्रियताम् । एष्टव्ये = अभिलषितव्ये ।

अन्वयः—अद्य तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः शरदि मेघैः विमुक्तम् निर्मलम् सोमम् इव तैः तैः प्रवृद्धविषयैः विषमैः विमुक्तम् आर्यासहायम् गुरुं दिदृक्षुः अहम् प्राप्तः अस्मि ॥ ६ ॥

व्याख्या—अद्य तुष्टहृदयः—तुष्टम् = प्रसन्नः हृदयम् = मानसः यस्य सः । स्वजनानुबद्धः—स्वजनैः = वन्धुबान्धवादिभिः अनुबद्धः = अनुगतः शरदि

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या सचमुच भरत आये हैं ।

लक्ष्मण—और क्या ?

राम—सीते ! श्वश्रूजनों के साथ आये हुए भरत को देखने के लिये अपनी आँखों को विशाल बना लो ।

सीता—आर्यपुत्र ! भरत उचित समय पर आये हैं ।

(माताओं को साथ लिये भरत का प्रवेश)

भरत—मेघों के आवरण से रहित शरत्कालीन स्वच्छ चन्द्रमा के समान

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं कुसलिणं सह बहूए पेक्खिअ । [जात ! चिरं जीव । दिष्टच्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य !]

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः अभिवादये ।

सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । [जात ! चिरं जीव ।]

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—अय्या ! वन्दामि । (आर्याः वन्दे ।)

मेघापगमे तन्नामकर्त्तौं मेघैः मुक्तम् निरावरणम् निर्मलम् स्वच्छम् सोमम् = चन्द्रमसम् इव तैस्तैः प्रसिद्धैः प्रवृद्धविषयैः—प्रवृद्धाः विषयाः येषां तैः नानाप्रकारकैः विषमैः = सङ्कटैः विमुक्तम् = रहितम् आर्यासहायम् = सीतासमन्वितम् गुरुम् = ज्येष्ठं भ्रातरं रामम् दिदृक्षुः = दर्शनेच्छया अहम् प्राप्तः अस्मि = इहागतः अस्मि । अत्रोपमालङ्कारः । सङ्कटविमुक्तरामस्य मेघनिर्मुक्तसोमसादृश्यात् । वसन्ततिलका वृत्तम् ।। ६ ।।

मातरः हृषं प्रकाशयन्ति जात इत्यादिना वर्धामहे = प्रमोदामहे । अवसितप्रतिज्ञम्—अवसिता संतीर्णा प्रतिज्ञा येन तम् । कुशलिनम् = सकुशलम् स्वस्थम् चिरमङ्गला—चिरम् चिरकालावस्थायि मङ्गलम् = कल्याणम् यस्याः सा ।

उन उन महासंकटों से मुक्त होकर आये हुए सीता के सहित श्रीराम का दर्शन करने के लिये मैं सानन्द अपने सज्जनों को साथ लिये यहाँ आया हूँ ।

राम—मातृगणों को मैं प्रणाम करता हूँ ।

सभी—बेटा ! जिरजीवी रहो । आज हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हो रही है जो अपनीं प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकुशल वधू के साथ हम तुम्हें देख रहे हैं ।

राम—अनुगृहीत हुआ ।

लक्ष्मण—मातृगण ! मेरा प्रणाम ।

सब—पुत्र ! चिरञ्जीवी रहो ।

लक्ष्मण—बड़ी कृपा हुई ।

सीता—आर्यगणों को प्रणाम ।

सर्वाः—वच्छ ! चिरमङ्गला होहि । [वत्से ! चिरमङ्गला भव ।]

सीता—अणुग्गहिदम्हि । [अनुगृहीतास्मि ।]

भरतः—आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥७

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

सीता—अय्यउत्तेण चिरसञ्चारी होहि । [आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।]

अन्वयः—कपाटपुटप्रमाणम् वक्षः प्रसारय । सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग । शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय । (अयं श्लोकः चतुर्थाङ्के १६ संख्यासमागतः) ॥ ७ ॥

व्याख्या—कपाटपुटप्रमाणम्—कपाटयोः पुटम् = संपुटम् प्रमाणं यस्य कपाट इव विस्तीर्णम् वक्षः = उरोदेशम् प्रसारय = विस्तारय सुविपुलेन = महाविशालेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग = आश्लेषं विधेहि शरदिन्दुकल्पम् = शरच्चन्द्रसन्निभम् आननम् = मुखम् उन्नामय = ऊर्ध्वं विधेहि । व्यसनदग्धम् = दुःखैर्भस्मतां नीतम् इदं शरीरम् = देहं प्रह्लादय = प्रहर्षय । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ७ ॥

आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी आर्यपुत्रेण = रामेण चिरसञ्चारी चिरं सञ्चरितुं-शीलमस्ति अस्य । भरतः राज्यभारं गृहीतुम् रामं प्रार्थयते आर्य इत्यादि । प्रति

सब—बेटी तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो ।

सीता—अनुगृहीत हुई ।

भरत—आर्य । मैं अभिवादन करता हूँ । भरत हूँ ।

राम—वत्स ! आओ । इक्ष्वाकुकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो । चिरजीवि रहो । किवाड़ के समान चौड़े वक्षःस्थल को फैलाओ और अपनी विशाल दोनों भुजाओं से मेरा आलिङ्गन करो । शरत्कालीन चन्द्रमा के समान अपने मनोहर मुखमण्डल को ऊपर करो तथा दुःखों से परितप्त इस शरीर को प्रहर्षित करो ॥ ७ ॥

भरत—अनुगृहीत हुआ । आर्ये ! मैं भरत आपका अभिवादन करता हूँ ।

सीता—आर्यपुत्र के चिरकाल पर्यन्त अनुयायी बनो ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः-एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् । (आलिङ्गति)

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ! आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

रामः—वत्स ! कथमिव ?

कैकेयी—जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो । [जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।

(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)

शत्रुघ्नः—विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम् ।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धिः रावणान्तकरं गुरुम् ॥ ८ ॥

गृह्यताम् = स्वीक्रियताम् । चिरादभिलषितः—चिराभिलषितः = बहुकालिकसंप्रार्थितमनोरथः अस्माकम् यद् रामो राजा भवत्विति ।

अन्वयः—विविधैः व्यसनैः क्लिष्टम् अक्लिष्टगुणतेजसम् रावणान्तकरं गुरुम् द्रष्टुं मे बुद्धिः त्वरते ॥ ८ ॥

व्याख्या—विविधैः=नानाप्रकारकैः व्यसनैः = सङ्कटैः क्लिष्टम् = संपीडितम् अक्लिष्टगुणतेजसम्—अक्लिष्टाः = उदाराः गुणाः तेजश्च यस्य तम् उदारगुणप्रभावम् रावणान्तकरम् रावणविनाशकम् गुरुम् = पूज्यमार्यं रामम् द्रष्टुं = अवलोकितुम् मे—बुद्धिः = मनः त्वरते = आकुलो भवति ॥ ८ ॥

भरत—मैं अनुगृहीत हुआ । आर्य ! नमस्कार ।

लक्ष्मण—वत्स ! आओ आओ । चिरजीवी होओ । अच्छी तरह आलिङ्गन करो (भरत गले से मिलते हैं)

भरत—अनुगृहीत हुआ (श्रीराम से) आर्य ! अपना राज्यभार ग्रहण कीजिये ।

राम—वत्स ! क्यों ?

कैकेयी—वत्स ! मेरा यह चिरकाल का अभीष्ट मनोरथ है ।

(शत्रुघ्न का प्रवेश)

शत्रुघ्न—नाना प्रकार के व्यसनों से पीडित होने पर भी जिनका गुण और तेज क्षीण नहीं हुआ रावण जैसे शत्रु के निहन्ता उन आर्य राम के दर्शन के लिये

(उपगम्य) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

रामः—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।

सीता—वच्छ ! चिरं जीव । [वत्स ! चिरं जीव ।]

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि ; आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।

सर्वान् प्रणम्य शत्रुघ्नो विज्ञापयति—आर्य इति । एतौ = दृश्यमानौ वसिष्ठवामदेवौ वसिष्ठश्च वामदेवश्च तन्नामकौ कुलगुरुपुरोहितौ प्रकृतिभिश्च प्रजाजनैः = मन्त्रिमण्डलेन च सह अभिषेकम्=राज्ये अभिषेक्तुम् जलं पुरस्कृत्य = अग्रे निधाय ।

अन्वयः—मुनिगणः तव प्रसादात् मुनिभिः स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तं ते मुखम् सलिलसिक्तम् अरविन्दम् इव द्रष्टुम् इच्छन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—मुनिगणाः = ऋषयः तव प्रसादात् = कृपातः कृतरावणबध-

मेरा मन उतावला हो रहा है । (राम के पास जाकर) आर्य ! मैं शत्रुघ्न आपको प्रणाम करता हूँ ।

राम—आओ वत्स ! आओ । तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरायु होओ ।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हुआ । आर्ये ! मैं आपका अभिवादन करता हूँ ।

सीता—वत्स ! आयुष्मान् होओ ।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हुआ । आर्य ! मैं शत्रुघ्न आपका अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् होओ ।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हुआ । आर्य ! ये वसिष्ठ और वामदेव दोनों महर्षि प्रजामण्डल एवं मन्त्रिमण्डल के साथ अभिषेक की सामग्री लिये आपसे मिलना चाहते हैं ।

ये मुनिगण ! आप की कृपा से मुनियों के द्वारा स्वयम् लाये गये अनेक

इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥ ९ ॥

कैकेयी—गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं । [गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् ।]

रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

कैकेयी—एदे पुरोहिता कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो आसीहि पूजअन्ति । [एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति ।]

संञ्चारसौकर्यलब्धहर्षातिरेकात् मुनिभिः स्वयमाहृतेन = स्वयमानीतेन नानानदीनदगतेन—नानानद्यः = गङ्गाद्याः नानानदाः शोणब्रह्मपुत्रादयः तेभ्यो गतेन = प्राप्तेन तीर्थोदकेन=तीर्थजलेन प्रथमाभिषिक्तम् = प्राक् कृताभिषेकम् तदनन्तरं तव मुखमाननम् सलिलसिक्तम् अरविन्दम् = कमलम् इव ते द्रष्टुमिच्छन्ति = वाञ्छन्ति । अत्रायमभिप्रायः अभिषेककार्ये विलम्बासहिष्णवो महर्षयः प्रथमम् तवाभिषेकम् तदनन्तरं तव मुखदर्शनं वाञ्छन्ति । अभिषिक्तमुखस्य सलिलसिक्तारविन्दसाम्यवर्णनादुपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ९ ॥

प्रकार के नदियों एवं नदों के तीर्थोदक से सर्वप्रथम आपका अभिषिक्त मुखमण्डल सलिलसिक्त कमल के समान देखना चाहते हैं ।

कैकेयी—पुत्र आओ । अपना अभिषेक स्वीकार करो ।

राम—माताजी की जो आज्ञा ।

(नेपथ्य में)

आपकी जय । स्वामी की जय । महाराज की जय । देव की जय । भद्रमुख की जय । आर्य की जय । रावण निहन्ता की जय ।

कैकेयी—अहा ! ये पुरोहित और कञ्चुकी मेरे पुत्र के विजय का उद्घोष करते हुए अपने आशीर्वचनों के द्वारा अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सुमित्रा—पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विजअं वड्ढअन्ति ।
[प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति ।]

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ।। १० ।।

अन्वयः--अप्रतिमम् रिपुप्रभवम् तमौघं सूर्यः शौर्यमयैः मयूखैः अन्धकारम् इव हत्वा सकलाशुभवर्जनीयां सीताम् अवाप्य सर्वजनाभिरामः रामः महीं जयति ।। १० ।।

व्याख्या--अप्रतिमम्—नास्ति प्रतिमा सादृश्यं यस्य तम् = अनुपमेयम् रिपुप्रभवम् = शत्रुजन्यम् तमौघम् = अन्धकारसमूहम् (तमौघमित्यत्र सन्धिरसाधुः तम ओघमित्येव साधुः) सूर्यः शौर्यमयैः = स्वपराक्रमभूतैः मयूखैः = किरणैः अन्धकारम् इव हत्वा = विनाश्य सकलाशुभवर्जनीयाम्--सकलैः=संपूर्णैः अशुभैः = अमङ्गलैः वर्जनीयाम् = रहिताम् निष्कलङ्कामित्यर्थः सीताम् अवाप्य= संप्राप्य सर्वजनाभिरामः = सर्वजनैकप्रियदर्शनः रामः = तन्नामको राजा महीम् = पृथ्वीम् जयति = सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्त्ततेतराम् । अत्र रामकृतशत्रुविनाशस्य सूर्यकृतान्धकारविनाशसाम्यादुपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। १० ।।

सुमित्रा--प्रजागण, सेवक तथा सज्जन लोग मेरे पुत्र की विजय घोषणा करते हुए अभिनन्दन कर रहे हैं ।

(नेपथ्य में)

हे जनस्थान में रहने वाले तपस्विगण ! आप सभी सुनें, आप सभी सुनें ।

अपनी किरणों से अन्धकारसमूह को नष्ट करनेवाले सूर्य के समान अप्रतिम (महाभयङ्कर) शत्रुजनित अन्धकार (सङ्कट) समूह को अपने पराक्रम से नष्ट करनेवाले सर्वजनाभिराम महाराज श्रीराम निष्कलङ्का सीता को प्राप्त कर इस पृथ्वी मण्डल में सर्वोत्कृष्टत्वेन विद्यमान रहें ।। १० ।।

कैकेयी—अम्महे ! पुतअस्स मे विजअघोषणा वुढ्ढइ ।) [अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते ।]

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

रामः—(विलोक्याकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत् ।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

अम्महे इति आश्चर्यजनकानन्दोच्चारणम् ।

अन्वयः—भोस्तात ! स्वर्गेऽपि तुष्टिम् उपगच्छ । दैन्यं विमुञ्च । त्वया मयि यत्कर्म अभिलषितम् तदेतत् भुवि सत्कृतभारवाही राजा अस्मि किल । धर्मेण लोकरक्षणम् अभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—इदानीं स्वपितरं संस्मरन् तत्तोषार्थं प्रार्थयते—भोस्तात = हे पितः स्वर्गेऽपि (इह लोके तु त्वं न लब्धवान्) इदानीं दिवि तुष्टिम् मदभिषेकजन्यामिति शेषः उपगच्छ = लभस्व । दैन्यम् = खेदम् मनोरथापूर्त्तिजन्यम् विमुञ्च = जहीहि । त्वया मयि = मद्विषये यत्कर्म = राज्यारोहणरूपाभिलाषम् तदेतत् भुवि = पृथिव्याम् सत्कृतभारवाही—सत्कृतम् आदरणीयम् भारं वहति तच्छीलः यद्वा सत्कृतानां भारं वहति तच्छीलः । अथवा सद्भिः मुनिभिः कृतः मयि न्यस्तः, तं तादृशं भारं वहति तच्छीलः इति । राजाऽस्मि किल । धर्मेण = धर्मपूर्वकम् लोकस्य = प्रजाजनस्य रक्षणम् = पालनम् अभ्युपेतम् = अङ्गीकृतम् । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ११ ॥

कैकेयी—अहो मेरे पुत्र की विजय हो रही है ।

(राज्याभिषिक्त राम और उनके पुरजनों का प्रवेश)

राम—(आकाश की ओर देखते हुए) हे तात ।

अब आप स्वर्ग में संतुष्ट होवें । दीनता का परित्याग करें । आप मेरे लिये जिसकी अभिलाषा किये थे वह कार्य अब सफल हो गया । मै राजा बन गया और राज्य के भार को मैंने संभाल लिया है और धर्मपूर्वक प्रजा-पालन का व्रत मैंने स्वीकार कर लिया है ।

भरतः—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥ १२ ॥

शत्रुघ्नः—एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥ १३ ॥

अन्वयः—अधिगतनृपशब्दम् धार्यमाणातपत्रम् विकसितकृतमौलिम् तीर्थतोयाभिषिक्तम् अधिगतलीलम् जनौघैः वन्द्यमानम् गुरुम् आर्यम् नवशशिनम् इव पश्यतः मे तृप्तिः नास्ति ॥ १२ ॥

व्याख्या—मुक्तराज्यभारो भरतः राज्येभिषिक्तं पूर्णचन्द्रमिव रामं राजानं विलोक्य प्रहृष्टमनाः प्राह—अधिगतेति । अधिगतनृपशब्दम्—अधिगतः = संप्राप्तः नृपशब्दः = राजसंज्ञा येन तम् । धार्यमाणातपत्रम् धार्यमाणम् आतपत्रम् =: छत्रम् यस्मिन् स तम्, विकसितमौलिम्—विकसितः = उन्नतः कृतः मौलिर्येन तम् = उन्नतमूर्धानम् । तीर्थतोयाभिषिक्तम्—तीर्थतोयैः अभिषिक्तम् । अधिगतलीलम्—अधिगता = संप्राप्ता लीला = शोभा येन तम् = प्राप्तश्रीकम् जनौघैः = लोकसमूहैः वन्द्यमानम् = अभिवाद्यमानम् गुरुम् पूज्यम् रामम् नवशशिनम् = द्वितीयाचन्द्रम् इव पश्यतः = विलोकयतः मे तृप्तिः नास्ति = न भवति । अत्र नवशशिना रामसाम्यवर्णनादुपमा । विशेषणानाम् राजोचितत्वात्साभिप्रायवर्णनेन परिकरोऽपि । मालितीवृत्तम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—आर्याभिषेकेण नष्टकल्मषम् एतत् मे कुलम् सोमस्य उदये जगदिव पुनः प्रकाशतां याति ॥ १३ ॥

व्याख्या—आर्यस्य = श्रीरामस्य अभिषेकेण = राज्यारोहणेन नष्टकल्मषम्

भरत—राजा शब्द से संवोधित किये जाने वाले, राजच्छत्र धारण किये हुए तीर्थों के जल से अभिषिक्त, शोभा से युक्त, प्रजागणों से अभिवन्द्यमान पूज्य राम को नवोदित चन्द्रमा के समान देखते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती ।

शत्रुघ्न—आर्य के राज्याभिषिक्त हो जाने से अब इस कुल के कलङ्क का नाश हो गया । चन्द्रमा के उदय से जिस प्रकार जगत् प्रकाशित होता है उसी

रामः--वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि ।

लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापयन्ति—'दिष्ट्या भवान् वर्धत' इति ।

रामः—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः--यदाज्ञापयति महाराजः ।

नष्टम् कलमषम् = कलङ्कम् ज्येष्ठाभिषेकाभावजन्यम् इति शेषः । यस्य तत् एतत् मे कुलम् सोमस्य = चन्द्रस्य उदये जगदिव पुनः प्रकाशतां = तेजस्वितां याति = प्राप्नोति ॥ १२ ॥

सहायानाम् तत्र भवताम् प्रसादात् अनुग्रहेण वर्धते राम इति शेषः । अभ्युदयम् राज्याभिषेकरूपं महोत्सवम् । अये हर्षार्थकमव्ययपदम् । सूर्यः अस्ति अस्मिन् तत् सूर्यवत् = सूर्ययुक्तम् प्रतिभाति = संशोभते । पुष्पकम् एतन्नामकं विमानम् यत्कुवेरात् कृतसिद्धान्तम् रावणेनाहृत्यानीतम् । कृतसमयम् = स्मृतमात्रम् स्मरणसमकाल एव ।

प्रकार यह कुल भी पुनः तेजस्विता को प्राप्त कर रहा है ।

राम—वत्स लक्ष्मण ! मेरा राज्याभिषेक संपन्न हो गया ।

लक्ष्मण--महाराज ! बड़ा आनन्द हो गया, आपको बधाई ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो । यह तत्रभवान् लङ्काधिपति विभीषण तो विज्ञापित कर ही रहे हैं, उनके पीछे चलनेवाले सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान् एवं हनूमान् आदि प्रमुख वानराधिपति भी विज्ञापित करते हैं कि यह परम सौभाग्य का अवसर है । आपको बधाई !

राम—सहायकों की कृपा से ही मैंने विजय प्राप्त की है' ऐसा जाकर उनसे कहो ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ।

कैकेयी—धण्णा खुम्हि । इदं अब्भुदअं पेक्खिदं इच्छामि । [धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।]

रामः—द्रक्ष्यति भवती । (विलोक्य) अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्रातं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम् ।

रामः—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।
लक्ष्मणः—अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ।१४

अन्वयः—सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः अहम् अद्यैव अयोध्यापुरीं यास्यामि । लक्ष्मणोऽपि तदनुमन्यमानः आह—नागराः अद्यैव उदयस्थम् सनक्षत्रम् चन्द्रम् इव त्वां पश्यन्तु च ।। १४ ।।

व्याख्या—सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः संबन्धिभिः = बान्धवैः मित्रैः विभीषणादिभिः अनुगम्यमानः अहम् अद्यैव = अस्मिन्नेव काले विलम्बमकृत्वेत्यर्थः अयोध्यापुरीम् = स्वनगरीम् यास्यामि । लक्ष्मणः तदनुमोदयन्नाह—अद्यैवेति । नागराः = अयोध्यावासिनः जनाः उदयस्थं तु सम्बन्धिमित्रसहितं त्वां पश्यन्तु । अत्रापि चन्द्रसाम्यवर्णनादुपमालङ्कारः । उदयस्थमित्यत्र श्लेषः । इन्द्रवज्रा छन्दः ।।

कैकेयी—मैं धन्य हो गई । किन्तु अब इस अभ्युदय को अयोध्या में भी देखना चाहती हूँ ।

राम—आप वहाँ भी देखेंगी (देखकर) अहा ! प्रभापुञ्ज से यह सारा वन सूर्य से युक्त हुआ सा दिखाई पड़ रहा है । (विचार कर) अच्छा समझ गया । आकाश में रावण का यह पुष्पक विमान आ रहा है । जो स्मरण मात्र करने से ठीक समय पर उपस्थित हो जाता है । इसलिये सब लोग इस पर चढ जावें ।

(सब लोग सवार होते हैं)

राम—मैं आज ही अपने बन्धु-बान्धवों एवं मित्रों को लेकर अयोध्या जा रहा हूँ । लक्ष्मण भी इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं और आज ही समस्त नगरवासी जन उदयाचल पर नक्षत्रों के सहित विराजमान चन्द्रमा की भाँति आपका दर्शन प्राप्त करें ।

(भरतवाक्यम्)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ १५ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति सप्तमोऽङ्कः ।

◆

भरतवाक्यमिति—भरतस्य = नटस्य वाक्यम् = सामाजिकाभ्युदयप्रशस्तिरूपम् । प्रयोगान्ते एष शिष्टाचारः यद् भरतः सामाजिकानामभ्युदयाशंसनपूर्विकां प्रशस्ति पठति ।

अन्वयः—रामः जानक्या बन्धुभिश्च यथा समागतः तथा लक्ष्म्या समायुक्तः राजा नः भूमिं प्रशास्तु ॥ १५ ॥

व्याख्या—रामः जानक्या बन्धुभिश्च यथा = येन प्रकारेण समागतः = सम्मिलितः तथा लक्ष्म्या समायुक्तः = संश्लिष्टः राजा नः अस्माकम् भूमिं प्रशास्तु = परिपालयतु । निष्क्रान्ताः सर्वे इत्यङ्कसमाप्तिः ।

इषुवेदाभ्रयुग्माब्दे वैंक्रमीये सुवत्सरे ।
माघस्य कृष्णपञ्चम्यां टीकैषा सुसमापिता ॥
कृत्यानया मे विश्वेशौ प्रीयेतां जगतीपती ।
अर्चयार्चयतां भूयान्मङ्गलमिति प्रार्थये ॥

॥ श्री जगदम्बार्पणमस्तु ॥

॥ इति प्रतिमाव्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः ॥

◆

(भरतवाक्य)

जिस प्रकार राम ने जानकी एवं बन्धुओं के साथ आकर अयोध्या का राज्य किया उसी प्रकार राजलक्ष्मी से युक्त हमारे महाराज (रार्जसिह) पृथ्वी का पालन करें ।

प्रतिमा नाटक के सातवें अङ्क को टीका समाप्त ॥

◆

भास की प्रशस्तियाँ

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्ट : हर्षचरित, १।१५)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्य रहुआरे ।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तोदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव: प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
(कालिदास: मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाटयदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाटयशास्त्रपर अभिनवगुप्त की टीका)

* * *

प्रतिमानाटकसुभाषितानि

अनुचरति शशांक राहुदोषेऽपि तारा ।
अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।
अल्पंतुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते ।
ईदृग्विधाः पुरुषा ईदृशीमापदमनुभवन्तीति-
विधिरनतिक्रमणीयः ।
किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ।
कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ।
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्ति ।
छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि ।
तिर्यग्योनयोऽपि उपकृतमवगच्छन्ति ।
न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् ।
न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।
निम्नस्थलोत्पादको हि कालः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने
वने पतति वृक्षे याति भूमिं लता च ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।
पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः ।
बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
भर्तृनाथा हि नार्यः ।
राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
सर्वं शोभनीयं सुरूपा नाम् ।
सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते ।
सुलभापराधः परिजनो नाम ।
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र विस्मयः
हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ।

* * *

परिशिष्टम्—१

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१. नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशासिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादसभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देव-द्विजनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

२. प्रस्तावना-आमुख—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

सूत्रधार के साथ नट-नटी, पारिपार्श्विक नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है। उसी को प्रस्तावना भी कहते हैं।

३. सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थं सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु-नेता तथा रस-ये सूत्र कहे जाते हैं। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने—पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

४. प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

५. नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

६. विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर संकीर्ण होता है।

७. प्रवेशक

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषः विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृत भाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अङ्कों के बीच में होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती है।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नहीं होती वे स्वगत होती हैं।

९. प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बाते सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है।

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुवेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि के हास्योत्पादक, कलह प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है। उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्त लोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा ॥
बुद्‌ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसंमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, वुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान-युक्त, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारणा, के भेद से तीन प्रकार की होती है। यथा संभव यह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च वीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नानाविधानों से युक्त होता है। इससे अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

* * *

श्लोकसूची

श्लोकः	अङ्क	सं.
अक्षोभ्यः क्षोभितः	१	१७
अङ्क मे स्पृश	२	१८
अत्र रामश्च सीता	४	४
अद्य खल्वव	४	१२
अद्यैव यास्यामि	७	१४
अधिगतनृपशब्दं	७	१२
अनपत्या वयं	२	८
अनुचरति शशाङ्कं	१	२५
अन्वास्य मान	३	१५
अपि सुगुण ममापि	४	२१
अयं ते दयितो	४	११
अयं सैन्येन	७	५
अयं हि पतितः	३	१४
अयममरपतेः सखा	२	२१
अयशसि यदि	३	२१
अयोध्यामटवी	६	१०
असुरसमर	४	१०
अहं पश्चात्	४	१५
अहं हि दुःख	२	९
अहो बलमहो	५	१४
आदर्शौ वल्कला	१	९
आपृच्छ पुत्रकृत	५	११
आरब्धे पटहे	१	५
आशावन्तः पुरे	४	२८
इदं गृहं तत्	३	१३
इदं तत्स्त्रीमयं	४	१४
इदानीं भूमिपालेन	१	४
इयं स्वयं गच्छतु	४	१३

श्लोकः	अङ्क	सं.
इयं हि नीलोत्पल	६	१
इयमेका पृथिव्यां	५	८
इह स्थास्यामि	४	१९
उभयस्यास्ति	५	९
एतदार्याभि	६	१३
एते ते दैवताना	३	७
एते भृत्याः स्वानि	२	१३
कमप्यर्थं चिरं	२	१७
कर्णौ स्वरापहृतं	१	८
कास्यासौ सदृश	४	६
कामं दैवत	३	५
काले खल्वागता	३	१२
कुतः क्रोधो	६	९
कृतान्त शल्याभि	५	४
कृत्वा स्ववीर्यं	६	४
क्रमप्राप्ते हृते	१	१९
क्व ते ज्येष्ठो	२	१४
गच्छन्ति तुष्टिं	५	५
गतो रामः प्रियः	२	२०
गत्वा तु पूर्वं	६	७
गत्वा पूर्वं स्व	४	१७
गुरोर्मे पाद	१	२७
गोप हीना यथा	३	२३
घनः स्पष्टो धीरः	४	७
चरति पुलिनेषु	१	२
चीरमात्रोत्तरी	१	३१
छत्रं सव्यजनं	१	३
जय नरवर	७	१

श्लोकः	अ.	सं.
तं चिन्तयामि	४	२२
तं स्मृत्वा शुल्क	३	११
तत्र यास्यामि	३	२४
तपः सङ्ग्राम	१	२८
तवैवः पुत्रः	२	१०
तातस्यै तानि	५	१३
ताते धनुर्नम	१	२२
तीर्थोदकेन	७	९
तेनोक्तं रुदित	६	१५
तैस्तपितः सुत	५	१०
तैस्तैः प्रवृद्ध	७	६
त्यक्त्वा तां	५	१
त्यक्त्वा स्नेहं	३	१८
त्रैलोक्यं	१	२१
त्वया राज्यैषिण्या	३	२२
दैत्यन्द्रमान	४	२
द्रुमा धावन्तीव	३	२
धन्याः खलु वने	२	१२
नरपतिनिधनं भव	४	१८
नरपतिनिधनं मया	६	८
नागेन्द्रा यवसा	२	२
नारीणां पुरुषाणां	१	११
नियतमनियतात्मा	५	७
निर्घृणश्च कृतघ्नश्च	४	५
निर्योगाद्भूष	१	२६
पद्माभ्यां परिभूय	६	३
पतत्युत्थाय	२	३
पतितमिव शिरः	३	३
पादोपभुक्ते	४	२५
पितुः प्राणपरि	३	४
पितु र्नियोगा	४	२०
पितुर्मे को व्याधिः	३	१

श्लोकः	अ.	सं.
पितुर्मे नौरसः	३	१९
पित्रा च वान्धव	६	१२
प्रख्यातसद्गुण	६	६
फलानि दृष्ट्वा	५	६
वलादेष दश	५	२१
भग्नः शक्रः	५	१७
भरतो वा भवेद्	१	२०
भ्रमति सलिलं	५	२
मङ्गलार्थेऽनया	१	२४
मद्भुजाकृष्ट	५	२२
मम मातुः प्रियं	४	३
मम मातुश्च	३	१६
माययापहृते	५	१५
मा स्वयं मन्यु	१	१०
सुखमनुपम	४	८
मेरुश्चलन्निव	२	१
यः स्वराज्यं	६	१६
यत्कृते महति	१	२६
यत्तस्यं परि	४	२३
यथा रामश्च	७	१५
यदि न सहसे	१	१८
यस्याः शक्रसमो	१	१३
यावद्भविष्यति	४	२४
युद्धे येन सुराः	५	१६
येन प्राणाश्च	३	८
योऽस्याः करः	५	३
योऽहमुत्पतितो	५	२०
रघोश्चतुर्थो	४	९
राज्ये त्वामभिषिच्य	२	१९
रामं वा शरण	५	१८
रामलक्ष्मणयोः	२	१५
रामेणापि परि	२	५

श्लोकः	अ.	सं.
रेणुः समुत्पतति	७	४
वक्तव्यं किञ्चि	३	६
वक्षः प्रसारय	४	१६
वक्षः प्रसारय	७	७
वनगमन	१	१४
वयमयशसा	३	१७
वल्कलैर्हृत	३	२०
विचेष्ट मानेव	६	२
विलपसि किमिदं	५	१९
विविधैर्व्यसनै	७	८
वेलामिमांमस्त	६	१६
वैरं मुनिजन	६	११
शत्रुघ्न लक्ष्मण	१	७
शरीरेऽरिः	१	१२
शुल्के विपणितं	१	१५
शून्य प्राप्तो यदि	२	११
शोकादवचनाद	१	१६
श्रद्धेयः स्वजनस्य	४	२७
श्रुत्वा ते वनगमन	१	३०

श्लोकः	अ.	सं.
सकृत्स्पृशामि	२	१६
सखीति सीतेति	७	३
सत्यसन्धजित	२	६
समं बाष्पेणं	१	६
समुद्दितवल	७	९
सीता भवः पातु	१	१
सुग्रीवो भ्रंशितो	६	१०
सुचिरेणापि	४	२६
सूर्य इव गतो	२	७
सौवर्णान् वा मृगान्	५	१२
स्वर्गं गते नर	४	१
स्वर्गेऽपि तुष्टिः	७	११
स्वैरं हि पश्यन्तु	१	२९
हत्वा रिपु प्रभवः	७	१०
हन्त भोः सत्व	६	१४
हा वत्स ! राम !	२	४
हृदय ! भव	३	९
हृदयस्थितं	६	५

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
२४९

* * *

महाकविभासविरचितम्

अभिषेकनाटकम्

'गंगा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

सम्पादको व्याख्याकारश्च
डॉ. गङ्गासागररायः
एम.ए., पी-एच.डी.
सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत भवन
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्रकाशक :

चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)
टेलीफोन :+९१-५४२-२४२०४१४ फैक्स :+९१-५४२-२४००७५५

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
© चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि०सं० २०६८
मूल्य : रु० ३५.००

वितरक :

चौखम्भा संस्कृत भवन

पोस्ट बाक्स नं. ११६०
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)

मुद्रक : श्रीगोकुलेश प्रेस, वाराणसी

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
249

ABHIṢEKANĀṬAKAM

OF

BHĀSA

*[with 'GANGA' **Sanskrit** and **Hindi**
Commentaries and **Appendices**]*

Edited and Commented
By
DR. GANGA SAGAR RAI,
M.A., Ph.D.
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN
VARANASI-221001 (INDIA)

Publisher

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Sanskrit, Ayurveda & Indological Publishers & Distributors

Post Box No. 1160

Chowk, Opp. Chitra Cinema, (Bank of Baroda Building)

Varanasi-221001 (India)

Telephone :+91-542-2420414 Fax : +91-542-2400755

All Rights Reserved

© Chaukhambha Sanskrit Bhawan

Reprint Edition : 2011

Price : Rs. 35.00

Distributor

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Post Box No. 1160

Chowk, (Opp. Chitra Cinema)

Varanasi-221001 (India)

Printed at : Sri Gokulesh Press, Varanasi, Mittal Offset, Varanasi

भूमिका

संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में नाटककार भास का महत्त्व सुतरां सर्वातिशायी है और संस्कृत के महनीय कवियों ने भास की महत्ता को प्रशस्त शब्दों में स्वीकार किया है । न केवल प्राचीनता अपितु लोकप्रियता की दृष्टि से भी भास के नाटक अपनी विशिष्टता से संस्कृतसाहित्य को जाज्वल्यमान किये हुये हैं । संस्कृत-काव्य के उस प्रारम्भिक युग में जब कि नाटक की विधा अपनी अवस्थिति को पुष्ट आधार पर अवस्थित न कर पायी थी भास ने इतने प्रौढ़, सरस और सरल नाटकों का निर्माण कर उन्हें पञ्चम वेद के रूप में प्रतिष्ठापित किया । आसेतु हिमाचल और पूर्व-सागर से पश्चिम सागर तक भास की मसृण कीर्तिकौमुदी काल की बाधा को बाधित करते हुये विगत प्रायः दो सहस्र वर्षों से निरन्तर सहृदयों का हृदयावर्जन करती आ रही है ।

भास के नाटकों की प्रसिद्धि इतनी व्यापक थी और संस्कृत के सभी अध्येता इससे इतने अभिभूत थे कि इसके उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते थे । इस महत्ता का परिचय कुछ महत्त्वशाली लेखकों के अधोनिर्दिष्ट उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा ।

(१) संस्कृतसाहित्य के सर्वोत्कृष्ट कहाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में सूत्रधार से प्रश्न कराया है कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि भूतकाल के यशस्वी कवियों की कृतियों के रहते वर्तमान काल के कालिदास की कृति में इतना आदर क्यों ?—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।—प्रस्तावना

(१) प्रख्यात गद्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित में बताया है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं, विस्तृत भूमिका वाले होते हैं तथा पताका से युक्त होते हैं । इसलिये वे देवकुल (देवालय) जैसे होते हैं—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहाँ यह ध्यातव्य है कि सामान्यतया संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी से होता है पर भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं—यह सूचना मात्र होती है कि नान्दी समाप्त हो चुकी है। भास की यह विशिष्टता बाणभट्ट के समीक्षक हृदय को आकृष्ट किये बिना नहीं रही।

(३) प्राकृत के महाकवि **वाक्पतिराज** ने अपने महाकाव्य **'गउडवहो'** में भास को 'ज्वलनमित्र' कहा है जिसका अर्थ अग्नि का मित्र है। विद्वानों की धारणा है कि स्वप्नवासवदत्ता में स्वप्नवासवदत्ता के जल कर मर जाने की मिथ्या वार्ता प्रसारित कर नाट्य-वस्तु विकास का जो उपयुक्त एवं हृदयग्राही अवसर प्रदान किया गया उसी से अभिभूत होकर वाक्पतिराज ने भास को ज्वलनमित्र कहा है—

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे ।
सौबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दे ॥

—गउडवहो ८००

(४) जयदेव ने भास को कविता का हास्य बताया है। भास के नाटकों में हास्य की योजना बड़ी ही कुशलता से की गई। हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों प्रकारों की योजना भास ने बड़ी ही विशिष्टता के साथ विनिबद्ध की है। उद्धत हास्य के लिये प्रतिज्ञायौगन्धरायण के विदूषक की शिलष्ट भाषा तथा सुकुमार हास्य के लिये अन्य नाटकों में प्राप्त औदरिक विदूषकों के वचन उदाहरण में द्रष्टव्य हैं। जयदेव का अनर्घराघव में प्राप्त वह पद्य इस प्रकार है :—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय ॥

—अनर्घराघव

(५) दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी में बताया है कि भास के रूपकों में मुख और प्रतिमुख सन्धियाँ स्पष्टतः भासित होती है तथा भास ने अनेक वृत्तियों का आश्रय लेकर विविध भावदशाओं का सफल प्रदर्शन किया है।

(६) राजशेखर ने आख्यान के रूप में उपन्यस्त किया है कि विदग्धों ने भास की वासवदत्ता को अग्नि में प्रक्षिप्त कर दिया पर अग्नि भी वासदत्ता को दग्ध न कर सका—

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

—काव्यमीमांसा

(७) नाट्यदर्पणकर्ता **रामचन्द्रगुणचन्द्र** ने भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है—

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।—नाट्यदर्पण

इससे यह स्पष्टतः अवभासित होता है कि रामचन्द्रगुणचन्द्र के समय (१२ सदी) में भास के नाटक ओर विशेषतः स्वप्नवासवदत्ता प्रसिद्धि की चरम स्थिति में थे।

(८) इसी सदी के अन्य आचार्य **शारदातनय** ने **'भावप्रकाशन'** में प्रशान्तनाटक के प्रकरण में भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

(९) आचार्य **अभिनवगुप्त** ने नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका में—**क्वचित् क्रीडा यथा वासवदत्तायाम्** कह कर भास की स्वप्नवासवदत्ता का निर्देश किया है।

(१०) भोज ने **शृङ्गारप्रकाश** में—**वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।** कह कर स्वप्नवासवदत्ता से अपना पूर्ण परिचय बताया है।

(११) अमरकोशटीकासर्वस्व में टीकाकार सर्वानन्द ने उदयन एवं वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है। यह भास के नाटक का ही निर्देश हो सकता है।

(१२) जयानक के पृथ्वीराजविजय में व्यास तथा भास के श्रेष्ठत्व के विवाद में दोनों की सर्वोत्तम कृतियाँ अग्नि को समर्पित कर दी गईं। भासकृत विष्णुधर्म अग्नि में नहीं जल सका। इस व्याख्या की यथार्थता के विषय में व्यास को महर्षि व्यास मानने पर सन्देह होना स्वाभाविक है क्योंकि एक तो कालक्रम की दृष्टि से महान् अन्तर, दूसरे व्यास उपजीव्य है और तीसरे भासकृत विष्णुधर्म की अप्राप्ति है। राजशेखर का यह उल्लेख कि स्वप्नवासवदत्ता को अग्नि भी न जला सका भी इसके विरोध में पड़ता है। अतः यही स्वीकार करना ज्यादा संगत है कि राजशेखर के समय में यह जनश्रुति पर्याप्त प्रचलित थी और भास की स्वप्नवासवदत्ता अत्यन्त लोकप्रिय कृति थी और उसकी महत्ता लोक में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। इन उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि कालिदास के समय या उससे पूर्व से भास की प्रसिद्धि अत्यन्त व्यापक रूप से हो गयी थी और संस्कृत के कवि तथा नाटककार उनका अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख करते थे।

भास के नाटकों का प्रकाशन—संस्कृत के कवियों द्वारा इस प्रकार से सम्मानित और उद्धृत भास के नाटक कालचक्र से एकदम दुष्प्राप्य हो गये। उनका उल्लेख केवल कविवचनों और सूक्तियों तक ही सीमित हो गया था। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जब भास के नाटक इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय थे तो सहसा प्रचार से क्यों दूर हो गये। इस प्रश्न का उचित समाधान तो नहीं हो सका है पर विद्वानों ने कुछ तर्क दिये हैं जिनका सारांश यह है कि उत्तरभारत में मुसलमानों के प्रसार और शासन से वैदिक धर्म के प्रतिपादक तथा लोकप्रिय भास के नाटकों का उत्तरी भारत से उच्छेद हो गया। इन नाटकों में **'राजसिंहः प्रशास्तु नः'** का उपदेश है अतः यवन ऐसे राजसिंह का शासन कब सहन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त विदेशियों से बार-बार आक्रान्त होने से उत्तर भारत के लोग नैराश्यमग्न होकर धर्म तथा दर्शन की ओर उन्मुख हो गये। फलतः उत्तरी भारत से भास के देवनागरी हस्तलेखों का अभाव हो गया।[1]

महामहोपाध्याय टी० गणपतिशास्त्री ने १९१२ ई० में भास के तेरह

---

[1] विशेष के लिये द्रष्टव्य ए, एस. पी. अय्यरकृत भास पृ० १३-१५

नाटकों का प्रकाशन किया। ये १३ नाटक इस प्रकार है—१. दूतवाक्य, २. कर्णभार, ३. दूतघटोत्कच, ४. मध्यमव्यायोग, ५. पञ्चरात्र, ६. ऊरुभङ्ग, ७. अभिषेक, ८. बालचरित, ९. अविमारक, १०. प्रतिमानाटक, ११. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, १२. स्वप्नवासवदत्तम्, १३. चारुदत्त। ये तेरह नाटक तो सर्वथा भासकृत माने जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भास की चौदहवीं कृति **यज्ञफल** नाम की प्रकाश में आयी है। इसे १९४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने प्रकाशित किया और इसे भासकृत बताया। यह नाटक देवनागरीलिपि के दो हस्तलेखों पर आधृत था। किन्तु इसके प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही जयपुर के पण्डित गोपालदत्त ने इसे अपनी रचना बतायी। बाद में विद्वानों ने इसकी व्यापक खोजबीन की और पण्डित गोपालदत्त शास्त्री के दावे को असत्य स्वीकार किया। डॉ० दाण्डेकर ने इस विषय पर विवेचन कर दर्शाया कि गोपालदत्त का कथन तो मिथ्या है ही इस नाटक का प्रणयन संवत् १६७० से पूर्व हो चुका था और किसी कवि ने भास के अनुकरण पर इसका प्रणयन किया। यह नाटक ७ अंकों में विभक्त है और रामजन्म से लेकर सीता-विवाह तक की कथा इसमें निबद्ध है। इस विषय का विस्तृत विवेचन डाक्टर पुसालकर के ग्रन्थ भास : ए स्टडी में निबद्ध है।

भास नाटक-चक्र के सभी नाटक भासकृत है अथवा नहीं यह भी प्रश्न विवेचित हुआ है। प्रायः अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि ये सभी नाटक एक ही नाटककार द्वारा प्रणीत हैं। इसके विषय में तर्कों का सारांश इस प्रकार है। (१) चारुदत्त को छोड़कर सभी नाटक 'नान्द्यन्ते' से प्रारम्भ होते हैं। (२) अङ्कों के मध्य में छोटे-छोटे प्रवेशकों तथा विष्कम्भकों का प्रयोग हुआ है। (३) प्रस्तावना के स्थान पर सर्वत्र 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त हैं। (४) सभी नाटकों के भरतवाक्यों (चारुदत्त० तथा दूत घटोत्कच में भरतवाक्य नहीं है) में महीं को सागर पर्यन्तां तथा हिमवद् विन्ध्यकुण्डलां कहकर राजसिंह से उसके शासन की कामना की गई है। (५) सामान्यतः भरत-प्रतिपादित नाट्यसिद्धान्तों का यहीं उल्लंघन

दृष्टिगोचर होता है—मृत्यु, युद्ध तथा दूर से पुकारने की क्रिया इन नाटकों में रंगमञ्च पर प्रदर्शित की गई है। (६) कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थों से भिन्न रूप में हुआ है 'आर्यपुत्र' का प्रयोग ऐसा ही है। (७) सभी नाटकों में आकाशभाषित का प्रयोग हुआ है। कञ्चुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है। 'प्रतिज्ञा' और दूतवाक्य में कञ्चुकी का नाम बादरायण है और स्वप्न, प्रतिज्ञा, अभिषेक और प्रतिमा में प्रतिहारी का नाम विजया है। (८) कर्णभार को छोड़ कर प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग हुआ है। (१०) नाट्यनिर्देशों का अभाव या त्रुटिपूर्ण होना सामान्यतः सभी नाटकों में प्राप्त होता है। (११) नाटककार के नाम का उल्लेख किसी भी नाटक में नहीं है और नाटक का नामोल्लेख केवल नाटक के अन्त में ही प्राप्त होता है। (१२) नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों में साम्य है। (१३) कई नाटक में नवागन्तुक के द्वारा प्रभावशाली पद्धति में अप्रत्याशित उत्तर की उपलब्धि होती है। अभिषेक नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित ने राम-लक्ष्मण का वध कर डाला अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ?' उसी समय राक्षस आकर कहता है 'रामेण…', इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजपुत्र वासवदत्ता के लिये उपयुक्त वर होगा तभी कञ्चुकी सहसा आकर कहता है वत्सराज। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की आवृत्ति है, वाक्यों की भी आवृत्ति हुई है। कई नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग हुआ है। एक ही पात्र द्वारा या अन्य पात्रों द्वारा वाक्यांशों की पुनरावृत्ति हुई है, पाणिनीय नियमों में स्खलन हुआ है, समान नाटकीय परिस्थितियों की कई नाटकों में अवतारणा की गई है, भाषा तथा शैली में व्यापक साम्य है और समान सामाजिक स्थिति की प्राप्ति होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नाटक एक ही नाटककार की लेखनी से प्रसूत हैं।[1]

---

[1] नाटकों की समानता के लिये द्रष्टव्य डा० ए. डी. पुसालकर का ग्रन्थ-भास. ए स्टडी तथा ए. एस. पी. अय्यर का ग्रन्थ भास।

भास का समय—भास-नाटक-चक्र के प्रणेता, संस्कृत-साहित्य के मान्य एवं प्रशस्त रचनाकार महाकवि भास के समय के विषय में नाना प्रकार के विचार और मत-मतान्तर उपलब्ध होते हैं। कोई विद्वान् तो इन्हें ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का रचनाकार मानता है और कोई ईसा की दशम शताब्दी में इन्हें लाकर रख देता है। और कोई-कोई विद्वान् तो इस भास नाटक-चक्र को कालिदास तथा बाणभट्ट आदि द्वारा निर्दिष्ट एवं प्रशंसित भास की रचना ही नहीं मानते अपितु इसे वे किसी केरलीय रचनाकार द्वारा भास के नाम से रचित मानते हैं। इन कालक्रमों के मूल में यह प्रश्न प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है कि ये नाटक मूल भास रचित हैं या नहीं। कुछ लोग समग्ररूप से इन्हें भासकृत मानते हैं और कुछ लोग पूर्णरूप से इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। कुछ विद्वान् मध्यमार्ग के अनुयायी हैं और कहते हैं कुछ नाटक तो मूल भास कृत हैं और कुछ उसकी अनुकृति पर रचे गये हैं। इन सब बातों पर विचार करने पर यही निश्चित होता है कि भास कालिदास से पूर्ववर्ती हैं और उनका सयय कालिदास के समय पर निर्भर करता है। कुछ भी हो भास निश्चित रूप से चौथी सदी ईसा से पूर्ववर्ती हैं।

कथासार

इस नाटक में बालियुद्ध से लेकर रावण बधान्तर रामराज्याभिषेक की रामायणी कथा—किष्किन्धा से युद्धकाण्ड तक—संग्रथित की गयी है। प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में सूचना मिलती है कि सीतान्वेषण में तत्पर राम और वालि द्वारा राज्यविर्वासित और स्त्री छीने गये सुग्रीव में सख्य स्थापित हो गया है और राम बालि-वध के लिये सन्नद्ध हैं। सुग्रीव के साथ राम-लक्ष्मण बालिवध के लिये जाते हैं और मार्ग में बालिवध का आश्वासन देते हैं। सुग्रीव भी कहता कि आपके बाणों ने सप्तताल वृक्ष कक्षों भेदन कर आपके तूणीर में प्रवेश किया अतः उसे पूर्णनिश्चय है कि आप बालिवध करेंगे। राम को वन में स्थित कर सुग्रीव युद्ध के लिये बालि का आह्वान करता है। बालि तारा के प्रतिषेध को अस्वीकार कर सुग्रीव से युद्ध को जाता है और दोनों भाई घोर युद्ध करते हैं। युद्ध में बालि के प्रहार से सुग्रीव जर्जरित और क्लान्त हो जाता है। हनुमान् ने उसकी दयनीय दशा को देखकर राम से बालिवध की उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराकर सुग्रीव की दयनीय दशा दिखाई। राम एक ही बाण से बालि को मार गिराते हैं। बालि राम के बाण को पहचान कर उनसे आक्षेप करता है कि दूसरे के साथ युद्ध व्यापृत का छिप कर वध अधर्मकारी है। आप जैसे धर्म प्रवर्त्तक के लिये यह उपयुक्त नहीं है। राम कहते हैं कि जाल में फँसा कर पशुओं को छिप कप मारा जाता है। तुम बध्य और पशु थे अतः यह दण्ड दिया गया। अनुज की स्त्री को रखने से तुम दण्डच हो।' बालि आक्षेप करता है कि इसमें तो वह तथा सुग्रीव दोनों समानापराधी हैं। राम का उत्तर है अनुज द्वारा अग्रज की स्त्री का रखना दोष नहीं है। बालि निरुत्तर हो जाता है। तदनन्तर सुग्रीव, तारा, अङ्गद आदि शोक प्रकट करते हैं और बालि उसको सान्त्वना देता है। बालि अपने कुल की स्वर्णमाला को सुग्रीव को देता है और सुग्रीव से कहता है कि वह अंगद का पालन-पोषण करे। राम से भी वह सुग्रीव तथा अङ्गद के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना करता है। जल का

आचमन कर बालि प्राणत्याग करता है। राम सुग्रीव से बालि [illegible] संस्कार का आदेश देते हैं और लक्ष्मण से सुग्रीव का अभिषेक करने को कहते हैं। इस अंक में रामायणी कथा से एक ही अंतर दृष्टिगत होता है और वह है बालि के प्रथम बार ही युद्ध में आने पर मारा जाना। रामायण में सुग्रीव पहली बार तो परास्त हो जाता है और राम द्वारा चिह्नित सुग्रीव जब दुबारा उसे बुलाता है तो वह मारा जाता है। बालि और राम के विस्तृत प्रश्नोत्तरों को भी संक्षेप में ही उपन्यस्त किया गया है।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक में सूचना दी जाती है कि सुग्रीव के आदेश से सभी दिशाओं में वानर सीतान्वेषण के लिये भेजे गये थे और वे लौट भी आये। पर दक्षिण दिशा में कुमार अङ्गद के साथ गये वानर अभी नहीं लौटे। वे संपाति से सीता का वृत्तान्त ज्ञात करते हैं और हनूमान् महेन्द्र पर्वत से समुद्र को पार कर लङ्का जाते हैं। लंका में जाकर वे सर्वत्र सीता का अन्वेषण करते हैं पर कहीं भी न पाकर अंत में प्रमद वन में जाकर उसकी शोभा से चमत्कृत होते हैं। वहाँ एकवेणीधारिणी शोकपरिमग्ना, राक्षसीगणपरिवृता सीता को देखते हैं और अशोक वृक्ष कि कोटर में स्थित हो जाते हैं। इसी बीच वहाँ रावण सपरिवार आता है। वह सीता से प्रणय निवेदन करता है पर सीता संक्षेप में उसे 'शप्तोऽसि' कहती हैं। रावण की स्नान बेला होने से वह चला जाता है। उसके जाने पर तथा राक्षसियों के सो जाने पर हनूमान् वृक्ष से उतरकर सीता से अपने को राम का दूत बताते हैं। प्रारम्भिक शंका के बाद सीता उन पर विश्वास करती हैं। हनूमान् सीता से राम-सुग्रीव, सख्य तथा बालि के वध एवं संपाति के वचन से अपने लंका में आने का वृत्तान्त बताते हैं। सीता उन पर विश्वास करती हैं और राम से अपना समाचार कहने को कहती हैं। सीता से चल कर हनूमान् रावण को भी अपने आगमन की सूचना देना चाहते है इसके लिये वे त्रिकूट वन का विध्वंस करने का निश्चय करते हैं।

तृतीय अङ्क में रावण को सूचना दी जाती है किसी बलशाली वानर ने अशोक वाटिका को भङ्ग कर दिया। रावण तुरन्त उस वानर को पकड़ने का आदेश देता है। वह पहले सहस्रों किङ्करों को भेजता है। हनूमान्

किंकरों को पेड़ों से ही मार डालते हैं। तदनन्तर अक्षकुमार को रावण भेजता है। उसके अनुगत पञ्च-सेनापति भी जाते हैं। हनूमान् पञ्च सेनापतियों सहित अक्षकुमार को भी मार डालते हैं। अक्षकुमार को मारा गया सुनकर इन्द्रजित् हनूमान् के निग्रह के लिये जाता है। इन्द्रजित् तुमुल युद्ध के बाद हनूमान् को पाश में बांध लेता है। रावण इसी समय विभीषण को बुलाने और हनूमान् को लाने का आदेश देता है। रावण को चिन्ता होती है कि जिसने त्रैलोक्य को जीत लिये उसके नगर में उसे तिरस्कृत कर वानर कैसे आ गया। क्या नन्दी के शाप वश तो यह वानर नहीं आया है? इसी बीच विभीषण तथा राक्षसों द्वारा गृहीत हनूमान् आते हैं। रावण हनूमान् से उनका परिचय तथा उनके द्वारा अन्तःपुर के प्रवेश का कारण पूछता है। हनूमान् अपने को अञ्जना और वायु का पुत्र बताते हैं तथा राम का आदेश बताते हैं कि रावण चाहे शंकर की शरण में जाय या रसातल में प्रवेश कर जाय राम उसे अपने बाणों से वेधकर यमलोक पहुँचायेंगे। विभीषण भी सीता को लौटाने को कहते हैं। रावण हनूमान् पर क्रुद्ध होकर वध की आज्ञा देता है पर विभीषण द्वारा दूतवध्या का निषेध सुनकर पूंछ जलाकर छोड़ने का आदेश देता है। इसके अनन्तर विभीषण रावण को सीता लौटाने के लिये आग्रह करते हैं और क्रुद्ध होकर रावण उन्हें भी निकाल देता है।

चतुर्थ अङ्क के विष्कम्भक में ज्ञात होता है कि हनूमान् लंका से सीता का वृत्तान्त लेकर लौट आये हैं और सीता लंका में रावण द्वारा अत्यन्त क्लेश पाती हुयी रोकी गयी हैं। वानरबाहिनी समुद्र तट पर पहुँच जाती है और आगे जाने से रुक जाती है। इसी समय वहाँ विभीषण आकाश से उतरते हैं। वे चिन्तित हैं कि बिना किसी पूर्व परिचय के राम से कैसे मिलें। वानर वीर भी राक्षस को देखकर चौकन्ना हो जाते हैं। विभीषण आकाश से उतरते समय हनूमान् उन्हें देखकर पहचान लेते हैं। राम से विभीषण के आगमान का समाचार देते हैं। सुग्रीव शंका प्रकट करते हैं पर हनूमान् कहते हैं कि पहले भी उन्होंने राम के लिये अपने भाई रावण से विवाद किया था जिसे उन्होंने देखा था। विभीषण को लक्ष्मण सत्कार के साथ ले आते

हैं। विभीषण अपनी शरणागति निवेदन करते हैं और राम उन्हे लंका का राजा घोषित करते हैं। राम विभीषण से सागर-संतरण का उपाय पूछते हैं। विभीषण कहते हैं कि यदि समुद्र मार्ग नहीं देता तो दिव्य अस्त्रों को इस पर छोड़ा जाय। राम उनकी बात स्वीकार कर लेते हैं और कहते हैं कि यदि समुद्र मार्ग नहीं देता तो इसे अपने बाणों से सुखा दूंगा। वरुण राम के पास आते हैं और कोप का कारण पूछते हैं। राम लंका जाने का मार्ग माँगते हैं। वरुण उन्हें मार्ग देते हैं। समुद्र दो भागों में बट जाते हैं और बीच के मार्ग से सारी सेना पार होकर लंका पहुँच जाती है। सुवेल पर्वत पर सेना का निवेश स्थापित किया जाता है। उसी समय बानरों का रूप धारण किये शुक और सारण नाम के रावण के दो चर पकड़े जाते हैं। उन्हें विभीषण पहचान लेते हैं। वे रावण को अन्यायी जान राम के पास अपना आगमन बताते हैं। पर विभीषण कहते हैं कि वे प्राणान्त संकट में रावण को नहीं छोड़ सकते राम उन्हें दण्ड नहीं देते क्योंकि वे कहते हैं कि उनके मारे जाने से न तो उनकी कोई उन्नति होगी और न रावण की पराजय। अतः राम उन्हें रावण के पास यह संदेश भेजते हैं कि सीता का हरण कर रावण ने स्वयं युद्ध ठाना है अतः रण की इच्छा से वे आये हैं। राबण युद्ध करे। इस अंक में समुद्र पर पुल बांधने का प्रसंग हटा दिया गया है। स्वयं सागर जल हटाकर मार्ग देता है।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में यह सूचना मिलती है कि राम-रावण पक्ष का घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया है और युद्ध में प्रहस्त, कुम्भकर्ण आदि प्रमुख वीर मार दिये गये हैं तथा इन्द्रजित् युद्ध के लिये गया है। रावण विद्युज्जिह्व से राम-लक्ष्मण के शिर की प्रतिकृति (नकल) माँगता है। रावण सीता के पास जाता है और राम-लक्ष्मण के शिर की प्रतिकृति उसके पास लायी जाती है और बताया जाता है कि इन्द्रजित् ने उन दोनों को मार कर उनके शिर रावण के पास भेजे हैं। रावण उन्हें सीता को दिखाता है और कहता है कि अब सीता का कोई आश्रय नहीं अतः वह रावण को स्वीकार करे। सीता उन मायामय शिरों को देख कर मूर्छित हो जाती हैं और विलाप करने लगती है। इसी बीच राक्षस आकर सूचना देता है कि इन्द्र-

जित् युद्ध में मारा गया और राम लंका की ओर आ रहे हैं। यह सुनकर रावण मूर्छित हो जाता है और उठकर विलाप करने लगता है। वह सीता को भी मारना चाहता है पर अनुचर राक्षस द्वारा स्त्रीवध का निषेध किये जाने पर उसे स्वीकार कर लेता है और रथारूढ़ होकर युद्ध को निकल पड़ता है।

षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में हिमालय शिखर से राम-रावण-युद्ध देखने को आये तीन विद्याधर राम-रावण के भयंकर युद्ध का वर्णन करते हैं। उस भयंकर युद्ध में पदाति राम से रथारूढ़ रावण युद्ध करता है। तदनन्तर इन्द्र द्वारा भेजे मातलि-वाहित रथ पर राम आरूढ़ हो जाते हैं। भयंकर युद्ध करते राम पैतामह अस्त्र से रावण का वध करते हैं। इतना युद्ध का वर्णन कर विद्याधर चले जाते हैं। तदनन्तर राम लंका की ओर चलते हैं। सीता भी राम से मिलने के लिये आती है। राम राक्षस-कुल में सीता के निवास का ध्यान कर मिलने से इनकार कर देते हैं। राम के अभिप्राय को जानकर सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं और अग्निदेव सीता को दग्ध न कर राम के पास ले आकर उन्हें निष्कलुष बताते हैं। राम सीता को स्वीकार करते हैं। देव, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरायें राम की विष्णु रूप में स्तुति करते हैं। दशरथ के आदेश से राम का अभिषेक होता है। राम सीता सहित उपस्थित होते हैं और इन्द्र के आदेश से भरत-शत्रुघ्न सहित प्रजाजन उपस्थित होते हैं। महेन्द्र आदि देवता आशीर्वचनों से स्तुति करते हैं। भरत-वाक्य से नाटक समाप्त होता है।

चरित्राङ्कन

अभिषेक नाटक वाल्मीकीय रामायण पर आधृत रूपक है और रामायण के प्रथित पात्रों का पूर्ववत् चरित्र अङ्कित किया गया है। राम अतुलित योद्धा, निर्भीक, धर्मसंस्थापक, धर्मद्वेषियों के संहारक तथा लोक-स्थिति के संरक्षक के रूप में चित्रित किये गये हैं। सीता हरण के अनन्तर सुग्रीव के साथ उनका सख्य स्थापित होता है। राम बालि को मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा का अधिपति बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं और बालि का वध

करते हैं। बालि जब उन पर छिप कर मारने का आक्षेप करता है तो उसे वे दण्डय बताते हैं और पशु होने के कारण उसका छिपकर वध प्रशस्त बताते हैं।

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः।
वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाञ्छन्नेन दण्डितः। १।१६

बालि को दण्डय बताने पर बालि यही दोषाक्षेप सुग्रीव पर भी करता करता है पर राम उसे निरुत्तर कर देते हैं और अन्त में वह अपनी गलती स्वीकार कर लेता है—हन्त ! अनुत्तरा वयम्। भवता दण्डितत्वाद् विगतपापोऽहं ननु। (१।२१-२२) विभीषण के शरणागत होने पर भी राम बिना किसी संकोच के उसे स्वीकार कर लेते हैं यद्यपि सुग्रीव की सहमति इसमें नहीं होती है। इसी समय शुक और सारण के पकड़े जाने पर भी राम उन्हें छुड़ा देते हैं और कहते हैं कि इन दोनों के मारे जाने से मेरा कोई विशेष अभ्युदय नहीं होगा न तो रावण की कोई विशेष क्षति अतः इनको छोड़ दिया जाय।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय। ४।२१

राम पर युद्ध भी लादा गया है। वे स्वयं युद्ध के लिये नहीं आये हैं अपितु उनकी स्त्री का अपहरण कर रावण ने स्वयं युद्ध ठाना है।

मम दारापहारेण स्वयं ग्राहितविग्रहः।
आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः॥ ४।२२

राम लोक-मर्यादा के रक्षक हैं। लोक के व्यवहार में कोई विसंगति, कोई उथल-पुथल न आवे और सभी अपनी चारित्रिक सीमाओं में आबद्ध रहें इसलिये वे कोई भी कष्ट, त्याग करने के लिये उद्यत हैं। इसीलिये तो सीता को सती-साध्वी जानते हुये भी अग्नि-परीक्षा की अनुमति दी :

जानताऽपि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन।
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम्॥ ६।२६

भगवान् राम साक्षात् नारायण हैं लौर लोकस्थिति की रक्षा के लिये उन्होंने मानव शरीर ग्रहण किया है। इसकी सूचना वरुण, अग्नि और देव तथा गन्धर्व सभी देते हैं। दिव्य गन्धर्वों की स्तुति के ये दोनों पद्य भगवान् राम के वास्तविक रूप के प्रख्यापक हैं तथा भारतीय धर्म और दर्शन के यथार्थ रूप के परिचायक हैं।

ब्रह्मा ते हृदयं जगत्त्रयपते ! रुद्रश्च कोपस्तव
नेत्रे चन्द्रदिवाकरे सुरपते ! जिह्वा च ते भारती ।
सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो
सीतेयं जलसंभवालयरता विष्णुर्भवान् गृह्यताम् ।।
मग्नेयं हि जले वराहवपुषा भूमिस्त्वयैवोद्धृता
विक्रान्तं भुवनत्रयं सुरपते ! पादत्रयेण त्वया ।
स्वैरं रूपमुपस्थितेह भवता देव्या यथा सांप्रतं
हत्वा रावणमाहवेऽत्र हि तथा देवाः समाश्वासिताः ।। ६।३०-३१

सीता—साक्षात् लक्ष्मी हैं और मानवरूपधारी नारायण श्रीराम को प्राप्त हुई हैं।

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ।। ६ ।। २८

वे पातिव्रत्यधर्म की साक्षात् मूर्ति हैं। रावण के दुराग्रहपूर्ण अनुरोध को वे अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक तिरष्कृत कर अपने वृत्तशौण्डीर्य का परिचय देती हैं। उनको अपने सच्चारित्र्य पर पूर्ण विश्वास है और पञ्चम अङ्क के अन्त में कहती है कि यदि मैं अपने कुलोचित चरित्र से आर्यपुत्र का स्मरण करती हूँ तो आर्यपुत्र की जय हो—

ईश्वराः ! आत्मनः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुस्मराम्यार्यपुत्रम् आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु ।। ५ ।। १७

राम के उनके राक्षसकुलावास के प्रति शंका प्रकट करने पर वे तुरन्त अग्नि-परीक्षा के लिये तैयार हो जाती हैं और अग्नि द्वारा अक्षत एवं निष्कलुष रूप में प्रकट की जाती हैं। आदर्श धर्मपत्नी के रूप में सीता के

चरित्राङ्कन में, जिनके सच्चारित्र्य की आभा से पूरा नाटक देदीप्यमान है, नाटककार सफल हुआ है।

लक्ष्मण—का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त रूप में चित्रित किया गया है। जो कुछ चित्रित हुआ है उसके अनुसार वे देशकाल के ज्ञानी, सदाचार के रक्षक एवं प्रशंसक तथा राम के आज्ञाकारी सेवक है। प्रथम अङ्क में वन की स्थिति के दर्शन से किष्किन्धा के समीपवर्ती होने का अनुमान करते हैं। तदनन्तर बालि और सुग्रीव के युद्ध के समय कहते हैं सुग्रीव कपित्व के कारण सज्जनों के आचरण का त्यागकर गुरु (बड़े भाई) का तिरस्कार कर लड़ने जा रहा है। (१।१४) शेष स्थानों पर प्रायः वे राम के आज्ञाकारी के रूप में ही चित्रित हैं और यदाज्ञापयति आर्यः (आर्य की जैसी आज्ञा) कहकर उसका पालन करते हैं। यहाँ तक कि सीता के अग्नि-प्रवेश के अवसर पर जब राम को मनाने का प्रयास करते हैं तो अन्त में हनूमान् से कहते हैं कि—निष्फलो मम तर्कः। अथवा वयमार्यस्याभिप्रायमनुवर्तितारः। गच्छामो भवत् (६।२३-२४)

सुग्रीव—सुग्रीव का चरित्र संक्षिप्त रूप से चित्रित है और रामायणी कथा के अनुगत है। राम से सख्य स्थापित कर वह बालि का वध कराकर किष्किन्धा का राजा होना चाहता है और इस प्रयास में सफल होता है। चारित्रिक दृष्टि से वे ही दोष उस पर भी हैं जो बालि पर। शत्रुपक्ष की प्रत्येक गतिविधि से वह सशंकित रहता है और यही कारण है कि विभीषण की शरणागति पर वह उससे शंकित रहने का परामर्श देता है। पर राम के कार्य के लिये वह कृतप्रतिज्ञ है और अपने वचनों के अनुसार सीता के अन्वेषण का प्रबन्ध करता है और पूरी वानरी सेना के साथ प्राणों का मोह त्याग कर रावण-युद्ध में सहयोग करता है। वस्तुतः सुग्रीव का चरित्र रामायणी कथा में वह दृढ़ भित्ति है जिसपर कथा की सुखमय समाप्ति होती है।

बालि—अतुलित बलशाली, तेजस्वी तथा शत्रु को ध्वस्त करने में दक्ष है। उसके सामने आकर प्रहार करने की क्षमता, इन्द्र, शिव या विष्णु में भी नहीं है (१।१०)। अमृतमन्थन के समय उपस्थित होकर उसने वासुकि नाग

को जो बलपूर्वक खींचा उससे सभी आश्चर्यान्वित हो उठे। राम के साथ वार्तालाप में उसकी तर्कशक्ति और शास्त्र-ज्ञान भी लक्षित होता है। किन्तु बलाधिक्य के दर्प में वह विमर्शकारिता को भूल जाता है और यही कारण है कि तारा के समझाने पर भी वह सुग्रीव से एकाकी लड़ता है और अन्त में रामबाण से विद्ध होकर प्राण-त्याग करता है। प्राण त्याग के समय भी वह विवेकशक्ति से सम्पन्न है तथा अङ्गद को सुग्रीव के हाथ तथा सुग्रीव एवं अङ्गद को राम के हाथ सौंपता है।

हनुमान्——का चरित्र इस नाटक में सर्वत्र व्याप्त है। वे अतुलित बलशाली, बुद्धिमान्, विवेकी, पराक्रमी तथा स्वामिहित-सम्पादन में संलग्न है। राम-सुग्रीव-सख्य-सम्पन्न कराकर राम को उचित अवसर पर बालिवध के लिये उपस्थित करते हैं। सीतान्वेषण के लिये जाने पर सीदन्ती हरिबाहिनी का वे उद्धार करते हैं और शतयोजन विस्तीर्ण सागर को पार कर दुष्प्रधर्ष्य लङ्का में प्रवेश कर सीता से सम्भाषण कर उन्हें समाश्वस्त करते हैं। तदनन्तर अशोक वन का विध्वंस कर किंकरों, पञ्च सेनापतियों तथा अक्षकुमार का वध करते हैं। अन्ततः इन्द्रजित् द्वारा बन्धन प्राप्त कर रावण के सामने उपस्थित होकर निर्भीकता; विनम्रता और दृढ़ता से उसे सीता को लौटाने के लिये कहते हैं। रावण के न मानने पर उसे कठोर शब्दों से विनिन्दित कर लंकादाह कर राम के पास लौट आते हैं। राम की सेना के साथ लंका में वे अद्भुत पराक्रम दिखाते हैं। इतने पराक्रम और बुद्धिप्राबल्य के होते हुये भी वे विनीत अनुचर हैं। विभीषण शरणागति के अवसर पर उन्हीं के साक्ष्य पर सुग्रीव की इच्छा के विपरीत विभीषण को राम शरण देते हैं।

रावण——इस नाटक में अहंकारी, बलयुक्त तथा सुरासुरों का विमर्दनकारी प्रदर्शित किया गया है। सीतापहरण से राम से उसने स्वयं युद्ध ठाना है और हनुमान् से वह सन्देश भी भेजता है कि—

अभिभूतो मया राम दारापहरणादसि।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान्॥ ३।२२

उसमें कभी भी भय का सञ्चार नहीं होता और निर्भीकता से युद्ध में प्राणों की आहूति देता है। सीता के प्रति उसकी आसक्ति प्राणों के संकट में भी नहीं टलती। संक्षेप में उसका चरित्र रामायणी चरित्र का ही संक्षिप्त रूप है।

विभीषण—धर्मपरायण, न्यायप्रिय और यथार्थवादी के रूप में चित्रित हुये हैं। हित और यथार्थकथन के लिये ही रावण ने उनका निर्वासन किया। सत्पक्ष का आश्रय लेने के लिये वे राम के शरणागत होते हैं।

समीक्षण

अभिषेक नाटक रामायण की कथा पर आश्रित है और किष्किन्धाकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा इसमें अनुस्युत है। नाटक का नाम अभिषेक राम के राज्याभिषेक पर आश्रित है यद्यपि इस नाटक में तीन अभिषेकों की अवस्थिति है—सुग्रीव का किष्किन्धा में राज्याभिषेक, विभीषण का युद्धपूर्व अभिषेक और युद्ध की परिसमाप्ति पर राम का राज्याभिषेक। रामायणी कथा से मुख्यतः कोई परिवर्तन लक्षित नहीं होता पर दो बड़े परिवर्तन नाटककार ने किये है एक तो समुद्र पर सेतु का न बांधा जाना। इस नाटक में भीत वरुण सागर-जल को दो भागों में विभक्त कर देते हैं और सेना खाली किये गये मार्ग से पार कर जाती है तथा दूसरा परिवर्तन है राम के लंका में ही अभिषिक्त होने का संकेत। रावण—विजय के बाद सीता की अग्नि परीक्षा सम्पन्न हो जाने पर देव, विद्याधर गन्धर्वों से स्तुत राम दशरथ के आदेश से अभिषिक्त होते हैं और भरत—शत्रुघ्न सहित प्रकृति (प्रजा) वन उपस्थित हो जाते हैं। लंका से अयोध्या प्रस्थान का अनुल्लेख तथा भरतादि के उपस्थित होने से यह स्पष्ट होता है कि अभिषेक लंका में ही हो गया। इन परिवर्तनों का नाटकीयता से क्या प्रयोजन है अथवा नाटककार को ये परिवर्तन क्यों करने पड़े यह तो स्पष्ट नहीं हैं पर नाटककार ने ये दो परिवर्तन कर डाले हैं। हनुमान्—सीता के संवाद में 'अंगुलीयक हस्त' हनुमान् का निर्देश तो है पर अंगुलीयक देने का उल्लेख नहीं है।

वाक्यों का छोटा रूप तथा सरलता भास की अपनी विशेषता है जो उनके सभी नाटकों में समान रूप से दृष्टिगोचर होती है। काव्य की दृष्टि से इस नाटक को सामान्य स्तर का ही कहा जाता है तथापि भावों के वर्णन और

प्रकृति चित्रण में नाटककार ने उपलब्ध अवसर का भरपूर उपयोग किया है। हनुमान् के द्वारा अशोकवन (प्रमद वन) का विध्वंश किये जाने पर शंकुकर्ण ने उसका जो चित्रण किया है वह उस वन की कमनीयता तथा सर्वथा संरक्षित रूप का सुतरां परिचायक है ।

यस्यां न प्रियमण्डनाऽपि महिषी देवस्म मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।
वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टवालद्रुमाः
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ।।३।१

[जिस अशोकवनिका के पल्लवों को देव रावण की पट्टरानी मन्दोदरी अलंकरणप्रिया होने पर भी नहीं तोड़ती और जिस उपवन में मलय वायु प्रवाहित होते हुये छोटे वृक्षों को स्पर्श न करते हुये प्रवाहित होते हैं। इन्द्रशत्रु रावण की वही अशोकवाटिका भग्न हो गयी यह सूचना दो ।]

इस पद्य का स्पष्ट प्रभाव शाकुन्तल के इस पद्य पर दृष्टिगत होता है ।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आदौ वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युतसवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ।।४।।११

प्रकृति के वर्णन में भास उपलब्ध अवसर का भरपूर उपयोग करते हैं और वर्ण्य विषय का साङ्गोपाङ्ग चित्र उपस्थित करते हैं। मकरालय सागर के वर्णन का यह दृश्य कितना प्रभावोत्पादक है :

क्वचित्फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि नक्रप्रतिभयः
क्वचिद्भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ।। ४।१७

यह समुद्र कहीं तो फैन उगल रहा है और कहीं मछलियाँ जल को चञ्चल किये हैं। कहीं यह शङ्खों से भरा है तो कहीं नील बादल तुल्य है। कहीं यह (तरङ्गों) से भरा है तो कहीं घड़ियालों से भयङ्कर बना है। कहीं भयङ्कर आवर्तों (चक्रों) से भरा है तो कहीं शान्त जल वाला है ।

युद्ध के वर्णन के अवसर पर भी कवि ने युद्ध का जों रूप उपस्थित किया है वह युद्ध की भयंकरता के साथ ही कवि की वर्णना की प्रौढि का प्रख्यापक है । युद्ध का यह वर्णन देखिये—

एते पादपशैलभग्नशिरसो मुष्टिप्रहारैर्हताः
क्रुद्धैर्वानरयूथपैरतिबलैरुत्पुच्छकर्णैर्वृताः ।
कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैर्दंष्ट्रोष्टठतीव्रीमुखैः
शैला वज्रहता इवाशु समरे रक्षोगणाः पातिताः।।६।३

[क्रोध से कान और पूछ को ऊपर उठाये वानर बीरों ने जिनका मुख कण्ठ पकड़ने से फैजायी गयी आँखों और दातों के रगड़ने से ओठों के कारण क्रोधपूर्ण हैं वृक्षों और शैलों के प्रहार से राक्षसगणों को मार गिराया है और वे वैसे ही गिरे हैं जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे हों ।]

भास के नाटकों के छोटे और सरल बाक्य प्रभावोत्पादकता में अपूर्व होते हैं । भावों को हृदयङ्गम कर तदनुकूल रसों में सामाजिक भग्न हो जाते हैं । इन कथोंपकथनों से दृश्यों के अङ्कन में भी भास ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है । रससिद्धि उनकी अपनी ऐसी विशेषता है जो सराबोर किये बिना नहीं छोड़ती । रामकथा के प्रचलित रूप को ग्रहण कर और कथांश तथा चरित्र की यथावत् रक्षा कर नाटकीय गुणों से इस नाटक को संयुक्त करना स्वतः में एक सफलता है । जब रावण विद्युज्जिव्ह्व के द्वारा राम-लक्ष्मण के मायामय शिर का निर्माण कराता है और सीता को दिखाकर कहता है—

व्यक्तजिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन् नराधमे ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा केन त्वं मोक्षयिष्यसे ।। ५ ।।१०

और सीता के साथ ही सामाजिकों का हृदय भी अपूर्व करुणा और नैराश्य में बैठ जाता है । उसी समय नेपथ्य से ध्वनि आती है—रामेण-रामेण और सूचना मिलती है कि इन्द्रजित् का वध कर राम लंका में आते हैं तो सीता के साथ ही सभी को अपूर्व सन्तोष और शान्ति का अनुभव होता है । ऐसी आकस्मिक और समयोपयुक्त उक्ति की सृष्टि नाटककार की सफलता है ।

नाटक का प्रधान रस वीर है जो आद्यन्त प्रवहमान है। बीच-बीच में करुण की समयोचित सर्जना की गयी है।

इस संस्करण में प्राचीन संस्करणों की अशुद्धियों के परिमार्जन का प्रयास किया गया है। व्याख्या और अनुवाद को भी यथा संभव सरल और सुगम रखने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन में पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहयोग दिया है। एतदर्थं मैं उनका आभारी हूँ।

काशी ५।१२।८७
मार्गशीर्ष पूर्णिमा, २०४४ वि०

गंगासागर राय

भास की प्रशस्तियाँ

(१)

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—बाणभट्ट : हर्षचरित, १।१५

(२)

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—राजशेखर

(३)

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

—दण्डी : अवन्तिसुन्दरी, ११

(४)

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्य रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि वहारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौवन्धवे च वन्धे हरिचन्द्रे च आनन्दे ॥]

—गउडवहो

(५)

भासो हासोः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

—जयदेव : प्रसन्नराघव

(६)

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रवन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ वहुमानः ।

—कालिदास : मालविकाग्निमित्र

पात्र-परिचयः

रामः—	दशरथात्मजः
लक्ष्मणः—	रामानुजः
सुग्रीवः—	कपिराजः
नीलः—	वानरसेनापतिः
विभीषणः—	रावणानुजः
बालिः—	वानरराजः सुग्रीवाग्रजः
अङ्गदः—	बालिपुत्रः
रावणः—	राक्षसराजः
हनुमान्ः—	वानरमुख्यः, सुग्रीवसच्चिवः
बलाध्यक्षः—	वानरसेनाध्यक्षः
विद्युज्विह्वः—	राक्षसः
शङ्कुकर्णः—	राक्षसः
अक्षः, इन्द्राजित्ः—	राबणस्य पुत्रौ
शुकः, सारणः—	मायारूपधरौ राक्षसौ
बिलमुखः—	सुग्रीवस्य वार्त्ताहरः
ककुभः—	वानरः
काञ्चुकीयः—	रावणस्य भृत्यः
काञ्चुकीयः—	गुग्रीवस्य भृत्यः
प्रथमः; द्वितीयः, तृतीयः—	विद्याधराः
अग्निः वरुणः—	देवौ
सीता—	रामपत्नी
तारा—	बालिपत्नी
राक्षस्यः—	

॥ श्रीः ॥

भासनाटकचक्रे

अभिषेकनाटकम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता
युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता ।

सीतासमन्वितं रामं सज्जनानन्ददायकम् ।
रक्षोविध्वंसकर्तारं वन्देऽहं श्रद्धयान्वितः ॥
अञ्ज़नानन्दनं वीरं गुणानामाकरं कपिम् ।
रक्षोवधविधौ विज्ञं हनूमन्तं भजाम्यहम् ॥

अन्वयः—निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता सः वः पातु यः गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता, युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता, दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता ॥ १ ॥

व्याख्या—निशिचराणां राक्षसानाम् इन्द्रः राजा निशिचरेन्द्रो रावणस्तस्य कुलस्य वंशस्याभिहन्ता नाशको विशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता भगवान् श्रीरामचन्द्रो वः युष्मान् दर्शकान् सामाजिकान् पातु रक्षतु । यः श्रीरामचन्द्र

(नन्दी के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—राक्षसराज रावण के कुल के मारने वाले (भगवान् श्रीराम) आप लोगों (दर्शकों) की रक्षा करें. जिन्होने गाधिपुत्र (विश्वामित्र), के

दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि (परिक्रम्यावलोक्य) अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ! अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

सुग्रीव ! इत इतः ।

गाधिपुत्रस्य विश्वामित्रस्य मखस्य विघ्नकराणां विनाशकानाम् अभिहन्ता नाशकः गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता, (यः) युद्धे समरे विराधस्य खरस्य दूषणस्य च वीर्यस्य पौरुषस्य हन्ता विनाशकः विराधखरदूषणवीर्यहन्ता तथा दर्पेणाहंकारेण उद्धतयोर्धृष्टयोः तथा उल्बणयोरुग्रयोः कबन्धकपीन्द्रयोः कबन्धराक्षसवालिवानरयोश्च हन्ता वधकर्ता दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता। वसन्ततिलकावृत्तम् । अनुप्रासालङ्कारः ॥ १ ॥

पारिपार्श्विक—भावमहाशय !

अन्वयः—खे अभिगर्जतां प्रचण्डवातोद्धुतभीमगामिनां वलाहकानाम् इव एष श्रोत्रविदारणः महान् ध्वनिः कुतः समुत्थितः प्रवर्तते खलु ॥ २ ॥

व्याख्या—खे आकाशे अभिगर्जतां प्रकर्षेण नदतां प्रचण्डवातोद्धुतभीमगामिनां प्रचण्डेन तीव्रेण वातेन वायुना उद्धुतानां संचालितानामत एव भीमगामिनां भीषणगतीनां तीव्रवायुप्रेरितभीषणसंचरणशीलानां वलाहकानाम्

यज्ञ के विघ्नकर्ताओं का नाश किया, युद्ध में विराध, खर और दूषण के वीर्य का नाश किया तथा दर्प से उद्धत एवं उग्र कबन्ध तथा वानरराज (वालि) का वध किया ॥ १ ॥

आप सज्जनों से मैं यह निवेदन कर रहा हूँ (घूम कर तथा देखकर). अरे ! मैं सूचना देने में व्यस्त हूं तो शब्द सुनाई पड़ रहा है ? अच्छा तो देखूं ।

(नेपथ्य में)

सुग्रीव ! इधर आइये । इधर आइये ।

(प्रवेश कर)

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भाव !

कुतो नु खल्वेष समुत्थितो ध्वनिः प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान् ।
प्रचण्डवातोद्धूतभीमगामिनां बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥२॥

सूत्रधारः—मार्ष ! किं नावगच्छसि । एष खलु सीतापहरणजनितसन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च, दाराभिमर्शननिर्विषयीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीवस्य च परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिं हेममालिनं बालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते । तत एतौ हि,

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ।
पुनः स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव ॥ ३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

मेघानाम् इव एष पुरःश्रूयमाणः श्रोत्राणां कर्णावां विदारणः भेदकः कर्णविदारणः महान् ध्वनिः शब्दः कुतः समुत्थितः उद्गतः प्रवर्तते खलु । अयं श्रूयमाणः ध्वनिः प्रचण्डवायुप्रेरितबलाहकानां ध्वनिरिव प्रचण्ड इत्यर्थः ॥२॥

अन्वयः—राज्यविभ्रष्टम् इन्द्रं हरिहरौ इव सुग्रीवम् पुनः स्थापयितुं रामलक्ष्मणौ प्राप्तौ ॥ १३ ॥

व्याख्या—राज्याद् विभ्रष्टं राज्यविभ्रष्टं दैत्यै राज्यच्युतम् इन्द्रं देवराजं हरिहरौ विष्णुमहेश्वरौ इव राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं पुनः स्थापयितुं राज्यं प्रापयितुम् इदानीं रामलक्ष्मणौ प्राप्तौ उपस्थितौ ॥ ३ ॥

पारिपार्श्विक—महाशय ! आकाश में प्रचण्ड वायु से उग्ररूप से प्रेरित मेघों के प्रचण्ड शब्द की भाँति कानों को फाड़ने वाला यह शब्द कहाँ से आ रहा है ?। २ ॥

सूत्रधार—भाई ! क्या नहीं जानते ? सीता-हरण से उत्पन्न सन्ताप वाले तथा समस्त लोकों के नयनों को आनन्द देने वाले राम और समस्त वानरों और ऋक्षों के राजा विस्तृत एव महान् ग्रीवावाले सुग्रीव जिनकी स्त्री का हरण कर देश से निकाल दिया गया है, के बीच परस्परोपकार की प्रतिज्ञा

स्थापना ।

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च)

राम।—सुग्रीव ! इत इतः ।

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्णदेहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ॥ ४ ॥

अन्वयः—अद्य तव शत्रुं मत्सायकात् निहतभिन्नविकीर्णदेहं भुवि सहसा पातयामि । हे राजन् ! मम अपि समीपवर्ती भयं त्यज समरे त्वया दृष्टः च वालिः निहतः ॥ ४ ॥

व्याख्या—अद्य इदानीं तव शत्रुं शातयितारं मत्सायकात् मम बाणात् निहतभिन्नविकीर्णदेहं आहतविदीर्णः विकीर्णश्च शकलीकृतः देहः यस्यासौ तं तथोक्तं मम बाणविदीर्णविकीर्णदेहं भुवि पृथिव्यां सहसा झटिति पातयामि । हे राजन् ! मम समीपवर्ती पार्श्वस्थितस्त्वं भयं त्यज निर्भयो भव । त्वया सुग्रीवेण समरे युद्धे दृष्टः बाली निहतः एव । त्वया दृष्टमात्र एव हतः । अथवा समरे त्वया बाली हतः दृष्टः अचिरेणैव समरे तं निहन्यमानं द्रक्ष्यसीति।

हुई और उनका यह सभी वानरों के स्वामी स्वर्णमालाधारी बालि को मारने का उद्योग हो रहा है और अब ये दोनों—

राज्य से विभ्रष्ट इन्द्र को पुनः स्थापित करने के लिये विष्णु-शिव की भांति राज्यविभ्रष्ट सुग्रीव को पुनः स्थापित करने के लिये राम-लक्ष्मण उपस्थित हुए हैं ।

(निकल जाते हैं)

स्थापना

(तदनन्तर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

राम—सुग्रीव ! इधर । इधर ।

मैं आज तुम्हारे शत्रु को अपने बाणों के प्रहार से कटा एवं विगलित देह वाला बनाकर भूमि पर गिरा दूंगा । हे राजन् ! आप मेरे पास रहकर भय त्याग करिये । आपने जहां बाली को देखा कि वह मारा गया ॥ ४ ॥

सुग्रीव—देव ! अहं खल्वार्यस्य प्रसादाद् देवानामपि राज्यमाशङ्के; किं पुनर्वानराणाम् । कुतः,

मुक्तो देव ! तवाद्य बालिहृदयं भेत्तुं न मे संशयः
सालान् सप्त महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छ्रीधर ! ।
भित्त्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणीं गत्वा च नागालयं
मज्जन् वीर पयोनिधौ पुनरयं सम्प्राप्तवान् सायकः ॥ ५ ॥

हनुमान्—

तव नृप ! मुखनिःसृतैर्वचोभि-
र्विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः ।

अन्वयः—हे देव ! श्रीधर ! मुक्तः तव अयं सायकः महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमान् सप्तसालान् भित्त्वा वेगवशात् धरणीं च प्रविश्य नागालयं गत्वा पयोनिधौ मज्जन् पुनः संप्राप्तवान् । अद्य बालिहृदयं भेत्तुं मे न संशयः ।

व्याख्या—हे द्योतनशील देव ! श्रीधर लक्ष्मीपते जनार्दन ! मुक्तः धनुष्यारोप्य प्रक्षिप्तः तव अयं पुरो दृश्यमानः सायकः विशिखः महावनेऽत्र हिमगिरेः हिमशैलस्य शृङ्गोपमान् शिखरतुल्यान् सप्त संख्याकान् सालान सालवृक्षान् भित्त्वा संभिद्य धरणीं पृथ्वीं वेगवशात् वेगेन प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा नागालयं नागलोकं गत्वा पयोनिधौ पयसांनिधिः पयोनिधिस्तस्मिन् पयोनिधौ सागरे मज्जन् स्नानं कुर्वन् पुनः संप्राप्तवान् भवतस्तूणीरं प्रविष्टः । अद्य त्वया बालिहृदयं भेत्तुं मे न संशयः । अवश्यमेवायं तव विशिखः बालिनो हृदयं विदारयिष्यति ॥ ५ ॥

सुग्रीव—देव ! मैं आपकी कृपा से देवताओं के राज्य को भी प्राप्त करने की सम्भावना करता हूँ । वानरों के राज्य की क्या (कथा) ?

हिन्दी—हे देव विष्णो ! आपके द्वारा छोड़ा गया यह बाण महान् वन में हिमालय के शिखरतुल्य साल के सप्त वृक्षों को भेदकर (गिराकर) वेग से धरणी में जाकर नागलोक में पहुँच गया और समुद्र के जल में स्नान करते हुए पुनः (आपके तरकस में) आ गया । अब बालि के हृदय के भेदन में मुझे कोई सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥

रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं
गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! सोपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम् ।

सुग्रीवः—सम्यगाह कुमारः ।

सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।
तिष्ठ त्वं नृवर ! करोम्यहं विसंज्ञं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम् ॥७॥

अन्वयः—हे नृप ! तव मुखनिःसृतैर्वचोभिः वयं हि विगतभयाः (जाताः) । हे रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं सनीरनीरदाभ गिरिम् अभिगच्छ ॥ ६ ॥

व्याख्या—हे नृप ! राजन् ! हि निश्चयेन तव मुखनिःसृतैः मुखाद्गतैः वचोभिः विश्वासोत्पादकवचनैः वयं विगतभयाः निर्भयाः जाताः हे रघुवर ! हरये सुग्रीवाय जयं प्रदातुं जयप्रदानाय सनीरनीरदाभं सजलनीरदतुल्यवर्णं गिरिं पर्वतमभिगच्छ । हे देव ! भवद्वचनैर्वयं निर्भया विश्वस्ताश्च जाताः । इदानीं सुग्रीवाय जयं प्रदातुं भवान् वालिनो गुहां गच्छेत्यर्थः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे नृप ! हरिवरबाहुसंप्रगुप्ता तव बाहुसंप्रगुप्ता किष्किन्धा प्राप्ता । हे नृवर ! त्वं तिष्ठ । अहं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकं विसंज्ञं करोमि ॥ ७ ॥

व्याख्या—हे नृप ! राजन् ! रामचन्द्र ! हरिवरस्य वालिनो बाहुभ्यां गुप्ता रक्षिता किष्किन्धा संप्रति तव बाहुभ्यां संप्रगुप्ता पालिता अथवा

हनूमान्—हे राजन् ! आपके मुख से निकले वचनों से हम निर्भय हो गये । हे रघुवर ! अब सुग्रीव को विजय देने के लिये आप सजलमेघवर्ण के समान इस पर्वत (गुहा) को चलें ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—आर्य ! वनान्त के सोपस्नेह (स्निग्ध-निर्मल) होने से पास ही किष्किन्धा होगी ।

सुग्रीव—कुमार (लक्ष्मण) ने ठीक कहा है ।

हे राजन् ! बालि के बाहुओं से पालित तथा अब आपके बाहुओं रक्षित किष्किन्धा नगरी आ गई । आप स्थिर हो जायें । हे नरश्रेष्ठ !

रामः—भवतु, गच्छ ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः । (परिक्रम्य) भोः !

अपराधमनुद्दिश्य परित्यक्तस्त्वया विभो ! ।
युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्तुमिच्छति ॥ ८ ॥

(नेपथ्ये)

कथं कथं सुग्रीव इति ।

(ततः प्रविशति बाली, गृहीतवस्त्रया तारया सह)

बाहुभ्यां गुप्ता समीपवर्तिनी इत्यर्थः प्राप्ता । हे नृवर ! मानवोत्तम ! तिष्ठ विरम स्थिरो भवेत्यर्थः अहं नादेन शब्देन स्वगर्जितेनेत्यर्थः प्रचलमहीधरं चञ्चलपर्वतं नृलोकं मनुष्यलोकं विसंज्ञं संज्ञारहितं विगतज्ञानं करोमि । एषा समीपवर्तिनी किष्किन्धा नगरी त्वं सावधानो भव । अहं स्वगर्जितेन सकलं लोकं सशब्दं करोमीत्यर्थः ॥ ७ ॥

अन्वयः—विभो । अपराधम् अनुद्दिश्य त्वया परित्यक्तः सुग्रीवः युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां कर्तुम् इच्छति ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे विभो ! ऐश्वर्ययुक्त प्रभो । अपराधं दोषम् अनुद्दिश्य अविचार्य त्वया परित्यक्तः राज्यधनादिभिः बहिष्कृतः नगरान्निष्कासितश्च सुग्रीवस्तवानुजः युद्धे समरे त्वत्पादशुश्रूषां त्वत्पादसेवां कर्तुमिच्छति । दोषं विना त्वया राज्याद्बहिष्कृतः एष तवानुजः सुग्रीवः तन्निमित्तं त्वया सह योद्धुमिच्छति । नगराद्बहिरागत्य मया सह युध्यस्वेति भावः ॥ ८ ॥

मैं अपने गर्जन से पर्वत को चलायमान तथा मनुष्यलोक को संज्ञाशून्य करता हूँ ॥ ७ ॥

राम—ठीक है । जाओ ।

सुग्रीव—जैसी देव की आज्ञा (घूमकर) हे ।

हे विभो ! बिना अपराध का ध्यान दिये आपके द्वारा (स्त्री-राज्य से वहिष्कृत) सुग्रीव युद्ध में आपके चरणों की सेवा करना चाहता है (अर्थात् आपके साथ युद्ध करना चाहता है) ॥ ८ ॥

(नेपथ्य में)

बाली—कथं कथं सुग्रीव इति ।

तारे ! विमुञ्च मम वस्त्रमनिन्दिताङ्गि !
प्रशस्तवक्त्रनयने ! किमसि प्रवृत्ता ।
सुग्रीवमद्य समरे विनिपात्यमानं
तं पश्य शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रम् ॥ ९ ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ । अप्पेण कारणेण ण आगमिस्सइ सुग्गीओ । ता अमच्चवगेण सह सम्मतिअ गन्तव्वं । [प्रसीदतु

अन्वय—हे अनिन्दिताङ्गि तारे ! मम वस्त्रं विमुञ्च । हे प्रशस्तवक्त्रनयने । किं प्रवृत्ता असि । तं सुग्रीवम् अद्य समरे विनिपात्यमानं शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं पश्य ॥ ९ ॥

व्याख्या—हे अनिन्दिताङ्गि प्रशंसितगात्रे तारे ! मम वस्त्रं त्वया धृतं वस्त्रं विमुञ्च त्यज । हे प्रशस्तवक्त्रनयने । प्रशंसनीयमुखनेत्रयुक्ते तारे ! किं किमर्थं मम वस्त्रं विगृह्य अवरोद्धुं प्रवृत्ता संलग्ना असि । तं वैरिणं मया तिरस्कृतं सुग्रीवं शोभनकण्ठशालिनं ममानुजमद्यसमरे युद्धे मया पराजित्य विनिपात्यमानं निपात्यमानं तथा शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं शोणितेन रक्तेन परिप्लुतं व्याप्तं सर्वं गात्रं यस्य तथाभूतं पश्य । ममावरोधनं मा कार्षीः । वृथा शंका त्याज्या । शीघ्रमेव स मया पराजितो भिन्नगात्रश्च भविष्यतीति ॥ ९ ॥

क्यों-क्यों सुग्रीव ऐसा ?

(तदनन्तर वस्त्र पकड़ी तारा के साथ बाली प्रवेश करता है)

बाली—क्या-क्या सुग्रीव ?

हे प्रशंसनीय अङ्गों वाली तारे ! मेरे वस्त्र को छोड़ो । हे प्रशंसनीय मुख तथा आँखों वाली तारे ! यह क्या कर रही हो (क्यों मुझे रोक रही हो) उस सुग्रीव को आज मेरे द्वारा युद्ध में गिराया जाता हुआ तथा रक्त से सने हुये (व्याप्त) सम्पूर्ण शरीर वाला देखो ॥ ९ ॥

तारा—महाराज ! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । सुग्रीव छोटे से कारण से नहीं आयेगा । अतः मन्त्रियों से विचारणा करने के बाद जाना चाहिये ॥९॥

प्रसीदतु महाराजः । अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीवः । तदमात्यवर्गेण सह सम्मन्त्र्य गन्तव्यम् ।]

वाली—आः,

शक्रो वा भवतु गतिः शशाङ्कवक्त्रे !
शत्रोर्मे निशितपरश्वधः शिवो वा ।
नालं मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः ॥ १० ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ । इमस्स जणस्स अणुग्गहं दाव करेउं अरिहदि महाराओ । [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अस्य जनस्यानुग्रहं तावत् कर्तुमर्हति महाराजः ।]

वाली— श्रूयतां मत्पराक्रमः ।

आः = छिः ।

अन्वय—हे शशाङ्कवक्त्रे ! मे शत्रोः शक्रः रिपोः वा निशितपरश्वधः शिवः वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः विष्णुः वा गतिः भवतु माम् अभिमुखम् एत्य सम्प्रहर्तुम् न अलम् ॥ १० ॥

व्याख्या—हे शशाङ्कवक्त्रे चन्द्रवदनि ! मे शत्रोः रिपोः शत्रुभूतस्य सुग्रीवस्य गतिः शरणं शक्रो देवराज इन्द्रः वा निशितपरश्वधः तीक्ष्णपरशुधारी शिवः वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः प्रफुल्लकमलनेत्रः विष्णुः जनार्दनः वा भवतु सः माम् अभिमुखं सम्मुखम् एत्य आगत्य सम्प्रहर्तुम् न अलं न पर्याप्तं शक्त इत्यर्थः 'शत्रुः' इति पाठे इन्द्रः शिवः विष्णुः शत्रुः भवति । तेषां पुरतोऽपि मे गतिरस्ति । ते सम्मुखमागत्य प्रहर्तुम् न समर्थाः ॥ १० ॥

बाली—छि ! मेरे शत्रु सुग्रीव के चाहे इन्द्र, चाहे तीक्ष्ण परशुधारी शिव या विकसित नेत्र वाले विष्णु आश्रय हों वह हमारे सामने आकर प्रहार करने में समर्थ नहीं है ॥ १० ॥

तारा—महाराज प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । इस जन (मुझ) पर आपको अनुग्रह करना चाहिये (मेरी बात मानिये) ॥ १० ॥

बाली—मेरे पराक्रम को सुनो ॥ १० ॥

तारे ! मया खलु पुरामृतमन्थनेऽपि
गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान् ।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदग्ररूप-
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते ॥ ११ ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ । [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ।]

बाली—आः, मम वशानुवर्तिनी भव । प्रविश त्वमभ्यन्तरम् ।

तारा—एसा गच्छामि मन्दभाआ । (निष्क्रान्ता) [एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

बाली—हन्त प्रविष्टा तारा । यावदहं सुग्रीवं भग्नग्रीवं करोमि । (द्रुतमुपगम्य) सुग्रीव ! तिष्ठ तिष्ठ ।

अन्वय—हे तारे ! पुरा अमृतमन्थने मया गत्वा सुरदानवदैत्यसङ्घान् प्रहस्य उत्फुल्लनेत्रम् उदग्ररूपम् उरगेन्द्रम् आकृष्यमाणम् अवलोक्य ते सुविस्मिताः ॥ ११ ॥

व्याख्या—हे तारे ! पुरा प्राचीनकाले अमृतमन्थने समुद्रमन्थनावसरे मया गत्वा सुरदानवदैत्यसङ्घान् देवदनुजदैत्यसमूहान् प्रहस्य उपहासं कृत्वा उत्फुल्लनेत्रं प्रत्फुल्लनेत्रं उत्कीर्णनेत्रम् उदग्ररूपं कर्षणवशाद्भीषणस्वरूपम् , उरगेन्द्रं नागराजं वासुकिम् आकृष्यमाणम् अवलोक्य दृष्ट्वा ते देवदनुजदैत्यसमूहाः सुविस्मिताः जाताः । वालिनः पराक्रमस्तु सर्वापेक्षयाऽधिक इति भावः ॥ ११ ॥

हिन्दी—हे तारे ! पुराकाल में समुद्र-मन्थन के अवसर पर मैंने जाकर देव-दानव-दैत्य-समूहों का उपहास कर उत्फुल्ल नेत्र वाले तथा भीषण स्वरूप वाले नागराज वासुकि का कर्षण किया जिसे देखकर वे सभी आश्चर्यचकित हो गये ॥ ११ ॥

तारा—महाराज ! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ।

बाली—मेरी वशवर्तिनी होओ । अभ्यन्तर (अन्तःपुर) में प्रवेश करो ।

तारा—मन्दभागिनी यह जाती है (निकल जाती है) ।

बाली—तारा भीतर गई । तो मैं सुग्रीव को टूटी गर्दन वाला करूं (शीघ्रता से जाकर) सुग्रीव ! खड़े रहो । खड़े रहो ।। ११ ।।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः ।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यसि ॥ १२ ॥

इत इतः ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(उभौ नियुद्धं कुरुतः)

रामः—एष एष बाली,

सन्दष्टोष्ठश्चण्डसंरक्तनेत्रो मुष्टिं कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्रः ।
गर्जन् भीमं वानरो भाति युद्धे संवर्ताग्निः सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १३ ॥

अन्वय—इन्द्रः ते शरणम् अस्तु वा मधुसूदनः ते प्रभुः अस्तु मच्चक्षुष्पथं आसाद्य सजीवो न यास्यसि एव ॥ १२ ॥

व्याख्या—इन्द्रः देवराजः ते तव शरणं रक्षकोऽस्तु मधुसूदनः मधुहन्ता भगवान् विष्णुः वा ते प्रभुः स्वामी पालकः अस्तु । मच्चक्षुष्पथं मम नेत्रगोचरो भूत्वा सजीवः जीवितः न यास्यसि गमिष्यसि एव ॥ १२ ॥

अन्वय—सन्दष्टोष्ठः चण्डसंरक्तनेत्रः उद्वृत्तदंष्ट्रः गाढम् मुष्टि कृत्वा भीमं गर्जन् बानरः युद्धे भाति यथा सन्दिधक्षुः संवर्त्ताग्निः एव ॥ १३ ॥

व्याख्या—संदष्टः दन्तेन चर्वितः ओष्ठः अधरः येन सः संदष्टोष्ठः क्रोधेन चर्वितोष्ठः चण्डसंरक्तनेत्रः चण्डे भीषणे संरक्ते रक्तवर्णे नेत्रे अक्षिणी यस्य गाढम् दृढतरं यथा स्यात् तथा मुष्टि कृत्वा बद्ध्वा उद्वृत्तदंष्ट्रः बहिर्गतदशनः भीमं भीषणं गर्जन् नदन् बानरः वाली युद्धे भाति यथा एव संदिधक्षुः दग्धुं प्रवृत्तः संवर्ताग्निः संवर्तनामको युगाग्निः ॥ १३ ॥

देवराज इन्द्र चाहे तुम्हारे रक्षक हों, या मधुहन्ता विष्णु तुम्हारे प्रभु (रक्षक) हों मेरे दृष्टिपथ में आकर तुम जीवित नहीं जाओगे ॥ १२ ॥

इधर आओ । इधर आओ ।

सुग्रीव—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(दोनों घोर युद्ध करते हैं)

राम—यह यह बाली ।

लक्ष्मण—आर्य (आप) सुग्रीव को भी देखें—

लक्ष्मणः—सुग्रीवमपि पश्यत्वार्यः,

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः ।
हरिवरमुपयाति वानरत्वाद् गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम् ।।१४।।

वालिना ताडितः पतितः सुग्रीवः ।

हनुमान्—हा ! धिक् । (ससम्भ्रमं राममुपगम्य) जयतु देवः । अस्यैषावस्था ।

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलश्च पतिर्मम ।
अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ।। १५ ।।

अन्वयः—विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः सतां वृत्तं विहाय गुरुम् अभिभूय वानरत्वात् हरिवरम् उपयाति ।। १४ ।।

व्याख्या—विकसितशतपत्रनेत्रः उत्फुल्लकमलवत् रक्तं रक्तवर्णं नेत्रे नयने यस्यासौ कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः कनकमयेन स्वर्णनिर्मितेन अङ्गदेन तदाख्याभरणेन नद्धौ अलङ्कृतौ यस्य बाहू तादृशोऽयं सुग्रीवः सतां सज्जनानां वृत्तं सदाचारं विहाय गुरुम् ज्येष्ठं भ्रातरं वालिनमभिभूय तिरस्कृत्य हरिवरं कपिराजं बालिनम् वानरत्वाद् कपित्वात् उपयाति युद्धार्थंमाह्वयते ।। १४ ।।

अन्वयः—वानरेन्द्रः तु बलवान् मम पतिः च दुर्बलः आर्येण अवस्था शपथः च सर्वम् एव चिन्त्यताम् ।। १५ ।।

प्रफुल्लकमलवत् रक्तवर्ण की आँखों वाला, स्वर्णनिर्मित बाजूवन्द से युक्त बाहों वाला सुग्रीव सज्जनों के आचरण का त्याग कर गुरु (बाली) का अनादर कर कपित्ववश हरिराज बालि के पास युद्ध के लिये जा रहा है ।। १४ ।।

बालि से आहत होकर सुग्रीव गिर पड़ा ।

हनुमान्—हाय ! धिक्कार है । (घबड़ा कर राम के पास जाकर) महाराज की जय हो । इनकी (सुग्रीव की) यह अवस्था है ।। १४ ।।

वानरेन्द्र बाली बलवान् हैं तथा मेरे स्वामी (सुग्रीव) दुर्बल हैं । (वानरेन्द्र के प्रहार से गिरे हुये सुग्रीव की) अवस्था तथा (अपनी बालिवध की) प्रतिज्ञा सभी का आप ध्यान कीजिये ।। १५ ।।

रामः—हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण । एतदनुष्ठीयते । (शरं मुक्त्वा) हन्त पतितो वाली ।

लक्ष्मणः—एष एष वाली,

रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः
कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविक्षुः ।
अभिपतति कथञ्चिद् धीरमाकर्षमाणः
शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरम् ॥ १६ ॥

व्याख्या—वानरेन्द्रो वाली बलवान् मम पतिः स्वामी सुग्रीवः दुर्बलः क्षीणशक्तिः । अवस्था बालिवधविषयिका स्वप्रतिज्ञा सर्वमेव आर्येण भवता सत्पुरुषेण चिन्तयताम् विचार्यताम् ॥ १५ ॥

राम—हनूमन् ! घबडाइये मत । घबड़ाइये मत । यह कर रहा हूँ (बाण छोड़कर) हाय । बाली गिर गया ॥ १५ ॥

अन्वयः—रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविक्षु शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरं कथंचित् धीरम् आकर्षमाणः अभिपतति ॥ १६ ॥

व्याख्या—रुधिरकलितगात्रः रुधिरेण रक्तेन कलितः आप्लुतः देहः यस्यासौ रक्तच्छुरितशरीरः स्रस्तसंरक्तनेत्रः स्रस्ते बहिरागते संरक्ते रक्तवर्णे नेत्रे यस्यासौ बहिरुद्गतरक्तवर्णनयनः कठिनविपुलबाहुः कठिनौ कठोरौ विपुलौ प्रलम्बौ बाहू यस्यासौ कठोरप्रलम्बबाहुः कालस्य यमस्य लोकं काललोकं यमलोकं विविक्षुः प्रवेष्टुमिच्छुः शरवरपरिवीतं शरवरेण रामबाणेन परिवीतं क्षतं शान्तवेगं निश्चेष्टं शरीरं कथंचित् केनापि प्रकारेण धीरम् आकर्षमाणः कर्षयन् पातयन् इत्यर्थः अभिपतति ॥ १६ ॥

राम—हनुमन् ! घबराओ मत । यह कह रहा हूँ (बाण छोड़ कर) यह बाली गिर गया है ।

लक्ष्मण—यह-यह बाली ।

रक्त से सने शरीर वाला, शिथिल एवं रक्तवर्ण के नेत्रों वाला, कठोर तथा लम्बी भुजाओं वाला बाली यमलोक में प्रवेश करने की इच्छा से राम के बाण से विक्षत शरीर को किसी प्रकार धीरता से गिराते हुये गिर रहा है ॥ १६ ॥

बाली—(मोहमुपगम्य पुनः समाश्वस्य शरे नामाक्षराणि वाचयित्वा राममुद्दिश्य)

युक्तं भो ! नरपतिधर्ममास्थितेन युद्धे मां छलयितुमक्रमेण राम ! ।
वीरेण व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलमपनेतुमुद्यतेन ॥१७॥

हन्त भोः ।

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—भो राम ! नरपतिधर्ममास्थितेन व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलमपनेतुम् उद्यतेन वीरेण भवता युद्धे अक्रमेण माम् छलयितुं युक्तम् ? ॥१७॥

व्याख्या—भो राम ! नरपतिधर्ममास्थितेन राजधर्मपरिपालनप्रवृत्तेन व्यपगतधर्मसंशयेन धर्मविषये नष्टसर्वसंशयेन लोकानां जनानां छलं प्रवञ्चनामपनेतुं दूरीकर्तुम् उद्यतेन प्रवृत्तेन वीरेण प्रथितशूरेण भवता युद्धे अक्रमेण अमार्गेण अनुचितपद्धत्या माम् छलयितु वञ्चयितुं युक्तम् उचितम् किम् ? सर्वथाऽनुचितमित्याक्षेपः ॥ १७ ॥

अन्वयः—सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च भवता मां छलेन प्रहरता अयशः प्ररूढं कृतम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—सौम्यरूपेण शान्तरूपेण यशसः कीर्तेः भाजनेन पात्रेण यशस्विनेत्यर्थः भवता श्रीरामेण माम् बालिनं छलेन तिरोभूत्वा छलेन प्रहरता प्रहारं कुर्वता अयशः अपकीर्तिः प्ररूढं ख्यापितं कृतम् । माम् दूरतः छन्नीभूत्वा प्रहरता भवता महती निन्दा अर्जितेत्यर्थः ॥ १८ ॥

बाली (मूर्च्छित होकर फिर आश्वस्त होकर बाण में नाम के अक्षरों ~~को पढ़~~ कर राम से)—

हे राम ! राजधर्म के परिपालन में युक्त, धर्मशंकाओं से विहीन तथा लोकों की वञ्चना को दूर करने के लिये उद्यत आप शूर के द्वारा युद्ध में अनुचित रीति से मेरा छल किया जाना क्या उचित है ? ॥ १७ ॥

हाय !

सौम्यरूप तथा यशस्वी आपने मुझ पर छल से (छिपकर) प्रहार कर आप स्थिर अपकीर्ति को प्राप्त किया ॥ १८ ॥

भो राघव ! चीरवल्कलधारिणा वेषविपर्यस्तचित्तेन मम भ्रात्रा सह युद्धव्यग्रस्याधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वधः।

रामः—कथमधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वध इति ।।

बाली—कः संशयः।

रामः—न खल्वेतत्। पश्य,

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः।
वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाञ्छन्नेन दण्डितः ॥ १९ ॥

बाली—दण्ड्य इति मां भवान् मन्यते।

रामः—कः संशयः ?

बाली—केन कारणेन ?

अन्वय—वागुराच्छन्नम् आश्रित्य मृगाणां वधः इष्यते भवान् मृगत्वात् च वध्यत्वात् च छन्नेन दण्डितः ॥ १९ ॥

व्याख्या—वागुरा जालं तस्मिन् छन्नं धृतं मृगमाश्रित्य लब्ध्वा मृगाणां पशूनां वधः इष्यते शास्त्रसम्मत इत्यर्थः। वध्यत्वात् च स्वापापाचरणेन मारितुं योग्यत्वात् पशुत्वात् च वानरत्वात् त्वं छन्नेन प्रच्छन्नेन मया दण्डितः। दण्डं प्रापितः ॥ १९ ॥

हे रघुवंशी राम। वल्कलधारी आपके द्वारा वेष के विरुद्ध स्वभाव होकर भाई के साथ युद्ध में व्यग्र मेरा बध अधर्म युक्त है।

राम—प्रच्छन्न होकर वध अधर्मकारक कैसे है ?

बाली—इसमें क्या सन्देह है ?

राम—यह नहीं है। देखो—

जाल में फँसे मृगों का (छिप कर ही) बध किया जाता है। तुम्हारे वध्य एवं मृग होने से प्रच्छन्न होकर तुम्हें दण्डित किया गया ॥ १९ ॥

बाली—आप मुझे दण्डय मानते हैं।

राम—इसमें क्या सन्देह है ?

बाली—किस कारण से ?

रामः—अगम्यागमनेन ।

बाली—अगम्यागमनेनेति । एषोऽस्माकं धर्मः ।

रामः—ननु युक्तं भोः !

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।
आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ २० ॥

बाली— भ्रातृदाराभिमर्शनेन तुल्यदोषयोरहमेव दण्डित। न सुग्रीवः ।

रामः—दण्डितस्त्वं हि दण्ड्यत्वाद्, अदण्ड्यो नैव दण्ड्यते

बाली—सुग्रीवेणाभिमृष्टाऽभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम ।
तस्य दाराभिमर्शेन कथं दण्ड्योऽस्मि राघव ॥ २१ ॥

अन्वयः—धर्माधर्मौ विजानता भवता वानरेन्द्रेण आत्मानं मृगम् उद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनं (किं युक्तम्) ॥ २० ॥

व्याख्या—धर्माधर्मौ पापपुण्ये विजानता सम्यग्रूपेण जानता भवता वानरेन्द्रेण वानरराजेन आत्मानं मृगम् उद्दिश्य ज्ञात्वा सामान्यपशुं विज्ञाय भ्रातृदाराभिमर्शनम् भ्रातुः पत्न्याः अभिमर्शनं रमणमित्यर्थः ननु युक्तं भोः किमुचितम् नोचितमित्यर्थः ॥ २० ॥

अन्वयः—मम गुरोः धर्मपत्नी सुग्रीवेण अभिमृष्टा अभूत् । हे राघव ! (तर्हि) कथम् (अहं) तस्य दाराभिमर्शेन दण्ड्यः अस्मि ॥ २१ ॥

व्याख्या—मम बालिनः गुरोः ज्येष्ठभ्रातुः धर्मपत्नी पत्नी सुग्रीवेण

राम—अगम्या के साथ गमन करने से ।

बाली—अगम्या गमन से ? यह हमलोगों (मृगों) का धर्म है ।

राम—क्या यह ठीक है ?

धर्माधर्म के ज्ञाता आप वानरराज के द्वारा अपने को मृग जानकर (छोटे) भाई की पत्नी का अभिमर्शन क्या उचित है ?। २० ॥

बाली—भाई की स्त्री के साथ सहवास के हम दोनों भाई समान दोषी हैं पर मैं अकेले दण्डित हुआ, सुग्रीव नहीं ।

राम—दण्ड्य होने से तुम्हीं दण्डित हुए । अदण्ड्य नहीं दण्डित होता ।

बाली—हे राघव ! मुझ गुरु (बड़े भाई) की स्त्री सुग्रीव द्वारा धर्षित हुई । तो (फिर) उसकी स्त्री के धर्षण से मैं (अकेले) कैसें दण्ड्य हुआ ?

रामः—न त्वेवं हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम् ।

बाली—हन्त अनुत्तरा वयम् । भवता दण्डितत्वाद् विगतपापोऽहं ननु ।

रामः—एवमस्तु ।

सुग्रीवः—हा धिक् ।

करिकरसदृशौ गजेन्द्रगामि-
स्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च ।
अवनितलगतौ समीक्ष्य बाहू
हरिवर ! हा पततीव मेऽद्य चित्तम् ॥ २२ ॥

कनिष्ठेन अभिमृष्टा परामृष्टा अभूत् । हे राघव रघुवंशोद्‌गत राम ! तर्हि कथं किंकारणेनाहं तस्य सुग्रीवस्य दाराभिमर्शेन पत्न्या सह रमणेन दण्डय अस्मि । उभयोः भ्रात्रोः समानापराधे कथमहमेव दण्डयः न सुग्रीव इत्यर्थः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे गजेन्द्रगामिन् हरिवर ! तव करिकरसदृशौ रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ अवनितलगतौ बाहू समीक्ष्य अद्य मे चित्तं हा पतति इव ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे गजेन्द्रगामिन् गजतुल्यगते हरिवर कपिराज ! तव करिकरसदृशौ गजशुण्डतुल्यौ रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ शत्रुशस्त्रेण परिक्षतौ त्रुटितौ अङ्गदौ ययोस्तौ अवनितलगतौ पृथिव्यां पतितौ बाहू समीक्ष्य अद्य मे चित्तं हृदयं हा पतति इव । त्वां शत्रुशस्त्रघातितं दृष्ट्वा अहं मूढा जाता ॥ ९२ ॥

राम—छोटे भाई द्वारा ज्येष्ठ भाई का दाराभिमर्श नहीं होता ।

बाली—हाय ! हम निरुत्तर हो गये । आपसे दण्डित मैं पापविहीन हो गया ।

राम—ऐसा ही है ।

सुग्रीव—हाय ! धिक्कार है ।

हे गजतुल्य चलनेवाले कपिराज हाथी के शुण्ड के समान शत्रु के बाण से

बाली—सुग्रीव ! अलमलं विषादेन । ईदृशो लोकधर्मः ।

(नेपथ्ये)

हा हा महाराओ (हा हा ! महाराजः) ।

बाली—सुग्रीव ! संवार्यतां संवार्यतां स्त्रीजनः । एवंगतं नार्हति मां द्रष्टुम् ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः । हनूमन् ! एवं क्रियताम् ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्यङ्गदो हनुमांश्च)

हनूमान्—अङ्गद ! इत इतः ।

अङ्गदः—

श्रुत्वा कालवशं यान्तं हरिमृक्षगणेश्वरम् ।
समापतितसन्तापः प्रयामि शिथिलक्रमः ॥ २३ ॥

अन्वयः—ऋक्षगणेश्वरं हरिं कालवशं यान्तं श्रुत्वा समापतितसंतापः शिथिलक्रमः प्रयामि ॥ २३ ॥

व्याख्या—ऋक्षगणेश्वरं ऋक्षाणां गणास्तेषामीश्वरं ऋक्षगणेश्वरं हरिं वानरं

टूटे हुए अङ्गदवाले पृथिवी पर गिरे आपकी दोनों भुजाओं को देखकर मेरा हृदय भी गिरा जा रहा है ॥ २२ ॥

बाली—सुग्रीव ! विषाद मत करो । लोकधर्म ऐसा ही है ।

(नेपथ्य में)

हा हा ! महाराज

बाली—हे सुग्रीव ! स्त्री-जनों को रोको (सँभालो) इस प्रकार पड़े मुझको देखना ठीक नहीं है ।

सुग्रीव—महाराज की जैसी आज्ञा । हनूमन् ! ऐसा करो ।

हनुमान—कुमार की जैसी आज्ञा ।

(तदनन्तर अङ्गद और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

हनूमान—अङ्गद ! इधर ! इधर ।

अङ्गद—

हनूमन् ! कुत्र माराजः ।

हनूमान्—एष महाराजः;

शरनिर्भिन्नहृदयो विभाति धरणीतले ।
गुहशक्तिसमाक्रान्तो यथा क्रौञ्चाचलोत्तमः ॥ २४ ॥

अङ्गदः—(उपसृत्य) हा महाराज !

अतिबलसुखशायी पूर्वमासीर्हरीन्द्रः
क्षितितलपरिवर्ती क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः ।
शरवरपरिवीतं त्यक्तमुत्सृज्य देहं
किमभिलषसि वीर स्वर्गमद्याभिगन्तुम् ॥ २५ ॥

(इति भूमौ पतितः ।)

बालिनं कालवशं मृत्युवशं यान्तं मुमूर्षुं श्रुत्वा आकर्ण्य समापतितसंतापः संतप्त इत्यर्थः शिथिलक्रमः शिथिलपादन्यासः मन्दवेगः प्रयामि । वानरराजं बालिनं म्रियमाणं श्रुत्वा शोकेन मम गतिः शिथिला जातेत्यर्थः ॥ २३ ॥

अन्वयः—एष महाराजः शरनिर्भिन्नहृदयो धरणीतले विभाति यथा गुहशक्तिसमाक्रान्तो क्रौञ्चाचलोत्तमः ॥ २४ ॥

व्याख्या—एष पुरोदृश्यमानः महाराजः वानरराजबालिः शरनिर्भिन्नहृदयः धरणीतले पृथिवीतले विभाति दृश्यते यथा गुहशक्तिसमाक्रान्तः गुहस्य सेनानिनः स्कन्दस्य शक्त्या तन्नामकास्त्रेण समाक्रान्तः विदारितः क्रौञ्चाचलोत्तमः पर्वतश्रेष्ठः क्रौञ्चः ॥ २४ ॥

अन्वयः—अतिबलसुखशायी हरीन्द्रः पूर्वम् आसीः । (इदानीं)

ऋक्षराज वानर (बालि) को काल के वश मे जा रहा सुनकर संतापवश मैं शिथिल गति वाला हो गया हूँ ॥ २३ ॥

हनुमान् ! महाराज कहाँ हैं ?

हनुमान्—ये महाराज हैं ।

ये महाराज बाण से विदीर्ण हृदय होकर पृथिवी पर विराज रहे हैं जैसे स्कन्द की शक्ति से विदीर्ण क्रौञ्च नामक पर्वत हो ॥ २४ ॥

अङ्गद—(जाकर) हाय ! महाराज ।

बाली—अङ्गद ! अलमलं विषादेन, भोः सुग्रीव !

मया कृतं दोषमपास्य बुद्ध्या त्वया हरीणामधिपेन सम्यक् ।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं कुलप्रवालं परिगृह्यतां नः ॥२६॥

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

बाली—भो राघव ! यस्मिन् कस्मिन् वापराधेऽनयोर्वानरचापलं क्षन्तुमर्हसि ।

क्षितितलपरिवर्ती क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः (असि)। हे वीर ! शरवरपरिवीतं देहम् उत्सृज्य अद्य कि स्वर्गम् अभिगन्तुम् इच्छसि ॥ २५ ॥

व्याख्या—अतिबलसुखशायी अतिबलेन लोकातिशयबलशालित्वादित्यर्थः सुखशायी सर्वचिन्ताविहीननिद्रः हरीन्द्रः कपिराजः आसीः। इदानीं क्षितितलपरिवर्ती भूमिलुण्ठनशीलः क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः सर्वशरीरचेष्टारहितः असि। हे वीर ! शरवरपरिवीतं रामशरेणाहतं देहं शरीरं व्यक्तम् उत्सृज्य त्यक्त्वा अद्य किं स्वर्गम् अभिगन्तुं यान्तुम् अभिलषसि इच्छसि ॥ २५ ॥

सुग्रीव—हरीणाम् अधिपेन त्वया मया कृतं दोषं बुद्ध्या अपास्य रोषं विमुच्य धर्मं परिगृह्य नः कुलप्रवालं परिगृह्यताम् ॥ २६ ॥

आप पूर्व में अतिबलशाली सुख से सोनेवाले हरीन्द्र थे और अब पृथिवी पर सभी शरीर की चेष्टाओं से रहित होकर सो रहे हैं। राम के शर से आहत शरीर को स्पष्ट ही छोड़कर क्या आज स्वर्ग जाना चाहते हैं ? ॥ २५ ॥

(यह कहकर भूमि पर गिर जाता है)

बाली—हे अङ्गद ! विषाद मत करो। विषाद मत करो। हे सुग्रीव !

कपिराज आपके द्वारा मेरे द्वारा किये गये दोष को बुद्धि से निकालकर दोष का त्याग कर एवं धर्म का विचार कर हम लोगों के कुल के इस अंकुर (अंगद) को ग्रहण करना चाहिये।

सुग्रीव—महाराज की जैसी आज्ञा।

बाली—हे राघव ! जिस किसी भी (छोटे-मोटे) अपराध पर इन दोनों का वानर-चापल्य क्षमा करियेगा।

रामः—बाढम्।

बाली—सुग्रीव! प्रतिगृह्यतामस्मत्कुलधनं हेममाला।

सुग्रीवः—अनुगृहीतोऽस्मि। (प्रतिगृह्णाति)

बाली—हनूमन्! आपस्तावत्।

हनूमान्—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः।

बाली—(आचम्य) परित्यजन्तीव मां प्राणाः। इमा गङ्गाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः। एष सहस्रहंसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितो मां नेतुमागतः। भवतु। अयमयमागच्छामि। (स्वर्यातः।)

सर्वे—हा हा महाराज!।

व्याख्या—हरीणां वानराणामधिपेन स्वामिना त्वया मया कृतं दोषं देशनिष्कासनदाराभिमर्शादिकं दोषं बुद्धया विचारेण अपास्य दूरीकृत्य त्यक्त्वा रोषं क्रोधं विमुच्य त्यक्त्वा धर्मं परिगृह्य धर्मं पुरस्कृत्य नः अस्माकं कुलप्रवालं कुलप्ररोहः वंशधारक इत्यर्थः अयं अङ्गदः परिगृह्यताम् स्वीक्रियताम् ॥ २६ ॥

राम—ठीक है।

बाली—हे सुग्रीव! हमारे कुलधन इस स्वर्णमाल्य को ग्रहण करो।

सुग्रीव—अनुगृहीत हूँ (ग्रहण करता है)।

बाली—हनूमन्! जल लाओ।

हनूमान—महाराज की जैसी आज्ञा (जाकर तथा आकर) ये जल हैं।

बाली (आचमन कर)—प्राण मुझे छोड़ रहे हैं। ये गङ्गा आदिक महानदियाँ ये उर्वशी आदि अप्सरायें मेरे पास आयी हैं। काल द्वारा भेजा गया वीरों को ढोने वाला यह सहस्र हंसों से युक्त विमान मुझे लेने के लिये आया है। ठीक है। यह मैं आ रहा हूँ (स्वर्ग चला गया)।

सभी—हाय! हाय! महाराज!

रामः—हन्त स्वर्गं गतो बाली । सुग्रीव ! क्रियतामस्य संस्कारः ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः ।

रामः—लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याऽभिषेकः कल्प्यताम् !

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः !

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः

* * *

राम—हाय ! बाली स्वर्ग गया । सुग्रीव ! इसका संस्कार करो ।

सुग्रीव—जैसी देव की आज्ञा ।

राम—लक्ष्मण ! सुग्रीव के अभिषेक का उपक्रम करो ।

लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा ।

(सभी निकल जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति ककुभः)

ककुभ—निष्ठितप्रायत्वात् कार्यस्याहारव्यापृताः सर्वे वानरयूथपाः। तस्मादहमपि किञ्चिदाहारजातं सम्भावयामि। (तथा करोति।)

(प्रविश्य)

बिलमुख—पेसियो म्हि महाराएन सुग्गीवेण-अय्यरामस्य किदोवआरप्पच्चुवआरणिमित्तं सव्वासु दिसासु सीदाविअअणे पेशिआ सव्वे वाणरा आअदा। तेसं दक्खिणापहमुहस्स कुमारस्स अङ्गदस्स पवुत्ति जाणिअ सिग्घं आअच्छति। ता कहिं णुहु गओ कुमारो। (परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) एसो अय्यकउहो। जाव णं पुच्छामि। (उपसृत्य) सुहं अय्यस्स। [प्रेषितोऽस्मि महाराजेन सुग्रीवेण-आर्यरामस्य कृतोपकारप्रत्युपकारनिमित्तं सर्वासु दिशासु सीताविचयने प्रेषिताः सर्वे वानरा आगताः। तेषां दक्षिणापथमुखस्य कुमारस्याङ्गदस्य प्रवृत्ति ज्ञात्वा शीघ्रमागच्छेति। तत् क्व नु खलु गतः कुमारः। एष आर्यककुभः। यावदेनं पृच्छामि। सुखमार्यस्य।]

(ककुभ का प्रवेश)

ककुभ—कार्य के प्रायः समाप्त हो जाने से सभी वानर-यूथपति भोजन में संलग्न हैं। तो मैं भी कुछ भोजन की व्यवस्था करूँ (वैसा करता है)।

(प्रवेश कर)

बिलमुख—आर्य राम के द्वारा किये उपकार के बदले सीतान्वेषण के लिये सभी दिशाओं में भेजे गये सभी वानर लौट आये। तो महाराज सुग्रीव ने मुझे भेजा है कि दक्षिणापथ की ओर गये कुमार अङ्गद का समाचार लेकर शीघ्र लौट आओ। तो कुमार अङ्गद कहाँ गये? ये (यूथपति) आर्य ककुभ हैं तो इनसे पूछूं (पास जाकर) आप सुख से तो हैं?

ककुभः—अये बिलमुखः। कुतो भवान्।

विलमुखः—अय्य ! महालाअस्स सासणेण कुमारं अङ्गदं पेक्खिदुं आअदो म्हि। [आर्य ! महाराजस्य शासनेन कुमारमङ्गदं प्रेक्षितुमागतोऽस्मि।]

ककुभः—अपि कुशली आर्य रामो महाराजश्च।

बिलमुखः—आम्।

ककुभः—कोऽभिप्रायो महाराजस्य।

(बिलमुखः पेसिओ म्हि इति पूर्ववत् पठति)

ककुभः—किं न जानीषे निष्ठितघर्मं कार्यस्य।

बिलमुखः—किं किम्।

ककुभः—श्रूयताम्,

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्राद्
आरुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रं महेन्द्रम्।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं
वीर्यप्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽद्य ॥ १ ॥

अन्वयः—खगेन्द्रात् रामपत्न्याः वृत्तान्तं लब्ध्वा लङ्काम् अभ्येतु सद्विपेन्द्रं अगेन्द्रम् महेन्द्रम् आरुह्य वायुपुत्रेण अद्य वीर्यप्राबल्यात् शीघ्रं सागरः लङ्घितः ॥ १ ॥

व्याख्या—खगेन्द्रात् जटायुसोदर्यात् संपातेः रामपत्न्याः जानक्याः

ककुभ—अरे ! विलमुख ! कहाँ से आप ?

विलमुख—आर्य ! महाराज की आज्ञा से कुमार अङ्गद को देखने आया हूँ।

ककुभ—आर्य राम और महाराज कुशल से तो हैं।

विलमुख—हाँ।

ककुभ—महाराज का क्या अभिप्राय (इष्ट) है ?

(विलमुख 'भेजा गया हूँ' इत्यादि पढ़ता)

ककुभ—क्या नहीं जानते कार्य का आधा सम्पन्न हो गया ?

विलमुख—क्या क्या ?

ककुभ—सुनिये।

तस्मादागच्छ, कुमारपादमूलमेव संश्रयावः।

(निष्क्रान्तौ !)

विष्कम्भकः।

सीता—हद्धि अदिधीरा खु म्हि मन्दभाआ। जा अय्यउत्तविरहिदा रक्खसराअभवणं आणीदा आणिठ्ठाणि अणरिहाणि जहमणोरहप्पवुत्ताणि वअणाणि साविअमाणा जोवामि मन्दभाआ। आदु अय्यउत्तसाअअप्पच्चएण कहं वि अत्ताणं पय्यवत्थावेमि। किं णु खु अज्ज पजालिअमाणे कम्मआरग्गिमण्डले उदअप्पसेओ विअ किञ्च हिअअप्पसादो समुप्पण्णो। किं णु खु मं अन्तरेण पसण्णहिअओ अय्यउत्तो भवे। [हा धिग् अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा। आर्यपुत्रविरहिता राक्षसराजभवनमानीतानिष्टान्यनर्हाणि यथामनोरथप्रवृत्तानि वचनानि श्राव्यमाणा जीवामि मन्दभागा। अथवा आर्यपुत्रसायकप्रत्ययेन कथमप्यात्मानं पर्यवस्थापयामि। किन्तु खल्वद्य प्रज्वाल्यमाने कर्मकाराग्निमण्डले उदकप्रसेक इव किञ्चिद् हृदयप्रसादः समुत्पन्नः। किन्नु खलु मामन्तरेण प्रसन्नहृदय आर्यपुत्रो भवेत्।]

वृत्तान्तं वार्तां रावणगृहावस्थानं लब्ध्वा प्राप्य ज्ञात्वेत्यर्थः लङ्कां तन्नामरावणराजधानीम् अभ्येतुं प्राप्तुं गन्तुमित्यर्थः सद्विपेन्द्रं हस्तिभिर्युक्तम् अगेन्द्रं पर्वतराजं महेन्द्रम् आरुह्य वायुपुत्रेण हनूमता अद्य वीर्यप्राबल्यात् पराक्रमप्रकर्षात् शीघ्रं झटिति सागरः लङ्घितः ॥ १ ॥

—पक्षिराज सम्पाति से रामपत्नी सीता का वृत्तान्त प्राप्त कर लङ्का जाने के लिये वायुपुत्र हनूमान् ने हाथियों से युक्त पर्वतराज महेन्द्र पर चढ़कर बलप्राबल्य से शीघ्रतापूर्वक सागर पार कर लिया ॥ १ ॥

तो आओ। कुमार अङ्गद के पास चलें।

(दोनों निकल जाते हैं)

विष्कम्भक

(तदनन्तर राक्षसीगण से घिरी सीता आती हैं)

सीता—हा धिक्कार है ! मैं अभागिनी अत्यन्त धीर (धैर्ययुक्त) हूँ,

(ततः प्रविशति हनूमान् अङ्गुलीयकहस्तः ।)

हनूमान्—(लङ्कां प्रविश्य) अहो रावणभवनस्य विन्यासः ।

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा ।
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानैर्वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का ॥ २ ॥

अहो न खलु,

अन्वयः—कनकरचितचित्रतोरणाढ्या मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा लङ्का विमलविकृतसञ्चितैर्विमानैः वियति महेन्द्रपुरी इव भाति ॥ २ ॥

व्याख्या—कनकरचितेन स्वर्णविनिर्मितेन चित्रतोरणेन विचित्रवहिर्द्वारेण आढ्या समृद्धा स्वर्णनिर्मिततोरणवतीत्यर्थः मणिवरविद्रुमैः शोभिताः प्रदेशाः प्रान्तभागा यस्याः सा लङ्का नगरी विमलविकृतसञ्चितैः रम्यैः नानाविधप्रकारैः सञ्चितैः राशीकृतैः विमानैर्यानैः वियति दिवि महेन्द्रस्य पुरी अमरावती इव भाति शोभते । रुचिरविन्यासैर्धनसंपत्तिभिविमानैश्च लङ्का इन्द्रनगरीव शोभासंपन्ना ॥ २ ॥

जो आर्यपुत्र से विरहित होकर राक्षसराज के भवन में लाई गई और अनिष्ट, अनुपयुक्त तथा इच्छानुसार कहे गये वचनों को सुनकर अभागिनी मैं जीवित हूँ। अथवा आर्यपुत्र के बाणों पर विश्वास से किसी प्रकार अपने को व्यवस्थापित किये हुई हूँ। किन्तु आज कर्मकारों द्वारा जलाये गये अग्निमण्डल में जल के सिंचन जैसे कुछ हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न हुई है। क्या मेरे बिना आर्यपुत्र प्रसन्नहृदय होगे ?

(तदनन्तर हाथ में अँगुलीयक (अँगूठी) लिये हनूमान् प्रवेश करते हैं)

हनूमान्—(लङ्का में प्रवेशकर) कैसा रावण के भवन का (सुन्दर) निर्माण है ?

स्वर्णनिर्मित तोरणों से युक्त मणिरत्नों एवं विद्रुमों से निर्मित प्रदेश वाली लङ्का सुन्दर नानाविध सञ्चित विमानों से आकाश में इन्द्रपुरी की भाँति शोभित है ॥ २ ॥

आश्चर्य है ।

एतां प्राप्य दशग्रीवो राजलक्ष्मीमनुत्तमाम् ।
विमार्गप्रतिपन्नत्वात् व्यापादयितुमुद्यतः ॥ ३ ॥

(सर्वतो गत्वा) विचरितप्राया लङ्का ।

गर्भागारविनिष्कुटेषु बहुशः शालाविमानादिषु
स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रासादहर्म्येषु च ।
पानागारनिशान्तदेशविवरेष्वाक्रान्तवानस्म्यहं
सर्वं भो विचितं न चैव नृपतेः पत्नी मया दृश्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः—एताम् अनुत्तमां राज्यलक्ष्मीं प्राप्य दशग्रीवः विमार्गप्रतिपन्नत्वात् व्यापादयितुम् उद्यतः ॥ ॥

व्याख्या—एताम् अनुत्तमां सर्वश्रेष्ठां राज्यलक्ष्मीं राज्यैश्वर्यं प्राप्य लब्ध्वा दशग्रीवः रावणः विमार्गप्रतिपन्नत्वात् अधर्माचरणादित्यर्थः व्यापादयितुम् नाश कर्तुम् उद्यतः प्रस्तुतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—गर्भागारविनिष्कुटेषु शालाविमानादिषु स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रासादहर्म्येषु पानागारनिशान्तदेशविवरेषु च अहं बहुशः आक्रान्तवान् अस्मि । भो ! सर्वं विचितं न चैव नृपतेः पत्नी मया दृश्यते ॥ ४ ॥

व्याख्या—गर्भागारेषु गृहान्तःप्रदेशेषु विनिष्कुटेषु गृहवाटिकासु शालाविमानादिषु शालाप्रासादादिषु स्नानागारेषु निशाचरेन्द्रस्य रावणस्य भवनहर्म्येषु विशालप्रासादेषु पानागारेषु निशान्तेषु निवासागारेषु देशविवरेषु सुसूक्ष्मेष्वपि स्थानेषु च अहं बहुशो नैकवारं आक्रान्तवान् भ्रमितवान् अस्मि । भो खेदे सर्वं विचितं न चैव नृपतेः रामस्य पत्नी सीता मया

इस श्रेष्ठ (लोकोत्तर) राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर रावण कुमार्गगामी होकर इसे नष्ट करने को उद्यत है ॥ ३ ॥

(सभी ओर जाकर) लङ्का प्रायः घूम ली गई ।

गर्भागारों (गृह के अन्तःप्रदेशों), उद्यानों, शाला के विमानों, स्नानागारों, रावण के प्रासाद-भवनों, पानागारों, निवासभूमियों, देश (महल) के सूक्ष्म स्थानों का मैंने बहुत वार भ्रमण किया, पर खेद है, राजपत्नी (सीता) मुझे दृष्टिगत नहीं हुई ॥ ४ ॥

अहो व्यर्थो मे परिश्रमः । भवतु, एतद्धर्म्याग्रमारुह्यावलोकयामि । (तथा कृत्वा) अये अयं प्रमदवनराशिः । इमं प्रविश्य परीक्षिष्ये । (प्रविश्यावलोक्य) अहो प्रदवनसमृद्धिः ! इह हि,

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा ।
रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥५॥

अपि च—

चित्रप्रस्रुतहेमधातुरुचिराः शैलाश्च दृष्टा मया
नानावारिचराण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीर्घिकाः ।

दृश्यते । इत्थं चिन्तामग्ना हनूमान् । अस्मिन् प्रसङ्गे वाल्मीकिरामायणे हनूमतो वचनं ध्यातव्यम् ।

अन्वयः—कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशा रुचिरतरनगा शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा विभाति ॥ ५ ॥

व्याख्या—कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः कनकरचिताः स्वर्णनिर्मिताः ये विद्रुमाः प्रवालाः इन्द्रनीलमणयस्तदाख्यमणयस्तैः विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशाः विकृताः जटिताः महाद्रुमाणां विशालवृक्षाणां पंक्तयस्ताभिः चित्रा नावावर्णा देशाः यस्यां तादृशी, रुचिरतरनगा अतिशोभना पर्वताः यस्यां सा शुभ्रा स्वच्छा चेयं प्रमदवनभूमिः नभसि वियति सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा इन्द्रक्रीडाभूमितुल्या विभाति ।

अन्वयः—(अत्र) मया चित्रप्रस्रुतहेमधातुरुचिराः शैलाश्च दृष्टाः । मया नानावारिचराण्डजैः विरचिता दीर्घिकाः दृष्टाः । मया नित्यं पुष्प-

---

हाय मेरा परिश्रम व्यर्थ गया । ठीक है । इस प्रासाद के ऊपर चढ़कर देखूँ । (वैसा करके) अरे ! यह प्रमदवनसमूह है । इसमें प्रवेशकर परीक्षा करूँ (प्रवेश कर तथा देखकर) अहा प्रमदवन की कैसी समृद्धि है । यहाँ—

यह प्रमदवनभूमि स्वर्णनिर्मित विद्रुम तथा इन्द्रनीलमणि से चित्रित बड़े वृक्षों से युक्त देशोंवाली, सुन्दर पर्वतों वाली तथा स्वच्छ है । यह आकाश में इन्द्र की क्रीड़ा-भूमि जैसी लग रही है ॥ ५ ॥

और—

नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुता देशाश्च दृष्टा मया
सर्वं दृष्टमिदं हि रावणगृहे सीता न दृष्टा मया ॥ ६ ॥

को नु खल्वेतस्मिन् प्रदेशे सप्रभ इव दृश्यते । तत्र तावदवलोकयामि (तथा कृत्वा) अये का खल्वियम् ।

राक्षसीभिः परिवृता विकृताभिः सुमध्यमा ।
नीलजीमूतमध्यस्था विद्युल्लेखेव शोभते ॥ ७ ॥

फलाढ्यपादपयुताः देशाश्च दृष्टाः। रावणगृहे इदं सर्वं हि मया दृष्टं (किन्तु) सीता न दृष्टा ॥ ६ ॥

व्याख्या—मया चित्रं विचित्रवर्णं प्रस्रुतं हेम स्वर्णम् धातवश्चतैः रुचिराः रमणीयाः शैलाः पर्वताः च दृष्टाः। मया नानावारिचराण्डजैः विविधजलचरपक्षिभिः रचिता युक्ता इत्यर्थः दीर्घिकाः वाप्यश्च दृष्टाः। मया नित्यं पुष्पैः फलैश्च आढ्याः पादपाः वृक्षास्तैर्युताः देशा भूमिभागाश्च दृष्टाः । रावणगृहे मया इदं सर्वं पूर्वोक्तं दृष्टम् किन्तु मया सीता न दृष्टा ॥ ६ ॥

अन्वयः—विकृताभिः राक्षसीभिः परिवृता सुमध्यमा नीलजीमूतमध्यस्था विद्युल्लेखा इव शोभते ॥ ७ ॥

व्याख्या—बिकृताभिः विरूपाभिः राक्षसीभिः राक्षसस्त्रीभिः परिवृता सर्वतः आवृता सुमध्यमा सुन्दरमध्यभागयुता (इयं) नीलजीमूतमध्यस्था नीलाना नीलवर्णानां ज़ीमूतानां मेघानां मध्यस्था मध्ये स्थिता विद्युल्लेखा सौदामिनी इव शोभते राजते । ॥ ७ ॥

स्वर्णमय धातुओं को गिरानेवाले पर्वतों को मैंने देखा । नानाविध जलचर जीवों से युक्त वापियों को मैंने देखा और नित्य पुष्प-फलों से समृद्ध वृक्षों वाले देशों को मैंने देखा—यह सब कुछ तो मैंने रावण के घरमें देखा पर सीता को मैंने नहीं देखा ॥ ६ ॥

इस प्रदेश में कौन तेजोयुक्त दिखाई पड़ता है ? तो वहाँ देखूँ (वैसा करके) अरे यह कौन (स्त्री) है ?

विरूप राक्षसियों से चारों ओर से घिरी यह सुन्दर मध्यवाली (सुन्दरी) काले मेघों के बीच विद्युत् की भाँति शोभित है ॥ ७ ॥

यैषा—

असितभुजगकल्पां धारयन्त्येकवेणीं
करपरिमितमध्या कान्तसंसक्तचित्ता ।
अनशनकृशदेहा वाष्पसंसिक्तवक्त्रा
सरसिजवनमालेवातपे विप्रविद्धा ॥ ८ ॥

अये कथं दीपिकावलोकः (विलोक्य) अये रावणः ।

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षी
मदसललितगामी मत्तमातङ्गलीलः ।

अन्वयः—या एषा असितभुजगकल्पाम् एकवेणीं धारयन्ती करपरिमितमध्या कान्तसंसक्तचित्ता अनगनकृशदेहा वाष्पसंसिक्तवक्त्रा आतपे सरसिजवनमाला इव विप्रविद्धा ॥ ८ ॥

व्याख्या—या एषा पुरोदृश्यमाना स्त्री असितभुजगकल्पां कृष्णसर्पतुल्याम् एकवेणीं धारयन्ती करपरिमितमध्या मुष्टिग्राह्यमध्यभागा, कान्तसंसक्तचित्ता पतिध्यानपरा, अनशनकृशदेहा अनशनेन अनाहारेण दुर्बलशरीरा, वाष्पसंसक्तवक्त्रा अश्रुसंसक्तवदना, आतपे घर्मे, सरसिजवनमाला कमलववपरम्परा इव विप्रविद्धा स्थिता दुःखितेत्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥८॥

जो—

अन्वयः—मणिविरचितमौलिः चारुताम्रायताक्षी मदसललितगामी मत्तमातङ्गलीलः असौ राक्षसेशः युवतिजननिकाये हरिणीनाम् अन्तरे चेष्टमानः हरिः इव भाति ।

कृष्ण सर्प के समान एक वेणी को धारण कर रही हाथ से पकड़ने भर कटिवाली, प्रियतम में आसक्त चित्तवाली, अनाहार से कृश शरीर वाली, अश्रु से पूर्ण मुखवाली यह धूप में कुम्हलाये कमल बन की परम्परा जैसी है ॥ ८ ॥

अरे ! यह दीपक का आलोक कैसे है ? (देखकर) अरे ! रावण है ।

मणियों से विरचित सिर वाला, सुन्दर रक्तवर्ण के नेत्रों वाला; मदवश विलासपूर्वक चलने वाला; मदमत्त गजराज की लीला वाला यह

युवतिजननिकाये भात्यसौ राक्षसेशो
हरिरिव हरिणीनामन्तरे चेष्टमानः ॥ ९ ॥

किमिदानीं करिष्यते। भवतु, दृष्टम्। एनमशोकपादपमारुह्य कोटरान्तरितो भूत्वा दृढं वृत्तान्तं ज्ञास्यामि। (तथा करोति।)

(ततः प्रविशति रावणः सपरिवारः।)

रावणः—

दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणं
युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम्।
सीता मामविवेकिनी न रमते सक्ता च मुग्धेक्षणा
क्षुद्रे क्षत्रियतापसे ध्रुवमहो दैवस्य विघ्नक्रिया ॥ १० ॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष एष चन्द्रमाः,

व्याख्या—मणिविरचितमौलिः मणिरत्नजटितमुकुटधारीत्यर्थः चारुताम्रयताक्षी चारूणि सुन्दराणि ताम्राणि रक्तवर्णानि अक्षीणि अक्षिणी वा यस्य तादृशः मदसललितगामी मदवशात् ललितं सविलासं गमनं यस्यासौ मत्तमातङ्गलीलः मत्तगजराजतुल्यसंचरणशीलः असौ राक्षसेशः राक्षसानामधिपो रावणः हरिणीनां मृगाणाम् अन्तरे मध्ये चेष्टमानः चेष्टाशीलः हरिः सिंह इव भाति विराजते ॥ ९ ॥

रावण—युद्धे दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीवक्षःस्थलं माम् रावणं अविवेकिनो सीता न रमते। मुग्धेक्षणा क्षुद्रे क्षत्रियतापसे च सक्ता अहो ध्रुवं दैवस्य विघ्नक्रिया ॥ १० ॥

व्याख्या—युद्धे संग्रामे दिव्यास्त्रैः देवनिर्मितैः अस्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं सुराणां देवानां दैत्यानां च चमूनां सेनावां विद्रावणं पराजय-

---

राक्षसराज रावण युवतियों के समूह में वैसे ही शोभित हो रहा है जैसे मृगियों के समूह में सिंह हो ॥ ९ ॥

इस समय क्या करेगा ? अच्छा (उपाय) दीख गया। इस अशोक पादप पर चढ़कर कोटर में छिपकर यथावत् वृत्तान्त जानूंगा। (वैसा करता है)

(तदनन्तर सपरिवार रावण प्रवेश करता है)

रजतरचितदर्पणप्रकाशः करनिकरैर्हृदयं ममाभिपीड्य ।
उदयति गगने विजृम्भमाणः कुमुदवनप्रियबान्धवः शशाङ्कः ॥११॥

(परिक्रम्य) एषा सीता पादपमूलमाश्रित्य ध्यानसंवीतहृदयानशनक्षामवदना स्वदेहमिव प्रवेष्टुकामा सङ्गूढस्तनोदरी दुर्दिनान्तर्गता चन्द्रलेखेव राक्षसीगणपरिवृतोपविष्टा । यैषा,

---

कर्तारं क्रुद्धसुरभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थल क्रुद्धस्य सुराणामिभस्य गजस्य ऐरावतस्येत्यर्थः दन्त एव कुलिशं वज्रं तेन व्यालीढं प्रहारक्षतं वक्षःस्थलं यस्य तम् मां रावणं अविवेकिनी उचितानुचितकर्तव्यज्ञानशून्या सीता च रमते किन्तु मुग्धेक्षणा सुन्दरकटाक्षयुता इयं क्षुद्रे अशक्ते तुच्छे क्षत्रियतापसे रामे सक्ता संरक्ता । अहो आश्चर्यं ध्रुवं दैवस्य भाग्यस्य विघ्नक्रिया विघ्नकारित्वम् । देवदैत्यदानवजेतारमैरावतमदनाशकं मां रावणं सीता न भजते अपितु क्षुद्रे रामे संसक्तभावा सा इति भाग्यस्य विडम्बनेत्यर्थः ॥ १० ॥

अन्वयः—रजतरचितदर्पणप्रकाशः कुमुदवनप्रियबान्धवः शशाङ्कः करनिकरैः मम हृदयम् अभिपीड्य विजृम्भमाणः उदयति ॥ ११ ॥

व्याख्या—रजतरचितदर्पणप्रकाशः रजतेन रचितं दर्पणं तस्य प्रकाशः इव प्रकाशो यस्य तादृशः कुमुदवनप्रियबान्धवः कुमुदवनानां प्रियो बान्धवो यः शशाङ्कः मृगलाञ्छनः एष चन्द्रमाः मम हृदयम् अभिपीड्य व्यथयित्वा विजृम्भमाणः आत्मानं प्रकटीकुर्वन् उदयति ॥ ११ ॥

रावण— युद्ध मे दिव्यास्त्रों स देवताओं, दैत्यों, एवं दानवों की सेना को पराजित करने वाले तथा क्रुद्ध देव-गज (ऐरावत) के वज्र तुल्य (कठोर) दाँत से रगड़े गये वक्षःस्थल वाले मुझ रावण में विवेकहीन सीता नहीं रम रही है और चकित नेत्रों वाली वह क्षुद्र क्षत्रिय तपस्वी राम में आसक्त हैं । अहा ! यह निश्चय दैव (भाग्य) की विघ्नक्रिया है ॥ १० ॥

(ऊपर देखकर) यह चन्द्रमा

चाँदी रचित दर्पण के समान प्रकाश वाला, कुमुद वनों का बन्धु यह शशाङ्क अपनी किरणों से मेरे हृदय को सम्यक् पीड़ित कर प्रकाशित होते हुये उदय हो रहा है ॥ ११ ॥

(परिक्रमा करके) यह सीता वृक्ष के मूल का आश्रय लेकर अनशन से

अपास्य भोगान् मां चैव श्रियं च महतीमिमाम् ।
मानुषे न्यस्तहृदया नैव वश्यत्वमागता ॥ १२ ॥

हनूमान्—हन्त सविज्ञातम् ।

इयं सा राजतनया पत्नी रामस्य मैथिली ।
सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते ॥ १३ ॥

रावणः—(उपेत्य)

अन्वयः—भोगान् मां च इमाम् महतीं श्रियं च अपास्य मानुषे न्यस्तहृदया वश्यत्वं न एव आणता ॥ १२ ॥

व्याख्या—भोगान् सुखभोगान् मां रावणं च इमां मद्गृहस्थां महतीं विपुलां श्रियं समृद्धिं च अपास्य त्यक्त्वा सीता मानुषे रामे न्यस्तहृदया समर्पितचित्ता मम वश्यत्वं नैव आगता ! मां न कामयते इत्यर्थः ॥ १२ ॥

अन्वयः—इयं सा रामस्य पत्नी राजतनया मैथिली सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगी इव परितप्यते ॥ १३ ॥

व्याख्या—इयं सा प्रथिता रामस्य पत्नी राजतनया राजकन्या मैथिली जानकी । एषा सिंहदर्शववित्रस्ता सिंहस्य दर्शनेन अवलोकनेन वित्रस्ता भयभीता मृगी हरिणी इव परितप्यते दुःखमापद्यते ॥ १३ ॥

क्षीण शरीर वाली, स्तन और उदर को छिपाकर अपने देह में ही प्रवेश की इच्छावाली है । यह दुर्दिन (बादलों) में पड़ी चन्द्रलेखा के समान राक्षसीगणों से घिरी होकर बैठी है । यह—

भोगों को, मुझको तथा मेरी इस विपुल समृद्धि को त्याग कर मनुष्य में समर्पित चित्तवाली सीता मेरे वश में नहीं आयी ॥ १२ ॥

हनुमान्—अहा ! अच्छी तरह ज्ञात हो गया ॥ १३ ॥

यह वही राम की पत्नी राजपुत्री जानकी है । यह सिंह के देखने से डरी हरिणी के समान परिताप कर रही है ।

रावण—(आकर)

सीते ! त्यज त्वं व्रतमुग्रचर्यं भजस्व मां भामिनि ! सर्वगात्रैः ।
अपास्य तं मानुषमद्य भद्रे ! गतायुषं कामपथान्निवृत्तम् ॥१४॥

सीता—हस्सो खु रावणओ, जो वअणगदसिद्धि वि ण जाणादि ।
[हास्यः खलु रावणकः, यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति ।]

हनूमान्—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेपः ।

तौ च बाहू न विज्ञाय तच्चापि सुमहद्धनुः ।
सायकं चापि रामस्य, गतायुरिति भाषते ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे सीते ! उग्रचर्यं व्रतं त्वं त्यज । तं गतायुषं कामपथान्निवृत्तं मानुषम् अपास्य हे भामिनि ! मां सर्वगात्रैः भजस्व ॥ १४ ॥

व्याख्या—हे सीते ! उग्रचर्यं उग्रेण कठोरतया चर्यम् आचरणीयं साध्यम् अतिपरिश्रमसाध्यं व्रतं च अनाहारादिकं त्वं त्यज । हे भामिनि ! सुन्दरि ! तं गतायुषम् आयुष्यरहितं मृतकल्पमित्यर्थः कामपथान्निवृत्तं कामरहितं मानुषं रामम् अपास्य त्यक्त्वा मां रावणं सर्वगात्रैः सर्वाङ्गैः भज स्वीकुरु । मह्यं सर्वात्मानं समर्पयेत्यर्थः ॥ १४ ॥

अन्वयः—रामस्य तौ च बाहू तत् च अपि सुमहद् धनुः सायकं च न विज्ञाय गतायुः इति भाषते ॥ १५ ॥

व्याख्या—रामस्य तौ विश्वविदितौ शङ्करधनुषः भञ्जकौ बाहू तत् च सुमहद् विशालं धनुः सायकं बाणं च न विज्ञाय न ज्ञात्वेत्यर्थस्तं रामं गतायुः इति भाषते ।

हे सीते ! कठोरता से साध्य व्रत को छोड़ो । उस आयुहीन, कामविरहित मानुष (राम) को छोड़कर हे भामिनि ! मुझे सभी अंगों से सेवन करो ॥ १४ ॥

सीता—तुच्छ रावण उपहास्य है जो वचन की सार्थकता को भी नहीं जानता ।

हनुमान्—(क्रोध से) ऐसा रावण का गर्व है ।

राम की उन बाहों, महान् धनुष और बाण को न जानकर (ध्यान न देकर) उन्हें गतायु कह रहा है ।

न शक्नोमि रोषं धारयितुम्! भवतु, अहमेवार्यरामस्य कार्यं साधयामि। अथवा,

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

रावणः—

वरतनु! तनुगात्रि! कान्तनेत्रे! कुवलयदामनिभां विमुच्य वेणीम्।
बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व देवि! ॥ १७ ॥

अन्वयः—यदि अहं रावणं हन्मि (तर्हि) कार्यसिद्धिः भविष्यति। यदि मां रक्षः प्रहरेत् महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

व्याख्या—यदि अहं रावणं हन्मि मारयामि तर्हि कार्यसिद्धिः भविष्यति। किन्तु यदि रक्षः रावणः मां प्रहरेत् मारयेदित्यर्थः तर्हि महत् कार्यं सीतान्वेषणरूपं विपद्येत मयि हते समुद्रस्य पारे सीतान्वेषणे न कोऽपि वानरः समर्थ इत्यर्थः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे वरतनु! तनुगात्रि! कान्तनेत्रे! कुवलयदामनिभां वेणीं विमुच्य हे देवि! बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व ॥१७॥

व्याख्या—हे वरतनु! सुन्दरगात्रे! हे तनुगात्रि कृशतनु! हे कमलनेत्रे पद्मलोचने! कुवलयदामनिभां नीलकमलमाल्यतुल्यां वेणीं केशग्रन्थि विमुच्य शिथिलीकृत्य ग्रन्थिविहीनां कृत्वा संस्कृत्येत्यर्थः। हे देवि! बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं बहुविधैर्मणिभी रत्नैश्च भूषिताङ्गं मणिरत्नादिभिरलंकृतं मां दशशिरसं दशास्यं रावणं मनसा मनो दत्त्वेत्यर्थः भजस्व सेवस्व ॥ १७ ॥

मैं क्रोध को रोक नहीं सकता। ठीक है। मैं ही आर्य राम के कार्य को सम्पन्न करता हूं। अथवा—

यदि मैं रावण को मार डालूं तो महान् कार्यसिद्धि होगी पर यदि रावण मुझे मार डाले तो महान् कार्य नष्ट हो जायेगा।

रावण—हे सुन्दर शरीरवाली! कृशकायावाली! रमणीय नेत्रोंवाली! इस नीलकमलतुल्य वेणी को छोड़कर (पुनः शृङ्गारकर) हे देवि! मणियों तथा रत्नों से विभूषित शरीरवाले मुझ दशमुख रावण को मन से स्वीकार करो ॥ १७ ॥

सीता—हं विपरीओ खु धम्मो, जं जीवदि खु अअं पापरक्खसो ।
[हं, विपरीतः खलु धर्मः, यद् जीवति खल्वयं पापराक्षसः ।]

रावणः—ननु देवि ।

सीता—सत्तो सि । [शप्तोऽसि ।]

रावणः—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेजः !

देवाः सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।
सोऽहं मोहं गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

जयतु देवः । जयतु लङ्केश्वरः । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । दश नाडिकाः पूर्णाः । अतिक्रामति स्नानवेला । इत इतो महाराजः ।

अन्वयः—मया रणे सेन्द्रादयः देवाः दानवाः च भग्नाः । सः अहं सीतायाः त्रिभिः अक्षरैः अद्य मोहं गतः अस्मि ॥ १८ ॥

व्याख्या—मया रणे युद्धे सेन्द्रादयो इन्द्रादिसहिताः देवाः दानवा राक्षसाश्च भग्नाः पराजिताः । सः अहं देवदानवपराजेता रावणः सीताया 'शप्तोऽसि' इति त्रिभिः अक्षरैः वर्णैः अद्येदानीं मोहं स्तब्धतां गतः अस्मि ॥ १८ ॥

सीता—धर्म बड़ा विपरीत है जो यह पापी राक्षस जीवित है ।

रावण—देवि सीते !

सीता—शप्त हो ।

रावण—पतिव्रता का तेज कितना महान् है ?

मैंने रण में इन्द्रादि देवों तथा दानवों को पराजित किया वही मैं आज सीता के तीन अक्षरों 'शप्तोसि' से मोहित (स्तब्ध) हो गया ॥ १७ ॥

(नेपथ्य में)

देव की जय हो । लङ्केश्वर की जय हो । स्वामी की जय हो । महाराज की जय हो । दश नाड़ियाँ पूर्ण हो गयीं । स्नान का समय बीत रहा है । महाराज इधर आवें ।

(निष्क्रान्तः सपरिवारो रावणः)

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावणः, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रियः अयं कालो देवीमुपसर्पितुम । (कोटरादवरुह्य) जयत्वविधवा ।

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना ।
त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

सीता—(आत्मगतम्) को णु खु अअं, पापरक्खसो अय्यउत्तकेरओत्ति अत्ताणं ववदिदिसिअ वाणररूवेण मं वञ्चिदुकामो भवे। भोदु, तुह्लिआ भविस्सं। [को नु खल्वयं, पापराक्षस आर्यपुत्रसम्बन्धीत्यात्मानं व्यपदिश्य वानररूपेण मां वञ्चयितुकामो भवेत्। भवतु, तूष्णीका भविष्यामि।]

अन्वयः—त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा विदितात्मना नरेन्द्रेण रामेण प्रेषितः अस्मि ॥ १९ ॥

व्याख्या—त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा त्वद्गतेन त्वद्विषयकेण स्नेहेन प्रेम्णा यः सन्तापः खेदस्तेन विक्लवीकृतचेतसा विक्लवीकृतं व्याकुलीकृतं चेतश्चित्तं यस्य तेन त्वत्प्रेमसन्तापसन्तप्तचित्तेन विदितात्मना त्वदीयं हृदयम् आत्मनो वा हृदयं विदितं येन तेन आत्मज्ञेन नरेन्द्रेण राजपुत्रेण रामेण त्वत्प्रियेण पतिना अहं प्रेषितः त्वत्सकाशमिति शेषः अस्मि ॥ १९ ॥

आप विषयक प्रेम से सन्तप्त चित्त वाले, आत्मज्ञ नरेन्द्र राम ने मुझे भेजा है ॥ १९ ॥

(परिवार (साथ वालों के) सहित रावण चला जाता है)

हनूमान्—अहा ! रावण चला गया। राक्षस-स्त्रियाँ सो गईं। देवी के पास जाने का यही समय है। (कोटर से उतरकर) अविधवा की जय हो।

सीता (स्वयं से)—यह कौन है ? पापी राक्षस (रावण) अपने को आर्यपुत्र का सम्बन्धी बनाकर वानररूप से मुझे छलने के लिये आया है। ठीक है। चुप रहूँगी।

हनूमान्—कथं न प्रत्येति भवती। अलमन्यशङ्कया। श्रोतुमर्हति भवती।

इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वहम्।
प्रेषितस्त्वद्विचित्यर्थं हनूमान् नाम वानरः ॥ २० ॥

सीता—(आत्मगतम्) जो वा को वा भोदु। अय्यउत्तणामसङ्कित्तणेण अहं एदेण अभिभासिस्सं। (प्रकाशम्) भद्द! वुत्तन्तो अय्यउत्तस्स। [यो वा को वा भवतु। आर्यपुत्रनामसंकीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिष्ये। भद्र! को वृत्तान्त आर्यपुत्रस्य?]

हनूमान्—भवति! श्रूयताम्,

अनशनपरितप्तं पाण्डु स क्षामवक्त्रं
तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम्।

अन्वयः—इक्ष्वाकुकुलदीपेन हरिणा सन्धाय त्वद्विचित्यर्थम् अह हनूमान् नाम वानरः प्रेषितः ॥ २० ॥

व्याख्या—इक्ष्वाकुकुलदीपेन इक्ष्वाकुवंशस्य दीपेन प्रकाशकेन रामेण हरिणा वानरराजसुग्रीवेण सह सन्धाय सन्धि कृत्वा त्वद्विचित्यर्थम् अहम् तव अन्वेषणार्थं हनूमान् नाम वानरः प्रेषितः अस्मि ॥ २० ॥

अन्वयः—सः अनशनपरितप्तं पाण्डुक्षामवक्त्रं तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलं विगतधैर्यं मनसिजशरदग्धं बाष्पपर्याकुलाक्षं हीयमानं शरीरं वहति ॥ २१ ॥

हनूमान्—आप क्यों नहीं विश्वास करतीं? दूसरे की शंका न करें सुनें—

इक्ष्वाकुकुल के दीपक राम ने वानर (सुग्रीव) के साथ सन्धि कर आपको ढूंढ़ने के लिए हनूमान नामक मुझ वानर को भेजा है ॥ २० ॥

सीता (स्वगत)—जो कोई भी हो। आर्यपुत्र का नाम लेने के कारण मैं इससे सम्भाषण करूंगी। (प्रकट) भद्र! आर्यपुत्र का क्या समाचार है?

हनूमान्—देवि! आप सुनें—

वे राम अनाहार से परितप्त, पीले वर्ण के, कृश मुख वाले,

वहति विगतधैर्यं हीयमानं शरीरं
मनसिजशरदग्धं बाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥ २१ ॥

सीता—(आत्मगतम्) हद्धि वीलिआ खु म्हि मन्दभाआ एवं सोअन्तं अय्यउत्तं सुणिअ। अय्यउत्तस्स विरहपरिस्समो वि मे सफलो संवुत्तो त्ति पेक्खामि, जदि खु अअं वाणरो सच्चं मन्तेदि। अय्यउत्तस्स इमस्सि जणे अणुक्कोसं परिस्समं च सुणिअ सुहस्स दुक्खस्स अ अन्तरे डोलाअदि विअ मे हिअअं। (प्रकाशम्) भद्द ! कहं तुम्हेहि अय्यउत्तस्स सङ्गमो जादो। [हा धिग् व्रीडिता खल्वस्मि मन्दभागा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं श्रुत्वा। आर्यपुत्रस्य विरहपरिश्रमोऽपि मे सफलः संवृत्त इति पश्यामि, यदि खल्वयं वानरः सत्यं मन्त्रयते। आर्यपुत्रस्यास्मिन् जनेऽनुक्रोश परिश्रमं च श्रुत्वा सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम्। भद्र ! कथं युष्माभिरार्यपुत्रस्य सङ्गमो जातः।

व्याख्या—सः रामः अनशनपरितप्तं अनाहारेण परितप्तं दुःखितं पाण्डुपीतवर्णं क्षामवक्त्रं कृशमुखं तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलं तव वराणां श्रेष्ठानां गुणानां चिन्तया वीतं परिसमाप्तं लावण्यस्य सौन्दर्यस्य लीला क्रिया यस्य तादृशं विगतधैर्यं धैर्यरहितं मनसिजशरदग्धं कामबाणपीडितं; बाष्पपर्याकुलाक्षं अश्रुपूरितनेत्रं हीयमानमहर्निशं क्षीयमाणं शरीरं वहति धारयति ॥ २१ ॥

आपके श्रेष्ठ गुणों के चिन्ता के कारण सौन्दर्यप्रसाधन से हीन, धैर्यरहित, कामबाणों से दग्ध, अश्रुपूरित नेत्रों वाले तथा क्षीयमाण शरीर को धारण करते हैं ॥ २१ ॥

सीता (मन में)—हाय ! धिक्कार है। आर्यपुत्र को ऐसा सोचता सुनकर मैं लज्जित (या दुःखी) हो गयी हूँ। आर्यपुत्र के लिये मेरे विरह का परिश्रम सफल होता देख रही हूँ। यदि यह वानर सही कह रहा है। आर्यपुत्र का इस जन के (मेरे) प्रति कृपा और परिश्रम (खेद) को सुनकर मेरा हृदय सुख और दुःख के बीच डोल रहा है। हे भद्र ! तुम लोगों के साथ आर्यपुत्र का मेल कैसे हुआ ?

हनूमान्—भवति ! श्रूयताम्—

हत्वा वालिनमाहवे कपिवरं त्वत्कारणादग्रजं
सुग्रीवस्य कृतं नरेन्द्रतनये ! राज्यं हरीणां ततः ।
राज्ञा त्वद्विचयाय चापि हरयः सर्वा दिशः प्रेषिता-
स्तेषामन्यतमोऽहमद्य गृध्रवचनात् त्वां देवि ! सम्प्राप्तवान् ॥२२॥

अपि च, ईदृशमिव ।

सीता—अहो अअरुणा क्खु इस्सरा एव्वं सोअन्तं अय्यउत्तं करअन्तो । [अहो अकरुणाः खल्वीश्वरा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं कुर्वन्तः ।]

अन्वयः—हे नरेन्द्रतनये ! त्वत्कारणात् कपिवरम् अग्रजं वालिनं हत्वा ततः हरीणां राज्यं सुग्रीवस्य कृतम् । त्वद्विचयाय राज्ञा च हरयः सर्वाः दिशः प्रेषिताः । हे देवि ! तेषाम् अहं गृध्रवचनात् अद्य त्वां सम्प्राप्तवान् अस्मि ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे नरेन्द्रतनये ! राजपुत्रि त्वत्कारणात् त्वन्निमित्तं कपिवरं वानरश्रेष्ठम् अग्रजं ज्येष्ठं वालिनं हत्वा ततः तदनन्तरं हरीणां वानराणां राज्यं सुग्रीवस्य कृतं सुग्रीवो राज्यपदे स्थापित इत्यर्थः । राज्ञा सुग्रीवेण च त्वद्विचयाय त्वदन्वेषणार्थं हरयो वानराः सर्वा दिशः प्रति प्रेषिताः । हे देवि ! तेषां वानराणाम् अहं हनूमान् गृध्रवचनात् जटायुसोदर्यसंपातेः वचनात् अद्य त्वां संप्राप्तवान् आगतोऽस्मि ॥ २२ ॥

हनूमान्—देवि सुनें—

हे राजपुत्रि ! आपके लिये कपिश्रेष्ठ ज्येष्ठ भाई बालि को मारकर वानरों का राज्य सुग्रीव के अधीन किया गया । राजा सुग्रीव ने आपके अन्वेषण के लिये सभी दिशाओं में वानरों को प्रेषित किया और उन्हीं (वानरों) में से (एक) मैं गृध्र संपाति के वचन से आज यहाँ आया हूँ ॥ २२ ॥

और यह ऐसा है ।

सीता—ईश्वर (देवता) निर्दय हैं जो आर्यपुत्र को ऐसा सोचते हुए बनाते हैं ।

हनूमान्—भवति मा विषादेन । रामो हि,

प्रगृहीतमहाचापो वृतो वानरसेनया ।
समुद्धर्तुं दशग्रीवं लङ्कामेवाभियास्यति ॥ २३ ॥

सीता—किण्णु खु सिविणो मए दिट्ठो । भद्द ! अवि सच्चं । ण आणामि । [किन्नु खलु स्वप्नो मया दृष्टः । भद्र ! अपि सत्यम् ? न जानामि ।]

हनूमान—(स्वगतम्) भोः ! कष्टम् ।

एवं गाढं परिज्ञाय भर्तारं भर्तृवत्सला ।
न प्रत्यायति शोकार्ता यथा देहान्तरं गता ॥ २४ ॥

अन्वयः—वानरसेनया वृतः प्रगृहीतमहाचापः रामः हि दशग्रीवं समुद्धर्तुं लङ्काम् अभियास्यति एव ॥ २३ ॥

व्याख्या—हे देवि ! वानरसेनया वृतः आवृतः प्रगृहीतमहाचापः धृतमहाकार्मुकः रामो हि निश्चयेन दशग्रीवं रावणं समुद्धर्तुं हन्तुमित्यर्थः लङ्कामभियास्यति आगमिष्यत्येव ॥ २३ ॥

अन्वयः—भर्तृवत्सला शोकार्ता एवं भर्तारं गाढं परिज्ञाय न प्रत्यायति यथा देहान्तरं गता (अस्तु) ॥ २४ ॥

व्याख्या—भर्तृवत्सला पतिपरायणा एवं गाढं दृढं भर्तारं परिज्ञाय अपि शोकार्ता सती मद्वचनं न प्रत्यायति विश्वसिति यथा देहान्तरं शरीरान्तरं गता अस्तु ॥ २४ ॥

हनूमान—देवि ! विषाद न करें । राम—

महान् धनुष धारण किये हुए तथा वानरी सेना से घिरे राम दशग्रीव को पराजित करने (मारने) के लिये लङ्का को आयेंगे ॥ २३ ॥

सीता—क्या मैंने स्वप्न देखा है ? भद्र ! क्या यह सत्य है । मैं नहीं जानती ।

हनूमान्—(मन में) हाय ! कष्ट है ।

भर्तृवत्सला सीता अपने पति को भली भाँति जानकर भी शोकार्त होने से (मेरी बातों पर) विश्वास नहीं करती जैसे दूसरे शरीर को प्राप्त कर गयी हों ॥ २४ ॥

(प्रकाशम्) भवति ! अयमिदानीं,

समुदितवरचापबाणपाणिं पतिमिह राजसुते ! तवानयामि ।
भव हि विगतसंशया मयि त्वं नरवरपार्श्वगता विनीतशोका ॥२५॥

सीता—भद्द ! एद मे अवत्थं सुणिअ अय्यउत्तो जह सोअपरवसो ण होइ, तह मे उत्तन्तं भणेहि । [भद्र ! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति, तथा मे वृत्तान्तं भण ।]

हनूमान्—यदाज्ञापयति भवति ।

सीता—गच्छ, कय्यसिद्धी होतु । (गच्छ कार्यसिद्धिर्भवतु ।)

हनूमान्—अनुगृहीतोऽस्मि । (परिक्रम्य) कथमिदानीं ममागमनं रावणाय निवेदयामि । भवतु, दृष्टम् ।

अन्वयः—हे राजसुते ! इह समुदितवरचापवाणपाणिं तव पतिम् आनयामि । मयि विगतसंशया भव । त्वं नरवरपार्श्वगता विनीतशोका (भविष्यसि) ॥ २५ ॥

व्याख्या—हे राजसुते ! राजपुत्रि ! इह अत्र लङ्कायां समुदितवरचापपाणिं उद्यतश्रेष्ठधनुर्बाणे पाणौ यस्य तादृशं सन्नद्धधनुर्बाणयुतं तव पतिं रामम् आनयामि । मयि [मम विषये विगतसंशया सन्देहरहिता भव । त्वं नरवरस्य रामस्य पार्श्वगता समीपस्थिता विगतशोका दुःखरहिता च भविष्यसीति शेषः ॥ २५ ॥

(प्रकट) देवि ! इस समय—

हे राजपुत्रि ! हाथ में उद्यत धनुर्बाण लिये तुम्हारे पति को इस लङ्का में लाता हूँ । मुझ पर संदेह मत करो । तुम राम के बगल में स्थित तथा शोकरहित होवोगी ॥ २५ ॥

सीता—भद्र ! मेरी इस अवस्था को सुनकर आर्यपुत्र जिससे शोकाधीन न हो वैसा मेरा वृत्तान्त बताना ।

हनूमान्—देवि ! जैसी आज्ञा है (वैसा ही कहूँगा) ।

सीता—जाओ ! कार्यसिद्धि हो ।

हनूमान्—अनुगृहीत हुआ । (घूमकर) इस समय अपना आना, रावण को कैसे सूचित करूँ । ठीक है, उपाय सूझ गया ।

परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं
सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकुटम् ।
करचरणविमर्दैः काननं चूर्णयित्वा
विगतविषयदर्पं राक्षसेशं करोमि ॥ २६ ॥

(निष्क्रान्तौ)

द्वितीयोऽङ्कः ।

अन्वयः—परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटं काननं करचरणविमर्दैः चूर्णयित्वा राक्षसेशं विगतविषयदर्पं करोमि ॥ २६ ॥

व्याख्या—परभृतगणेन कोकिलसमूहेन जुष्टं सेवितं पद्मषण्डैः कमलसमूहैरभिरामं मनोरमं सुरुचिरतरुषण्डं रमणीयपादपसमूहं तोयदानं मेघवर्णं त्रिकूटं नाम पर्वतं काननं तत्रस्थोपवनं च करचरणविमर्दैः हस्तपादसंचालनैः चूर्णयित्वा विध्वंशं कृत्वा राक्षसेशं रावणं विगतविषयदर्पं नष्टमदं करोमि । अहं रावणस्योपवनम् अशोकवनाभिधानं मर्दयित्वा रावणस्य गर्वनाशं करोमीत्याशयः ॥ २६ ॥

कोकिलसमूहों से नादित, कमलवनों से रमणीय वृक्षों वाले रावण के मेघतुल्य त्रिकूट कानन को हाथ-पैर से रौंदकर चूर्ण करके राक्षसेश रावण को विषयों के दर्प से विरहित करूँगा ॥ २६ ॥

(दोनों निकल जाते हैं)

द्वितीय अङ्क समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शङ्कुकर्णः)

शङ्कुकर्णः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु । [आर्य ! अहं विजया किं क्रियताम् ।]

शङ्कुकर्णः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लङ्केश्वराय भग्नप्रायाशोकवनिकेति । कुतः,

यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।

अन्वयः—प्रियमण्डना अपि देवस्य महिषी मन्दोदरी यस्यां स्नेहात् पल्लवान् न लुम्पति । यस्यां करैः अस्पृष्टबालद्रुमाः बीजन्तः अपि मलयानिलाः न वीजन्ति । शक्ररिपोः सा इयम् अशोकवनिका भग्ना इति विज्ञाप्यताम् ।। १ ।।

व्याख्या—प्रियमण्डना प्रियालङ्कारा अपि देवस्य राक्षसराजस्य रावणस्य महिषी पट्टराज्ञी मन्दोदरी यस्यामशोकवनिकायां स्नेहात् प्रेम्णः पल्लवान् न लुम्पति त्रोटयति । यस्यामशोकवनिकायां करैः हस्तैः बाल-

---

शङ्कुकर्ण—कौन यहाँ काञ्चनतोरणद्वार को अशून्य कर रहा है (पहरा दे रहा है);

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया हूँ । क्या करना है ?

शङ्कुकर्ण—विजये ! महाराज लङ्केश्वर से निवेदन करो कि अशोक वन प्रायः भग्न हो गया । क्योंकि—

राक्षसराज रावण की पट्टरानी मन्दोदरी अलङ्कारप्रिय होने पर भी प्रेमवश पल्लवों को (अलङ्कार के निमित्त) नहीं तोड़ती और रावण के भय से चल रहे (पंखा की तरह) मलयानिल जिसमें छोटे द्रुमों को स्पर्श

वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमाः
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ १ ॥

प्रतिहारी—अय्य ! णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स जणस्स अदिट्ठपुरुवो अअं सम्भमो । किं एदं । [आर्य ! नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्य जनस्यादृष्टपूर्वोऽयं संभ्रमः । किमेतद् ।]

शङ्कुकर्णः—भवति ! अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्रं निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इयं णिवेदेमि । (निष्क्रान्ता) [आर्य ! इयं निवेदयामि ।]

शङ्कुकर्णः—(पुरतो विलोक्य) अये अयं महाराजो लङ्केश्वर इत एवाभिवर्तते । य एषः,

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः ।
त्वरितमभिपतत्यसौ सरोषो युगपरिणामसमुद्यतो यथार्कः ॥ २ ॥

पादपान् लघुवृक्षान् अस्पृशन्तः मलयानिला मलयवायवः अपि भयात् वीजन्तः मन्दोदरीं सेवमाना अपि न वीजन्ति न सेवन्ते । शक्ररिपोः इन्द्रशत्रोः रावणस्य सा इयं प्रिया अशोकवनिका भग्ना जाता इति विज्ञाप्यतां निवेद्यताम् ॥ १ ॥

अन्वयः—अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः एष

नहीं करते हैं और नहीं चलते हैं। इन्द्रशत्रु रावण की वही (प्रिय) अशोकवाटिका विध्वंस कर दी गई, ऐसा जाकर सूचित करो ॥ १ ॥

प्रतीहारी—आर्य ! नित्य स्वामी के समीप रहते हैं। ऐसी घबराहट आप में कभी नहीं देखी गई। यह क्या है ?

शङ्कुकर्ण—देवि ! यह अत्यन्त त्वरा का कार्य है। शीघ्र सूचित करो। शीघ्र सूचित करो।

प्रतीहारी—आर्य ! यह सूचित करती हूँ (निकल जाती है)।

शङ्कुकर्ण—(सामने देखकर)—अरे ! यह महाराज लङ्केश्वर इधर ही आ रहे हैं। ये,

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रावणः ।)

रावणः—

कथं कथं भो नववाक्यवादिञ्छृणोमि शीघ्रं वद केन चाद्य ।
मुमूर्षुणा मुक्तभयेन धृष्टं वनाभिमर्दात् परिधर्षितोऽहम् ॥ ३ ॥

शङ्कुकर्णः—(उपसृत्य) जयतु महाराजः । अविदितागमनेन केनचिद् वानरेण ससंरम्भमभिमृदिताशोकवनिका ।

त्वरितम् अभिपतति यथा युगपरिणामसमुद्यतः अर्कः ॥ २ ॥

व्याख्या—अमलकमलसन्निभानि श्वेतकमलतुल्यानि उग्राणि तेजोद्दीप्तानि क्रोधयुक्तानि च नेत्राणि यस्यासौ कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः स्वर्णनिर्मिता दीपिका दीपास्तासां पुरोगः पुरोगामी एष रावणः त्वरितं शीघ्रतया झटिति क्रोधामर्षवशादित्यर्थः अभिपतति आयाति यथा युगपरिणामसमुद्यतः युगानां परिणामे समाप्तौ समुद्यतः अर्कः सूर्यः युगसमाप्तौ प्रलयकाले लोकविनाशाय यथा सूर्यः उग्रस्तीव्रतेजा भवति तथासौ क्रोधवशाद् रावण इत्यर्थः ॥ २ ॥

अन्वयः—भो नववाक्यवादिन् ! कथं कथं केन मुक्तभयेन मुमूर्षुणा च अद्य धृष्टं वनाभिमर्दात् अहं परिधर्षितः । इति शीघ्रं वद ॥ ३ ॥

व्याख्या—भो नववाक्यवादिन् । नवीनवाक्यवादिन् केनापि अद्यावधि

—श्वेतकमल तुल्य उग्रनेत्रों वाला स्वर्णदीपों के आगे-आगे चल रहा यह रावण आ रहा है जैसे युगों की समाप्ति के समय सूर्य उद्यत हो ।

(तदनन्तर जैसा कहा गया है वैसा रावण प्रवेश करता है)

रावण—

हे नवीन बात कहने वाले ! कैसे कैसे ? किस भयरहित तथा मृत्यु की इच्छा वाले ने धृष्टतावश वन के विध्वंस के द्वारा मेरी अवमानना की । शीघ्रता से बताओ ॥ ३ ॥

शङ्कुकर्ण (पास जाकर)—महाराज की जय हो । जिसके आने का कुछ पता नहीं ऐसे किसी वानर ने शीघ्रता से अशोक वन को विध्वंस कर डाला ।

रावणः—(सावज्ञम्) कथं वानरेणेति । गच्छ, शीघ्रं निगृह्यानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः)

रावणः—भवतु भवतु ।

युधि जगत्त्रयभीतिकृतोऽपि मे यदि कृतं त्रिदशैरिदमप्रियम् ।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिनः फलमतो निजशाठ्यसमुद्भवम् ॥४॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—जयतु महाराजः । महाराज ! महाबलः खलु स वानरः । तेन खलु मृणालवदुत्पाटिताः सालवृक्षाः, मुष्टिना भग्नो

वनाभिमर्दविषयिका एतादशी वार्ता न कथितेत्यर्थः । कथं कथमिति संभ्रमे । केन मुक्तभयेन त्यक्तभयेन भयरहितेन मुमूर्षुणा मृत्युकामेव ममाप्रियं कृत्वा न कोऽपि जीवितुमुत्सहेदित्यर्थः च अद्य धृष्टं धाष्टर्यादिव वनाभिमर्दाद् वनप्रध्वंसनादहं परिघर्षितः अवमानितः इति शीघ्रं वद कथय ॥ ३ ॥

अन्वयः—युधि जगत्त्रयभीतिकृतः अपि मे यदि त्रिदशैः इदम् अप्रियं कृतम् अमृताशिनः निजशाठ्यसमुद्भूतं फलम् अचिराद् अनुभवन्तु ॥ ४ ॥

व्याख्या—युधि समरे जगत्त्रयभीतिकृतः त्रैलोक्यभयदस्य अपि मे रावणस्य यदि त्रिदशैः देवैरिदं वनाभिमर्दरूपम् अप्रियमहितं कृतम् अतः अमृताशिनः अमृतभोजिनः देवाः निजशाठ्यसमुद्भवं स्वकौटिल्यजन्यं फलम् अचिरात् शीघ्रमेवानुभवन्तु प्राप्नुवन्तु ॥ ४ ॥

रावण—(अवज्ञापूर्वक) क्या वानर ने ? जाओ शीघ्र पकड़ कर लाओ ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा ?

रावण—ठीक है—

समर में त्रैलोक्य के भयदाता मुझ रावण का भी देवताओं ने इस प्रकार अप्रिय किया है तो वे अमृतभोजी देवता अपनी शठता के फल को शीघ्र भोगें ॥ ४ ॥

(प्रवेश कर)

शङ्कुकर्ण—महाराज की जय हो । महाराज ! वह वानर महाबलशाली है । उसने सालवृक्षों को मृणाल के समान उखाड़ डाला । दारु पर्वत

दारुपर्वतकः, पाणितलाभ्यामभिमृदितानि लतागृहाणि, नादेनैव विसंज्ञीकृताः प्रमदवनपालाः। तस्य ग्रहणसमर्थं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः।

अस्मदीयैर्महावृक्षैरस्मदीया महाबलाः।
क्षिप्रमेव हतास्तेन किंकरा द्रुमयोधिना ॥ ५ ॥

रावणः—तेन हि किङ्कराणां सहस्रं बलमाज्ञापय वानरग्रहणाय।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः।

रावणः—कथं हता इति। तेन हि कुमारमक्षमाज्ञापय वानर-ग्रहणाय।

अन्वयः—अस्मदीयैः महावृक्षैः द्रुमयोधिता तेन अस्मदीयः महाबलाः किंकराश्च क्षिप्रम् एव हताः ॥ ५ ॥

व्याख्या—अस्मदीयैः अस्माकमुद्याने स्थितैः महावृक्षैः विशालवृक्षैः द्रुमयोधिना वृक्षैः युद्ध कुर्वता तेन वानरेण अस्मदीयः अस्माकं महाबलं महती सेना किंकराश्च किंकरा नाम बलशालिनश्च क्षिप्रमेव झटित्येव हताः ॥ ५ ॥

को मुट्ठी से चूर्ण कर डाला। लतागृहों को दोनों हथेलियों से मसल डाला। प्रमद वन के रक्षकों अपने शब्द से ही बेहोश कर डाला। महाराज उसको पकड़ने में समर्थ सेना को भेजें।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल कर तथा प्रवेश कर) महाराज की जय हो।

पेड़ों से प्रहार करने वाले उस वानर ने हमारे ही पेड़ों से हमारी सेना और किंकरों को शीघ्रता से मार डाला ॥ ५ ॥

रावण—क्या मार डाले गये? तो कुमार अक्ष को वानर को पकड़ने की आज्ञा दो।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—(सोचकर)

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

रावणः—(विचिन्त्य)—

कुमारो हि कृतास्त्रश्च शूरश्च बलवानपि ।
प्रसह्य चापि गृह्णीयाद्धन्याद् वा तं वनौकसम् ॥ ६ ॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—अनन्तरीयं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः ।

रावणः—किमर्थम् ?

शङ्कुकर्णः—श्रोतुमर्हति महाराजः । कुमारं वानरमभिगच्छन्तं दृष्ट्वा महाराजेनानाज्ञापिता अप्यनुगताः पञ्च सेनापतयः ।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततस्तानभिद्रुतान् दृष्ट्वा किञ्चिद् भीतेन इव तोरणमाश्रित्य काञ्चनपरिघमुद्यम्य निपातितास्तेन हरिणा पञ्च सेनापतयः ।

अन्वयः—कुमारः हि कृतास्त्रः च शूरः च बलवान् अपि । प्रसह्य च अपि तं वनौकसं गृह्णीयात् वा हन्यात् ॥ ६ ॥

व्याख्या—कुमारः अक्षकुमारः हि निश्चयेन कृतास्त्रः अस्त्रविद्यायां कृताभ्यासः शूरः वीरः बलवान् बलशाली अपि अस्तीति शेषः । सः प्रसह्य चापि बलादपि तं वनौकसं वनमोकः सद्म यस्य तं वानरं गृह्णीयात् ग्रहणं कुर्यात् वा हन्यात् मारयेत् । वानरस्य ग्रहणे मारणे च स समर्थं इति ॥६॥

अक्षकुमार अस्त्र-विद्या में विपुण, वीर तथा बलवान् है । वह बानर क बलपूर्वक पकड़ लेगा या मार डालेगा ॥ ६ ॥

(प्रवेश कर)

शङ्कुकर्ण—महाराज अपनी प्रकृष्ट सेना को आदेश दें ।

रावण—क्यों ?

शङ्कुकर्ण—महाराज सुनें ! वानर के पास अक्षकुमार के जाते समय महाराज की आज्ञा के बिना भी पाँच सेनापति उनके पीछे-पीछे गये ।

रावण—तब क्या हुआ ?

शङ्कुकर्ण—तो उन्हें आते देख कुछ डरे से की तरह तोरण पर चढ़कर

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततः कुमारमक्षं

क्रोधात् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं
प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम् ।
तान् बाणान् निर्विधुन्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
कण्ठे सङ्गृह्य धृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान ॥७॥

रावणः—(सरोषम्) आः, कथं कथं निर्जघानेति !

अन्वयः—क्रोधात् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तं प्रावृट्कालाभ्रकल्पं (कुमारं) मुदिततरमुखः कपिः तान् बाणान् निर्विधुन्वन् सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा कण्ठे संगृह्य धृष्टं मुष्टिना निर्जघान ॥ ७ ॥

व्याख्या—क्रोधात् कोपात् संरक्तनेत्रमरुणनयनं त्वरिततरहयं शीघ्रगामिहययुक्तं स्यन्दनं रथं वाहयन्तं चालयन्तं परमलघुतरम् अत्यन्तक्षिप्रतया बाणजालान् बाणसमूहान् वमन्तम् उद्गिरन्तं प्रावृट्कालाभ्रकल्पं वर्षकालीनमेघतुल्यं श्यामवर्णमुग्रं वा कुमारमक्षं मुदिततरमुखः प्रसन्नवदनः कपिः तान् अक्षप्रहितान् बाणान् विधुन्वन् त्रोटयन् सहसा शीघ्रतया तद्रथं कुमारस्य रथं लङ्घयित्वा आक्रम्य भङ्क्त्वा वा तं कण्ठे संगृह्य गृहीत्वा धृष्टं हठात् मुष्टिना मुष्टिप्रहारेण निर्जघान जघान ॥ ७ ॥

स्वर्णपरिघ को उठाकर उस बानर ने पाँचों सेनापतियों को (मार कर) गिरा दिया ।

रावण—तब ? तब ?

शङ्कुकर्ण—तदनन्तर कुमार अक्ष को (मार डाला) ।

क्रोध से रक्त नेत्रवाले, शीघ्रगामी हयो से संयुक्त रथको चलाने वाले, वर्षाकालीन मेघ के समान अत्यन्त क्षिप्रता से बाण वर्षा कर रहे अक्षकुमार को प्रसन्न वदन धृष्टतापूर्वक गला पकड़ कर मुक्के से मार डाला ॥ ७ ॥

रावण—(क्रोध से) क्या मार डाला ?

तिष्ठ त्वमहमेवैनमासाद्य कपिजन्तुकम् ।
एष भस्मीकरोम्यस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् ॥ ८ ॥

शङ्कुकर्णः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । कुमारमक्षं निहतं श्रुत्वा क्रोधाविष्टहृदयः कुमारेन्द्रजिदभिगतवांस्तं वनोकसम् ।

रावणः—तेन हि गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः)

रावणः—कुमारो हि कृतास्त्रश्च,

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा ।
तथापि क्षुद्रकर्मेदं मह्यमीषन्मनोज्वरः ॥ ९ ॥

अन्वयः—त्व तिष्ठ । एष अहम् एव एनं कपिजन्तुकम् आसाद्य क्रोधानलकणैः क्षणात् भस्मीकरोमि ॥ ८ ॥

व्याख्या—त्व तिष्ठ अत्रैव स्थिरो भव । एष अहं रावणः एनं कपिजन्तुकं तुच्छकपिम् आसाद्य प्राप्य क्रोधानलकणैः कोपाग्निस्फुलिङ्गैः क्षणात् शीघ्रमेव भस्मीकरोमि ॥ ८ ॥

अन्वयः—युधि वीराणां जयः बधः वा अवश्यम् । तथापि इदं क्षुद्रकर्म (इति) मह्यम् ईषन्मनोज्वरः ॥ ९ ॥

तुम रुको । यह मैं उस तुच्छ कपि के पास जाकर अपने क्रोधाग्नि के कणों से क्षणमात्र में उसे भस्म करता हूँ ॥ ८ ॥

शङ्कुकर्ण—महाराज प्रसन्न हों । प्रसन्न हों । अक्षकुमार को मारा गया सुनकर क्रोध से अभिभूत होकर कुमार इन्द्रजित् उस बानर के पास गया हुआ है ।

रावण—तो पुनः जाओ । वृत्तान्त का ज्ञान करो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा (निकल जाता है) ।

रावण—कुमार (इन्द्रजित्) अस्त्रविद्या में निपुण है ।

युद्ध में जय या मृत्यु अवश्यम्भावी (अर्थात् अनिश्चित) है । किन्तु (बानर पकड़ने का) यह छोटा कार्य मुझे मन में व्यथा कर रहा है ॥ ९ ॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—जयतु महाराजः । जयतु लङ्केश्वरः ! जयतु भद्रमुखः !

संवृत्तं तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च ।
ततः स वानरः शीघ्रं बद्धः पाशेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥

रावणः—कोऽत्र विस्मय इन्द्रजिता शाखामृगो बद्ध इति । कोऽत्र भोः !

(प्रविश्य)

राक्षसः—जयतु महाराजः !

व्याख्या—युधि समरे वीराणां युद्धकर्मणि संलग्नानां वीराणां शूराणां जयः विजयः बधः मृत्युर्वा अवश्यम् अस्वाधीनमित्यर्थः । न हि निश्चयेन जयः पराजयः वा भविष्यतीति इति कथितुं शक्यते । उभावपि । संभाव्येते । तथापि इदं बानरग्रहणरूपं क्षुद्रकर्म तुच्छकार्यं मह्यं रावणाय ईषन्मनोज्वरः किञ्चिन्मनःसंतापकारकम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—कुमारस्य तस्य च तुमुलं युद्धं संवृत्तम् । ततः सांप्रतं स वानरः पाशेन शीघ्रं बद्धः ॥ १० ॥

व्याख्या—कुमारस्य मेघनादस्य तस्य हनुमतश्च तुमुलं घोरं युद्धं संवृत्तमभूत् । ततस्तदनन्तरं साम्प्रतम् इदानीं स वानरः हनूमान् पाशेन बन्धेन शीघ्रं बद्धः ॥ १० ॥

(प्रवेश कर)

शङ्कुकर्ण—महाराज की जय हो । लङ्केश्वर की जय हो । भद्रमुख की जय हो ।

कुमार मेघनाद और उसका घोर युद्ध हुआ । तदनन्तर अब वह वानर शीघ्रता से बन्धन में बांध लिया गया है ॥ १० ॥

रावण—इसमें क्या आश्चर्य है कि इन्द्रजित् ने वानर को बांध लिया । कौन यहाँ है ?

(प्रवेश कर)

राक्षस—महाराज की जय हो ।

रावणः—गच्छ विभीषणस्तावदाहूयताम् !

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः)

रावणः—त्वमपि तावद् वानरमानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः ।)

रावणः—(विचिन्त्य) भोः कष्टम् ।

अचिन्त्या मनसा लङ्का सहितैः सुरदानवैः ।
अभिभूय दशग्रीवं प्रविष्टः किल वानरः ॥ ११ ॥

अपि च,

जित्वा त्रैलोक्यमाजौ ससुरदनुसुतं यन्मया गर्वितेन
क्रान्त्वा कैलासमीशं स्वगणपरिवृतं साकमाक्रम्य देव्या ।

अन्वयः—लङ्का सहितैः सुरदानवैः मनसा अचिन्त्या । दशग्रीवम् अभिभूय वानरः किल प्रविष्टः ॥ ११ ॥

व्याख्या—लङ्का एषा लङ्का नाम मम राजधानी सहितैः समग्रैः एकीभूतैः सुरदानवैः देवराक्षसैः मनसा अपि अचिन्त्या ते मनसा अपि इमां प्रवेष्टुं न शक्यन्ते किन्तु दशग्रीवं रावणं माम् अभिभूय तिरस्कृत्य वानरः किल इमां नगरीं प्रविष्टः ॥ ११ ॥

अन्वयः—आजौ ससुरदनुसुतं त्रैलोक्यं जित्वा गर्वितेन मया यत् कैलासं क्रान्त्वा देव्या साकं स्वगणपरिवृतम् ईशम् आक्रम्य तस्मात् प्रसादं लब्ध्वा

रावण—जाओ । विभीषण को बुला लाओ ।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा ! (निकल जाता है)

रावण—तो तुम भी वानर को लाओ ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा ! (निकल जाता है) ।

रावण—(सोचकर) अहा ! कष्ट है ।

सभी देवता और राक्षस मिलकर भी लंका के बारे में नहीं सोच सकते (उस मेरी नगरी लंका में मुझ) रावण को तिरस्कृत कर वानर प्रवेश कर गया ॥ ११ ॥

और—

युद्ध में देवासुर सहित त्रैलोक्य को जीतकर गर्वित मैंने जो देवी पार्वती

लब्ध्वा तस्मात् प्रसादं पुनरगसुतया नन्दिनानादृतत्वाद् ।
दत्तं शप्तं च ताभ्यां यदि कपिविकृतिच्छद्मना तन्मम स्यात् ॥१२॥

(ततः प्रविशति विभीषणः ।)

विभीषणः—(सविमर्शम्) अहो नु खलु महाराजस्य विपरीता बुद्धिः संवृत्ता । कुतः,

मयोक्तो मैथिली तस्मै बहुशो दीयतामिति ।
न मे शृणोति वचनं सुहृदां शोककारणात् ॥ १३ ॥

पुनः अनादृतत्वात् अगंसुतया शप्तं नन्दिना च ताभ्यां यत् शप्तं कपिविकृतिच्छद्मना मम स्यात् ॥ १२ ॥

व्याख्या—आजौ युद्धे ससुरदनुसुतं सदेवासुरं त्रैलोक्यं लोकत्रयं जित्वा गर्वितेन त्रैलोक्यविजयोन्मत्तेन मया यत् कैलाशं कैलासं नाम शिवनिवासस्थलं पर्वतं क्रान्त्वा उत्थाप्येत्यर्थः देव्या पार्वत्या साकं सह स्वगणपरिवृतं गणैः सह युक्तं ईशं महादेवं आकम्प्य कम्पयित्वा तस्मात् कारणात् दत्तं प्रसादं वरदानं लब्ध्वा प्राप्य महादेवेनेति शेषः पुनः अनादृतत्वात् नन्दिना तन्नामकशिवगणेन अगसुतया पर्वतराजपुत्र्या च ताभ्यां यत् शप्तं यत् कपिभिरेवं लङ्काविनाशो भविष्यतीति यदि ताभ्यां दत्तः शाप एवं कपिविकृतिच्छद्मना कपिरूपेण परिणतः मम कृते स्यात् ॥ १२ ॥

और गणों सहित शिव को हिलाकर कैलासपर्वत को उठा लिया और उसके लिये शंकर से वरदान पाया (किन्तु अनादर करने के कारण) जो नन्दी और पार्वती ने शाप दिया क्या वही शाप तो मेरे लिये कपिरूप के बहाने नहीं आया है ॥ १२ ॥

(तदनन्तर विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण (विचार कर)—अहा ! महाराज की उलटी बुद्धि हो गई है । क्योंकि—

(उपेत्य) जयतु महाराजः !

रावणः—विभीषण ! एह्येहि । उपविश ।

विभीषणः—एष एष उपविशामि । (उपविशति)।

रावणः—विभीषण ! निर्विण्णमिव त्वां लक्षये !

विभीषणः—निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य ।

रावणः—छिद्यतामेषा कथा । त्वमपि तावद् वानरमानय ।

विभीषणः—यदाज्ञापयति महाराजः ! (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति राक्षसैर्गृहीतो हनूमान् ।)

अन्वयः—मैथिली दीयताम् इति मया तस्मै बहुशः उक्तः । सुहृदां शोककारणात् मे वचनं न शृणोति ॥ १३ ॥

व्याख्या—तस्मै रामाय मैथिली जानकी दीयताम् इति मया बहुशः बहुवारं स रावणः उक्तः किन्तु मित्राणां सुहृदां शोककारणात् दुःखहेतुत्वात् सीताया अप्रदाने अवश्यमेव रक्षसां विनाशस्तत्कारणात् मे वचनं सीताप्रदानरूपं न शृणोति गृह्णाति स्वीकरोति ॥ १३ ॥

उन राम को सीता दे दीजिये । ऐसा मैंने बहुत बार इन (महाराज रावण) से कहा । पर मित्रों के शोक के लिये मेरे वचन को स्वीकार नहीं करते ॥ १३ ॥

(पास जाकर)

महाराज की जय हो ।

रावण—विभीषण ! आओ । आओ । बैठो ।

विभीषण—यह बैठ रहा हूँ (बैठ जाता है)।

रावण—विभीषण ! तुझे दुःखी जैसा देख रहा हूँ ।

विभीषण—कही बात स्वीकार न करने वाले स्वामी के नौकर दुःखी ही होते हैं ।

रावण—इस कथा को बन्द करो । तुम भी उस वानर को लाओ ।

विभीषण—जैसी महाराज की आज्ञा । (चला जाता है)।

(तदनन्तर राक्षसों से पकड़े गये हनूमान् प्रवेश करते हैं)

सर्वे—आः इत इतः ।

हनुमान्—

नैवाहं धर्षितस्तेन नैर्ऋतेन दुरात्मना ।
स्वयं ग्रहणमापन्नो राक्षसेशदिदृक्षया ॥ १४ ॥

(उपगम्य) भो राजन् ! अपि कुशली भवान् ?

रावणः—(सावज्ञम्) विभीषण ! किमस्य तत् कर्म ?

विभीषणः—महाराज ! अतोऽप्यधिकम् ।

रावणः—कथं त्वमवगच्छसि ?

विभीषणः—प्रष्टुमर्हति महाराजः कस्त्वमिति ।

रावणः—भो वानर ! कस्त्वम् ? केन कारणेन घर्षितोऽस्माकमन्तःपुरं प्रविष्टः ।

अन्वयः—अहं तेन दुरात्मा नैर्ऋतेन न एव धर्षितः (अपितु) राक्षसेशदिदृक्षया स्वयं ग्रहणम् आपन्नः ॥ १४ ॥

व्याख्या—अह तेन दुरात्मना दुष्टेन पापिनेत्यर्थः नैर्ऋतेन राक्षसेन मेघनादेन नैव धर्षितः पराजितः अपितु राक्षसेशदिदृक्षया राक्षसराजरावणस्य दर्शनेच्छया स्वयमात्मनैव स्वेच्छयैवेत्यर्थः ग्रहणं बन्धनमापन्नः ॥ १४ ॥

सभी—इधर-उधर ।

मैं उस पापी राक्षस मेघनाद से पराजित नहीं हुआ अपितु राक्षसराज रावण को देखने की इच्छा से स्वयं पकड़ मे आ गया ॥ १४ ॥

(पास जाकर) हे राजन् ! आप कुशल से तो हैं ?

रावण (तिरस्कारपूर्वक)—क्या इसी ने वह कार्य (खनविध्वंसादि) किया है ?

विभीषण—महाराज ! उससे भी अधिक ।

रावण—कैसे तुम जानते हो ?

विभीषण—महाराज पूछें कि तुम कौन हो ?

रावण—ऐ वानर ! तुम कौन हो ? किस कारण तुमने हमारे अन्तःपुर में प्रवेश किया और धर्षण किया ।

हनूमान्—भोः ! श्रूयताम् ,

अञ्जनायां समुत्पन्नो मारुतस्यौरसः सुतः ।
प्रेषितो राघवेणाहं हनूमान् नाम वानरः ॥ १५ ॥

विभीषणः—महाराज ! किं श्रुतम् ?

रावणः—किं श्रुतेन ।

विभीषणः—हनूमन् ! किमाह तत्रभवान् राघवः ।

हनूमान्—भोः श्रूयतां रामशासनम् ।

रावणः—कथं कथं रामशासनमित्याह । आः हन्यतामयं वानरः ।

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ! सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः। अथवा रामस्य वचनं श्रुत्वा पश्चाद् यथेष्टं कर्तुमर्हति महाराजः !

रावणः—भो वानर ! किमाह स मानुषः ?

अन्वयः—अहं मारुतस्य अञ्जनायां समुत्पन्न औरसः सुतः राघवेण प्रेषितः हनुमान् नाम वानरः ॥ १५ ।

व्याख्या—अहं मारुतस्य वायोः अञ्जनायां अञ्जनागर्भे समुत्पन्नः जातः औरसः सुतः पुत्रः राघवेण रामेण प्रेषितः त्वत्सकाशं प्रेषितः हनुमान् नाम वानरः अस्मीति शेषः ॥ १५ ॥

हनुमान—सुने !

मैं अञ्जना में उत्पन्न वायु का औरसपुत्र हनुमान हूँ जिसे रामने आपके पास भेजा है ॥ १५ ॥

विभीषण—महाराज ! क्या आपने सुना ?

रावण—सुनने से क्या ।

विभीषण—हनूमन् ! श्रीमान् राम ने क्या कहा ?

हनूमान्—राम के आदेश को सुनें—

रावण—क्या 'राम के आदेश' को कहा ? इस वानर को मार डालो ।

विभीषण—महाराज प्रसन्न हों प्रसन्न हों । दूत सभी अपराधों में अवध्य होते हैं । अथवा राम के वचन को सुनकर बाद में जो इच्छा हो करें ।

रावण—ऐ बानर ! उस मनुष्य ने क्या कहा ?

हनूमान्—भोः श्रुयतां,

वरशरणमुपेहि शंकरं वा प्रविश च दुर्गमं रसातलं वा ।
शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं यमसदनं प्रतियापयाम्यहं त्वाम् ॥ १६ ॥

रावणः—हः हः हः !

दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा भयाभिभूता
दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिनः समस्ताः ।
पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो
भो ! रामः कथमभियाति मानुषो माम् ॥ १७ ॥

अन्वय—शंकरं वरशरणम् उपेहि वा दुर्गमं रसातलं च प्रविश वा अहं त्वां शरवरपरिभिन्नसर्वंगात्रं यमसदनं प्रतियापयामि ॥ १६ ॥

व्याख्या—त्वं शंकरं महादेवं वरशरणं श्रेष्ठरक्षकम् उपेहि गच्छ वा दुर्गमं गन्तुमशक्यं रसातलं रसातलाख्यं पातालं वा प्रविश अहं शरवरपरिभिन्नसर्वंगात्रं शरवरैः श्रेष्ठवाणैः परिभिन्नानि शकलीकृतानि सर्वंगात्राणि सर्वंशरीराणि यस्य तथाभूतं त्वां यमसदनं यमलोकं प्रतियापयामि प्रेषयामि । शंकररक्षणे पातालप्रवेशे वा तव परित्राणं न विद्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः—दिव्यास्त्रैः भयाभिभूताः समस्ताः त्रिदशगणाः दैत्येन्द्राः मम वशवर्तिनः अपहृतपुष्पकः पौलस्त्यः अवसन्नः भोः । मानुषः रामः कथं माम् अभियाति ॥ १७ ॥

व्याख्या—मम रावणस्य दिव्यास्त्रैः ब्रह्मास्त्रादिभिः भयाभिभूताः भयेन

हनूमान्—आप सुनें—

तुम शंकर की श्रेष्ठ शरण मे चले जाओ या दुर्गम रसातल में चले जाओ मैं तुम्हें अपने श्रेष्ठ वाणो से क्षत-विक्षत शरीर वाला बनाकर यमलोक पहुँचा दूंगा ॥ १६ ॥

रावण—हः हः हः !

मेरे दिव्यास्त्रों से भयभीत सभी देवता तथा राक्षस मेरे वशवर्ती हैं । जिनका पुष्पक विमान छीन लिया है ऐसे पोलस्त्य कुबेर भी विवश है । ऐसे मेरे ऊपर (सामान्य) मनुष्य राम कैसे आक्रमण कर रहा है ? ॥ १७ ॥

हनूमान्—एवंविधेन भवता किमर्थं प्रच्छन्नं तस्य दारापहरणं कृतम्?

विभीषणः—सम्यगाह हनुमान्।

अपास्य मायया रामं त्वया राक्षसपुङ्गव !।
भिक्षुवेषं समास्थाय च्छलेनापहृता हि सा ॥ १८ ॥

रावणः—विभीषण ! किं विपक्षपक्षमवलम्बसे ?

विभीषणः—

निर्जिताः मर्दिताः समस्ताः सर्वे त्रिदशगणाः देवसमूहाः दैत्येन्द्राः दितिवंशजाः राक्षसाः वशवर्तिनः आज्ञानुकारिणः। अपहृतपुष्पकः अपहृतः अपहृत्यायत्तीकृतः पुष्पकाख्यविमानो यस्य स पौलस्त्यः कुबेरः अवसन्नः शिथिलः पराजित इत्यर्थः। एतादृशपराक्रमशालिनं माम् मानुषः रामः कथम् अभियाति आक्रमितुमागच्छति ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे राक्षसपुङ्गव ! त्वया मायया रामम् अपास्य भिक्षुवेशं समास्थाय सा छलेन अपहृता ॥ १८ ॥

व्याख्या—हे राक्षसपुङ्गव ! राक्षसश्रेष्ठ ! त्वया मायया मारीचं मायामृगरूपेण प्रयुज्य राममाश्रमादपास्य दूरीकृत्य भिक्षुवेषं भिक्षुरूपं समास्थाय आश्रित्य छलेन कैतवेन सा सीता अपहृता। त्वया दारचौर्यं कृतमित्यर्थः ॥ १८ ॥

हनूमान्—ऐसे सामर्थ्यशाली आपने क्यों चोरी से उनकी स्त्री का अपहरण किया ?

विभीषण—हनूमान् ने ठीक कहा।

हे राक्षसराज ! आपने माया के द्वारा राम को (आश्रम से) हटाकर भिक्षुरूप धारण कर छल से सीता का हरण किया ॥ १८ ॥

रावण—विभीषण ! क्या विपक्ष का पक्ष ले रहे हो ?

विभीषण—

हे राजन् ! प्रसन्न होइये। मेरी हितकारी बात को सुनिये। सीता को लौटा दीजिये। आप राक्षसराज के द्वारा इस कुल का नष्ट होना मैं नहीं चाहता ॥ १९ ॥

प्रसीद राजन् ! वचनं हितं मे प्रदीयतां राघवधर्मपत्नी ।
इदं कुलं राक्षसपुङ्गवेन त्वया हि नेच्छामि विपद्यमानम् ॥ १९ ॥

रावणः—विभीषण ! अलमलं भयेन ।

कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते ॥ २० ॥

हनूमान्—भो रावण ! विपद्यमानभाग्येन भवता किं युक्तं राघवमेव वक्तुम् । मा तावद् भोः !

अन्वयः—हे राजन् ! प्रसीद । मे हितं वचनं (शृणु)। राघवधर्मपत्नी प्रदीयताम् । त्वया राक्षसपुंगवेव इदं कुलं विपद्यमानं न इच्छामि ॥ १६ ॥

व्याख्या—हे राजन् ! प्रसीद कृपां कुरु । मे हितं हितकारि वचनं वाक्यं शृण्विति शेषः । राघवधर्मपत्नी सीता प्रदीयताम् । त्वया राक्षसपुंगवेन राक्षसराजेन रावणेन इदमस्माकं कुलं विपद्यमानं विपत्तिग्रस्तं विनश्यन्तं नेच्छामि न कामये । त्वत्कृतसीताहरणदोषेणेदमस्माकं कुलं न यथा विनश्येत् तथा कुरु ॥ १६ ॥

अन्वयः—लम्बसटः सिंहः मृगेण कथं विनिपात्यते । वा मत्तः सुमहान् गजः शृगालेन निहन्यते ?

व्याख्या—लम्बसटः लम्बकेसरः सिंहः मृगेण स्वभावभीरुपशुना हरिणेन कथं निहन्यते विनिपात्यते पराजीयते अथवा मत्तः मदविह्वलः सुमहान् विशालः गजः शृगालेन निहन्यते किम् ? नैतत् सम्भवमित्यर्थः ॥ २० ॥

रावण—विभीषण ! डरो मत । डरो मत ।

लम्बी सटाओं वाला सिंह मृग से कैसे गिराया जायेगा अथवा मदमत्त विशाल गज को शृगाल क्या मार देगा ?

हनूमान्—हे रावण ! विपत्तिग्रस्त भाग्य वाले आपको राम के विषय में ऐसा कहना क्या उचित है ? नहीं—

नक्तञ्चरापसद ! रावण ! राघवं तं
वीराग्रगण्यमतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पम् ।
प्रक्षीणपुण्य ! भवता भुवनैकनाथं
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार ! नीचैः ! ॥ २१ ॥

रावणः—कथं कथं नामाभिधत्ते । हन्यतामयं वानरः । अथवा दूतवधः खलु वचनीयः । शङ्कुकर्ण ! लाङ्गूलमादीप्य विसृज्यतामयं वानरः ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । इत इतः ।

रावणः—अथवा एहि तावत् ।

हनूमान्—अयमस्मि ।

रावणः—अभिधीयतां मद्वचनात् स मानुषः ।

अन्वयः—नक्तञ्चरापसद ! प्रक्षीणपुण्य ! गतसार ! तम् अतुलं वीराग्रगण्यं त्रिदशेन्द्रकल्पं भुवनैकनाथं राघवं किम् एवं नीचैः वक्तुम् उचितम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—नक्तञ्चरापसद निशाचराधम ! रावण प्रक्षीणपुण्य पुण्यविरहित ! गतसार सामर्थ्यविहीन रावण ! तम् अतुलं निष्प्रतिद्वन्द्वं वीराग्रगण्यं वीरप्रधानं त्रिदशेन्द्रकल्पं देवराजेन्द्रतुल्यं भुवनैकनाथं सकललोकाधिपतिं राघवं प्रति किमेवं नीचैः वक्तुमुचितम् । तव कथनं नितरां निन्दनीयमित्यर्थः ॥ २१ ॥

हे राक्षसाधम ! नष्टपुण्य ! सामर्थ्यहीन रावण ! अद्वितीय वीराग्रगण्य देवेन्द्र तुल्य समस्त लोकों के एकमात्र स्वामी राम के प्रति तुम्हारा इस प्रकार नीच वचन कहना क्या उचित है ? ॥ २१ ॥

रावण—क्या मेरा नाम ले रहा है । इस वानर को मार डालो । अथवा दूत का मारना निन्दनीय है । पूंछ जलाकर इस वानर को छोड़ दो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा । इधर-इधर ।

रावण—अथवा इधर आओ ।

हनूमान्—यह हूं ।

रावण—मेरे वचन से (मेरे कहने को) उस मनुष्य से कहना—

अभिभूतो मया राम ! दारापहरणादसि ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान् ॥ २२ ॥

हनूमान्—अचिराद्द्रक्ष्यसि,

अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां रघुवरकार्मुकनादनिर्जितस्त्वम् ।
हरिगणपरिपीडितैः समन्तात् प्रमदवनैरभिसंवृतां स्वलङ्काम् ॥२३॥

रावणः—आः निर्वास्यतामयं वानरः ।

राक्षसः—इत इतः ।

(रक्षोभिः सह निष्क्रान्तो हनूमान् ।)

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ! अस्ति काचिद् विवक्षा महाराजस्य हितमन्तरेण ।

अन्वयः—हे राम ! मया दारापहरणात् अभिभूतः असि । यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति मे महान् रणः दीयताम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे राम ! मया रावणेन दारापहरणात् सीताहरणात् अभिभूतः तिरस्कृतः पराजितः, असि । यदि ते तव रामस्य धनुःश्लाघा धनुषो गर्वं विश्वासः अस्ति तर्हि मे महान् रणः युद्धं प्रदीयताम् । पौरुषमाश्रित्य मया सह युध्यस्व ॥ २२ ॥

अन्वयः—रघुवरकार्मुकवादनिर्जितः त्वम् अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां समन्तात् हरिगणपरिपीडितैः प्रमदवनैः अभिसंवृतां स्वलङ्कां द्रक्ष्यसि ॥ २३ ॥

हे राम ! स्त्री के अपहरण द्वारा मेरे से तिरस्कृत हुये हो । यदि तुम्हें धनुष पर गर्व हो तो मुझे बड़ा युद्ध दो (मेरे साथ युद्ध करो) ॥ २२ ॥

हनुमान्—तुम शीघ्र ही राघव के धनुष के शब्द से निर्जित होकर नष्ट प्राकार, गोपुर एवं अट्टवाली तथा वानरों से चारों ओर से ध्वस्त प्रमदवनों से युक्त अपनी लङ्का को देखोगे ॥ २३ ॥

रावण—इस वानर को निकालो ।

राक्षस—इधर-इधर (आवो) ।

(हनूमान् राक्षसों के साथ निकल जाते हैं)

विभीषण—महाराज प्रसन्न हों । प्रसन्न हों । आपके हित के लिये मुझे कुछ कहना है ।

रावणः—उच्यतां, तच्छ्रेयो वयमपि श्रोतारः।

विभीषणः—सर्वथा राक्षसकुलस्य विनाशोऽभ्यागत इति मन्ये।

रावणः—केन कारणेन ?

विभीषणः—महाराजस्य विप्रतिपत्त्या।

रावणः – का मे विप्रतिपत्तिः ?

विभीषणः—ननु सीतापहरणमेव।

रावणः—सीतापहरणेन को दोषः स्यात् ?

विभीषणः—अधर्मश्च।

रावणः—च शब्देन सावशेषमिव ते वचनम् ! तद्ब्रूहि !

विभीषणः—तदेव ननु।

व्याख्या—रघुवरवरकार्मुकनादनिर्जितः रामधनुषः शब्देन पराजितः त्वम् अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां अभिहताः नाशिता वप्राः प्राकाराः गोपुराणि नगरद्वाराणि अट्टाः प्रासादाश्च यस्यास्तां तथोक्तां नाशितप्राकारनगरद्वार-प्रासादमालिनीं समन्तात् हरिगणप्रपीडितैः वानरसमूहनाशितैः प्रमदवनैः गृहोद्यानैः अभिसंवृतां व्याप्तां स्वलङ्कां अचिराद् शीघ्रमेव द्रक्ष्यसि ॥ २३ ॥

रावण—कहो ! उस हित को हम भी सुनेंगे।

विभीषण—मैं समझता हूँ कि राक्षस कुल का सर्वथा विनाश आ गया है।

रावण—किस कारण से ?

विभीषण—महाराज की विपरीत बुद्धि से।

रावण—मेरी विपरीत बुद्धि क्या है ?

विभीषण—सीता का हरण ही।

रावण—सीता के अपहरण में क्या दोष है ?

विभीषण—और अधर्म ?

रावण—'और' शब्द से तुम्हारे वचन में कुछ शेष है। उसे कहो।

विभीषण—वही है।

रावणः—विभीषण ! किं गूहसे । मम खलु प्राणैः शापितः स्याः, यदि सत्यं न ब्रूयाः ।

विभीषणः—अभयं दातुमर्हति महाराजः ।

रावणः—दत्तमभयम् । उच्यताम् ।

विभीषणः—बलवद्विग्रहश्च ।

रावणः—(सरोषम्) कथं कथं बलवद्विग्रहो नाम ?

शत्रुपक्षमुपाश्रित्य मामयं राक्षसाधमः ।
क्रोधमाहारयंस्तीव्रमभीरुरभिभाषते ॥ २४ ॥

कोऽत्र ।

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्रं शत्रुपक्षमुपाश्रितम् ।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टुं तस्मादेष निरस्यताम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—अयं राक्षसाधमः शत्रुपक्षम् उपाश्रित्य मम तीव्रं क्रोधम् आहारयन् अभीरुः भाषते ॥ २४ ॥

व्याख्या—अयं राक्षसाधमः नीचराक्षसः विभीषणः शत्रुपक्षं शत्रोः रामस्य पक्षमुपाश्रित्य गृहीत्वा मम रावणस्य तीव्रमुत्कटं क्रोधमाहारयन्नुत्पादयन् अभीरुः भयरहितः भाषते ॥ २४ ॥

अन्वयः—मम सौभ्रात्रम् , अनवेक्ष्य शत्रुपक्षम् उपाश्रितं (एनं) पुरतः द्रष्टुं न उत्सहे तस्मात् एष निरस्यताम् ॥ २५ ॥

रावण—विभीषण ! क्यों छिपा रहे हो ? मेरे प्राणों की तुम्हें शपथ है । यदि सत्य नहीं बोलोगे ।

विभीषण—महाराज मुझे अभय दें ।

रावण—अभय है । कहो ।

विभीषण—बलवान् से युद्ध ।

रावण (क्रोध से)—कैसे बलवान् से विग्रह है ?

यह नीच राक्षस शत्रु-पक्ष का आश्रय लेकर मेरे महान् क्रोध को उत्पन्न करते हुये निर्भीक बोल रहा है ॥ २४ ॥

कौन यहां है ?

मेरे सौभ्रात्र का ध्यान न कर शत्रु-पक्ष से मिले इसको मैं सामने नहीं देख सकता इसलिये इसे निकालो ॥ २५ ॥

शासितोऽहं त्वया राजन् ! प्रयामि न च दोषवान् ।
त्यक्त्वा रोषं च कामं च यथा कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥
अद्यैव तं कमललोचनमुग्रचापं
रामं हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम् ।

व्याख्या—मम रावणस्य सौभ्रात्रं शोभनं भ्रातृभावम् अनवेक्ष्य न ध्यात्वा शत्रुपक्ष परपक्षमुपाश्रितम् आश्रितमेनं विभीषणं पुरतः द्रष्टुं न उत्सहे शक्नोमि । तस्मादेष शत्रुपक्षमाश्रितः विभीषणः निरस्यताम् मम पुराद्बहिष्क्रियताम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! त्वया शासितः अहं प्रयामि न च दोषवान् । रोषं च कामं च त्यक्त्वा यथा कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥

व्याख्या—हे राजन् ! त्वया शासितः निष्कासितुमादिष्टोऽहं प्रयामि गच्छामि । न च दोषवान् । नाहं दोषयुक्तस्तथापि त्वया गन्तुमादिष्टः । इदानीं रोषं क्रोधं कामं सीताविषयकं त्यक्त्वा विहाय यथा कार्यं यदुचितं कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥

अन्वयः—रावणवधाय कृतप्रतिज्ञं कमललोचनम् उग्रचापं संश्रितहितप्रथितं नृदेवं तं रामम् अद्य एव संश्रित्य नष्टं निशाचरकुलं पुनः उद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

व्याख्या—रावणवधाय रावणस्य वधाय कृतप्रतिज्ञं कृता प्रतिज्ञा येन तं कमललोचनमरविन्दनेत्रम् उग्रचापम् भयंकरधनुषं संश्रितहितप्रथितं संश्रितस्य आश्रितजनस्य हिताय प्रथितं प्रख्यातम् आश्रितजनस्य रक्षकं नृदेवं राजानं रामम् अद्य एव सपद्येव संश्रित्य आश्रित्य नष्टं रावणस्य दुष्कृतेन विनष्टं राक्षसकुलं राक्षसवंशं पुनः उद्धरिष्ये रक्षिष्यामि ।

मेरे सौभ्रात्र का ध्यान न कर शत्रु-पक्ष से मिले हुये इसको मैं सामने नहीं देख सकता । अतः यह (हमारे राज्य) से निकाला जाय ॥ २५ ॥

विभीषण—महाराज प्रसन्न हों । मैं ही जा रहा हूं । हे राजन् ! आप द्वारा शासित (जाने के लिये आदिष्ट) हूं, अतः जा रहा हूं । मेरा दोष नहीं । क्रोध तथा काम का त्यागकर जो कर्त्तव्य हो उसे करें ॥ २६ ॥

संश्रित्य संश्रितहितप्रथितं नृदेवं
नष्टं निशाचरकुलं पुनरुद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

(निष्क्रान्तः)

रावणः—हन्त निर्गतो विभीषणः । यावदहमपि नगररक्षां सम्पादयामि ।

(निष्क्रान्तः ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

* * *

रावण वध के लिये कृतप्रतिज्ञ उग्र धनुर्धर, आश्रितों के हितसाधन के लिये प्रसिद्ध कमललोचन राजा राम का आप ही आश्रय लेकर नष्ट निशाचर-वंश का पुनः उद्धार करूँगा ।

(चला जाता है)

रावण—हाय ! विभीषण चला गया । अब मैं भी नगर रक्षा को सम्पन्न करूँ ।

(चला जाता है)

तृतीय अंक समाप्त ।

* * *

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वानरकाञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भो भो बलाध्यक्ष ! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम् ।

(प्रविश्य)

बलाध्यक्षः—आर्य ! किं कुतोऽयं समुद्योगः ?

काञ्चुकीयः—तत्र भवता हनूमतानीतः खल्वार्यरामस्य देव्याः सीताया वृत्तान्तः ।

बलाध्यक्षः—किमिति ? किमिति ?

काञ्चुकीयः—श्रूयताम्—

लङ्कायां किल वर्तते नृपसुता शोकाभिभूता भृशं
पौलस्त्येन विहाय धर्मसमयं संक्लेश्यमाना ततः ।
श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्यार्थिना
राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभया सन्नाहमाज्ञापिता ॥ १ ॥

अन्वयः—पौलस्त्येन धर्मसमयं विहाय सक्लेश्यमाना नृपसुता लङ्कायां भृशं शोकाभिभूता वर्तते किल। एतत् श्रुत्वा भृशशोकमनसः रामस्य कार्यार्थिना राज्ञा प्रतिभया वानरवाहिनी सन्नाहम् आज्ञापिता ॥ १ ॥

व्याख्या—पौलस्त्येन पुलस्त्यकुलोद्भवेन पुलस्त्यपौत्रेण रावणेन धर्मसमयं धर्ममर्यादां विहाय त्यक्त्वा संक्लेश्यमाना पीड्यमाना नृपसुता जनकराजस्य पुत्री सीता लङ्कायां भृशमत्यन्तं शोकाभिभुता शोकसंतप्ता वर्तते किलेति निश्चये । एतत् श्रुत्वा हनूमतो विज्ञाय भृशशोकमनसः नितान्तशोकाभितप्तस्य रामस्य कार्यार्थिना कार्यसाधकेन राज्ञा वानराजेन सुग्रीवेण प्रतिभया प्रतिवादिभयङ्करा वानरवाहिनी वानरसेना सन्नाहम् आज्ञापिता सज्जीभवितुमादिष्टा ॥ १ ॥

(तदनन्तर वानर काञ्चुकीय प्रवेश करता है)

काञ्चुकीय—हे सेनाध्यक्ष। वानर सेना को तैयार होने की आज्ञा दो।

(प्रवेश कर)

बलाध्यक्ष—आर्यं। यह उद्योग किस लिये है।

काञ्चुकीय—श्रीमान् हनुमान्ने राम की पत्नी सीता की खबर लाई है।

बलाध्यक्ष—क्या क्या ?

काञ्चुकीय—सुनो

वलाध्यक्षः—एवम् ! यदाज्ञापयति महाराजः ।

काञ्चुकीयः—यावदहमपि सन्नद्धा वानरवाहिनीति महाराजाय निवेदयामि ।

(निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणः सुग्रीवो हनूमांश्च)

रामः—

आक्रान्ताः पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।
क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं
सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातटं साम्प्रतम् ॥२॥

अन्वयः—मया पृथुसानुकुञ्जगहनाः मेघोपमाः पर्वताः आक्रान्ताः सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिलाः नद्यः च तीर्णाः पुष्पफलाढ्यपादपयुतं महत् चित्रं काननं क्रान्तम् । साम्प्रतं कपीन्द्रसैन्यसहितः वेलातटं संप्राप्तः अस्मि ।

व्याख्या—मया रामेण पृथुसानुकुञ्जगहनाः पृथूनि बिस्तृतानि सानूनि शिखराणि कुञ्जानि लतानिकुञ्जानि तैः शिखरैः कुञ्जैः शिखरस्थकुञ्जैर्वा

रावण के द्वारा धर्म की मर्यादा छोड़कर अत्यन्त कष्ट पा रहीं राजपुत्री सीता अत्यन्त शोकमग्न होकर लङ्का में हैं । यह सुनकर अत्यन्त दुःखी मनवाले राम के कार्य को सिद्ध करने वाले वानरराज सुग्रीव ने वानरसेना को तैयार होने की आज्ञा दी है ॥ १ ॥

बलाध्यक्ष—ठीक है । जैसी महाराज की आज्ञा

काञ्चुकीय—तो मैं भी महाराज से निवेदन करूँ कि वानर सेना तैयार है ।

(दोनों निकल जाते हैं)

विष्कम्भक

(तदनन्तर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव ओर हनूमान् प्रवेश करते हैं)

राम—मैंने विशाल शिखर ओर कुञ्जों से युक्त पर्वतों को पार किया । सिंहों, व्याघ्रों ओर गजेन्द्रों से पिये जाते हुये जलवाली नदियों को पार

लक्ष्मणः—एष एष भगवान् वरुणः,

सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः
समधिगतनदीसहस्रबाहु-
र्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः ॥ ३ ॥

रामः—कथं कथं भोः !

गहनाः दुष्पाराः मेघोपमा उन्नताः पर्वताः आक्रान्ताः तीर्णाः । सिंहैः व्याघ्रैः गजेन्द्रैश्च हस्तिभिश्च पीतानि सलिलानि यासां ताः नद्यः अपि तीर्णाः उत्तीर्णाः । पुष्पफलाढ्यपादपयुतं पुष्पैः फलैश्च आढ्याः संपन्नाः पादपास्तैर्युतं महत् विशालं चित्रं विचित्रं काननं वनं च क्रान्तमुत्तीर्णम् । साम्प्रतमिदानीं कपीन्द्रसैन्यसहितः वानरराजसुग्रीवस्य सेनया युतः वेलातटं समुद्रतटं संप्राप्तोऽस्मि ।। २ ।।

अन्वयः—सजलजलधरेन्द्रनीलनीरः विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः समधिगतनदीसहस्रबाहुः सरित्पतिः शयानः हरिः इव भाति ।

व्याख्या—सजलः जलयुतः यः जलधरेन्द्रः मेघराजस्तद्वत् नीलं श्यामवर्णं नीरं जलं यस्य सः, जलयुक्तमेघतुल्यनीलवर्णः, विलुलिताः व्यस्ता फेनतरङ्ग एव चारुहारः यस्य सः विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः । समधिगतानि नदींसहस्राणि एव वाहवो यस्य तथोक्तः सरित्पतिः नदीपतिः समुद्रः शयानः हरिर्विष्णुरिव भाति प्रतीयते शोभते ।। ३ ।।

किया और पुष्पों तथा फलों से सम्पन्न वृक्षों वाले विशाल एवं विचित्र वनों को पार किया । इस समय बानरराज सुग्रीव की सेना सहित समुद्रतट पर आ गया हुं ।। २ ।।

लक्ष्मण—ये भगवान् वरुण (समुद्र) हैं । जो जलपूर्ण मेघ के समान नीले वर्ण के जलवाले हैं । ये फैले हुये फेनों के हार से सुन्दर माला युक्त हैं और ये आ रही सहस्रो नदियों के बाहु से युक्त सोये हुये भगवान् विष्णु की भाँति लग रहे हैं ।। ३ ।।

राम—क्यों क्यों ? शत्रु के विनाश के लिये उद्यत, बाण लिये मुझे यह सागर उसे (शत्रु रावण को) जीवन दान करने के लिये रोक रहा है ।। ४ ।।

रिपुमुद्धर्तुमुद्यन्तं मामयं सक्तसायकम् ।
सजीवमद्य तं कर्तुं निवारयति सागरः ॥ ४ ॥

सुग्रीवः—अये वियति
सजलजलदसंनिभप्रकाशः
कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः ।
अभिपतति कुतो नु राक्षसोऽसौ
शलभ इवाशु हुताशनं प्रवेष्टुम् ॥ ५ ॥

हनूमान्—भो भो वानरवीराः ! अप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

शैलैर्द्रुमैः सम्प्रति मुष्टिबन्धैर्दन्तैर्नखैर्जानुभिरुग्रनादैः ।
रक्षोवधार्थं युधि वानरेन्द्रास्तिष्ठन्तु रक्षन्तु च नो नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—माम् रिपुम् उद्धर्तुम् उद्यन्तं सक्तसायकं अयं सागरः अद्य तं सजीवं कर्तुं निवारयति ।

व्याख्या—रिपुं शत्रुं रावणं उद्धर्तुं विनाशयितुं उद्यन्तं प्रस्तुतं गच्छन्तमित्यर्थः सक्तसायकम् उद्यतबाणं माम् रामम् अयं पुरोवर्ती सागरः अद्य तं रावणं सजीवं कर्तुं जीवयितुं निवारयति ॥ ४ ॥

अन्वयः—(वियति) सजलजलदसंनिभप्रकाशः कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः असौ राक्षसः शलभ इव हुताशनं प्रवेष्टुं कुतः नु आशु अभिपतति ॥ ५ ॥

व्याख्या—वियति आकाशे सजलजलदसंनिभप्रकाशः सजलजलदसंनिभः जलपूर्णमेघतुल्यः प्रकाशः यस्य तादृशः श्यामवर्णः कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः कनकमयैः स्वर्णमयैः भूषणैरलंकारैः उज्ज्वलानि प्रकाशपूर्णानि अङ्गानि यस्यासौ राक्षसः शलभः इव हुताशनं पावकं प्रवेष्टुं कुतः कस्मात् कारणात् कस्माद्वा देशाद् आशु शीघ्रमभिपतति आगच्छति ॥ ५ ॥

अन्वयः—संप्रति वानरेन्द्राः शैलैः द्रुमैः मुष्टिबन्धैः नखैः जानुभिः उग्रनादैः रक्षोवधार्थं तिष्ठन्तु नः नरेन्द्रं रक्षन्तु च ॥ ६ ॥

व्याख्या—संप्रति इदानीं वानरेन्द्राः वानरश्रेष्ठाः रक्षोवधार्थं राक्षसस्य

सुग्रीव—अरे आकाश में—सजल मेघ तुल्य (श्यामवर्ण के) प्रकाश वाला, स्वर्णनिर्मित आभूषणों से उद्भासित शरीर वाला यह राक्षस शलभ की भाँति अग्नि में प्रवेश करने के लिये क्यों आ रहा है ॥ ५ ॥

हनूमान—हे वानर वीरो ! आप सावधान हो जायें ।

रामः—राक्षस इति । हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

(ततः प्रविशति विभीषणः)

विभीषणः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि राघवस्य शिबिरसन्निवेशम् । (विचिन्त्य) अकृतदूतसम्प्रेषणमविदितागमनममित्रसम्बन्धिनं कथं नु खलु मामवगच्छेत् तत्रभवान् राघवः । कुतः,

क्रुद्धस्य यस्य पुरतः सहितोऽप्यशक्तः
स्थातुं सुरैः सुररिपोर्युधि वज्रपाणिः ।
तस्यानुजं रघुपतिः शरणागतं मां
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ ७ ॥

वधार्थं शैलैः पर्वतैः द्रुमैः वृक्षैः मुष्टिबन्धैः, नखैः जानुभिः उग्रनादैः घोर चीत्कारैश्च सन्नद्धाः तिष्ठन्तु नः अस्माकं नरेन्द्रं रामं च रक्षन्तु ॥ ६ ॥

अन्वयः—यस्य क्रुद्धस्य सुररिपोः पुरतः सुरैः सहितः अपि वज्रपाणिः स्थातुम् अशक्तः तस्य शरणागतम् अनुज मां रघुपतिः कि वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—क्रुद्धस्य कोपान्वितस्य यस्य सुररिपोः देवशत्रोः रावणस्य पुरतः समक्षं सुरैः देवैः सहितः समन्वितः अपि वज्रः पाणी यस्य स इन्द्रः

युद्ध में पर्वतों, वृक्षों, मुक्कों, दाँतों, नखों, घुटनों और उग्र शब्दों से राक्षसवध के लिये वानरेन्द्र उद्यत रहें तथा हमारे राजा राम की रक्षा करें॥६॥

राम—हनूमान् ! राक्षस हैं इसलिये घबड़ाने की आवश्यकता नहीं ।

हनूमान्—जैसी देव की आज्ञा ।

(तदनन्तर विभीषण प्रवेश करता है ।)

विभीषण—अहा ! मैं राम के शिविर भाग में आ गया (विचार कर) विना दूत भेजे, विना सूचना के आये तथा शत्रु के सम्बन्धी मुझे श्रीमान् राम क्या समझते हैं ? क्योंकि—

जिस देवशत्रु क्रुद्ध रावण के सामने देवताओं से संयुक्त वज्रपाणि इन्द्र

अथवा,

दृष्टधर्मार्थतत्त्वोऽयं साधुः संश्रितवत्सलः ।
शङ्कनीयं कथं रामो विशुद्धमनसा मया ॥ ८ ॥

(अधोऽवलोक्य) इदं रघुकुलवृषभस्य स्कन्धावारम् । यावदवतरामि । (अवतीर्य) हन्त इह स्थित्वा ममागमनं देवाय निवेदयामि ।

हनूमान्—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये कथं तत्रभवान् विभीषणः !

विभीषणः—अये हनूमान् ?, हनूमन् ! ममागमनं देवाय निवेदय ।

स्थातुम् अशक्तः असमर्थः तस्य रावणस्य शरणागतं शरणैषिणम् अनुजं कनिष्ठभ्रातरं माम् रघुपतिः रामः किं वक्ष्यति कथयिष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं शङ्कान्वितम् शरणागतोऽहं सीताहारिणो देवशत्रोः रावणस्यानुजः न जाने रामो विश्वसिष्यति न वेति विभीषणस्य चिन्ता ।। ७ ।।

अन्वयः—दृष्टधर्मार्थतत्त्वः साधुः संश्रितवत्सलः अयं रामः विशुद्धमनसा मया कथं शङ्कनीयः ।। ८ ।।

व्याख्या—दृष्टः धर्मस्य अर्थतत्त्वं येनासौ दृष्टधर्मार्थतत्त्वः विदितार्थतत्त्वः साधुः सज्जनः संश्रितवत्सलः आश्रितजनानां वत्सलः कृपालुः अयं पुरोवर्ती रामः विशुद्धमनसा साधुहृदयेन मया कथं शङ्कनीयः । शङ्काया नावकाशो विद्यते इत्यर्थः ।। ८ ।।

भी खड़ा होने में असमर्थ है उसके मुझ शरणागत अनुज को रघुपति क्या कहेंगे ? इस विषय में मेरा हृदय शंकालु है ।। ७ ।।

अथवा—धर्मार्थतत्त्व के ज्ञाता, साधु एवं आश्रितों के प्रति कृपालु राम के बारे में शुद्ध मन वाला मैं कैसे शङ्का कर सकता हूँ ।। ८ ।।

(नीचे देखकर) यह रघुश्रेष्ठ राम का शिविर है । तो उतरूँ । (उतर कर) यहीं रुक कर अपने आगमन की सूचना राम को देता हूँ ।

हनूमान्—(ऊपर देखकर) अरे ! क्या श्रीमान् विभीषण हैं ?

विभीषण—अरे हनूमान् ! हनुमन् ! मेरा आगमन महाराज को सूचित करो ।

हनूमान्—बाढम् । (उपगम्य) जयतु जयतु देवः ।

राजंस्त्वत्कारणादेव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः ।
विभीषणोऽयं धर्मात्मा शरणार्थमुपागतः ॥ ९ ॥

रामः—कथं विभीषणः शरणागत इति । वत्स लक्ष्मण ! गच्छ सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—सुग्रीव ! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये ।

सुग्रीवः—देव ! बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः। तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

हनूमान्—महाराज ! मा मैवं,

अन्वयः—हे राजन् ! त्वत्कारणात् एव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः अयं धर्मात्मा विभीषणः शरणार्थम् उपागतः ॥ ९ ॥

व्याख्या—हे राजन् ! राम ! त्वत्कारणात् त्वद्धेतोः सीतां रामाय देहि इति वदन् अयं भ्रात्रा कुपितेन अग्रजेन रावणेन निर्विषयीकृतः लङ्काराज्यान्निष्कासितः अयं धर्मात्मा न्यायवादीत्यर्थः विभीषणः शरणार्थं शरणकाङ्क्षया उपागतः आगतः ॥ ९ ॥

हनूमान्—ठीक है । (जाकर) महाराज की जय हो ।

हे महाराज ! आपके लिये ही भाई से देश से निकाला गया धर्मात्मा यह विभीषण आपकी शरण में आया है ॥ ९ ॥

राम—क्या विभीषण शरणागत हुआ है ? वत्स लक्ष्मण ! सत्कार कर विभीषण को प्रवेश कराओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा ।

राम—सुग्रीव ! प्रतीत होता है कि आप कुछ कहने वाले हैं ।

सुग्रीव—देव ! राक्षस बहुत माया वाले तथा छल कर लड़ने वाले हैं इसलिये विचार कर प्रवेश करावें ।

हनूमान्—महाराज ! ऐसी बात नहीं है ।

देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम् ।
भ्रात्रा विवदमानोऽपि दृष्टः पूर्वं पुरे मया ॥ १० ॥

रामः—यद्येवं गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (परिक्रम्य) अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् !

विभीषणः—अये कुमारो लक्ष्मणः !, कुमार ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

लल्मणः—विभीषण ! उपसर्पावस्तावदार्यम् ।

विभीषणः—बाढम् ।

(उपसर्पतः)

अन्वयः—यथा देवे वयं भक्ताः तथा विभीषणं मन्ये । पूर्वं मया पुरे भ्रात्रा विवदमानः अपि दृष्टः ॥ १० ॥

व्याख्या—देवे रामे यथा वयं सुग्रीवादयः भक्ता अनुरक्ता अनुगामिनस्तथा विभीषणमहं मन्ये । पूर्वं मया पुरे लङ्कानगर्यां भ्रात्रा रावणेन सह सीताप्रदानाय विवदमानः विवादं कुर्वन् दृष्टः । अयमपि सुग्रीवतुल्य एव विश्वासार्हो मया पूर्वमपि ज्ञातश्च ॥ १० ॥

जैसे हम लोग देव (राम) के भक्त हैं वैसे ही मैं विभीषण को समझता हूँ । मैंने पहले इन्हें (लंका) पुर में भाई से विवाद करते देखा है ।।१०।।

राम—यदि ऐसा है तो सत्कार कर विभीषण को ले आओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा । (परिक्रमा कर) अरे यह विभीषण है । विभीषण ! आप कुशल से तो हैं ?

विभीषण—अरे कुमार लक्ष्मण हैं ! कुमार ! आज कुशलयुक्त हो गया हूं ।

लक्ष्मण—तो आर्य (राम) के पास हम दोनों चलें ।

विभीषण—ठीक है ।

(दोनों जाते हैं)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

विभीषणः—प्रसीदतु देवः । जयतु देवः ।

रामः—अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ?

विभीषणः—देव ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

भवन्तं पद्मपत्राक्षं शरण्यं शरणागतः ।
अद्यास्मि कुशली राजंस्त्वद्दर्शनविकल्मषः ॥ ११ ॥

रामः—अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लङ्केश्वरो भव ।

विभीषणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

रामः—विभीषण ! त्वदागमनादेव सिद्धमस्मत्कार्यम् । सागरतरणे खलूपायो नाधिगम्यते ।

अन्वयः—राजन् ! पद्मपत्राक्षं शरण्यं भवन्तं शरणागतः अस्मि । त्वद्दर्शनविकल्मषः अद्य कुशली अस्मि ॥ ११ ॥

व्याख्या—हे राजन् ! राम ! पद्मपत्राक्षं कमलपत्रतुल्यनेत्रं शरण्यं शरणस्थानं भवन्तं शरणागतः अस्मि । त्वद्दर्शनेन विकल्मषः कल्मषरहितः अद्येदानीमहं कुशली कुशलान्वितः संवृत्तः सम्पन्नः अस्मि ॥ ११ ॥

लक्ष्मण—आर्य की जय हो ।

विभीषण—देव प्रसन्न हों । देव की जय हो ।

राम—अरे विभीषण ? विभीषण ! कुशल से तो हैं ?

विभीषण—देव ! आज कुशल से हो गया ।

कमल तुल्य नेत्र वाले शरण्य आपकी शरण में आया हूं आज आपके दर्शन से कल्मषरहित होकर कुशलयुक्त हो गया हूँ ॥ ११ ॥

राम—आज से मेरे वचन (आदेश) से लङ्केश्वर हो ।

विभीषण—अनुगृहीत हूँ ।

राम—विभीषण ! तुम्हारे आने मात्र से हम लोगों का कार्य सिद्ध हो गया । समुद्र-तरण में कोई उपाय नहीं मिल रहा है ।

विभीषण—देव ! किमत्रावगन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, समुद्रे दिव्यमस्त्रं विस्रष्टुमर्हति देवः ।

राम—साधु विभीषण ! साधु । भवतु, एवं तावत् करिष्ये । (सहसोत्तिष्ठन् सरोषम्)

मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।
यदि मम न ददाति मार्गमेनं प्रतिहतवीचिरयं करोमि शीघ्रम् ॥१२॥

(ततः प्रविशति वरुणः)

वरुणः—(ससम्भ्रमम्)

अन्वयः—यदि मम मार्गं न ददाति अहम् एनं शीघ्रं मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं प्रतिहतवीचिरयं करोमि ॥ १२ ॥

व्याख्या—यदि अयं सागरः मम मार्गं समुद्रसंतरणार्थं पन्थानं न ददाति तदाहमेनं शीघ्रमेव मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं शरेण परिदग्धं तोयपङ्कौ जलपङ्कौ यस्य तादृशं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं हतैः जलशोषणात् मृतैः शतैः मत्स्यैर्विकीर्णा व्याप्ता भूमिभागाः भूमिप्रदेशा यस्य तादृशं प्रतिहतवीचिरयं नष्टतरङ्गव्यापारः यस्य तादृशं करोमि । यदि मम मार्गं न दास्यति तर्हि शरेण सर्वं जल शोषयामि येन मत्स्यादिजलजन्तवो मृता भविष्यन्ति तरङ्गमाला च नष्टा भविष्यति ॥ १२ ॥

विभीषण—देव ! इसमें क्या जानना है ? यदि मार्ग नहीं देता तो समुद्र पर दिव्यास्त्र को देव छोड़ें ।

राम—विभीषण ! तुम ठीक हो । ठीक हो । यही करूँगा ।

(रोषपूर्वक सहसा उठते हुये)

यदि यह मुझे मार्ग नहीं देता तो इसे अपने वाणों से जले (सूखे) हुये जल और पङ्क वाला, मारी गई सैकड़ों मछलियों से फैली भूमि वाला तथा नष्ट तरङ्ग वेग वाला बना दूंगा ॥ १२ ॥

(तदनन्तर वरुण प्रवेश करता है)

वरुण (संभ्रम से)—नररूप धारण किये नरनारायण के भक्तप्रजो

नारायणस्य नररूपमुपाश्रितस्य
कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः ।
देवस्य देवरिपुदेहहरात् प्रतूर्णं
भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि ॥ १३ ॥

(विलोक्य) अये अयं भगवान्,

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः ।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।

अन्वयः—कार्यार्थम् अभ्युपगतस्य नररूपम् उपाश्रितस्य नारायणस्य कृतापराधः अस्मि । देवस्य देवरिपुदेहहरात शरात् प्रतूर्णं भीतः एनं शरणम् उपाश्रयामि ॥ १३ ॥

व्याख्या—कार्यार्थं रावणवधकर्तुम् अभ्युपगतस्य अत्रागतस्य नररूपम् मनुष्यशरीरं उपाश्रितस्य धारिणः नारायणस्य जगदीश्वरस्य कृतापराधः कृतः मार्गप्रदानरूपः अपराधः दोषः येन तादृशः अस्मि । देवस्य भगवतो देवरिपुदेहहरात् देवरिपूणां राक्षसानां देहहरात् प्राणनाशकात् शरात् बाणात् भीतः एनं भगवन्तं शरणं तूर्णं शीघ्रमेव उपाश्रयामि गृह्णामि ॥ १३ ॥

अन्वयः—चक्रशार्ङ्गगदाधरः मानुषं रूपम् आस्थाय स्वयं कारणभूतः सन् कायार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

व्याख्या—चक्रशार्ङ्गगदाधरः चक्रधनुर्गदाधारी भगवान् विष्णुः मानुषं रूपं नररूपम् आस्थाय आश्रित्य स्वयं कारणभूतः सर्वेषां लोकानां कारणभूतः मूलकारणभूतः कायार्थी समुद्रसंतरणरूपकार्यार्थी समुपागतः आगतः ॥१४॥

कार्यवश आये हैं मैंने अपराध किया है। अब इस देव के देवशत्रुओं के देहों को नष्ट करने वाले वाण से भीत होकर शरण को ग्रहण करूँ ॥ १३ ॥

(देखकर) अरे ! ये भगवान् हैं ।

चक्र, शार्ङ्गधनुष एवं गदाधारी (भगवान् विष्णु) स्वयं (सबके) कारण-स्वरूप होते हुये भी कार्यार्थी होकर आये हैं ॥ १४ ॥

त्रैलोक्य के कारण भगवान् नारायण को नमस्कार है ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये को नु खल्वेषः ?

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षो
नवकुवलयनीलो मत्तमातङ्गलीलः ।
सलिलनिचयमध्यादुत्थितस्त्वेष शीघ्र-
मवनतमिव कुर्वंस्तेजसा जीवलोकम् ॥ १५ ॥

विभीषणः—देव ! अयं खलु भगवान् वरुणः प्राप्तः ।

रामः—किं वरुणोऽयम् । भगवन् ! वरुण ! नमस्ते ।

वरुणः—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः । अथवा,

अन्वयः—मणिविरचितमौलिः चारुताम्रायताक्षः नवकुवलयनीलः मत्तमातङ्गलीलः एष जीवलोकं तेजसा अवनतम् इव कुर्वन् सलिलनिचयमध्यात् शीघ्रम् उत्थितः ॥ १५ ॥

व्याख्या—मणिविरचितमौलिः मणिभिर्मणिगणैः विरचितोऽलंकृतः मौलिः शिरः यस्य सः चारुताम्रायताक्षः चारुणी, ताम्रे ताम्रवर्णे आयते च अक्षिणी यस्य तथोक्तः नवकुवलयनीलः नूतनकमलतुल्यनीलवर्णः मत्तमातङ्गलीलः मत्तः मातङ्गः गजः तस्य इव लीला संचरणं यस्य स एष पुरोवर्ती वरुणः जीवलोकं भूतलं स्वतेजसा अवनतमवधूतम् इव कुर्वन् सलिलमध्यात् समुद्रस्य जलमध्यात् शीघ्रं झटित्युत्थितः उद्गतः ॥ १५ ॥

लक्ष्मण—अरे ! यह कौन है ?

ये मणियों से रचित (अलङ्कृत) मस्तक वाले हैं, इनकी आँखें सुन्दर एवं रक्तवर्ण की हैं, ये नवीन कुवलय के समान नीलवर्ण के हैं और मत्त-गजराज के समान चल रहे हैं। ये शीघ्र जलराशि के मध्य से निकले हैं और अपने तेज से जीवलोक को अवनत कर रहे हैं ॥ १५ ॥

विभीषण—देव ! ये भगवान् वरुण आये हैं।

राम—क्या ये वरुण हैं ? भगवन् वरुण ! आपको प्रणाम है।

वरुण—आप देवेश को मेरा नमस्कार नहीं करना चाहिये। अथवा

राजपुत्र ! कुतः कोपो रोषेण किमलं तव ।
कर्त्तव्यं तावदस्माभिर्वद शीघ्रं नरोत्तम ! ॥ १६ ॥

रामः—लङ्कागमने मार्गं दातुमर्हति भवान् ।

वरुणः—एष मार्गः । प्रयातु भवान् । (अन्तर्हितः ।)

रामः—कथमन्तर्हितो भगवान् वरुणः । विभीषण ! पश्य पश्य भगवत्प्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम् ।

विभीषणः—देव ! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः ।

रामः—क्व हनूमान् ?

हनूमान्—जयतु देवः ।

रामः—हनूमन् गच्छाग्रतः ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

अन्वयः—हे राजपुत्र ! कुतः कोपः । रोषेण किम् । अलं । हे नरोत्तम ! अस्माभिः किं कर्त्तव्यं शीघ्रं वद ॥ १६ ॥

व्याख्या—हे राजपुत्र ! राजकुमार ! कुतः कस्मात् कारणात् कोपः क्रोधः तवास्तीति शेषः । रोषेण क्रोधेन किं न कर्त्तव्यमलम् । हे नरोत्तम नरश्रेष्ठ ! तव अस्माभिः किं कर्त्तव्यं करणीयमस्ति शीघ्रं वद । वद् वयं संपादयामः ॥ १६ ॥

हे राजपुत्र ! क्यों कोप कर रहे हैं । क्रोध मत करिये । हे नरोत्तम ! शीघ्र बताइये आपका क्या काम हमलोगों को करना है ॥ १६ ॥

राम—लङ्का में जाने के लिये आप मार्ग दें ।

वरुण—यह मार्ग है आप जायें (अन्तर्हित हो जाते हैं) ।

राम—क्या भगवान् वरुण अन्तर्हित हो गये । विभीषण ! देखो भगवान् की कृपा से सलिलाधिपति (समुद्र) निष्कम्प तरङ्गवाला हो गया ।

विभीषण—देव ! इस समय जलनिधि दो भागों में बँटा-सा हो गया है ।

राम—हनूमान् कहाँ हैं ?

हनूमान्—देव की जय हो ।

राम—हनूमान् ! आगे चलो ।

हनूमान—जैसी देव की आज्ञा ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

रामः—(विलोक्य सविस्मयम्) वत्स लक्ष्मण ! वयस्य विभीषण ! महाराज सुग्रीव ! सखे हनूमन् । पश्यन्तु पश्यन्तु भवन्तः । अहो विचित्रा सागरस्य इह हि,

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ १७ ॥

अन्वयः—अयं समुद्रः क्वचित् फेनोद्गारी क्वचित् अपि च मीनाकुलजलः क्वचित् अपि च नीलाम्बुदनिभः क्वचित् वीचीमालः क्वचित् अपि नक्रप्रतिभयः क्वचित् भीमावर्तः क्वचित् अपि च निष्कम्पसलिलः अस्ति ॥ १७ ॥

व्याख्या—अयं पुरोवर्त्ती समुद्रः क्वचित् कस्मिंश्चित् प्रदेशे फेनोद्गारी फेनपूर्णः क्वचिदपि च कस्मिंश्चिद्भागे च मीनाकुलजलः मीनैर्मत्स्यैः आकुलं जलं यस्य तथोक्तो मत्स्यव्याप्तजलः क्वचित् शंखाकीर्णः शङ्खव्याप्तः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः नीलमेघतुल्यवर्णः. क्वचित् वीचीमालः तरङ्गमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिमयः नक्रैः भयोत्पादकः । क्वचित् भीमावर्तः भीषणावर्तयुक्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः निश्चलजलः । स्वभावोक्तिरलङ्कारोऽत्र ॥ १७ ॥

(सभी चलते हैं)

राम—(देखकर विस्मयपूर्वक) वत्स लक्ष्मण ! मित्र विभीषण ! महाराज सुग्रीव ! मित्र हनूमान् ! आप सभी देखें । समुद्र की कैसी विचित्रता है ।

यह कहीं तो फेनोद्गार कर रहा है, कहीं मछलियों से व्याकुल जल वाला है, कहीं शङ्खों से व्याप्त है और कहीं नील बादल तुल्य है, कहीं तरङ्गों की मालाओं वाला है और कहीं नक्रों (घड़ियालों) से भययुक्त है, कहीं भयंकर आवर्त (भँवर) वाला है और कहीं निश्चल जल वाला है ।

भगवत्प्रसादादतीतः सागरः।

हनूमान्—देव ! इयमियं लङ्का।

रामः—(चिरं विलोक्य) अहो राक्षसनगरस्य श्रीरचिराद् विपत्स्यते।

मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता।
उदधिजलगतेव नौर्विपन्ना निपतति रावणकर्णधारदोषात् ॥१८॥

सुग्रीव ! अस्मिन् सुवेलपर्वते क्रियतां सेनानिवेशः। (उपविशति।)

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः। नील ! एवं क्रियताम्।

(प्रविश्य)

अन्वयः—एषा लङ्का नगरी रावणकर्णधारदोषात् मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता उदधिजलगता नौः इव विपन्ना निपतति ॥ १८ ॥

व्याख्या—रावणकर्णधारदोषात् रावणरूपिनाविकस्यापराधात् एषा लङ्का नगरी मम रामस्य शरवरवातपातभग्ना शरवराः श्रेष्ठवाणाः एव वातभूतास्तेषां पातेव भग्ना नष्टा कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता कपिवरस्य सुग्रीवस्य सैन्यमेव तरङ्गस्तेन ताडितेन अन्तः समाप्तिर्यस्या तथोक्ता उदधिजलगता समुद्रजले पतिता नौः नौका इव विपन्ना नष्टा निपतति ॥ १८ ॥

भगवान् (वरुण) के प्रसाद से सागर पार कर लिया गया।

हनूमान्—देव ! यह लङ्का है।

राम—(देर तक देखकर) हाय ! राक्षसराज के नगर का वैभव शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।

रावण रूपी कर्णधार के दोष से यह लङ्का मेरे श्रेष्ठ बाणों रूपी वायु के प्रहार से भग्न कर दी जायेगी और कपिसैन्यसमूह रूपी तरङ्ग के प्रवाह से चूर्णकर नष्ट कर दी जायेगी जैसे समुद्र में पड़ी नौका वायु और तरङ्ग से नष्ट हो जाती है ॥ १८ ॥

सुग्रीव ! इस सुवेल पर्वत पर सेना का ठहराव करो (बैठ जाते हैं)।

सुग्रीव—जैसी देव की आज्ञा। नील ! ऐसा ही करो।

(प्रवेश कर)

नीलः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु देवः। क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ। वयं न जानीमः कर्तव्यम्। देवस्तस्मात् प्रमाणम्।

रामः—शीघ्रं प्रवेशयत्वेतौ।

नीलः—यदाज्ञापयति देवः। (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति नीलो वानरैर्गृह्यमाणौ वानररूपधारिणौ
सम्पुटिकाहस्तौ शुकसारणौ च।)

वानराः—अङ्गो भणथ। के तुम्हे भणथ। [अङ्गो भणतं कौ युवां भणतम्।]

उभौ—भट्टा ! अम्हे अय्यकुमुदस्स सेवआ। [भर्तः ! आवामार्यकुमुदस्य सेवकौ।]

वानराः—भट्टा ! अय्यकुमुदस्स सेवअत्ति अत्ताणं अवदिसन्ति। [भर्तः ! आर्यकुमुदस्य सेवकावित्यात्मानमपदिशतः।]

विभीषणः—(सावधानं शुकसारणौ विलोक्य)

नील—जैसी महाराज की आज्ञा (बाहर जाकर तथा पुनः प्रवेशकर) देव की जय हो। क्रमशः सेना के निवेश (स्थापित) करने पर वृन्द की गणना की पुस्तक के प्रमाण से परीक्षा में कहीं से भी अज्ञात दो वनचर (वानर) पकड़े गये हैं। हम नहीं जानते उनका क्या करना है। अतः महाराज ही प्रमाण हैं।

राम—शीघ्र ही इन दोनों को ले आवो।

नील—जैसी देव की आज्ञा (निकल जाता है)।

(तदनन्तर नील और बानरों द्वारा पकड़कर ले आये जा रहे हाथ में पुड़िया लिये वानर रूपधारी शुक-सारण प्रवेश करते हैं)

वानरगण—तुम बताओ कि तुम दोनों कौन हो ?

दोनों—स्वामिन् ! हम दोनों आर्य कुमुद के सेवक हैं।

वानरगण—स्वामिन् ! ये दोनों अपने को आर्य कुमुद का सेवक बताते हैं।

बिभीषण—(सावधानी से शुक-सारण को देखकर)

स्वसैनिकौ न चाप्येतौ न चाप्येतौ वनौकसौ ।
प्रेषितौ रावणेनैतौ राक्षसौ शुकसारणौ ॥ १९ ॥

उभौ—(आत्मगतम्) हन्त कुमारेण विज्ञातौ स्वः ! (प्रकाशम्) आर्य ! आवां खलु राक्षसराजस्य विप्रतिपत्त्या विपद्यमानं राक्षसकुलं दृष्ट्वास्पदमलभमानौ आर्यसंश्रयार्थं वानररूपेण सम्प्राप्तौ ।

रामः—वयस्य ! विभीषण ! कथमिव भवान् मन्यते ।

विभीषणः—देव ।

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप ! ।
प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्केशं नैव मुञ्चतः ॥ २० ॥

अन्वयः—एतौ स्वसैनिकौ न । न च एतौ वनौकसौ । एतौ रावणेन प्रेषितौ शुकसारणौ राक्षसौ ॥ १९ ॥

व्याख्या—संप्रति पुरोवर्तिनौ उभौ स्वसैनिकौ स्वसेनाया योद्धारौ न स्तः न च इमौ वनौकसौ वानरौ स्तः अपि तु इमौ रावणेन प्रेषितौ अस्मद्वृत्तान्तज्ञानायात्र स्थापितौ शुकसारणौ तन्नामधारिणौ राक्षसौ स्तः । इमौ रावणेन अस्मद्वृत्तान्तज्ञानाय संप्रेषितौ तस्य चराविति विभीषणस्य विज्ञप्तिः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे नृप ! राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ एतौ लङ्केशं प्राणान्तिके अपि व्यसने नैव मुञ्चतः ॥ २० ॥

व्याख्या—हे नृप ! राजन् ! राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य सम्मतौ प्रियौ

ये दोनों न तो अपने सैनिक हैं और न वानर हैं । ये रावण द्वारा भेजे गये शुक-सारण नामक राक्षस हैं ॥ १९ ॥

दोनों (स्वगत)—हाय ! कुमार विभीषण ने हमें पहचान लिया । (प्रकट) आर्य ! हम दोनों राक्षसराज रावण की विपरीत बुद्धि से राक्षसराज के कुल को नष्ट होता हुआ देखकर स्थान न पाकर वानर रूप से आर्य के आश्रय के लिये आये हैं ।

राम—मित्र विभीषण ! आप क्या समझते हैं ?

विभीषण—देव ।

तस्माद् यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः।

रामः—विभीषण ! मा मैवम्।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ २१ ॥

लक्ष्मणः—यदि विमुञ्चेत्, सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य परीक्ष्य पुनर्मोक्षमाज्ञापयत्वार्यः।

रामः—सम्यगभिहितं लक्ष्मणेन। नील ! एवं क्रियताम्।

नीलः—यदाज्ञापयति देवः।

मन्त्रिणौ एतौ शुकसारशौ लङ्केशं रावणं प्राणान्तिके प्राणघातके अपि सङ्कटे विपत्तौ न मुञ्चतः त्यजतः। अतोऽनयोर्वचनं यत् तौ रावणं त्यक्त्वाऽऽगतौ मिथ्याभूतमित्यभिप्रायः ॥ २० ॥

अन्वयः—अनयोः शासनात् एव मे वृद्धिः वा राक्षसेन्द्रस्य क्षयः न भविष्यति तस्मात् एतौ विमोचय ॥ २१ ॥

व्याख्या—अनयोः शुकसारणयोः शासनात् दण्डप्रदानात् मे रामस्य कापि वृद्धिः लाभः अथवा राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य क्षयः विनाशः न भविष्यति। अनयोर्वधादेव रावणपराजयो न भविष्यति। तस्मात्कारणात् एतौ विमोचय विमुक्तौ क्रियताम् ॥ २१ ॥

हे राजन् ! राक्षसराज के ये सम्मानित मन्त्री हैं ये प्राणान्तिक विपत्ति में भी रावण को नहीं छोड़ते ॥ २० ॥

इसलिये यथोचित दण्ड की देव आज्ञा दें।

राम—विभीषण ! ऐसा नहीं।

इनको दण्ड देने से मेरी कोई वृद्धि नहीं होगी और न राक्षसेन्द्र रावण का क्षय (हानि) होगा अतः इन दोनों को छोड़ दो ॥ २१ ॥

लक्ष्मण—यदि छोड़ना है तो सभी सेना के निवास में घुमाकर परीक्षा कर पुनः छोड़ देने का आदेश आर्य दें।

राम—लक्ष्मण ने ठीक कहा है। नील ! ऐसा ही किया जाय।

नील—जैसी देव की आज्ञा।

रामः—अथवा एहि तावत् ।

उभौ—इमौ स्वः

रामः—अभिधीयतां मद्वचनात् स राक्षसेन्द्रः,

मम दारापहारेण स्वयं ग्राहितविग्रहः ।
आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः ॥२२॥ इति ।

उभौ—यदाज्ञापयति देवः । (निष्क्रान्तौ)

रामः—विभीषण ! वयमपि तावदानन्तरीयं बलं परीक्षिष्यामहे ।

विभीषणः—यदाज्ञापयति देवः ।

रामः—(परिक्रम्य विलोक्य) अये अस्तमितो भगवान् दिवाकरः । सम्प्रति हि,

---

अन्वयः—मम दारापहारेण स्वयंग्राहितविग्रहः रणातिथिः (त्वां) द्रष्टुकामः आगतः अस्मि (किन्तु त्वां) न पश्यामि ॥ २२ ॥

व्याख्या—मम रामस्य दारापहारेण स्त्रीचौर्येण स्वयंग्राहितविग्रहः आत्मनैव हठात् विग्रहं विरोधं ग्राहितः प्रापितः रणातिथी रणार्थं युद्धार्थंमागतोऽतिथिः त्वां द्रष्टुकामः द्रष्टुमिच्छुकः तव पुरम् आगतोऽस्मि किन्तु त्वां न पश्यामि । युद्धार्थमागताय मह्यं युद्धं देहीत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

राम—अथवा ! इधर आवो ।

दोनों—ये हैं ।

राम—मेरे वचन से राक्षसराज रावण से कहना—

मेरी स्त्री का अपरहरण करके तुमने स्वयं मुझसे विरोध किया है और मैं रण का अतिथि होकर तुम्हें देखने के लिये आया हूँ किन्तु तुम्हे देख नहीं रहा हूँ ।। २२ ।।

दोनों—जैसी देव की आज्ञा (दोनों चले जाते हैं)

राम—विभीषण ! तो हमलोग भी आन्तरिक सेना की परीक्षा करें ।

विभीषण—जैसी देव की आज्ञा ।

राम—(घूमकर देखते हुये) अरे ! भगवान् सूर्य अस्त हो रहे हैं । इस समय अस्ताचल के शिर पर गये किरणों को समेटे हुये सूर्य हाथी के लाल

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः ।
रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

अन्वयः—अस्तादिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः संध्यानुरञ्जितवपुः सूर्यः द्विरदस्य रक्तोज्ज्वलांशुकवृते कुम्भे जाम्बूनदेन रचितः पुलकः यथा प्रतिभाति ॥ २३ ॥

व्याख्या—अस्ताद्रिमस्तकगतः अस्ताचलशिरोगतः प्रतिसंहृतांशुः संक्षिप्तमयूखः संध्यानुरञ्जितवपुः सन्ध्यारागेणरञ्जितशरीरः सूर्यो दिनकरः द्विरदस्य गजस्य रक्तोज्ज्वलांशुकवृते रक्तस्वच्छवस्त्रवेष्टिते कुम्भे शिरोभागे जाम्बूवदेन स्वर्णेन रचितः निर्मितः पुलकः तिलकः यथा इव प्रतिभाति ॥२१॥

तथा श्वेत वस्त्र से आवृत्त कुम्भ पर स्वर्णनिर्मिन तिलक की भाँति लग रहे हैं ॥ २३ ॥

(सभी निकल जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राक्षसकाञ्चुकीयः)

राक्षसकाञ्चुकीयः—क इह भोः ! प्रवालतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्यान्यो राक्षसः)

राक्षसः—आर्य ! अयमस्मि । किं क्रियताम् !

काञ्चुकीयः—गच्छ, महाराजस्य शासनात् विद्युज्जिह्वस्तावदाहूयताम् ।

राक्षसः—आर्य ! तथा ? (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—अहो नु खलु विपद्यमानाभ्युदये राक्षसकुले विपन्नसर्वसाधनस्य निहतवीरपुरुषस्य स्वयं च प्राणसंशयं प्राप्तस्येदानीमपि प्रसन्नत्वं नोपगच्छति महाराजस्य बुद्धिः । को हि नाम,

---

अन्वयः—वालतोरणद्वारं = प्रवालैः कृतं तोरणद्वारम् । अशून्यं कुरुते = तिष्ठति, रक्षतीत्यर्थः ।

व्याख्या—विपद्यमानाभ्युदये विनश्यत्सम्पत्तौ । प्रसन्नत्वम् = प्रसादगुणयुक्तत्वम् ।

(तदनन्तर राक्षस काञ्चुकीय प्रवेश करता है)

राक्षस काञ्चुकीय—यहाँ कौन है जो प्रबालमय तोरणद्वार को अशून्य कर रहा है ?

(अन्य राक्षस प्रवेश कर)

राक्षस—आर्य ! यह मैं हूँ । क्या करना है ?

काञ्चुकीय—जाओ । महाराज की आज्ञा से विद्युज्जिह्व को बुलाओ ।

राक्षस—आर्य ! जैसी आज्ञा (निकल जाता है) ।

काञ्चुकीय—हाय ! उन्नति नष्ट होने वाले राक्षस कुल में जिसके सभी साधन नष्ट हो गये हैं और वीर मारे गये हैं और जिनका स्वयं प्राण सन्देह में पड़ गये हैं ऐसे महाराज की बुद्धि प्रसन्न (ठीक) नहीं हो रही है ।

चलत्तरङ्गाहतभीमवेलमुदीर्णनक्राकुलनीलनीरम् ।
समुद्रमाक्रान्तमवेक्ष्य तस्मै दारप्रदानान्न करोति शान्तिम् ॥ १ ॥

अपि च,

प्रहस्तप्रमुखा वीराः कुम्भकर्णपुरस्सराः ।
निहता राघवेणाद्य शक्रजिच्चापि निर्गतः ॥ २ ॥

एवमपि गते,

मदनवशगतो महानयार्थं सचिववचोऽप्यनवेक्ष्य वीरमानी ।

अन्वयः—चलत्तरङ्गाहतभीमवेलम् उदीर्णनक्राकुलनीलनीरं समुद्रम् आक्रान्तम् अवेक्ष्य तस्मै दारप्रदानात् को हि नाम शान्तिं न करोति ॥ १ ॥

व्याख्या—चलत्तरङ्गैः चञ्चलजलधाराभिः आहता ताडिता भीमा वेला तटदेशो यस्य तादृशं उदीर्णैः जलोपर्युद्गतैः नक्रैः आकुलं व्याप्तं नीलं नीरं जलं यस्य तादृशं समुद्रम् आक्रान्तं पराजितमित्यर्थः अवेक्ष्य दृष्ट्वा तस्मै रामाय दारप्रदानात् सीताप्रत्यर्पणात् को हि बुद्धिमान् शान्तिं सन्धिमित्यर्थः न करोति । राममेतादृशं शक्तिमन्तं दृष्ट्वा कोऽपि बुद्धियुक्तो जनः तेन सह सन्धिं कुर्यात् । यदि रावणः शान्तिं न करोति तर्हि तस्य महाननय इत्यर्थः ॥ १ ॥

अन्वयः—कुम्भकर्णपुरस्सराः प्रहस्तप्रमुखाः वीराः राघवेण निहताः । अद्य शक्रजित् च अपि निर्गतः ॥ २ ॥

व्याख्या—कुम्भकर्णपुरस्सराः कुम्भकर्णः पुरस्सरः अग्रगण्यः येषां ते प्रहस्तप्रमुखाः प्रहस्तः प्रमुखः प्रधानः येषां ते वीराः शूराः राघवेण रामेण युद्धे निहताः हताः । अद्य शक्रजित् इन्द्रजित् चापि युद्धाय निर्गतः गतः ॥२॥

अन्वयः—मदनवशगतः वीरमानी योद्धुकामः महानयार्थं सचिववचः अपि अनवेक्ष्य तस्य रघुकुलवृषभस्य देवीं जनकसुतां न ददाति ॥ ३ ॥

व्याख्या—मदनवशगतः कामपराधीनचेताः वीरमानी आत्मानं वीरं

चपल तरङ्गों से भयंकर तट को आहत करने वाले, तथा उछल रहे नक्रों से आकुल जल वाले समुद्र को आक्रान्त (तर्जित) देख कर स्त्री लौटा कर कौन शान्ति नहीं करेगा ? ॥ १ ॥

और

राघव ने युद्ध में कुम्भकर्ण और प्रहस्त आदि वीरों को मार डाला और आज इन्द्रजित् भी (युद्ध के लिये) निकल गया ॥ २ ॥

रघुकुलवृषभस्य तस्य देवीं जनकसुतां न ददाति योद्धुकामः ॥३॥

(प्रविश्य)

विद्युज्जिह्वः—अपि सुखमार्यस्य ।

काञ्चुकीयः—विद्युज्जिह्व ! गच्छ, महाराजवचनाद् रामलक्ष्मणयोः शिरःप्रतिकृतिरानीयताम् ।

विद्युज्जिह्वः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

काञ्चुकीयः—यावदहमपि महाराजस्य प्रत्यन्तरीभविष्यामि ।

(निष्क्रान्तः ।)

विष्कम्भकः ।

मन्यमानः योद्धुकामः युद्धप्रेमी रावणः महानयार्थं सुनीतियुक्तं सचिववचः मन्त्रिणां वचनं हितोपदेशमपि अनवेक्ष्य उपेक्षितं कृत्वा तस्य रघुकुलवृषभस्य रघुवंशवरिष्ठस्य देवीं पत्नीं जनकसुतां जनकराजस्य पुत्रीं जानकीं न ददाति प्रत्यर्पयति ॥ ३ ॥

ऐसा होने पर भी—

काम के वशी अपने को वीर मानने वाले (रावण) युद्ध की इच्छा से मन्त्रियों की महती नीति से पूर्ण वचनों की उपेक्षा कर राम की प्रिया जनक सुता देवी को नहीं देते हैं ॥ २ ॥

(प्रवेश कर)

विद्युज्जिह्व—आर्य सुखी तो हैं ?

काञ्चुकीय—विद्युज्जिह्व ! जाओ । महाराज की आज्ञा से राम और लक्ष्मण के शिरों की प्रतिकृति (कृत्रिम आकृति) ले आवो ।

विद्युज्जिह्व—जैसी महाराज की आज्ञा (निकल जाता है) ।

काञ्चुकीय—तो मैं भी महाराज के पास जाता हूँ ।

(निकल जाता है)

विष्कम्भक

(ततः प्रविशति राक्षसीगणपरिवृता सीता)

सीता—किण्णु हु अय्यउत्तस्य आगमणेण पह्लादिअस्स हिअअस्स अज्ज आवेयो विअ संवृत्तो ! अणिट्ठाणि णिमित्ताणि अ दिस्सन्ति । एवं वि दाणि (अच्चाहिअं ?) हिअअस्स महन्तो अब्भुदओ वड्ढइ । सव्वहा इस्सरा सन्ति करन्तु [किन्नु खल्वार्यपुत्रस्यागमनेन प्रह्लादितस्य हृदयस्याद्यावेग इव संवृत्तः । अनिष्टानि निमित्तानि च दृश्यन्ते । एवमपीदानीं हृदयस्य महानभ्युदयो वर्धते ! सर्वथेश्वराः शान्ति कुर्वन्तु ।]

(ततः प्रविशति रावणः)

रावणः—मा तावद्,

एषा विहाय भवनं मम सम्प्रयाता
नारी नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता ।
लङ्का यदा हि समरे वशमागता मे
पौलस्त्यमाशु परिजित्य तदा गृहीता ॥ ४ ॥

अन्वयः—एषा नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता नारी मम भवनं विहाय संप्रयाता । यदा पौलस्त्यम् आशु परिजित्य लङ्का मे वशम् आगता तदा एषा परिगृहीता ॥ ४ ॥

व्याख्या—एषा पुरोदृश्यमाना नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता नवीनशुभ्रकमलयुक्तहस्ता नारी स्त्री लक्ष्मीः मम भवनं गृहं विहाय संप्रयाता गता । यदा पौलस्त्यं पुलस्त्यपौत्रं ममाग्रजं कुबेरमित्यर्थः आशु झटिति परिजित्य जित्वा लङ्का मे वशमागंता तदैव परिगृहोता मम वशम् आगताऽऽसीत् ॥ ४ ॥

(तदनन्तर राक्षसी समूहों से घिरी सीता प्रवेश करती हैं)

सीता—आर्यपुत्र के आगमन से आह्लादित हृदय में आज उद्वेग क्यों हो गया । बुरे निमित्त दिखाई पड़ रहे हैं । ऐसा होने पर भी हृदय का महान् अभ्युदय हो रहा है । देवता सभी शान्ति करें ।

(तदनन्तर रावण प्रवेश करता है)

रावण—यह हाथ में नवीन कमल लिये स्त्री मेरे भवन को छोड़कर

भवति ! तिष्ठ तिष्ठ । न खलु न खलु गन्तव्यम् । किं ब्रवीषि—उत्सृज्य त्वां राममुपगच्छामीति । आः अपध्वंस ।

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये ।
बलादेव ग्रहीष्ये त्वां हत्वा राघवमाहवे ॥ ५ ॥

किमनया । यावदहमपि सीतां विलोभयिष्ये (मदनावेशं निरूप्य); अहो नु खल्वतुलबलता कुसुमधन्वनः कुतः,

निद्रां मे निशि विस्मरन्ति नयनान्यालोक्य सीताननं
तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुतरा याता तनुः पाण्डुताम् ।
सन्तापं रमणीयवस्तुविषये बध्नाति पुष्पेषुणा
कष्टं निर्जितविष्टपत्रयभुजो निर्जीयते रावणः ॥ ६ ॥

अन्वयः—तदा वैश्रवणालये बलात् एव गृहीता असि । आहवे राघवं हत्वा त्वां बलात् एव ग्रहीष्ये ॥ ५ ॥

व्याख्या—तदा कुबेरविजयावसरे वैश्रवणालये विश्रवसः पुत्रः वैश्रवणः कुबेरस्तस्य आलये भवने बलात् हठात् एव गृहीता असि । पुनराहवे युद्धे राघवं हत्वा त्वां लक्ष्मीं बलात् एव ग्रहीष्ये वशमानयिष्यामि ॥ ५ ॥

अन्वयः—मे नयनानि सीताननं आलोक्य निशि निद्रां विस्मरन्ति । तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुतराः तनुः पाण्डुतां याता (तथा) रमणीयवस्तुविषये संतापं बध्नाति । कष्टं निर्जितविष्टपत्रयभुजः रावणः पुष्पेषुणा निर्जीयते ॥ ६ ॥

जा रही है । जब लङ्का पौलस्त्य (कुबेर) को जीतकर मेरे वश में आयी थी तब मैंने इसका परिग्रहण किया था ॥ ४ ॥

देवि ! रुको । रुको । नहीं जाना चाहिये । क्या कहती हो—'तुम्हें छोड़कर राम के पास जा रही हूँ ।' अरे ! हटो ।

उस समय कुबेर के गृह में तुम्हें बल से ही मैंने ग्रहण किया था । (अब) राम को युद्ध में मारकर बलपूर्वक ही तुम्हें ग्रहण करूँगा ॥ ५ ॥

इससे क्या ? तब तक मैं भी सीता को प्रलोभित करूँ (कामावेश का अनुभव कर) पुष्पधन्वा की अतुलनीय बलशालिता है । क्योंकि सीता के

(उपेत्य)

सीते ! त्यज त्वमरविन्दपलाशनेत्रे !
चित्तं हि मानुषगतं मम चित्तनाथे ! ।
शस्त्रेण मेऽद्य समरे विनिपात्यमानं
प्रेक्षस्व लक्ष्मणयुतं तव चित्तकान्तम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—मे मम रावणस्य नयनानि विंशतिर्नेत्राणि निशि रात्रौ निद्रां विस्मरन्ति त्यजन्ति। तत्संश्लेषणसुखार्थिनी तस्याः सीतायाः संश्लेषस्य आलिङ्गनस्य सुखार्थिनी सुखमिच्छन्ती तनुतराः कृशतरा दुर्बला तनुः शरीरं पाण्डुतां याता पीतवर्णं प्राप्ता। रमणीयवस्तुविषये कस्मिंश्चिदपि सुन्दरविषये मे मनः संतापं बध्नाति संतापानुभवं कुरुते। हा कष्टं दुःखम्। निर्जितविष्टपत्रयभुजः निर्जितं विष्टपत्रयं लोकत्रयं भुजाभिर्येनासौ त्रैलोक्यजयी रावणः पुष्पेषुणा कामेन निर्जीयते पराजितः क्रियते ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अरविन्दपलाशनेत्रे मम चित्तनाथे सीते ! त्वं मानुषगतं चित्तं त्यज। समरे मे शस्त्रेण लक्ष्मणयुतं तव चित्तकान्तं अद्य विनिपात्यमानं प्रेक्षस्व ॥ ७ ॥

व्याख्या—हे अरविन्दपलाशनेत्र पद्मपत्रनेत्रे मम चित्तनाथे हृदयाधीश्वरि सीते त्वं मानुषगतं रामगतं हृदयं त्यज परिहर। समरे युद्धे मे शस्त्रेणाद्य लक्ष्मणयुतं लक्ष्मणसहितं तव चित्तकान्तं हृदयहारिणं रामं विनिपात्यमानं निपात्यमानं हन्यमानमित्यर्थः प्रेक्षस्व अवलोकय ॥ ७ ॥

नेत्रों को देख कर मेरे नेत्र रात्रि में निद्रा को भूल जाते हैं। उसके आलिङ्गन के सुख की इच्छा वाली मेरी कृश देह पीली पड़ गयी है और रमणीय वस्तु के विषय में संताप का अनुभव करती है (सीता के सामने सभी रमणीय वस्तुयें तुच्छ हैं) हाय ! तीनों लोकों को जीतने वाली भुजाओं वाला रावण फूलों के वाणों वाले (काम) के द्वारा जीत लिया गया ॥ ६ ॥

(पास जाकर)

हे मेरे चित्त की स्वामिनि ! कमल पत्रों के समान नेत्रों वाली सीते ! मनुष्य में लगा चित्त छोड़ो। अपने मन के प्रिय को लक्ष्मण के साथ समर में मेरे शस्त्र से गिराया जाता देखो ॥ ७ ॥

सीता—हं मूढो खु सि रावणओ, जो मन्दरं हत्थेण तुलयिदुकामो ।
[हं मूढः खल्वसि रावणकः, यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः]

(प्रविश्य)

राक्षसः—जयतु महाराजः ।

एते तयोर्मानुषयोः शिरसी राजपुत्रयोः ।
युधि हत्वा कुमारेण गृहीते त्वत्प्रियार्थिना ॥ ८ ॥

रावणः—सीते ; पश्य पश्य तयोर्मानुषयोः शिरसी ।

सीता—हा अय्यउत्त ! (इति मूर्च्छिता पतति) (हा आर्यपुत्र !)

रावणः—

सीते ! भावं परित्यज्य मानुषेऽस्मिन् गतायुषि ।
अद्यैव त्वं विशालाक्षि ! महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ९ ॥

अन्वयः—तयोः भानुषयोः राजपुत्रयोः एते शिरषी त्वत्प्रियार्थिना कुमारेण युधि हत्वा गृहीते ॥ ८ ॥

व्याख्या—तयोः सीतासंश्रयभूतयोः मानुषयो मनुष्ययोः राजपुत्रयोः दशरथतनयोः रामक्ष्मणयोः एते उभे शिरसी मस्तके त्वत्प्रियार्थिनां तव हितेच्छुना कुमारेण मेघनादेन युधि तौ हत्वा गृहीते ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे सीते ! अस्मिन् गतायुषि मानुषे भावं परित्यज्य (मां) भजस्व । हे विशालाक्षि अद्य एव त्वं महतीं श्रियम् आप्नुहि ॥ ९ ॥

सीता—यह तुच्छ रावण मूर्ख है जो हाथ से मन्दर पर्वत को तोलना (उठाना) चाहता है ।

(प्रवेश कर)

राक्षस—महाराज की जय हो ।

ये उन दोनों मनुष्य राजपुत्रों के शिर हैं । तुम्हारे प्रिय की इच्छा वाले कुमार (मेघनाद) ने इन्हें युद्ध में मार कर लाया है ।। ८ ।।

रावण—हे सीते ! उन दोनों मनुष्यों के दोनों शिरों को देखो !

सीता—हा ! आर्यपुत्र ! (यह कहकर मूर्छित हो जाती हैं)

रावण—हे सीते ! इस मृत मनुष्य में भाव (प्रेम) छोड़कर (मुझमें प्रेम करो) आज ही हे विशाल नेत्रों वाली ! तुम महती लक्ष्मी को प्राप्त करो ।।९।।

सीता—(प्रत्यभिज्ञाय) हा अय्यउत्त ! परिमलणवकमलसण्णिहे वदणे परिवृत्तणअणे पेक्खन्ती अदिधीरा खु म्हि मन्दभाआ। हा अय्यउत्त ! एदस्सिं दुःखआसरे मं णिक्खिविअ कहिं गदो सि। जाव ण मरामि। किं णु खु अलिअं एदं भवे। भद्द ! जेण असिणा अय्यउत्तस्स असदिसं किदं, तेण मं वि मारेहि। [हा आर्यपुत्र ! परिमलनवकमलसन्निभे वदने परिवृत्तनयने पश्यन्ती अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा। हा आर्यपुत्र ! एतस्मिन् दुःखसागरे मां निक्षिप्य कुत्र गतोऽसि। यावन्न म्रिये। किन्तु खल्वलीकमेतद् भवेत्। भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृतं तेन मामपि मारय।]

रावणः—

व्यक्तमिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन् नराधमे।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा केन त्वं मोक्षयिष्यसे ॥ १० ॥

व्याख्या—हे सीते अस्मिन् गतायुषि मृते मानुषे भावं प्रेम परित्यज्य त्यक्त्वा मां भजस्वेति शेषः। हे विशालाक्षि विशालनेत्रे ! अद्य एव त्वं महतीं विशालां श्रियं ऐश्वर्यम् आप्नुहि प्राप्नुहि ॥ ९ ॥

अन्वयः—इन्द्रजिता युद्धे भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह तस्मिन् नराधमे हते त्वं केन मोक्षयिष्यसे।

व्याख्या—इन्द्रजिता मेघनादेन व्यक्तं स्पष्टं युद्धे समरे भ्रात्रा अनुजन्मना लक्ष्मणेन सह तस्मिन् नराधमे रामे हते त्वं केन मोक्षयिष्यसे बन्धनमुक्ता करिष्यसे। न कोऽपि ते त्रातेत्यर्थः ॥ १० ॥

सीता—(पहचान कर) हाय आर्यपुत्र ! नवीनकमलतुल्य सुगन्धयुक्त एवं विशाल नेत्रों वाले इन दोनों मुखों को देखकर मैं अन्दभागिनी अत्यन्त धीर हूँ। हाय ! आर्यपुत्र ! इस दुःखसागर में मुझे डाल कर कहाँ चले गये। मैं मरूँगी नहीं। किन्तु यह झूठा हो। भद्र पुरुष ! जिस तलवार से आर्यपुत्र का अनुचित (वध) किया उससे मुझे भी मारो।

रावण—इन्द्रजित् द्वारा युद्ध में लक्ष्मण सहित उस नराधम (राम) के मारे जाने पर अब किसके द्वारा छुड़ाई जावोगी ॥ १० ॥

(नेपथ्ये) रामेण रामेण ।

सीता—चिरं जीव ।

(प्रविश्य)

राक्षसः—(ससम्भ्रमम) रामेण रामेण

रावणः—किं रामेण रामेणेति प्रलपसि ।

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अतिपातिवृत्तान्तनिवेदनत्वरयावस्थान्तरं नावेक्षितम् ।

रावणः—ब्रूहि ब्रूहि । किं कृतं मनुजतापसेन ।

राक्षसः—श्रोतुमर्हति महाराजः तेन खलु,

उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन लङ्केश्वरं त्वामभिभूय शीघ्रम् ।
सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥ ११ ॥

अन्वयः—उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन सलक्ष्मणेन राघवेण लङ्केश्वरं त्वाम् अभिभूय अद्य ते सुतः प्रसह्य हतः ॥ ११ ॥

व्याख्या—उद्दीर्णसत्त्वेन ख्यातबलेन महाबलेन महाबलशालिना सलक्ष्मणेन लक्ष्मणसहितेन राघवेण रामेण लङ्केश्वरं लङ्काधिपतिं त्वाम् अभिभूय तिरस्कृत्य अद्य ते सुतः पुत्रो मेघनादः प्रसह्य बलपूर्वकं हत । व्यापादितः ॥ ११ ॥

(नेपथ्य में) राम के द्वारा । राम के द्वारा ।

सीता—दीर्घजीवी होवो ।

(प्रवेश कर)

राक्षस (व्यग्रता से)—राम के द्वारा । राम के द्वारा ।

रावण—क्या राम के द्वारा, राम के द्वारा प्रलाप कर रहे हो ।

राक्षस—महाराज प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ! आवश्यक कार्य की सूचना की शीघ्रता से अवस्था विशेष का ध्यान नहीं किया ।

रावण—कहो ! कहो ! मनुष्य तपस्वी ने क्या किया ?

राक्षस—महाराज सुनें । उसने

प्रकृष्ट बल वाले महाबल (शक्ति-सेना) सम्पन्न उस लक्ष्मण सहित राम

रावणः—आः दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

राक्षसः—प्रसीदतु महाराजः । महाराजपादमूले कुमारमन्तरेणानृतं नाभिधीयते ।

रावणः—हा वत्स । मेघनाद ! (इति मूर्च्छितः पतति ।)

राक्षसः—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(प्रत्यभिज्ञाय)

हा वत्स ! सर्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानतवैरिपक्ष !!

अन्वयः—येन समरे सेन्द्राः देवाः जिताः दैत्याः च पराङ्मुखाः सः अपि इन्द्रजित् मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—येन इन्द्रजिता समरे युद्धे सेन्द्राः इन्द्रसहिताः देवाः जिताः दैत्याः पराङ्मुखाः पृष्ठप्रदर्शिनः कृताः स अपि एतादृशोऽपि बलशाली इन्द्रजित् युद्धे मानुषेण मनुष्येण निहन्यते अपि हन्यते इत्याश्चर्यमविश्वनीयं च ॥ १२ ॥

अन्वयः—हा वत्स ! सर्व जगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र ! हा वत्स !

ने आप लङ्केश्वर को युद्ध में शीघ्रता पूर्वक पराजित कर आपके पुत्र को मार डाला ॥ ११ ॥

रावण—हे दुष्ट ! युद्ध में डरपोक !

जिसने इन्द्र सहित देवताओं को जीता और जिससे दैत्य भी पराजित हुये वही इन्द्रजित् युद्ध में मनुष्य द्वारा मारा गया ॥ १२ ॥

राक्षस—महाराज प्रसन्न हो । कुमार के विषय में आपसे अनृत नहीं कहा जायेगा ।

रावण—हा वत्स मेघनाद ! (ऐसा कह कर मूर्छित होकर गिर जाता है)

राक्षस—महाराज धैर्य धारण करें । धैर्य धारण करें ।

रावण—(संज्ञा प्राप्त कर)

हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धशौण्ड !
हा वत्स ! मामिह विहाय गतोऽसि कस्मात् ॥ १३ ॥

(इति मोहमुपगतः ।)

राक्षसः—हा धिक् त्रैलोक्यविजयी लङ्केश्वर एतामवस्थां प्रापितो हतकेन विधिना । महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(समाश्वस्य) इदानीमनर्थहेतुभूतया सीतया किमनया त्रैलोक्यविजयविफलया चपलया श्रिया च । किं भोः कृतान्तहतक ! अद्यापि भयविह्वलोऽसि !

वासवजित् ! आनतवैरिचक्र ! हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धशौण्ड ! हा वत्स ! कस्मात् माम् इह विहाय गतः असि ॥ १३ ॥

व्याख्या—मेघनादस्य गुणान् स्मृत्वा रावणो विलपति—हा वत्स ! पुत्र ! सर्वंजगतां समस्तलोकानां ज्वरकृत् सन्तापकृत् ! कृतास्त्र अस्त्रविद्यानिपुण ! वासवजित् इन्द्रजयिन् ! आनतवैरिचक्र ! शत्रूणां वशीकारक ! वीर ! गुरुवत्सल गुरुप्रिय ! युद्धशौण्ड युद्धपराक्रमिन् कस्मात् केन कारणेन मां पितरम् इह लोके विहाय गतः असि । एतादृशस्य ते गुणशालिनः बलशालिनश्च मरणमनुचितमित्यर्थः ॥ १३ ॥

हे सभी जगत् के ज्वर (दुःख) करने वाले वत्स ! अस्त्रविद्या में निपुण ! इन्द्र को जीतने वाले ! शत्रुओं को विनत करने वाले ! वीर ! गुरुप्रेमी ! युद्ध में पराक्रमी ! वत्स ! यहाँ मुझे छोड़कर क्यों चले गये ॥ १३ ॥

(ऐसा कहकर मूर्छित हो जाता है)

राक्षस—हाय ! धिक्कार है । दुर्भाग्य ने त्रैलोक्य विजयी रावण को इस अवस्था में पहुँचा दिया । महाराज ! धैर्य धारण करें । धैर्य धारण करें ।

रावण—(आश्वस्त होकर) अब इस अनर्थ की कारणभूता सीता तथा त्रैलोक्य विजय से प्राप्त इस लक्ष्मी से क्या ? अरे दुष्ट यमराज ! आज भी भय विह्वल हो ।

इदानीमपि निःस्नेहो वत्सेनेन्द्रजिता विना।
कष्टं कठोरहृदयो जीवत्येष दशाननः॥ १४॥

(इति सन्तापात् पतति)

राक्षसः—हा भो रजनीचरवीराः। एवंगते राजन्यन्तःकक्ष्यास्थिताः रक्षिणश्चाप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः।

(नेपथ्ये)

भो भो रजनीचरवीराः ! समरमुखनिरस्तप्रहस्तनिकुम्भकुम्भकर्णेन्द्रजिद्विकलबलजलधिजनितभयचकितविमुखाः ! चपलपलायनमनुचितमविरतममरसमराणि जितवतां भवताम्, अथ च विश्वलोकविजयविख्यातविशद् बहुशालिनि भर्तर्यत्र स्थितवति लङ्केश्वरे।

रावणः—(श्रुत्वा सामर्षम्) गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

अन्वयः—वत्सेन इन्द्रजिता बिना इदानीम् अपि निःस्नेहः कठोरहृदयः एष दशाननः जीवति इति कष्टम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—वत्सेन पुत्रेण इन्द्रजिता शक्रजिता विना इदानीम् अपि निःस्नेहःस्नेहरहितः कठोरहृदयः कठिनहृदयः एष दशाननः रावणः जीवति इति कष्टम् धिक्कृतम् ॥ १४ ॥

कष्ट है ! इस समय भी वत्स इन्द्रजित् के बिना स्नेहरहित तथा कठोर हृदय यह दशानन जी रहा है ॥ १४ ॥

(ऐसा कहकर दुःख से गिर पड़ता है)

राक्षस—हे राक्षसवीरो ! राजा की इस अवस्था में पहुँचने पर महल की अन्तःकक्षा में स्थित होकर आप रक्षकगण सावधानी से रक्षा करें।

(नेपथ्य में)

हे रजनीचरवीरो ! समर में मारे गये प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् के कारण विकल सेना रूपी समुद्र में उत्पन्न भय से आश्चर्यान्वित तथा पराङ्मुख वीरो ! लगातार देवों के युद्ध को जीतने वाले आपलोगों के लिये शीघ्रता से भागना अनुचित है तथा समस्तलोकों के विजय में विख्यात बीस भुजाओं वाले स्वामी लङ्केश्वर के रहते (आप लोगों का भागना अनुचित है)

रावण—(सुनकर क्रोध से)—जाओ। पुनः समाचार ज्ञात करो।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । एष हि रामः,

धनुषि निहितबाणस्त्वामतिक्रम्य गर्वा-
द्धरिगणपरिवारो हाससम्फुल्लनेत्रः ।
रणशिरसि सुतं ते पातयित्वा तु राज-
न्नभिपतति हि लङ्कां सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १५ ॥

रावणः—(सहसोत्थाय सरोषम्) क्वासौ क्वासौ (असिमुद्यम्य)

वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधारः
क्रोधोपहारमसिरेष विधास्यति त्वाम् ।

अन्वयः—हे राजन् ! धनुषि निहितबाणः हरिगणपरिवारः हाससंफुल्लनेत्रः गर्वात् त्वाम् अतिक्रम्य रणशिरसि ते सुतं पातयित्वा लङ्कां संदिधक्षुः यथा इव अभिपतति ॥ १५ ॥

व्याख्या—हे राजन् धनुषि कार्मुके विहितबाणः सज्जबाणः हरिगणपरिवारः वानरवृन्दयुतः हाससंफुल्लनेत्रः हासेन प्रसन्नतयेत्यर्थः फुल्लनेत्रः विकसितनेत्रः रामः गर्वात् दर्पेण त्वामतिक्रम्य पराजित्य रणशिरसि समरमुखे ते तव सुतं पुत्रं मेघनादं पातयित्वा निपात्य लङ्कां संदिधक्षुः दग्धुकामः यथैव इव अभिपतति आयाति ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे क्षुद्र ! वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधारः एष मत्करस्थः असिः त्वाम् क्रोधोपहारं विधास्यति । सम्प्रति (त्वाम्) अनिमिषाः भवन्तु । हे कुतापस ! तिष्ठ । क्व यास्यसि ?

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा (जाकर तथा पुनः आकर) महाराज की जय हो । यह राम,

हे राजन् ! आपको गर्व से अतिक्रमण (तिरस्कृत) कर धनुष पर बाण रखे तथा वानर वीरों से युक्त प्रसन्न नेत्र वाले ये राम संग्राम में आपके पुत्र को गिराकर लङ्का को मानो जलाने के लिए आ रहे हैं ॥ १५ ॥

रावण (सहसा उठकर क्रोध से)—वह कहाँ है ? कहाँ है (तलवार उठाकर)

सम्प्रत्यवन्त्वनिमिषा इह मत्करस्थः
क्षुद्र ! क्व यास्यसि कुतापस ! तिष्ठ तिष्ठ ॥ १६ ॥

राक्षसः—महाराज ! अलमतिसाहसेन ।

सीता—अणिट्ठाणि अणरुहाणि अणिमित्ताणि इदाणिं करअतस्स रावणस्स अइरेण मरणं भविस्सदि । [अनिष्टान्यनर्हाण्यनिमित्तानीदानीं कुर्वतो रावणस्याचिरेण मरणं भविष्यति ।]

रावणः—अस्याः कारणेन बहवो भ्रातरः सुताः सुहृदश्च मे निहताः । तस्मादमित्रविषयमस्या हृदयं भित्त्वा कृष्टान्त्रमालालङ्कृतः खड्गाशनिपातेन समनुजयुगलं सकलवानरकुलं ध्वंसयामि ।

व्याख्या—हे क्षुद्र राम ! वज्रीभः इन्द्रगजस्तस्य कुम्भतटस्य भेदेन कठोरधारः यस्य तादृशः ऐरावतकुम्भप्रहारेण कठोरधारः मत्करस्थः एष चन्द्रहासो नाम असिः त्वाम् क्रोधोपहारं कोपबलिं विधास्यति करिष्यति । सम्प्रतीदानीमनिमिषा देवास्त्वाम् अवन्तु रक्षन्तु रक्षणे न समर्था इत्यर्थः । हे कुतापस मिथ्या तापस ! तिष्ठ स्थिरो भव । क्व यास्यसि गमिष्यसि । इदानीं न त्वं गन्तुं क्षम इति ॥ १६ ॥

हे निकृष्ट तपस्वी राम ! इन्द्र के हाथी (ऐरावत) के मस्तक को विदीर्ण करने में कठोर धार वाला यह मेरे हाथ में स्थित तलवार (चन्द्रहास) तुम्हें मेरे क्रोध का उपहार बनायेगी । अब देवता (अनिमिषा।) तुम्हारी रक्षा करें । हे क्षुद्र ! रुको ! कहाँ जावोगे ? ॥ १६ ॥

राक्षस—महाराज ! अत्यन्त साहस न करें ।

सीता—अनिष्ट, अयोग्य (अनुचित) तथा अनिमित्त (अमङ्गलकारी) कार्यों को कर रहे रावण का शीघ्र ही अब मरण होगा ।

रावण—इसके कारण से मेरे बहुत से भाई, पुत्र तथा मित्र मारे गये । इसलिये शत्रुभूत इसके हृदय को भेद कर उससे अँतड़ी निकाल कर तथा उसकी माला पहन कर खड्ग रूप वज्र के प्रहार से उन दोनों मनुष्यों (राम-लक्ष्मण) तथा समस्त वानर-परिवार को नष्ट करूँगा ।

रावणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अलमलमिदानीमखिलावलेपमन्तरेणानवरतवृथाप्रयासेन। अवश्यं च स्त्रीवधो न कर्त्तव्यः।

रावणः—तेन हि स्यन्दनमानय।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। इदं स्यन्दनम्।

रावणः—(रथमारुह्य)

समावृतं सुरैरद्य सीते! द्रक्ष्यसि राघवम्।
मम चापच्युतैस्तीक्ष्णैर्बाणैराक्रान्तचेतसम्॥ १७॥

(निष्क्रान्तः सपरिवारो रावणः।)

अन्वयः—हे सीते! अद्य मम चापच्युतैः बाणैः आक्रान्तचेतसं सुरैः समावृतं राघवं द्रक्ष्यसि।

व्याख्या—हे सीते! अद्य राघवं रामं मम चापच्युतैः कार्मुकनिर्सृतैः बाणैः शरैः आक्रान्तचेतसं व्याप्तचेतसं मृतमित्यर्थः सुरैः समावृतं द्रक्ष्यसि। मम बाणैर्मृतो रामः देवप्रियो भविष्यतीत्यर्थः॥ १६॥

इति सांकृत्यायनगङ्गासागरशर्मणा कृतायामभिषेकनाटकटीकायां पञ्चमोऽङ्कः।

राक्षस—महाराज प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। इस समय शत्रु-सेना के सर्व (शक्ति-ज्ञान) को बिना जाने व्यर्थ प्रयास न करें। स्त्री-वध तो अवश्य ही नहीं करना चाहिये।

रावण—तो रथ ले आओ।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा (जाकर तथा पुनः प्रवेश कर) महाराज की जय हो। यह रथ है।

रावण (रथ पर चढ़कर)—हे सीते! आज मेरे धनुष से गिरे तीव्र बाणों से देवताओं सहित राम को नष्ट चेतना वाला देखोगी ?॥ १७॥

(रावण सपरिवार निकल जाता है)

सीता—इस्सरा ! अत्तणो कुलसदिसेण हारित्तेण जदि अहं अणुसरामि अय्यउत्तं, अय्य उत्तस्स विजओ होदु । [ईश्वराः ! आत्मनः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्यार्यपुत्रम्, आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु]

(निष्क्रान्ताः ।)

पञ्चमोऽङ्कः ।

सीता—हे देवो ! यदि मैं अपने कुलोचित चरित्र से आर्यपुत्र की अनुगामिनी हूँ तो आर्यपुत्र की जय हो ।

(सभी निकल जाते हैं)

पञ्चम अङ्क समाप्त ।

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति विद्याधरास्त्रयः ।)

सर्वे—एते स्मो भो ! एते स्मः ।

प्रथमः—इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः

द्वितीयः—रामस्य रावणवधाय कृतोद्यमस्य ।

तृतीयः—संग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः

सर्वे—प्राप्ता वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथमः—चित्ररथ ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरादयो निरन्तरं नभः

अन्वयः—रावणवधाय कृतोद्यमस्य इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः रामस्य संग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णं प्राप्ताः ॥ १ ॥

व्याख्या—रावणवधाय रावणं हन्तुं कृतोद्यमस्य कृतसंभारस्य इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः इक्ष्वाकुवंशस्य विपुलः विशालः उज्ज्वलः निर्मलः दीप्तः भास्वरः केतुः ध्वजस्तस्य इक्ष्वाकुवंशे महतो यशस्विन इत्यर्थः रामस्य संग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः संग्रामस्य युद्धस्य दर्शनकुतूहलेन अवलोकनेच्छया बद्धानि चित्तानि येषां ते वयं हिमवतः हिमशैलस्य शिखरात् उच्चप्रदेशात् शृङ्गात् तूर्णं त्वरया प्राप्ताः स्मः ॥ १ ॥

(तदनन्तर तीन विद्याधर प्रवेश करते हैं)

सभी—हम ये हैं । हम ये हैं ।

प्रथम—इक्ष्वाकुवंश के विपुल उज्ज्वल दीप्त पताका ।

द्वितीय—रावण वध के लिये उद्यत राम के ।

तृतीय—युद्ध देखने के कुतूहल चित्तवाले ।

सभी—हम हिमालय के शिखर से शीघ्रता से आये हैं ।। १ ।।

प्रथम—चित्ररथ ! ये देव, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर आदि आकाश को

कृत्वा स्थिताः। तस्माद् वयमप्येतेषामेतान् गणान् परिहरतः स्वैरमेकान्ते स्थित्वा रामरावणयोर्युद्धविशेषं पश्यामः।

उभौ—बाढम्।

(तथा कृत्वा)

प्रथमः—अहो प्रतिभयदर्शनीया खल्वियं युद्धभूमिः। इह हि,

रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा।
उदधिरिव विभाति युद्धभूमी रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा ॥ २ ॥

द्वितीयः—एवमेतत्।

अन्वयः—रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा युद्धभूमिः उदधिः इव विभाति ॥ २ ॥

व्याख्या—रजनिचरशरीरनीरकीर्णा रजनिचराणां राक्षसानां शरीराण्येव नीराणि जलानि तैः कीर्णा व्याप्ता कपिवरवीचियुता कपिवराः वानरश्रेष्ठा एव वीचयस्तरङ्गास्तैर्युता वरासिनक्रा वरासयः श्रेष्ठकरवाला एव नक्रा ग्राहाः तथाभूता रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा रघुवरः रघुश्रेष्ठो रामः स चन्द्रस्तस्य शरांशवः बाणकिरणास्तैः प्रवृद्धवेगा वर्धितवेगा युद्धभूमिः उदधिरिव समुद्र इव विभाति ॥ २ ॥

निरवकाश किये स्थित हैं। तो हम इनके गणों को छोड़कर एकान्त में स्थित होकर इच्छानुसार राम-रावण के युद्ध की विशेषता को देखें।

दोनों—ठीक है।

(वैसा करके)

प्रथम—अहा! यह युद्धभूमि देखने में भयंकर है। यह—

यह भूमि रामचन्द्र के शर समूहों से प्रवृद्ध वेग वाली, राक्षसों के शरीर रूपी जल से भरी, वानरों रूपी तरङ्ग वाली, तलवारों के ग्राह वाली है और समुद्र के समान प्रतीत हो रही है ॥ २ ॥

द्वितीय—ऐसा ही है।

वृक्ष और शैल से भग्न शिर वाले, मुष्टिप्रहारों से मारे गये चपिचल वाले क्रुद्ध वानर-सेनापतियों से आवृत तथा कण्ठ पकड़ने के लिये खुली

एते पादपशैलभग्नशिरसो मुष्टिप्रहारैर्हताः
क्रुद्धैर्वानरयूथपैरतिबलैरुत्पुच्छकर्णैर्वृताः ।
कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैर्दंष्ट्रोष्ठतीव्रैर्मुखैः
शैला वज्रहता इवाशु समरे रक्षोगणाः पातिताः ॥ ३ ॥

तृतीयः—एते चापि द्रष्टव्या भवद्भ्यां

निशितविमलखड्गाः क्रोधविस्फारिताक्षा
विमलविकृतदंष्ट्रा नीलजीमूतकल्पाः ।

अन्वयः—कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैः दंष्ट्रोष्ठतीव्रैर्मुखैः उत्पुच्छकर्णैः अतिबलैः क्रुद्धैः वानरयूथपैः वृता एते रक्षोगणाः पादपशैलभग्नशिरसः मुष्टिप्रहारैः हताः वज्रहता शैला इव समरे पातिताः ॥ ३ ॥

व्याख्या—कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैः कण्ठग्रहणकर्मण्पि क्रोधवशाद्विवृत्तानि उन्मीलितानि तुङ्गनयनानि दीर्घनेत्राणि येषां तथोक्तैः दंष्ट्रोष्ठतीव्रैर्मुखैः दंष्ट्रयोष्ठेन तीव्राणि भयंकराणि मुखानि येषां तथोक्तैः उत्पुच्छकर्णैः उद्गतपुच्छानि कर्णानि च येषां तथोक्तैः अतिबलैः महाबलयुक्तैः क्रुद्धैः वानरयूथपैः वानरसेनापतिभिः वृताः आवृताः एते रक्षोगणा रक्षःसमूहाः पादपशैलभग्नशिरसः पादपैः वृक्षैः शैलैः शिलाभिश्च भग्नानि शिरांसि येषां तथोक्ताः मुष्टिप्रहारैः मुष्टयाघातैः हताः मारिताः वज्रहताः वज्रप्रहारैर्हताः शैला पर्वता इव समरे युद्धे आशु पतिताः ॥ ३ ॥

अन्वयः—निशितविमलखड्गाः क्रोधविस्फारिताक्षाः विमलविकृतदंष्ट्राः नीलजीमूतकल्पाः विवृतवक्त्राः राक्षसाः हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामाः सम्पतन्ति ॥ ४ ॥

व्याख्या—निशितविमलखड्गाः, निशितास्तीक्ष्णा विमला स्वच्छाश्च

भारी आखों तथा दंष्ट्रा, ओठ और तीव्र मुखों वाले (वानरों से) वज्रहत पर्वत के समान ये राक्षसगण गिराये गये हैं ॥ ३ ॥

तृतीय—आप दोनों यह भी देखें—

तीक्ष्ण तथा स्वच्छ तलवार वाले, क्रोध से आंखों को फाड़े हुये, स्वच्छ एवं विकृत दाढ़ों वाले वानरसेना के स्वामी सुग्रीव की सेना को मारने की

हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामाः समन्ताद्
रभसविवृतवक्त्रा राक्षसाः संपतन्ति ॥ ४ ॥

प्रथमः—अहो नु खलु,

बाणाः पात्यन्ते राक्षसैर्वानरेषु
द्वितीयः—शैला क्षिप्यन्ते वानरैर्नैर्ऋतेषु ।
तृतीयः—मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुसंघट्टनैश्च
सर्वे—भीमश्चित्रं भोः ! सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

प्रथमः—रावणमपि पश्येतां भवन्तौ,

खड्गा येषां ते तथोक्ताः तीक्ष्णाच्छखड्गधारिणः क्रोधविस्फारिताक्षाः क्रोधेन विस्फारितानि विशदीकृतानि अक्षीणि यैस्ते विमलविकृतदंष्ट्रा विमलाः स्वच्छाः विकृताः विकृतरूपाश्च दंष्टाः दन्ता येषां तथोक्ताः नीलजीभूतकल्पाः नीलमेघतुल्याः रभसविवृतवक्त्रा क्रोधेन विस्फारितमुखाः राक्षसाः हरिगणपतिसैन्यं सुग्रीवस्य चमूं हन्तुकामाः हन्तुमिच्छवः संपतन्ति आगच्छन्ति ।।४।।

अन्वयः—राक्षसैः वानरेषु वाणाः पात्यन्ते । वानरैः नैर्ऋतेषु शैलाः क्षिप्यन्ते । मुष्टिप्रक्षेपैः जानुसंघट्टनैश्च भोः चित्रं भीमः संप्रमर्दः प्रवृत्तः ।।५।।

व्याख्या—राक्षसैः राक्षससैनिकैः वानरेषु वाणाः पात्यन्ते प्रक्षिप्यन्ते वानरैश्च नैर्ऋतेषु राक्षसेषु शैलाः पर्वताः क्षिप्यन्ते । भोः चित्रमाश्चर्यम् ! मुष्टिप्रक्षेपैः मुष्टिपातैः जानुसंघट्टनैश्च जानुभिः संघट्टनैः संघर्षणैश्च भीमः भयंकरः संप्रमर्दः संप्रहारः प्रवृत्तः प्रारब्धः ।। ५ ।।

कामनावाले त्वरा से मुख खोले हुये काले मेघों के समान चारों ओर ये राक्षस आ रहे हैं ।। ४ ।।

प्रथम—अहा ! राक्षस वानरों पर बाण गिरा रहे हैं ।
द्वितीय—वानर राक्षसों पर पर्वत फेंक रहे हैं ।
तृतीय—मुट्ठी मारने और जांघों की रगड़ से ।
सभी—आश्चर्य है ! भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ।। ५ ।।
प्रथम—रावण को भी आप दोनों देखें—

कनकरचितदण्डां शक्तिमुल्लालयन्तं
विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहयन्तम् ।
उदयशिखरमध्ये पूर्णबिम्बं शशाङ्कं
ग्रहमिव भगणेशं राममालोक्य रुष्टम् ॥ ६ ॥

द्वितीयः—राममपि पश्येतां भवन्तौ ।

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-
मन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तम् ।
भूमौ स्थितं रथगतं रिपुमीक्षमाणं
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्त्तिकेयम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—कनकरचितदण्डां शक्तिम् उल्लालयन्तं विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहयन्तं उदयशिखरमध्ये भगणेशं पूर्णबिम्बं शशाङ्कमिव रामम् आलोक्य रुष्ट ग्रहमिव (रावणं पश्येताम्) ॥ ६ ॥

व्याख्या—कनकरचितदण्डां स्वर्णनिर्मितदण्डयुक्तां शक्ति तन्नामकं क्षेपणास्त्रं उल्लालयन्तं करे लालयन्तं विमलविकृतदंष्ट्रं स्वच्छविकृतदंष्ट्रायुक्तं स्यन्दनं रथं वाहयन्तं चालयन्तं उदयशिखरमध्ये उदयाचले भगणेशं राशीनां पति पूर्णबिम्बं संपूर्णमण्डलयुतं शशाङ्कं चन्द्रमसम् इव राममालोक्य दृष्ट्वा रुष्टं क्रुद्धं रावणं पश्येतामिति पूर्वेणान्वयः ॥ ६ ॥

अन्वयः—सव्येन करेण चापमवलम्ब्य अन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तं भूमौ स्थितं वीरं युधि रथगतं रिपुम् क्रौञ्चं गिरिवरं कार्तिकेयं यथा ईक्षमाणं (पश्येताम्) ।

व्याख्या—सव्येन वामेन करेण हस्तेन चापं कोदण्डं धनुरवलम्ब्य

स्वर्णमयी शक्ति (प्रक्षेपणास्त्र) को चलाते हुये, स्वच्छ विकृत दंष्ट्रा वाले, स्यन्दन को चला रहे, उदय शिखर पर पूर्ण विम्ब ग्रहराज शशाङ्क के तुल्य राम को देखकर कुपित ग्रह (राहु) के समान (यह रावण है) ॥ ६ ॥

द्वितीय—राम को भी आप दोनों देखें—

बायें हाथ से धनुष पकड़कर अन्य (दक्षिण) हाथ से बाण चढ़ाते हुए रथस्थ शत्रु को देख रहे भूमि पर खड़े वीर (राम को देखें) जो युद्ध में क्रौञ्च पर्वत को देख रहे कार्तिकेय के सदृश हैं ॥ ७ ॥

तृतीय।—अहह !!!

रावणेन विमुक्तेयं शक्तिः कालान्तकोपमा ।
रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना धनुष्मता ॥ ८ ॥

प्रथमः—शक्तिं निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
रामं प्रत्यैषवं वर्षमभिवर्षति रावणः ॥ ९ ॥

द्वितीयः—अहो रामस्य शोभा ।

गृहीत्वा अन्येन दक्षिणेन करेण सायकवरं बाणश्रेष्ठं परिवर्तयन्तं चालयन्तं भूमौ स्थितं पदातिनमित्यर्थः वीरं शूरं रामं युधि समरे रथगतं रथस्थं रिपुं शत्रुं रावणं क्रौञ्चं तन्नामकं गिरिवरं कार्तिकेयं स्कन्दं यथा इव ईक्षमाणं प्रेक्षन्तं रामं युवां पश्येतामिति पूर्वेणान्वयः । उपमालंकारः ॥ ७ ॥

अन्वयः—रावणेन विमुक्ता इयं कालान्तकोपमा शक्तिः स्मयमानेन धनुष्मता रामेण द्विधा छिन्ना ॥ ८ ॥

व्याख्या—रावणेन विमुक्ता रामोपरि क्षिप्ता कालान्तकोपमा मृत्युसन्निभा शक्तिः तन्नामकक्षेपणास्त्रविशेषः स्मयमानेन प्रहसता धनुष्मता धनुर्धरेण रामेण द्विधा भागद्वये छिन्ना खण्डिता ॥ ८ ॥

अन्वय—शक्तिं निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः रावणः रामं प्रति ऐषवं वर्षम् अभिवर्षति ॥ ९ ॥

व्याख्या—शक्तिं स्वक्षिप्तां शक्तिं निपातितां द्विधा छित्वा निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः क्रोधेन विस्फारितानि दीर्घीकृतानि ईक्षणानि अवलोकनानि यस्य तथोक्तः रावणः रामं प्रति ऐषवं वर्षं बाणवृष्टिम् अभिवर्षति पातयति ॥ ९ ॥

तृतीय—अहा ! रावण से छोड़ी गयी यह कालान्तक (मृत्यु) सदृश शक्ति हँस रहे धनुर्धारी राम के द्वारा दो टुकड़ों में काट दी गई ॥ ८ ॥

प्रथम—शक्ति को गिरायी गई देखकर क्रोध से आँख फाड़े रावण राम पर बाणों की वर्षा कर रहा है ॥ ९ ॥

द्वितीय—अहो ! राम की कैसी शोभा है—

एता रावणजीमूताद् वाणधारा विनिस्सृताः ।
विभान्ति राममासाद्य वारिधारा वृषं यथा ॥ १० ॥

तृतीयः—एष एषः,

कनकरचितचापं तीक्ष्णमुद्यम्य शीघ्रं
रणशिरसि सुधीरं बाणजालं विधुन्वन् ।
रथगतमभियान्तं रावणं याति पद्भ्यां
गजपतिमिव मत्तं तीक्ष्णदंष्ट्रा मृगेन्द्रः ॥ ११ ॥

सर्वे—अये ज्वलित इव प्रभयायं देशः । किन्नु खल्विदम् ।

अन्वयः—रावणजीमूतात् एताः विनिःसृताः वाणधाराः रामम् आसाद्य वृषं वारिधाराः यथा विभान्ति ।। १० ।।

व्याख्या—रावणजीमूतात् रावणरूपमेघात् एताः विनिःसृताः विनिर्गताः बाणधाराः वाणवृष्टयः रामम् आसाद्य प्राप्य वृषं वृषभं वारिधाराः जलधाराः यथा विभान्ति प्रतीयन्ते । यथा वृषभं प्राप्य वारिधाराः विफलास्तथैव राममासाद्य रावणस्य वाणवृष्टिरपि विफलैव ।। १० ।।

अन्वयः—रथगतम् अभियान्तं रावणं तीक्ष्णं कनकरचितचापं शीघ्रम् उद्यम्य सुधीरं बाणजालं विधुन्वन् मत्तं गजपतिं तीक्ष्णदंष्ट्रा मृगेन्द्रः इव रणशिरसि पद्भ्यां रामः याति ।। ११ ।।

व्याख्या—रथगतं रथस्थम् अभियान्तं युद्धाभिमुखं रावणं तीक्ष्णं तीव्रं कनकरचितचापं स्वर्णनिर्मितकोदण्डं शीघ्रम् विधुन्वन् विक्षिपन् मत्तं गजपतिं गजराजं तीक्ष्णदंष्ट्रा तीव्रदशनः मृगेन्द्रः सिंह इव रणशिरसि रणाग्रे रामः पद्भ्यां पदातिरेव याति ।। ११ ।।

रावणरूपी बादल से निकली यह बाणों की धारा राम पर जाकर वैसी ही लग रही है जैसे वृषभ पर जल की धारा ।। १० ।।

तृतीय—ये

शीघ्रता से स्वर्णरचित चाप को उठाकर रण में बाणों के जालों को काटते हुये वीरतापूर्वक पैदल ही रथस्थ रावण के पास जा रहे हैं जैसे मत्त गजराज के पास तीक्ष्ण दाढ़ों वाला मृगराज (सिंह) जाय ।। ११ ।।

सभी—अरे ! यह देश प्रभा से प्रज्वलित जैसा हो गया । यह क्या है ?

प्रथमः—आ युद्धसामान्यजनितशङ्केन महेन्द्रेण प्रेषितो मातलिवाहितो रथः ।

द्वितीयः—उपस्थितं मातलिं दृष्ट्वा तस्य वचनाद् रथमारूढवान् रामः ।

तृतीयः—एष हि,

सुरवरजयदर्पदेशिकेऽस्मिन् दितिसुतनाशकरे रथे विभाति ।
रजनिचरविनाशकारणः संस्त्रिपुरवधाय यथा पुरा कपर्दी ॥१२॥

प्रथमः—अहो महत् प्रवृत्तं युद्धम् ।

शरवरपरिपीततीव्रबाणं नरवरनैर्ऋतयोः समीक्ष्य युद्धम् ।
विरतविविधशस्त्रपातमेते हरिवरराक्षससैनिकाः स्थिताश्च ॥१३॥

अन्वयः—अस्मिन् सुरवरजयदर्पदेशिके दितिसुतनाशकरे रथे पुरा रजनिचरविनाशकारणः सन् कपर्दी त्रिपुरवधाय यथा विभाति ॥ १२ ॥

व्याख्या—अस्मिन् देवराजप्रेषिते सुरवरजयदर्पदर्शिके सुरवरस्य इन्द्रस्य जयदर्पस्य विजयाभिमानस्य देशिके प्रदर्शके दितिसुतनाशकरे दैत्यवधकारके रथे एष रामः पुरा काले रजनिचरविनाशकारणः राक्षससंहारकः सन् कपर्दी शिवः त्रिपुरवधाय त्रिपुरदैत्यनाशाय यथा इव विभाति ॥ १२ ॥

अन्वयः—नरवरनैर्ऋतयोः शरवरपरिपीततीव्रबाणं युद्धं समीक्ष्य एते हरिवरराक्षससैनिकाः विरतविविधशस्त्रपातं स्थिताः च ॥ १३ ॥

व्याख्या—नरवरनैर्ऋतयोः नरश्रेष्ठरामराक्षसरावणयोः शरवरपरिपीततीव्रबाणं शरवरैः बाणश्रेष्ठैः परिपीताः निगलिता तीव्रा बाणा यस्मिन्

प्रथम—असामान्य युद्ध की शङ्का से इन्द्र द्वारा मातलि द्वारा चलाया जा रहा यह रथ भेजा गया है ।

द्वितीय—मातलि को आया देख उनके वचन से राम रथ पर चढ़ गये ।

तृतीय—देवराज इन्द्र को जयदर्प का उपदेश देने वाले इस दैत्यवंश के नाशक रथ पर राम वैसे ही शोभित हो रहे हैं जैसे राक्षकों के विनाशक होकर त्रिपुरवध के समय शिव प्रतीत होते थे ।। १२ ।।

प्रथम—अहा ! महत् युद्ध प्रारम्भ हो गया ।

मनुष्य श्रेष्ठ राम और राक्षस (रावण) के श्रेष्ठ बाण से (दूसरे)

द्वितीयः—अहो नु खलु,

चारीभिरेतौ परिवर्तमानौ रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ ।
स्वरश्मिजालैर्धरणिं दहन्तौ सूर्याविव द्वौ नभसि भ्रमन्तौ ॥ १४ ॥

तृतीयः—रावणमपि पश्येतां भवन्तौ ।

शरैर्भीमवेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वजं चापि शीघ्रं बलेनाभिहत्य ।
महद् बाणवर्षं सृजन्तं नदन्तं हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तम् ॥ १५ ॥

एतादृश युद्धं द्वन्द्वं समीक्ष्य दृष्ट्वा एते पुरोदृश्यमानाः हरिवरराक्षससैनिकाः सुग्रीवसैनिका रावणसैनिकाश्च विरतविविधशस्त्रपातं यथा स्यात्तथा शस्त्रप्रहाराद्विरम्येत्यर्थः स्थिताः युद्धदिदृक्षवोऽवस्थिताः निश्चलाः जाताः ॥१३॥

अन्वयः—एतौ चारीभिः परिवर्तमानौ रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ नभसि भ्रमन्तौ द्वौ सूर्यौ इव स्वरश्मिजालैः धरणिं दहन्तौ (प्रतीयेते) ॥ १४ ॥

व्याख्या—एतौ सम्मुखस्थितौ चारीभिः युद्धोपयुक्तगतिभिः परिवर्तमानौ गच्छन्तौ रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ उत्सृजन्तौ द्वौ सूर्यौ इव नभसि आकाशे भ्रमन्तौ स्वरश्मिजालैः स्वकिरणैः धरणिं दहन्तौ प्रज्वालयन्तौ भासेते ॥ १४ ॥

अन्वयः—भीमवेगैः शरैः हयान् मर्दयित्वा शीघ्रं बलेन ध्वजं च अभिहत्य महद्वाणवर्षं सृजन्तं नदन्तं हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तं (रावणं पश्येताम्) ॥ १५ ॥

बाण को नष्ट करने वाले युद्ध को देखकर हरिवर (सुग्रीव) और राक्षसों के ये सैनिक विवध शस्त्रों के प्रहार से विरत होकर स्थित हो गये ॥१३॥

द्वितीय—अहा—

युद्धोपयुक्त गतियों से घूम रहे रथस्थ (ये दोनों) बाणों को छोड़ते हुये तथा अपने किरणसमूहों से पृथ्वी को जलाते हुये आकाश में घूम रहे दो सूर्यों की भाँति हैं ॥ १४ ॥

तृतीय—रावण को भी आप दोनों देखें।

यह भयंकर वेग वाले बाणों से अश्वों का मर्दन कर तथा ध्वज को भी महत्पराक्रम से खण्डित कर महद् बाण वृष्टि की सृष्टि कर रहा है, शब्द कर रहा है, हंस रहा है और नरदेव (राम) को डरा रहा है ॥ १५ ॥

प्रथमः—एष हि रामः,

स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः किञ्चित् समाश्वास्य वै
तीव्रं बाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभः।
व्यक्तं मातलिना स्वयं नरपतिर्दत्तास्पदो वीर्यवान्
क्रुद्धः संहितवान् वरास्त्रममितं पैतामहं पार्थिवः ॥ १६ ॥

द्वितीयः—एतदस्त्रं,

व्याख्या—भीमवेगैः भयंकरवेगयुक्तैः शरैः बाणैः हयान् इन्द्ररथवाहकानश्वान् मर्दयित्वा संपीड्य शीघ्रं त्वरया बलेन बलपूर्वकं ध्वजं रामरथस्य पताकाम् अभिहृत्य निपात्येत्यर्थः महद्बाणवर्षं घोरबाणवृष्टिं सृजन्त कुर्वन्तं नदन्तं नादं कुर्वन्तं हसन्तं हासं कुर्वन्त नृदेवं रामं भृश भीषयन्तं प्रकर्षेण त्रासयन्तं रावणं पश्येतामिति पूर्वेणान्वयः ॥ १५ ॥

अन्वयः—स्थानाक्रामणयामनीकृततनुः किञ्चित्समाश्वास्य वै तीव्रं वाणम् अवेक्ष्य रक्तवयनः मध्याह्नसूर्यप्रभः स्वयं मातलिना दत्तास्पदः वीर्यवान् पार्थिवः नरपतिः क्रुद्धः सन् अमितं पैतामहं वरास्त्रं संहितवान् ॥ १६ ॥

व्याख्या—स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः स्थाने आक्रमणेन ग्रहणेनेत्यर्थः स्थानावष्टम्भनेन वामनीकृततनुः खर्वीकृतशरीरः संकुचितशरीरः किञ्चिदीषत् समाश्वास्य धैर्यमवलम्ब्य वै तीव्रं तीक्ष्णं बाणं शरम् अवेक्ष्य दृष्ट्वा रक्तनयनः क्रोधाद् रक्तनयनः मध्याह्नसूर्यप्रभः मध्याह्नकालीनसूर्यतुल्योग्रतेजाः स्वयं मातलिना इन्द्रसारथिना दत्तास्पदः दत्तप्रतिष्ठः वीर्यवान् बलवान् पार्थिवः नरपतिः भीमो नृपो रामः क्रुद्ध सन् अमितम् अपरिमितं पैतामहं ब्राह्मं वरास्त्रं श्रेष्ठं शरं संहितवान् धनुषि संस्थापितवान् ॥ १६ ॥

प्रथम—ये राम

उचित स्थान पर आक्रमण करने के लिये शरीर को छोटा कर (झुका कर), कुछ धैर्य धारण कर, मध्याह्न सूर्य के समान प्रभा वाले, (ये) तीव्र बाण को देखकर वीर्यवान नरपति (ये) स्वयं मातलि द्वारा दत्तास्पद (प्रतिष्ठा) प्राप्त होकर ये पार्थिव राम क्रुद्ध होकर अतुलनीय श्रेष्ठ पैतामह अस्त्र को संयोजित किये ॥ १६ ॥

द्वितीय—यह अस्त्र रघुवर के भुजाओं से वेग द्वारा छोड़ा जाकर अग्नि

रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् ।
रजनिचरवरं निहत्य सङ्ख्ये पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम् ॥ १७ ॥

सर्वे—हन्त निपातितो रावणः ।

प्रथमः—रावणं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिर्निपातिता ।
एता नदन्ति गम्भीरं भेर्यस्त्रिदिवसद्मनाम् ॥ १८ ॥

द्वितीयः—भवतु । सिद्धं देवकार्यम् ।

अन्वयः—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् (एतदस्त्रं) संख्ये रजनिचरवरं निहत्य पुनः रामम् एव शीघ्रम् अभिगच्छति ॥ १७ ॥

व्याख्या—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं रघुवरस्य रामस्य भुजयोः बाह्वोः वेगेन विप्रमुक्त त्यक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् अग्निसूर्यतेजोयुक्तधारोपेतं पैतामहमस्त्रं संख्ये युद्धे रजनिचरवरं राक्षसराजं रावणं निहत्य हत्वा पुनः राममेव शीघ्रं त्वरया अभिगच्छति आगच्छति । रावणं निहत्य राममेव पुनरागत इत्यर्थः ॥ १७ ॥

अन्वयः—रावणं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिः निपातिता । त्रिदिवसद्मनाम् एताः भेर्यः गम्भीरं वदन्ति ॥ १८ ॥

व्याख्या—रावणं निहतं मारितं दृष्ट्वाऽवलोक्य (देवैः खात्) पुष्पवृष्टिः पुष्पवर्षा निपातिता पातिता । त्रिदिवसद्मनां त्रिदिवं सद्म येषां तेषां देवानां एताः श्रूयमाणाः भेर्यः तन्नामकानि वाद्यानि नदन्ति वाद्यन्ते ॥ १८ ॥

तथा सूर्य के समान तीक्ष्ण धारों वाला युद्ध में राक्षसराज को मारकर शीघ्रता से पुनः राम के पास आ रहा है ॥ १७ ॥

सभी—अहा ! रावण मार डाला गया ।

प्रथम—रावण को मारा गया देखकर पुष्पों की वृष्टि हो गयी और देवलोक के वासियों की ये भेरियाँ बज रही हैं ॥ १८ ॥

द्वितीय—ठीक है । देवताओं का कार्य पूर्ण हो गया ।

प्रथमः—तदागम्यताम्। वयमपि तावत् सर्वहितं रामं सम्भावयिष्यामः।

उभौ—बाढम्। प्रथमः कल्पः।

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति रामः।)

रामः—

हत्वा रावणमाहवेऽद्य तरसा मद्बाणवेगार्दितं
कृत्वा चापि विभीषणं शुभमति लङ्केश्वरं साम्प्रतम्।
तीर्त्वा चैवमनल्पसत्त्वचरितं दोर्भ्यां प्रतिज्ञार्णवं
लङ्कामभ्युपयामि बन्धुसहितः सीतां समाश्वासितुम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—अद्य तरसा तद्बाणवेगार्दितं रावणं हत्वा अपि च शुभमति विभीषणं साम्प्रतं लङ्केश्वरं कृत्वा दोर्भ्याम् अनल्पसत्त्वचरितं प्रतिज्ञार्णवं तीर्त्वा सीतां समाश्वासितुं बन्धुसहितः लङ्काम् अभ्युपयामि ॥ १९ ॥

व्याख्या—अद्य तरसा वेगेन मद्बाणवेगार्दितं मद्बाणपीडितं रावणं हत्वा निहत्य अपि च शुभमति साधुबुद्धि विभीषणं नाम रावणानुजं साम्प्रतमिदानीं लङ्केश्वरं लङ्काधिपति कृत्वा दोर्भ्यां बाहुभ्यामनल्पसत्त्वचरितं महत्पुरुषार्थसाध्यं प्रतिज्ञार्णवं प्रतिज्ञासागरं तीर्त्वा उत्तीर्य सीतां समाश्वासितुं धैर्यं प्रदातुं बन्धुसहितः लक्ष्मणयुतः लङ्काम् अभ्युपयामि गच्छामि ॥ १९ ॥

प्रथम—तो आइये। हम लोग भी सभी के हितकारी राम को अभिनन्दित करें।

दोनों—ठीक है। बहुत अच्छा है।

(सभी निकल जाते हैं)

निष्कम्भक

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं)

राम—आज मेरे बाणों के वेग से अर्दित रावण को मारकर तथा इस समय शुभ बुद्धि विभीषण को लङ्केश्वर बनाकर तथा महत्त सत्त्व (पुरुषार्थ)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्य ! एषा ह्यार्यार्यस्य समीपमुपसर्पति ।

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

अपायाच्च हि वैदेह्या उषिताया रिपुक्षये ।
दर्शनात् साम्प्रतं धैर्यं मन्युर्मे वारयिष्यति ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

विभीषणः—जयतु देवः ।

अन्वयः—वैदेह्याः अपायात् रिपुक्षये उषितायाः सांप्रतं दर्शनात् मन्युः मे धैर्यं वारयिष्यति ॥ २० ॥

व्याख्या—वैदेह्याः विदेहराजपुत्र्याः सीतायाः अपायात् रावणकर्तृकहरणदोषात् रिपुक्षमे शत्रुभवने उषितायाः निवसितायाः सांप्रतं दर्शनात् मन्युः क्रोधः मे धैर्यं वारयिष्यति निवारयिष्यति । सांप्रयं सीतादर्शनात् मम क्रोधः पुनरुद्दीप्तो भविष्यतीति भावः ॥ २० ॥

से सम्भव होने वाले प्रतिज्ञा समुद्र को बाहों से पार कर सीता को समाश्वस्त करने के लिये भाई (लक्ष्मण) के सहित लङ्का जा रहा हूँ ॥ १९ ॥

(प्रवेश कर)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो । ये आर्या सीता आपके पास आ रही हैं ।

राम—वत्स लक्ष्मण ! शत्रु के घर में रही सीता के दोष (शत्रु गृह-निवास. रावण स्पर्श) से इस समय उसके दर्शन से मेरे धैर्य को मेरा क्रोध रोक देगा (रोक रहा है) ॥ २० ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा (चला जाता है)

(प्रवेश कर)

विभीषण—महाराज की जय हो ।

हे राजन् ! यह आपकी धर्मपत्नी आपके बाहुबल से विगत-दुःखवाली होकर जैसे लक्ष्मी पूर्व में दैत्यकुल से छूट कर उपस्थित (देवों के पास)

एषा हि राजंस्तव धर्मपत्नी त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा ।
लक्ष्मीः पुरा दैत्यकुलच्युतेव तव प्रसादात् समुपस्थिता सा ॥ २१ ॥

रामः - विभीषण ! तत्रैव तावत् तिष्ठतु रजनीचरावमर्शजातकल्मषा इक्ष्वाकुकुलस्याङ्कभूता । राजानं दशरथं पितरमुद्दिश्य न युक्तं भो लङ्काधिपते ! मां द्रष्टुम् । अपि च,

मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ २२ ॥

विभीषणः — प्रसीदतु देवः !

अन्वयः—हे राजन् ! एषा तव धर्मपत्नी तव बाहुवीर्येण विधूतदुःखा सा पुरा दैत्यकुलच्युता लक्ष्मीः इव तव प्रसादात् समुपस्थिता ॥ २१ ॥

व्याख्या—हे राजन् राम ! एषा तव धर्मपत्नी धर्मसहचारिणी न तु कामजा पत्नी तव बाहुवीर्येण बाह्वोः पराक्रमेण विधूतदुःखा नष्टदुःखफला सा पुरा प्राचीने काले दैत्यकुलच्युता राक्षसकुलादागता लक्ष्मीः इव तव प्रसादात् कृपया समुपस्थिता प्राप्ताऽस्ति ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! अकार्येषु विषयेषु मज्जमानं पुरुषं यः वै निवारयति स मित्रम् अन्यथा रिपुः ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे राजन् ! अकार्येषु अकर्त्तव्येषु लोकशास्त्रविनिन्दितेष्वित्यर्थः विषयेषु कार्येषु विषयेषु वा मज्जमानं निषेवन्तं सक्तमित्यर्थः पुरुषं मनुष्यं यः निवारयति ततः पराङ्मुखं करोति स मित्रं हितकारकः अन्यथा तद्विरुद्धमाचरन् रिपुः शत्रुः एव ॥ २२ ॥

हुई थीं वैसे ही आपकी कृपा से (आपके पास) उपस्थित हुई हैं ॥ २१ ॥

राम—विभीषण ! राक्षस के स्पर्श से कल्मषयुक्त हुई इक्ष्वाकुकुल में कलङ्कभूता वहीं रहें । हे लङ्काधिपते ! राजा पिता दशरथ का ख्याल कर उनका मुझे देखना उचित नहीं है ।

और—

हे राजन् ! अकार्य विषयों में डूब रहे पुरुष को जो रोकता है वह मित्र है अन्यथा (इसके विपरीत आचरण करने वाला) शत्रु है ॥ २२ ॥

विभीषण—देव प्रसन्न हों ।

रामः—नार्हति भवानतः परं पीडयितुम् ।

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः। आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेशाय प्रसादं प्रतिपालयत्यार्या ।

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (परिक्रम्य) भोः कष्टम् ।

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥ २३ ॥

कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

हनुमान्—जयतु कुमारः ।

अन्वयः—देव्याः शौचं विज्ञाय आर्यस्य शासनं च श्रुत्वा मम धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिः दोलायते इतस्ततो भ्रमति ॥ २३ ॥

व्याख्या—देव्याः जनकात्मजायाः शौचं पवित्रतां पातिव्रत्यादिरूपं विज्ञाय सम्यज्ज्ञात्वा आर्यस्य रामस्य शासनमादेशं च श्रुत्वा मम धर्मस्य आज्ञापालनरूपस्य स्नेहस्य सीतायाः पातिव्रतं ज्ञात्वाऽपि अग्निप्रवेशकार्यस्य अन्तरे मध्ये न्यस्ता स्थापिता बुद्धिः दोलायते इतस्ततो भ्रमति ॥ २३ ॥

राम—इसके अनन्तर आप कष्ट न दें।

(प्रवेश कर)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो। आर्य के मन्तव्य को सुनकर आर्य सीता अग्नि प्रवेश के लिये आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रही हैं।

राम—लक्ष्मण ! इस पतिव्रता की इच्छा की पूर्ति करो।

लक्ष्मण—आर्य की जैसी आज्ञा ! (परिक्रमा करके) हाय ! कष्ट है। देवी को पतिव्रता जानकर तथा आर्य (राम) का आदेश सुनकर धर्म और स्नेह के बीच में रखी मेरी बुद्धि दोलायित हो रही है ॥ २३ ॥

कौन यहाँ है ?

(प्रवेश कर)

हनुमान्—कुमार (लक्ष्मण) की जय हो।

लक्ष्मणः—हनुमन् ! यदि ते शक्तिरस्ति, एवमाज्ञापयत्यार्यः ।

हनुमान्—अत्र किं तर्कयति कुमारः ।

लक्ष्मणः—निष्फलो मम तर्कः । अथवा वयमार्यस्याभिप्रायमनुवर्तितारः । गच्छामस्तावत् ।

हनुमान्—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तौ ।)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! आश्चर्यमाश्चर्यम् । एषा ह्यार्या,

विकसितशतपत्रदामकल्पा ज्वलनमिहाशु विमुक्तजीविताशा ।
श्रममिह तव निष्फलं च कृत्वा प्रविशति पद्मवनं यथैव हंसी ॥ २४ ॥

अन्वयः—विकसितशतपत्रदामकल्पा विमुक्तजीविताशा तव श्रमं निष्फलं च कृत्वा इह पद्मवनं हंसी यथैव आशु ज्वलनं प्रविशति ।। २४ ।।

व्याख्या—विकसितशतपत्रदामकल्पां विकसितकमलमालातुल्यां विमुक्तजीविताशा त्यक्तजीविताशा तव श्रमं रावणवधरूपं निष्फलं च कृत्वा इह अत्र पद्मवनं कमलवनं हंसी यथैव इव आशु झटिति ज्वलनं हुताशनं प्रविशति। सीताप्राप्त्यर्थं रामेण रावणवधरूपः महान् श्रमः कृतः सीतायाः अग्निप्रवेशेन सः श्रमोः व्यर्थतां भजते इत्यभिप्रायः ।। २४ ।।

लक्ष्मण—हनुमन् ! यदि तुममें शक्ति है तो आर्य ऐसी आज्ञा दे रहे हैं (यदि परिवर्तित करा सको तो करो)

हनुमान्—इस विषय में कुमार क्या सोच रहे हैं ?

लक्ष्मण—मेरा सोचना व्यर्थ है । अथवा हमलोग आर्य की इच्छा के अनुगामी हैं । तो चलें ।

हनुमान्—जैसी कुमार की आज्ञा । (दोनों निकल जाते हैं)

(प्रवेश कर)

लक्ष्मण—आर्य प्रसन्न हों । आर्य ! आश्चर्य है । आश्चर्य । ये आर्या ।

विकसित कमल की मालातुल्य (ये आर्या) जीवन की आशा छोड़कर आपके श्रम को निष्फल कर इस अग्नि में जैसे पद्मवन में हंसी प्रवेश करे वैसे (सुखपूर्वक) प्रवेश कर रही हैं ॥ २४ ॥

रामः—आश्चर्यमाश्चर्यम् । लक्ष्मण ! निवारय निवारय ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(प्रविश्य)

हनुमान्—जयतु देवः ।

एषा कनकमालेव ज्वलनाद् वर्धितप्रभा ।
पावना पावकं प्राप्य निर्विकारमुपागता ॥ २५ ॥

रामः—(सविस्मयम्) किमिति किमिति ।

लक्ष्मणः—अहो, आश्चर्यम् ।

(प्रविश्य)

सुग्रीवः—जयतु देवः ।

अन्वयः—एषा पावना कनकमाला इव ज्वलनात् वर्धितप्रभा (सती) पावकं प्राप्य निर्विकारम् उपागता ॥ २५ ॥

व्याख्या—एषा पावना पवित्रा कनकमाला स्वर्णमाला इव ज्वलनात् हुताशनात् दाहाद्वावर्धितप्रभा वर्धितकान्तिः सती पावकं शोधकमग्निं प्राप्य प्रविश्य निर्विकारं विक्रियारहितं यथा स्यात् तथा उपागता बहिरागता ।२५।

राम—आश्चर्य है आश्चर्य है । लक्ष्मण ! रोको । रोको ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा ।

(प्रवेश कर)

हनुमान्—देव की जय हो ।

ये पवित्र (सीता) अग्नि मे प्रवेश कर स्वर्णमाला की भाँति अग्नि से वर्धित तेज वाली होकर निर्विकार (बिना किसी परिवर्तन के) बाहर आ गयीं ।। २५ ।।

राम—(विस्मयपूर्वक) क्या है ? क्या है ?

लक्ष्मण—अहा ! आश्चर्य है ।

(प्रवेश कर)

सुग्रीव—देव की जय हो ।

को नु खल्वेष जीवन्तीमादाय जनकात्मजाम् ।
प्रणम्यरूपः सम्भूतो ज्वलतो हव्यवाहनात् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणः—अये अयमार्या पुरस्कृत्येत एवाभिवर्तते भगवान् विभावसुः ।

रामः—अये अयं भगवान् हुताशनः उपसर्पामस्तावत् ।

(सर्वे उपसर्पन्ति)

(ततः प्रविशत्यग्निः सीतां गृहीत्वा ।)

अग्निः—एष भगवान् नारायणः । जयतु देवः ।

रामः—भगवन् ! नमस्ते ।

अग्निः—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः ।

अन्वयः—जीवन्तीं जनकात्मजाम् आदाय कः नुः खलु एष प्रणम्यरूपः ज्वलतः हव्यवाहनात् सम्भूतः ॥ २६ ॥

व्याख्या—जीवतीं प्राणान् धारयन्तीम् जनकात्मजां सीताम् आदाय गृहीत्वा कः नु खलु एष प्रणम्यरूपः पूज्यरूपः ज्वलतः ज्वलनशीलात् हव्यवाहनात हुताशनात् संभूतः उत्पन्नः उत्थित इत्यर्थः ॥ २६ ॥

प्रज्वलित हो रहे अग्नि से यह कौन प्रणम्यरूप जीवित जनकात्मजा को लेकर उत्पन्न हुआ है (निकला है) ॥ २६ ॥

लक्ष्मण—अरे ! आर्या जनकात्मजा को आगे कर ये भगवान् अग्नि इधर ही आ रहे हैं ।

राम—अरे ! ये भगवान् अग्नि हैं । तो हम चलें ।

(सभी आगे बढ़ते हैं)

(तदनन्तर सीता को लेकर अग्नि प्रवेश करते हैं)

अग्नि—ये भगवान् नारायण हैं । देव की जय हो ।

राम—भगवन् ! आपको नमस्कार है ।

अग्नि—देवों के अधिपति मुझे नमस्कार न करें ।

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥ २७ ॥

अपि च,

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥ २८ ॥

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

जानतापि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन ! ।
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम ! सर्वलोकनमस्कृताम् अपापां शुद्धां इमां जनकात्मजाम् अक्षतां गृह्णीष्व ॥ २७ ॥

व्याख्या—हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम । नरश्रेष्ठ ! सर्वलोकनमस्कृतां समस्तलोकवन्द्याम् अपापां निष्पापां शुद्धां शुद्धचरित्राम् इमां जनकात्मजां जानकीम् अक्षतां वह्निप्रवेशात्सर्वथाऽदग्धां गृह्णीष्व । स्त्रीकुरुष्वेत्यर्थः ॥२७॥

अन्वयः—इमां जनकात्मजां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि । सा मानुषीं तनुम् आस्थिता भवन्तम् अनुप्राप्ता ॥ २८ ॥

व्याख्या—इमां जनकात्मजां जनकपुत्रीं सीतां भगवतीं लक्ष्मीं श्रियं जानीहि अवगच्छ । सा लक्ष्मीः मानुषीं तनुं मानवशरीरम् आस्थिता स्थिता भवन्तं भगवन्तं रामम् अनुप्राप्ता ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे धूमकेतन ! वैदेह्याः शुचितां जानता अपि लोकानां प्रत्ययार्थं हि एवमेव मया कृतम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे धूमकेतन अग्ने ! वैदेह्याः जानक्याः शुचितां पवित्रतां

हे राजेन्द्र ! हे पुरुषोत्तम ! इस सर्वलोक नमस्कृत निष्पाप, अक्षत (अग्नि प्रवेश मे न जली हुई) शुद्ध जानकी को लीजिये ॥ २७ ॥

और—

इस जनकात्मजा सीता को भगवती लक्ष्मी जानिये । ये मनुष्य शरीर धारण कर आपके पास आयी हैं ॥ २८ ॥

राम—अनुगृहीत हूँ ।

हे धूमकेतन (अग्नि !) ! वैदेही की पवित्रता को जानते हुये लोकों (मनुष्यों) के विश्वासार्थ मैंने ऐसा किया ॥ २९ ॥

(नेपथ्ये दिव्यगन्धर्वा गायन्ति ।)

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।

✓ब्रह्मा ते हृदयं जगत्त्रयपते ! रुद्रश्च कोपस्तव
नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ सुरपते ! जिह्वा च ते भारती ।
सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो ! ✓
सीतेयं जलसम्भवालयरता विष्णुर्भवान् गृह्यताम् ॥३०॥

जानता अवगच्छता अपि मया रामेण लोकानां जनानां प्रत्ययार्थं विश्वासार्थं हि निश्चयेन एवमेव वह्निप्रवेशादिकार्यानुमोदनं मया कृतम् ।। २९ ।।

अन्वयः—हे जगत्त्रयपते । ब्रह्मा ते हृदयं । रुद्रश्च तव कोपः । हे सुरपते ! चन्द्रदिवाकरौ नेत्रे । भारती च ते जिह्वा । हे प्रभो ! त्वया एव सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं । इयं सीता जलसंभवालयरता भवान् विष्णुः (अतः) इयं गृह्यताम् ।। ३० ।।

व्याख्या—हे जगत्त्रयपते ! त्रैकोक्यस्वामिन् ! ब्रह्मा ते हृदयमस्ति । रुद्रो महादेवश्च ते कोपः क्रोधः । हे सुरपते ! देवपते ! चन्द्रदिवाकरौ चन्द्रसूर्यौ ते उभे नेत्रे । भारती सरस्वती च ते जिह्वा । हे प्रभो । त्वया एव सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं ब्रह्मेन्द्रमरुद्भिः सह त्रिभुवनं त्रैलोक्यं सृष्ट । इयं सीता जलसंभवालयरता कमलालया लक्ष्मीः भवान् विष्णुः अतः इयं सीता गृह्यताम् स्वीक्रियताम् ।। ३० ।।

(नेपथ्य में दिव्य गन्धर्व गान करते हैं)

त्रैलोक्य के कारण भगवान् नारायण को नमस्कार है ।

हे जगत्पते ! ब्रह्मा आपके हृदय हैं । रुद्र आपके क्रोध हैं । हे देवताओं के स्वामी । चन्द्रमा और सूर्य आपके दोनों नेत्र हैं । सरस्वती आपकी जिह्वा हैं । हे प्रभो ! ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण सहित त्रिभुवन को आपने ही बनाया है । ये सीता कमलालय में निवास करने वाली (लक्ष्मी) हैं, आप विष्णु है । इन्हें आप लीजिये ।। ३० ।।

(पुनर्नेपथ्ये अपरे गायन्ति ।)

मग्नेयं हि जले वराहवपुषा भूमिस्त्वयैवोद्धृता
विक्रान्तं भुवनत्रयं सुरपते ! पादत्रयेण त्वया ।
स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवेन हि तथा देवाः समाश्वासिताः ॥ ३१ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणास्वविभवैर्भवन्तं वर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! अभिषेकार्थमित इतो भवान् ।

अन्वयः—हे सुरपते ! जले मग्ना इयं भूमिः त्वया एव वराहवपुषा उद्धृता । त्वया पादत्रयेण भुवनत्रयं विक्रान्तं साम्प्रतं स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा देवाः समाश्वासिताः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—हे सुरपते ! देवराज । जले मग्ना । प्रलयार्णवे मग्ना इयं भूमिः त्वया एव वराहवपुषा वराहरूपेण जलादुद्धृता । त्वया पादत्रयेण वामनावतारे त्रिभिः पदैः भुवनत्रयं त्रैलोक्य विक्रान्तंमापितम् । साम्प्रतं स्वैरं यथेच्छं मानवं रूपमुपस्थितेन धारिणा भवता देव्या जानक्या यथा इव देवा समाश्वासिताः धैर्यं प्रापिताः ॥ ३१ ॥

(पुनः नेपथ्य में दूसरे गाते हैं)

जल में मग्न इस पृथ्वी को आपने ही वराह रूप से उद्धृत किया था। हे देवराज ! तीनों लोकों को आपने ही तीन पैरों से क्रान्त किया था और इस समय भी इच्छानुसार रूप धारण कर युद्ध में रावण को मारकर देवी के साथ ही देवताओं को भी आश्वस्त किया ॥ ३१ ॥

अग्नि—भद्रमुख (मङ्गलमय) ! ये देव, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरायें अपने विभवों से आपकी संवर्धना कर रहे हैं।

राम—अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—भद्रमुख ! अभिषेकार्थं आप इधर आवें ।

राम—यदाज्ञापयति भगवान् ।

(निष्क्रान्तौ)

(नेपथ्ये)

जयतु देवः । जयतु स्वामी । जयतु भद्रमुखः । जयतु महाराजः । जयतु रावणान्तकः । जयत्वायुष्मान् ।

विभीषणः—एष एष महाराजः,

तीर्त्वा प्रतिज्ञार्णवमाहवेऽद्य
सम्प्राप्य देवीं च विधूतपापाम् ।
देवैः समस्तैश्च कृताभिषेको
विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्रः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—अद्य आहवे प्रतिज्ञार्णवं तीर्त्वा विधूतपापां देवीं च संप्राप्य समस्तैः देवैः च कृताभिषेकः शुभ्रे नभसि चन्द्र इव विभाति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अद्य आहवे समरे प्रतिज्ञार्णवं सीतापहारिणो रावणस्य बधरूपां प्रतिज्ञासमुद्रं तीर्त्वा पारं गत्वा विधूतपापां निष्कलुषां देवीं सीतां च संप्राप्य प्राप्त्वा समस्तैः समग्रैः देवैः च कृताभिषेकः राज्येऽभिषिक्तः शुभ्रे निर्मले नभसि आकाशे चन्द्रः इव एष महाराजो रामो विभाति ॥ ३२ ॥

राम—जैसी भगवान् की आज्ञा ।

(दोनों निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

देव की जय हो । स्वामी की जय हो । भद्रमुख की जय हो । महाराज की जय हो । रावण के वधकर्ता की जय हो । आयुष्मान् की जय हो ।

विभीषण—ये महाराज युद्ध में आज प्रतिज्ञा-समुद्र को पार कर और निष्पाप देवी (सीता) को प्राप्त कर समस्त देवों से अभिषिक्त होकर शुभ्र आकाश में चन्द्रमा की भाँति शोभित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणः—अहो नु खल्वार्यस्य वैष्णवं तेजः ।

यमवरुणकुबेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिसंवृतो विभाति ।
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव ॥ ३३ ॥

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सीतया सह ।)

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

येनाहं कृतमङ्गलप्रतिसरो भद्रासनारोपितो-
ऽप्यम्बायाः प्रियमिच्छता नृपतिना भिन्नाभिषेकः कृतः ।

अन्वयः—दशरथवचनात् कृताभिषेकः यमवरुणकुबेरवासवाद्यैः त्रिदशगणैः अभिसंवृतः त्रिदशपतित्वम् अवाप्य वृत्रहा इव विभाति ॥ ३३ ॥

व्याख्या—दशरथवचनात् दशरथादेशात् यतः पूर्वं तस्यैव वचनात् कैकेयीप्रीत्यर्थं राज्याय कृतसंभारोऽपि राज्यादवरोप्य वनं प्रस्थापितः अतः सम्प्रति तस्यैव वचनात् राज्याभिषेकः संगत इत्यर्थः कृताभिषेकः अभिषिक्तः यमवरुणकुबेरवासवाद्यैः यमवरुणकुबेरेन्द्राद्यैः त्रिदसगणैः देवसमूहैः अभिसंवृतः युक्तः त्रिदशपतित्वं देवराजपदं अवाप्य लब्ध्वा वृत्रहा इन्द्र इव विभाति शोभते ॥ ३३ ॥

अन्वयः—कृतमङ्गलप्रतिसरः भद्रासनारोपितः अपि अहम् अम्बायाः प्रियम् इच्छता येन नृपतिना भिन्नाभिषेकः कृतः व्यक्तं साम्प्रतं देवगतिं गतेन तेन गुरुणा प्रहृष्टमनसा पुनः प्राप्ताभिषेकः कृतः ॥ ३४ ॥

व्याख्या—कृतमङ्गप्रतिसरः कृतः विहितः मङ्गलप्रतिसरः मङ्गलसूत्रं

लक्ष्मण—अहा ! आर्य का वैष्णव तेज कैसा (लोकोत्तर) है । दशरथ के बचन से अभिषिक्त होकर यम, बरुण, कुबेर, इन्द्र आदि देवताओं सहित वैसे ही शोभित हो रहे हैं जैसे वृत्र को मारने वाले इन्द्र देवराजपद पाकर शोभित होते है ॥ ३३ ॥

(तदनन्तर सीता के साथ अभिषिक्त राम प्रवेश करते हैं)

राम—वत्स लक्ष्मण !

जिस राजा (दशरथ) ने अम्बा (कैकेयी) के प्रिय की इच्छा से मंगलसूत्र बंधने और भद्रासन पर बैठने के बाद भी मेरा अभिषेक रोक दिया वे ही

त्यक्तं दैवगतिं गतेन गुरुणा प्रत्यक्षतः साम्प्रतं
तेनैवाद्य पुनः प्रहृष्टमनसा प्राप्ताभिषेकः कृतः ॥३४॥

अग्निः—भद्रमुख ! एता हि महेन्द्रनियोगाद् भरतशत्रुघ्नपुरःसरा प्रकृतयो भवन्तमुपस्थिताः ।

रामः—भगवन् ! प्रहृष्टोऽस्मि ।

अग्निः—इमे महेन्द्रादयोऽमृतभुजो भवन्तमभिवर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि !

रामः—यदि मे भवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

(भरतवाक्यम्)

यस्यासौ विहितरक्षासूत्रबन्धनः भद्रासनारोपितः भद्रासने राज्यसिंहासने आरोपितः स्थापितः अपि अहं रामः अम्बायाः कैकेय्याः प्रियमिच्छता आचरता येन नृपतिना पित्रा दशरथेन भिन्नाभिषेकः खण्डिताभिषेकः वने च प्रस्थापितः कृतः व्यक्त प्रत्यक्षं साम्प्रतमिदानीं दैवगतिं गतेन स्वर्गं गतेन तेन गुरुणा पित्रा प्रहृष्टमनसा प्रसन्नचेतसा पुनः प्राप्ताभिषेकः कृतः । येन पित्रा पूर्वमहं राज्यादवरोपितः बनं च प्रस्थापितः तेनैवेदानीं राज्येऽभिषिक्तः इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

दैवगति को प्राप्त (स्वर्गीय) मेरे गुरु (पिता) आज प्रत्यक्ष होकर प्रसन्न मन से मेरा अभिषेक किये हैं ॥ ३४ ॥

अग्नि—भद्रमुख ! इन्द्र के आदेश से भरत-शत्रुघ्न के साथ ये प्रजाजन आपके पास उपस्थित हुये हैं ।

राम—भगवन् ! मैं प्रसन्न हूँ ।

अग्नि—ये इन्द्रादि अमृतभोजी (देवता) आपकी अभिवर्धना कर रहे है ।

राम—अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—भद्रमुख ! और क्या मैं आपका प्रिय करूँ ?

राम—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक मैं क्या चाहता ?

(भरतःवाक्य)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥ ३५॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

षष्ठोऽङ्कः

अभिषेकनाटकं समाप्तम्।

अन्वयः—गावः अरजसः भवन्तु। परचक्रं प्रशाम्यतु। इमां कृत्स्नामपि महीं नः राजसिंहः प्रशास्तु॥ ३५॥

व्याख्या—गावः धेनवः इन्द्रियाणि वा अरजसः रजोविहीनाः भवन्तु प्रकृष्टवर्वेण रजः शाम्यतु प्रभूतशस्योत्पत्या गावः प्रसन्नाश्च भवेयुः। अथवा गावः इन्द्रियाणि अरजसः रजोगुणविहीनानि भवन्तु। परचक्रं शत्रुवलं प्रशाम्यतु। इमां कृत्स्नां संपूर्णामपि महीं पृथ्वीं नः राजसिंहः प्रशास्तु शासनं पालनं च करोतु॥ ३५॥

इति सांकृत्यायनगङ्गासागरशर्मणा कृतायामभिषेक-
नाटकटीकायां षष्ठोऽङ्कः।

श्रावणस्य सिते पक्षे सप्तम्यां कुजवासरे।
टीकेयं पूर्णतां जाता प्रीयतां रघुनन्दनः॥

गायें (इद्रियाँ) रजो विहीन (धूल विरहित, स्वच्छ-पक्षान्तर में रजोगुण विहीन) हों, शत्रुमण्डल शान्त रहें और इस संपूर्ण भूमण्डल का हमारे राजा शासन करें।

(सभी निकल जाते हैं)

छठा अङ्क समाप्त

अभिषेक नाटक समाप्त।

श्लोकानुक्रमणिका

अचिन्त्या मनसा ३।२
अञ्जनायां समु० ३।१५
अतिबलसुख १।२५
अद्यैव तं कमल ३।२७
अनयोः शासना ४।२१
अवशषपरि २।२१
अपराधमनु १।८
अपाशाच्च हि ६।२०
अपास्य भोगान् २।१२
अपास्य मायया ३।१८
अभिभूतो मया ३।२२
अभिहतवर ३।२३
अमलकमल ३।८
अवश्यं युधि ३।९
असितभुजग २।८
अस्ताद्रिमस्तक ४।२३
अस्मदीयैर्महा ३।५
आक्रान्ताः पृथु ४।२
इक्ष्वाकुकुल २।२०
इक्ष्वाकुवंश ६।१
इदानीं राज्य १।३
इदानीं राज्य १।३
इदानीमपि ५।१४
इन्द्रो वा शरण १।१२
इमां गृह्णीष्व ६।२७
इमां भगवती ६।२८
इमां सा राज २।१३
उदीर्णसत्त्वेन ५।११
एतां प्राप्य दश २।३
एषा रावण ६।१०
एते तयोर्भानु ५।८
एते पादप ६।३
एतौ हि राक्षसे ४।२०
एवं गाढं परि २।२४
एषा कनक ६।२५
एषा विहाय ५।४
एषा हि राजं ६।२१
कथं कथं भो ३।३
कथं लम्बसटः ३।२०
कनकरचितचापं ६।११
कनकरचितचित्र २।२
कनकरचितदण्डा ६।६
कनकरचितविद्रु २।५
करिकरसदृशौ १।२२
कुतोनु खल्वेष १।२
कुमारी हि कृता ३।६
कानु खल्वेष ६।२६
क्रुद्धस्य यस्य ४।७
क्रोधात्संरक्तः ३।७
क्वचित् फेनोद्गारी ४।१७
गर्भागारविनि २।४
चलत्तरङ्गाहत ५।१
चारीभिरेतौ ६।१४
चित्रप्रस्तुत २।६
जानतोऽपि च ६।२९
जित्वा त्रैलोक्य ३।११
तव नृप मुख १।६
तारे मया खलु १।१३
तारे विमुञ्च १।९
तिष्ठत्वमह ३।७
तीर्त्वा प्रतिज्ञा ६।३२
तौ च बाहू न ३।१५
दिव्यास्त्रैः सुर ३।१०
दिव्यास्त्रैस्त्रिदशै ३।१७
दृष्टधर्मार्थं ४।८
देवाः सेन्द्राः ५।१२
देवा सेन्द्रादयो २।१८
देवे यथा वयं ४।१०
धनुषि निहित ५।१५
नक्तञ्चरापसद ३।२१
नारायणस्य ४।१३
निद्रां मे निशि ५।६
निशितविमल ६।४
नैवाहं धर्षित ३।१४
परभृतगण ३।२६

प्रगृहीतमहा २।२३
प्रसीद राजन् ३।१९
प्रहस्तप्रमुखा ५।२
प्रेषितोहं नरे २।१९
बलवान् वानरे १।१५
बलादेव गृही ५।५
बाणाः पात्यन्ते ६।५
ब्रह्मा ते हृदयं ६।३०
भवता वानरे १।२०
भवता सौम्य १।१८
भवन्तं पद्मप ४।११
भवन्त्वरजसो ६।३५
मग्नेयं हि जले ६।३१
मज्जमानमका ६।२२
मणिविरचित २।९
मणिविरचित ४।१५
मत्सायकान्निह १।४
मदनवशगतो ५।३
मम दाराय ४।२२
मम शरपरि ४।१२
मम शरवर ४।१८
ममानवेक्ष्य ३।२५
मया कृतं दोष १।२६
मयोक्तो मैथिली ३।१३
मानुषं रूप ४।१४
मुक्तो देव १।५
यद्यहं रावणं २।१६
यमवरुणकुबेर ६।३३
यस्यां न प्रिय ३।१
युक्तं भो वर १।१७
युधि जगत्त्रय ३।४
येनाहं कृत ६।३४
यो गाधिपुत्र १।१
रघुवरभुज ६।१७
रजतरचित २।२
रजनिचरशरीर ६।२
राक्षसीभिः परि २।७
राजंस्त्वत्कारणा ४।९
राजपुत्र कुतः ४।१६
रावणं निहितं ६।१८
रावणेन विमु ६।८
रिपुमुद्वर्त्तुमुद्यन्तं ४।४
रुधिरकलित १।१६
लङ्कायां किल ४।१
लब्ध्वा वृत्तान्तं २।१
वज्रीभकुम्भतट ५।१६
वरतनुतनुगात्रि २।१७
वरशरणमुपेहि ३।१६
वागुराच्छन्न १।१९
विकसितशत १।१४
विकसितशत ६।२४
विज्ञाय देव्या ६।२३
व्यक्तमिन्द्रजिता ५।१०
शक्ति निपातितां ६।९
शक्तो वा भवतु १।१०
शत्रुपक्षमुपा ३।२४
शरनिर्भिन्नहृदय १।२४
शरवरपरिपीत ६।१३
शरैर्भीमवेगै ६।१५
शासितोहं त्वया ३।२६
शैलैर्द्रुमैः सम्प्र ७।६
श्रुत्वा कालवशं १।२३
सवृत्तं तुमुलं ३।१०
सजलजलद ४।५
सजलजलधरे ४।३
सन्दष्टोष्ठप्रचण्ड १।१३
समावृत्तं सुरै ५।१७
समुदितवरचाप २।२५
सम्प्राप्ताहंरिवर १।९
सव्येन चापम ६।७
सीते त्यज त्वं २।१४
सीते त्यज त्वं ५।७
सीते भावं परि ५।९
सुग्रीवेणाभिमृ १।२१
सुरवरभयदर्पं ६।१२
स्थानाक्रामण ६।१
वसैनिको न ४।१९
हत्वा रावण ६।१२
हत्वा वालिन २।२२
हा वत्स सर्वं ५।१२